नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 22



आगम १७

"चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः

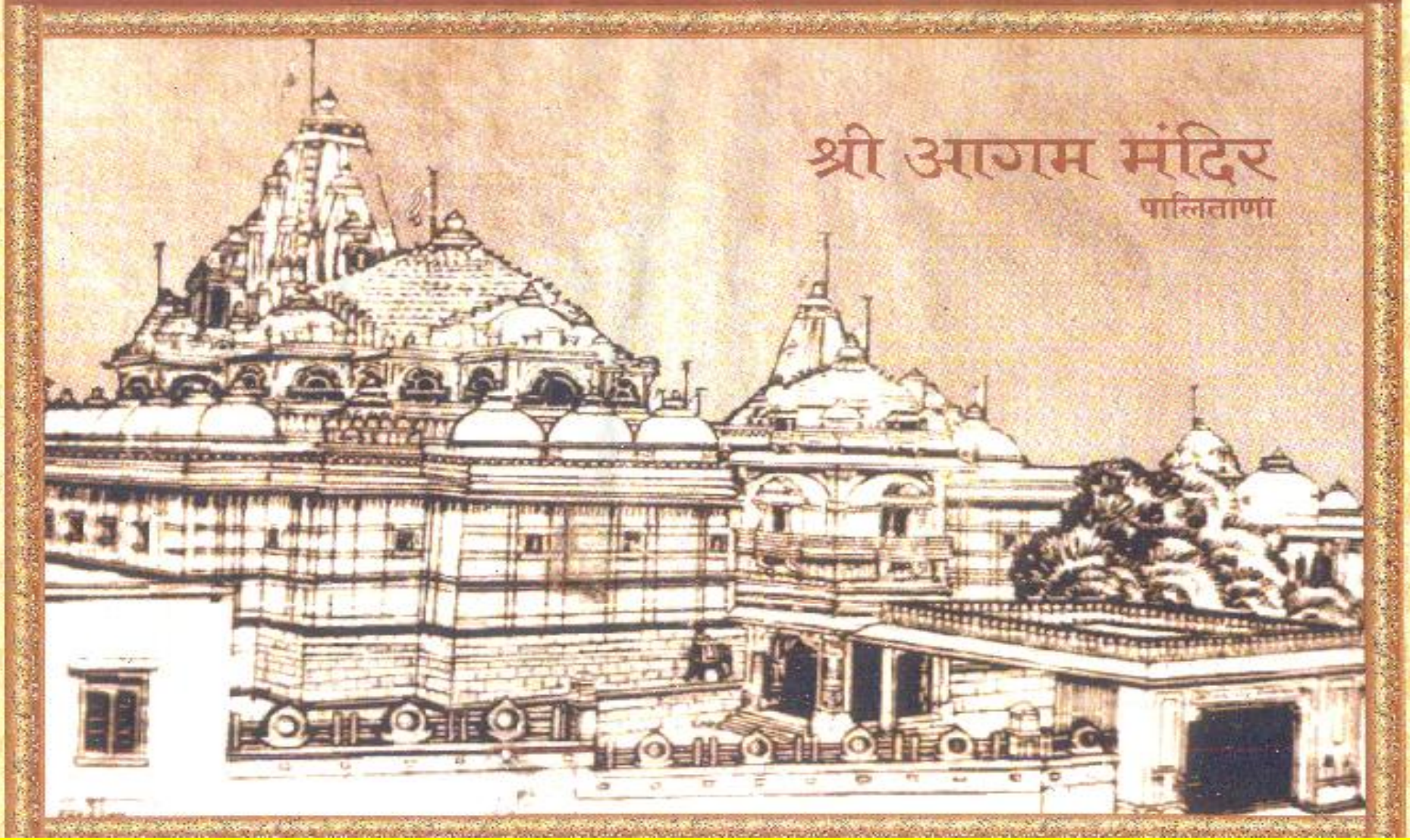
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

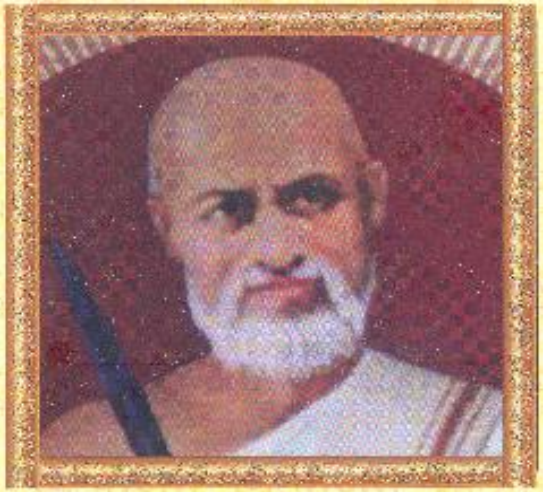
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

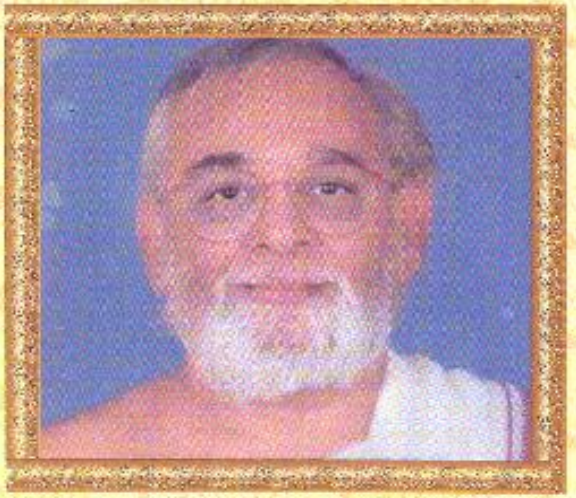
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275



आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-२२] श्री चन्द्रप्रज्ञप्ति (उपांगसूत्रम्-१७)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:]

['चन्द्रप्रज्ञप्ति'सूत्रस्य मलयगिरि रचित वृत्ते: हस्तप्रतस्य आधारेण

एवं पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरै: संपादित 'सूर्यप्रज्ञप्ति' सूत्रस्य साहायेन]

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह संकलिता)

पुन: संकलनकर्ता→ **मुनि दीपरत्नसागर** (M.Com., M.Ed., Ph.D.श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-२२

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... ***.....मुनि दीपरत्नसागर...***

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

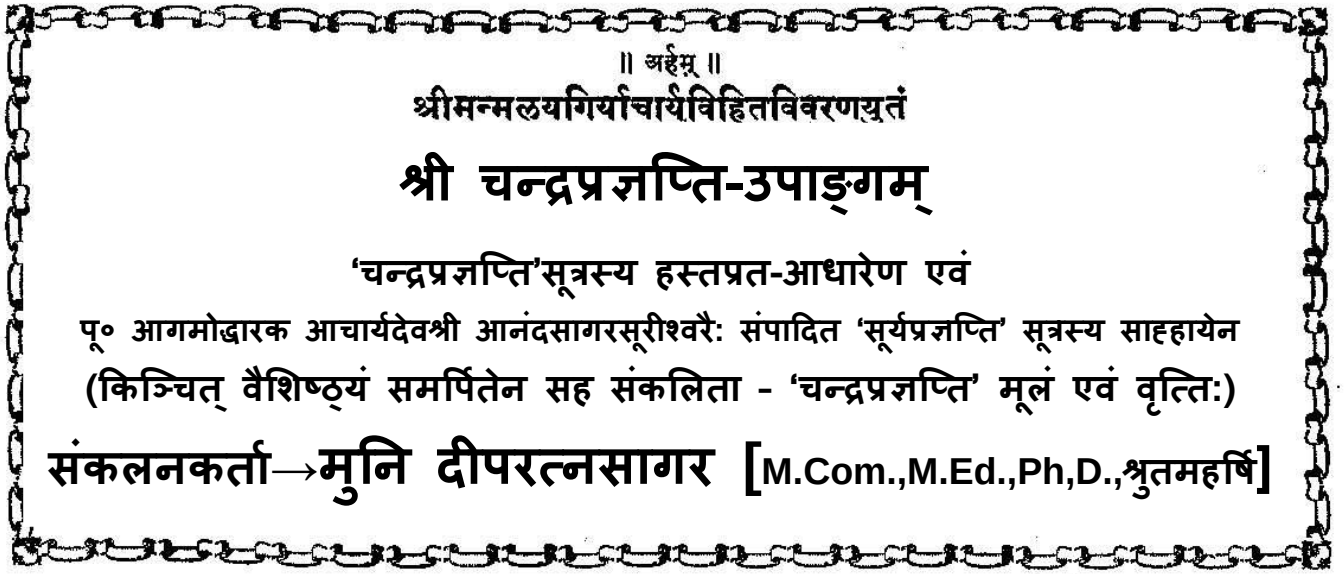
पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

आगम (१७)	“चन्द्रप्रज्ञप्ति” – उपांगसूत्र-६ (मूलं+वृत्ति:) प्राभृत [–], ---------- प्राभृतप्राभृत [–], ---------- मूलं [–]
प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] “चन्द्रप्रज्ञप्ति” मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:  ॥ अर्हम् ॥ श्रीमन्मलयगिर्याचार्यविहितविवरणयुतं **श्री चन्द्रप्रज्ञप्ति-उपाङ्गम्** ‘चन्द्रप्रज्ञप्ति’सूत्रस्य हस्तप्रत-आधारेण एवं पू० आगमोद्धारक आचार्यदेवश्री आनंदसागरसूरीश्वरै: संपादित ‘सूर्यप्रज्ञप्ति’ सूत्रस्य साहहायेन (किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह संकलिता - ‘चन्द्रप्रज्ञप्ति’ मूलं एवं वृत्ति:) संकलनकर्ता→मुनि दीपरत्नसागर [M.Com.,M.Ed.,Ph,D.,श्रुतमहर्षि] ‘सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि’ श्रेणि भाग-२२ Jain Education International www.jainelibrary.org
	चन्द्रप्रज्ञप्ति (उपांग)सूत्रस्य “टाइटल पेज”

मूलांक	विषय:	पृष्ठांक	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठां
००१	प्राभृतं- ०१	०१२	०३८	प्राभृतं- ०७	१७८	---	प्राभृतं- ...१० वर्तते	---
	वृत्तिकारकृता प्रतिज्ञा-गाथा:	०१२	०३९	प्राभृतं- ०८	१८०	०७०	प्राभृतप्राभृत- १७	३१४
००२	प्राभृतानां संख्यादि निर्देश:	०१५	०४०	प्राभृतं- ०९	१९७	०७१	प्राभृतप्राभृत- १८	३१६
००३	प्राभृतप्राभृत विषय-अधिकार:	०१७	०४२	प्राभृतं- १०...	२११	०७२	प्राभृतप्राभृत- १९	३१८
०१८	प्राभृतप्राभृत- १	०२१	०४२	प्राभृतप्राभृत- १	२१२	०७५	प्राभृतप्राभृत- २०	३१९
०२२	प्राभृतप्राभृत- २	०४५	०४३	प्राभृतप्राभृत- २	२१३	०८६	प्राभृतप्राभृत- २१	३५९
०२४	प्राभृतप्राभृत- ३	०५४	०४५	प्राभृतप्राभृत- ३	२२०	०८७	प्राभृतप्राभृत- २२	३६२
०२५	प्राभृतप्राभृत- ४	०६०	०४६	प्राभृतप्राभृत- ४	२२२	०९८	प्राभृतं- ११	४०७
०२६	प्राभृतप्राभृत- ५	०७०	०४७	प्राभृतप्राभृत- ५	२३४	०९९	प्राभृतं- १२	४१६
०२८	प्राभृतप्राभृत- ६	०७५	०४८	प्राभृतप्राभृत- ६	२४५	१०७	प्राभृतं- १३	४८०
०२९	प्राभृतप्राभृत- ७	०८४	०५०	प्राभृतप्राभृत- ७	२६९	११०	प्राभृतं- १४	५०२
०३०	प्राभृतप्राभृत- ८	०८६	०५१	प्राभृतप्राभृत- ८	२७१	१११	प्राभृतं- १५	५०२
०३१	प्राभृतं- ०२	१०२	०५२	प्राभृतप्राभृत- ९	२७१	११५	प्राभृतं- १६	५२४
०३१	प्राभृतप्राभृत- १	१०२	०५३	प्राभृतप्राभृत- १०	२७५	११६	प्राभृतं- १७	५२६
०३२	प्राभृतप्राभृत- २	१०९	०५४	प्राभृतप्राभृत- ११	२८६	११७	प्राभृतं- १८	५३२
०३३	प्राभृतप्राभृत- ३	११३	०५६	प्राभृतप्राभृत- १२	३०३	१२९	प्राभृतं- १९	५४८
०३४	प्राभृतं- ०३	१३८	०५७	प्राभृतप्राभृत- १३	३०५	१९४	प्राभृतं- २०	५८३
०३५	प्राभृतं- ०४	१४६	०६१	प्राभृतप्राभृत- १४	३०७	२०८	उपसंहार-गाथा	६०४
०३६	प्राभृतं- ०५	१६५	०६८	प्राभृतप्राभृत- १५	३०८	२१२	सूत्रदाने पात्रता	६०४
०३७	प्राभृतं- ०६	१७०	०६९	प्राभृतप्राभृत- १६	३१२	२१३	अंतिम मंगल गाथा:	६०७

['चन्द्रप्रज्ञप्ति' - मूलं एवं वृत्तिः] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

प्रवर्तमान काळमें सूर्यप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति आगम बहुलतया एक सामान ही प्राप्त होते है. नंदीसूत्र एवं पक्खिसूत्रमें ये दोनों आगम अलग-अलग ही गिनवाए है, ये दोनों आगमो को उत्तराध्ययन सूत्र की वृत्तिमे अलग-अलग अंगसूत्रो के उपांग बताये है, फिरभी कौनसे काल में ये दोनों आगम एक सामान जैसे हो गए, इसका मुझे पता नही है| मैंने तो L. D.Institute of indology में से 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' की मलयगिरीजी रचिता वृत्ति की हस्तप्रतमें से इस आगम का संकलन किया है, फिर इसकी तुलना 'सूर्यप्रज्ञप्ति' से की, तब मुझे पता चला की 'चन्पप्रज्ञप्ति'में मलयगिरिजीने आरम्भमें चार गाथा लिखी है जो 'सूर्यप्रज्ञप्ति' की वृत्तिमें नहीं देखी, जबकी सूर्यप्रज्ञप्ति में प्रशस्तिमें एक ऐसी गाथा है, जो चंद्रप्रज्ञप्ति सूत्रमे नहीं है | इसके अलावा प्रत्येक प्राभृत, प्रतिपत्ति आदि विषयवस्तु दोनों आगमो मे सामान ही है, हा, दोनों में किंचित पाठांतर मिले थे, हमने इसको इस संकलनमें स्थान दे दिया है |

[१] "सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्रम्" के नामसे सन १९ १९ (विक्रम संवत १९ ७५) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब | [२] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" सूत्र की हस्तप्रत २२ x ९ से.मि. थी, जो 'मुनि माणेक की प्रेरणा से संवत १८५६ में कार्तिक वद-७ को 'बोरसद' में पटेल नाथाभाई सनाभाई नामक लहिया ने पूर्ण की थी.

✤ हमारा ये प्रयास क्यों? ✤ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो का प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे परिवर्तित गाथा एवं पातः के अलावा पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर प्राभृत, प्राभृतप्राभृत और मूलसूत्र के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा प्राभृत, प्राभृतप्राभृत एवं मूलसूत्र चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है | हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है, जिसमे प्रत्येक प्राभृत, प्राभृतप्राभृत और मूल लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है, जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते विषय तक आसानी से पहुँच शकता है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-२२ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

प्रत सूत्रांक [-] + ||१||

दीप अनुक्रम [१]

[प्राभृत-१]

अर्हम् | श्री वर्षमानाय नम: ||मुक्ताफ़लमिव करत कलितं, विश्वे समस्तमपि सततं योवेति, विगतकर्म्मसंग, यति नाथो जिनो वीर ||१|| सर्वश्रुत-पारगता: प्रतिहत नि:शेष कुपथ संताना:, जगदेवतिलकभूता:, जयंति गणधारिण: ||२|| विलसउ मनसिस दामे जिनवाणि परम कल्पलतिकेव, कल्पित सकल नरामर, शिवसुखफ़लदानतर्ललिता ||३|| चन्द्रप्रज्ञप्तिमहं गुरूपदेशानुसारत: किञ्चित् विवृणोमि यथाशक्ति स्पष्टं स्वपरोपकाराय ||४|| [तत्राविघ्नेनेष्ठप्रसिद्ध्यर्थमादाविष्ट देवता स्तवमाह]

[प्राभृत-१- प्राभृतप्राभृतं-१]

[नमो अरिहंताणं]

जयति नवनलिन कुवलय वियसियसयवत्तपत्तलदलच्छो, वीरो गयंदमयगलसलिलयगयविक्कमो मयवं ||१||

इतस्तवो द्विधा | गुणोत्किर्तनरूप: प्रणामरूपश्च, तत्र जयति रागादि शत्रूनभिभवति तेषामग्रे एव निर्मूलकार्षकषितच्चात् तथापि तत्फ़लसिद्ध्द्यच्च लक्षणामद्ध्याप्यविच्युतमवतिष्ठति इति फ़ले हेतूपचारा जयति इति तं यदि वा संप्रत्यपि “भगवनु-भक्त्यानुध्यायमानोध्यात्राणमभिभवति रागादि क्लेशान् भत्तइ जिनवराणं खिध्येति पुव्वसंचिया कम्मा इति | वचनात् ततो क्षयति इति फ़लम् अथवा क्षयति सर्वानपि सुरासुरप्रभृतीन् प्राणिन: स्वगुणैरतिशायी सप्रेथावतामवश्यं प्रणामार्हो गुणैरधिकत्वात् ततो जयति किमुक्तं भवति तं प्रतिप्रणतोस्मि इति यतेन प्रणामरूपस्तव: सामर्थ्यगम्यो भावित: कोसावित्याह”| वीर:शूरवीर विक्रान्तो वीरयतिस्म कषायादि शत्रून् प्रति विक्रामति स्मेति वीर: | इयं च वीर इति नाम न यादृच्छिकं किन्तु यथावस्थितम् अनन्य साधारणं परिषहोपसर्गादि विषयं

प्रत सूत्रांक [१] + ||१||

दीप अनुक्रम [१]

तिर्यञ्चमपि च सुरासुरकृतं, अतो वीर इति नाम्नाश्चपायापगम अतिशयोध्वन्यते अथवा “ईर गतिप्रेरणयोः” विशेषेण अपुनर्भाव स्वरूपेण ईरयति-प्रेरयति आत्मनः सकाशाच्चावयति याति शिवमिति वीरः | अत्राप्यपायागमातिशय प्रतिपत्ति किं विशिष्टं इति आह- नवनलिन इत्यादि | प्राकृते पूर्वनिपातो विशेषणनाम तत्र इति | पत्तल वियसिय शब्दश्च नलिनादि शब्दानां पूर्वं द्रष्टव्यः, पत्तलमिति पत्र समृद्धं, पत्ततमिश्चं तिरकं पत्तलं इति वचनात् कत्वं प्रत्यग्रं | विकसितं व्याकोशीभूतम् तं च ईशच्चेतंविदु, पद्मिषभीलमथो उत्पलं ईषद् क्तं तु नलिनं इत्यादि पद्मं, कुवलयं नीलोत्पलं शतपत्रं पत्र शतं संख्योपेतं पद्ममेव, तेषां दलं पत्रं तद्वत् दीर्घे मनोहारिणी वाऽक्षिणी यस्य स तथा पुनः कथंभूत इत्याह- गजेन्द्र मदकलसलिनगतविक्रमः - अत्रापि मदकल शब्द स्पष्ट विशेषणभूतस्य विषेष्यात्परः निपातः प्राकृतत्वात् मदकलो मदमभिगृह्णानस्तरुणो गजो, गजानामिन्द्र गजेन्द्रः शेष गजेभ्यो गुणैरधिकतरत्वात् मदकलश्चासौ गजेन्द्रश्च मदकलगजेन्द्रस्तस्येव ललितो मनोज्ञ लीलया सहितो गतरूपो विक्रमो यस्य स तथा कथंभूत इत्याह- भगवान् भगः समग्रैश्वर्यादिरूपः उक्तं च ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्यरासः श्रियः, धर्मस्याथ प्रयत्न स्पर्षुस्यां भग इतिंगता भगोऽस्यास्तीति भगवान् | अनेन ज्ञानातिशयोवागतिशयः पूजातिशयोश्चोक्तस्तत्रैश्वर्यवाचित्व विवक्षायां पूजातिशयः प्रयत्नवाचित्वविवक्षायां वागतिशयश्च प्रवर्तते न च ज्ञानातिशयमन्तरेण तथारूपो वागतिशयः पूजातिशयश्च वर्तते | आभ्यां ज्ञानातिशयोप्याक्षिप्यते एते च ज्ञानातिशयादयश्चत्वारोप्यतिशया देह सौगन्ध्यादिनामतिशयानाम् उपलक्षणंतानंतरेणैतेषाम् संभवात्, ततः चतुस्त्रिंशदतिशयोवेतो भगवान् वीरो | जयतीतीतत्फ़लम् द्रष्टव्यं, तदेवं वर्तमाने तीर्थाधिपते वर्द्धमानस्वामिनो नमस्काराभिधाय संप्रति सामान्यतः पञ्चानामपि परमेष्ठिनां नमस्कारमाह-

नमिऊण असुरसुर गरुल भूयगपरिवंदिए गयकिलेशे, अरिहे सिद्धायरिए उवज्झाए सव्वसाहूय ||२||

असुर-सुर-गरुड-भूयग वन्दितान्–अर्हति त्रिदशकृतां समवसरणादि रूपां पूजामित्यर्हतस्तिर्थकृतस्तान् तथा सिद्धान् अपगत सकल कर्म्म-मलात्, आचार्यान् पञ्चविध ज्ञानाद्याचार स्वयम् परिपालयन् परोपदेशदान सतत प्रवृतान् उपाध्याय यथाशक्ति द्वादशांग स्वयम् अध्ययनपराध्यापन निजसुमानसान् साधून् ज्ञानादिक्रियाभि: मुक्तिसाधन प्रवणान् नत्वा नमस्कृत्या किमित्याह-

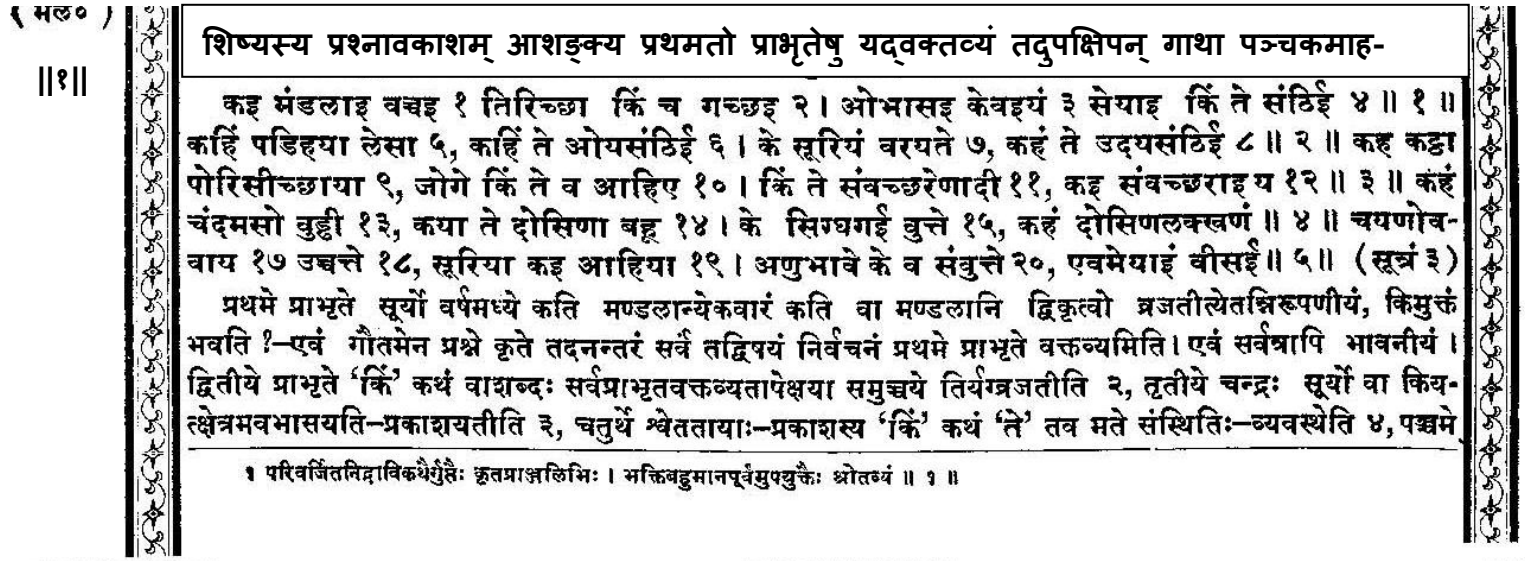
फ़ुडवियड पायडत्थं वोच्छं पुव्वसुयसारणी-संदं, सुहुमगणि नोवदिट्ठं जोइसगणराय पन्नतिं ||३||

स्फ़ुटयथावस्थितौ निर्मलबोधविषयो, विकटो-विस्तीर्ण:सूक्ष्मतर बुद्धिगम्य इत्यर्तः, प्रकट साक्षादषरेषूपरिस्फ़ुरन्निवार्थो यस्यां सा तथा तां पूर्वश्रुतसार निस्पंदभूतानामेतेन पूर्व्वेभ्या इयं चन्द्रप्रज्ञप्तिउद्धुतेत्यावेदितं | इयं च न पूर्वाणि स्वयमधीत्पतत उद्धुता किं गुरूप-देशान्सारतस्तत आह सूक्ष्मगएकपदिष्ठां सूक्ष्म:, सूक्ष्ममिति परिकलितो गणि आचार्यो, गणोऽस्यास्ति इति व्यक्तेस्तेनोपदिष्टां यथा पूर्वाण गुरवेण व्याख्यातानि तथा तेभ्योधुतेति भाव: ज्योतिषि ग्रह नक्षत्र तारकाणि तेषां गण: समुहस्तस्यरांक्षाधिपतिध्योति: गणराजश्चेन्द्रस्तस्य प्रज्ञप्तिं | प्रज्ञप्ते-प्ररूप्यते अनयेति प्रज्ञप्तिर्यथावस्थित तत् स्वरूप प्रतिपादिका वचनसंततिस्तां वक्ष्ये प्रतिपाद-यिष्यामि तत्र पूर्वेषु चन्द्रादि वक्तव्यता |

नामेण इन्दभूतीति गोतमो वंदिऊण तिविहेण, पुच्छइ जिनवरवसहं जोइसगणराय पन्नतिं ||४||

प्रथमतो गौतमप्रश्नोपेक्षेवमावेदयति यो नाम्ना जगति इन्द्रभूतिरिति प्रसिद्धो, गौतमो गौतमगोत्र: स भगवंतं जिनवर वृषभं वर्द्धमान स्वामिनमस्य स्व समीपे तत्प्रश्नसंभवात् त्रिविधेन च मनसा वाचा कायेन च वंदित्वा-नमस्कृत्य, ज्योतिषराजस्य-चन्द्रमस उपलक्षणमेतत् सूर्यादेश्च प्रज्ञप्तेप्ररूप्यते इति प्रज्ञप्तिश्चन्द्रादीनां यथावस्थिता स्वरूपस्थितस्ताम् संपृच्छतीति |

प्रत सूत्रांक [३] + ॥१-५॥ दीप अनुक्रम [५-९]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] “चन्द्रप्रज्ञप्ति” मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति



(मल०)

॥१॥

शिष्यस्य प्रश्नावकाशम् आशङ्क्य प्रथमतो प्राभृतेषु यद्वक्तव्यं तदुपक्षिपन् गाथा पञ्चकमाह-

कइ मंडलाइ वच्चइ १ तिरिच्छा किं च गच्छइ २। ओभासइ केवइयं ३ सेयाइ किं ते संठिई ४ ॥ १ ॥ कहिं पडिहया लेसा ५, कहिं ते ओयसंठिई ६। के सूरियं वरयते ७, कहं ते उदयसंठिई ८ ॥ २ ॥ कह कट्ठा पोरिसीच्छाया ९, जोगे किं ते व आहिए १०। किं ते संवच्छरेणादी ११, कइ संवच्छराइ य १२ ॥ ३ ॥ कहं चंदमसो वुड्ढी १३, कया ते दोसिणा बहू १४। के सिग्घगई वुत्ते १५, कहं दोसिणलक्खणं ॥ ४ ॥ चयणोववाय १७ उच्चत्ते १८, सूरिया कइ आहिया १९। अणुभावे के व संवुत्ते २०, एवमेयाइं वीसई॥ ५॥ (सूत्रं ३)

प्रथमे प्राभृते सूर्यो वर्षमध्ये कति मण्डलान्येकवारं कति वा मण्डलानि द्विकृत्वो व्रजतीत्येतन्निरूपणीयं, किमुक्तं भवति ?–एवं गौतमेन प्रश्ने कृते तदनन्तरं सर्वं तद्विषयं निर्वचनं प्रथमे प्राभृते वक्तव्यमिति। एवं सर्वत्रापि भावनीयं। द्वितीये प्राभृते ‘किं’ कथं वाशब्दः सर्वप्राभृतवक्तव्यतापेक्षया समुच्चये तिर्यग्व्रजतीति २, तृतीये चन्द्रः सूर्यो वा कियत्क्षेत्रमवभासयति–प्रकाशयतीति ३, चतुर्थे श्वेततायाः–प्रकाशस्य ‘किं’ कथं ‘ते’ तव मते संस्थितिः–व्यवस्थेति ४, पञ्चमे

॥१॥

१ परिवर्जितनिद्राविकथैर्गुप्तैः कृतप्राञ्जलिभिः। भक्तिबहुमानपूर्वमुपयुक्तैः श्रोतव्यं ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	२०-प्राभृतस्य नामानि एवं तस्य विषय-वर्णनं

कस्मिन् सूर्यस्य प्रतिहता लेश्येति ५, षष्ठे 'कथं' केन प्रकारेण किं सर्वकालमेकरूपावस्थायितया उतान्यथा ओजसः–प्रकाशस्य संस्थितिः–अवस्थानमिति ६, सप्तमे के पुद्गलाः सूर्यं वरयन्ति–सूर्यलेश्यासंसृष्टा भवन्तीति ७, अष्टमे 'कथं' केन प्रकारेण भगवन् ! 'ते', तव मतेन सूर्यस्योदयसंस्थितिः ८, नवमे कतिकाष्ठा–किंप्रमाणा पौरुषीच्छाया ९, दशमे योग इति वस्तु किं 'ते' त्वया भगवताऽऽख्यातमिति १०, एकादशे कस्ते–तव मतेन संवत्सराणामादिरिति ११, द्वादशे कति संवत्सरा इति १२, त्रयोदशे 'कथं' केन प्रकारेण चन्द्रमसो वृद्धिः–वृद्धिप्रतिभासः, उपलक्षणमेतत्तेन वृद्ध्यपवृद्धिप्रतिभास इत्यर्थः १३, चतुर्दशे 'कदा' कस्मिन् काले 'ते' तव मतेन चन्द्रमसो ज्योत्स्ना बहुः–प्रभूतेति, १४, पञ्चदशे कश्चन्द्रादीनां मध्ये शीघ्रगतिरुक्त इति १५, षोडशे किं ज्योत्स्नालक्षणमिति वक्तव्यं १६, सप्तदशे चन्द्रादीनां च्यवनमुपपातश्च स्वमतपरमतापेक्षया वक्तव्यः १७, अष्टादशे चन्द्रादीनां समतलाद्भूभागादूर्ध्वमुच्चत्वं–यावति प्रदेशे व्यवस्थितत्वं तत्स्वमतपरमतापेक्षया प्रतिपाद्यं १८, एकोनविंशतितमे कति सूर्या जम्बूद्वीपादावाख्याता इत्यभिधेयं १९, विंशतितमे कोऽनुभावश्चन्द्रादीनामिति २० । एवमनन्तरोक्तेन प्रकारेण एतानि अनन्तरोदितार्थाधिकारोपेतानि विंशतिः प्राभृतान्यस्यां सूर्यप्रज्ञप्तौ वक्तव्यानि, अथ प्राभृतमिति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, इह प्राभृतं नाम लोकप्रसिद्धं यदभीष्टाय देशकालोचितं दुर्लभं वस्तु परिणामसुन्दरमुपनीयते, प्रकर्षेणासमन्ताद् भ्रियते–पोष्यते चित्तमभीष्टस्य पुरुषस्याननेति प्राभृतमिति व्युत्पत्तेः, 'कृद्बहुल'मिति वचनाच्च करणे क्तप्रत्ययः, विवक्षिता अपि च ग्रन्थपद्धतयः परमदुर्लभाः परिणामसुन्दराश्चाभीष्टेभ्यो–विनयादिगुणकलितेभ्यः शिष्येभ्यो देशकालौचित्येनोपनीयन्ते, ततः प्राभृतानीव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

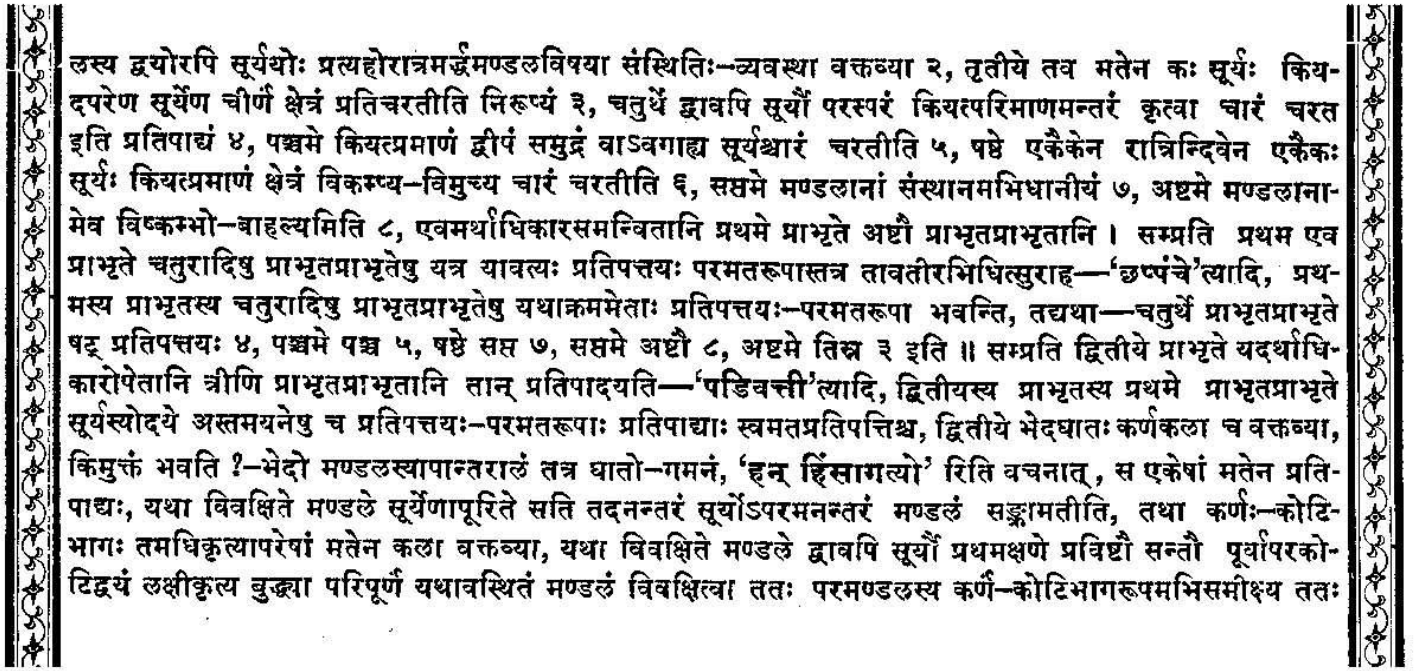
प्राभृतानि, प्राभृतेषु चान्तरगतानि प्राभृतप्राभृतानि, तदेवमुक्ता विंशतेरपि प्राभृतानामर्थाधिकाराः। सम्प्रति प्रथमे प्राभृते यान्यपान्तरालवर्त्तीन्यष्टौ प्राभृतप्राभृतानि तेषामर्थाधिकारान् उपदिदिक्षुराह—

वहोवही मुहुत्ताण १ मद्धमंडलसंठिई २। के ते चिन्नं परियरइ ३ अंतरं किं चरंति य ४ ॥ ६ ॥ उग्गाहइ केवइयं ५, केवतियं च विकंपइ ६। मंडलाण य संठाणे ७, विक्खंभो ८ अट्ठ पाहुडा ॥ ७ ॥ (सूत्रं ४) छप्पंच य सत्तेव य अट्ठ तिन्नि य हवंति पडिवत्ती। पढमस्स पाहुडस्स हवंति एयाउ पडिवत्ती ॥ ८ ॥ (सूत्रं ५) पडिवत्तीओ उदए, तह अत्थमणेसु य। भियवाए कण्णकला, मुहुत्ताण गतीति य ॥ ९ ॥ निक्खममाणे सिग्घगई पविसंते मंदगईइ य। चुलसीइसयं पुरिसाणं, तेसिं च पडिवत्तीओ ॥ १० ॥ उदयम्मि अट्ठ भणिया भेदग्घाए दुवे य पडिवत्ती। चत्तारि मुहुत्तगईए हुंति तइयंमि पडिवत्ती ॥ ११ ॥ (सूत्रं ६) आवलिय १ मुहुत्तग्गे २, एवंभागा य ३ जोगस्सा ४। कुलाइं ५ पुन्नमासी ६ य, सन्निवाए ७ य संठिई ८ ॥ १२ ॥ तार(य)ग्गं च ९ नेता य १०, चंदमग्गत्ति ११ यावरे। देवताण य अज्झयणे १२, मुहुत्ताणं नामया इय १३ ॥ १३ ॥ दिवसा राइ वुत्ता य १४, तिहि १५ गोत्ता १६ भोयणाणि १७ य। आइच्चवार १८ मासा १९ य, पंच संवच्छरा इय २० ॥ १४ ॥ जोइसस्स य दाराइं २१, नक्खत्तविजए विय २२। दसमे पाहुडे एए, बावीसं पाहुडपाहुडा ॥ १५ ॥ (सूत्रं ७)

प्रथमस्य प्राभृतस्य सत्के प्रथमे प्राभृतप्राभृते मुहूर्त्तानां दिवसरात्रिगतानां वृद्ध्यपवृद्धी वक्तव्ये १, द्वितीयेऽर्द्धमण्ड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राभृतप्राभृतस्य विषयाधिकार: वर्ण्यते



लस्य द्वयोरपि सूर्यथोः प्रत्यहोरात्रमर्द्धमण्डलविषया संस्थितिः–व्यवस्था वक्तव्या २, तृतीये तव मतेन कः सूर्यः कियदपरेण सूर्येण चीर्णं क्षेत्रं प्रतिचरतीति निरूप्यं ३, चतुर्थे द्वावपि सूर्यौ परस्परं कियत्परिमाणमन्तरं कृत्वा चारं चरत इति प्रतिपाद्यं ४, पञ्चमे कियत्प्रमाणं द्वीपं समुद्रं वाऽवगाह्य सूर्यश्चारं चरतीति ५, षष्ठे एकैकेन रात्रिन्दिवेन एकैकः सूर्यः कियत्प्रमाणं क्षेत्रं विकम्प्य–विमुच्य चारं चरतीति ६, सप्तमे मण्डलानां संस्थानमभिधानीयं ७, अष्टमे मण्डलानामेव विष्कम्भो–बाहल्यमिति ८, एवमर्थाधिकारसमन्वितानि प्रथमे प्राभृते अष्टौ प्राभृतप्राभृतानि । सम्प्रति प्रथम एव प्राभृते चतुरादिषु प्राभृतप्राभृतेषु यत्र यावत्यः प्रतिपत्तयः परमतरूपास्तत्र तावतीरभिधित्सुराह—'छप्पंचे'त्यादि, प्रथमस्य प्राभृतस्य चतुरादिषु प्राभृतप्राभृतेषु यथाक्रममेताः प्रतिपत्तयः–परमतरूपा भवन्ति, तद्यथा—चतुर्थे प्राभृतप्राभृते षट् प्रतिपत्तयः ४, पञ्चमे पञ्च ५, षष्ठे सप्त ७, सप्तमे अष्टौ ८, अष्टमे तिस्र ३ इति ॥ सम्प्रति द्वितीये प्राभृते यदर्थाधिकारोपेतानि त्रीणि प्राभृतप्राभृतानि तान् प्रतिपादयति—'पडिवत्ती'त्यादि, द्वितीयस्य प्राभृतस्य प्रथमे प्राभृतप्राभृते सूर्यस्योदये अस्तमयनेषु च प्रतिपत्तयः–परमतरूपाः प्रतिपाद्याः स्वमतप्रतिपत्तिश्च, द्वितीये भेदघातः कर्णकला च वक्तव्या, किमुक्तं भवति ?–भेदो मण्डलस्यापान्तरालं तत्र घातो–गमनं, 'हन् हिंसागत्यो' रिति वचनात्, स एकेषां मतेन प्रतिपाद्यः, यथा विवक्षिते मण्डले सूर्येणापूरिते सति तदनन्तरं सूर्योऽपरमनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामतीति, तथा कर्णः–कोटिभागः तमधिकृत्यापरेषां मतेन कला वक्तव्या, यथा विवक्षिते मण्डले द्वावपि सूर्यौ प्रथमक्षणे प्रविष्टौ सन्तौ पूर्वापरकोटिद्वयं लक्षीकृत्य बुद्ध्या परिपूर्णं यथावस्थितं मण्डलं विवक्षित्वा ततः परमण्डलस्य कर्ण–कोटिभागरूपमभिसमीक्ष्य ततः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति

कलया २–मात्रया २ इत्यर्थः अपरमण्डलाभिमुखमभिसर्पन्तौ चारं चरत इति । तृतीये प्राभृतप्राभृते प्रतिमण्डलं मुहूर्त्तेषु गतिः–गतिपरिमाणमभिधातव्यं, तत्र निष्क्रामति प्रविशति वा सूर्ये यादृशी गतिर्भवति तादृशीमभिधित्सुराह— 'निक्खमे'त्यादि निष्क्रामन्–सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्बहिर्निर्गच्छन् सूर्यो यथोत्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् शीघ्रगतिः शीघ्रतरगतिर्भवति, प्रविशन्–सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरमागच्छन् प्रतिमण्डलं मन्दगतिः मन्दमन्दगतिः, तेषां च मण्डलानां चतुरशीतं—चतुरशीत्यधिकं शतं सूर्यस्य भवति, तेषां मण्डलानां च विषये प्रतिमुहूर्त्तं सूर्यस्य गतिपरिमाणचिन्तया पुरुषाणां प्रतिपत्तयो नाम–मतान्तररूपा भवन्ति । सम्प्रति कस्मिन् प्राभृतप्राभृते कति प्रतिपत्तय इत्येतत्प्ररूपयति—द्वितीये प्राभृते त्रिष्वपि प्राभृतप्राभृतेषु यथाक्रममेवंसङ्ख्याः प्रतिपत्तयो भवन्ति, तद्यथा—प्रथमे प्राभृतप्राभृते उदये–सूर्योदयवक्तव्यतोपलक्षिते अष्टौ भणितास्तीर्थकरगणधरैः प्रतिपत्तयो, द्वितीये प्राभृतप्राभृते भेदघाते–भेदघातरूपे परमतवक्तव्यतोपलक्षिते द्वे एव प्रतिपत्ती भवतः, तृतीये प्राभृतप्राभृते मुहूर्त्तगतौ–मुहूर्त्तगतिवक्तव्यतोपलक्षिते चतस्रः प्रतिपत्तयो भवन्ति, 'चत्तारी'ति च सूत्रे नपुंसकत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, प्राकृते हि लिङ्गं व्यभिचारि, यदाह पाणिनिः स्वप्राकृतलक्षणे—'लिङ्गं व्यभिचार्यपी'ति । सम्प्रति दशमप्राभृते यान्यपान्तरालवर्त्तीनि द्वाविंशतिसङ्ख्यानि प्राभृतप्राभृतानि तेषामर्थाधिकारमाह—दशमे प्राभृते एतानि–सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात् एतदर्थाधिकारोपेतानि द्वाविंशतिः प्राभृतप्राभृतानि भवन्ति, तद्यथा—प्रथमे प्राभृतप्राभृते नक्षत्राणामावलिकाक्रमो वक्तव्यो, यथा अभिजिदादीनि नक्षत्राणि भवन्तीति १, द्वितीये नक्षत्रविषयं मुहूर्त्ताग्रं–मुहूर्त्तपरिमाणं वक्तव्यं २, तृतीये 'एवं भागा'इति 'पूर्वभागा'इति पूर्वपश्चि-

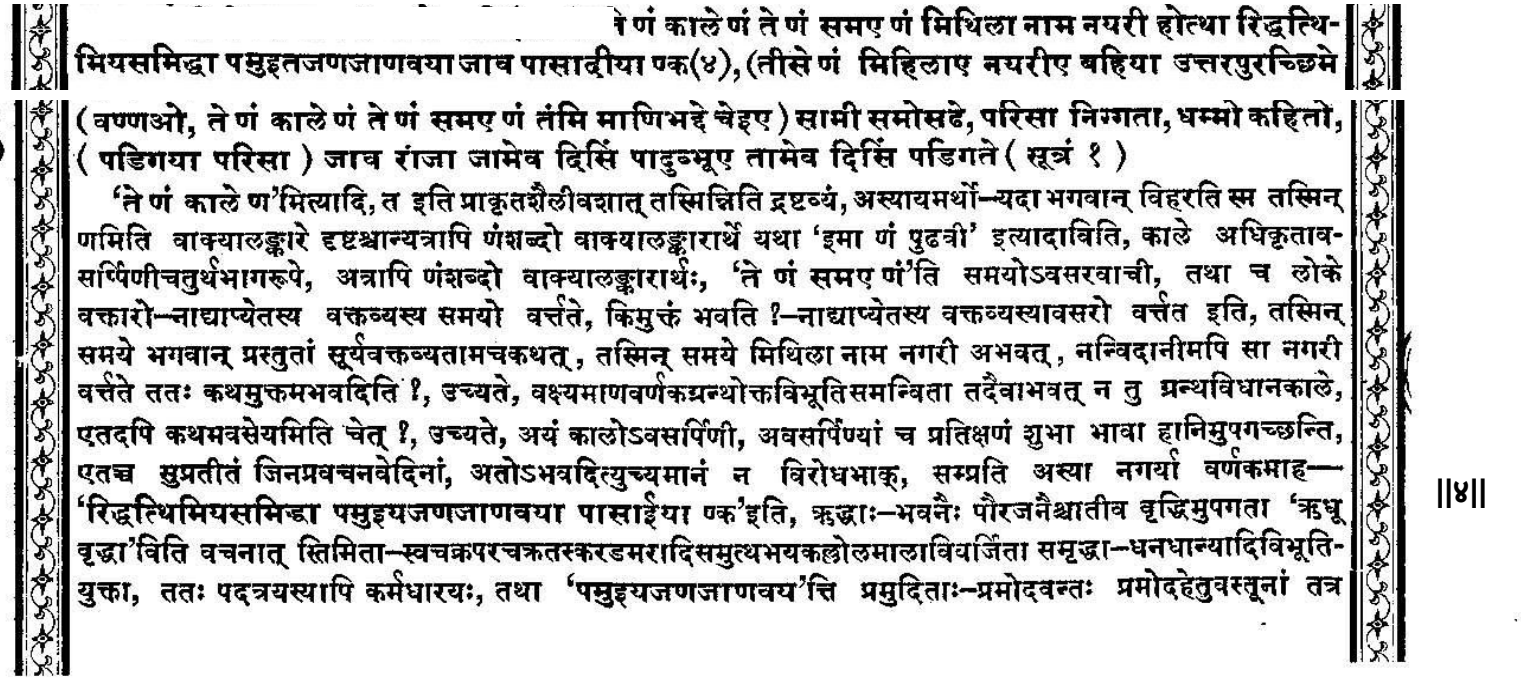
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मादिप्रकारेण भागा वक्तव्याः ३, चतुर्थे 'योगस्स'त्ति योगस्यादिर्वक्तव्यः, तथा च वक्ष्यति—'ता कहं ते जोगस्स आई आहियत्ति वइज्जा'इति ४, पञ्चमे कुलानि चशब्दादुपकुलानि कुलोपकुलानि च वक्तव्यानि ५, षष्ठे पौर्णमासीति पौर्णमासीवक्तव्यता अभिधेया ६, सप्तमे 'सन्निपात'इति अमावास्यापौर्णमासीसन्निपातो वक्तव्यः ७, अष्टमे नक्षत्राणां संस्थितिः–संस्थानं वक्तव्यं ८, नवमे नक्षत्राणां ताराग्रं–तारापरिमाणमभिधेयं, दशमे नेता वक्तव्यो, यथा कति नक्षत्राणि स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमाप्त्या कं मासं नयन्तीति १०, अपरस्मिन्नेकादशे प्राभृतप्राभृते चन्द्रमार्गाः–चन्द्रमण्डलानि नक्षत्राद्यधिकृत्य वक्तव्यानि ११, द्वादशे नक्षत्राधिपतीनां देवतानामध्ययनानि–अधीयते–ज्ञायते एभिरित्यध्ययनानि–नामानि वक्तव्यानि १२, त्रयोदशे मुहूर्त्तानां नामकानि वक्तव्यानि १३, चतुर्दशे दिवसा रात्रयश्चोक्ताः १४, पञ्चदशे तिथयः १५, षोडशे गोत्राणि नक्षत्राणां १६ सप्तदशे नक्षत्राणां भोजनानि वाच्यानि, यथेदं नक्षत्रमेवंरूपे भोजने कृते शुभाय भवतीति १७, अष्टादशे आदित्यानामुपलक्षणमेतच्चन्द्रमसां च चारा वक्तव्याः १८, एकोनविंशतितमे मासाः १९, विंशतितमे संवत्सराः २०, एकविंशतितमे ज्योतिषां–नक्षत्रचक्रस्य द्वाराणि वक्तव्यानि, यथाऽमूनि नक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि अमूनि च पश्चिमद्वाराणीत्यादि २१, द्वाविंशतितमे नक्षत्राणां विचयः–चन्द्रसूर्ययोगादिविषयो निर्णयो वक्तव्य इति ॥ तदेवमुक्ता प्राभृतप्राभृतसङ्ख्या तेषामर्थाधिकाराश्च, सम्प्रति यदुक्तं ' प्रथमस्य प्राभृतस्य प्रथमे प्राभृतप्राभृते मुहूर्त्तानां वृद्ध्यपवृद्धी वक्तव्ये ' इति तद्विवक्षुर्यथा तद्विषये गौतमनामा प्रथमगणधरो भगवन्तं पृच्छति स्म यथा च भगवान् तत्त्वमचकथत् तथोपदर्शयन्नाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२०]



ते णं काले णं ते णं समए णं मिथिला नाम नयरी होत्था रिद्धत्थि-
मियसमिद्धा पमुइतजणजाणवया जाव पासादीया पक(४), (तीसे णं मिहिलाए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे

स्तिवृत्तिः (मल०) ॥४॥

(वण्णओ, ते णं काले णं ते णं समए णं तंमि माणिभद्दे चेइए) स्वामी समोसढे, परिसा निग्गता, धम्मो कहितो, (पडिगया परिसा) जाव रांजा जामेव दिसिं पादुब्भूए तामेव दिसिं पडिगते (सूत्रं १)

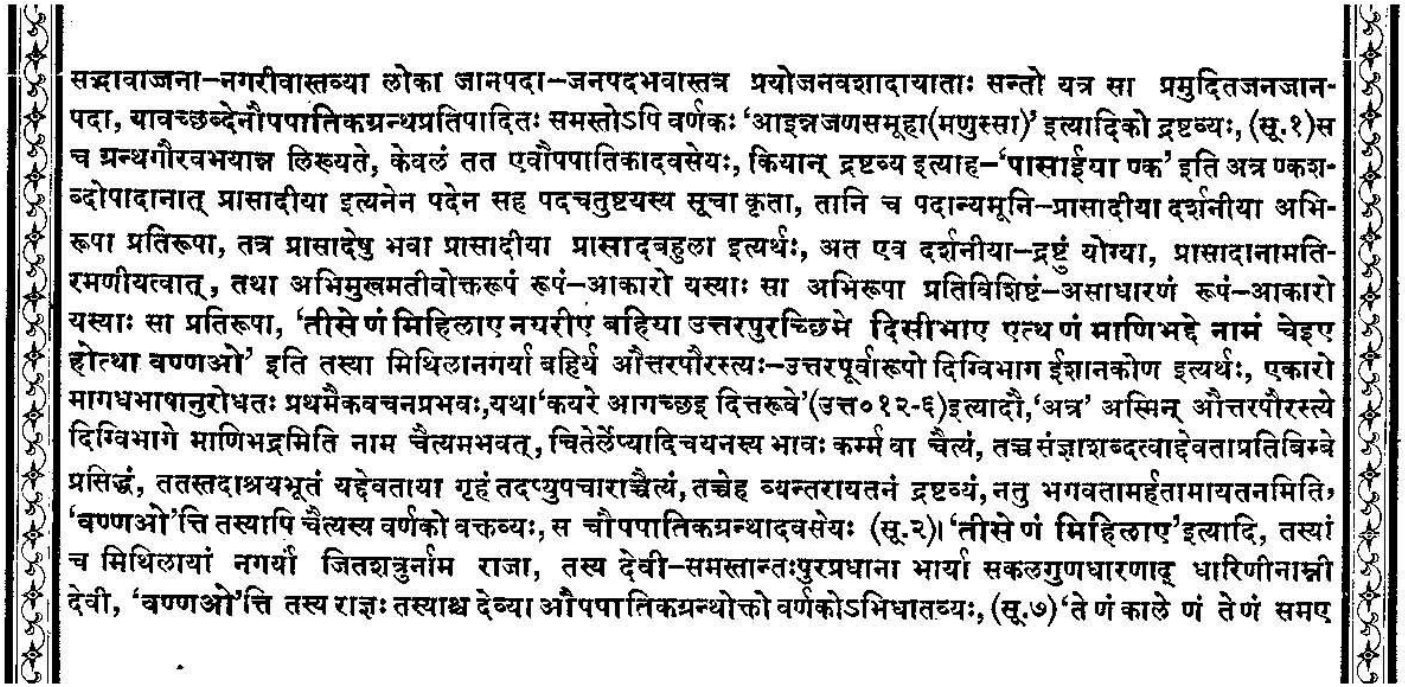
'ते णं काले ण'मित्यादि, त इति प्राकृतशैलीवशात् तस्मिन्निति द्रष्टव्यं, अस्यायमर्थो–यदा भगवान् विहरति स्म तस्मिन् णमिति वाक्यालङ्कारे दृष्टश्चान्यत्रापि णंशब्दो वाक्यालङ्कारार्थे यथा 'इमा णं पुढवी' इत्यादाविति, काले अधिकृतावसर्पिणीचतुर्थभागरूपे, अत्रापि णंशब्दो वाक्यालङ्कारार्थः, 'ते णं समए णं'ति समयोऽवसरवाची, तथा च लोके वक्तारो–नाद्याप्येतस्य वक्तव्यस्य समयो वर्त्तते, किमुक्तं भवति ?–नाद्याप्येतस्य वक्तव्यस्यावसरो वर्त्तत इति, तस्मिन् समये भगवान् प्रस्तुतां सूर्यवक्तव्यतामचकथत्, तस्मिन् समये मिथिला नाम नगरी अभवत्, नन्विदानीमपि सा नगरी वर्त्तते ततः कथमुक्तमभवदिति ?, उच्यते, वक्ष्यमाणवर्णकग्रन्थोक्तविभूतिसमन्विता तदैवाभवत् न तु ग्रन्थविधानकाले, एतदपि कथमवसेयमिति चेत् ?, उच्यते, अयं कालोऽवसर्पिणी, अवसर्पिण्यां च प्रतिक्षणं शुभा भावा हानिमुपगच्छन्ति, एतच्च सुप्रतीतं जिनप्रवचनवेदिनां, अतोऽभवदित्युच्यमानं न विरोधभाक्, सम्प्रति अस्या नगर्या वर्णकमाह— 'रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइयजणजाणवया पासाईया पक'इति, ऋद्धाः–भवनैः पौरजनैश्चातीव वृद्धिमुपगता 'ऋधू वृद्धा'विति वचनात् स्तिमिता–स्वचक्रपरचक्रतस्करडमरादिसमुत्थभयकल्लोलमालाविवर्जिता समृद्धा–धनधान्यादिविभूतियुक्ता, ततः पदत्रयस्यापि कर्मधारयः, तथा 'पमुइयजणजाणवय'त्ति प्रमुदिताः–प्रमोदवन्तः प्रमोदहेतुवस्तूनां तत्र

॥४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	सूत्रस्य प्रस्तावना, नगरी-वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१] दीप अनुक्रम [२०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति



सद्भावाज्ञना–नगरीवास्तव्या लोका जानपदा–जनपदभवास्तत्र प्रयोजनवशादायाताः सन्तो यत्र सा प्रमुदितजनजानपदा, यावच्छब्देनौपपातिकग्रन्थप्रतिपादितः समस्तोऽपि वर्णकः 'आइन्नजणसमूहा(मणुस्सा)' इत्यादिको द्रष्टव्यः, (सू.१)स च ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते, केवलं तत एवौपपातिकादवसेयः, कियान् द्रष्टव्य इत्याह–'पासाईया पक' इति अत्र एकशब्दोपादानात् प्रासादीया इत्यनेन पदेन सह पदचतुष्टयस्य सूचा कृता, तानि च पदान्यमूनि–प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा, तत्र प्रासादेषु भवा प्रासादीया प्रासादबहुला इत्यर्थः, अत एव दर्शनीया–द्रष्टुं योग्या, प्रासादानामतिरमणीयत्वात्, तथा अभिमुखमतीवोक्तरूपं रूपं–आकारो यस्याः सा अभिरूपा प्रतिविशिष्टं–असाधारणं रूपं–आकारो यस्याः सा प्रतिरूपा, 'तीसे णं मिहिलाए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं माणिभद्दे नामं चेइए होत्था वण्णओ' इति तस्या मिथिलानगर्या बहिर्य औत्तरपौरस्त्यः–उत्तरपूर्वारूपो दिग्विभाग ईशानकोण इत्यर्थः, एकारो मागधभाषानुरोधतः प्रथमैकवचनप्रभवः,यथा'कयरे आगच्छइ दित्तरूवे'(उत्त०१२-६)इत्यादौ,'अत्र' अस्मिन् औत्तरपौरस्त्ये दिग्विभागे माणिभद्रमिति नाम चैत्यमभवत्, चितेर्लेप्यादिचयनस्य भावः कर्म्म वा चैत्यं, तच्च संज्ञाशब्दत्वादेवताप्रतिबिम्बे प्रसिद्धं, ततस्तदाश्रयभूतं यदेवताया गृहं तदप्युपचाराच्चैत्यं, तच्चेह व्यन्तरायतनं द्रष्टव्यं,नतु भगवतामर्हतामायतनमिति, 'वण्णओ'त्ति तस्यापि चैत्यस्य वर्णको वक्तव्यः, स चौपपातिकग्रन्थादवसेयः (सू.२)। 'तीसे णं मिहिलाए'इत्यादि, तस्यां च मिथिलायां नगर्यां जितशत्रुर्नाम राजा, तस्य देवी–समस्तान्तःपुरप्रधाना भार्या सकलगुणधारणाद् धारिणीनाम्नी देवी, 'वण्णओ'त्ति तस्य राज्ञः तस्याश्च देव्या औपपातिकग्रन्थोक्तो वर्णकोऽभिधातव्यः, (सू.७)'ते णं काले णं तेणं समए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	सूत्रस्य प्रस्तावना, माणिभद्रचैत्यस्य वर्णनं

णं तंमि माणिभद्दे चेइए सामी समोसढे, परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ, पडिगया परिसा' तस्मिन् काले तस्मिन् समये तस्मिन् माणिभद्रे चैत्ये 'सामी समोसढे'त्ति स्वामी जगद्गुरुर्भगवान् श्रीमहावीरो अर्हन् सर्वज्ञः सर्वदर्शी सप्तहस्तप्रमाणशरीरोच्छ्रयः समचतुरस्रसंस्थानो वज्रर्षभनाराचसंहननः कज्जलप्रतिमकालिमोपेतस्निग्धकुञ्चितप्रदक्षिणावर्त्तमूर्धजः उत्तप्ततपनीयाभिरामकेशान्तकेशभूमिरातपत्राकारोत्तमाङ्गसन्निवेशः परिपूर्णशशाङ्कमण्डलादप्यधिकतरवदनशोभः पद्मोत्पलसुरभिगन्धनिःश्वासो वदनत्रिभागप्रमाणकम्बूपमचारुकन्धरः सिंहशार्दूलवत्परिपूर्णविपुलस्कन्धप्रदेशो महापुरकपाटपृथुलवक्षःस्थलाभोगो यथास्थितलक्षणोपेतः श्रीवृक्षपरिघोपमप्रलम्बबाहुयुगलो रविशशिचक्रसौवस्तिकादिप्रशस्तलक्षणोपेतपाणितलः सुजातपार्श्वो झषोदरः सूर्यकरस्पर्शसञ्जातविकोशपद्मोपमनाभिमण्डलः सिंहवत्संवर्त्तितकटीप्रदेशो निगूढजानुः कुरुविन्दवृत्तजङ्घायुगलः सुप्रतिष्ठितकूर्म्मचारुचरणतलप्रदेशः अनाश्रवो निर्म्ममः छिन्नश्रोता निरुपलेपोऽपगतप्रेमरागद्वेषश्चतुस्त्रिंशदतिशयोपेतो देवोपनीतेषु नवसु कनककमलेषु पादन्यासं कुर्वन्नाकाशगतेन धर्म्मचक्रेण आकाशगतेन छत्रेण आकाशगताभ्यां चामराभ्यामाकाशगतेनातिस्वच्छस्फटिकविशेषमयेन सपादपीठेन सिंहासनेन पुरतो देवैः प्रक्ष्यमाणेन २ धर्म्मध्वजेन चतुर्दशभिः श्रमणसहस्रैः षट्त्रिंशत्सङ्घैरार्यिकासहस्रैः परिवृतो यथास्वकल्पं सुखेन विहरन् यथारूपमवग्रहं गृहीत्वा संयमेन तपसा चाऽऽत्मानं भावयन् समवसृतः, समवसरणवर्णनं च भगवत औपपातिकग्रन्थादवसेयं (सू.१०यावत्३३) 'परिसा निग्गय'त्ति मिथिलाया नगर्या वास्तव्यो लोकः समस्तोऽपि भगवन्तमागतं श्रुत्वा भगवद्वन्दनार्थं स्वस्मादाश्रयाद्विनिर्गत इत्यर्थः, तन्निर्गमश्चैवम्–'तए णं मिहिलाए नयरीए सिंघाडगतियचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहेसु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य प्रस्तावना, भगवत् महावीरस्य वर्णनं

बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ एवं भासेइ एवं पन्नवेइ एवं परूवेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव सव्वन्नू सव्वदरिसी आगासगएणं छत्तेणं जाव सुहंसुहेणं विहरमाणे इह आगए इह समागए इह समोसढे इहेव मिहिलाए नयरीए बहिआ माणिभद्दे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता अरिहा जिणे केवली सम्मणगणपरिवुडे संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण अभिगमणवंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए ?, तं सेयं खलु एगस्सवि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेमो, एयं णो इहभवे परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ, तए णं मिहिलाए नयरीए बहवे उग्गा भोगा'इत्याद्यौपपातिकग्रन्थोक्तं(सू.२७) सर्वमवसेयं यावत्समस्ताऽपि राजप्रभृतिका पर्षत् पर्युपासीना तिष्ठति । 'धम्मो कहिओ'त्ति तस्याः पर्षदः पुरतो निःशेषजनभाषानुयायिन्या अर्द्धमागधभाषया धर्म्म उपदिष्टः, स चैवम्–'अत्थि लोए अत्थि जीवा अत्थि अजीवा' इत्यादि, तथा–"जह जीवा बज्झंति मुच्चंती जह य संकिलिस्संति । जह दुक्खाणं अंतं करिंति केई अपडिबद्धा ॥ १ ॥ अट्टनियट्टियचित्ता जह जीवा सागरं भवमुविंति । जह य परिहीणकम्मा सिद्धा सिद्धालयमुविंति ॥ २ ॥ 'तहा आइक्खइ'त्ति

१ यथा जीवा बध्यन्ते मुच्यन्ते यथा च संक्लिश्यन्ते । यथा दुःखानामन्तं कुर्वन्ति केचिदप्रतिबद्धाः ॥ १ ॥ आर्त्तनियन्त्रितचित्ता यथा जीवाः सागरं भवं (दुःखसागरं) उपयान्ति । यथा च परिहीणकर्माणः सिद्धाः सिद्धालयमुपयान्ति ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२०]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥६॥

'जाव राजा जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए' इति, अत्र यावच्छब्दादिदमौपपातिकग्रन्थोक्तं द्रष्टव्यं–'तए णं सा महइमहालिया परिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–सुयक्खाए णं भंते ! निग्गंथे पावयणे, नत्थि य केइ अन्ने समणे वा माहणे वा एरिसं धम्ममाइक्खित्तए, एवं वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया, तए णं से जियसत्तू राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे जाव हयहियए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छइ पुच्छित्ता अट्ठाइं परियाएइ परियाइत्ता उट्ठाए उट्ठाइ, उट्ठाए उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–सुयक्खाए णं भंते ! निग्गंथे पावयणे जाव एरिसं धम्ममाइक्खित्तए, एवं वइत्ता हत्थिं दुरूहइ दुरूहित्ता समणस्स भगवतो महावीरस्स अंतियाओ माणिभद्दाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए' (सू.३५-३६-३७) इति, इदं च सकलमपि सुगमं, नवरं यामेव दिशमवलम्ब्य, किमुक्तं भवति?–यतो दिशः सकाशात् प्रादुर्भूतः–समवसरणे समागतस्तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती णामे(मं) अणगारे गोतमे गोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे जाव एवं वयासी (सूत्रं २)

'ते णं काले णं ते णं समए णं समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामे अणगारे गोयमे

प्रस्तावना.

॥६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे जाव एवं वयासी' इति, तस्मिन् काले तस्मिन् समये, णंशब्दो वाक्यालङ्कारार्थः, श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठ इति प्रथमः, अन्तेवासी शिष्यः, अनेन पदद्वयेन तस्य सकलसङ्घाधिपतित्वमावेदयति, इन्द्रभूतिरिति मातापितृकृतनामधेयः, नामंति प्राकृतत्वात् विभक्तिपरिणामेन नाम्नेति द्रष्टव्यं, अन्तेवासी च किल विवक्षया श्रावकोऽपि स्यात् अतस्तदाशङ्काव्यवच्छेदार्थमाह–'अनगारः' न विद्यते अगारं–गृहमस्येत्यनगारः, अयं च विगीतगोत्रोऽपि स्यादत आह–गौतमो गोत्रेण गौतमाह्वयगोत्रसमन्वित इत्यर्थः, अयं च तत्कालोचितदेहपरिमाणापेक्षया न्यूनाधिकदेहोऽपि स्यादत आह–'सप्तोत्सेधः' सप्तहस्तप्रमाणशरीरोच्छ्रायः, अयं चेत्थंभूतो लक्षणहीनोऽपि सम्भाव्येत अतस्तदाशङ्कापनोदार्थमाह–'समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितः' समाः–शरीरलक्षणशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयो यस्य तत्समचतुरस्रं, अस्रयश्चित्वह चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा द्रष्टव्याः, अन्ये त्वाहुः–समा–अन्यूनाधिकाश्चतस्रोऽप्यस्रयो यत्र तत्समचतुरस्रं, अस्रयश्च पर्यङ्कासनोपविष्टस्य जानुनोरन्तरं १ आसनस्य ललाटोपरिभागस्य चान्तरं २ दक्षिणस्कन्धस्य वामजानुनश्चान्तरं ३ वामस्कन्धस्य दक्षिणजानुनश्चान्तर ४ मिति, अपरे त्वाहुः–विस्तारोत्सेधयोः समत्वात् समचतुरस्रं, तच्च तत्संस्थानं च २ संस्थानं–आकारस्तेन संस्थितो–व्यवस्थितो यः स तथा, अयं च हीनसंहननोऽपि केनचित्सम्भाव्येत तत आह–'वज्जरिसहनारायसंघयणे' नाराचं–उभयतो मर्कटबन्धः ऋषभः–तदुपरिवेष्टनपट्टः कीलिका अस्थित्रयस्यापि भेदकमस्थि एवंरूपं संहननं यस्य स तथा, 'एवं जाव वयासी' इति, यावच्छब्दोपादानादिदमनुक्तमप्यवसेयं–'कणगपुलगनिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रभूतिगौतमस्य वर्णनं

महातवे उराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेउलेसे चउद्दसपुव्वी चउनाणोवगए सव्वक्खरसन्निवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तए णं से भयवं गोयमे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहले उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहले समुप्पण्णसड्ढे समुप्पन्नसंसए समुप्पन्नकोउहले उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठाए उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, आयाहिणपयाहिणं करित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता णच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासेमाणे एवं वयासी,

अस्यायमर्थः–कनकस्य–सुवर्णस्य यः पुलको–लवस्तस्य यो निकषः–(कष)पट्टके रेखारूपः,तथा पद्माग्रहणेन पद्मकेसराण्युच्यन्ते, अवयवे समुदायोपचारात्, यथा देवदत्तस्य हस्ताग्ररूपोऽप्यवयवो देवदत्तः, तथा च देवदत्तस्य हस्ताग्रं स्पृष्ट्वा लोको वदति–देवदत्तो मया स्पृष्ट इति, ततः कनकेषु (कस्य) पुलकनिकषवत्पद्मकेसरवच्च यो गौरः स कनकपुलकनिकषपद्मगौरः, अथवा कनकस्य यः पुलको–द्रुतत्वे सति विन्दुस्तस्य निकषो–वर्णः तत्सदृशः कनकपुलकनिकषः, तथा पद्मवत्–पद्मकेसर इव यो गौरः स पद्मगौरः, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः समासः, अयं च विशिष्टचरणरहितोऽपि शक्येत अत आह–‘उग्गतवे’ उग्गं–अप्रधृष्यं तपः–अनशनादि यस्य स तथा, यदन्येन प्राकृतेन पुंसा न शक्यते चिन्तयितुमपि मनसा तद्विधेन तपसा युक्त इत्यर्थः, तथा दीप्तं–जाज्वल्यमानदहन इव कर्मवनगहनदहनसमर्थतया ज्वलितं तपो–धर्म्मध्यानादि यस्य स तथा, ‘तत्ततवे’त्ति तप्तं तपो येन स तप्ततपाः, एवं हि तेन तपस्तप्तं येन सर्वाण्यप्यशुभानि कर्माणि भस्मसा

॥७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्कृतानीति, महत्–प्रशस्तमाशंसादोषरहितत्वात्तपो यस्य स महातपाः, तथा 'उराले'त्ति उदारः–प्रधानः अथवा ओरालो–भीष्मः, उग्रादिविशेषणतः पार्श्वस्थानामल्पसत्त्वानां भयानक इत्यर्थः, तथा घोरो–निर्घृणः परीषहेन्द्रियादिरिपुगणविनाशनमधिकृत्य निर्दय इत्यर्थः, तथा घोरा-अन्यैर्दुरनुचरा गुणा–ज्ञानादयो यस्य स तथा, तथा घोरैस्तपोभिस्तपस्वी, 'घोरबंभचेरवासि'त्ति घोरं–दारुणं अल्पसत्त्वैर्दुरनुचरत्वात् ब्रह्मचर्यं यत्तत्र वस्तुं शीलं यस्य स तथा, उच्छूढं–उज्झितं उज्झितमिव उज्झितं संस्कारपरित्यागात् शरीरं येन स उच्छूढशरीरः, 'संखित्तविउलतेउलेसे'त्ति संक्षिप्ता–शरीरान्तर्गतत्वेन ह्रस्वतां गता विपुला–विस्तीर्णा अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रितवस्तुदहनसमर्थत्वात्तेजोलेश्या–विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्रभवा तेजोज्वाला यस्य स तथा, 'चउदसपुव्वि'त्ति चतुर्दश पूर्वाणि विद्यन्ते यस्य तेनैव रचितत्वात्, असौ चतुर्दशपूर्वी, अनेन तस्य श्रुतकेवलितामाह, स चावधिज्ञानादिविकलोऽपि स्यादत आह–'चउनाणोवगए' मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानरूपज्ञानचतुष्टयसमन्वित इत्यर्थः, उक्तविशेषणद्वययुक्तोऽपि कश्चिन्न समग्रश्रुतविषयव्यापिज्ञानो भवति, चतुर्दशपूर्वविदामपि षट्स्थानपतितत्वेन श्रवणादत आह–'सर्वाक्षरसन्निपाती' अक्षराणां सन्निपाताः–संयोगाः सर्वे च ते अक्षरसन्निपाताश्च सर्वाक्षरसन्निपातास्ते यस्य ज्ञेयानि स तथा, किमुक्तं भवति ?–या काचित् जगति पदानुपूर्वी वाक्यानुपूर्वी वा सम्भवति ताः सर्वा अपि जानातीति, एवंगुणविशिष्टो भगवान् विनयराशिरिव साक्षादितिकृत्वा शिष्याचारत्वाच्च श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अदूरसामन्ते विहरतीति योगः, तत्र दूरं–विप्रकृष्टं सामन्तं–सन्निकृष्टं तत्प्रतिषेधाददूरसामन्तं, तत्र नातिदूरे नातिनिकटे इत्यर्थः, किंविशिष्टः सन् तत्र विहरतीत्यत आह–'उड्ढंजाणु'त्ति ऊर्ध्वं जानुनी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥८॥

यस्यासौ ऊर्ध्वजानुः, शुद्धपृथिव्यासनवर्जनादौपग्रहिकनिषद्यायास्तदानीमभावाच्च उत्कटुकासन इत्यर्थः, अधःशिरा नोर्ध्वं तिर्यग्वा विक्षिप्तदृष्टिः किन्तु नियतभूभागनियमितदृष्टिरिति भावः, ‘झाणकोट्ठोवगए’त्ति ध्यानं–धर्म्यं शुक्लं वा तदेव कोष्ठः–कुशूलो धानकोष्ठस्तमुपगतो ध्यानकोष्ठोपगतो, यथा हि कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तमविप्रसृतं भवति, एवं भगवानपि ध्यानतोऽविप्रकीर्णेन्द्रियान्तःकरणवृत्तिरित्यर्थः, ‘संयमेन’ पञ्चाश्रवनिरोधादिलक्षणेन ‘तपसा’ अनशनादिना, चशब्दोऽत्र समुच्चयार्थो लुप्तो द्रष्टव्यः, संयमतपोग्रहणं चानयोः प्रधानमोक्षाङ्गत्वख्यापनार्थं, प्राधान्यं च संयमस्य नवकर्म्मानुपादानहेतुत्वेन तपसश्च पुराणकर्म्मनिर्जराहेतुत्वेन, तथाहि–अभिनवकर्म्मानुपादानात् पुराणकर्म्मक्षपणाच्च जायते सकलकर्म्मक्षयलक्षणो मोक्षः, ततो भवति संयमतपसोर्मोक्षं प्रति प्राधान्यमिति, ‘अप्पाणं भावेमाणे विहरइ’ इति आत्मानं भावयन्–वासयन् तिष्ठतीत्यर्थः, ‘तओ णं से’ इति ततो–ध्यानकोष्ठोपगतविहरणादनन्तरं, णमिति वाक्यालङ्कारार्थः, ‘स’ भगवान् गौतमो ‘जायसड्ढे’ इत्यादि जातश्रद्धादिविशेषणः सन् उत्तिष्ठतीति योगः, तत्र जाता–प्रवृत्ता श्रद्धा–इच्छा वक्ष्यमाणार्थतत्त्वज्ञानं प्रति यस्यासौ जातश्रद्धः, तथा जातः संशयो यस्य स जातसंशयः, संशयो नामानवधारितार्थं ज्ञानं, स चैवं भगवतः–इह सूर्यादिवक्तव्यता अन्यथा, अन्यथा च तीर्थान्तरीयैरुपदिश्यते, ततः किं तत्त्वमिति संशयः, तथा ‘जायकुऊहल्ले’त्ति जातं कुतूहलं यस्य स जातकुतूहलः जातौत्सुक्य इत्यर्थः, यथा कथमेनां सूर्यवक्तव्यतां भगवान् प्रज्ञापयिष्यतीति, तथा ‘उप्पन्नसड्ढे’त्ति उत्पन्ना–प्रागभूता सती भूता श्रद्धा यस्यासौ उत्पन्नश्रद्धः, अथ जातश्रद्ध इत्येतावदेवास्तु किमर्थमुत्पन्नश्रद्ध इत्यभिधीयते ?, प्रवृत्तश्रद्धत्वेनोत्पन्नश्रद्धत्वस्य लब्धत्वात्, न ह्यनुत्पन्ना

॥८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२१]

श्रद्धा प्रवर्त्तत इति, अत्रोच्यते, हेतुत्वप्रदर्शनार्थं, तथाहि–कथं प्रवृत्तश्रद्धः?, उच्यते यत उत्पन्नश्रद्ध इति, हेतुत्वप्रदर्शनं चोपपन्नं, तस्य काव्यालङ्कारत्वात्, यथा ‘प्रवृत्तदीपामप्रवृत्तभास्करां, प्रकाशचन्द्रां बुबुधे विभावरी’मित्यत्र यद्यपि प्रवृत्तदीपत्वादेवाप्रवृत्तभास्करत्वमवगतं तथाप्यप्रवृत्तभास्करत्वं प्रवृत्तदीप्तत्वादेर्हेतुतयोपन्यस्तमिति समीचीनं, ‘उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए’ ‘उप्पन्नकोउहल्ले’ इति प्राग्वत्, तथा‘संजायसड्ढे’इत्यादि पदषट्कं प्राग्वत्,नवरमिह समूशब्दः प्रकर्षादिवचनो वेदितव्यः, तत ‘उट्ठाए उट्ठेइ’ इति उत्थानमुत्था ऊर्ध्व-वर्त्तनं तया उत्तिष्ठति, इह ‘उट्ठेइ’ इत्युक्ते क्रियारम्भमात्रमपि प्रतीयते यथा वक्तुमुत्तिष्ठते ततस्तद्व्यवच्छेदार्थमुत्थयेत्युक्तम्, ‘जेणेव’त्यादि प्राकृतशैलीवशादव्ययत्वाच्च येनेति यस्मिन्नित्यर्थे द्रष्टव्यं, यस्मिन् दिग्भागे श्रमणो भगवान् महावीरो वर्त्तते ‘तेणेव’त्ति तस्मिन् दिग्भागे उपागच्छति, इह वर्त्तमानकालनिर्देशस्तत्कालापेक्षया उपागमनक्रियाया वर्त्तमानत्वात्, परमार्थतस्तूपागतवानिति द्रष्टव्यं, उपागम्य च श्रमणं भगवन्तं महावीरं कर्म्मतापन्नं त्रिकृत्वः–त्रीन् वारान् आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, आदक्षिणात्–दक्षिणहस्तादारभ्य प्रदक्षिणः–परितो भ्राम्यतो दक्षिण एव आदक्षिणप्रदक्षिणः तं करोति, कृत्वा वन्दते–स्तौति नमस्यति–कायेन प्रणमति, वन्दित्वा नमस्थित्वा च ‘न’नैव अत्यासन्नोऽतिनिकटः अवग्रहपरिहारात् अथवा नात्यासन्नस्थाने वर्त्तमान इति गम्यं, तथा ‘न’ नैवातिदूरोऽतिविप्रकृष्टोऽनौचित्यपरिहारात्, अथवा नातिदूरे स्थाने ‘सुस्सूसमाणे’त्ति भगवद्वचनानि श्रोतुमिच्छन्, ‘अभिमुहे’त्ति अभि–भगवन्तं प्रति मुखमस्येत्यभिमुखः ‘विणयेण’त्ति विनयेन हेतुना ‘पंजलियडे’त्ति प्रकृष्टः–प्रधानो ललाटतटघटितत्वेन अञ्जलिः–हस्तन्यासविशेषः कृतो–विहितो येन स प्राञ्जलिकृतः, भार्योढादेराकृतिगणतया कृतशब्दस्य परनिपातः ‘पज्जुवासेमाणे इति पर्युपासीनः-सेवमानः, अनेन विशेषणकदंबकेन श्रवणविधिरूपदर्शितः, उक्तं च “निद्दाविगहापरिवज्जिएहिं गुत्तेहिं पञ्जलिउडेहिं भत्तिबहुमानपुव्वं उवउत्तेहिं सुणेयव्वं ॥१॥ इति, ‘एवं वदासि’ त्ति एवं-वक्ष्यमाण प्रकारेण मुहूर्तवृद्धिअपवृद्धि वक्तव्यता विषयं प्रश्नं अवादीत् उक्तवान् ।

Jain Education Intern jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [२२]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ९ ॥

➔ ता कहं ते वड्ढोवड्ढी मुहुत्ताणं आहितेति वदेज्जा? ता अट्ठएकूणवीसे मुहुत्तसते सत्तावीसं च सट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहिते वि(ति)वदेज्जा (सूत्रं ८)

'ता कहं ते वड्ढोवड्ढी मुहुत्ताण'मित्यादि, अत्र तावच्छब्दः क्रमार्थः, क्रमश्चायमस्त्यन्यदपि चन्द्रसूर्यादिविषयं प्रभूतं प्रष्टव्यं, परं तदास्तां सम्प्रत्येतावदेव तावत्पृच्छामि—'कथं' केन प्रकारेण भगवन्! 'ते' त्वया 'मुहूर्त्तानां' दिवसरात्रिविषयाणां वृद्ध्यपवृद्धी आख्याते इति भगवान् प्रसादमाधाय 'वदेत्' यथावस्थितं वस्तुस्वरूपं कथयेत् येन मे संशयापगमो भवति, अपगतसंशयश्च परेभ्यो निःशङ्कमुपदिशामीति । अत्राह—ननु गौतमोऽपि चतुर्दशपूर्वधरः सर्वाक्षरसन्निपाती सम्भिन्नश्रोताः सकलप्रज्ञापनीयभावपरिज्ञाकुशलः सूत्रतश्च प्रवचनस्य प्रणेता सर्वज्ञदेशीय एव, उक्तं च—"संखाईएवि भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छेज्जा । नयं णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ १ ॥" ततः कथं संशयसम्भवस्तदभावाच्च किमर्थं पृच्छतीति?, उच्यते, यद्यपि भगवान् गौतमो यथोक्तगुणविशिष्टस्तथापि तस्याद्यापि मतिज्ञानावरणीयाद्युदये वर्त्तमानत्वात् छद्मस्थता, छद्मस्थस्य च कदाचिदनाभोगोऽपि जायते, यत उक्तम्—"न हि नामानाभोगश्छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नेति । ज्ञानावरणीयं हि ज्ञानावरणप्रकृतिकर्म ॥१॥" ततोऽनाभोगसम्भवादुपपद्यते भगवतोऽपि संशयः, न चैतदनार्षं, यत उक्तं उपासकश्रुते आनन्दश्रमणोपासकावधिनिर्णयविषये–'तेणं' भंते! किं आणंदेणं समणोवासएणं तस्स ठाणस्स आलोइयवं जाव पडिक्कमियवं उयाहु मए?, ततो णं गोयमादी समणे भगवं

१ संख्यातीतानपि भवान् कथयति यद्वा परः पृच्छेत् । न चैनं अनतिशायी विजानाति यथैष छद्मस्थः ॥ १ ॥

१ प्राभृते १ प्राभृत-प्राभृतं ॥ ९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

➔ इत: सूत्रात् चन्द्रप्रज्ञप्ति एवं सूर्यप्रज्ञप्ति सर्वथा समान एव वर्तते| [इस सूत्र से लेकर इस आगम के अन्त तक चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति के सभी सूत्र तथा वृत्ति वर्तमान कालमे सर्वथा एक सम्मान ही पाये जाते है]

महावीरे गोयमं एवं वयासी–तुमं चेव णं तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिक्कमाहि, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि, तए णं समणे भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिक्कमइ, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेइ' इति, अथवा भगवान् अपगतसंशयोऽपि शिष्यसम्प्रत्ययार्थं पृच्छति, तथाहि—तमर्थं शिष्येभ्यः प्ररूप्य तेषां सम्प्रत्ययार्थं तत्समक्षं भूयोऽपि भगवन्तं पृच्छतीति, यदिवा इत्थमेव सूत्ररचनाकल्प इति न कश्चिद्दोषः । एवं भगवता गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवान् श्रीवर्द्धमानस्वामी प्रतिवचनमभिधातुकामः सविशेषबोधाधानाय प्रथमतो नक्षत्रमासे यावन्तो मुहूर्त्ताः सम्भवन्ति तावतो निरूपयति— 'ता अट्ठे'त्यादि, तावदिति शिष्योक्तपदानुवादः स च न्यायमार्गप्रदर्शनार्थं, तथाहि—सर्वेणापि गुरुणा शिष्येण प्रश्ने कृते सति शिष्यपृष्टस्य पदस्य अन्यस्य वा शिष्योक्तस्य तथाविधस्य पदस्य अनुवादपुरस्सरं प्रतिवचनमभिधातव्यं येन गुरुषु शिष्याणां बहुमानो भवति–यथाऽहं गुरूणां सम्मत इति, अन्यच्च तावच्छब्दस्यायमर्थः–आस्तामन्यत्प्रतिवक्तव्यमिदानीं तावदेव तवाग्रे कथयामि, एतस्मिन्नक्षत्रमासे अष्टौ मुहूर्त्तशतानि एकोनविंशानि–एकोनविंशत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिं सप्तषष्टिं भागानहमाख्याता इति स्वशिष्येभ्यो वदेत्, एतेन चैतदावेदयति—इह शिष्येण सम्यगधीतशास्त्रेणापि गुर्वनुज्ञातेन सता तत्त्वोपदेशोऽपरस्मै दातव्यो नान्यथेति, अथ कथमेकस्मिन्नक्षत्रमासे अष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागा इति ?, उच्यते, इह युगे चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभिवर्द्धितरूपसंवत्सरपञ्चकात्मके सप्तषष्टिर्नक्षत्रमासाः, युगे चोक्तस्वरूपे अहोरात्राणामष्टादश शतानि त्रिंशद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [२२]

धिकानि १८३०, तत एतेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धाः सप्तविंशतिरहोरात्राः, शेषा तिष्ठति एकविंशतिः, सा मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यते, जातानि षट् शतानि त्रिंशदधिकानि ६३०, तेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धा नव मुहूर्त्ताः ९, शेषाऽवतिष्ठते सप्तविंशतिः, आगतं नक्षत्रमासः सप्तविंशतिरहोरात्राः नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, तत्र सप्तविंशतिरहोरात्रा मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते जातान्यष्टौ शतानि दशोत्तराणि ८१०, तेषां मध्ये उपरितना नव मुहूर्त्ताः प्रक्षिप्यन्ते, जातान्यष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि ८१९, आगतं नक्षत्रमासे मुहूर्त्तपरिमाणमष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागा इति। इदं च नक्षत्रमासगतमुहूर्त्तपरिमाणं उपलक्षणं, तेन सूर्यादिमासानामप्यहोरात्रसङ्ख्यां परिभाव्य मुहूर्त्तपरिमाणं यथाऽऽगमं भावनीयं, तच्चैवम्—सूर्यमासा युगे षष्टिर्भवन्ति, युगे चाष्टादश शतानि त्रिंशदधिकान्यहोरात्राणां, ततस्तेषां षष्ट्या भागे हृते लब्धा त्रिंशदहोरात्राः एकस्य चाहोरात्रस्यार्द्धं, एतावत्सूर्यमासपरिमाणं त्रिंशन्मुहूर्त्ताश्चाहोरात्र इति त्रिंशत्रिंशता गुण्यते, जातानि नव शतानि मुहूर्त्तानां, अर्द्धे चाहोरात्रस्य पञ्चदश मुहूर्त्ताः, तत आगतं सूर्यमासे मुहूर्त्तपरिमाणं नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, तथा युगे द्वाषष्टिश्चन्द्रमासास्ततोऽष्टादशशतानां त्रिंशदधिकानां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनत्रिंशदहोरात्रा द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य, तत्र द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य करणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि नव शतानि षष्ट्यधिकानि ९६०, तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ताः, शेषा तिष्ठति त्रिंशत् ३०, एकोनत्रिंशच्चाहोरात्रा मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातान्यष्टौ शतानि सप्तत्यधिकानि ८७०, ततः पाश्चात्याः पञ्चदश मुहूर्त्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [२२]

एषु मध्ये प्रक्षिप्यन्ते, तत आगतं चन्द्रमासे मुहूर्त्तपरिमाणमष्टौ शतानि पञ्चाशीत्यधिकानि त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य । कर्म्ममासश्च त्रिंशदहोरात्रप्रमाणस्ततस्तत्र मुहूर्त्तपरिमाणं नव शतानि परिपूर्णानि, तदेवं मासगतं मुहूर्त्तपरिमाणमुक्तं, प्रतदनुसारेण च चन्द्रादिसंवत्सरगतं युगगतं च मुहूर्त्तपरिमाणं स्वयं परिभावनीयं । तथा च सत्यवगतं मुहूर्त्तपरिमाणं, सम्प्रति प्रत्ययने ये दिवसरात्रिविषये मुहूर्त्तानां वृद्ध्यपवृद्धी ते अवबोद्धुकाम इदं पृच्छति—

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरातो मंडलातो सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति सव्वबाहिरातो मंडलातो सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, एस णं अद्धा केवतियं रातिंदियग्गेणं आहितेत्ति वदेज्जा ?, ता तिण्णि छावट्ठे रातिंदियसए रातिंदियग्गेणं आहितेतिवदेज्जा (सूत्रं ९) ता एताए अद्धाए सूरिए कति मंडलाइं चरति ?, ता चुलसीयं मंडलसतं चरति, बासीति मंडलसतं दुक्खुत्तो चरति, तंजहा–णिक्खममाणे चेव पवेसमाणे चेव, दुवे य खलु मंडलाइं सइं चरति, तंजहा–सव्वब्भंतरं चेव मंडलं सव्वबाहिरं चेव मंडलं (सूत्रं १०) ॥

'ता जया ण'मित्यादि, तावच्छब्दार्थभावना सर्वत्रापि प्रागुक्तानुसारेण यथायोगं स्वयं परिभावनीया, शेषस्य च वाक्यस्यायमर्थः–'यदा'यस्मिन् काले, णमिति वाक्यालङ्कारे, सूर्यः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्विनिर्गत्य प्रत्यहोरात्रमेकैकमण्डलचारेण यावत् सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति–परिभ्रमणमुपपद्यते, सर्वबाह्याच्च मण्डलादपसृत्य प्रतिरात्रिन्दिवमेकैकमण्डलपरिभ्रमणेन यावत्सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'एषा' एतावती, णमिति पूर्ववत् अद्धा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ११ ॥

कियता 'रात्रिंदिवाग्रेण' रात्रिंदिवपरिमाणेन आख्याता इति वदेत् ?, अत्र प्रतिवचनं–'ता तिन्नि'इत्यादि, एषा अद्धा रात्रिन्दिवाग्रेण त्रिभी रात्रिंदिवसशतैः षट्षष्टैः–षट्षष्ट्यधिकैराख्याता इति, स्वशिष्येभ्यो वदेत् । पुनः पृच्छति—'ता एयाए ण'मित्यादि, 'ता' इति पूर्ववत्, एतया–एतावत्या षट्षष्ट्यधिकरात्रिन्दिवशतत्रयपरिमाणया अद्धया कति मण्डलानि सूर्यो द्विकृत्वश्चरति ?, कति वा मण्डलान्येकवारमिति शेषः, अत्र प्रतिवचनवाक्यम्–'ता चुलसीइ'मित्यादि, सामान्यतश्चतुरशीतं–चतुरशीत्यधिकं मण्डलशतं चरति, अधिकस्य मण्डलस्य सूर्यसत्कस्याभावात्, 'तत्रापि' चतुरशीतशतमध्ये 'द्व्यशीतं' द्व्यशीत्यधिकं मण्डलशतं द्विकृत्वश्चरति, तद्यथा–सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्बहिर्निष्क्रामन् सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं प्रविशंश्च, द्वे च मण्डले–सर्वाभ्यन्तरसर्वबाह्यरूपे 'सकृद्'एकैकं वारं 'चरति'परिभ्रमति। भूयः प्रश्नयति–

जइ खलु तस्सेव आदिच्चस्स संवच्छरस्स सयं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति सइं अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति सइं दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति सइं दुवालसमुहुत्ता राती भवति, पढमे छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति, दोच्चे छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे, णत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राती, अत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति पढमे छम्मासे, दोच्चे छम्मासे णत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवति, णत्थि पण्णरसमुहुत्ता राती भवति, तत्थ णं कं हेतुं वदेज्जा ?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए जाव विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते, ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राती भवति, से

१ प्राभृते १ प्राभृत-प्राभृते

॥ ११ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११]

दीप अनुक्रम [२५]

निक्खममाणे सूरिए नवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जयाणं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राती भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया, से णिक्खममाणे सूरिए दोचंसि अहोरत्तंसि अब्भंतरं तचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतरं तचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राती भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया, एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए एगमेगे मंडले दिवसे खेत्तस्स णिवुड्ढेमाणे २ रतणिक्खेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरातो मंडलाओ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं सव्वब्भंतरमंडलं पणिधाय एगेणं तेसीतेणं राइंदियसतेणं तिण्णि छावट्ठ एगट्ठिभागे मुहुत्ते सते दिवसे खेत्तस्स णिवुड्ढित्ता रतणिक्खेत्तस्स अभिवुड्ढित्ता चारं चरति, तदा णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति, जहण्णए बारसमुहुत्ते दिवसे भवति, एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमं छम्मासस्स पज्जवसाणे। से पविसमाणे सूरिए दोचं छम्मासं अयमाणे (आयमाणे) पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमेत्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए, से पविसमाणे सूरिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

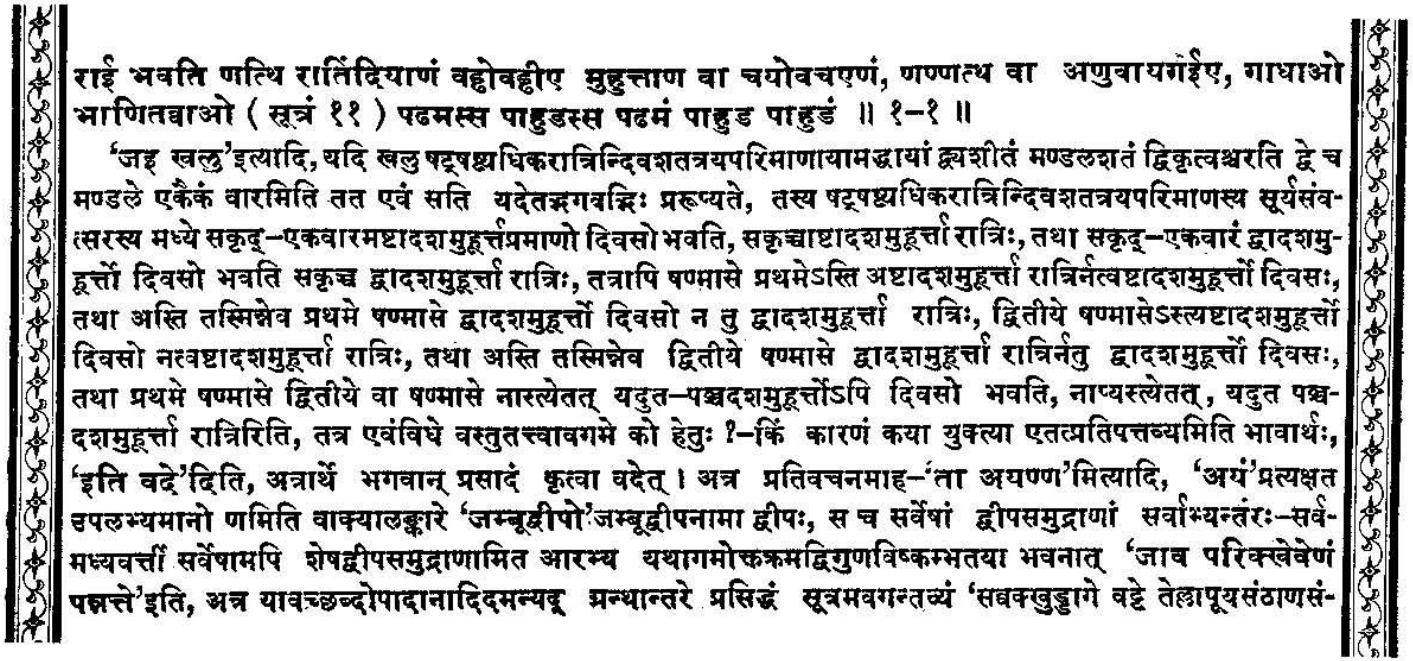
॥ १२ ॥

दोचंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिरं तचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए तदाणंतरातो तयाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे दो दो एगट्ठिभागमुहुत्ते एगमेगे मंडले रतणिखेत्तस्स णिवुड्ढेमाणे २ दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे २ सबब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सबबाहिराओ मंडलाओ सबब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं सबबाहिरं मंडलं पणिधाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसतेणं तिन्नि छावट्ठे एगट्ठिभागमुहुत्तसते रयणिखेत्तस्स निवुड्ढित्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढित्ता चारं चरति तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राती भवति, एस णं दोचे छम्मासे एस णं दुचस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, एस णं आदिचे संवच्छरे एस णं आदिचस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे, इति खलु तस्सेवं आदिचस्स संवच्छरस्स सइं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, सइं अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति, सइं दुवालसमुहुत्ता राती भवति, पढमे छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे अत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे नत्थि दुवालसमुहुत्ता राई अत्थि दुवालसमुहुत्ता राई नत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, पढमे वा छम्मासे णत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवति, णत्थि पण्णरसमुहुत्ता

१ प्राभृते १ प्राभृत प्राभृतं

॥ १२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



राई भवति णत्थि रातिंदियाणं वड्ढोवड्ढीए मुहुत्ताण वा चयोवचएणं, णण्णत्थ वा अणुवायगईए, गाधाओ भाणितव्वाओ (सूत्रं ११) पढमस्स पाहुडस्स पढमं पाहुड पाहुडं ॥ १–१ ॥

'जइ खलु'इत्यादि, यदि खलु षट्षष्ट्यधिकरात्रिन्दिवशतत्रयपरिमाणायामद्धायां द्व्यशीतं मण्डलशतं द्विकृत्वश्चरति द्वे च मण्डले एकैकं वारमिति तत एवं सति यदेतद्भगवद्भिः प्ररूप्यते, तस्य षट्षष्ट्यधिकरात्रिन्दिवशतत्रयपरिमाणस्य सूर्यसंवत्सरस्य मध्ये सकृद्–एकवारमष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति, सकृच्चाष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तथा सकृद्–एकवारं द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति सकृच्च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तत्रापि षण्मासे प्रथमेऽस्ति अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्नत्वष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः, तथा अस्ति तस्मिन्नेव प्रथमे षण्मासे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो न तु द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, द्वितीये षण्मासेऽस्त्यष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो नत्वष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तथा अस्ति तस्मिन्नेव द्वितीये षण्मासे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्नतु द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, तथा प्रथमे षण्मासे द्वितीये वा षण्मासे नास्त्येतत् यदुत–पञ्चदशमुहूर्त्तोऽपि दिवसो भवति, नाप्यस्त्येतत्, यदुत पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिरिति, तत्र एवंविधे वस्तुतत्त्वावगमे को हेतुः ?–किं कारणं कया युक्त्या एतत्प्रतिपत्तव्यमिति भावार्थः, 'इति वदे'दिति, अत्रार्थे भगवान् प्रसादं कृत्वा वदेत् । अत्र प्रतिवचनमाह–'ता अयण्ण'मित्यादि, 'अयं'प्रत्यक्षत उपलभ्यमानो णमिति वाक्यालङ्कारे 'जम्बूद्दीपो'जम्बूद्वीपनामा द्वीपः, स च सर्वेषां द्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यन्तरः–सर्वमध्यवर्त्ती सर्वेषामपि शेषद्वीपसमुद्राणामित आरभ्य यथागमोक्तक्रमद्विगुणविष्कम्भतया भवनात् 'जाव परिक्खेवेणं पन्नत्ते'इति, अत्र यावच्छब्दोपादानादिदमन्यद् ग्रन्थान्तरे प्रसिद्धं सूत्रमवगन्तव्यं 'सवक्खुड्डागे वट्टे तेल्लापूयसंठाणसं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठिए वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकन्नियासंठाणसंठिए वट्टे पडिपुन्नचंदसंठाणसठिए जोयणसयसहस्समायाम-विक्खंभेणं तिन्नि जोयणसयसहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पन्नत्ते'इति, अत्र 'सबखुड्डाग'त्ति सर्वेभ्योऽप्यन्येभ्यो द्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लको–लघुरायामविष्कम्भाभ्यां योजनलक्षप्रमाणत्वात्, शेषं प्रायः सुगमं परिधिपरिमाणं गणितं च क्षेत्रसमासटीकातः परिभावनीयं, 'ता'इति ततो यदा णमिति पूर्ववत्, सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा णमिति प्राग्वत् उत्तमकाष्ठाप्राप्तोऽत्र काष्ठाशब्दः प्रकर्षवाची परमप्रकर्षप्राप्तो यतः परमन्योऽधिको न भवति स इत्यर्थः, 'उक्कोस'त्ति उत्कर्षतीत्युत्कर्षः उत्कर्ष एवोत्कर्षकः उत्कृष्ट इत्यर्थः, अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तस्मिन्नेव च सर्वाभ्यन्तरे मण्डले सूर्ये चारं चरति जघन्या–सर्वलघ्वी द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, एषोऽहोरात्रः पाश्चात्यस्य सूर्यसंवत्सरस्य पर्यवसानं, ततः स सूर्यस्तस्मात्सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलान्निष्क्रामन् नवं सूर्यसंवत्सरमाददानः–प्रवर्त्तमानः प्रथमे अहोरात्रे 'अभिंतरामंतर'न्ति सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलादनन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति ततो यदा सूर्योऽभ्यन्तरानन्तरं–सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलादनन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूनो भवति, द्वाभ्यां च मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, कथमेतदवसीयते इति चेत् ?, उच्यते, इहैकं मण्डलमेकेनाहोरात्रेण द्वाभ्यां सूर्याभ्यां परिसमाप्यते, एकैकश्च सूर्यः प्रत्यहोरात्रं मण्डलस्य त्रिंशदधिकोऽष्टादशशतसङ्ख्यान् भागान् परिकल्प्य एकैकं भागं दिवसक्षेत्रस्य रात्रिक्षेत्रस्य वा यथायोग्यं हापयिता वर्द्धयिता वा भवति, स चैको मण्ड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगतस्त्रिंशदधिकाष्टादशशततमो भागो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां गम्यते, तथाहि–तानि मण्डलगतानि त्रिंशदधिकान्यष्टादशशतानि भागानां द्वाभ्यां सूर्याभ्यामेकेनाहोरात्रेण गम्यते, अहोरात्रश्च त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणः, ततः सूर्यद्वयापेक्षया षष्टिर्मुहूर्त्ता लभ्यन्ते ततस्त्रैराशिककर्म्मावकाशः, यदि षष्ट्या मुहूर्त्तैरष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि मण्डलस्य भागानां गम्यंते तत एकेन मुहूर्त्तेन किं गम्यते ?, राशित्रयस्थापना– । ६० । १८३० । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यस्य राशेर्गुणनाज्जातानि तान्येवाष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि तेषामाद्येन राशिना षष्टिलक्षणेन भागो ह्रियते लब्धाः सार्द्धास्त्रिंशद्भागाः, एतावन्मुहूर्त्तेन गम्यते, मुहूर्त्तश्चैकषष्टिभागीक्रियते तत आगतमेको भागो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां गम्यते, यदिवा यदि त्र्यशीत्यधिकेनाहोरात्रशतेन षट् मुहूर्त्ता हानौ वृद्धौ वा प्राप्यन्ते तत एकेनाहोरात्रेण किं प्राप्यते ?, राशित्रयस्थापना– । १८३ । ६ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशिर्गुण्यते, जातास्त एव षट्, तेषां त्र्यशीत्यधिकेन शतेन भागहरणं, अत्रोपरितनराशेः स्तोकत्वाद्भागो न लभ्यते ततश्छेद्यच्छेदकराश्योस्त्रिकेणापवर्त्तना, जात उपरितनो राशिर्द्विकरूपोऽधस्तन एकषष्टिरूपः, आगतं द्वावेकषष्टिभागौ मुहूर्त्तस्य एकस्मिन्नहोरात्रे वृद्धौ हानौ वा प्राप्येते इति, तथा 'ता'इति तस्माद् द्वितीयान्मण्डलान्निष्क्रामन् सूर्यो द्वितीये अहोरात्रे सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमपेक्ष्य तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण' मित्यादि, तत्र यदा तस्मिन्सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमवेक्ष्य तृतीये मण्डले उपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा चतुर्भिर्मुहूर्त्तस्यैकषष्टिभागैर्हीनोऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति, चतुर्भिर्मुहूर्त्तस्यैकषष्टिभागैरधिका द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिः, एवमुक्तनीत्या 'खलु'निश्चितमेतेनानन्तरोदितेनोपायेन प्रतिमण्डलं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिवसरात्रिविषयमुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहानिवृद्धिरूपेण निष्क्रामन् मण्डलपरिभ्रमणगत्या शनैः शनैर्दक्षिणाभिमुखं गच्छन् सूर्यः, 'तयाणंतरा'इति तस्माद्विवक्षितादनन्तरान्मण्डलात् 'तयाणंतर'मिति तद्विवक्षितमनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २ एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तस्य द्वौ द्वावेकषष्टिभागौ दिवसक्षेत्रस्य 'निर्वेष्टयन्'२'हापयन् २ रजनिक्षेत्रस्य प्रतिमण्डलं द्वौ द्वौ मुहूर्त्तस्यैकषष्टिभागौ अभिवर्द्धयन् २ त्र्यशीत्यधिकशततमे अहोरात्रे प्रथमषण्मासपर्यवसानभूते सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता'इति ततो यदा तस्मिन् काले अहोरात्ररूपे णमिति प्रागिव सूर्यः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलान्मण्डलपरिभ्रमणगत्या शनैः शनैः निष्क्रम्य सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलं 'प्रणिधाय'मर्यादीकृत्य द्वितीयान्मण्डलादारभ्येत्यर्थः, एकेन त्र्यशीत्यधिकेन रात्रिन्दिवशतेन त्रीणि 'षट्षष्टानि' षट्षष्ट्यधिकानि मुहूर्त्तैकषष्टिभागशतानि दिवसक्षेत्रस्य 'निर्वेष्ट्य'हापयित्वा रजनिक्षेत्रस्य तान्येव त्रीणि मुहूर्त्तैकषष्टिभागशतानि षट्षष्ट्यधिकानि अभिवर्द्ध्य चारं चरति, तदा णमिति पूर्ववत्, उत्तमकाष्ठाप्राप्ता–परमप्रकर्षप्राप्ता उत्कर्षिका–उत्कृष्टा अष्टादशमुहूर्त्ता–अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिर्भवति, जघन्यश्च द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः, एषा प्रथमा षण्मासी, यदिवा एतत् प्रथमं षण्मासं, सूत्रे च पुंस्त्वनिर्देश आर्षत्वात्, एष त्र्यशीत्यधिकशततमोऽहोरात्रः प्रथमस्य षण्मासस्य पर्यवसानं। 'से पविसमाणे'इत्यादि, 'स'सूर्यः सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयं षण्मासमाददानः–प्रतिपद्यमानो द्वितीयस्य षण्मासस्य प्रथमे अहोरात्रे सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वागनन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता'इति तत्र यदा सूर्यो बाह्यात्–सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूना अष्टा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिको द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः, ततस्ततोऽपि द्वितीयान्मण्डलादभ्यन्तरं स सूर्यः प्रविशन् द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीये अहोरात्रे 'बाहिरं तच्चं'ति सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा णमितिपूर्ववत्, सूर्यः सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता जया ण'मित्यादि ततो यदा णमिति पूर्ववत् सूर्यः सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिश्चतुर्भिः 'एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं'ति प्राकृतत्वाद् व्यत्यासेन पदोपन्यासः, एवं तु यथास्थितपदनिर्देशो द्रष्टव्यो–मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूना भवति, चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरधिको द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः। 'एवं खलु एएण'मित्यादि, एवं–उक्तनीत्या खल्वेतेन–अनन्तरोदितेनोपायेन प्रतिमण्डलं रात्रिदिवसविषयमुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहानिवृद्धिरूपेण प्रविशन् मण्डलपरिभ्रमणगत्या शनैः शनैरुत्तराभिमुखं गच्छन् 'तयाणंतराउ'त्ति तस्माद्विवक्षितान्मण्डलात् 'तयाणंतर'मिति तद्विवक्षितमनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २ एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तस्य द्वौ द्वावेकषष्टिभागौ रजनिक्षेत्रस्य निर्वेष्टयन् दिवसक्षेत्रस्य प्रतिमण्डलं द्वौ द्वौ मुहूर्त्तस्यैकषष्टिभागौ अभिवर्द्धयन् २ व्यशीत्यधिकशततमे अहोरात्रे द्वितीयषण्मासपर्यवसानभूते 'सव्वब्भंतरं'ति सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता'इति ततो यदा–यस्मिन् काले णमिति पूर्ववत् सूर्यः सर्वबाह्यान्मण्डलान्मण्डलपरिभ्रमणगत्या शनैः शनैरभ्यन्तरं प्रविश्य सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा सर्वबाह्यमण्डलं 'प्रणिधाय'मर्यादीकृत्य तदर्वाक्तनाद् द्वितीयान्मण्डलादारभ्येत्यर्थः, एकेन व्यशीत्यधिकेन रात्रिन्दिवशतेन त्रीणि षट्षष्टानि–षट्षष्ट्यधिकानि मुहूर्त्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥ १५ ॥

स्यैकषष्टिभागशतानि रजनिक्षेत्रस्य निर्वेष्ट्य-हापयित्वा दिवसक्षेत्रस्य च तान्येव त्रीणि षट्षष्टानि मुहूर्त्तैकषष्टिभागशतानि अभिवर्द्ध्य चारं चरति, तदा णमिति वाक्यालङ्कारे उत्तमकाष्ठाप्राप्तः–परमप्रकर्षप्राप्त उत्कर्षकः–उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति जघन्या च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, एतद् द्वितीयं षण्मासं, यदिवा एषा द्वितीया षण्मासी, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देश आर्षत्वात्, एष षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽहोरात्रो द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानभूतः, 'एष'एवंप्रमाण आदित्यसंवत्सरः, एष षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽहोरात्रः 'आदित्यस्य'आदित्यसम्बन्धिनः संवत्सरस्य पर्यवसानम् । सम्प्रत्युपसंहारमाह–'इइ खलु तस्सेव'मित्यादि, यस्मादेवं 'इति'तस्मात्कारणात्तस्यादित्यस्य–आदित्यसंवत्सरस्य मध्ये 'एवं'उक्तेन प्रकारेण 'सकृद्' एकवारमष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति सकृच्चाष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तथा सकृद् द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति सकृच्च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तत्र प्रथमे षण्मासे अस्त्यष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, सा च प्रथमषण्मासपर्यवसानभूतेऽहोरात्रे, नत्वष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः, तथा अस्ति तस्मिन्नेव प्रथमे षण्मासे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, सोऽपि प्रथमषण्मासपर्यवसानेऽहोरात्रे, नतु द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, द्वितीये षण्मासेऽस्त्येतद् यदुत अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च द्वितीयषण्मासपर्यवसानभूतेऽहोरात्रे नत्वष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तथा अस्त्येतत् यदुत तस्मिन्नेव द्वितीयषण्मासे अस्ति द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, साऽपि तस्मिन्नेव द्वितीयषण्मासपर्यवसानभूतेऽहोरात्रे, न पुनरस्त्येतत् यदुत द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवतीति, तथा प्रथमे वा षण्मासे नास्त्येतत् यदुत पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, नाप्यस्त्येतत् यदुत पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिः, किं सर्वथा नेत्याह–नान्यत्र–रात्रिन्दिवानां वृध्यपवृद्धेरन्यत्र न भवति, रात्रिन्दिवानां तु वृद्ध्यपवृद्धौ च भवत्येव पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिः पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः, ते च वृद्ध्य-

१ प्राभृते १ प्राभृत-प्राभृते

॥ १५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पवृद्धौ रात्रिन्दिवानां कथं भवत इत्याह–'मुहुत्ताणं चयोवचएण'मुहूर्त्तानां पञ्चदशसङ्ख्यानां चयोपचयेन चयेन–अधिकत्वेन वृद्धिरपचयेन–हीनत्वेनापवृद्धिः, इयमत्र भावना–परिपूर्णपञ्चदशमुहूर्त्तप्रमाणे दिवसरात्री न भवतो, हीनाधिकपञ्चदशमुहूर्त्तप्रमाणे तु दिवसरात्री भवतः, एवं 'अन्नत्थ वा अणुवायगईए'इति वाशब्दः प्रकारान्तरसूचने अन्यत्रानुपातगतेः–अनुसारगतेः पञ्चदशमुहूर्त्तौ दिवसः पञ्चदशमुहूर्त्ता वा रात्रिर्न भवति, अनुसारगत्या तु भवत्येव, सा चानुसारगतिरेवं–यदि त्र्यशीत्यधिकशततमे मण्डले षण्मुहूर्त्ता वृद्धौ हानौ वा प्राप्यन्ते ततोऽर्वाक् तदर्द्धगतौ त्रयो मुहूर्त्ताः प्राप्यन्ते, त्र्यशीत्यधिकशतस्य वाऽर्द्धे सार्द्धा एकनवतिः तत आगतं एकनवतिसङ्ख्येषु मण्डलेषु गतेषु द्विनवतितमस्य च मण्डलस्यार्द्धे गते पञ्चदश मुहूर्त्ताः प्राप्यन्ते, ततस्तत ऊर्द्धं रात्रिकल्पनायां पञ्चदशमुहूर्त्तौ दिवसः, पञ्चदशमुहूर्त्ता च रात्रिर्लभ्यते नान्यथेति, 'गाहाओ भणितव्वाओ'त्ति अत्र अनन्तरोक्तार्थसङ्ग्राहिका अस्या एव सूर्यप्रज्ञप्तेर्भद्रबाहुस्वामिना या निर्युक्तिः कृता तत्प्रतिबद्धा अन्या वा काश्चन ग्रन्थान्तरसुप्रसिद्धा गाथा वर्त्तन्ते ता 'भणितव्याः'पठनीयाः, ताश्च सम्प्रति क्वापि पुस्तके न दृश्यन्त इति व्यवच्छिन्नाः सम्भाव्यन्ते ततो न कथयितुं व्याख्यातुं वा शक्यन्ते, यो वा यथा सम्प्रदायादवगच्छति तेन तथा शिष्येभ्यः कथनीया व्याख्यानीयाश्चेति ।

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथम-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं १ समाप्तं

तदेवमुक्तं प्रथमस्य प्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतं सम्प्रति द्वितीयमर्द्धमण्डलसंस्थितिप्रतिपादकं विवक्षुरिदं प्रश्नसूत्रमाह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १ परिसमाप्तं अथ प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २ आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२-१३]

दीप अनुक्रम [२६-२७]

ता कहं ते अद्धमंडलसंठिती आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमे दुवे अद्धमंडलसंठिती पं०, तं०–दाहिणा चेव अद्धमंडलसंठिती उत्तरा चेव अद्धमंडलसंठिती । ता कहं ते दाहिणअद्धमंडलसंठिती आहितेति वदेज्जा ?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं जाव परिक्खेवेणं ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राती भवति, से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाते तस्सादिपदेसाते अब्भिंतराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलं संठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति, जता णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं अट्ठारसमुहुत्ते[हिं] दिवसे भवति दोहिं एगट्ठभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राती दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया से णिक्खममाणे सूरिए दोचंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अंतराए भागाते तस्सादिपदेसाए अब्भिंतरं तच्चं दाहिणं अद्धमंडलं संठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति। ता जया णं सूरिए अब्भिंतरं तच्चं दाहिणं अद्धमंडलं संठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं अट्ठारसमुहुत्ते[हिं] दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया, एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तदणंतरातोऽणंतरंसि तंसि २ देसंमि तं तं अद्धमंडलसंठितिं संकममाणो २ दाहिणाए २ अंतराए भागाते तस्सादिपदेसाते, सव्वबाहिरं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए

॥ १६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वबाहिरं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति। एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमछम्मासस्स पज्जवसाणे, से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि उत्तराते अंतरभागाते तस्सादिपदेसाते बाहिराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं दाहिणअद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए, से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि दाहिणाते अंतराए भागाते तस्सादिपदेसाए बाहिरंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया, एवं खलु एतेणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तदाणंतराउ तदाणंतरं तंसि २ देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठितिं संकममाणे २ उत्तराए अंतराभागाते तस्सादिपदेसाए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमंडलट्ठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छमासस्स पज्जवसाणे, एस णं आदिच्चे संवच्छरे, एस णं आदिच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे (सूत्रं १२) ता कहं ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरा अर्द्धमंडलसंठिती आहितातिवदेज्जा ?, ता अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवजावपरिक्खेवेणं, ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरे उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति जहा दाहिणा तहा चेव णवरं उत्तरद्धिओ अब्भिंतराणंतरं दाहिणं उवसंकमइ, दाहिणातो अब्भिंतरं तच्चं उत्तरं उवसंकमति, एवं खलु एएणं उवाएणं जाव सव्वबाहिरं दाहिणं उवसंकमति, सव्वबाहिरं दाहिणं उवसंकमति २ त्ता दाहिणाओ बाहिराणंतरं उत्तरं उवसंकमति उत्तरातो बाहिरं तच्चं दाहिणं तच्चातो दाहिणातो संकममाणे २ जाव सव्वब्भंतरं उवसंकमति, तहेव । एस णं दोच्चे छम्मासे एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, एस णं आदिच्चे संवच्छरे, एस णं आदिच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे गाहाओ । (सूत्रं १३) बीयं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, 'ता'इति क्रमार्थः, पूर्ववद् भावनीयः, 'कथं'केन प्रकारेण भगवन् ! 'ते'तव मते 'अर्द्धमण्डलसंस्थितिः'अर्द्धमण्डलव्यवस्था आख्यातेति वदेत्, पृच्छतश्चायमभिप्रायः–इह एकैकः सूर्य एकैकेनाहोरात्रेणैकैकस्य मण्डलस्यार्द्धमेव भ्रमणेन पूरयति, ततः संशयः–कथमेकैकस्य सूर्यस्य प्रत्यहोरात्रमेकैकार्द्धमण्डलपरिभ्रमणव्यवस्थेति पृच्छति, अत्र भगवान् प्रत्युत्तरमाह–'ता खलु'इत्यादि, 'ता'इति तत्रार्द्धमण्डलव्यवस्थाविचारे खलु–निश्चितमिमे द्वे अर्द्धमण्डलसंस्थिती मया प्रज्ञप्ते, तद्यथा–एका दक्षिणा चैव–दक्षिणदिग्भाविसूर्यविषया अर्द्धमण्डलसंस्थितिः–अर्द्धमण्डलव्यवस्था द्वितीया उत्तरा चैव–उत्तरदिग्भाविसूर्यविषया अर्द्धमण्डलसंस्थितिः, एवमुक्तेऽपि भूयः पृच्छति–'ता कहं ते'इत्यादि, इह

१ प्राभृते २ प्राभृत-प्राभृतं

॥ १७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वे अपि अर्द्धमण्डलसंस्थिती ज्ञातव्ये तत्रेदं तावत्पृच्छामि–कथं त्वया भगवन् 'दक्षिणा'दक्षिणदिग्भाविसूर्यविषया अर्द्ध-मण्डलसंस्थितिराख्याता इति वदेत् ?,भगवानाह–'ता अयण्ण'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपवाक्यं प्रागिव स्वयं परिपूर्णं परि-भावनीयम्,'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा, णमिति वाक्यालङ्कारे, सूर्यः सर्वाभ्यन्तरां–सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतां दक्षिणा-मर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा णमिति पूर्ववत्, उत्तमकाष्ठाप्राप्तः–परमप्रकर्षप्राप्तः, उत्कर्षक–उत्कृष्टोऽ-ष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्या च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, इह सर्वाभ्यन्तरे मण्डले प्रविष्टः सन् प्रथमक्षणादूर्द्धं शनैः शनैः सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलाभिमुखं तथा कथंचनापि मण्डलगत्या परिभ्रमति येनाहोरात्रपर्यन्ते सर्वा-भ्यन्तरमण्डलगतान् अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागानपरे च द्वे योजने अतिक्रम्य सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयोत्तरार्द्धमण्डलसी-मायां वर्त्तते, तथा चाह–'से निक्खममाणे'इत्यादि स सूर्यः सर्वाभ्यन्तरगतात् प्रथमक्षणादूर्द्धं शनैः शनैर्निष्क्रामन् अहोरा-त्रेऽतिक्रान्ते सति नवम्–अभिनवं संवत्सरमाददानो नवस्य प्रथमेऽहोरात्रे दक्षिणस्माद्–दक्षिणदिग्भाविनोऽन्तरात्–सर्वाभ्य-न्तरमण्डलगताष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाभ्यधिकयोजनद्वयप्रमाणापान्तरालरूपाद्विनिर्गत्य 'तस्सादिपएसाए'इति-तस्य– सर्वाभ्यन्तरानन्तरस्योत्तरार्द्धमण्डलस्यादिप्रदेशमाश्रित्याभ्यन्तरानन्तरां–सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरामुत्तरामर्द्धमण्ड-लसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, स चादिप्रदेशादूर्द्धं शनैः शनैरपरमण्डलाभिमुखमत्रापि तथा कथञ्चनापि चरति येन तस्याहोरात्रस्य पर्यन्ते तदपि मण्डलमन्ये च द्वे योजने परित्यज्य दक्षिणदिग्भाविनस्तृतीयस्य मण्डलस्य सीमायां भवति,'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरानन्तरां द्वितीयामुत्तरामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

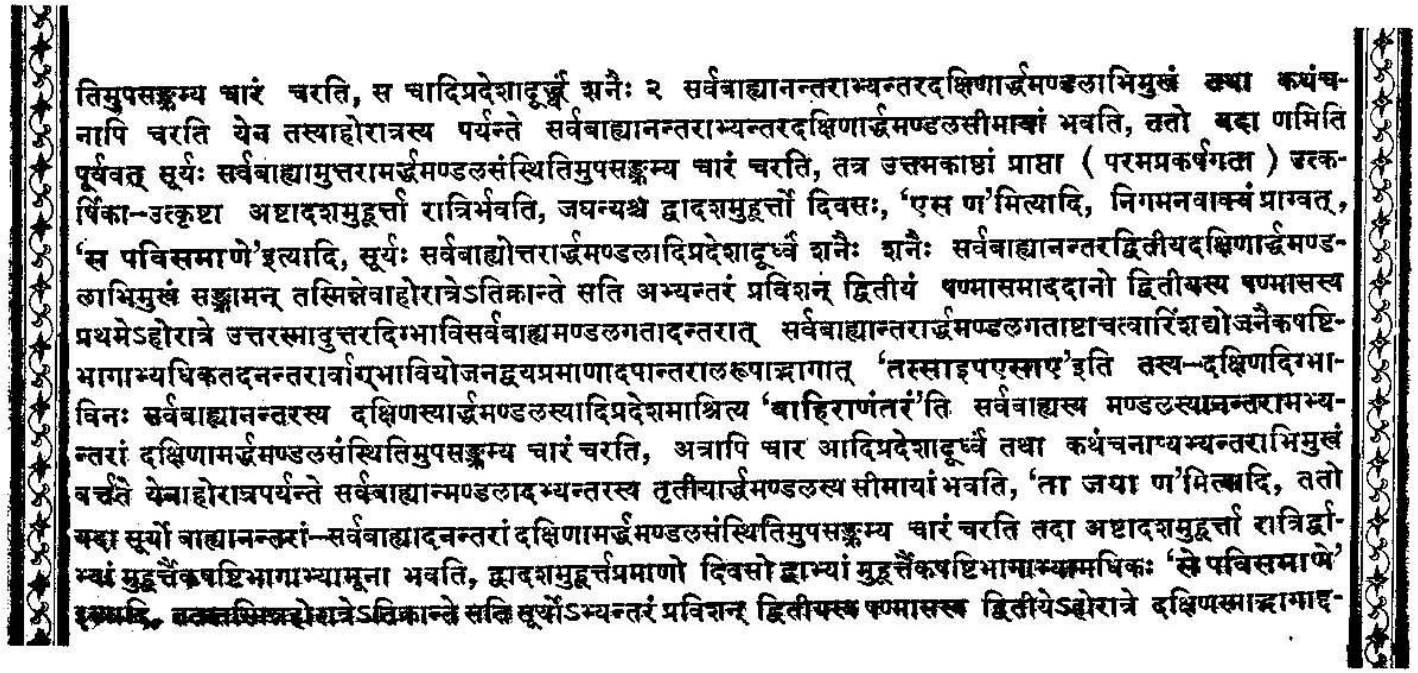
सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ १८ ॥

तदा दिवसोऽष्टादशमुहूर्त्तो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूनो भवति, जघन्या च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामभ्यधिका, ततस्तस्या अपि द्वितीयस्या उत्तरार्द्धमण्डलसंस्थितेरुक्तप्रकारेण स सूर्यो निष्क्रामन् अभिनवस्य सूर्यसंवत्सरस्य द्वितीयेऽहोरात्रे उत्तरस्मादुत्तरदिग्भाविनोऽन्तराद् द्वितीयोत्तरार्द्धमण्डलगताष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाभ्यधिकयोजनद्वयप्रमाणापान्तरालरूपाद् विनिःसृत्य 'तस्साइपएसाए' इति तस्य–दक्षिणदिग्भाविनस्तृतीयस्यार्द्धमण्डलस्यादिप्रदेशमाश्रित्य 'अब्भिंतरं तच्चं'ति सर्वाभ्यन्तरमण्डलमपेक्ष्य तृतीयां दक्षिणामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, अत्रापि तथा चारं चरति आदिप्रदेशादूर्द्धं शनैः शनैरपरमण्डलाभिमुखं येन तस्याहोरात्रस्य पर्यन्ते तन्मण्डलगतानष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागानपरे च द्वे योजने अपहाय चतुर्थस्योत्तरार्द्धमण्डलस्य सीमायामवतिष्ठते, 'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा णमिति पूर्ववत् सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीयां दक्षिणामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूनो द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरभ्यधिका, 'एवं खलु'इत्यादि, एवं–उक्तनीत्या खलु–निश्चितमेतेनोपायेन प्रत्यहोरात्रमष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाभ्यधिकयोजनद्वयविकम्पनरूपेण निष्क्रामन् सूर्यस्तदनन्तरादर्द्धमण्डलात्तदनन्तरं तस्मिन् २ देशे–दक्षिणपूर्वभागे उत्तरपश्चिमभागे वा तां तां–अर्द्धमण्डलसंस्थितिं सङ्क्रामन् २ द्व्यशीत्यधिकशततमाहोरात्रपर्यन्ते गते दक्षिणस्मात्–दक्षिणदिग्भाविनोऽन्तरात् व्यशीत्यधिकशततममण्डलगताष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाभ्यधिकतदनन्तरयोजनद्वयप्रमाणादपान्तरालरूपाद्भागात् 'तस्साइपएसाए' इति तस्य–सर्वबाह्यमण्डलगतस्योत्तरस्यार्द्धमण्डलादिप्रदेशमाश्रित्य सर्वबाह्यामुत्तरार्द्धमण्डलसंस्थि-

१ प्राभृते २ प्राभृत प्राभृतं

॥ १८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, स चादिप्रदेशादूर्ध्वं शनैः २ सर्वबाह्यानन्तराभ्यन्तरदक्षिणार्द्धमण्डलाभिमुखं तथा कथंचनापि चरति येन तस्याहोरात्रस्य पर्यन्ते सर्वबाह्यानन्तराभ्यन्तरदक्षिणार्द्धमण्डलसीमायां भवति, ततो यदा णमिति पूर्ववत् सूर्यः सर्वबाह्यामुत्तरामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तत्र उत्तमकाष्ठां प्राप्ता (परमप्रकर्षगता) उत्कर्षिका–उत्कृष्टा अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यश्च द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, 'एस ण'मित्यादि, निगमनवाक्यं प्राग्वत्, 'स पविसमाणे'इत्यादि, सूर्यः सर्वबाह्योत्तरार्द्धमण्डलादिप्रदेशादूर्ध्वं शनैः शनैः सर्वबाह्यानन्तरद्वितीयदक्षिणार्द्धमण्डलाभिमुखं सङ्क्रामन् तस्मिन्नेवाहोरात्रेऽतिक्रान्ते सति अभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयं षण्मासमाददानो द्वितीयस्य षण्मासस्य प्रथमेऽहोरात्रे उत्तरस्मादुत्तरदिग्भाविसर्वबाह्यमण्डलगतादन्तरात् सर्वबाह्यान्तरार्द्धमण्डलगताष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाभ्यधिकतदनन्तरार्वाग्भावियोजनद्वयप्रमाणादपान्तरालरूपाद्भागात् 'तस्साइपएसाए'इति तस्य–दक्षिणदिग्भाविनः सर्वबाह्यानन्तरस्य दक्षिणस्यार्द्धमण्डलस्यादिप्रदेशमाश्रित्य 'बाहिराणंतरं'ति सर्वबाह्यस्य मण्डलस्यानन्तरामभ्यन्तरां दक्षिणामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, अत्रापि चार आदिप्रदेशादूर्ध्वं तथा कथंचनाप्यभ्यन्तराभिमुखं वर्त्तते येनाहोरात्रपर्यन्ते सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरस्य तृतीयार्द्धमण्डलस्य सीमायां भवति, 'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा सूर्यो बाह्यानन्तरां–सर्वबाह्यादनन्तरां दक्षिणामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूना भवति, द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिकः 'से पविसमाणे' इत्यादि, ततस्मिन्नहोरात्रेऽतिक्रान्ते सति सूर्योऽभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रे दक्षिणस्माद्भागाद्-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ १९ ॥

क्षिणदिग्भाविनोऽन्तरादक्षिणदिग्भाविसर्वबाह्यानन्तरद्वितीयमण्डलगताष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाभ्यधिकतदनन्तरा-
र्वाग्भावियोजनद्वयप्रमाणादपान्तरालरूपाद्भागाद्विनिःसृत्य 'तस्साइपएसाए'इति तस्य–सर्वबाह्यादभ्यन्तरस्य तृतीयस्योत्त-
रार्द्धमण्डलस्यादिप्रदेशात्–आदिप्रदेशमाश्रित्य बाह्यतृतीयां सर्वबाह्याया अर्द्धमण्डलसंस्थितेस्तृतीयामुत्तरामर्द्धमण्डलसंस्थि-
तिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, अत्रापि चार आदिप्रदेशादारभ्य शनैः शनैरपरार्द्धमण्डलाभिमुखं तथा कथंचनापि प्रवर्त्तमानो द्रष्ट-
व्यो येन तदहोरात्रपर्यन्ते सर्वबाह्यादर्द्धमण्डलात्तृतीयामर्वाक्तनीमर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा अष्टादशमुहू-
र्त्ता रात्रिश्चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूना भवति, द्वादशमुहूर्त्तश्च दिवसश्चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरभ्यधिकः, 'एव'मित्यादि, एव-
म्–उक्तप्रकारेण खलु—निश्चितमेतेनोपायेन–प्रत्यहोरात्रमभ्यन्तरमष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागयोजनद्वयविकम्पनरूपेण
शनैः शनैरभ्यन्तरं प्रविशन् सूर्यस्तदनन्तराद् अर्द्धमण्डलात् तदनन्तरां तस्मिन् २ प्रदेशे दक्षिणपूर्वभागे उत्तरापरभागे
वा तां तामर्द्धमण्डलसंस्थितिं सङ्क्रामन् द्वितीयस्य षण्मासस्य द्व्यशीत्यधिकशततमाहोरात्रपर्यन्ते गते उत्तरस्मादुत्तरदिग्भा-
विनोऽन्तरात्सर्वबाह्यमण्डलमपेक्ष्य यद् द्व्यशीत्यधिकशततमं मण्डलं तद्गताष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाभ्यधिकतद-
नन्तराभ्यन्तरयोजनद्वयप्रमाणादपान्तरालरूपाद्भागात् 'तस्साइपएसाए'इति तस्य–सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतस्य दक्षिण-
स्यार्द्धमण्डलस्यादिप्रदेशमाश्रित्य सर्वाभ्यन्तरां दक्षिणामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, स चादिप्रदेशादूर्ध्वं
शनैः शनैः सर्वाभ्यन्तरानन्तरबाह्योत्तरार्द्धमण्डलाभिमुखं तथा कथञ्चनापि चारं प्रतिपद्यते येन तस्याहोरात्रस्य पर्यन्ते
सर्वाभ्यन्तरानन्तरस्योत्तरस्यार्द्धमण्डलस्य सीमायां भवति, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरां दक्षिणा-

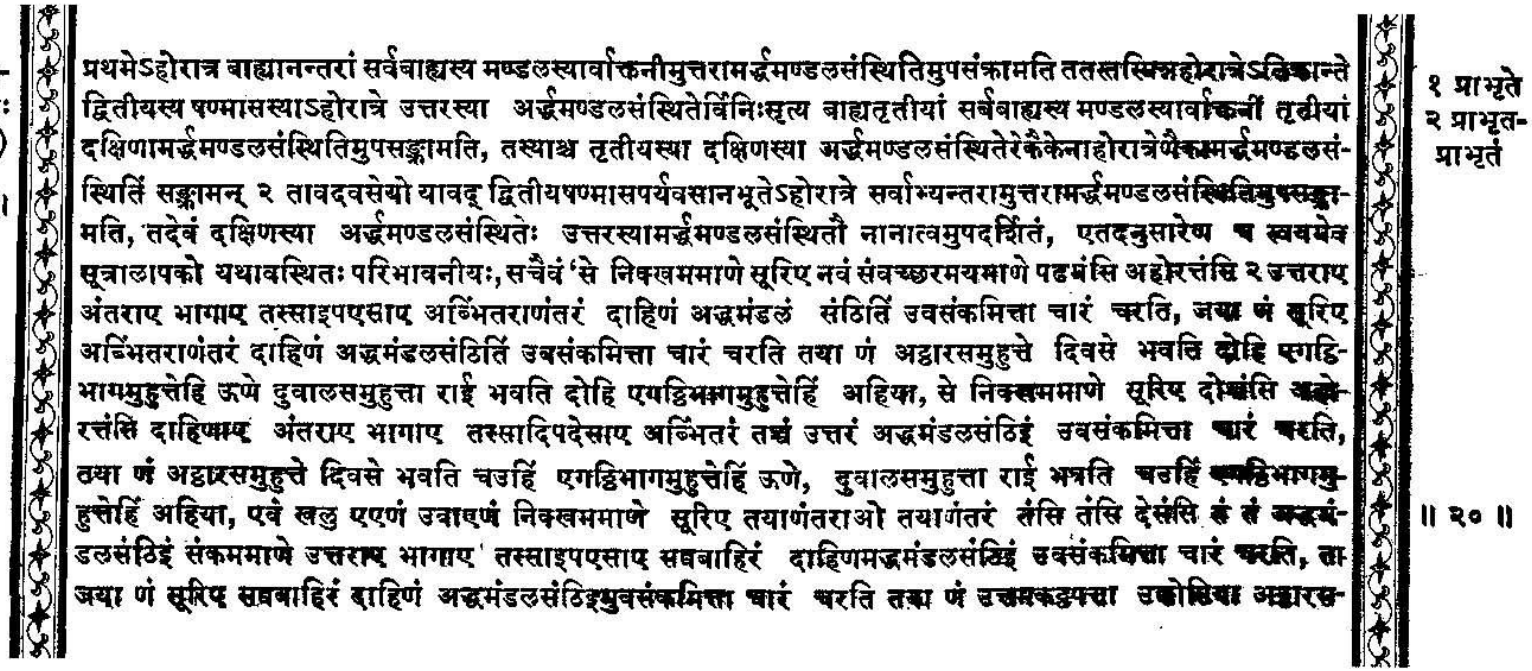
१ प्राभृते ३ प्राभृत-प्राभृतं

॥ १९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्त उत्कर्षकः–उत्कृष्टः अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति, सर्वजघन्या च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, 'एस ण'मित्यादि, निगमनवाक्यं प्राग्वत्, तदेवमुक्ता दक्षिणा अर्द्धमण्डलसंस्थितिः। साम्प्रतमुत्तरामर्द्धमण्डलसंस्थितिं जिज्ञासुः प्रश्नयति–'ता कहं ते'इत्यादि, एतत्प्राग्वद् व्याख्येयं, 'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरामुत्तरामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्त उत्कर्षकोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्या च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, 'जहा दाहिणा तह चेव'त्ति यथा दक्षिणा अर्द्धमण्डलव्यवस्थितिः प्रागभिहिता तथा चैव–तेनैव प्रकारेणैषाऽप्युत्तरार्द्धमण्डलव्यवस्थितिराख्येया, नवरं 'उत्तरे ठिओ अब्भिंतराणंतरं दाहिणं उवसंकमइ, दाहिणाओ अब्भिंतरं तच्चं उत्तरं उवसंकमइ, एएणं उवाएणं जाव सव्वबाहिरं दाहिणं उवसंकमइ, सव्वबाहिराओ बाहिराणंतरं उत्तरं उवसंकमइ, उत्तराओ बाहिरं तच्चं दाहिणं तच्चाओ दाहिणाओ संकममाणे २ जाव सव्वब्भंतरमुत्तरं उवसंकमइ'इति, नवरमयं दक्षिणार्द्धमण्डलव्यवस्थितेरस्यामुत्तरार्द्धमण्डलव्यवस्थायां विशेषो–यदुत सर्वाभ्यन्तरे उत्तरस्मिन्नर्द्धमण्डले स्थितः सन् तस्मिन्नहोरात्रेऽतिक्रान्ते नवं संवत्सरमाददानः प्रथमस्य षण्मासस्य प्रथमेऽहोरात्रे अभ्यन्तरानन्तरां सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्यानन्तरां दक्षिणामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रामति, तस्मिन्नहोरात्रेऽतिक्रान्ते प्रथमस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रेऽभ्यन्तरतृतीयां सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्य तृतीयामुत्तरामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रामति, एवं खल्वनेनोपायेन प्रागिव तावद् वक्तव्यं यावत्प्रथमस्य षण्मासस्य त्र्यशीत्यधिकशततमे अहोरात्रे पर्यवसानभूते सर्वबाह्यां दक्षिणामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रामति, एतत्प्रथमस्य षण्मासस्य पर्यवसानं, ततो द्वितीयस्य षण्मासस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



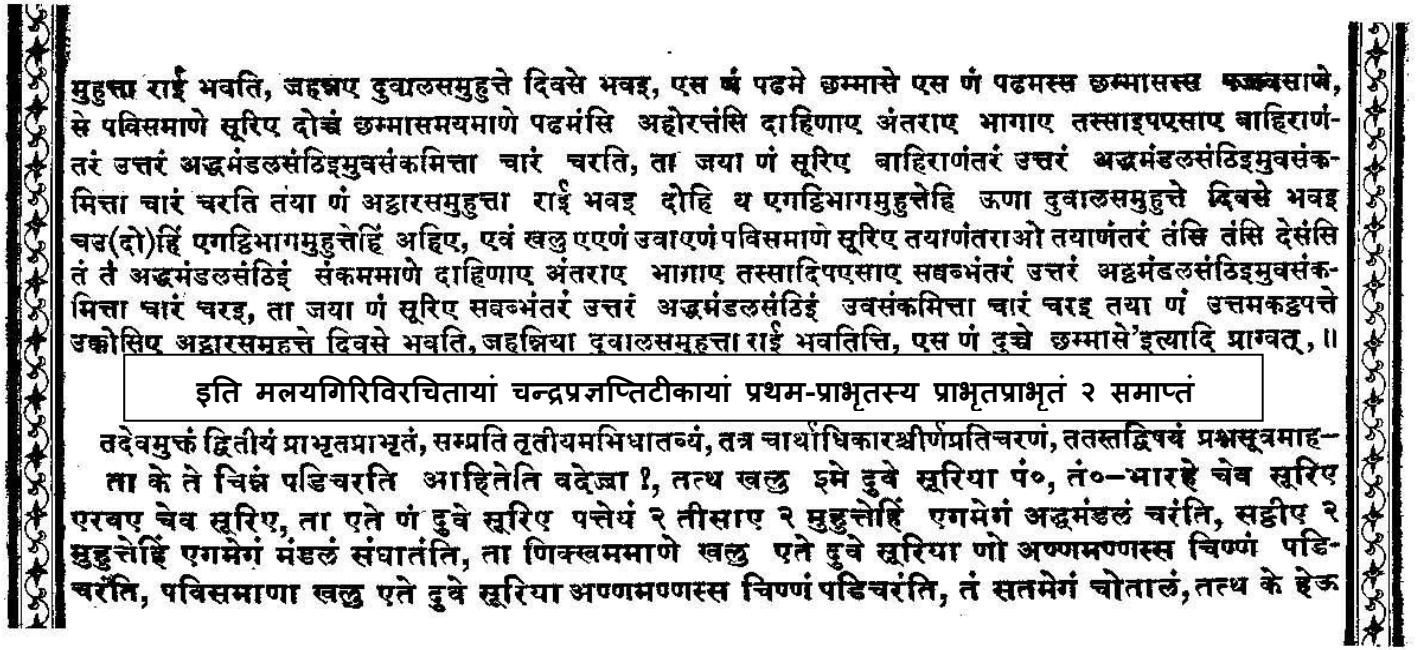
सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ २० ॥

प्रथमेऽहोरात्रे बाह्यानन्तरां सर्वबाह्यस्य मण्डलस्यार्वाक्तनीमुत्तरामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसंक्रामति ततस्तस्मिन्नहोरात्रेऽतिक्रान्ते द्वितीयस्य षण्मासस्याऽहोरात्रे उत्तरस्या अर्द्धमण्डलसंस्थितेर्विनिःसृत्य बाह्यतृतीयां सर्वबाह्यस्य मण्डलस्यार्वाक्तनीं तृतीयां दक्षिणामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रामति, तस्याश्च तृतीयस्या दक्षिणस्या अर्द्धमण्डलसंस्थितेरेकैकेनाहोरात्रेणैकामर्द्धमण्डलसंस्थितिं सङ्क्रामन् २ तावदवसेयो यावद् द्वितीयषण्मासपर्यवसानभूतेऽहोरात्रे सर्वाभ्यन्तरामुत्तरामर्द्धमण्डलसंस्थितिमुपसङ्क्रामति, तदेवं दक्षिणस्या अर्द्धमण्डलसंस्थितेः उत्तरस्यामर्द्धमण्डलसंस्थितौ नानात्वमुपदर्शितं, एतदनुसारेण च स्वयमेव सूत्रालापको यथावस्थितः परिभावनीयः, सचैवं 'से निक्खममाणे सूरिए नवं संवच्छरमयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि २ उत्तराए अंतराए भागाए तस्साइपएसाए अब्भिंतराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलं संठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति, जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया, से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तस्सादिपदेसाए अब्भिंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति, तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया, एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं तंसि तंसि देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठितिं संकममाणे उत्तराए भागाए तस्साइपएसाए सव्वबाहिरं दाहिणमद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति, तया णं सूरिए सव्वबाहिरं दाहिणं अद्धमंडलसंठितिमुवसंकमित्ता चारं चरति तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारस-

१ प्राभृते २ प्राभृत-प्राभृतं

॥ २० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



मुहुत्ता राई भवति, जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासमयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तस्साइपएसाए बाहिराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइमुवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइमुवसंकमित्ता चारं चरति तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहि य एगट्ठिभागमुहुत्तेहि ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउ(दो)हिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए, एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं तंसि तंसि देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठिइं संकममाणे दाहिणाए अंतराए भागाए तस्सादिपएसाए सव्वब्भंतरं उत्तरं अट्ठमंडलसंठिइमुवसंकमित्ता चारं चरइ, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवतित्ति, एस णं दुच्चे छम्मासे'इत्यादि प्राग्वत्, ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथम-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं २ समाप्तं

तदेवमुक्तं द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति तृतीयमभिधातव्यं, तत्र चार्थाधिकारश्चीर्णप्रतिचरणं, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह– ता के ते चिन्नं पडिचरति आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमे दुवे सूरिया पं०, तं०–भारहे चेव सूरिए एरवए चेव सूरिए, ता एते णं दुवे सूरिए पत्तेयं २ तीसाए २ मुहुत्तेहिं एगमेगं अद्धमंडलं चरंति, सट्ठीए २ मुहुत्तेहिं एगमेगं मंडलं संघातंति, ता णिक्खममाणे खलु एते दुवे सूरिया णो अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति, पविसमाणा खलु एते दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति, तं सतमेगं चोतालं, तत्थ के हेऊ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २ परिसमाप्तं अथ प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ३ आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१४]

दीप अनुक्रम [२८]

वदेज्जा ?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव परिक्खेवेणं, तत्थ णं तत्थ णं अयं भारहए चेव सूरिए जंबुद्दीवस्स २ पाईणपडिणायतउदीणदाहिणायताए जीवाय मंडलं चउवीसएणं सतेणं छेत्ता दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि बाणउतियसूरियमताइं जाइं अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरति, उत्तरपच्चत्थिमेल्लंसि चउभागमंडलंसि एक्काणउतिं सूरियमताइं जाइं सूरिए अप्पणो चेव चिण्णं पडिचरति, तत्थ अयं भारहे सूरिए एरवतस्स सूरियस्स जंबुद्दीवस्स २ पाईणपडिणीयायताए उदीणदाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सतेणं छेत्ता उत्तरपुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि बाणउतिं सूरियमताइं जाव सूरिए परस्स चिण्णं पडिचरति, दाहिणपच्चत्थिमेल्लंसि चउब्भागमंडलंसि एकूणणउतिं सूरियमताइं जाइं सूरिए परस्स चेव चिण्णं पडिचरति, तत्थ अयं एरवए सूरिए जंबुद्दीवस्स २ पाईणपडिणायताए उदीणदाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सतेणं छेत्ता उत्तरपुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि बाणउतिं सूरियमयाइं जाव सूरिए अप्पणो चेव चिण्णं पडियरति दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि एक्काणउतिसूरियमताइं जाव सूरिए अप्पणो चेव चिण्णं पडिचरति, तत्थ णं एयं एरवतिए सूरिए भारहस्स सूरियस्स जंबुद्दीवस्स पाईणपडिणायताए उदीणदाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सतेणं छित्ता दाहिणपच्चत्थिमेल्लंसि चउभागमंडलंसि बाणउतिं सूरियमताइं सूरिए परस्स चिण्णं पडिचरति, उत्तरपुरत्थिमेल्लंसि चउभागमंडलंसि एक्काणउतिं सूरियमताइं जाइं सूरिए परस्स चेव चिण्णं पडिचरति, ता निक्खममाणे खलु एते दुवे सूरिया णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४]

दीप अनुक्रम [२८]

अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति, पविसमाणा खलु एते दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति, सतमेगं चोतालं । गाहाओ (सूत्रं) १४ ॥ तइयं पाहुड पाहुडं सम्मत्तं ॥

'ता के ते'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, कस्त्वया भगवन्! सूर्यः स्वयं परेण वा सूर्येण चीर्णं क्षेत्रं प्रतिचरति–प्रतिचरन् आख्यात इति वदेत् ?, एवं भगवता गौतमेनोक्ते भगवान् वर्द्धमानस्वामी आह—'तत्थ'इत्यादि, तत्र–अस्मिन् जम्बूद्वीपे परस्परं चीर्णक्षेत्रप्रतिचरणचिन्तायां खलु—निश्चितं यथावस्थितं वस्तुतत्त्वमधिकृत्येमौ द्वौ सूर्यौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा–भारतश्चैव सूर्यः ऐरावतश्चैव सूर्यः, 'ता एए ण'मित्यादि, तत एतौ णमिति वाक्यालङ्कारे द्वौ सूर्यौ प्रत्येकं त्रिंशता मुहूर्त्तैरेकैकमर्द्धमण्डलं चरतः षष्ट्या २ मुहूर्त्तैः पुनः प्रत्येकमेकैकं परिपूर्णं मण्डलं 'सङ्घातयतः'पूरयतः 'ता निक्खममाणा'इत्यादि, ता इति तत्र सूर्यसत्कैकसंवत्सरमध्ये इमौ द्वावपि सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलान्निष्क्रामन्तौ नोऽन्योऽन्यस्य—परस्परेण चीर्णं क्षेत्रं प्रतिचरतः, नैकोऽपरेण चीर्णं क्षेत्रं प्रतिचरति, नाप्यपरोऽपरेण चीर्णमिति भावः, इदं स्थापनावशादवसेयं, सा च स्थापना इयम्– । सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरौ प्रविशन्तौ द्वावपि खलु सूर्यावन्योऽन्यस्य–परस्परेण चीर्णं प्रतिचरतः, तद्यथा–शतमेकं चतुश्चत्वारिंशं, किमुक्तं भवति ?–यैश्चतुर्विंशत्यधिकशतसङ्ख्यैर्भागैर्मण्डलं पूर्यते तेषां चतुश्चत्वारिंशदधिकं शतमुभयसूर्यसमुदायचिन्तायां परस्परेण चीर्णप्रतिचीर्णं प्रतिमण्डलमवाप्यते इति, एतदवगमार्थं प्रश्नसूत्रमाह—'तत्थ को हेतू'इति, 'तत्र'एवंविधायां वस्तुतत्त्वव्यवस्थाया अवगमे को हेतुः ?, का उपपत्तिरिति ?, अत्रार्थे भगवान् वदेत्, अत्र भगवानाह—'ता अयण्ण'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपस्वरूपप्रतिपादकं वाक्यं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ववत् स्वयं परिपूर्णं परिभावनीयं 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र जम्बूद्वीपे णमिति प्राग्वत्, 'अयं भारहे चेव सूरिए'इति सर्वबाह्यस्य मण्डलस्य दक्षिणस्मिन्नर्द्धमण्डले यश्चारं चरितुमारभते स भरतक्षेत्रप्रकाशकत्वाद्भारत इत्युच्यते, यस्त्वितरस्तस्यैव सर्वबाह्यस्य मण्डलस्योत्तरस्मिन्नर्द्धमण्डले चारं चरति स ऐरावतक्षेत्रप्रकाशकत्वादैरावतः, तत्रायं प्रत्यक्षत उपलभ्यमानो जम्बूद्वीपस्य सम्बन्धी भारतः सूर्यो यस्मिन् मण्डले परिभ्रमति तत्तन्मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा–विभज्य चतुर्विंशत्यधिकशतसङ्ख्यान् भागान् तस्य २ मण्डलस्य परिकल्प्येत्यर्थः, सूर्यश्च प्राचीनापाचीनायतया उदगदक्षिणायतया च जीवया–प्रत्यञ्चया दवरिकया इत्यर्थः, तन्मण्डलं चतुर्भिर्भागैर्विभज्य दक्षिणपौरस्त्ये दक्षिणपूर्वे आग्नेये कोणे इत्यर्थः 'चउब्भागमंडलंसि'त्ति प्राकृतत्वात्पदव्यत्ययो मण्डलचतुर्भागे—तस्य तस्य मण्डलस्य चतुर्थे भागे सूर्यसंवत्सरसत्कद्वितीयषण्मासमध्ये द्विनवतिं सूर्यगतानि–द्विनवतिसङ्ख्यानि मण्डलानि स्वयं सूर्येण गतानि–चीर्णानि, किमुक्तं भवति ?–पूर्वं सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलान्निष्क्रामता स्वचीर्णानि प्रतिचरतीति गम्यते, एतदेव व्याचष्टे–'जाहं सूरिए अप्पणा चिण्णं पडियरइ'इति यानि सूर्य आत्मना–स्वयं पूर्वं सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलान्निष्क्रमणकाले इतिशेषः, चीर्णानि प्रतिचरति, तानि च द्विनवतिसङ्ख्यानि मण्डलानि चतुर्भागरूपाणि चीर्णानि प्रतिचरति, न परिपूर्णचतुर्भागमात्राणि, किन्तु स्वस्वमण्डलगतचतुर्विंशत्यधिकशतसत्काष्टादशाष्टादशभागप्रमितानि, ते चाष्टादशाष्टादशभागा न सर्वेष्वपि मण्डलेषु प्रतिनियते एव देशे, किन्तु क्वापि मण्डले कुत्रापि, केवलं दक्षिणपौरस्त्यरूपचतुर्भागमध्ये ततो 'दाहिणपुरत्थिमंसिचउब्भागमंडलंसी'त्युक्तम्, एवमुत्तरेष्वपि मण्डलचतुर्भागेष्वष्टादशभागप्रमितत्वं भावनीयं, स एव भारतः सूर्यस्तेषामेव

१ प्राभृते ३ प्राभृतप्राभृतं

॥ २२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयानां षण्मासानां मध्ये उत्तरपश्चिमे चतुर्भागमण्डले–मण्डलचतुर्भागे एकनवतिसङ्ख्यानि मण्डलानि स्वस्वमण्डल-गतचतुर्विंशत्यधिकशतसत्काष्टादशाष्टादशभागप्रमितानि 'स्वयंमतानि'स्वयं सूर्येण पूर्वं सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलान्निष्क्रम-णकाले चीर्णानि प्रतिचरतीति गम्यते, एतदेव व्याचष्टे–'जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरति'एतत्पूर्ववद् व्याख्येयं, इह सर्वबाह्यान्मण्डलात् शेषाणि मण्डलानि त्र्यशीत्यधिकशतसङ्ख्यानि तानि च द्वाभ्यामपि सूर्याभ्यां द्वितीय-षण्मासमध्ये प्रत्येकं परिभ्रम्यन्ते, सर्वेष्वपि च दिग्विभागेषु प्रत्येकमेकं मण्डलमेकेन सूर्येण परिभ्रम्यते द्वितीयमपरेण एवं यावत्सर्वान्तिमं मण्डलं, तत्र दक्षिणपूर्वदिग्भागे द्वितीयषण्मासमध्ये भारतः सूर्यो द्विनवतिमण्डलानि परिभ्रमति, एकनवतिमण्डलानि ऐरावतः, उत्तरपश्चिमे दिग्विभागे द्विनवतिमण्डलान्यैरावतः परिभ्रमति, एकनवतिमण्डलानि भारतः, एतच्च पट्टिकादौ मण्डलस्थापनां कृत्वा परिभावनीयं, तत उक्तम्–दक्षिणपूर्वे द्विनवतिसङ्ख्यानि मण्डलानि उत्तर-पश्चिमे त्वेकनवतिसङ्ख्यानि भारतः स्वयं चीर्णानि प्रतिचरतीति । तदेवं भारतसूर्यस्य स्वीयं चीर्णप्रतिचरणपरिमाणमु-क्तमिदानीं तस्यैव भारतसूर्यस्य परचीर्णप्रतिचरणपरिमाणमाह–'तत्थ य अयं भारहे'इत्यादि, 'तत्र'जम्बूद्वीपे 'अयं' प्रत्यक्षत उपलभ्यमानो जम्बूद्वीपसम्बन्धी भारतः सूर्यो यस्मिन् मण्डले परिभ्रमति तत्तन्मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन भाग-शतेन छित्त्वा भूयश्च प्राचीनापाचीनायतया उदीच्यदक्षिणायतया च जीवया तत्तन्मण्डलं चतुर्भिर्विभज्य उत्तरपूर्वे ईशाने कोणे इत्यर्थः 'चतुर्भागमण्डले'तस्य तस्य मण्डलस्य चतुर्थे भागे तेषामेव द्वितीयानां षण्मासानां मध्ये ऐराव-तस्य सूर्यस्य द्विनवतिसूर्यमतानि–द्विनवतिसङ्ख्यान्यैरावतेन सूर्येण पूर्वं निष्क्रमणकाले मतीकृतानि प्रतिचरति, एतदेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तीकरोति–'जाइं सूरिए परस्स चिण्णाइं पडिचरइ' यानि सूर्यो भारतः 'परस्स चिन्नाइं'इत्यत्र षष्ठी तृतीयार्थे परेण-ऐरावतेन सूर्येण निष्क्रमणकाले चीर्णानि प्रतिचरति, दक्षिणपश्चिमे च मण्डलचतुर्भागे एकनवतिं—एकनवतिसङ्ख्यानि ऐरावतस्य सूर्यस्येत्यत्रापि सम्बध्यते, ततोऽयमर्थः–ऐरावतस्य सूर्यस्य सम्बन्धीनि सूर्यमतानि, किमुक्तं भवति ?–ऐरावतेन सूर्येण पूर्वं निष्क्रमणकाले मतीकृतानि प्रतिचरति, एतदेवाह—'जाइं सूरिए परस्स चिण्णाइं पडियरइ'एतत्पूर्ववद् व्याख्येयं, अत्राप्येकस्मिन् विभागे द्विनवतिरेकस्मिन् भागे एकनवतिरित्यत्र भावना प्रागिव भावनीया, तदेवं भारतः सूर्यो दक्षिणपूर्वे द्विनवतिसङ्ख्यानि उत्तरपश्चिमे एकनवतिसङ्ख्यानि स्वयं चीर्णानि उत्तरपूर्वे द्विनवतिसङ्ख्यानि दक्षिणपश्चिमे एकनवतिसङ्ख्यान्यैरावतसूर्यचीर्णानि प्रतिचरतीत्युपपादितं, सम्प्रति ऐरावतः सूर्य उत्तरपश्चिमदिग्भागे द्विनवतिसङ्ख्यानि मण्डलानि दक्षिणपूर्वे एकनवतिसङ्ख्यानि स्वयं चीर्णानि दक्षिणपश्चिमे द्विनवतिसङ्ख्यान्युत्तरपूर्वे एकनवतिसङ्ख्यानि भारतसूर्यचीर्णानि प्रतिचरतीत्येतत्प्रतिपादयति–'तत्थ अयं एरवए सूरिए'इत्यादि, एतच्च सकलमपि प्रागुक्तसूत्रव्याख्यानुसारेण स्वयं व्याख्येयं । सम्प्रत्युपसंहारमाह–'ता निक्खममाणा खलु'इत्यादि, अस्यायं भावार्थः—इह भारतः सूर्योऽभ्यन्तरं प्रविशन् प्रतिमण्डलं द्वौ चतुर्भागौ स्वयं चीर्णौ प्रतिचरति द्वौ तु परचीर्णौ ऐरावतोऽप्यभ्यन्तरं प्रविशन् प्रतिमण्डलं द्वौ चतुर्भागौ स्वचीर्णौ प्रतिचरति द्वौ तु परचीर्णाविति सर्वसङ्ख्यया प्रतिमण्डलमेकैकेनाहोरात्रद्वयेन उभयसूर्यचीर्णप्रतिचरणविवक्षायामष्टौ चतुर्भागाः प्रतिचीर्णाः प्राप्यन्ते, ते च चतुर्भागाश्चतुर्विंशत्यधिकशतसत्काष्टादशभागप्रमिताः, एतच्च प्रागेव भावितं, ततोऽष्टादशभिर्गुणिताश्चतुश्चत्वारिंशदधिकं शतं भागानां भवति, तत एतदुक्तं भवति—

॥ २३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४]

दीप अनुक्रम [२८]

'पविसमाणा खलु एए दुवे सूरिया अन्नमन्नस्स चिन्नं पडियरंति, तंजहा–सयमेगं चोयाल'मिति, 'गाहाओ'त्ति, अत्राप्येतदर्थप्रतिपादिकाः काश्चनापि सुप्रसिद्धा गाथा वर्त्तन्ते, ताश्च व्यवच्छिन्ना इति कथयितुं न शक्यन्ते, यो वा यथा सम्प्रदायादवगच्छति तेन तथा वक्तव्याः। यदत्र कुर्वता टीकां, विरुद्धं भाषितं मया। क्षन्तव्यं तत्र तत्त्वज्ञैः, शोध्यं तच्च विशेषतः ॥ १ ॥" इति श्रीमलयगिरिविरचितायां सूर्यप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथमस्य प्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथम-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं ३ समाप्तं

तदेवमुक्तं तृतीयं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति चतुर्थं वक्तव्यं, तस्य चायमर्थाधिकारः कियत्प्रमाणं परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरत इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता केवइयं एए दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमातो छ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थ एगे एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसतं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं चउतीसं जोयणसयं अन्नमन्नस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति आहियत्ति वइज्जा, एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसयं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ३, एवं एगं समुद्दं अण्णमण्णस्स अंतरं

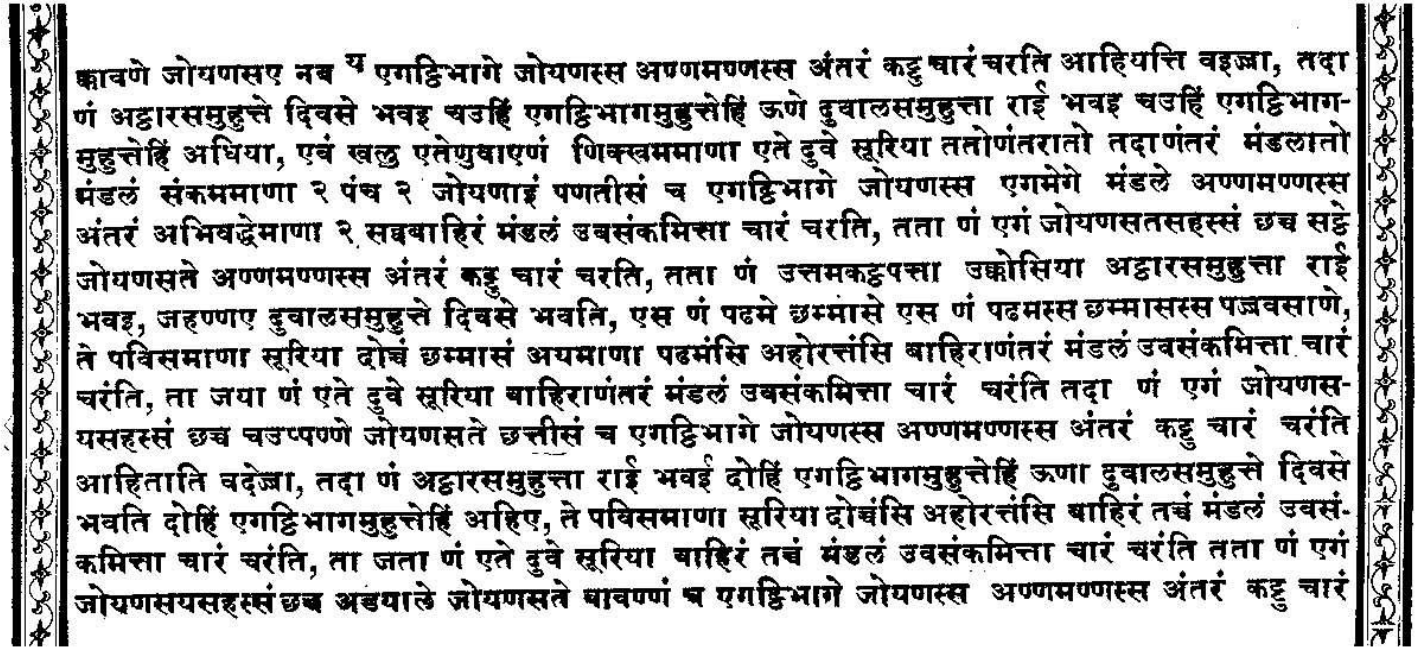
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ३ परिसमाप्तं

अथ प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ४ आरभ्यते

कट्टु ४, एगे० दो दीवे दो समुद्दे अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति आहियाति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ५, एगे पुण एवमाहंसु तिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति आहियाति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ६, वयं पुण एवं वयामो, ता पंच पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभाये जोयणस्स एगमेगे मण्डले अण्णमण्णस्स अंतरं अभिवड्ढेमाणा वा निवड्ढेमाणा वा सूरिया चारं चरंति । तत्थ णं को हेऊ आहितेति वदेज्जा ?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते, ता जया णं एते दुवे सूरिया सबब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तदा णं णवणउतिजोयणसहस्साइं छच्चत्तालं जोयणसते अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति आहितेति वदेज्जा । तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, ते निक्खममाणा सूरिया णवं संवच्छरं अयमाणा पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, ता जता णं एते दुवे सूरिया अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तदा णं नवनवतिं जोयणसहस्साइं छच्च पणताले जोयणसते पणवीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति आहितेति वदेज्जा, तता णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राती भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया, ते णिक्खममाणे सूरिया दोचंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरं तचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तता जता दुवे सूरिया अब्भिंतरं तचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं नवनवइं जोयणसहस्साइं छच्च-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



कावणे जोयणसए नव य एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरति आहियत्ति वइज्जा, तदा णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं अधिया, एवं खलु एतेणुवाएणं णिक्खममाणा एते दुवे सूरिया ततोणंतरातो तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणा २ पंच २ जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अण्णमण्णस्स अंतरं अभिवड्ढेमाणा २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, तता णं एगं जोयणसतसहस्सं छच्च सट्ठे जोयणसते अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरति, तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, ते पविसमाणा सूरिया दोच्चं छम्मासं अयमाणा पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, ता जया णं एते दुवे सूरिया बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तदा णं एगं जोयणस-यसहस्सं छच्च चउप्पण्णे जोयणसते छत्तीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति आहितात्ति वदेज्जा, तदा णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवई दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए, ते पविसमाणा सूरिया दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसं-कमित्ता चारं चरंति, ता जता णं एते दुवे सूरिया बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तता णं एगं जोयणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसते बावण्णं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५]

दीप अनुक्रम [२९]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ २५ ॥

चरंति तता णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए । एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणा एते दुवे सूरिया ततोऽणंतरातो तदाणंतरं मंडलाओ मंडलं संकममाणा पंच २ जोयणाइं पणतीसे एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अण्णमण्णस्संतरं णिवुड्ढेमाणा २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति, जया णं एते दुवे सूरिया सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तता णं णवणउति जोयणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोयणसते अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, एस णं दोच्चे छमासे एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे । (सूत्रं १५) चउत्थं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १–४ ॥

'ता केवइयं एए दुवे सूरिया'इत्यादि, 'ता'इति प्राग्वत्, एतौ द्वावपि सूर्यौ जम्बूद्वीपगतौ कियत्प्रमाणं परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, चरन्तावाख्यातावितिं भगवान् वदेत्, एवं भगवता गौतमेन प्रश्ने कृते सति शेषकुमतविषयतत्त्वबुद्धिव्युदासार्थं परमतरूपाः प्रतिपत्तीर्दर्शयति–'तत्थ खलु इमाओ'इत्यादि, 'तत्र' परस्परमन्तरचिन्तायां खलुनिश्चितमिमाः–वक्ष्यमाणस्वरूपाः षट् प्रतिपत्तयो–यथास्वरुचि वस्त्वभ्युपगमलक्षणास्तैस्तैस्तीर्थान्तरीयैः श्रीयमाणाः प्रज्ञप्ताः, ता एव दर्शयति–'तत्थेगे'इत्यादि, तेषां षण्णां तत्तत्प्रतिपत्तिप्ररूपकाणां तीर्थिकानां मध्ये एके तीर्थान्तरीयाः प्रथमं स्वशिष्यं प्रत्येवमाहुः–'ता एग'मित्यादि, ता इति पूर्ववद्भावनीयः, एकं योजनसहस्रमेकं च त्रयस्त्रिंशदधिकं योजनशतं परस्पर-

१ प्राभृते ४ प्राभृतप्राभृतं ॥ २५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्यान्तरं कृत्वा जम्बुद्वीपे द्वौ सूर्यौ चारं चरतश्चरन्तावाख्यातावितिस्वशिष्येभ्यो वदेत्, अत्रैवोपसंहारमाह–'एके एवमाहु'रिति, एवं सर्वत्राप्यक्षरयोजना कर्त्तव्या, एके पुनर्द्वितीयास्तीर्थान्तरीया एवमाहुः–एकं योजनसहस्रमेकं च चतुस्त्रिंशच्चतुस्त्रिंशदधिकं योजनशतं परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, एके तृतीयाः पुनरेवमाहुः–एकं योजनसहस्रं एकं च पञ्चत्रिंशदधिकं योजनशतं परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, एके पुनश्चतुर्था एवमाहुः–एकं द्वीपं एकं च समुद्रं परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, एके पुनः पञ्चमा एवमाहुः–द्वौ द्वीपौ द्वौ समुद्रौ परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, एके षष्ठाः पुनरेवमाहुः–त्रीन् द्वीपान् त्रीन् समुद्रान् परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरत इति। एते च सर्वे तीर्थान्तरीया मिथ्यावादिनोऽयथातत्त्ववस्तुव्यवस्थापनात्, तथा चाह–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरासादितकेवलज्ञानलाभाः परतीर्थिकव्यवस्थापितवस्तुव्यवस्थाव्युदासेन 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण केवलज्ञानेन यथावस्थितं वस्तुतत्त्वमुपलभ्य वदामः, कथं वदथ यूयं भगवन्त इत्याह–'ता पंचे'त्यादि, 'ता' इति आस्तामन्यद्वक्तव्यं इदं तावत्कथ्यते, द्वावपि सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलान्निष्क्रामन्तौ प्रतिमण्डलं पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य पूर्वपूर्वमण्डलगतान्तरपरिमाणे अभिवर्द्धयन्तौ वाशब्द उत्तरविकल्पापेक्षया समुच्चये 'निवुड्ढेमाणा वा' इति सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं प्रविशन्तौ प्रतिमण्डलं पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य निर्वेष्टयन्तौ पूर्वपूर्वमण्डलगतान्तरपरिमाणात हापयन्तौ, वाशब्दः पूर्वविकल्पापेक्षया समुच्चये, सूर्यौ चारं चरतः, चरन्तावाख्यातावितिस्वशिष्येभ्यो वदेत्, एवमुक्ते भगवान् गौतमो निजशिष्यनिःशङ्कितत्वव्यवस्थापनार्थं भूयः प्रश्नयति–'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र एवंविधायां वस्तुतत्त्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यवस्थाया अवगमे को हेतुः—का उपपत्तिरिति प्रसादं कृत्वा वदेत् ?, भगवानाह—'ता अयन्न'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपस्वरूपप्रतिपादकं वाक्यं पूर्ववत्परिपूर्णं स्वयं परिभावनीयम्, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति वाक्यालङ्कारे एतौ जम्बूद्वीपप्रसिद्धौ भारतैरावतौ द्वावपि सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः तदा नवनवतियोजनसहस्राणि षट् योजनशतानि चत्वारिंशानि—चत्वारिंशदधिकानि परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः चरन्तावाख्यातावितिवदेत्, कथं सर्वाभ्यन्तरे मण्डले द्वयोः सूर्ययोः परस्परमेतावत्प्रमाणमन्तरमिति चेत् ?, उच्यते, इह जम्बूद्वीपो योजनलक्षप्रमाणविष्कम्भस्तत्रैकोऽपि सूर्यो जम्बूद्वीपस्य मध्ये अशीत्यधिकं योजनशतमवगाह्य सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरति, द्वितीयोऽप्यशीत्यधिकं योजनशतमवगाह्य, अशीत्यधिकं च शतं द्वाभ्यां गुणितं त्रीणि शतानि षष्ट्यधिकानि ३६० भवन्ति, एतानि जम्बूद्वीपे विष्कम्भपरिमाणालक्षरूपादपनीयन्ते, ततो यथोक्तमन्तरपरिमाणं भवति, 'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरे द्वयोरपि सूर्ययोश्चरणकाले उत्तमकाष्ठाप्राप्तः—परमप्रकर्षप्राप्तः उत्कर्षकः—उत्कृष्टो अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्या—सर्वजघन्या द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः 'ते निक्खममाणा'इत्यादि ततस्तस्मात्सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तौ द्वावपि सूर्यौ निष्क्रामन्तौ नवं सूर्यसंवत्सरमाददानौ नवस्य सूर्यसंवत्सरस्य प्रथमेऽहोरात्रेऽभ्यन्तरानन्तरमिति सर्वाभ्यन्तरात् मण्डलादनन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः 'ता जया ण'मित्यादि ततो यदा एतौ द्वावपि सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरानन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतस्तदा नवनवतियोजनसहस्राणि षट् शतानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि योजनानां पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्येत्येतावत्प्रमाणं परस्परमन्तरं कृत्वा चारं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरतश्चरन्तावाख्यातावितिवदेत्, तदा कथमेतावत्प्रमाणमन्तरमिति चेत् ?, उच्यते, इह एकोऽपि सूर्यः सर्वाभ्यन्तर-मण्डलगतानष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागान् योजनस्य अपरे च द्वे योजने विकम्प्य सर्वाभ्यन्तरानन्तरे द्वितीये मण्डले चरति, एवं द्वितीयोऽपि, ततो द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येति द्वाभ्यां गुण्यंते, गुणिते च सति पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येति भवति, एतावदधिकं पूर्वमण्डलगतादन्तरपरिमाणादत्र प्राप्यते, ततो यथोक्तमन्तरपरिमाणं भवति, 'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलचार चरणकालेऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, द्वाभ्यां 'एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं'ति मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूनो, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टि-भागाभ्यामधिका, 'ते निक्खममाणा'इत्यादि, ततस्तस्मादपि द्वितीयान्मण्डलान्निष्क्रामन्तौ सूर्यौ नवस्य सूर्यसंवत्सरस्य द्वितीयेऽहोरात्रेऽभ्यन्तरस्य–सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्य तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः 'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा णमिति पूर्ववत्, एतौ द्वौ सूर्यौ अभ्यन्तरतृतीयं–सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्य तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः, 'तदा' तस्मिंस्तृतीयमण्डलचारचरणकाले नवनवतियोजनसहस्राणि षट् च शतानि एकपञ्चाशदधिकानि योजनानां नव चैकषष्टिभागान् योजनस्य परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतश्चरन्तावाख्यातावितिवदेत्, तदा कथमेतावत्प्रमाणम-न्तरकरणमिति चेत् ?, उच्यते, इहाप्येकः सूर्यः सर्वाभ्यन्तरद्वितीयमण्डलगतानष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागान् योजनस्यापरे च द्वे योजने विकम्प्य चारं चरति, द्वितीयोऽपि, ततो द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येति द्वाभ्यां गुण्यते, द्विगुणमेव पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येति भवति, एतावत्पूर्वमण्डलगतादन्तरपरिमाणादत्राधिकं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५]

दीप अनुक्रम [२९]

प्राप्यते इति भवति यथोक्तमत्रान्तरपरिमाणं,'तया ण'मित्यादि, यदा सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात् तृतीये मण्डले चारं चरतस्तदा अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, चतुर्भिः 'एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' प्राकृतत्वात्पदव्यत्यासः, ततोऽयमर्थः—मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूनो, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिश्चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरधिका,'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण खलु निश्चितमेतेनोपायेन प्रतिमण्डलमेकतोऽप्येकः सूर्यो द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् विकम्प्य चारं चरति, अपरतोऽप्यपरः सूर्य इत्येवंरूपेण निष्क्रामन्तौ तौ जम्बूद्वीपगतौ द्वौ सूर्यौ पूर्वस्मात्पूर्वस्मात्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन्तौ एकैकस्मिन् मण्डले पूर्वपूर्वमण्डलगतान्तरपरिमाणापेक्षया पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य परस्परमभिवर्द्धयन्तावभिवर्द्धयन्तौ नवसूर्यसंवत्सरस्य व्यशीत्यधिकशततमेऽहोरात्रे प्रथमषण्मासपर्यवसानभूते सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः, 'ता जया ण'मित्यादि ततो यदा एतौ द्वौ सूर्यौ सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः तदा तावेकं योजनशतसहस्रं षट् च शतानि षष्ट्यधिकानि १००६६० परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, कथमेतदवसेयमिति चेत् ?, उच्यते, इह प्रतिमण्डलं पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येत्यन्तरपरिमाणचिन्तायामभिवर्द्धमानं प्राप्यते, सर्वाभ्यन्तराच्च मण्डलात्सर्वबाह्यं मण्डलं व्यशीत्यधिकशततमं, ततः पञ्च योजनानि व्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि योजनानां ९१५, एकषष्टिभागाश्च पञ्चत्रिंशत्सङ्ख्या अशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते जातानि तेषां चतुःषष्टिशतानि पञ्चोत्तराणि ६४०५, तेषामेकषष्ट्या भागे हृते लब्धं पञ्चोत्तरं योजनशतं १०५, एतत्प्राक्तने योजनराशौ प्रक्षिप्यते, जातानि दश शतानि विंशत्यधिकानि योजनानि १०२०, एतत् सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतोत्तरपरिमाणे

॥ २७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवनवतियोजनसहस्राणि षट् शतानि चत्वारिंशदधिकानि ९९६४० इत्येवंरूपे प्रक्षिप्यते, ततो यथोक्तं सर्वबाह्यमण्डले अन्तरपरिमाणं भवति, 'तया ण'मित्यादि तदा सर्वबाह्यमण्डलचारचरणकाले उत्तमकाष्ठाप्राप्ता–परमप्रकर्षप्राप्ता उत्कृष्टा अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यश्च द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, 'एस णं पढमे छम्मासे'इत्यादि प्राग्वत्, 'ते पविसमाणा'इत्यादि, तौ ततः सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं प्रविशन्तौ द्वौ सूर्यौ द्वितीयं षण्मासमाददानौ द्वितीयस्य षण्मासस्य प्रथमेऽहोरात्रे बाह्यानन्तरं–सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वागनन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतस्तदा एकं योजनशतसहस्रं षट् शतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि षड्विंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्य परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, चरन्तावाख्यातावितिवदेत्, कथमेतावत्तस्मिन् सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तने द्वितीये मण्डले परस्परमन्तरकरणमिति चेत् ?, उच्यते, इहैकोऽपि सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलगतानष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागान् योजनस्यापरे च द्वे योजने अभ्यन्तरं प्रविशन् सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तने द्वितीये मण्डले चारं चरति, अपरोऽपि, ततः सर्वबाह्यगतादष्टाचत्वारिंशदतरपरिमाणाद् अत्रान्तरपरिमाणं पञ्चभिर्योजनैः पञ्चत्रिंशता चैकषष्टिभागैर्योजनस्योनं प्राप्यते इति भवति यथोक्तमत्रान्तरपरिमाणं,'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वबाह्यानन्तरार्वाक्तनद्वितीयमण्डलचारचरणकालेऽष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिकः, 'ते पविसमाणा'इत्यादि, ततस्तस्मादपि सर्वबाह्यमण्डलार्वाक्तनद्वितीयमण्डलादभ्यन्तरं प्रविशन्तौ तौ द्वौ सूर्यौ द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रे 'बाहिरं तच्चं'ति सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः 'ता जया ण'मित्यादि तत्र यदा एतौ द्वौ सूर्यौ सर्वबाह्यान्मण्ड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५]

दीप अनुक्रम [२९]

॥ २८ ॥

लादर्वाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः तदा एकं योजनशतसहस्रं षट् च योजनशतानि अष्टाचत्वारिंशदधिकानि द्विपञ्चाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, प्रागुक्तयुक्त्या पूर्वमण्डलगतादन्तरपरिमाणादत्रान्तरपरिमाणमस्य पञ्चभिर्योजनैः पञ्चत्रिंशता चैकषष्टिभागैर्योजनस्य हीनत्वात्, 'तया ण'मित्यादि, तदा–सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनतृतीयमण्डलचारचरणकालेऽष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसश्चतुर्भिरेकषष्टिभागैर्मुहूर्त्तस्याधिकः। 'एवं खलु'इत्यादि, एवम्–उक्तप्रकारेण खलु–निश्चितमनेनोपायेन एकतोऽप्येकः सूर्योऽभ्यन्तरं प्रविशन् पूर्वपूर्वमण्डलगतादन्तरपरिमाणादनन्तरे अनन्तरे विवक्षिते मण्डले अन्तरपरिमाणस्याष्टाचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् द्वे च योजने वर्धयति हापयत्यपरतोऽप्यपरः सूर्य इत्येवंरूपेण एतौ जम्बूद्वीपगतौ सूर्यौ तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन्तौ सङ्क्रामन्तौ एकैकस्मिन् मण्डले पूर्वपूर्वमण्डलगतादन्तरपरिमाणात् अनन्तरेऽनन्तरे विवक्षिते मण्डले पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य परस्परमन्तरपरिमाणं निर्वेष्टयन्तौ–हापयन्तौ हापयन्तावित्यर्थः, द्वितीयस्य षण्मासस्य त्र्यशीत्यधिकशततमे अहोरात्रे सूर्यसंवत्सरपर्यवसानभूते सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा एतौ द्वौ सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः तदा नवनवतियोजनसहस्राणि षट् योजनशतानि चत्वारिंशानि–चत्वारिंशदधिकानि परस्परमन्तरं कृत्वा चारं चरतः, अत्र चैवं रूपान्तरपरिमाणे भावना प्रागेव कृता, शेषं सुगमम् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथम-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं ४ समाप्तं

॥ २८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ४ परिसमाप्तं

तदेवमुक्तं चतुर्थं प्राभृतप्राभृतं सम्प्रति पञ्चममारभ्यते, तस्य चायं पूर्वमुपदर्शितोऽर्थाधिकारो–यथा कियन्तं द्वीपं समुद्रं वा सूर्योऽवगाहते इति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता केवतियं ते दीवं समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, आहितातिवदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ–एगे एवमाहंसु ता एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसतं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु १, एगे, पुण एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं चउत्तीसं जोयणसयं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसतं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु–ता अवद्धं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसतं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति ५, तत्थ जे ते एवमाहंसु ता एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसतं दीवं वा समुद्दं वा उग्गाहित्ता सूरिए चारं चरति, ते एवमाहंसु, जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं जंबुद्दीवं एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसतं ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवई, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं लवणसमुद्दं एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता चारं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ५ आरभ्यते

चरइ, तया णं लवणसमुद्दं एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णिए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। एवं चोत्तीसं जोयणसतं। एवं पणतीसं जोयणसतं। (पणतीसेऽवि एवं चेव भाणियव्वं) तत्थ जे ते एवमाहंसु ता अवड्ढं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, ते एवमाहंसु–जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, तता णं अवड्ढं जंबुदीवं २ ओगाहित्ता चारं चरति, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, एवं सव्वबाहिरएवि, णवरं अवड्ढं लवणसमुद्दं, तता णं राईदियं तहेव, तत्थ जे ते एवमाहंसु–ता णो किञ्चि दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, ते एवमाहंसु–ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं णो किंचि दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, तहेव एवं सव्वबाहिरए मंडले, णवरं णो किंचि लवणसमुद्दं ओगाहित्ता चारं चरति, रातिंदियं तहेव, एगे एवमाहंसु (सूत्रं १६) ॥

'ता केवइयं दीवं समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, 'कियन्तं' कियत्प्रमाणं द्वीपं समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यश्चारं चरति, चरन्नाख्यात इति वदेत्, एवं प्रश्नकरणादनन्तरं भगवान्निर्वचनमभिधातुकाम एतद्विषये परतीर्थिकप्रतिपत्तिमिथ्याभावोपदर्शनार्थं प्रथमतस्ता एव परतीर्थिकप्रतिपत्तीः सामान्यत उपन्यस्यति–'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र सूर्यस्य चारं चरतो द्वीपसमुद्रावगाहनविषये खल्विमाः–वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्च प्रतिपत्तयः-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परमतरूपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एके तीर्थान्तरीया एवमाहुः—ता इति तावच्छब्दस्तेषां तीर्थान्तरीयानां प्रभूतवक्तव्यतोपक्रमे क्रमोपदर्शनार्थः एकं योजनसहस्रमेकं च त्रयस्त्रिंशदधिकं योजनशतं द्वीपं समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यश्चारं चरति, किमुक्तं भवति ?—यदा सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकं योजनसहस्रमेकं च त्रयस्त्रिंशदधिकं योजनशतं जम्बूद्वीपमवगाह्य चारं चरति, तदा च परमप्रकर्षप्राप्तोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सर्वजघन्या च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, यदा तु सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरितुमारभते तदा लवणसमुद्रमेकं योजनसहस्रमेकं च त्रयस्त्रिंशदधिकं योजनशतमवगाह्य सूर्यश्चारं चरति, तदा चोत्तमकाष्ठाप्राप्ता अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिर्भवति, सर्वजघन्यो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः, अत्रैवोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनर्द्वितीया एवमाहुः,'ता' इति पूर्ववत्, एकं योजनसहस्रमेकं च चतुस्त्रिंशदधिकं योजनशतं द्वीपं समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यश्चारं चरति, भावना प्राग्वत्, अत्रैवोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु', एके पुनस्तृतीया एवमाहुः—एकं योजनसहस्रमेकं च पंचत्रिंशदधिकं योजनशतमवगाह्य सूर्यश्चारं चरति अत्रापि भावना प्रागिव,अत्रैवोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' एके पुनश्चतुर्थास्तीर्थान्तरीया एवमाहुः,'अवड्ढं'ति अपगतं सदप्यवगाहाभावतो न विवक्षितमर्द्धं यस्य तमपार्द्धमर्द्धहीनमर्द्धमात्रमित्यर्थः, द्वीपं समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यश्चारं चरति, इयमत्र भावना—यदा सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य सूर्यश्चारं चरति तदा अर्द्धं जम्बूद्वीपमवगाहते, तदा च दिवसः परमप्रकर्षप्राप्तोऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो भवति,सर्वजघन्या च द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिः, यदा पुनः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य सूर्यश्चारं चरति तदा अर्द्धं अपरिपूर्णं लवणसमुद्रमवगाहते, तदा च सर्वोत्कर्षकाष्ठाप्राप्ता अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिः सर्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥ ३० ॥

जघन्यो द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, अत्रैवोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु'४, एके पुनः पञ्चमास्तीर्थान्तरीया एवमाहुः—न किञ्चिद् द्वीपं समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यश्चारं चरति, अत्रायं भावार्थः—यदापि सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य सूर्यश्चारं चरति तदापि न किमपि जम्बूद्वीपमवगाहते, किं पुनः शेषमण्डलपरिभ्रमणकाले, यदापि सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य सूर्यश्चारं चरति तदापि न लवणसमुद्रं किमप्यवगाहते, किं पुनः शेषमण्डलपरिभ्रमणकाले, किन्तु द्वीपसमुद्रयोरपान्तराल एव सकलेष्वपि मण्डलेषु चारं चरति, अत्रोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' ५। तदेवमुक्ता उद्देशतः पञ्चापि प्रतिपत्तयः, सम्प्रत्येता एव स्पष्टं भावयति—

'तत्थ जे ते एवमाहंसु'इत्यादि, प्रायः समस्तमपीदं व्याख्यातार्थं सुगमं च, नवरं.'चोत्तीसेवि'त्ति एवं त्रयस्त्रिंशदधिकयोजनशतविषयप्रतिपत्तिवत् चतुस्त्रिंशे शते या प्रतिपत्तिस्तस्यामालापको वक्तव्यः, स चैवम्—'तत्थ जे ते एवमाहंसु एगं जोयणसहस्सं एगं च चउतीसं जोयणसयं दीवं समुद्दं वा ओगाहित्ता चारं चरइ, ते एवमाहंसु जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं जंबुद्दीवं एगं जोयणसहस्समेगं च चोत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं लवणसमुद्दं एगं जोयणसहस्सं एगं चोत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता चारं चरति, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' 'पणतीसे वि एवं चेव भाणियव्वं' एवमुक्तेन प्रकारेण पञ्चत्रिंशदधिकयोजनशतविषयायामपि प्रतिपत्तौ सूत्रं भणितव्यं, तच्च सुगमत्वात्स्वयं भावनीयं

१ प्राभृते ५ प्राभृत प्राभृतं

॥ ३० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'एवं सव्वबाहिरेवि'त्ति एवं सर्वाभ्यन्तरमण्डल इव सर्वबाह्येऽपि मण्डले आलापको वक्तव्यः, नवरं जम्बूद्वीपस्थाने 'अवद्धलवणसमुद्दं ओगाहित्ता' इति वक्तव्यं, तच्चैवम्—'जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं अवड्ढं लवणसमुद्दं ओगाहित्ता चारं चरति, तया णं राईदियप्पमाणउब्भासगत्ति,' 'तया ण'मिति वचनपूर्वकं रात्रिन्दिवपरिमाणं जबूद्वीपापेक्षया विपरीतं वक्तव्यं, यज्जम्बूद्वीपावगाहे दिवसप्रमाणमुक्तं तद्रात्रेर्द्रष्टव्यं यद्रात्रेस्तद्दिवसस्य, तच्चैवम्–'तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहन्ने दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ', एवमुत्तरसूत्रेऽप्यक्षरयोजना भावनीया। तदेवं परतीर्थिकप्रतिपत्तीरुपदर्श्य सम्प्रत्येतासां मिथ्याभावोपदर्शनार्थं स्वमतमुपदर्शयति—

वयं पुण एवं वदामो, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, तता णं जंबुद्दीवं असीतं जोयणसतं ओगाहित्ता चारं चरति, तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, एवं सव्वबाहिरेवि, णवरं लवणसमुद्दं तिण्णि तीसे जोयणसते ओगाहित्ता चारं चरति, तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, गाथाओ भाणितव्वाओ। (सूत्रं १७) पढमस्स पंचमं पाहुडपाहुडं ॥ १–५ ॥

'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलज्ञानदर्शना 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह—यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा जम्बूद्वीपमशीत्यधिकं योजनशतमवगाह्य चारं चरति, तदा चोत्तमकाष्ठाप्राप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [३१]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ३१ ॥

उत्कर्षकोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सर्वजघन्या द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, 'एवं सव्वबाहिरेवि'त्ति एवं सर्वाभ्यन्तरमण्डल इव सर्वबाह्येऽपि मण्डले आलापको वक्तव्यः, स चैवम्—'जया णं सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ', इति, नवरमिति सर्वबाह्यमण्डलगतादालापकादस्यालापकस्य विशेषोपदर्शनार्थः, तमेव विशेषमाह—'तया णं लवणसमुद्दं तिन्नि तीसे जोयणसए ओगाहित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' इति, इदं च सुगमं, क्वचित्तु 'सव्वबाहिरेवी' त्यतिदेशमन्तरेण सकलमपि सूत्रं साक्षाल्लिखितं दृश्यते,'गाहाओ भाणियव्वाओ' अत्रापि काश्चन प्रसिद्धा विवक्षितार्थसङ्ग्राहिका गाथाः सन्ति ता भाणितव्याः, ताश्च सम्प्रति व्यवच्छिन्ना इति न कथयितुं व्याख्यातुं वा शक्यन्ते, यथासम्प्रदायं वाच्या इति ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथम-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं ५ समाप्तं

तदेवमुक्तं पञ्चमं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति षष्ठं वक्तव्यं, तस्य चायमर्थाधिकारः—कियन्मात्रं क्षेत्रमेकेन रात्रिन्दिवेन सूर्यो विकम्पते इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता केवतियं (ते) एगमेगेणं रातिंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति आहितेत्ति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ सत्त पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु–ता दो जोयणाइं अद्धदुचत्तालीसं तेसीतसयभागे जोयणस्स एगमेगेणं रातिंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु–

१ प्राभृते-५ प्राभृत-प्राभृतं

॥ ३१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ५ परिसमाप्तं अथ प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ६ आरभ्यते

ता अद्धातिजाइं जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु ता तिभागूणाइं तिन्नि जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु–ता तिण्णि जोयणाइं अद्धसीतालीसं च तेसीतिसयभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु–ता अद्धुट्ठाइं जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ५, एगे पुण एवमाहंसु, ता चउब्भागूणाइं चत्तारि जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति एगे एवमाहंसु ६, एगे पुण एवमाहंसु–ता चत्तारि जोयणाइं अद्धबावण्णं च तेसीतिसतभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति एगे एवमाहंसु ७। वयं पुण एवं वदामो ता दो जोयणाइं अडतालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मंडलं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, तत्थ णं को हेतू हतिवदेज्जा ?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव परिक्खेवेणं पन्नत्ते, ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता चारं चरति, तता णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [३२]

सूयप्रज्ञ-सिवृत्तिः (मल०) ॥ ३२ ॥

अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया। से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स दोहिं राइंदिएहिं विकंपइत्ता चारं चरति, तता णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया, एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तताणंतराओ तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ दो जोयणाइं अडतालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मंडलं एगमेगेणं राइंदिएणं विकम्पमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरातो मंडलातो सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं सव्वब्भंतरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीतेणं राइंदियसतेणं पंचदसुत्तरजोयणसते विकंपइत्ता चारं चरति, तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, एस णं पढमछम्मासे एस णं पढमछम्मासस्स पज्जवसाणे, से य पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ता जता णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं दो दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणसए एगेणं राइंदिएणं विकम्पइत्ता चारं चरति, तता णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ते-

१ प्राभृते ६ प्राभृत-प्राभृतं

॥ ३२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [३२]

दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागेहिं मुहुत्तेहिं अहिए, से पविसमाणे सूरिए दोचंसि अहोरत्तंसि बाहिरतचंसि मंडलंसि उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिरतचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं सूरिए बाहिरतचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, तया णं पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स दोहिं राइंदिएहि विकंपइत्ता चारं चरति, राइंदिए तहेव, एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए ततोऽणंतरातो तयाणंतरं च णं मंडलं संकममाणे २ दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरातो मंडलातो सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिधाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसतेणं पंचदसुत्तरे जोयणसते विकंपइत्ता चारं चरति, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, एस णं दोचे छम्मासे एस णं दोचस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, एस णं आदिचे संवच्छरे एस णं आदिचस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे (सूत्रं १८) छट्ठं पाहुडपाहुडं ॥ १–६ ॥

'ता केवइयं ते एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् , कियत्प्रमाणं क्षेत्रमिति गम्यते, 'एगमेगेणं' ति अत्र प्रथमादेकशब्दान्मकारोऽलाक्षणिकस्ततोऽयमर्थः–एकैकेन रात्रिन्दिवेन–अहोरात्रेण विकम्प्य विकम्प्य विकम्पनं नाम स्वस्वमण्डलाद्बहिरवष्वष्कणमभ्यन्तरप्रवेशनं वा सूर्यः–आदित्यश्चारं चरति, चारं चरन् आख्यात इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वदेत् ?, एवं भगवता गौतमेन प्रश्ने कृते सति एतद्विषयपरतीर्थिकप्रतिपत्तिमिथ्याभावोपदर्शनाय प्रथमतस्ता एव प्ररूपयति–'तत्थे'त्यादि, 'तत्र' सूर्यविकम्पविषये खल्विमाः सप्त प्रतिपत्तयः–परमतरूपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'तत्थेगे'त्यादि, 'तत्र' तेषां सप्तानां प्रवादिनां मध्ये एके एवमाहुः, द्वे योजने अर्द्धो द्वाचत्वारिंशत्–द्वाचत्वारिंशत्तमो येषां ते अर्द्धद्वाचत्वारिंशतस्तान् सार्द्धैकचत्वारिंशत्सङ्ख्यानित्यर्थः, त्र्यशीत्यधिकशतभागान् योजनस्य, किमुक्तं भवति ?–त्र्यशीत्यधिकशतसङ्ख्यैर्भागैः प्रविभक्तस्य योजनस्य सम्बन्धिनोऽर्द्धाधिकैकचत्वारिंशत्सङ्ख्यान् भागान् एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य विकम्प्य सूर्यश्चारं चरति, अत्रैवोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' । एके पुनर्द्वितीया एवमाहुः, अर्द्धतृतीयानि योजनानि एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यश्चारं चरति, अत्राप्युपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' २ । एके पुनस्तृतीया एवमाहुः—त्रिभागोनानि त्रीणि योजनानि एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यश्चारं चरति, अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ३, एके पुनश्चतुर्थास्तीर्थान्तरीया एवमाहुः—त्रीणि योजनानि अर्द्धसप्तचत्वारिंशतश्च, सार्द्धषट्चत्वारिंशतश्चेत्यर्थः, त्र्यशीत्यधिकशतभागान् योजनस्य एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यश्चारं चरति, अत्रैवोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' ४। एके पुनः पञ्चमा एवमाहुः–अर्द्धचतुर्थानि योजनानि एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यश्चारं चरति, अत्रोपसंहारवाक्यं 'एगे एवमाहंसु' ५, एके पुनः षष्ठास्तीर्थान्तरीया एवमाहुः–चतुर्भागोनानि चत्वारि योजनानि एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यश्चारं चरति, अत्रोपसंहारवाक्यं 'एगे एवमाहंसु' ६, एके पुनः सप्तमा एवमाहुः—चत्वारि योजनानि अर्द्धपञ्चाशतश्च–सार्द्धैकपञ्चाशत्सङ्ख्यांश्च त्र्यशीत्यधिकशतभागान् योजनस्य एकैकेन रात्रिन्दिवेन सूर्यो विकम्प्य २ चारं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरति अत्रोपसंहारवाक्यं 'एगे एवमाहंसु' । तदेवं मिथ्यारूपाः परप्रतिपत्तीरुपदर्श्य सम्प्रति स्वमतं भगवानुपदर्शयति—'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरेवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण केवलज्ञानोपलम्भपुरस्सरं वदामः, यदुत द्वे द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशच्चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन रात्रिन्दिवेन सूर्यो विकम्प्य २ चारं चरति, चारं चरन् आख्यात इति वदेत्, साम्प्रतमस्यैव वाक्यस्य स्पष्टावगमनिमित्तं प्रश्नसूत्रमुपन्यस्यति—'तत्थ को हेतू इति वएज्जा' तत्र–एवंविधवस्तुतत्त्वावगतौ को हेतुः १,–का उपपत्तिरिति वदेत् भगवान्, एवमुक्ते भगवानाह—'ता अयण्ण'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपवाक्यं पूर्ववत् परिपूर्णं पठनीयं व्याख्यानीयं च, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्तः–परमप्रकर्षप्राप्त उत्कर्षकः–उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्या च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, 'से निक्खममाणे'इत्यादि, ततः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलान्निष्क्रामन् स सूर्यो नवं संवत्सरमाददानो नवस्य संवत्सरस्य प्रथमेऽहोरात्रे 'अब्भिंतराणंतरं'ति सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्यानन्तरं–बहिर्भूतं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा तस्मिन्नवसंवत्सरसत्के प्रथमेऽहोरात्रे सर्वाभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य सूर्यश्चारं चरति, चारं चरितुमारभते, 'तदा ण'मिति प्राग्वत्, द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन रात्रिन्दिवेन पाश्चात्येनाहोरात्रेण विकम्प्य चारं चरति, इयमत्र भावना–सर्वाभ्यन्तरे मण्डले प्रविष्टः सन् प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैस्तदनन्तरं द्वितीयमण्डलाभिमुखं तथा कथंचन मण्डलगत्या परिभ्रमति यथा तस्याहोरात्रस्य पर्यन्ते सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतान् अष्टाचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् योजनस्यापरे च द्वे योजने अतिक्रान्तो भवति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [३२]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ३४ ॥

ततो द्वितीयेऽहोरात्रे प्रथमक्षणे एव द्वितीयमण्डलमुपसम्पन्नो भवति, तत उक्तम्—'तया णं दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता सूरिए चारं चरति', 'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलचारचरणकाले णमिति पूर्ववत् अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूनः द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिका, तस्मिन्नपि द्वितीये मण्डले प्रथमक्षणादूर्ध्वं तथा कथञ्चनापि तृतीयमण्डलाभिमुखं मण्डलपरिभ्रमणगत्या चारं चरति यथा तस्याहोरात्रस्य पर्यन्ते द्वितीयमण्डलगतानष्टाचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् योजनस्यापरे च तद्बहिर्भूते द्वे योजने अतिक्रान्तो भवति, ततो नवसंवत्सरस्य द्वितीयेऽहोरात्रे प्रथमक्षण एव तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रामति, तथा चाह—'से निक्खममाणे'इत्यादि, स सूर्यो द्वितीयान्मण्डलात्प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैर्निष्क्रामन्–बहिर्मुखं परिभ्रमन् नवसंवत्सरसत्के द्वितीयेऽहोरात्रे 'अब्भिंतरतच्चं'ति सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीयमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तदा द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां यावत्प्रमाणं क्षेत्रं विकम्प्य चारं चरति तावन्निरूपयितुमाह—'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां सर्वाभ्यन्तरमण्डलगततदनन्तरद्वितीयमण्डलगताभ्यां पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य विकम्प्य, तथाहि–एकेनाप्यहोरात्रेण द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशच्च योजनस्यैकषष्टिभागा विकम्पिता द्वितीयेनाप्यहोरात्रेण, तत उभयमीलने यथोक्तं विकम्पपरिमाणं भवति, एतावन्मात्रं विकम्प्य चारं चरति, 'तया ण'मित्यादि, रात्रिन्दिवपरिमाणं सुगमं, सम्प्रति शेषमण्डलेषु गमनमाह—'एवं खलु'इत्यादि, एवं–उक्तेन प्रका-

१ प्राभृते ६ प्राभृतप्राभृते ॥ ३४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रेण खलु–निश्चितमेतेनोपायेन तत्तन्मण्डलप्रवेशप्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैस्तत्तद्बहिर्भूतमण्डलाभिमुखगमनरूपेण तस्मात्तन्मण्डलान्निष्क्रामन् तदनन्तरान्मडलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २ एकैकेन रात्रिन्दिवेन द्वे द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य विकम्पयन् २ प्रथमषण्मासपर्यवसानभूते त्र्यशीत्यधिकशततमे अहोरात्रे सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण'मित्यादि, सुगमं, 'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं प्रणिधाय–अवधीकृत्य तत्तद्गतमहोरात्रमादि कृत्वा इत्यर्थः, त्र्यशीतेन–त्र्यशीत्यधिकेन रात्रिन्दिवशतेन पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि विकम्प्य, तथाहि–एकैकस्मिन्नहोरात्रे द्वे द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य विकम्पयति, ततो द्वे द्वे योजने त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्येते, जातानि त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि ३६६, येऽपि चाष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा (ग्रंथाग्रं १०००) स्तेऽपि त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातानि सप्ताशीतिशतानि चतुरशीत्यधिकानि ८७८४, तेषां योजनानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धं चतुश्चत्वारिंशं योजनशतं १४४, एतत्पूर्वस्मिन् योजनराशौ प्रक्षिप्यते, जातानि पञ्च शतानि दशोत्तराणि ५१०, एतावत्प्रमाणं विकम्प्य चारं चरति, 'तया ण'मित्यादि, रात्रिन्दिवपरिमाणं सुगमं, सर्वबाह्ये च मण्डले प्रविष्टः सन् प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैरभ्यन्तरसर्वबाह्यानन्तरद्वितीयमण्डलाभिमुखं तथा कथञ्चनापि मण्डलगत्या परिभ्रमति येन प्रथमषण्मासपर्यवसानभूताहोरात्रपर्यवसाने सर्वबाह्यमण्डलगतानष्टाचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् योजनस्यापरे च द्वे योजने अतिक्रम्य सर्वबाह्यानन्तरद्वितीयमण्डलसीमायां वर्त्तते, ततोऽनन्तरे द्वितीयस्य षण्मासस्य प्रथमेऽहोरात्रे प्रथमक्षणे सर्वबाह्यानन्तरं द्वितीयमभ्यन्तरं मण्डलं प्रविशति, तथा चाह—'से पविसमाणे'इत्यादि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [३२]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ३५ ॥

स सूर्यः सर्वबाह्यान्मण्डलादुक्तप्रकारेणाभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयषण्मासस्य प्रथमेऽहोरात्रे 'बाहिराणंतरं'ति सर्वबाह्यस्य मण्डलस्याभ्यन्तरं द्वितीयमनन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण'मित्यादि, ता इति–तत्र यदा सूर्यो बाह्यानन्तरं–सर्वबाह्यमण्डलानन्तरमभ्यन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकेन रात्रिन्दिवेन सर्वबाह्यमण्डलगतेन प्रथमषण्मासपर्यवसानभूतेन द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य विकम्प्य, एतच्चानन्तरमेव भावितं, चारं चरति–चारं प्रतिपद्यते, 'तया ण'मित्यादि, रात्रिन्दिवपरिमाणं सुगमं, 'से पविसमाणे'इत्यादि, स सूर्यः सर्वबाह्यानन्तराभ्यन्तरद्वितीयमण्डलादपि प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैरभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रे 'बाहिरतचं'ति सर्वबाह्यस्य मण्डलस्याभ्यन्तरं तृतीयमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं तृतीयमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां सर्वबाह्यमण्डलगत-सर्वबाह्यानन्तरद्वितीयमण्डलगताभ्यां पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य विकम्प्य तथा एकेनाप्यहोरात्रेण प्रथमषण्मासपर्यवसानभूतेन द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य विकम्पयति, द्वितीयेनाप्यहोरात्रेण द्वितीयषण्मासप्रथमेन, तत उभयमीलने यथोक्तं विकम्पपरिमाणं भवति, 'तया ण'मित्यादि, रात्रिन्दिवपरिमाणं सुगमं, 'एवं खलु एएण उवाएणं पविसमाणे'इत्यादि सूत्रं प्रागुक्तसूत्रानुसारेण स्वयं परिभावनीयम् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथम-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं ६ समाप्तं

१ प्राभृते ६ प्राभृत-प्राभृतं

॥ ३५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ६ परिसमाप्तं

तदेवमुक्तं षष्ठं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति सप्तममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः पूर्वमुद्दिष्टो–यथा 'मण्डलानां संस्थानं वक्तव्य'मिति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते मंडलसंठिती आहितातिवदेज्जा १, तत्थ खलु इमातो अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु–ता सव्वावि मंडलवता समचउरंससंठाणसंठिता पं० एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु, ता सव्वावि णं मंडलवता विसमचउरंससंठाणसंठिया पण्णत्ता एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु सव्वावि णं मंडलवया समचदुक्कोणसंठिता पं० एगे ए० ३, एगे पुण एवमाहंसु सव्वावि मंडलवता विसमचउक्कोणसंठिया पं० एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु–ता सव्वावि मंडलवया समचक्कवालसंठिया पं० एगे एवमाहंसु ५, एगे पुण एवमाहंसु–ता सव्वावि मंडलवता विसमचक्कवालसंठिया प० एगे एवमाहंसु ६, एगे पुण एवमाहंसु–ता सव्वावि मंडलवता चक्कद्धवालसंठिया पं० एगे एवमाहंसु ७, एगे पुण एवमाहंसु–ता सव्वावि मंडलवता छत्तागारसंठिया पं० एगे एवमाहंसु, तत्थ जेते एवमाहंसु ता सव्वावि मंडलवता छत्ताकारसंठिता पं० एतेणं णएणं णायव्वं, णो चेव णं इतरेहिं, पाहुडगाहाओ भाणियव्वाओ (सूत्रं १९) ॥ पढमस्स पाहुडस्स सत्तमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १–७ ॥

'ता कहं ते मंडलसंठिई'इत्यादि, 'ता'इति पूर्ववत्, कथं भगवन्! तत्त्वया मण्डलसंस्थितिराख्याता इति भगवान् वदेत्, एवं भगवता गौतमेन प्रश्ने कृते सत्येतद्विषयपरतीर्थिकप्रतिपत्तीनां मिथ्याभावोपदर्शनार्थं प्रथमतस्ता एवोप-

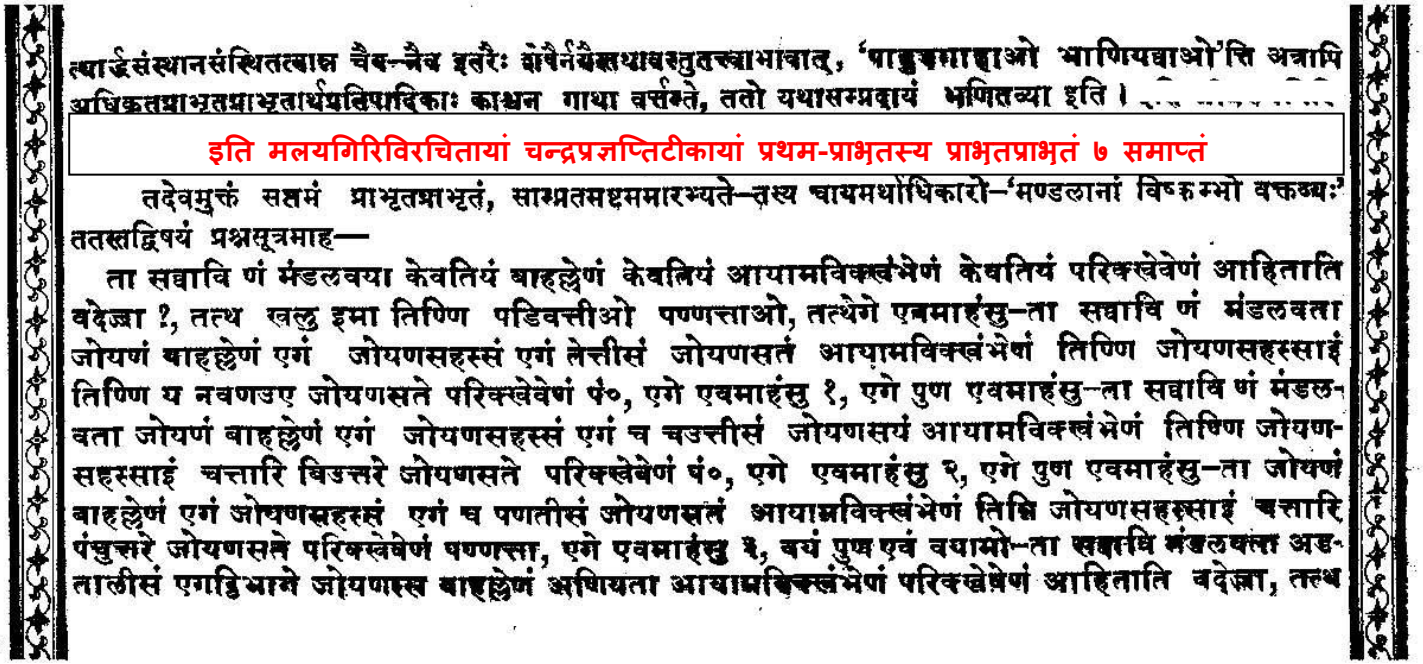
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ७ आरभ्यते

दर्शयति–'तत्थ खलु'इत्यादि, 'तत्र' तस्यां मण्डलसंस्थितौ विषये खल्विमा–वक्ष्यमाणस्वरूपा अष्टौ प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र तेषामष्टानां परतीर्थिकानां मध्ये एके–प्रथमे तीर्थान्तरीया एवमाहुः, 'ता'इति तेषामेव तीर्थान्तरीयाणामभिनेकवक्तव्यतोपक्रमे क्रमोपदर्शनार्थः, 'सव्वावि मंडलवय'त्ति मण्डलं–मण्डलपरिभ्रमणमेषामस्तीति मण्डलवन्ति चन्द्रादिविमानानि तद्भावो मण्डलवत्ता, तत्राभेदोपचारात् यानि चन्द्रादिविमानानि तान्येव मण्डलवत्ता इत्युच्यन्ते, तथा चाह–सर्वा अपि–समस्ता मण्डलवत्ता–मण्डलपरिभ्रमणवन्ति चन्द्रादिविमानानि, समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' एवं सर्वाण्युपसंहारवाक्यानि भावनीयानि, एके पुनर्द्वितीया एवमाहुः–सर्वा अपि मण्डलवत्ता विषमचतुरस्रसंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः २, तृतीया एवमाहुः–सर्वा अपि मण्डलवत्ताः समचतुष्कोणसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः ३, चतुर्था आहुः–सर्वा अपि मण्डलवत्ता विषमचतुष्कोणसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः ४, पञ्चमा आहुः–सर्वा अपि मण्डलवत्ताः समचक्रवालसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः ५, षष्ठा आहुः–सर्वा अपि मण्डलवत्ता विषमचक्रवालसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः ६, सप्तमा आहुः–सर्वा अपि मण्डलवत्ताश्चक्रार्द्धचक्रवालसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः ७, अष्टमा पुनराहुः–सर्वा अपि मण्डलवत्ताश्छत्राकारसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः–उत्तानीकृतछत्राकारसंस्थिताः, एवमष्टावपि परप्रतिपत्तीरुपदर्श्य सम्प्रति स्वमतमुपदिदर्शयिषुराह–'तत्थ'इत्यादि, तत्र–तेषामष्टानां तीर्थान्तरीयाणां मध्ये ये एवमाहुः–सर्वा अपि मण्डलवत्ताश्छत्राकारसंस्थिताः प्रज्ञप्ता इति, एतेन नयेन, नयो नाम प्रतिनियतैकवस्त्वंशविषयोऽभिप्रायविशेषो, यदाहुः समन्तभद्रादयो–'नयो ज्ञातुरभिप्राय' इति, तत एतेन नयेन–एतेनाभिप्रायविशेषेण सर्वमपि चन्द्रादिविमानज्ञानं ज्ञातव्यं, सर्वेषामप्युत्तानीकृतकपि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१९] दीप अनुक्रम [३३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:



त्यार्द्धसंस्थानसंस्थितत्वान्न चैव-नैव इतरैः सर्वैर्नयैस्तथावस्तुतत्त्वाभावात्, 'पाहुडमाहाओ भाणियव्वाओ'त्ति अत्रापि अधिकृतप्राभृतप्राभृतार्थप्रतिपादिकाः काश्चन गाथा वर्त्तन्ते, ततो यथासम्प्रदायं भणितव्या इति ।

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथम-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं ७ समाप्तं

तदेवमुक्तं सप्तमं प्राभृतप्राभृतं, साम्प्रतमष्टममारभ्यते–तस्य चायमर्थाधिकारो–'मण्डलानां विष्कम्भो वक्तव्यः' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता सवावि णं मंडलवया केवतियं बाहल्लेणं केवतियं आयामविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं आहितात्ति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमा तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु–ता सवावि णं मंडलवता जोयणं बाहल्लेणं एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसतं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसहस्साइं तिण्णि य नवणउए जोयणसते परिक्खेवेणं पं०, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु–ता सवावि णं मंडलवता जोयणं बाहल्लेणं एगं जोयणसहस्सं एगं च चउत्तीसं जोयणसयं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसहस्साइं चत्तारि बिउत्तरे जोयणसते परिक्खेवेणं पं०, एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु–ता जोयणं बाहल्लेणं एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसतं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसहस्साइं चत्तारि पंचुत्तरे जोयणसते परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ३, वयं पुण एवं वयामो–ता सवावि मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं अणियता आयामविक्खंभेणं परिक्खेवेणं आहितात्ति वदेज्जा, तत्थ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ७ परिसमाप्तं अथ प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ८ आरभ्यते

सूर्यप्रज्ञ-सिवृत्तिः (मल०)

॥ ३७ ॥

णं को हेऊत्ति वदेज्जा १, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव परिक्खेवेणं, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं सा मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं णवणउइजोयणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोयणसते आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसतसहस्साइं पण्णरसजोयणसहस्साइं एगूणणउतिं जोयणाइं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं सा मंडलवता अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं णवणवई जोयणसहस्साइं छच्च पणताले जोयणसते पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसतसहस्साइं पन्नरसं च सहस्साइं एगं चउत्तरं जोयणसतं किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं तदा णं दिवसरातिप्पमाणं तहेव । से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं सा मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं णवणवतिजोयणसहस्साइं छच्च एक्कावण्णे जोयणसते णव य एगट्ठिभागा जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पन्नरस य सहस्साइं एगं च पणवीसं जोयणसयं परिक्खेवेणं पं०, तता णं दिवसराई तहेव, एवं खलु एतेण णएणं निक्खममाणे सूरिए तताणंतरातो तदाणं-

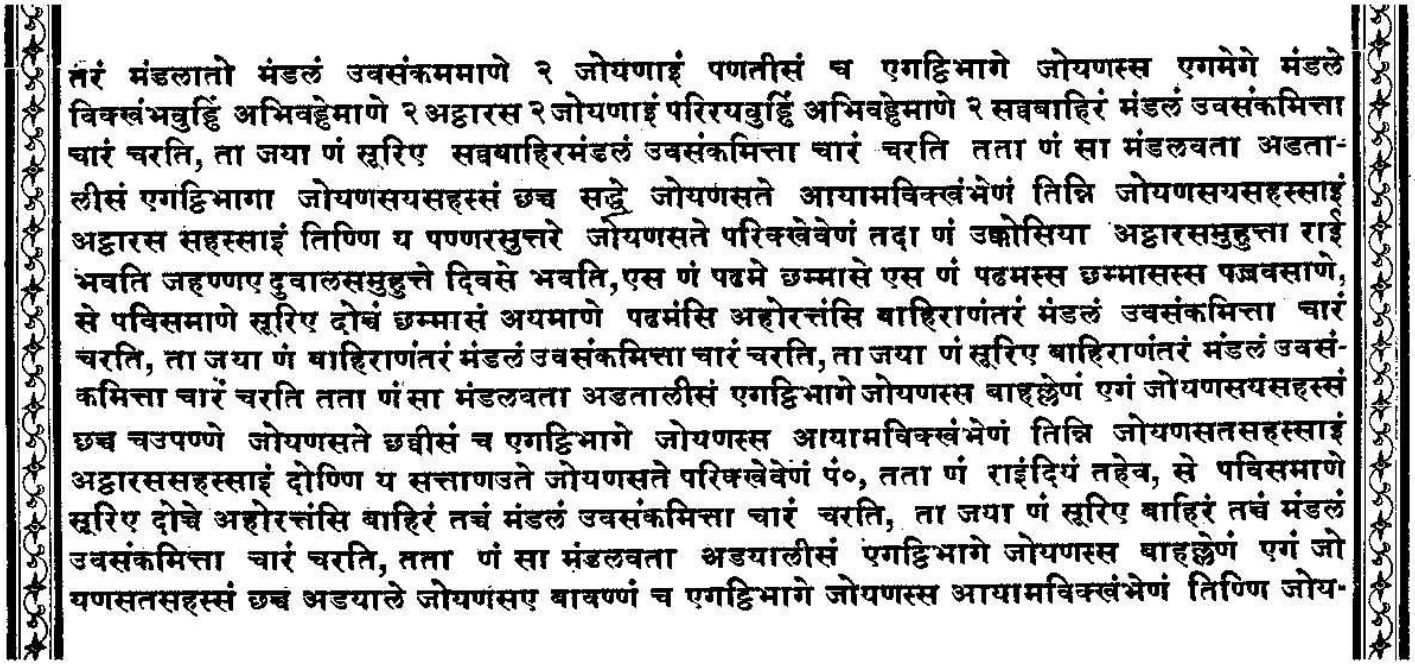
१ प्राभृते-८ प्राभृत-प्राभृतं

॥ ३७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३४]



तरं मंडलातो मंडलं उवसंकममाणे २ जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २ अट्ठारस २ जोयणाइं परिरयवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं सा मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागा जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोयणसते आयामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं तिण्णि य पण्णरसुत्तरे जोयणसते परिक्खेवेणं तदा णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं सा मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं एगं जोयणसयसहस्सं छच्च चउपण्णे जोयणसते छव्वीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसतसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं दोण्णि य सत्ताणउते जोयणसते परिक्खेवेणं पं०, तता णं राईदियं तहेव, से पविसमाणे सूरिए दोच्चे अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, तता णं सा मंडलवता अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं एगं जोयणसतसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसए बावण्णं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णसतसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं दोण्णि अउणपणतीसे जोयणसते परिक्खेवेणं पं०, दिवसराई तहेव, एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए तताणंतराओ तदाणंतरं मंडलाओ मंडलं संकममाणे २ पंच २ जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढिं णिवुड्ढेमाणे २ अट्ठारस जोयणाइं परिरयवुड्ढिं णिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, तता णं सा मंडलवया अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं णवणउतिं जोयणसहस्साइं छच्च चत्तारे जोयणसए आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पण्णरस य सहस्साइं अउणाउतिं च जोयणाइं किंचिविसेसाहियाइं परिक्खेवेणं पं०, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे एस णं आदिच्चे संवच्छरे एस णं आदिच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे, ता सव्वावि णं मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं, सव्वावि णं मंडलंतरिया दो जोयणाइं विक्खंभेणं, एस णं अद्धा लेसीयसतपडुप्पण्णो पंचदसुत्तरे जोयणसते आहितेति वदेज्जा, ता अब्भिंतराओ मंडलवताओ बाहिरं मंडलवतं बाहिराओ वा अब्भिंतरं मंडलवतं एस णं अद्धा केवतियं आहितेति वदेज्जा ?, ता पंचदसुत्तरजोयणसते आहितेति वदेज्जा, अब्भिंतरते मंडलवताते बाहिरा मंडलवया बाहिराओ मंडलवतातो अब्भिंतरा मंडलवता एस णं अद्धा केवतियं आहितेति वदेज्जा ?, ता पंचदसुत्तरे जोयणसते अडतालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आहि-

॥ ३८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३४]

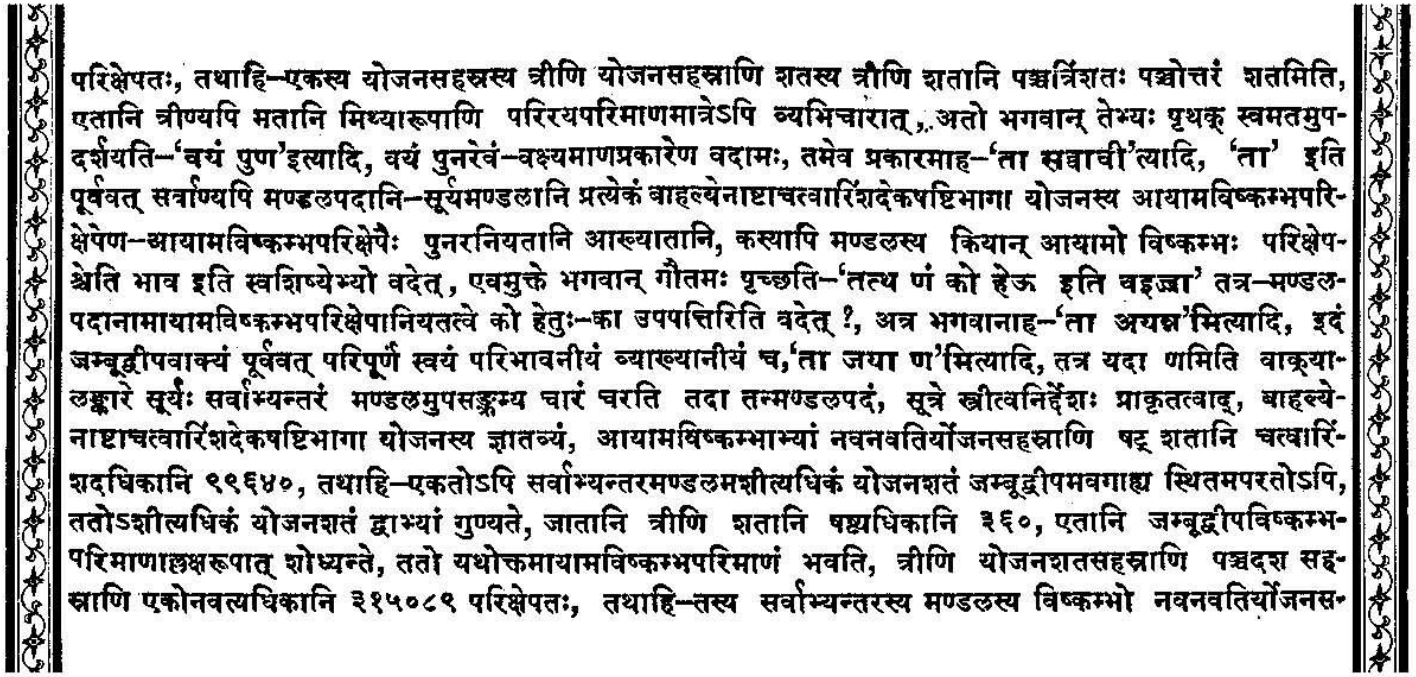
तानि वदेज्जा, ता अब्भंतरातो मंडलवतातो बाहिरमंडलवता बाहिरातो० अब्भंतरमंडलवता एस णं अद्धा केवतियं आहितानि वदेज्जा ?, ता पंचणउस्सरे जोयणसते तेरस य एगट्ठिभागे जोयणस्स आहितानि वदेज्जा, अब्भिंतराते मंडलवताए बाहिरा मंडलवया बाहिराते मंडलवताते अब्भंतरमंडलवया, एस णं अद्धा केवतियं आहितानि वदेज्जा ?, ता पंचदसुत्तरे जोयणसए आहियत्ति वदेज्जा (सूत्रं २०) अट्ठमं पाहुडपाहुडं । पढमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता सव्वावि णं मण्डलवया' इत्यादि,'ता' इति पूर्ववत्, सर्वाण्यपि मण्डलपदानि मण्डलरूपाणि पदानि मण्डलपदानि [मण्डलपदानि] सूर्यमण्डलस्थानानीत्यर्थः, कियन्मात्रं बाहल्येन कियदायामविष्कम्भाभ्यां कियत्परिक्षेपेण–परिधिना आख्यातानि इति वदेत्, सूत्रे स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, प्राकृते हि लिङ्गं व्यभिचारि, यदाह पाणिनिः स्वप्राकृतलक्षणे–'लिङ्गं व्यभिचार्यपी'ति, एवं भगवता गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवानेतद्विषयपर तीर्थिकप्रतिपत्तीनां मिथ्याभावोपदर्शनाय प्रथमतस्ता एवोपन्यस्यति–'तत्थ खलु' इत्यादि, तत्र मण्डलबाहल्यादिविचारविषये खलिवमालिकाः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र–तेषां त्रयाणां परतीर्थिकानां मध्ये एके तीर्थान्तरीया एवमाहुः–'ता' इति प्राग्वत्, सर्वाण्यपि मण्डलपदानि–सूर्यमण्डलानि 'जोयणं बाहल्लेणं'ति प्रत्येकं योजनमेकं 'बाहल्येन' पिण्डेन एकं योजनसहस्रमेकं च त्रयस्त्रिंशं–त्रयस्त्रिंशदधिकं योजनशतं, आयामविक्खंभेणं'ति आयामश्च विष्कम्भश्च आयामविष्कम्भं समाहारो द्वन्द्वस्तेन शतैकमायामेन विष्कम्भेन चेत्यर्थः, तीणि योजनसहस्साणि तीणि च नवनयतानि योजनशतानि परिक्षेपतः प्रज्ञप्तानि, इह च येषां तीर्थान्तरीयाणां मतेन मण्डल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्यायामविष्कम्भमेवं योजनसहस्रमेकं योजनशतं च त्रयस्त्रिंशदधिकमायामविष्कम्भाभ्यां ते परिरयपरिमाणं वृत्तपरिमाणात् त्रिगुणमेव परिपूर्णमिच्छन्ति, न विशेषाधिकमतस्त्रीणि योजनसहस्राणि त्रीणि शतानि नवनवतानीत्युक्तं, तथाहि–सहस्रस्य त्रीणि सहस्राणि शतस्य त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशतश्च नवनवतिरिति, इदं परिरयपरिमाणं 'विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ' इति परिरयगणितेन व्यभिचारि, तेन हि परिरयपरिमाणानयने त्रीणि योजनसहस्राणि पञ्च शतानि व्यशीत्यधिकानि किञ्चित्समधिकान्यागच्छन्ति, तथाहि–एकं योजनसहस्रमेकं च योजनशतं त्रयस्त्रिंशदधिकमित्येकादश योजनशतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि ११३३, एतेषां वर्गो विधीयते, जात एकको द्विकोऽष्टकस्त्रिकः षट्कोऽष्टको नवकः १२८३६८९, ततो दशभिर्गुणितेन जातमेकमधिकं शून्यं १२८३६८९०, एतेषां वर्गमूलानयने आगच्छति यथोक्तं परिरयपरिमाणमतस्तन्मतेन परिरयपरिमाणं व्यभिचारि, एवमुत्तरमपि मतद्वयं परिभावनीयं, अत्रैव प्रथममते उपसंहार 'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः–सर्वाण्यपि सूर्यमण्डलपदानि प्रत्येकमेकं योजनं बाहल्येन एकं योजनसहस्रमेकं च योजनशतं चतुस्त्रिंशं–चतुस्त्रिंशदधिकमायामविष्कम्भाभ्यां ११३४ त्रीणि योजनसहस्राणि चत्वारि योजनशतानि द्युत्तराणि ३४०२ परिक्षेपतः, तथाहि–एतेषामपि मतेन विष्कम्भपरिमाणात् परिरयपरिमाणं परिपूर्णत्रिगुणरूपं, ततः सहस्रस्य त्रीणि सहस्राणि शतस्य त्रीणि शतानि चतुस्त्रिंशतो द्व्युत्तरं शतमिति, अत्रैवोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' एके पुनरेवमाहुः–सर्वाण्यपि मंण्डलपदानि–सूर्यमण्डलानि प्रत्येकमेकं योजनं बाहल्येन एकं योजनसहस्रमेकं च योजनशतं पञ्चत्रिंशं–पञ्चत्रिंशदधिकमायामविष्कम्भाभ्यां ११३५ त्रीणि योजनसहस्राणि चत्वारि योजनशतानि पञ्चोत्तराणि ३४०५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



परिक्षेपतः, तथाहि–एकस्य योजनसहस्रस्य त्रीणि योजनसहस्राणि शतस्य त्रीणि शतानि पञ्चत्रिंशतः पञ्चोत्तरं शतमिति, एतानि त्रीण्यपि मतानि मिथ्यारूपाणि परिरयपरिमाणमात्रेऽपि व्यभिचारात्, अतो भगवान् तेभ्यः पृथक् स्वमतमुपदर्शयति–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरेवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'ता सव्वाची'त्यादि, 'ता' इति पूर्ववत् सर्वाण्यपि मण्डलपदानि–सूर्यमण्डलानि प्रत्येकं बाहल्येनाष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य आयामविष्कम्भपरिक्षेपेण–आयामविष्कम्भपरिक्षेपैः पुनरनियतानि आख्यातानि, कस्यापि मण्डलस्य कियान् आयामो विष्कम्भः परिक्षेपश्चेति भाव इति स्वशिष्येभ्यो वदेत्, एवमुक्ते भगवान् गौतमः पृच्छति–'तत्थ णं को हेऊ इति वइज्जा' तत्र–मण्डलपदानामायामविष्कम्भपरिक्षेपानियतत्वे को हेतुः–का उपपत्तिरिति वदेत् ?, अत्र भगवानाह–'ता अयण्ण'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपवाक्यं पूर्ववत् परिपूर्णं स्वयं परिभावनीयं व्याख्यानीयं च,'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति वाक्यालङ्कारे सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा तन्मण्डलपदं, सूत्रे स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वाद्, बाहल्येनाष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य ज्ञातव्यं, आयामविष्कम्भाभ्यां नवनवतियोंजनसहस्राणि षट् शतानि चत्वारिंशदधिकानि ९९६४०, तथाहि–एकतोऽपि सर्वाभ्यन्तरमण्डलमशीत्यधिकं योजनशतं जम्बूद्वीपमवगाह्य स्थितमपरतोऽपि, ततोऽशीत्यधिकं योजनशतं द्वाभ्यां गुण्यते, जातानि त्रीणि शतानि षष्ट्यधिकानि ३६०, एतानि जम्बूद्वीपविष्कम्भपरिमाणालक्षरूपात् शोध्यन्ते, ततो यथोक्तमायामविष्कम्भपरिमाणं भवति, त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चदश सहस्राणि एकोनवत्यधिकानि ३१५०८९ परिक्षेपतः, तथाहि–तस्य सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्य विष्कम्भो नवनवतियोंजनस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३४]

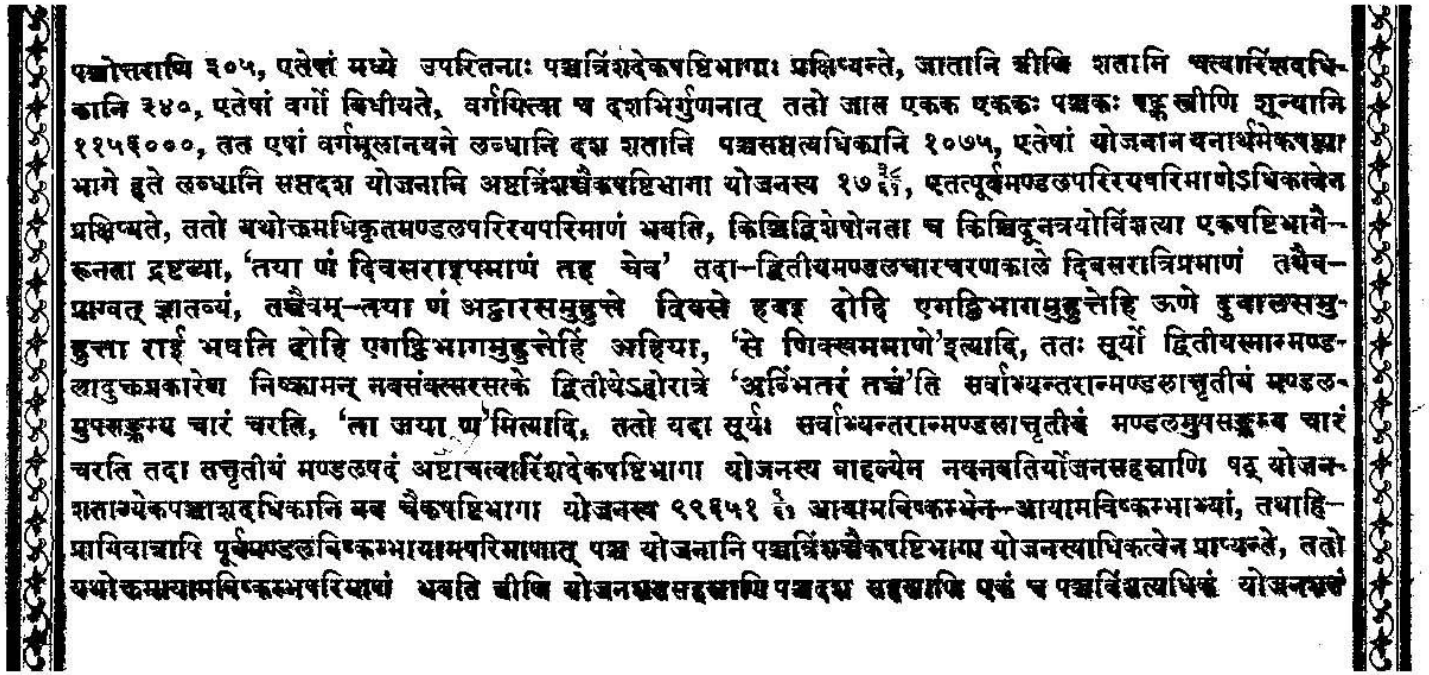
सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ४० ॥

इक्काणि पट् शतानि चत्वारिंशदधिकानि ९९६४०, एतेषां नवकै विधीयते, जातो नवको नवको द्विकोऽष्टक एको द्विको नवकः षट्को द्वे च शून्ये ९९२८१२९६००, ततो दशभिर्गुणने जातमेकमधिकं शून्यं ९९२८१२९६०००, अस्य वर्गमूलानयनेन लब्धं यथोक्तं परिरयप्रमाणं, शेषं तिष्ठति द्विक एककोऽष्टकः शून्यं सप्तको नवकः २१८०७९ एतत् त्यक्तं, 'तया णं'मित्यादिना रात्रिन्दिवपरिमाणं सुगमं । 'से निक्खममाणे' इत्यादि, स सूर्यः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्यागुष्कप्रकारेण निष्क्रामन् नवं संवत्सरमाददानो नवस्य संवत्सरस्य प्रथमेऽहोरात्रे सर्वाभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तत्र यदा सर्वाभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा तन्मण्डलपदमष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, नवनवतियोजनसहस्राणि षट् शतानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्यायामविष्कम्भाभ्यां, तथाहि–एकोऽपि सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतानष्टाचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् योजनस्यापरे च द्वे योजने बहिरवष्टभ्य द्वितीये मण्डले चारं चरति द्वितीयोऽपि, ततो द्वयोर्योजनयोरष्टाचत्वारिंशतश्चैकषष्टिभागानां योजनस्य द्वाभ्यां गुणने पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येति भवति, एतत्प्रथममण्डलविष्कम्भपरिमाणेऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यते, ततो भवति यथोक्तं द्वितीयमण्डलविष्कम्भायामपरिमाणमिति, तत्र त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चदश सहस्राणि एकं च सप्तोत्तरं योजनशतं किञ्चिद्विशेषाधिकं परिरयेण प्रज्ञप्तं, तथाहि–पूर्वमण्डलविष्कम्भायामपरिमाणादस्य मण्डलस्य विष्कम्भायामपरिमाणे पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्याधिकत्वेन प्राप्यन्ते, ततोऽस्य राशेः पृथक् परिरयपरिमाणमानेतव्यं, तत्र पञ्च योजनान्येकषष्टिभागकरणार्थमेकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि त्रीणि शतानि

१ प्राभृते ८ प्राभृतप्राभृतं

॥ ४० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

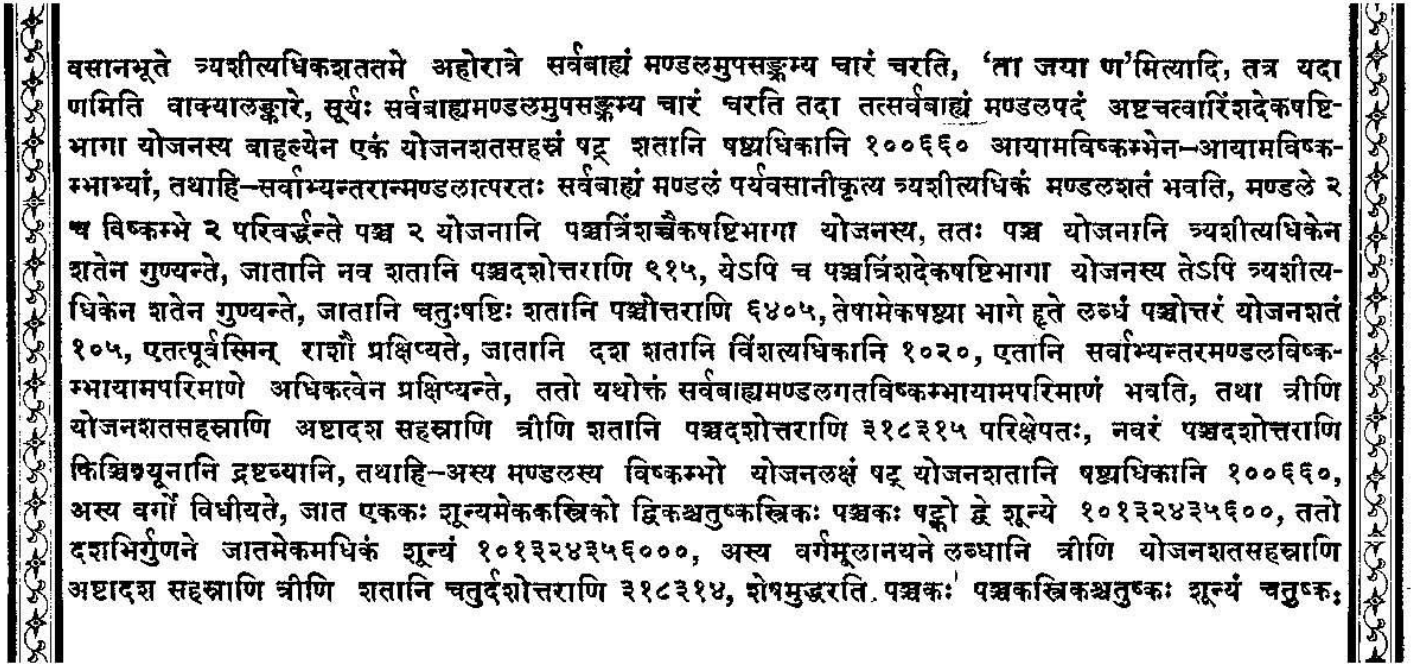


पञ्चोत्तराणि ३०५, एतेषां मध्ये उपरितनाः पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रीणि शतानि चत्वारिंशदधिकानि ३४०, एतेषां वर्गो विधीयते, वर्गयित्वा च दशभिर्गुणनात् ततो जाता एकक एककः पञ्चकः षट्कः त्रीणि शून्यानि ११५६०००, तत एषां वर्गमूलानयने लब्धानि दश शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि १०७५, एतेषां योजनानयनार्थमेकषष्ट्या भागे हृते लब्धानि सप्तदश योजनानि अष्टत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य १७ ३८/६१, एतत्पूर्वमण्डलपरिरयपरिमाणेऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यते, ततो यथोक्तमधिकृतमण्डलपरिरयपरिमाणं भवति, किञ्चिद्विशेषोनता च किञ्चिदूनत्रयोविंशत्या एकषष्टिभागैरूनता द्रष्टव्या, 'तया णं दिवसराइप्पमाणं तह चेव' तदा-द्वितीयमण्डलचारचरणकाले दिवसरात्रिप्रमाणं तथैव-प्राग्वत् ज्ञातव्यं, तच्चैवम्-तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे हवइ दोहि एगट्ठिभागमुहुत्तेहि ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति दोहि एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया, 'से णिक्खममाणे'इत्यादि, ततः सूर्यो द्वितीयस्मान्मण्डलादुक्तप्रकारेण निष्क्रामन् नवसंवत्सरसत्के द्वितीयेऽहोरात्रे 'अब्भिंतरं तच्चं'ति सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा तत्तृतीयं मण्डलपदं अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन नवनवतियोजनसहस्राणि षट् योजनशताग्येकपञ्चाशदधिकानि सब चैकषष्टिभागा योजनस्य ९९६५१ ६/६१ आयामविष्कम्भेन-आयामविष्कम्भाभ्यां, तथाहि-प्रागिदाचारि पूर्वमण्डलविष्कम्भायामपरिमाणात् पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्याधिकत्वेन प्राप्यन्ते, ततो यथोक्तमायामविष्कम्भपरिमाणं भवति त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चदश सहस्राणि एवं च पञ्चविंशत्यधिकं योजनशतं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

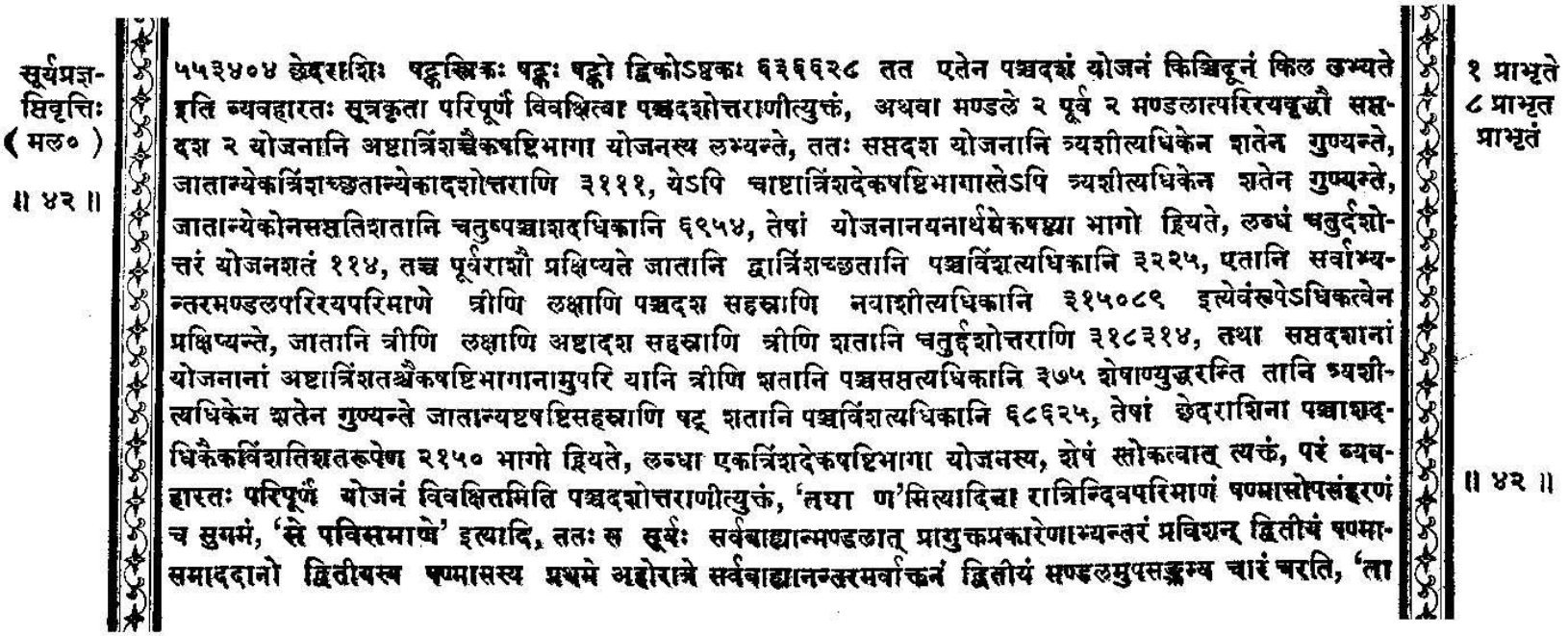
परिक्षेपेण प्रज्ञप्तं, तथाहि–पूर्वमण्डलादस्य विष्कम्भे पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्याधिकत्वेन प्राप्यन्ते, ततो यथोक्तमत्रायामविष्कम्भपरिमाणं भवति, तस्य च पृथक् परिरयपरिमाणं सप्तदश योजनानि अष्टात्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य, एतन्निश्चयनयमतेन, परं सूत्रकृता व्यवहारनयमतमवलम्ब्य परिपूर्णान्यष्टादश योजनानि विवक्षितानि, व्यवहारनयमतेन हि लोके किञ्चिदूनमपि परिपूर्णं विवक्ष्यते, तथा यदपि पूर्वमण्डलपरिरयपरिमाणे किञ्चिदूनत्वमुक्तं तदपि व्यवहारनयमतेन परिपूर्णमिव विवक्ष्यते, ततः पूर्वमण्डलपरिरयपरिमाणे अष्टादश योजनान्यधिकत्वेन प्रक्षिप्यन्ते इति भवति यथोक्तमधिकृतमण्डलपरिरयपरिमाणं, 'तया णं दिवसराई तहेव' इति तदा तृतीयमंडलचारचरणकाले दिवसरात्री तथैव प्रागिव वक्तव्ये, तच्चैवम्–तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहि ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति चउहि एगट्ठिभागमुहुत्तेहि अहिया, 'एवं खल्वि'त्यादि, एवं–उक्तप्रकारेण खलु निश्चितमेतेनोपायेन प्रत्यहोरात्रमेकैकमण्डलमोचनरूपेण निष्क्रामन् सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् सङ्क्रामन् एकैकस्मिन् मण्डले पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येत्येवंपरिमाणां विष्कम्भवृद्धिमभिवर्द्धयन्नभिवर्द्धयन् एकैकस्मिन्नेतन्मण्डले अष्टादश अष्टादश योजनानि परिरयवृद्धिमभिवर्द्धयन्नभिवर्द्धयन् इहाष्टादश अष्टादशेति व्यवहारत उक्तं, निश्चयनयमतेन तु सप्तदश सप्तदश योजनानि अष्टात्रिंशतं चैकषष्टिभागा योजनस्येति द्रष्टव्यं, एतच्च प्रागेव भावितं, न चैतत्स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत उक्तं तद्विचारप्रक्रमे एव करणविभावनायां–'सत्तरस जोयणाइं अट्ठतीसं च एगट्ठिभागा १७ ३८/६१ एयं निच्छएण संववहारेण पुण अट्ठारस जोयणाइं' इति प्रथमषण्मासपर्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



वसानभूते त्र्यशीत्यधिकशततमे अहोरात्रे सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति वाक्यालङ्कारे, सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा तत्सर्वबाह्यं मण्डलपदं अष्टचत्वारिंशदेकषष्टि-भागा योजनस्य बाहल्येन एकं योजनशतसहस्रं षट् शतानि षष्ट्यधिकानि १००६६० आयामविष्कम्भेन–आयामविष्क-म्भाभ्यां, तथाहि–सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतः सर्वबाह्यं मण्डलं पर्यवसानीकृत्य त्र्यशीत्यधिकं मण्डलशतं भवति, मण्डले २ च विष्कम्भे २ परिवर्द्धन्ते पञ्च २ योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य, ततः पञ्च योजनानि त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, येऽपि च पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य तेऽपि त्र्यशीत्य-धिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातानि चतुःषष्टिः शतानि पञ्चोत्तराणि ६४०५, तेषामेकषष्ट्या भागे हृते लब्धं पञ्चोत्तरं योजनशतं १०५, एतत्पूर्वस्मिन् राशौ प्रक्षिप्यते, जातानि दश शतानि विंशत्यधिकानि १०२०, एतानि सर्वाभ्यन्तरमण्डलविष्क-म्भायामपरिमाणे अधिकत्वेन प्रक्षिप्यन्ते, ततो यथोक्तं सर्वबाह्यमण्डलगतविष्कम्भायामपरिमाणं भवति, तथा त्रीणि योजनशतसहस्राणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चदशोत्तराणि ३१८३१५ परिक्षेपतः, नवरं पञ्चदशोत्तराणि किञ्चिन्यूनानि द्रष्टव्यानि, तथाहि–अस्य मण्डलस्य विष्कम्भो योजनलक्षं षट् योजनशतानि षष्ट्यधिकानि १००६६०, अस्य वर्गो विधीयते, जात एकः शून्यमेककस्त्रिको द्विकश्चतुष्कस्त्रिकः पञ्चकः षट्को द्वे शून्ये १०१३२४३५६००, ततो दशभिर्गुणने जातमेकमधिकं शून्यं १०१३२४३५६०००, अस्य वर्गमूलानयने लब्धानि त्रीणि योजनशतसहस्राणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि चतुर्दशोत्तराणि ३१८३१४, शेषमुद्धरति. पञ्चकः पञ्चकस्त्रिकश्चतुष्कः शून्यं चतुष्कः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥ ४२ ॥

५५३४०४ छेदराशिः षट्कृतिकः षट्कः षट्को द्विकोऽष्टकः ६३६६२८ तत एतेन पञ्चदशं योजनं किञ्चिदूनं किल लभ्यते इति व्यवहारतः सूत्रकृता परिपूर्णं विवक्षित्वा पञ्चदशोत्तराणीत्युक्तं, अथवा मण्डले २ पूर्व २ मण्डलात्परिरयवृद्धौ सप्तदश २ योजनानि अष्टात्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य लभ्यन्ते, ततः सप्तदश योजनानि त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातान्येकत्रिंशच्छतान्येकादशोत्तराणि ३१११, येऽपि चाष्टात्रिंशदेकषष्टिभागास्तेऽपि त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातान्येकोनसप्ततिशतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ६९५४, तेषां योजनानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धं चतुर्दशोत्तरं योजनशतं ११४, तच्च पूर्वराशौ प्रक्षिप्यते जातानि द्वात्रिंशच्छतानि पञ्चविंशत्यधिकानि ३२२५, एतानि सर्वाभ्यन्तरमण्डलपरिरयपरिमाणे त्रीणि लक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि नवाशीत्यधिकानि ३१५०८९ इत्येवंरूपेऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि चतुर्दशोत्तराणि ३१८३१४, तथा सप्तदशानां योजनानां अष्टात्रिंशतश्चैकषष्टिभागानामुपरि यानि त्रीणि शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि ३७५ शेषाण्युद्धरन्ति तानि त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते जातान्यष्टषष्टिसहस्राणि षट् शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि ६८६२५, तेषां छेदराशिना पञ्चाशदधिकैकविंशतिशतरूपेण २१५० भागो ह्रियते, लब्धा एकत्रिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य, शेषं स्तोकत्वात् त्यक्तं, परं व्यवहारतः परिपूर्णं योजनं विवक्षितमिति पञ्चदशोत्तराणीत्युक्तं, 'लया ण'मित्यादिना रात्रिन्दिवपरिमाणं षण्मासोपसंहरणं च सुगमं, 'से पविसमाणे' इत्यादि, ततः स सूर्यः सर्वबाह्यान्मण्डलात् प्रागुक्तप्रकारेणाभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयं षण्मासमाददानो द्वितीयस्य षण्मासस्य प्रथमे अहोरात्रे सर्वबाह्यानन्तरमर्वाक्तनं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता

१ प्राभृते ८ प्राभृत प्राभृतं

॥ ४२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जया णं'मित्यादि, तत्र यदा णमितिवाक्यालङ्कारे सर्वबाह्यानन्तरमर्वाक्तनं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा तन्मण्डलपदं अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, एकं योजनशतसहस्रं षट् च योजनशतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि षड्विंशतिश्चैकषष्टिभागा योजनस्य १००६५४$\frac{२६}{६१}$ आयामविष्कम्भेन–आयामविष्कम्भाभ्यां, तथाहि–एकतोऽपि तन्मण्डलं सर्वबाह्यमण्डलगतानष्टाचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् योजनस्यापरे द्वे योजने विमुच्याभ्यन्तरमवस्थितमपरतोऽपि, ततो योजनद्वयस्याष्टाचत्वारिंशतश्चैकषष्टिभागानां द्वाभ्यां गुणने पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येति भवति, एतत्सर्वबाह्यमण्डलगतविष्कम्भायामपरिमाणात् शोध्यते, ततो यथोक्तमधिकृतमण्डलविष्कम्भायामपरिमाणं भवति, तथा त्रीणि योजनशतसहस्राणि अष्टादश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तनवत्यधिके ३१८२९७ परिक्षेपतः प्रक्षिप्तं, तथाहि–पूर्वमण्डलादस्य मण्डलस्य विष्कम्भायामपरिमाणे पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येति ब्रुव्यन्ति, पञ्चानां योजनानां पञ्चत्रिंशतश्चैकषष्टिभागानां परिरये सप्तदश योजनानि अष्टात्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य भवन्ति, परं सूत्रकृता व्यवहारनयमतेन परिपूर्णान्यष्टादश योजनानि विवक्षितानि, प्रागुक्तात्सर्वबाह्यमण्डलपरिरयपरिमाणात् त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चदशोत्तराणि इत्येवंरूपादष्टादश योजनानि शोध्यन्ते, ततो यथोक्तमधिकृतमण्डलपरिरयपरिमाणं भवति, 'तया णं राइंदियाणं तह चेव'त्ति तदा रात्रिन्दिवं रात्रिदिवसौ तथैव वक्तव्यौ, तौ चैवम्–'तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति दोहि एगट्ठिभागमुहुत्तेहि ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे हवइ दोहि एगट्ठिभागमुहुत्तेहि अहिए' इति, 'से पविसमाणे'इत्यादि, ततः स सूर्यस्तस्मादपि द्वितीयस्मान्मण्डलात्प्रागुक्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥ ४३ ॥

प्रकारेणाभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रे सर्वबाह्यान्मण्डलादवाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तत्र यदा सूर्यः सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा तन्मण्डलपदं अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन एकं योजनशतसहस्रं षट् च योजनशतानि अष्टाचत्वारिंशदधिकानि द्विपञ्चाशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य १००६४८$\frac{५२}{६१}$ आयामविष्कम्भेन–आयामविष्कम्भाभ्यां, तथाहि–पूर्वसान्मण्डलादिदं मण्डलमायामविष्कम्भेन पञ्चभिर्योजनैः पञ्चत्रिंशता चैकषष्टिभागैर्योजनस्य हीनं, ततः पूर्वमण्डलविष्कम्भायामपरिमाणादेकं योजनशतसहस्रं षट् शतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि षड्विंशतिश्चैकषष्टिभागा योजनस्येत्येवंरूपात्पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य शोध्यन्ते, ततो यथोक्तमधिकृतमण्डलविष्कम्भायामपरिमाणं भवति, तथा त्रीणि योजनशतसहस्राणि अष्टादश सहस्राणि द्वे शते एकोनाशीत्यधिके ३१८२७९ परिक्षेपतः प्रक्षिप्तं, तथाहि–प्राक्तनमण्डलादिदं मण्डलं पञ्चभिर्योजनैः पञ्चत्रिंशता चैकषष्टिभागैर्योजनस्य विष्कम्भतो हीनं, पञ्चानां योजनानां पञ्चत्रिंशतश्चैकषष्टिभागानां परिरयपरिमाणं व्यवहारतोऽष्टादश योजनानि, ततस्तानि पूर्वमण्डलपरिरयपरिमाणात् शोध्यन्ते, ततो यथोक्तमधिकृतपरिरयपरिमाणं भवति, 'दिवसराई तहेव'त्ति दिवसरात्री तथैव प्रागिव वक्तव्ये, ते चैवम्–तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहि अहिए' इति, 'एवं खलि'त्यादि एतत्सूत्रं प्रागुक्तव्याख्यानानुसारेण स्वयं परिभावनीयं, नवरं 'निवेढेमाणे' इति निवर्तयन् निर्वेष्टयन् हापयन् ह्रापयन्नित्यर्थः, 'ता जया ण'मित्यादि सुगमं, अधुना प्रस्तुतवक्तव्यतोपसंहारमाह–'ता सव्वावि ण'मित्यादि, ततः सर्वाण्यपि

१ प्राभृते-८ प्राभृत-प्राभृतं

॥ ४३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३४]

मण्डलपदानि प्रत्येकं बाहल्येनाष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य, उपलक्षणमेतत्, अनियतानि चायामविष्कम्भपरिधिभिः तथा सर्वाण्यपि च मण्डलान्तरकाणि–मण्डलान्तराणि, सूत्रे स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, द्वे द्वे योजने विष्कम्भेन, तत एष द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येत्येवंरूपो, णमिति वाक्यालङ्कारे, अथवा–पन्थारुयशीत्यधिकशतप्रत्युत्पन्नः–व्यशीत्यधिकेन शतेन गुणितः सन् पञ्चदशोत्तराणि योजनशतान्याख्याता इति वदेत्, तथाहि–द्वे योजने व्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्येते जातानि त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि ३६६, येऽपि च अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागास्तेऽपि व्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते जातानि सप्ताशीतिशतानि चतुरशीत्यधिकानि ८७८४, तेषां योजनानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धं चतुश्चत्वारिंशं योजनशतं १४४, तत् पूर्वराशौ प्रक्षिप्यते, जातानि पञ्च शतानि दशोत्तराणि ५१०, अस्यैवार्थस्य व्यक्तीकरणार्थं भूयः प्रश्नसूत्रमाह—'ता अब्भिंतराओ'इत्यादि, 'ता' इति तत्र अभ्यन्तरात्–सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलपदात् परतो यावद्बाह्यं–सर्वबाह्यं मंडलपदं बाह्याद्वा–सर्वबाह्याद्वा मण्डलपदादर्वाक् यावत्सर्वाभ्यन्तरं मण्डलपदमेष–एतावान् अथवा कियान्–कियत्प्रमाण आख्यात इति वदेत् ?, एवमुक्ते गौतमेन भगवानाह—'ता' इत्यादि, तावानथवा पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि आख्यात इति वदेत् ? स्वशिष्येभ्यः, पञ्चदशोत्तरयोजनशतभावना प्रागुक्तानुसारेण स्वयं परिभावनीया, 'अब्भिंतराए'इत्यादि, अभ्यन्तरेण मण्डलपदेन सह अभ्यन्तरान्मण्डलपदादारभ्य यावद्बाह्यं–सर्वबाह्यं मण्डलपदं यदिवा बाह्येन–सर्वबाह्येन मण्डलपदेन सर्वबाह्यान्मण्डलपदादारभ्य यावत्सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं एष एतावान् अथवा कियानाख्यात इति वदेत् ?, भगवानाह—'ता पंचे'त्यादि, स एतावान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३४]

अध्वा पञ्चदशोत्तराणि योजनशतान्यष्टाचत्वारिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्येत्याख्यात इति वदेत्, पूर्वस्मादध्वपरिमाणात् एतस्याध्वपरिमाणस्य सर्वबाह्यमण्डलगतेन बाहल्यपरिमाणेनाधिकत्वात्, 'ता अब्भिंतरे'त्यादि, 'ता' इति अभ्यन्तरान्मण्डलपदात्परतो बाह्यमण्डलपदात्–सर्वबाह्यमण्डलादर्वाक् यद्वा बाह्यमण्डलपदादर्वाक् अभ्यन्तरमण्डलात्परत एषः अध्वा कियानाख्यात इति वदेत् ?, भगवानाह—'ता पंचे'त्यादि, पञ्च योजनशतानि नवोत्तराणि त्रयोदश चैकषष्टिभागा योजनस्य आख्यात इति वदेत्, पूर्वस्मादध्वपरिमाणादस्याध्वपरिमाणस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतसर्वबाह्यमण्डलगतबाहल्यपरिमाणेन पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाधिकैकयोजनरूपेण हीनत्वात्, तदेवमभ्यन्तरान्मण्डलात्परतो यावत्सर्वबाह्यं मण्डलं सर्वबाह्याद्वा मण्डलादर्वाक् यावत्सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं तथा सर्वाभ्यन्तरसर्वबाह्यमण्डलाभ्यां सह तथा सर्वाभ्यन्तरसर्वबाह्यमण्डलाभ्यां विना यावदध्वपरिमाणं भवति तावन्निरूपितं, सम्प्रति सर्वाभ्यन्तरेण मण्डलेन सह सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतो बाह्यमण्डलादर्वाक् यदिवा सर्वबाह्यमण्डलेन सह सर्वबाह्यमण्डलादर्वाक् सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतो यावदध्वपरिमाणं भवति तावन्निरूपयति—'अब्भिंतराए'इत्यादि, अभ्यन्तरेण मण्डलपदेन सह अभ्यन्तरान्मण्डलात्परतः सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वागिति गम्यते, यदिवा सर्वबाह्येन मण्डलपदेन सह सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक् सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परत इति गम्यते, योऽध्वा एष णमिति वाक्यालङ्कारे अध्वा कियानाख्यात इति वदेत् ?, भगवानाह—'ता' इत्यादि, तावानध्वा पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि आख्यात इति वदेत्, भावना सुगमत्वान्न क्रियते।

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां प्रथम-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं ८ समाप्तं

॥ ४४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ८ परिसमाप्तं तत् समाप्ते प्रथमं प्राभृतं अपि परिसमाप्तं

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [३५]

तदेवमुक्तं प्रथमप्राभृतं, सम्प्रति द्वितीयं वक्तव्यं, तस्य चायमर्थाधिकारः 'कथं तिर्यक् सूर्यः परिभ्रमती'ति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं तेरिच्छगती आहितेति वदेज्जा?, तत्थ खलु इमाओ अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता पुरच्छिमातो लोअंतातो पादो मरीची आगासंसि उत्तिट्ठति से णं इमं लोयं तिरियं करेइ तिरियं करेत्ता-पच्चत्थिमंसि लोयंसि सायंमि रायं आगासंसि विद्धंसिस्संति एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु–ता पुरच्छिमातो लोअंतातो पातो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति, से णं इमं तिरियं लोयं तिरियं करेति करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंसि सूरिए आगासंसि विद्धंसंति, एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु–ता पुरत्थि-माओ लोयंतातो पादो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति, से इमं तिरियं लोयं तिरियं करेति करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंसि सायं अहे पडियागच्छंति, अधे पडियागच्छेत्ता पुणरवि अवरभूपुरत्थिमातो लोयंतातो पातो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति, एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु–ता पुरत्थिमाओ लोगंताओ पाओ सू रिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठति, से णं इमं तिरियं लोयं तिरियं करेति करेत्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं सूरिए पुढविकायंसि विद्धंसइ, एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु पुरत्थिमाओ लोयंताओ पाओ सूरिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठइ से णं इमं तिरियं लोयं तिरियं करेइ करेत्ता पच्चत्थिमंसि लोयंतंसि सायं सूरिए पुढविकायंसि अणुपविसइ अणुपविसित्ता अहे पडियागच्छइ २ पुणरवि अवरभूपुरत्थिमाओ लोगंताओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्वितियं प्राभृतं आरब्धं

अत्र द्वितिये प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १ आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [३५]

पाओ सूरिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठइ, एगे एव० ५, एगे पुण एवमाहंसु ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठइ, से णं इमं तिरियं लोयं तिरियं करेइ करेत्ता पच्चत्थिमंसि लोयंतंसि पाओ सूरिए आउकायंसि विद्धंसंति, एगे एवमाहंसु ६, एगे पुण एवमाहंसु–ता पुरत्थिमातो लोगंतातो पाओ सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठति, से णं इमं तिरियं लोयं तिरियं करेति २ त्ता पच्चत्थिमंसि लोयंतंसि सायं सूरिए आउकायंसि पविसइ, पविसित्ता अहे पडियागच्छति २ त्ता पुणरवि अवरभूपुरत्थिमातो लोयंतातो पादो सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठति, एगे एव० ७, एगे पुण एवमाहंसु–ता पुरत्थिमातो लोयंताओ बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं उड्ढं दूरं उप्पतित्ता एत्थ णं पातो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति, से णं इमं दाहिणड्ढं लोयं तिरियं करेति करेत्ता उत्तरड्ढलोयं तमेव रातो, से णं इमं उत्तरड्ढलोयं तिरियं करेइ २ त्ता दाहिणड्ढलोयं तमेव राओ, से णं इमाइं दाहिणुत्तरड्ढलोयाइं तिरियं करेइ करित्ता पुरत्थिमाओ लोयंतातो बहूइं जोयणाइं बहुयाइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं उड्ढं दूरं उप्पतित्ता एत्थ णं पातो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति एगे एवमाहंसु ८ । वयं पुण एवं वयामो, ता जंबुद्दीवस्स २ पाईणपडीणायतओदीणदाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दाहिणपुरच्छिमंसि उत्तरपच्चत्थिमंसि य चउब्भागमंडलंसि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो अट्ठ जोयणसताइं उड्ढं उप्पतित्ता एत्थ णं पादो दुवे सूरिया उत्तिट्ठंति, ते णं इमाइं दाहिणुत्तराइं

॥ ४५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [३५]

जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति २ त्ता पुरत्थिमपच्चत्थिमाइं जंबुद्दीवभागाइं तामेव रातो, ते णं इमाइं पुरच्छिमपच्चत्थिमाइं जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति २ त्ता दाहिणुत्तराइं जंबुद्दीवभागाइं तामेव रातो, ते णं इमाइं दाहिणुत्तराइं पुरच्छिमपच्चत्थिमाणि य जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति २ त्ता जंबुद्दीवस्स २ पाईणपडियायतओदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दाहिणपुरच्छिमिल्लंसि उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि य चउभागमंडलंसि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो अट्ठ जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता, एत्थ णं पादो दुवे सूरिया आगासंसि उत्तिट्ठंति (सूत्रं २१)॥ बितीयस्स पढमं ॥ १ ॥

'ता कहं तेरिच्छगई'इत्यादि, अस्त्यन्यदपि प्रभूतं प्रष्टव्यं परं एतावदेव तावत्पृच्छामि कथं 'ते' त्वया भगवन् ! सूर्यस्य तिर्यग्गतिः–तिर्यक्परिभ्रमणमाख्याता इति वदेत्, एवमुक्ते भगवान् एतद्विषयपरतीर्थिकप्रतिपत्तिमिथ्याभावोपदर्शनार्थं प्रथमतस्ता एव प्रतिपत्तीरुपन्यस्यति—'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र–तस्यां सूर्यस्य तिर्यग्गतौ–तिर्यग्गतिविषये खल्विमा–वक्ष्यमाणस्वरूपा अष्टौ प्रतिपत्तयः–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपाः प्रज्ञप्ताः, ता एव क्रमेणाह—'तत्थेगे'इत्यादि, तत्र–तेषामष्टानां परतीर्थिकानां मध्ये एके परतीर्थिका एवमाहुः, 'ता' इति पूर्ववत् पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वमिति गम्यते, पूर्वस्यां दिशीति भावार्थः, प्रातः–प्रभातसमये मरीचिः–मरीचिसङ्घातः किरणसङ्घात इत्यर्थः, आकाशे उत्तिष्ठति–उत्पद्यते, एतेन एतदुक्तं भवति–नैतद्विमानं नापि रथो नापि कोऽपि देवतारूपः सूर्यः किन्तु किरणसङ्घात एवैष वर्तुलगोलाकारो लोकानुभावात्प्रतिदिवसं पूर्वस्यां दिशि प्रातराकाशे समुत्पद्यते, यतः सर्वत्र प्रकाशः प्रसरमधिरोहति, स इत्थंभूतो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरीचिसङ्घात उपजातः सन् णमिति वाक्यालङ्कारे इमं–प्रत्यक्षत उपलभ्यमानं लोकं–तिर्यग्लोकं तिर्यक्करोति, किमुक्तं भवति ?–तिर्यक् परिभ्रमन्निमं तिर्यग्लोकं प्रकाशयतीति, तिर्यक् कृत्वा पश्चिमे लोकान्ते सायं–सान्ध्ये समये विध्वंसते, अत्रोपसंहारः–'एगे एवमाहंसु' तथा जगत्स्वाभाव्यात् स मरीचिसङ्घात आकाशे विध्वंसते–विध्वंसमुपयाति एवं सकलकालमपि, अत्रैवोपसंहारः, 'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः–पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रातः सूर्यो लोकप्रसिद्धो देवतारूपो भास्करस्तथाजगत्स्वाभाव्यादाकाशे उत्पद्यते, स चोत्पन्नः सन्निमं तिर्यग्लोकं तिर्यक्करोति–तिर्यक् परिभ्रमन्निमं लोकं प्रकाशयतीत्यर्थः, तिर्यक् च कृत्वा पश्चिमे लोकान्ते सायं–सान्ध्ये समये आकाशे विध्वंसते अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' २, एके पुनरेवमाहुः–पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रातः सूर्यो देवतारूपः सदावस्थायी तथाविधपुराणशास्त्रप्रसिद्ध आकाशे उत्तिष्ठति–उद्गच्छति, स चोद्गतः सन्निमं प्रत्यक्षत उपलभ्यमानं मनुष्यलोकं तिर्यक् करोति तिर्यक् च कृत्वा पश्चिमलोकान्ते सायं–सन्ध्यासमये अध आकाशमनुप्रविशति, प्रविश्य चाधः प्रत्यागच्छति–अधोभागेन प्रत्यागच्छति, अधोलोकं प्रकाशयन् प्रतिनिवर्त्तते इत्यर्थः, तन्मतेन हि भूरियं गोलाकारा लोकोऽपि च गोलाकारतया व्यवस्थितः, इदं च मतं सम्प्रत्यपि तीर्थान्तरीयेषु विजृम्भते, ततस्तद्गतं पुराणशास्त्रादेतत्सम्यगवसेयं, अस्य त्रयो भेदाः, एके एवमाहुः–प्रातः सूर्य आकाशे उद्गच्छति, अपरे आहुः–पर्वतशिरसि, अन्ये आहुः–समुद्रे इति, तत्र प्रथमानामिदं मतमुपन्यस्तं, अधः प्रत्यागत्य च पुनरप्यवरभुवः–अधोभुवः पृथिव्या अधोभागाद्विनिर्गत्येत्यर्थः, पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वमाकाशे प्रातः सूर्य उद्गच्छति, एवं सर्वदापि द्रष्टव्यं, अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ३, एके पुनरेवमाहुः–पौरस्त्याल्लोकान्ता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [३५]

दूर्ध्वं प्रातः सूर्यो देवतारूपस्तथाविधपुराणप्रसिद्धः पृथिवीकाये–पृथिवीकायमध्ये उदयभूधरशिरसि उत्तिष्ठति–उत्पद्यते, स चोत्पन्नः सन्निमं मनुष्यलोकं तिर्यक्करोति, तिर्यक् परिभ्रमन्निमं मनुष्यलोकं प्रकाशयतीत्यर्थः, तिर्यक्कृत्वा पश्चिमे लोकान्ते सायं–सान्ध्ये समये सूर्यः पृथिवीकाये–अस्तमयभूधरशिरसि विध्वंसते–विध्वंसमुपयाति, एवं प्रतिदिवसं सकलकालं जगत्स्थितिः परिभावनीया, अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ४, एके पुनरेवमाहुः–पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रातः सूर्यो देवतारूपः सदावस्थायी पृथ्वीकाये–उदयभूधरशिरसि उत्तिष्ठति–उद्गच्छति, स चोद्गतः सन्निमं प्रत्यक्षत उपलभ्यमानं तिर्यग्लोकं तिर्यक्करोति, तिर्यक्कृत्वा पश्चिमे लोकान्ते सायं–सान्ध्ये समये पृथिवीकायं–अस्तमयभूधरमनुप्रविशति, प्रविश्य चाधः प्रत्यागच्छति–अधोभागवर्त्तिनं लोकं प्रकाशयन् प्रतिनिवर्त्तते, ततः पुनरप्यवरभुवः–अधोभुवः पृथिव्या अधोभागाद्विनिर्गत्येत्यर्थः, पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रातः सूर्यः पृथिवीकाये–उदयभूधरशिरसि उत्तिष्ठति, एतेऽपि भूगोलवादिनः परं पूर्वं आकाशे उत्तिष्ठतीति प्रतिपन्नाः एते तु पर्वतशिरसीति शेषः, अत्रैवोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ५, एके पुनरेवमाहुः–पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रातः सूर्योऽप्काये–पूर्वसमुद्रे उत्तिष्ठति–उत्पद्यते, स चोत्पन्नः सन्निमं–प्रत्यक्षत उपलभ्यमानं तिर्यग्लोकं तिर्यक्करोति, तिर्यक्कृत्वा पश्चिमे लोकान्ते सायं–सान्ध्ये समये सूर्योऽप्काये–पश्चिमसमुद्रे विध्वंसमुपगच्छति, एवं सर्वदापि, अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ६, एके पुनरेवमाहुः–पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रातः सूर्यः सदावस्थायी पुराणशास्त्रप्रसिद्धोऽप्काये–पूर्वसमुद्रे उत्तिष्ठति–उद्गच्छति, स चोद्गतः सन्निमं तिर्यग्लोकं तिर्यक्करोति, तिर्यक् परिभ्रमन्निमं तिर्यग्लोकं प्रकाशयतीत्यर्थः, तिर्यक् कृत्वा पश्चिमे लोकान्ते सायं–सान्ध्ये समये सूर्योऽप्कायं–पश्चिमसमुद्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुप्रविशति, प्रविश्य चाधः प्रत्यागच्छति–अधोभागवर्त्तिनं लोकं प्रकाशयन् प्रतिनिवर्त्तत इति भावः, अधः प्रत्यागत्य चावरभुवः–अधःपृथिव्या अधोभागाद्विनिर्गत्येत्यर्थः, पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रातः सूर्योऽप्कायं पूर्वसमुद्रे उत्तिष्ठति–उद्गच्छति, एवं सकलकालमपि, अत्रैवोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ७, एके पुनरेवमाहुः–पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रथमतो बहूनि योजनानि ततः क्रमेण बहूनि योजनशतानि तदनन्तरं क्रमेण बहूनि योजनसहस्राणि दूरमूर्ध्वमुत्प्लुत्य–लङ्घ्या गत्वा अत्र–अस्मिन्नवकाशे प्रातः सूर्यो देवतारूपः सदावस्थायी उत्तिष्ठति–उद्गच्छति, स चोद्गतः सन्निमं दक्षिणार्द्ध-लोकं–दक्षिणदिग्भाविनमर्द्धलोकं, दक्षिणं लोकस्यार्द्धमित्यर्थः, तिर्यक्करोति–तिर्यक् परिभ्रमन् दक्षिणलोकार्द्धं प्रकाशयतीत्यर्थः, दक्षिणं चार्द्धलोकं तिर्यक्कुर्वन् तदैवोत्तरमर्द्धलोकं रात्रौ करोति, ततः स सूर्यः क्रमेणेममर्द्धलोकमुत्तरं तिर्यक्करोति, तत्रापि तिर्यक् परिभ्रममन् उत्तरमर्द्धलोकं प्रकाशयतीत्यर्थः, उत्तरं चार्द्धलोकं तिर्यक्परिभ्रमणेन प्रकाशयन् तदैव दक्षिण-मर्द्धलोकं रात्रौ करोति, ततः स सूर्य इमौ दक्षिणोत्तरार्द्धलोकौ तिर्यक्कृत्वा भूयोऽपि पौरस्त्याल्लोकान्तादूर्ध्वं प्रथमतो बहूनि योजनानि गत्वा ततः क्रमेण बहूनि योजनशतानि तदनन्तरं बहूनि योजनसहस्राणि दूरमूर्ध्वमुत्प्लुत्य–लङ्घ्या गत्वा अत्र–अस्मिन्नवकाशे प्रातः सूर्य आकाशे उत्तिष्ठति–उद्गच्छति, एवं सकलकालं, अत्रोपसंहारमाह—'एगे एव-माहंसु' ८। तदेवं परप्रतिपत्तीरुपदर्श्य स्वमतमुपदर्शयति—'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलज्ञानाः केवलज्ञानेन यथावस्थितं वस्तूपलभ्य एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह—'ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्योपरि यद्वा तद्वा मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा, चतुर्विंशत्यधिकशतसङ्ख्यान् भागान् मण्डलं परिकल्प्ये-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्यर्थः, भूयश्च प्राचीनापाचीनायतया उदीच्यदक्षिणायतया प्रत्यञ्चया–दवरिकयेत्यर्थः, तन्मण्डलं चतुर्भिर्भागैर्विभज्य दक्षिणपौरस्त्य उत्तरपश्चिमे च चतुर्भागमण्डले–मण्डलचतुर्भागे एकत्रिंशद्भागप्रमाणे, एतावति किल चतुरशीत्यधिकमपि मण्डलशतं सूर्यस्योदये प्राप्यते इति 'चउवीसेणं सएणं छित्ता चउब्भागमंडलंसी'त्युक्तं, अस्याः–प्रत्यक्षत उपलभ्यमानाया रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयात् भूमिभागादूर्ध्वमष्टौ योजनशतान्युत्प्लुत्य–बुद्ध्या गत्वा अत्रान्तरे प्रातर्द्वौ सूर्यावुत्तिष्ठतः–उद्गच्छतः, दक्षिणपौरस्त्यमण्डलचतुर्भागे भारतः सूर्य उद्गच्छति अपरोत्तरस्मिन् मण्डलचतुर्भागे ऐरावतः सूर्यः, तौ चैवमुद्गतौ भरतैरावतसूर्यौ यथाक्रममिमौ दक्षिणोत्तरौ जम्बूद्वीपभागौ तिर्यक्कुरुतः, किमुक्तं भवति ?–भारतः सूर्यो दक्षिणपौरस्त्यमण्डलचतुर्भागे उद्गतः सन् तिर्यक् परिभ्रमति तिर्यक् परिभ्रमन् मेरोर्दक्षिणभागं प्रकाशयति, ऐरावतः पुनः सूर्योऽपरोत्तरदिग्विभागे उद्गच्छति, स चोद्गतः सन् तिर्यक् परिभ्रमन् मेरोरुत्तरभागं प्रकाशयतीति, इत्थं च भारतैरावतसूर्यौ यदा मेरोर्दक्षिणोत्तरौ जम्बूद्वीपभागौ तिर्यक्कुरुतः तदैव तौ पूर्वपश्चिमौ जम्बूद्वीपभागौ रात्रौ कुरुतः, एकोऽपि सूर्यस्तदा पूर्वभागं पश्चिमभागं वा न प्रकाशयतीत्यर्थः, दक्षिणोत्तरौ च भागौ तिर्यक्कृत्वा तावितौ पूर्वपश्चिमौ जम्बूद्वीपभागौ तिर्यक्कुरुतः, इयमत्र भावना–ऐरावतः सूर्यो मेरोरुत्तरभागे तिर्यक् परिभ्रम्य तदनन्तरं मेरोरेव पूर्वस्यां दिशि तिर्यक् परिभ्रमति, भारतः सूर्यो मेरोर्दक्षिणतस्तिर्यक् परिभ्रम्य तदनन्तरं मेरोः पश्चिमे भागे तिर्यक् परिभ्रमतीति, इत्थं च यदा ऐरावतभारतौ सूर्यौ यथाक्रमं पूर्वपश्चिमभागौ तिर्यक् कुरुतस्तदैव दक्षिणोत्तरौ जम्बूद्वीपभागौ रात्रौ कुरुतः, एकोऽपि सूर्यस्तदा दक्षिणभागं उत्तरभागं वा न प्रकाशयतीति भावः, तत इत्थं यथाक्रममैरावत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [३५]

भारतसूर्यौ पूर्वपश्चिमभागौ तिर्यक् कृत्वा यो भारतः सूर्यः स उत्तरपश्चिममण्डलचतुर्भागे उदयमासादयति, यश्चैरावतः स दक्षिणपौरस्त्ये मण्डलचतुर्भागे इति, एतदेवोपदर्शयन्नुपसंहारमाह—'ते णं' इत्यादि, तौ भारतैरावतौ सूर्यौ प्रथमतो यथाक्रममिमौ दक्षिणोत्तरौ जम्बूद्वीपभागौ ततो यथायोगं पूर्वपश्चिमौ जम्बूद्वीपभागौ, भारतः पश्चिमभागमैरावतः पूर्वभागमित्यर्थः, तिर्यक् कृत्वा जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्योपरि यद्वा तद्वा मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा भूयश्च प्राचीनापाचीनायतया उदीच्यदक्षिणायतया च जीवया प्रत्यञ्चया दवरिकया इत्यर्थः, चतुर्भिर्विभज्य यथायोगं दक्षिणपौरस्त्ये उत्तरपश्चिमे वा मण्डलचतुर्भागे अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयात् भूमिभागादूर्ध्वमष्टौ योजनशतान्युत्प्लुत्य अत्रान्तरेऽवकाशे प्रातर्द्वौ सूर्यावाकाशे उत्तिष्ठतः—उद्गच्छतः, य उत्तरभागं पूर्वस्मिन्नहोरात्रे प्रकाशितवान् स दक्षिणपौरस्त्ये मण्डलचतुर्भागे उद्गच्छति, यस्तु दक्षिणं भागं प्रकाशयति स स उत्तरपश्चिमे मण्डलचतुर्भागे, एवं सकलकालं जगत्स्थितिः परिभावनीया ।

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दवितिय-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं १ समाप्तं

॥ ४८ ॥

तदेवमुक्तं द्वितीयस्य प्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति द्वितीयमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो यथा 'मण्डलान्तरे सङ्क्रमणं वक्तव्य'मिति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते मंडलाओ मंडलं संकममाणे २ सूरिए चारं चरति आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमातो दुवे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितिये प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १ परिसमाप्तं अथ द्वितिये प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २ आरभ्यते

पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता मंडलातो मंडलं संकममाणे २ सूरिए भेयघाएणं संकामइ एगे एवमाहंसु, एगे पुण एवमाहंसु ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिवेढेति, तत्थ जे ते एवमाहंसु; ता मंडलातो मंडलं संकममाणे २ भेयघाएणं संकमइ, तेसि णं अयं दोसे, ता जेणंतरेणं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ सूरिए भेयघाएणं संकमति, एवतियं च णं अद्धं पुरतो न गच्छति, पुरतो अगच्छमाणे मंडलकालं परिहवेति, तेसि णं अयं दोसे, तत्थ जे ते एवमाहंसु, ता मंडलातो मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिवेढेति, तेसि णं अयं विसेसे ता जेणंतरेणं मंडलातो मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिवेढेति, एवतियं च णं अद्धं पुरतो गच्छति, पुरतो गच्छमाणे मंडलकालं ण परिहवेति, तेसि णं अयं विसेसे, तत्थ जे ते एवमाहंसु–मंडलातो मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिवेढेति, एतेणं णएणं णेतव्वं, णो चेव णं इतरेणं । (सूत्रं २२) बितियस्स पाहुडस्स बितीयं ॥

'ता कह'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं भगवन्! मण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन् सूर्यश्चारं चरति, चारं चरन्नाख्यात इति वदेत्, किमुक्तं भवति ?–कथं भगवन्नेष सूर्यश्चारं चरन् मण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन् आख्यात इति, अत्र हि मण्डलान्मण्डलान्तरसङ्क्रमणमेव वक्तव्यमतस्तदेव प्रधानीकृत्य वाक्यस्य भावार्थो भावनीयः, एवमुक्ते भगवानाह—'तत्थ खलु' इत्यादि; तत्र–मण्डलान्मण्डलान्तरसङ्क्रमणविषये खल्विमे द्वे प्रतिपत्ती प्रज्ञप्ते तद्यथा–तत्रैके एवमाहुः–ता इति पूर्ववत्स्वयं परिभावनीयं, मण्डलादपरमण्डलं सङ्क्रामन्–सङ्क्रमितुमिच्छन् सूर्यो भेदघातेन सङ्क्रामति, भेदो–मण्डलस्य मण्डलस्यापा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२२]

दीप अनुक्रम [३६]

न्तरालं तत्र घातो–गमनं, एतच्च प्रागेवोक्तं, तेन संक्रामति, किमुक्तं भवति ?–विवक्षिते मण्डले सूर्येणापूरिते सति तदनन्तरमपान्तरालगमनेन द्वितीयं मण्डलं सङ्क्रामति, सङ्क्रम्य च तस्मिन्मण्डले चारं चरति, अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः 'ता' इति पूर्ववत् मण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन्–सङ्क्रमितुमिच्छन् सूर्यस्तदधिकृतं मण्डलं प्रथमक्षणादूर्ध्वमारभ्य कर्णकलं निर्वेष्टयति–मुञ्चति, इयमत्र भावना–भारत ऐरावतो वा सूर्यः स्वस्वस्थाने उद्गतः सन् अपरमण्डलगतं कर्णं प्रथमकोटिभागरूपं लक्ष्यीकृत्य शनैः शनैरधिकृतं मण्डलं तथा कथाचनापि कलया मुञ्चन् चारं चरति येन तस्मिन्नहोरात्रेऽतिक्रान्ते सति अपरानन्तरमण्डलस्यारम्भे वर्त्तते इति, कर्णकलमिति च क्रियाविशेषणं द्रष्टव्यं, तच्चैवं भावनीयं–कर्णं–अपरमण्डलगतप्रथमकोटिभागरूपं लक्ष्यीकृत्याधिकृतमण्डलं प्रथमक्षणादूर्ध्वं क्षणे क्षणे कलयाऽतिक्रान्तं यथा भवति तथा निर्वेष्टयतीति, तदेवं प्रतिपत्तिद्वयमुपन्यस्य यद्भूस्तुतत्त्वं तदुपदर्शयति—'तत्थे'त्यादि, तत्र–तेषां द्वयानां मध्ये ये एवमाहुः–मण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन् भेदघातेन सङ्क्रामति तेषामयं–अनन्तरमुच्यमानो दोषः, तमेवाह–येन–यावता कालेन अन्तरेण–अपान्तरालेन मण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन् सूर्यो भेदघातेन सङ्क्रामतीत्युच्यते, एतावतीमद्धां पुरतो–द्वितीये मण्डले न गच्छति, किमुक्तं भवति ?–मण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन् यावता कालेनापान्तरालं गच्छति तावत्कालाऽनन्तरं परिभ्रमितुमिष्टे, द्वितीयमण्डलसत्काहोरात्रमध्यात् व्रुत्र्यति, ततो द्वितीये मण्डले परिभ्रमन् पर्यन्ते तावन्तं कालं न परिभ्रमेत् तद्गताहोरात्रस्य परिपूर्णीभूतत्वात्, एवमपि को दोष इत्याह–पुरतो द्वितीयमण्डलपर्यन्तेऽगच्छन् मण्डलकालं परिभवति, यावता कालेन मण्डलं परिपूर्णं भ्रम्यते तस्य हानिरुपजायते, तथा च सति सकलजगद्विदितप्रतिनियतदिवस-

॥ ४९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रात्रिपरिमाणव्याघातप्रसङ्गः, 'तेसि णमयं दोसे'त्ति तेषामयं दोषः, 'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते वादिन एवमाहुः–मण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन् सूर्योऽधिकृतमण्डलं कर्णकलं निर्वेष्टयति–मुञ्चति तेषामयं विशेषो–गुणः, तमेव गुणमाह—'जेणे'–त्यादि, येन–यावता कालेनापान्तरालेन मण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन् सूर्यः कर्णकलमधिकृतं मण्डलं निर्वेष्टयति, एतावतीमद्धां पुरतोऽपि द्वितीयमण्डलपर्यन्तेऽपि गच्छति, इयमत्र भावना–अधिकृतं मण्डलं किल कर्णकलं निर्वेष्टितं अतोऽपान्तरालगमनकालोऽधिकृतमण्डलसत्क एवाहोरात्रेऽन्तर्भूतस्तथा च सति द्वितीये मण्डले सङ्क्रान्तः सन् तद्गतकालस्य मनाग्प्यहीनत्वाद् यावता कालेनापान्तरालं गम्यते तावता कालेन पुरतो गच्छति, ततः किमित्याह–पुरतो गच्छन्मण्डलकालं न परिभवति यावता कालेन प्रसिद्धेन तन्मण्डलं परिसमाप्यते तावता कालेन तन्मण्डलं परिपूर्णं समापयति, न पुनर्मनागपि मण्डलकालपरिहाणिस्ततो न कश्चित् सकलजगत्प्रसिद्धप्रतिनियतदिवसरात्रिपरिमाणव्याघातप्रसङ्गः, एष तेषामेवंवादिनां विशेषो–गुणः, तत इदमेव मतं समीचीनं नेतरदित्यावेदयन्नाह—'तत्थे'त्यादि तत्र ये ते वादिन एवमाहुमण्डलान्मण्डलं सङ्क्रामन् सूर्योऽधिकृतं मण्डलं कर्णकलं निर्वेष्टयति, एतेन नयेन–अभिप्रायेणास्मन्मतेऽपि मण्डलान्मण्डलान्तरसङ्क्रमणं ज्ञातव्यं, न चैवमितरेण नयेन, तत्र दोषस्योक्तत्वात् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां द्वितिय-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं २ समाप्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितिये प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २ परिसमाप्तं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [३७]

तदेवमुक्तं द्वितीयस्य प्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं सम्प्रति तृतीयमुच्यते–तस्य चायमर्थाधिकारः, यथा 'मण्डले २ प्रतिमुहूर्त्तं गतिर्वक्तव्ये'ति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता केवतियं ते खेत्तं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमातो चत्तारि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थ एगे एवमाहंसु–ता छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेण गच्छति, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु–ता पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु–ता चत्तारि २ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु–ता छवि पंचवि चत्तारिवि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, एगे एवमाहंसु ४, तत्थ जे ते एवमाहंसु ता छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति ते एवमाहंसु–जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चरति तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, तेसिं च णं दिवसंसि एगं जोयणसतसहस्सं अट्ठ य जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, तेसिं च णं दिवसंसि बावत्तरिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते, तया णं छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तत्थ जे ते एवमाहंसु ता पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,

॥ ५० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्वितिये प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ३ आरभ्यते

ते एवमाहंसु–ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, तहेव दिवसराइप्पमाणं तंसि च (णं तावखेत्तं नउइजोयणसहस्साइं, ता जया णं सव्वबाहिरं मंडलं) उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं तं चेव राइंदियप्पमाणं तंसि च णं दिवसंसि सट्ठिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पन्नत्ते, तता णं पंच (पंच) जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तत्थ जे ते एवमाहंसु, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं दिवसराई तहेव, तंसि च णं दिवसंसि बावत्तरिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं राइंदियं तथेव, तंसि च णं दिवसंसि अडयालीसं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पं०, तता णं चत्तारि २ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति तत्थ जे ते एवमाहंसु छवि पंचवि चत्तारिवि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति ते एवमाहंसु–ता सूरिए णं उग्गमणमुहुत्तेणं सिय अत्थमणमुहुत्तं सिग्घगता भवति, तता णं छ छ जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, मज्झिमतावखेत्तं समासादेमाणे २ सूरिए मज्झिमगता भवति, तता णं पंच पंच जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, मज्झिमं तावखेत्तं संपत्ते सूरिए मंदगती भवति, तता णं चत्तारि जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तत्थ को हेऊत्ति वदेज्जा?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव परिक्खेवेणं, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं दिवसराई तहेव तंसि च णं दिवसंसि एक्काणउतिं जोयणसहस्साइं तावखेत्ते पं०, ता जया णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

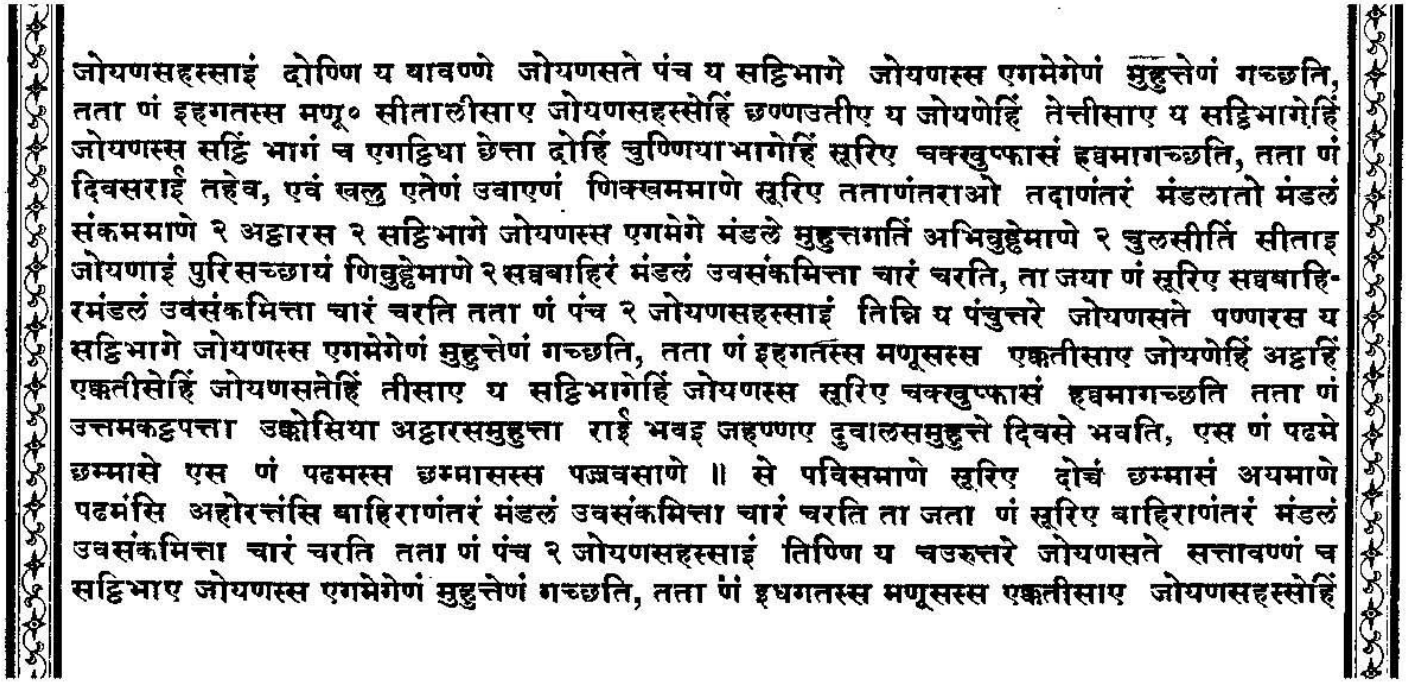
प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [३७]

सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं राइंदियं तहेव, तस्सि च णं दिवसंसि एगट्ठिजोयणसहस्साइं तावखेत्ते पण्णत्ते, तता णं छवि पंचवि चत्तारिवि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, एगे एवमाहंसु। वयं पुण एवं वदामो ता सातिरेगाइं पंच २ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तत्थ को हेतूत्ति वदेज्जा, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ परिक्खेवेणं ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं पंच २ जोयणसहस्साइं दोण्णि य एकावण्णे जोयणसए एगूणतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तता णं इधगतस्स मणुसस्स सीतालीसाए जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसतेहिं एकवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, तया णं दिवसे राई तहेव, से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं पंच २ जोयणसहस्साइं दोण्णि य एकावण्णे जोयणसते सीतालीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तता णं इहगयस्स मणूसस्स सीतालीसाए जोयणसहस्सेहिं अउणासीते य जोयणसते सत्तावण्णाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता अउणावीसाए चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, तता णं दिवसराई तहेव, से णिक्खममाणे सूरिए दोचंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरतचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतरतचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं पंच २

॥ ५१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



जोयणसहस्साइं दोण्णि य बावण्णे जोयणसते पंच य सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तता णं इहगतस्स मणू० सीतालीसाए जोयणसहस्सेहिं छण्णउतीए य जोयणेहिं तेत्तीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिं भागं च एगट्ठिधा छेत्ता दोहिं चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, तता णं दिवसराई तहेव, एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तताणंतराओ तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगतिं अभिवुड्ढेमाणे २ चुलसीतिं सीताइ जोयणाइं पुरिसच्छायं णिवुड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं पंच २ जोयणसहस्साइं तिन्नि य पंचुत्तरे जोयणसते पण्णरस य सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तता णं इहगतस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोयणेहिं अट्ठहिं एक्कतीसेहिं जोयणसतेहिं तीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ॥ से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ता जता णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं पंच २ जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउरुत्तरे जोयणसते सत्तावण्णं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तता णं इधगतस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

नवहि य सोलेहिं जोयणसएहिं एगूणतालीसाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता सट्ठिए चुण्णियाभागे सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छति, तता णं राइंदियं तहेव, से पविसमाणे सूरिए दोचंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं पंच पंच जोयणसहस्साइं तिन्नि य चउत्तरे जोयणसते ऊतालीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, तता णं इहगतस्स मणूसस्स एगाधिगेहिं बत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं एकावण्णाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिधा छेत्ता तेवीसाए चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, राइंदियं तहेव, एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए तताणंतरातो तताणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं णिवुड्ढेमाणे २ सातिरेगाइं पंचासीति २ जोयणाइं पुरिसच्छायं अभिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं पञ्च २ जोयणसहस्साइं दोण्णि य एकावण्णे जोयणसए अट्ठतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति तता णं इहगयस्स मणूसस्स सीतालीसाए जोयणसहस्सेहिं दोहि य दोवट्ठेहिं जोयणसतेहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवा-

॥ ५२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लसमुहुत्ता राई भवति, एस णं दोचे छम्मासे एस णं दोचस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे एस णं आदिचे संवच्छरे एस णं आदिचसंवच्छरस्स पज्जवसाणे (सूत्रं २३) बितियं पाहुडं समत्तं ॥

'ता केवतियं ते खित्तं सूरिए'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कियन्मात्रं क्षेत्रं भगवन् ! ते–त्वया सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, गच्छन्नाख्यात इति वदेत् ?, एवमुक्ते सति भगवान् एतद्विषयपरतीर्थिकप्रतिपत्तिमिथ्याभावोपदर्शनाय प्रथमतस्ता एव परप्रतिपत्तीरुपदर्शयति—'तत्थ'इत्यादि, तत्र–प्रतिमुहूर्त्तगतिपरिमाणचिन्तायां खल्विमाश्चतस्रः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र–तेषां चतुर्णां वादिनां मध्ये एके एवमाहुः–षट् २ योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, अत्रैवोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' १, एवमग्रेतनान्युपसंहारवाक्यानि भावनीयानि, एके पुनर्द्वितीया एवमाहुः–पञ्च २ योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति २, एके पुनस्तृतीया एवमाहुः–चत्वारि २ योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, ३, अपरे पुनश्चतुर्था एवमाहुः–षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तदेवं चतस्रोऽपि प्रतिपत्तीः सङ्क्षेपत उपदर्श्य सम्प्रत्येतासां यथाक्रमं भावनिकामाह—'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते वादिन एवमाहुः–षट् षट् योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ते एवमाहुः–यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्तः–परमप्रकर्षप्राप्तोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति सर्वजघन्या च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तस्मिंश्च दिवसे तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तं एकं योजनशतसहस्रमष्टौ च योजनसहस्राणि, तथाहि–तस्मिन्नपि मण्डले उदयमानः सूर्यो दिवसस्यार्द्धेन यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्नोति तावति व्यवस्थितश्चक्षुर्गोचरमायाति तत एतावत्किल पुरतस्तापक्षेत्रं, यावच्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

पुरतस्तापक्षेत्रं तावत्पश्चादपि, यत उदयमान इवास्तमयमानोऽपि सूर्यो दिवसस्यार्द्धेन यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्नोति तावति व्यवस्थितश्चक्षुषोपलभ्यते, एतच्च प्रतिप्राणि सुप्रसिद्धं, सर्वाभ्यन्तरे च मण्डले दिवसस्यार्द्धं नव मुहूर्त्तास्ततोऽष्टादशभिर्मुहूर्त्तैर्यावन्मात्रं क्षेत्रं गम्यं तावत्प्रमाणं तापक्षेत्रं, एकैकेन मुहूर्त्तेन षट् षट् योजनसहस्राणि गम्यन्ते, ततः षण्णां योजनसहस्राणामष्टादशभिर्गुणने भवत्येकं योजनशतसहस्रमष्टौ योजनसहस्राणीति, एवमुत्तरत्रापि तत्तन्मण्डलगतदिवसपरिमाणं प्रतिमुहूर्त्तगतिपरिमाणं च परिभाव्य तापक्षेत्रपरिमाणभावना भावनीया, यदा च सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्ता अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति सर्वजघन्यश्च द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, तस्मिंश्च दिवसे तापक्षेत्रपरिमाणं द्विसप्ततियोजनसहस्राणि ७२०००, तदा हि तापक्षेत्रं द्वादशमुहूर्त्तगम्यप्रमाणं, अत्रार्थे च भावना प्रागुक्तानुसारेण स्वयं भावनीया, मुहूर्त्तेन च षट् षट् योजनसहस्राणि गच्छति, ततः षण्णां योजनसहस्राणां द्वादशभिर्गुणने भवन्ति द्वासप्ततिरेव योजनसहस्राणीति, इमामेवोपपत्तिं लेशत आह–'तेसि ण'मित्यादि, तेषां हि तीर्थान्तरीयाणां मतेन सूर्यः षट् षड् योजनसहस्राण्येकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ततः सर्वाभ्यन्तरे सर्वबाह्ये च मण्डले यथोक्तमेव तापक्षेत्रपरिमाणं भवतीति, तथा 'तत्थे'त्यादि, तत्र–तेषां वादिनां मध्ये ये ते एवमाहुः–पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति त एवमाहुः–यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'तहेव दिवसराइप्पमाण'मिति अत्र प्रस्तावे दिवसरात्रिप्रमाणं तथैव–प्रागिव द्रष्टव्यं, 'तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे हवइ, जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई' इति, 'तस्सिं च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतेऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणे दिवसे तापक्षेत्रं–तापक्षेत्रपरिमाणं प्रज्ञप्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवतियोजनसहस्राणि, तदा हि प्रागुक्तयुक्तिवशादष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणं तापक्षेत्रं, एकैकेन च मुहूर्त्तेन गच्छति सूर्यः पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि, ततः पञ्चानां योजनसहस्राणामष्टादशभिर्गुणनेन नवतिरेव योजनसहस्राणि भवन्ति, 'ता जया ण'मित्यादि, यदा सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा 'तं चेव राइंदियप्पमाण'मिति, तदेव प्रागुक्तं रात्रिंदिवप्रमाणं–रात्रिदिवसप्रमाणं वक्तव्यं, तद्यथा–"उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई हवइ जहन्निए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवती'ति, 'तंसि च ण'मित्यादि, तस्मिन् सर्वबाह्यमण्डलगते सर्वजघन्ये द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणे दिवसे तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तं षष्टियोजनसहस्राणि ६००००, तदा ह्यनन्तरोक्तयुक्तिवशाद् द्वादशमुहूर्त्तगम्यप्रमाणं तापक्षेत्रमेकैकेन च मुहूर्त्तेन पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि गच्छति ततः पञ्चानां योजनसहस्राणां द्वादशभिर्गुणने भवति षष्टियोजनसहस्राणि, अत्रैवोपपत्तिलेशमाह—'तया णं पंच पंचे'त्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारचरणकाले सर्वबाह्यमण्डलचारचरणकाले च पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, ततः सर्वाभ्यन्तरे सर्वबाह्ये च मण्डले यथोक्तमातपक्षेत्रपरिमाणं भवति २, 'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते वादिन एवमाहुः–चत्वारि २ योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति त एवं सूर्यतापक्षेत्रप्ररूपणां कुर्वन्ति–यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा दिवसरात्री तथैव–प्रागिव वक्तव्ये, ते चैवम्–'तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे हवइ जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' इति, 'तंसि च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतेऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणे दिवसे तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तं द्विसप्ततियोजनसहस्राणि ७२०००, तथा हि–एतेषां मतेन सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन चत्वारि २ योजनसहस्राणि गच्छति, सर्वाभ्यन्तरे च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मण्डले तापक्षेत्रपरिमाणं प्रागुक्तयुक्तिवशादष्टादशमुहूर्त्तगम्यं, ततश्चतुर्णां योजनसहस्राणामष्टादशभिर्गुणने भवन्ति द्विसप्ततियोजनसहस्राणि, 'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तदा 'राईंदियं तहेव'त्ति रात्रिंदिवं–रात्रिदिवसप्रमाणं तथैव–प्रागिव वक्तव्यं, तच्चैवम्–'तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति' 'तंसि च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च सर्वबाह्यमण्डलगते द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणे दिवसे तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तं अष्टाचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि ४८०००, तदा हि तापक्षेत्रं द्वादशमुहूर्त्तगम्यं, एकैकेन च मुहूर्त्तेन चत्वारि २ योजनसहस्राणि गच्छति, ततश्चतुर्णां योजनसहस्राणां द्वादशभिर्गुणनेऽष्टाचत्वारिंशत्सहस्राणि भवन्ति, इमामेवोपपत्तिं लेशतो भावयति—'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारकाले सर्वबाह्यमण्डलचारकाले च यतश्चत्वारि योजनसहस्राणि एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ततः सर्वाभ्यन्तरे सर्वबाह्ये च मण्डले यथोक्तं तापक्षेत्रपरिमाणं भवति ३ । 'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते वादिन एवमाहुः–षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ते एवमाहुः–एवं सूर्यचारं प्ररूपयन्ति, सूर्य उद्गमनमुहूर्त्ते अस्तमयनमुहूर्त्ते च शीघ्रगतिर्भवति ततस्तदा–उद्गमनकालेऽस्तमयनकाले च सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन षट् षट् योजनसहस्राणि गच्छति, तदनन्तरं सर्वाभ्यन्तरगतं मुहूर्त्तमात्रगम्यं तापक्षेत्रं मुक्त्वा शेषं मध्यमं तापक्षेत्रं परिभ्रमेण समासादयन् मध्यमगतिर्भवति, ततस्तदा पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, सर्वाभ्यन्तरं तु मुहूर्त्तमात्रगम्यं तापक्षेत्रं सम्प्राप्तः सन् सूर्यो मन्दगतिर्भवति, ततस्तदा यत्र तत्र वा मण्डले चत्वारि २ योजनसहस्राणि एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, अत्रैव भावार्थं पिपृच्छिषुराह—'तत्थे'त्यादि, तत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवंविधवस्तुतत्त्वव्यवस्थायां को हेतुः ?–का उपपत्तिरिति वदेत्, एवं स्वशिष्येण प्रश्ने कृते सति ते एवमाहुः 'ता अयण्ण'मित्यादि, अत्र जम्बूद्वीपवाक्यं पूर्ववत् स्वयं परिपूर्णं पठनीयं व्याख्यानीयं च, 'जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा दिवसरात्री तथैव प्रागिव वक्तव्ये, ते चैवम्–'तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,' 'तंसि च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतेऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणदिवसे तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तं एकनवतियोजनसहस्राणि ९१०००, तानि चैवमुपपद्यन्ते-उद्गमनमुहूर्त्तेऽस्तमयमुहूर्त्ते च प्रत्येकं षट् योजनसहस्राणि गच्छतीत्युभयमीलने द्वादश योजनसहस्राणि १२०००, सर्वाभ्यन्तरं मुहूर्त्तमात्रगम्यं तापक्षेत्रं मुक्त्वा शेषे मध्यमे तापक्षेत्रे पञ्चदशमुहूर्त्तप्रमाणे पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि गच्छतीति पञ्चानां योजनसहस्राणां पञ्चदशभिर्गुणने पञ्चसप्ततियोजनसहस्राणि ७५०००, सर्वाभ्यन्तरे तु मुहूर्त्तमात्रगम्ये तापक्षेत्रे चत्वारि योजनसहस्राणि ४००० गच्छतीति सर्वमीलने एकनवतियोजनसहस्राणि ९१००० भवन्ति, न चैतान्यन्यथा घटन्ते, तथा 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य सूर्यश्चारं चरति तदा रात्रिंदिवं–रात्रिंदिवपरिमाणं तथैव–प्रागिव वेदितव्यं, तच्चैवम्–'तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' इति, 'तंसि च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च सर्वबाह्यमण्डलगते द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणे दिवसे तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तं, एकषष्टियोजनसहस्राणि ६१०००, तानि चैवं घटां प्राञ्चन्ति–उद्गमनमुहूर्त्ते अस्तमयमुहूर्त्ते च प्रत्येकं षट् षट् योजनसहस्राणि गच्छन्ति, तत उभयमीलने द्वादश योजनसहस्राणि भवन्ति १२०००, सर्वाभ्यन्तरं मुहूर्त्तमात्रगम्यं तापक्षेत्रं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

मुक्त्वा शेषे मध्यमे तापक्षेत्रे नवमुहूर्त्तगम्यप्रमाणे पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, ततः पञ्चानां योजनसहस्राणां नवभिर्गुणने पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि भवन्ति ४५०००, सर्वाभ्यन्तरे तु मुहूर्त्तमात्रगम्ये तापक्षेत्रे चत्वारि योजनसहस्राणि ४००० गच्छति, सर्वमीलने एकषष्टिर्योजनसहस्राणि, न चैतान्यन्यथोपपद्यन्ते, ततः 'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारकाले सर्वबाह्यमण्डलचारकाले चोक्तप्रकारेण षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, अत्रैवोपसंहारः—'एगे एवमाहंसु' एके चतुर्था वादिन एवं—अनन्तरोक्तेन प्रकारेणाहुः। तदेवं परतीर्थिकप्रतिपत्तीरुपदर्श्य सम्प्रति स्वमतमुपदर्शयति—'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलज्ञानाः केवलज्ञानेन यथावस्थितं वस्तूपलभ्य एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह—'ता साइरेगाइं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् सातिरेकाणि—समधिकानि पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, इह क्वापि मण्डले कियताऽधिकेन पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि गच्छति, ततः सर्वमण्डलप्राप्तिमपेक्ष्य सामान्यत उक्तं सातिरेकाणीति, एवमुक्ते भगवान् गौतमस्वामी स्वशिष्याणां स्पष्टावबोधनाय भूयः पृच्छति—'तत्थे'त्यादि, तत्र—एवंविधायामनन्तरोदितायां वस्तुव्यवस्थायां को हेतुः—का उपपत्तिरिति वदेत्, भगवान् वर्द्धमानस्वामी आह—'ता अयण्ण'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपवाक्यं पूर्ववत्स्वयं परिपूर्णं परिभावनीयं, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे द्वे योजनशते एकपञ्चाशदधिके एकोनत्रिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य ५२५१$\frac{२९}{६०}$ एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, इह द्वाभ्यां सूर्याभ्यामेकं मण्डलमेकेनाहोरात्रेण परि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाप्यते, अहोरात्रश्च त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणः, प्रतिसूर्यं चाहोरात्रगणने परमार्थतो द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां मण्डलं परिभ्रमणतः परिसमाप्यते, द्वयोश्चाहोरात्रप्रमाणयोर्मुहूर्त्ताः षष्टिर्भवन्ति, ततो मण्डलपरिरयस्य षष्ट्या भागं हारयेत्, भागलब्धं भवति तन्मुहूर्त्तगतिप्रमाणं, तत्र सर्वाभ्यन्तरे मण्डले परिरयप्रमाणं त्रीणि लक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि नवाशी(एकोननव)त्यधिकानि ३१५०८९ अस्य षष्ट्या भागे हृते लब्धं यथोक्तं मुहूर्त्तगतिपरिमाणमिति। अत्रास्मिन् सर्वाभ्यन्तरे मण्डले कियति क्षेत्रे व्यवस्थित उदयमानः सूर्य इहगतानां मनुष्याणां चक्षुर्गोचरमायातीतिप्रश्नावकाशमाशङ्क्याह—'तया ण'मित्यादि, तदा—सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारचरणकाले उदयमानः सूर्य इहगतस्य मनुष्यस्य, अत्र जातावेकवचनं, ततोऽयमर्थः—इहगतानां भरतक्षेत्रगतानां मनुष्याणां सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैर्द्वाभ्यां त्रिषष्टाभ्यां—त्रिषष्ट्यधिकाभ्यां योजनशताभ्यामेकविंशत्या च षष्टिभागैर्योजनस्य चक्षुःस्पर्शं 'हवंति' शीघ्रमागच्छति, काऽत्रोपपत्तिरिति चेत्, उच्यते, इह दिवसस्यार्द्धेन यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते तावति व्यवस्थित उदयमानः सूर्यः उपलभ्यते, सर्वाभ्यन्तरे च मण्डले दिवसोऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणस्तेषामर्द्धे नव मुहूर्त्ताः, एकैकस्मिंश्च मुहूर्त्ते सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरन् पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते एकपञ्चाशदधिके एकोनत्रिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य गच्छति, तत एतावन्मुहूर्त्तगतिपरिमाणं नवभिर्मुहूर्तैर्गुण्यते, ततो भवति यथोक्तं दृष्टिपथप्राप्ततायां विषये परिमाणमिति, 'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारचरणकाले दिवसरात्री तथैव—प्रागिव वक्तव्ये, ते चैवम्—'तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' इति, 'से निक्खममाणे' इत्यादि, ततः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्प्रागुक्तप्रकारेण निष्क्रामन् सूर्यो नवं संवत्सरमाददानो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥ ५६ ॥

नवस्य संवत्सरस्य प्रथमेऽहोरात्रे 'अभ्यन्तरानंतरं'ति सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्यानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता जया ण'मित्यादि तत्र यदा णमिति वाक्यालङ्कारे सर्वाभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा पञ्च योजनसहस्राणि द्वे योजनशते एकपञ्चाशदधिके सप्तचत्वारिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य ५२५१$\frac{४७}{६०}$ एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तथाहि–अस्मिन् सर्वाभ्यन्तरानन्तरे द्वितीये मण्डले परिरयपरिमाणं त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि शतमेकं व्यवहारतः परिपूर्णं सप्तोत्तरं निश्चयमतेन तु किंचिन्न्यूनं ३१५१०७, ततोऽस्य प्रागुक्तयुक्तिवशात् षष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं, अथवा पूर्वमण्डलपरिरयपरिमाणादस्य मण्डलस्य परिरयपरिमाणे व्यवहारतः परिपूर्णान्यष्टादश योजनानि वर्द्धन्ते, निश्चयतः किञ्चिदूनानि, अष्टादशानां च योजनानां षष्ट्या भागे हृते लब्धा अष्टादश षष्टिभागा योजनस्य, ते प्राक्तनमण्डलगतमुहूर्त्तगतिपरिमाणेऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यन्ते, ततो भवति यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणमिति, अत्रापि दृष्टिपथप्राप्ततां विषयं परिमाणमाह—'तया ण'मित्यादि, तदा–सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलचारकाले इहगतस्य मनुष्यस्य–जातावेकवचनं इहगतानां मनुष्याणां सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैरेकोनाशीत्यधिकेन योजनशतेन सप्तपञ्चाशता षष्टिभागैरेकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा तस्य सप्तभिरेकोनविंशत्या चूर्णिकाभागैः सूर्यश्चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं पञ्च योजनसहस्राणि द्वे शते एकपञ्चाशदधिके सप्तचत्वारिंशच्च षष्टिभागा योजनस्य ५२५१$\frac{४७}{६०}$, दिवसोऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूनस्तस्यार्द्धे नव मुहूर्त्ता एकेन एकषष्टिभागेन हीनाः, ततः सकलैकषष्टिभागकरणार्थं नव मुहूर्त्ता एकषष्ट्या

२ प्राभृते ३ प्राभृत-प्राभृतं

॥ ५६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुण्यन्ते, गुणयित्वा च तत एकं रूपमपनीयते, जातानि पञ्च शतान्यष्टचत्वारिंशदधिकानि ५४८, ततोऽस्य द्वितीयस्य मण्डलस्य यत्परिरयपरिमाणं त्रीणि लक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि शतमेकं सप्तोत्तरमिति ३१५१०७, तत्पञ्चभिः शतैरष्टाचत्वारिंशदधिकैर्गुण्यते, ततो जात एककः सप्तको द्विकः षट्कः सप्तकोऽष्टकः षट्कस्त्रिकः षट्कः १७२६७८६३६, ततो योजनानयनार्थमेकषष्टेः षष्ट्या गुणिताया यावान् राशिर्भवति तेन भागो ह्रियते, एकषष्ट्यां च षष्ट्या गुणितायां षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि भवन्ति ३६६०, तैर्भागे हृते लब्धं सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि शतमेकोनाशीत्यधिकं योजनानां, शेषमुद्धरति चतुस्त्रिंशच्छतानि षण्णवत्यधिकानि ३४९६, ततोऽस्माद्योजनानि नायान्तीति षष्टिभागानयनार्थं छेदराशिरेकषष्टिर्ध्रियते, तेन भागे हृते लब्धाः सप्तपञ्चाशत्षष्टिभागाः ५७/६१ एकस्य च षष्टिभागस्य सत्का एकोनविंशतिरेकषष्टिभागा इति । 'तया ण'मित्यादि, तदा–सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलचारचरणकाले दिवसरात्री तथैव–प्रागिव वक्तव्ये, ते चैवम्–'तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे हवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया' इति, 'से निक्खममाणे'इत्यादि, द्वितीयस्मादपि मण्डलात् स सूर्यः प्रागुक्तप्रकारेण निष्क्रामन् नवस्य संवत्सरस्य सत्के द्वितीयेऽहोरात्रे 'अब्भिंतरतच्चं'ति सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे योजनशते द्विपञ्चाशे द्विपञ्चाशदधिके पञ्च च षष्टिभागान् योजनस्य ५२५२५/६० एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तथाहि–अस्मिन्मण्डले परिरयपरिमाणं त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि शतमेकं पञ्चविंशत्यधिकं ३१५१२५, ततोऽस्य प्रागुक्तयुक्तिवशात् षष्ट्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागो हियते, लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं, अथवा पूर्वमण्डलमुहूर्त्तगतिपरिमाणादस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणचिन्तायां प्रागुक्तयुक्तिवशादष्टादश षष्टिभागा योजनस्याधिकाः प्राप्यन्ते, ततस्तत्प्रक्षेपे भवति यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं, अत्रापि दृष्टिपथप्राप्तताविषयपरिमाणमाह—'तया ण'मित्यादि, तदा—सर्वाभ्यन्तरानन्तरतृतीयमण्डलचारकाले इहगतस्य मनुष्यस्य—जातावेकवचनस्य भावादिहगतानां मनुष्याणां सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः षण्णवत्या च योजनैस्त्रयस्त्रिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य एकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काभ्यां द्वाभ्यां चूर्णिकाभागाभ्यां ४७०९६$\frac{33}{60}$।$\frac{2}{61}$। सूर्यश्चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तथाहि—अस्मिन् मण्डले दिवसोऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणश्चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूनस्तस्यार्द्धे नव मुहूर्त्ता द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां हीनाः, ततः सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं नवापि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा च द्वावेकषष्टिभागौ तेभ्योऽपनीयेते, ततो जाता एकषष्टिभागाः पञ्च शतानि सप्तचत्वारिंशताऽधिकानि ५४७, ततोऽस्य तृतीयमण्डलस्य यत्परिरयपरिमाणं त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि शतमेकं पञ्चविंशत्यधिकमिति ३१५१२५, तत्पञ्चभिः शतैः सप्तचत्वारिंशदधिकैर्गुण्यते, जाताः सप्तदश कोटयस्त्रयोविंशतिः शतसहस्राणि त्रिसप्ततिः सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि १७२३७३३७५, एतेषामेकषष्ट्या षष्ट्या गुणितया ३६६० भागो हियते, लब्धानि सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि षण्णवत्यधिकानि ४७०९६, शेषमुद्धरति विंशतिशतानि पञ्चदशोत्तराणि २०१५, ततोऽस्माद्योजनानि नायान्तीति षष्टिभागानयनार्थं छेदराशिरेकषष्टिर्भ्रियन्ते, तेन भागे हृते लब्धास्त्रयस्त्रिंशत्षष्टिभागाः $\frac{33}{60}$ एकस्य च षष्टिभागस्य सत्कौ द्वावेकषष्टिभागौ $\frac{2}{61}$ 'तया ण'मित्यादि, तदा—सर्वाभ्यन्तरतृतीय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मण्डलचारचरणकाले दिवसरात्री तथैव–प्रागिव वेदितव्ये, ते चैवम्—'तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे हवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया' इति, सम्प्रति चतुर्थादिषु मण्डलेष्वतिदेशमाह—'एवं खलिव'त्यादि, एवं–उक्तेन प्रकारेण खलु–निश्चितमेतेन–अनन्तरोदितेनोपायेन शनैः शनैस्तत्तद्बहिर्मण्डलाभिमुखगमनरूपेण निष्क्रामन् सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं प्रागुक्तप्रकारेण सङ्क्रामन् सङ्क्रामन् एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिमित्यत्र सूत्रे द्वितीया सप्तम्यर्थे प्राकृतत्वाद्भवति प्राकृतलक्षणवशात् सप्तम्यर्थे द्वितीया, यथा—'कत्तो रत्तिं मुद्धे ! पाणियसद्धा सउणयाण'मित्यत्र [कुतो रात्रौ मुग्धे ! पानीयश्रद्धा शकुनकानाम्] ततोऽयमर्थः–मुहूर्त्तगतौ अष्टादश २ षष्टिभागान् योजनस्य व्यवहारतः परिपूर्णान्निश्चयतः किञ्चिदूनानभिवर्द्धयमानः २ 'पुरिसच्छाय'मिति पुरुषस्य छाया यतो भवति सा पुरुषच्छाया सा चेह प्रस्तावात् प्रथमतः सूर्यस्योदयमानस्य दृष्टिपथप्राप्तता, अत्रापि द्वितीया सप्तम्यर्थे, ततोऽयमर्थः–तस्यामेकैकस्मिन् मण्डले चतुरशीतिः २ 'सीयाइं'ति शीतानि किञ्चिदूनानीत्यर्थः, योजनानि निर्वेष्टयन् २–हापयन्नित्यर्थः,इदं च स्थूलत उक्तं, परमार्थतः पुनरिदं द्रष्टव्यं–व्यशीतियोजनानि त्रयोविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य एकषष्टिधा छिन्नस्य सत्का द्विचत्वारिंशद्भागाश्चेति दृष्टिपथप्राप्ततविषये विषयहानौ ध्रुवं, ततः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीयं यन्मण्डलं तत आरभ्य यस्मिन् यस्मिन् मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता ज्ञातुमिष्यते तत्तन्मण्डलसङ्ख्यया षट्त्रिंशद् गुण्यते, तद्यथा–सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीये मण्डले एकेन चतुर्थे द्वाभ्यां पञ्चमे त्रिभिर्यावत् सर्वबाह्ये मण्डले व्यशीत्यधिकेन शतेन, गुणयित्वा च ध्रुवराशिमध्ये प्रक्षिप्यते, प्रक्षिप्ते सति यद्भवति तेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हीना पूर्वमण्डलगता दृष्टिपथप्राप्तता–तस्मिन् विवक्षिते मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता द्रष्टव्या, अथ त्र्यशीतियोजनानीत्यादिकस्य ध्रुवराशेः कथमुत्पत्तिः ?, उच्यते, इह सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य ४७२६३$\frac{21}{60}$, एतच्च नवमुहूर्त्तगम्यं, तत एकस्मिन् मुहूर्त्तैकषष्टिभागे किमागच्छतीति चिन्तायां नव मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि पञ्च शतान्येकोनपञ्चाशदधिकानि ५४९, तैर्भागो ह्रियते, लब्धा षडशीतिर्योजनानि पञ्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्य एकषष्ट्या छिन्नस्य सत्काश्चतुर्विंशतिर्भागाः ८६$\frac{5}{60}\frac{24}{61}$। पूर्वस्मात् २ च मण्डलादनन्तरानन्तरे मण्डले परिरयपरिमाणचिन्तायामष्टादश २ योजनानि व्यवहारतः परिपूर्णानि वर्द्धन्ते, ततः पूर्वपूर्वमण्डलगतमुहूर्त्तगतिपरिमाणादनन्तरानन्तरे मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणचिन्तायां प्रतिमुहूर्त्तमष्टादशाष्टादश षष्टिभागा योजनस्य प्रवर्द्धमाना द्रष्टव्याः, प्रतिमुहूर्त्तैकषष्टिभागं चाष्टादश एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाः, सर्वाभ्यन्तरानन्तरे च द्वितीये मण्डले सूर्यो दृष्टिपथप्राप्तो भवति नवभिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैर्नोनैर्यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते तावति स्थितस्ततो नव मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा च तेभ्य एकं रूपमपनीयते, जातानि पञ्च शतानि अष्टाचत्वारिंशदधिकानि ५४८, तैरष्टादश गुण्यन्ते, जातान्यष्टानवतिः शतानि चतुःषष्टिसहितानि ९८६४, तेषां षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धमेकषष्ट्याधिकं शतं षष्टिभागानां त्रिचत्वारिंशदेकषष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाः $\frac{163}{60}\frac{43}{61}$, तत्र विंशत्यधिकेन षष्टिभागशतेन द्वे योजने लब्धे पश्चादेकचत्वारिंशत्षष्टिभागा अवतिष्ठन्ते, एतच्च द्वे योजने एकचत्वारिंशत्षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काश्चिचत्वारिंशदेकषष्टिभागा इत्येवं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूपं प्रागुक्तात् षडशीतियोजनानि पञ्च षष्टिभागा योजनस्य एकषष्टिभागस्य सत्काश्चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागा इत्येतस्माच्छोध्यते, शोधिते च तस्मिन् स्थितानि पश्चात् त्र्यशीतिर्योजनानि त्रयोविंशतिः षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ८३$\frac{२३}{६०}$।$\frac{४२}{६१}$। एतावद् द्वितीये मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततायां विषये सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् हानौ प्राप्यते, किमुक्तं भवति ?—सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततायां हानौ ध्रुवं, अत एव ध्रुवराशिपरिमाणात् द्वितीये मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणमेतावता हीनं भवतीति, एतच्चोत्तरोत्तरमण्डलविषयदृष्टिपथप्राप्ततासु चिन्तायां हानौ ध्रुवं, अत एव ध्रुवराशिरिति ध्रुवराशेरुत्पत्तिः, ततो द्वितीयस्मान्मण्डलादनन्तरे तृतीये मण्डले एष एव ध्रुवराशिः एकस्य षष्टिभागस्य सत्कैः षट्त्रिंशतैकषष्टिभागैः सहितः सन् यावान् भवति तद्यथा—त्र्यशीतिर्योजनानि चतुर्विंशतिः षष्टिभागा योजनस्य सप्तदश एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागा इति, एतावान् द्वितीयमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् शोध्यते, ततो भवति यथोक्तं तस्मिन् तृतीये मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततायां विषयं परिमाणं, चतुर्थे मण्डले स एव ध्रुवराशिर्द्वाभ्यां सप्तत्या सहितः क्रियते, चतुर्थं हि मण्डलं तृतीयापेक्षया द्वितीयं, ततः षट्त्रिंशद् द्वाभ्यां गुण्यते, गुणिता च सती द्विसप्ततिर्भवति, तया च सहितः सन् एवंरूपो जातस्त्र्यशीतिर्योजनानि चतुर्विंशतिः षष्टिभागा योजनस्य त्रिपञ्चाशदेकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाः ८३$\frac{२४}{६०}$।$\frac{५३}{६१}$। एतावान् तृतीयमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् शोध्यते, ततो यथावस्थितं चतुर्थे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्चेदम्—'सप्तचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रयोदशोत्तराणि अष्टौ च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्य सत्का दश एकषष्टिभागाः ४७०१३$\frac{८}{६०}$।$\frac{१०}{६१}$,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वान्तिमे तु मण्डले तृतीयमण्डलापेक्षया द्व्यशीत्यधिकशततमे यदा दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं ज्ञातुमिष्यते तदा सा षट्त्रिंशत् द्व्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यते, जातानि पञ्चषष्टिशतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ६५५२, ततः षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धं सप्तोत्तरं शतं षष्टिभागानां १०७, शेषाः पञ्चविंशतिरेकषष्टिभागा उद्धरन्ति २५, एतत् ध्रुवराशौ प्रक्षिप्यते, ततो जातमिदं–पञ्चाशीतियोंजनानि एकादश षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षट् एकषष्टिभागाः ८५$\frac{११}{६०}$।$\frac{६}{६१}$। इह षट्त्रिंशत एवमुत्पत्तिः–पूर्वस्मात् २ मण्डलादनन्तरेऽनन्तरे मण्डले दिवसो द्वाभ्यां द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां हीनो भवति, प्रतिमुहूर्त्तैकषष्टिभागं चाष्टादश एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागा हीयन्ते, तत उभयमीलने षट्त्रिंशद्भवति, ते चाष्टादश एकषष्टिभागाः कलया न्यूना लभ्यन्ते न परिपूर्णाः, परं व्यवहारतः पूर्व परिपूर्णा विवक्षिताः, तच्च कलया न्यूनत्वं प्रतिमण्डलं भवत् यदा द्व्यशीत्यधिकशततमे मण्डले एकत्र पिण्डितं सत् चिन्त्यते तदा एकषष्टिरेकषष्टिभागास्त्रुट्यन्ति, एतदपि व्यवहारत उच्यते, परमार्थतः पुनः किञ्चिदधिकमपि त्रुट्यदवसेयं, ततोऽमी अष्टषष्टिरेकषष्टिभागा अपसार्यन्ते, तदपसारणे पञ्चाशीतियोंजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ८५$\frac{९}{६०}$।$\frac{६०}{६१}$। इति जातं, ततः सर्वबाह्यमण्डलानन्तरार्वाक्तनद्वितीयमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणादेकत्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि योजनानामेकोनचत्वारिंशत्षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ३१९१६$\frac{३९}{६०}$।$\frac{६०}{६१}$। इत्येवंरूपात् शोध्यते, ततो यथोक्तं सर्वबाह्ये मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्चाग्रे स्वयमेव सूत्रकृद्वक्ष्यति, तत एवं पुरुषच्छायायां दृष्टिपथप्राप्तारूपायां द्वितीयादिषु केषुचि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [३७]

न्मण्डलेषु चतुरशीतिं २ किञ्चिदूनानि योजनानि उपरितनेषु तु मण्डलेष्वधिकानि अधिकतराणि उक्तप्रकारेण निर्वेष्टयन् २ तावदवसेयं यावत्सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति पूर्ववत् सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि त्रीणि शतानि पञ्चदश च षष्टिभागान् योजनस्य ५३०५$\frac{15}{60}$ गच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले परिरयपरिमाणं त्रीणि योजनशतसहस्राणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चदशोत्तराणि ३१८३१५, तत एतस्य प्रागुक्तयुक्तिवशात् षष्ट्या भागो ह्रियते, ततो लब्धं यथोक्तमत्र मुहूर्त्तगतिपरिमाणमिति, अत्रैव दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणमाह—'तया ण'मित्यादि, तदा–सर्वबाह्यमण्डलचारकाले इहगतस्य मनुष्यस्य–जातावेकवचनमिहगतानां मनुष्याणां एकत्रिंशता योजनसहस्रैरष्टभिरेकत्रिंशदधिकैर्योजनशतैस्त्रिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य ३१८३१$\frac{30}{60}$ सूर्यः शीघ्रं चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तदा ह्यस्मिन् मण्डले चारं चरति सूर्ये द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति, दिवसस्य चार्द्धेन यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते तावति व्यवस्थित उदयमानः सूर्य उपलभ्यते, द्वादशानां च मुहूर्त्तानामर्द्धे षट् मुहूर्त्तास्ततो यदत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि पञ्चदश च षष्टिभागा योजनस्य ५३०५$\frac{15}{60}$ तत् षड्भिर्गुण्यते, ततो यथोक्तमत्र दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, अत्रापि दिवसरात्रिप्रमाणमाह—'तया ण'मित्यादि, सुगमम् । 'से पविसमाणे'इत्यादि, स सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलादुक्तप्रकारेणाभ्यन्तरं मण्डलं प्रविशन् द्वितीयं षण्मासमाददानो द्वितीयस्य षण्मासस्य प्रथमेऽहोरात्रे 'बाहिरानंतरं'ति सर्वबाह्यान्मण्डलादनन्तरमर्वाक्तनं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता जया ण'मित्यादि तत्र यदा सर्वबाह्यानन्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रमर्वाक्तनं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकेन मुहूर्त्तेन पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि चतुरुत्तराणि योजनशतानि सप्तपञ्चाशतं च षष्टिभागान् योजनस्य ५३०४$\frac{५७}{६०}$ गच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले परिरयपरिमाणं तिस्रो लक्षा अष्टादश सहस्राणि द्वे शते सप्तनवत्यधिके योजनानां ३१८२९७, ततोऽस्य प्रागुक्तयुक्तिवशात् षष्ट्या भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं, अत्रापि दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणमाह—'तया ण'मित्यादि, तदा इहगतस्य मनुष्यस्य–जातावेकवचनं इहगतानां मनुष्याणामेकत्रिंशता योजनसहस्रैर्नवभिः षोडशैः–षोडशोत्तरैर्योजनशतैरेकोनचत्वारिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य एकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कैः षष्ट्या चूर्णिकाभागैः सूर्यश्चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले सूर्ये चारं चरति दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिकः, तेषां चार्द्धं षट् मुहूर्त्ता एकेन मुहूर्त्तैकषष्टिभागेनाभ्यधिकाः, ततः सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं षडपि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते गुणयित्वा च एकषष्टिभागस्तत्राधिकः प्रक्षिप्यते ततो जातानि त्रीणि शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि एकषष्टिभागानां ३६७, ततः सर्वबाह्यादर्वाक्तने तस्मिन् द्वितीये मण्डले यत्परिरयपरिमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि द्वे शते सप्तनवत्यधिके ३१८२९७, तदेभिस्त्रिभिशतैः सप्तषष्ट्यधिकैर्गुण्यते, जाता एकादश कोटयोऽष्टषष्टिर्लक्षाश्चतुर्दश सहस्राणि नव शतानि नवनवत्यधिकानि ११६८१४९९९, एतस्य एकषष्ट्या गुणितया षष्ट्या ३६६० भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धान्येकत्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि ३१९१६, शेषमुद्धरति चतुर्विंशतिः शतानि एकोनचत्वारिंशदधिकानि २४३९, न चातो योजनान्यायान्ति ततः षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनचत्वारिंशत्षष्टि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागाः ३९ एकस्य च षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः $\frac{६०}{६१}$ 'तया णं राइंदियं तहेव' तदा–सर्वबाह्यानन्तरावाक्तन-द्वितीयमण्डलयोश्चारकाले रात्रिन्दिवं–रात्रिदिवसप्रमाणं तथैव–प्रागिव वक्तव्यं, तच्चैवम्–'तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति दोहि एगट्ठिभागमुहुत्तेहि ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे हवइ दोहि एगट्ठिभागमुहुत्तेहि अहिए' इति, 'से पविसमाणे' इत्यादि, ततः सर्वबाह्यानन्तरावाक्तनद्वितीयस्मादपि मण्डलादुक्तप्रकारेण प्रविशन् सूर्यो द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रे 'बाहिरतच्चं'ति सर्वबाह्यान्मण्डलादवाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता जया ण'मित्यादि तत्र यदा णमिति पूर्ववत् सर्वबाह्यान्मण्डलादवाक्तनं तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि चतुरुत्तराणि योजनशतानि एकोनचत्वारिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य ५३०४ $\frac{३९}{६०}$ एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तस्मिन् हि मण्डले परिरयपरिमाणं तिस्रो लक्षा अष्टादश सहस्राणि द्वे शते एकोनाशीत्यधिके इति ३१८२७९, अस्य षष्ठ्या भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं, अत्रापि हि दृष्टिपथप्राप्ततादिषयपरिमाणमाह—'तया ण'मित्यादि, तदा इहगतस्य मनुष्यस्य–जातावेकवचनस्य भावादिहगतानां मनुष्याणामेकाधिकैर्द्वात्रिंशता सहस्रैरेकोनपञ्चाशता षष्टिभागैरेकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कैस्त्रयोविंशत्या चूर्णिकाभागैः सूर्यः चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणश्चतुर्भिरेकषष्टिभागैरधिकस्तस्यार्द्धे षट् मुहूर्त्ता द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिकाः, ततः सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं षडपि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा च द्वावेकषष्टिभागौ प्रक्षिप्येते, ततो जातानि त्रीणि शतान्यष्टषष्ट्यधिकान्येकषष्टिभागानां ३६८, ततोऽस्मिन् मण्डले यत्परिरयपरि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

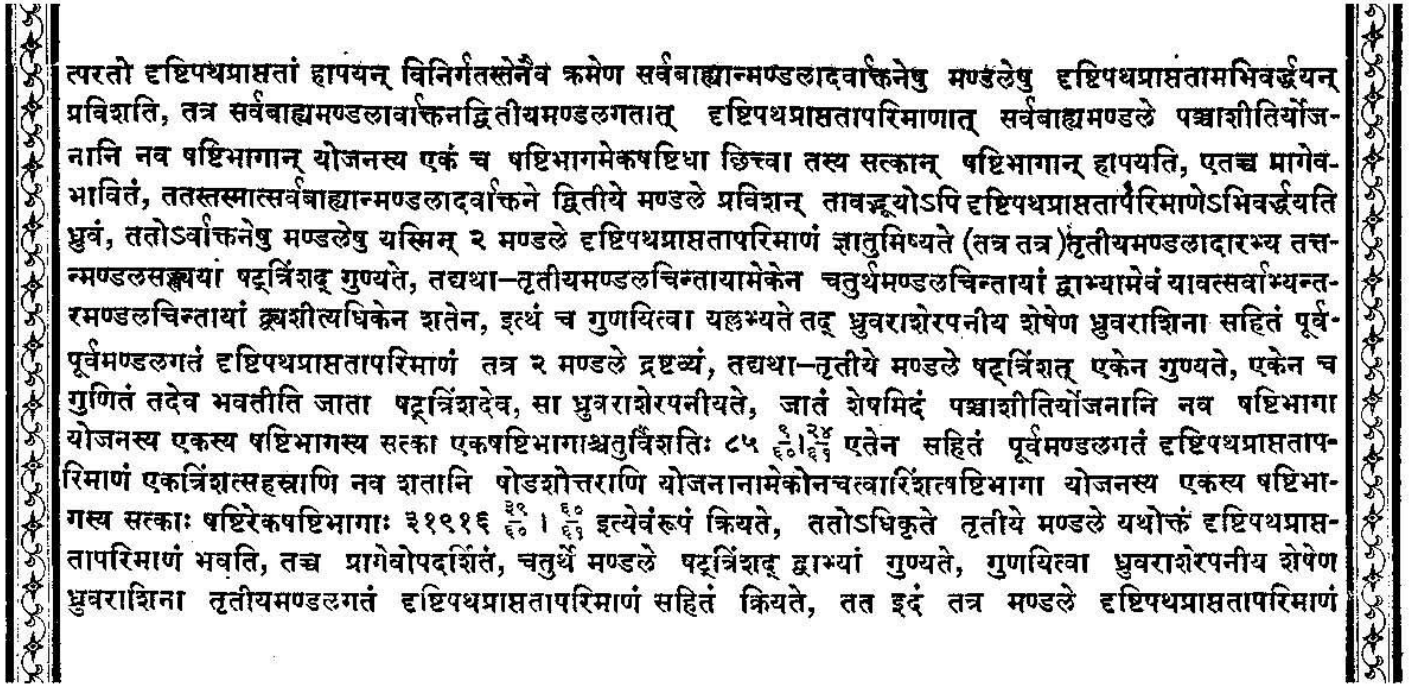
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [३७]

माणं त्रीणि लक्षाण्यष्टादश सहस्राणि द्वे शते एकोनाशीत्यधिके ३१८२७९ इति, तदेभिस्त्रिभिः शतैरष्टषष्ट्यधिकैर्गुण्यते, जाता एकादश कोट्यः एकसप्ततिः शतसहस्राणि षड्विंशतिः सहस्राणि षट् शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ११७१२६६७२, एतस्य षष्ट्या एकषष्ट्या गुणितया ३६६० भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धानि द्वात्रिंशत्सहस्राणि एकोत्तराणि ३२००१, शेषमुद्धरति त्रीणि सहस्राणि द्वादशोत्तराणि ३०१२, तेषां षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनपञ्चाशत्षष्टिभागाः $\frac{४९}{६०}$ त्रयोविंशतिश्च एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागा $\frac{२३}{६१}$ इति,'रत्तिंदियं तहेव'त्ति रात्रिन्दिवं–रात्रिदिवसपरिमाणमत्र तथैव–प्रागिव वक्तव्यं, तच्चैवम्–'तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे हवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए' इति, सम्प्रति सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनेषु चतुरादिषु मण्डलेषु अतिदेशमाह–'एवं खल्वि'त्यादि, 'एवं' उक्तेन प्रकारेण 'खलु' निश्चितमेतेनोपायेन शनैः शनैस्तत्तदभ्यन्तरानन्तरमण्डलाभिमुखगमनरूपेणाभ्यन्तरं प्रविशन् सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २ एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिमित्यत्र द्वितीया सप्तम्यर्थे मुहूर्त्तगतौ–मुहूर्त्तगतिपरिमाणे अष्टादश २ षष्टिभागान् योजनस्य व्यवहारतः परिपूर्णान् निश्चयतः किञ्चिदूनान्निर्वेष्टयन् २–हापयन् २ इत्यर्थः, पूर्वपूर्वमण्डलापेक्षया अभ्यन्तराभ्यन्तरमण्डलस्य परिरयमधिकृत्याष्टादशभिर्योजनैर्हानिस्वात् ,पुरुषच्छायामित्यत्रापि द्वितीया सप्तम्यर्थे, ततोऽयमर्थः–पुरुषच्छायायां दृष्टिपथप्राप्ततारूपायां सातिरेकाणि पञ्चाशीतिः २ योजनानि अभिवर्द्धयन् २, इदं च सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनानि कतिपयानि प्रथमद्वितीयादिमण्डलान्यपेक्ष्य स्थूलत उक्तं, परमार्थतः पुनरेवं द्रष्टव्यं–इह येनैव क्रमेण सर्वाभ्यन्तरान्मण्डला-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



त्परतो दृष्टिपथप्राप्ततां हापयन् विनिर्गतस्तेनैव क्रमेण सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनेषु मण्डलेषु दृष्टिपथप्राप्ततामभिवर्द्धयन् प्रविशति, तत्र सर्वबाह्यमण्डलार्वाक्तनद्वितीयमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् सर्वबाह्यमण्डले पञ्चाशीतियोजनानि नव षष्टिभागान् योजनस्य एकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कान् षष्टिभागान् हापयति, एतच्च प्रागेवभावितं, ततस्तस्मात्सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तने द्वितीये मण्डले प्रविशन् तावद्भूयोऽपि दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणेऽभिवर्द्धयति ध्रुवं, ततोऽर्वाक्तनेषु मण्डलेषु यस्मिन् २ मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं ज्ञातुमिष्यते (तत्र तत्र) तृतीयमण्डलादारभ्य तत्तन्मण्डलसङ्ख्यया षट्त्रिंशद् गुण्यते, तद्यथा–तृतीयमण्डलचिन्तायामेकेन चतुर्थमण्डलचिन्तायां द्वाभ्यामेवं यावत्सर्वाभ्यन्तरमण्डलचिन्तायां द्व्यशीत्यधिकेन शतेन, इत्थं च गुणयित्वा यल्लभ्यते तद् ध्रुवराशेरपनीय शेषेण ध्रुवराशिना सहितं पूर्वपूर्वमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं तत्र २ मण्डले द्रष्टव्यं, तद्यथा–तृतीये मण्डले षट्त्रिंशत् एकेन गुण्यते, एकेन च गुणितं तदेव भवतीति जाता षट्त्रिंशदेव, सा ध्रुवराशेरपनीयते, जातं शेषमिदं पञ्चाशीतियोजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाश्चतुर्विंशतिः ८५ $\frac{९}{६०}|\frac{२४}{६१}$ एतेन सहितं पूर्वमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं एकत्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि योजनानामेकोनचत्वारिंशत्षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ३१९१६ $\frac{३९}{६०}$। $\frac{६०}{६१}$ इत्येवंरूपं क्रियते, ततोऽधिकृते तृतीये मण्डले यथोक्तं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्च प्रागेवोपदर्शितं, चतुर्थे मण्डले षट्त्रिंशद् द्वाभ्यां गुण्यते, गुणयित्वा ध्रुवराशेरपनीय शेषेण ध्रुवराशिना तृतीयमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं सहितं क्रियते, तत इदं तत्र मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥ ६२ ॥

भवति–द्वात्रिंशत्सहस्राणि षडशीत्यधिकानि योजनानामष्टापञ्चाशच्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्य सत्का एकादशैकषष्टिभागाः ३२०८६ । ५८/६० । ११/६१, एवं शेषेष्वपि मण्डलेषु भावनीयं, यदा तु सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं ज्ञातुमिष्यते तदा षट्त्रिंशद् द्व्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यते, तृतीयमण्डलादारभ्य सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्य द्व्यशीत्यधिकशततमत्वात्, ततो जातानि पञ्चषष्टिशतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ६५५२, तेषामेकषष्ट्या भागे हृते लब्धं सप्तोत्तरं शतं षष्टिभागानां, शेषं पञ्चविंशतिः १०७/६० । २५ एतत्पञ्चाशीतिर्योजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ८५ । ९/६० । ६०/६१ इत्येवंरूपात् ध्रुवराशेः शोध्यते, जातानि पश्चात् द्व्यशीतिर्योजनानि द्वाविंशतिः षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाः, इह षट्त्रिंशत् २ एकषष्टिभागाः कलया न्यूनाः परमार्थतो लभ्यन्ते एतच्च प्रागेवोक्तं, तच्च कलान्यूनत्वं प्रतिमण्डलं भवत् यदा द्व्यशीत्यधिकशततमे मण्डले एकत्र पिण्डितं सत् चिन्त्यते तदा अष्टषष्टिरेकषष्टिभागा लभ्यन्ते, ततस्ते भूयः प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातमिदं— द्व्यशीतिर्योजनानि त्रयोविंशतिः षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ८३ २३/६० । ४२/६१, एतेषु सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि शतमेकमेकोनाशीत्यधिकं योजनानां सप्तपञ्चाशत्षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकोनविंशतिरेकषष्टिभागाः ४७१७९ । ५७/६० । १९/६१, इत्येवंरूपं सहितं क्रियते, ततो यथोक्तं सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्च सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य ४७२६३ । २१/६१ एवं दृष्टिपथप्राप्तितायां कतिपयेषु मण्डलेषु

२ प्राभृते ३ प्राभृत-प्राभृते

॥ ६२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सातिरेकाणि पञ्चाशीतिं योजनानि अग्रेतनेषु चतुरशीतिं पर्यन्ते यथोक्ताधिकसहितानि त्र्यशीतिं योजनानि अभिवर्द्धयन् २ तावद् वक्तव्यः यावत्सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता जया णं'इत्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे एकपञ्चाशदधिके योजनशते एकोनत्रिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य ५२५१ $\frac{29}{60}$ एकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तदा च इहगतस्य मनुष्यस्य–जातावेकवचनं इहगतानां मनुष्याणां सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैर्द्वाभ्यां त्रिषष्टाभ्यां–त्रिषष्ट्यधिकाभ्यां योजनशताभ्यामेकविंशत्या षष्टिभागैर्योजनस्य ४७२६३ $\frac{21}{60}$ सूर्यश्चक्षुःस्पर्शमागच्छति, एतच्च मुहूर्त्तगतिपरिमाणं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं च प्रागेव भावितं सूत्रकृताऽपि प्रस्तावाद्भूय उक्तं ततो न पुनरुक्तादोषः, 'तया णं उत्तमकट्ठपत्ते' इत्यादि सुगमं, यावत्प्राभृतप्राभृतपरिसमाप्तिः ।

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां द्वितिय-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं ३ समाप्तं

अथ तृतीयं प्राभृतम् ॥

तदेवमुक्तं द्वितीयं प्राभृतं, सम्प्रति तृतीयमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः, 'कियत्क्षेत्रं चन्द्रः सूर्यो वा प्रकाशयती'ति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता केवतियं खेत्तं चंदिमसूरिया ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पगासंति आहितातिवदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ बारस पडिवत्तीओ पन्नत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु, ता एगं दीवं एगं समुद्दं चंदिमसूरिया ओभासेंति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र द्वितियं प्राभृतं परिसमाप्तं	अथ तृतीयं प्राभृतं आरभ्यते

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः मल०)

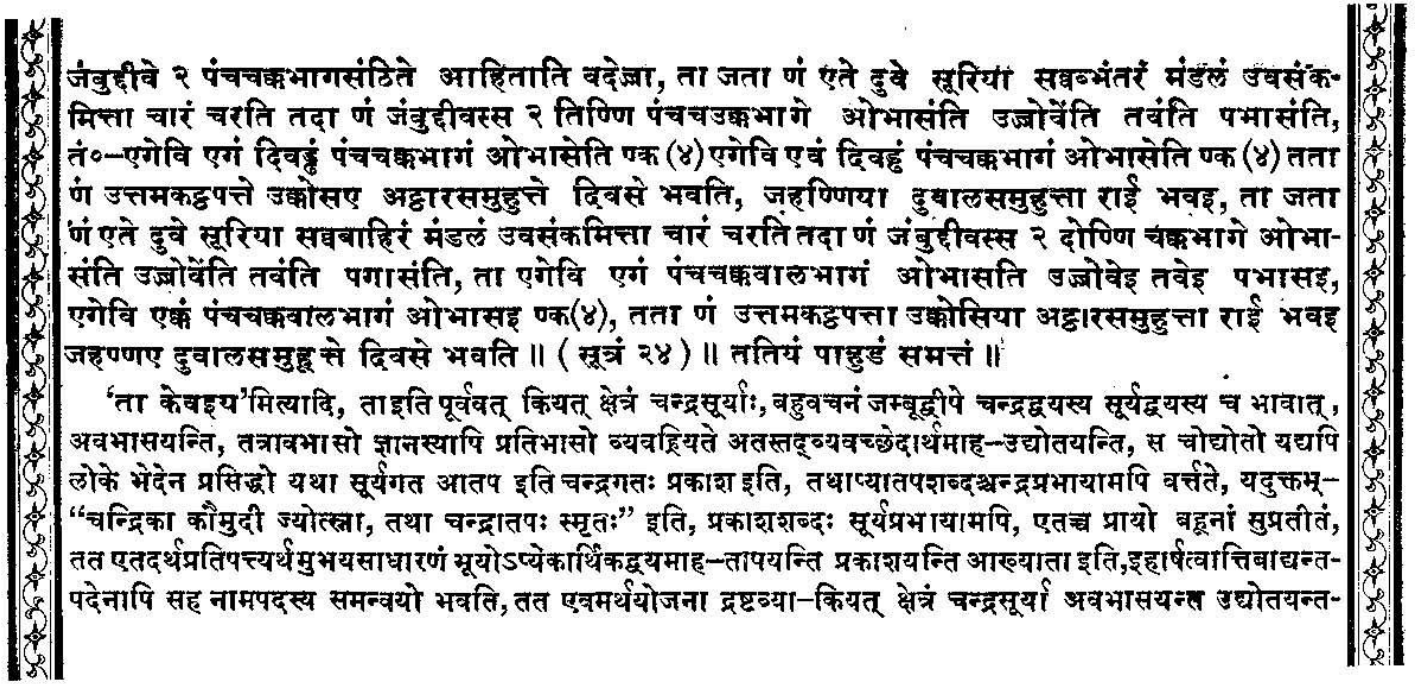
॥ ६३ ॥

उज्जोवेंति तवेंति पगासेंति, एगे एवमाहंसु ता तिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासंति०, एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु ता अद्धचउत्थे दीवसमुद्दे चंदिमसूरिया ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पगासिंति एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु ता सत्त दीवे सत्त समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासिंति ४ एगे एव माहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु ता दस दीवे दस समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासंति ४, एगे एवमाहंसु ५, एगे पुण एवमाहंसु, ता बारस दीवे बारस समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासंति ४, एगे एवमाहंसु ६, एगे पुण एवमाहंसु, बायालीसं दीवे बायालीसं समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासंति एक(४),एगे एवमाहंसु ७, एगे पुण एवमाहंसु बावत्तरिं दीवे बावत्तरिं समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासंति, एक(४),एगे एवमाहंसु ८, एगे पुण एवमाहंसु ता बातालीसं दीवसतं बायालं समुद्दसतं चंदिमसूरिया ओभासंति४ एगे एवमाहंसु ९, एगे पुण एवमाहंसु, ता बावत्तरिं समुद्दसतं चंदिमसूरिया ओभासंति एक(४)एगे एवमाहंसु १०, एगे पुण एवमाहंसु ता बायालीसं दीवसहस्सं बायालं समुद्दसहस्सं चंदिमसूरिया ओभासंति, एक(४), एगे, एवमाहंसु ११, एगे पुण एवमाहंसु ता बावत्तरं दीवसहस्सं बावत्तरं समुद्दसहस्सं चंदिमसूरिया ओभासंति एक (४) एगे एवमाहंसु १२, वयं पुण एवं वदामो–अयण्णं जंबुद्दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते, से णं एगाए जगतीए सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते, सा णं जगती तहेव जहा जंबुद्दीवपण्णत्तीए जाव एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे २ चोद्दस सलिलासयसहस्सा छप्पन्नं च सलिलासहस्सा भवन्तीति मक्खाता, जंबुद्दीवे णं दीवे पंचचक्कभागसंठिता आहितातिवदेज्जा, ता कहं

३ प्राभृतम्

॥ ६३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



जंबुद्दीवे २ पंचचक्कभागसंठिते आहितेति वदेज्जा, ता जता णं एते दुवे सूरिया सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं जंबुद्दीवस्स २ तिण्णि पंचचउक्कभागे ओभासंति उज्जोवेंति तवंति पभासंति, तं०–एगेवि एगं दिवड्ढं पंचचक्कभागं ओभासेति एक (४) एगेवि एवं दिवड्ढं पंचचक्कभागं ओभासेति एक (४) तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, ता जता णं एते दुवे सूरिया सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तदा णं जंबुद्दीवस्स २ दोण्णि चक्कभागे ओभासंति उज्जोवेंति तवंति पगासंति, ता एगेवि एगं पंचचक्कवालभागं ओभासति उज्जोवेइ तवेइ पभासइ, एगेवि एक्कं पंचचक्कवालभागं ओभासइ एक(४), तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति ॥ (सूत्रं २४) ॥ ततियं पाहुडं समत्तं ॥

'ता केवइय'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् कियत् क्षेत्रं चन्द्रसूर्याः, बहुवचनं जम्बूद्वीपे चन्द्रद्वयस्य सूर्यद्वयस्य च भावात्, अवभासयन्ति, तत्रावभासो ज्ञानस्यापि प्रतिभासो व्यवह्रियते अतस्तद्व्यवच्छेदार्थमाह–उद्योतयन्ति, स चोद्योतो यद्यपि लोके भेदेन प्रसिद्धो यथा सूर्यगत आतप इति चन्द्रगतः प्रकाश इति, तथाप्यातपशब्दश्चन्द्रप्रभायामपि वर्त्तते, यदुक्तम्– "चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना, तथा चन्द्रातपः स्मृतः" इति, प्रकाशशब्दः सूर्यप्रभायामपि, एतच्च प्रायो बहूनां सुप्रतीतं, तत एतदर्थप्रतिपत्त्यर्थमुभयसाधारणं भूयोऽप्येकार्थिकद्वयमाह–तापयन्ति प्रकाशयन्ति आख्याता इति,इहार्षत्वात्तिबाद्यन्तपदेनापि सह नामपदस्य समन्वयो भवति, तत एवमर्थयोजना द्रष्टव्या–कियत् क्षेत्रं चन्द्रसूर्या अवभासयन्त उद्योतयन्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्तापयन्तः प्रकाशयन्त आख्याता भगवतेति भगवान् वदेत्?, एवं गौतमेनोक्ते भगवानेतद्विषयपरतीर्थिकप्रतिपत्तीनां मिथ्याभावोपदर्शनाय प्रथमतस्ता एवोपन्यस्यति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–चन्द्रसूर्याणां क्षेत्रावभासनविषये इमाः खलु द्वादश प्रतिपत्तयः–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तस्यां द्वादशानां परतीर्थिकानां मध्ये एके–प्रथमास्तीर्थान्तरीया एवमाहुः, एकं द्वीपं एकं समुद्रं चन्द्रसूर्यौ अवभासयन्तौ उद्योतयन्तौ तापयन्तौ प्रकाशयन्तौ, सूत्रे द्वित्वेऽपि बहुवचनं प्राकृतत्वात्, उक्तं च–'बहुवयणेण दुवयण'मिति, द्विवचनं चात्र तात्त्विकमवसेयं, परतीर्थिकैरेकस्य चन्द्रमस एकस्य च सूर्यस्याभ्युपगमात्, सम्प्रति अस्यैव प्रथममतस्योपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' एवं सर्वाण्यपि उपसंहारवाक्यानि भावनीयानि १, एके द्वितीयाः पुनरेवमाहुः–त्रीन् द्वीपान् त्रीन् समुद्रान् चन्द्रसूर्यौ यावच्छ(ष्कश)ब्दोपादानात् अवभासयत इत्यनेन सह पदचतुष्टयं द्रष्टव्यं, तद्यथा–अवभासयत उद्योतयतस्तापयतः प्रकाशयत इति, एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यं, २, एके पुनस्तृतीया एवमाहुः–'अद्धचउत्थे'इति अर्द्धं चतुर्थं येषां ते अर्द्धचतुर्थाः, त्रयः परिपूर्णाश्चतुर्थस्य चार्द्धमित्यर्थः, अर्द्धचतुर्थान् द्वीपान् अर्धचतुर्थान् समुद्रान् चन्द्रसूर्यावभासयत इत्यादि प्राग्वत् ३, एके चतुर्थाः पुनरेवमाहुः–सप्त द्वीपान् सप्त समुद्रान् चन्द्रसूर्यावभासयतः ४, एके पुनः पञ्चमा एवमाचक्षते–दश द्वीपान् दश समुद्रान् चन्द्रसूर्यावभासयतः ५, एके पुनः षष्ठा एवमभिदधति–द्वादश द्वीपान् द्वादश समुद्रान् चन्द्रसूर्यावभासयतः ६, एके पुनः सप्तमा एवं भाषन्ते–द्विचत्वारिंशतं द्वीपान् द्विचत्वारिंशतं समुद्रान् चन्द्रसूर्यावभासयतः ७, एके पुनरष्टमा एवमाहुः–द्वासप्ततिं द्वीपान् द्वासप्ततिं समुद्रान् चन्द्रसूर्यावभासयतः ८, एके पुनर्नवमा एवमाहुः–द्विचत्वारिंशं–द्वाचत्वारिंशद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धिकं द्वीपशतं द्वाचत्वारिंशदधिकं समुद्रशतं चन्द्रसूर्याववभासयतः ९, एके पुनर्दशमा एवं जल्पन्ति–द्वासप्ततं–द्वासप्तत्यधिकं द्वीपशतं द्वासप्तत्यधिकं समुद्रशतं चन्द्रसूर्याववभासयतः १०, एके एकादशाः पुनरेवमाहुः–द्वाचत्वारिंशं—द्वाचत्वारिंशदधिकं द्वीपसहस्रं द्वाचत्वारिंशदधिकं समुद्रसहस्रं चन्द्रसूर्याववभासयतः ११, एके द्वादशाः पुनरेवमाहुः—द्वासप्ततं–द्वासप्तत्यधिकं द्वीपसहस्रं द्वासप्तत्यधिकं समुद्रसहस्रं चन्द्रसूर्याववभासयतः १२, एताश्च सर्वा अपि प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपास्तथा च भगवानेता व्युदस्य स्वमतं भिन्नमेव कथयति–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलचक्षुषः केवलचक्षुषा यथावस्थितं जगदुपलभ्य एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'ता अयन्न'मित्यादि, अत्र 'जहा जंबुद्दीवपन्नत्तीए'त्ति यथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ 'अयण्णं जंबुद्दीवे इत्यारभ्य यावत् एवामेव सपुवावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलसयसहस्साइं छप्पन्नं च सलिलासहस्सा भवंतीति मक्खाय' मित्युक्तं, तथा एतावद्ग्रन्थसहस्रचतुष्टयप्रमाणमत्रापि वक्तव्यं परं ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते, केवलं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिपुस्तकमेव निरीक्षणीयमिति, अयमेवंरूपो जम्बूद्वीपः पञ्चभिः पञ्चसङ्ख्योपेतैश्चक्रभागैः–चक्रवालभागैः संस्थित आख्यातो मया इति वदेत्स्वशिष्याणां पुरतः, एवमुक्ते भगवान् गौतमः स्वशिष्याणां स्पष्टावबोधार्थं भूयः पृच्छति–'ता कह'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं भगवन् ! त्वया जम्बूद्वीपो द्वीपः पञ्चचक्रभागसंस्थित आख्यात इति वदेत्, भगवानाह–'ता जया ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यदा णमिति वाक्यालङ्कारे, एतौ प्रवचनवेदिनां प्रसिद्धौ द्वौ सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः तदा तौ समुदितौ द्वावपि सूर्यौ जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य त्रीन् पञ्चचक्रवालभागान् अवभासयत उद्योतयतस्तापयंतः प्रकाशयतः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कथं प्रकाशयत इति परप्रश्नावकाशमाशङ्क्य एतदेव विभागत आह–'एगोऽवी'त्यादि, एकोऽपि सूर्यो जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य एकं पञ्चचक्रवालभागं–पञ्चमं चक्रवालभागं द्व्यर्द्धमिति–द्वितीयमर्द्धं यस्य स द्व्यर्द्धः, पूरणार्थो वृत्तावन्तर्भूतो यथा तृतीयो भागस्त्रिभाग इत्यत्र, तं, अयं च भावार्थः–एकं पञ्चमं चक्रवालभागं द्वितीयस्य पञ्चमस्य चक्रवालभागस्यार्द्धेन सहितं प्रकाशयति, तथा एकोऽपि–अपरोऽपि द्वितीयोऽपीत्यर्थः, एकं पञ्चमं चक्रवालभागं द्व्यर्द्धं प्रकाशयतीत्युभयप्रकाशितभागमीलने परिपूर्णं भागत्रयं प्रकाश्यं भवति,इयमत्र भावना–जम्बूद्वीपगतं प्रकाश्यं चक्रवालं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतभागं कल्प्यते ३६६०, तस्य पञ्चमो भागो द्वात्रिंशदधिकसप्तशतप्रमाणः ७३२, सार्द्धः सन् अष्टानवत्यधिकसहस्रभागमानः १०९८, ततः सर्वाभ्यन्तरमण्डले वर्त्तमान एकोऽपि सूर्यः षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतसङ्ख्यानां भागानामष्टानवत्यधिकं सहस्रं प्रकाशयति, द्वितीयोऽप्यष्टानवत्यधिकं सहस्रं, उभयमीलने एकविंशतिःशतानि षण्णवत्यधिकानि २१९६ प्रकाश्यमानानि लभ्यन्ते, तदा च द्वौ पञ्चचक्रवालभागौ रात्रिः, तद्यथा–एकतोऽपि पञ्चमो भागो द्वात्रिंशदधिकसप्तशतभागसङ्ख्यो रात्रिरपरतोऽपि एकः पञ्चमभागो द्वात्रिंशदधिकसप्तशतभागसङ्ख्यो रात्रिः, उभयमीलने चतुर्दश शतानि चतुःषष्ट्यधिकानि १४६४ षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतभागानां रात्रिः, सर्वभागमीलने षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि भवन्ति, सम्प्रति तत्र दिवसरात्रिप्रमाणमाह–'तया ण'मित्यादि, तदा–अभ्यन्तरमण्डलचारकाले उत्तमकाष्ठाप्राप्तः—परमप्रकर्षप्राप्तः उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्या द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, ततो द्वितीयेऽहोरात्रे द्वितीये मण्डले वर्त्तमान एकोऽपि सूर्यो जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्यैकं पञ्चमं चक्रवालभागं सार्द्धं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तभागसत्कभागद्वयहीनं प्रकाशयति, अपरोऽपि सूर्य एकं पञ्चमं चक्रवालभागं सार्द्धं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतभागद्वयहीनं प्रकाशयति, तृतीयेऽहोरात्रे तृतीये मण्डले वर्त्तमान एकोऽपि सूर्य एकं पञ्चमं चक्रवालभागं सार्द्धं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतभागसत्कभागचतुष्टयन्यूनं प्रकाशयति, अपरोऽप्येकं पञ्चमं चक्रवालभागं सार्द्धं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतभागसत्कभागचतुष्टयन्यूनं प्रकाशयति, एवं प्रत्यहोरात्रमेकैकः सूर्यः षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतभागसत्कभागद्वयमोचनेन प्रकाशयन् तावदवसेयः यावत्सर्वबाह्यं मण्डलं सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतः त्र्यशीत्यधिकशततमं, ततः प्रतिमण्डलं भागद्वयमोचनेन यदा सर्वबाह्ये मण्डले चरति तदा त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि भागानां त्रुट्यन्ति, त्र्यशीत्यधिकस्य शतस्य द्वाभ्यां गुणने एतावत्याः सङ्ख्याया भावात्, त्रीणि च शतानि षट्षष्ट्यधिकानि पञ्चमचक्रवालभागस्य द्वात्रिंशदधिकसप्तशतभागप्रमाणस्यार्द्धं, ततः पञ्चमचक्रवालभागस्यार्द्धं परिपूर्णं तत्र मण्डले त्रुट्यतीति एक एव परिपूर्णः पञ्चमचक्रवालभागस्तत्र प्रकाश्यः, तथा चाह–'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति पूर्ववत् एतौ प्रवचनप्रसिद्धौ द्वावपि सूर्यौ सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतः तदा तौ समुदितौ जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य द्वौ चक्रवालपञ्चमभागौ अवभासयत उद्योतयतस्तापयतः प्रकाशयतः, तद्यथा–एकोऽपि सूर्य एकं पञ्चमं चक्रवालभागं प्रकाशयतीत्येकोऽपि-अपरोऽपि द्वितीयोऽपीत्यर्थः एकं पञ्चमं चक्रवालभागं प्रकाशयति, 'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वबाह्यमण्डलचारकाले उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्जघन्यतो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः, इह यथा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

निष्क्रामतोः सूर्ययोर्जम्बूद्वीपविषयः प्रकाशविधिः क्रमेण हीयमान उक्तः तथा सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं प्रविशतोः क्रमेण वर्द्धमानो वेदितव्यः, तद्यथा–द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रे सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनेऽनन्तरे द्वितीये मण्डले वर्त्तमान एकोऽपि सूर्य एकं जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य पञ्चमचक्रवालभागं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतसङ्ख्यभागसत्कभागद्वयाधिकं प्रकाशयति, अपरोऽपि सूर्य एकं पञ्चमं चक्रवालभागं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतसङ्ख्यभागसत्कभागद्वयाधिकं प्रकाशयति, द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रे सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तने तृतीये मण्डले वर्त्तमान एकं पञ्चमं चक्रवालभागं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतसंख्यभागसत्कभागचतुष्टयाधिकं प्रकाशयति, अपरोऽपि सूर्यः परतं एकं पञ्चमं चक्रवालभागं यथोक्तभागचतुष्टयाधिकं प्रकाशयति, एवं प्रतिमण्डलमेकैकः सूर्यः षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतभागसत्कभागद्वयवर्द्धनेन प्रकाशयन् तावदवसेयः यावत्सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं, तस्मिंश्च सर्वाभ्यन्तरे मण्डले द्वितीयस्य पञ्चमचक्रवालभागस्यार्द्धं परिपूर्णं भवति, तत एकोऽपि सूर्यस्तत्र मण्डले एकं पञ्चमं चक्रवालभागं सार्द्धं जम्बूद्वीपस्य प्रकाशयत्यपरोऽप्येकं पञ्चमं चक्रवालभागं सार्द्धं, तथा चैतदेव जम्बूद्वीपचक्रवालस्य दश भागान् परिकल्प्यान्यत्राप्युक्तम्–'छच्चेव उ दसभागे जंबुद्दीवस्स दोवि दिवसयरा। ताविंति दित्तलेसा अब्भिंतरमंडले संता ॥ १ ॥ चत्तारि य दसभागे जंबुदीवस्स दोवि दिवसयरा। ताविंति संतलेसा बाहिरए मंडले संता ॥ २ ॥ छत्तीसे भागसए सट्ठिं काऊण जंबुदीवस्स। तिरियं तत्तो दो दो भागे वड्ढेइ हायइ वा ॥ ३ ॥" इति ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां तृतीय-प्राभृतं समाप्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीयं प्राभृतं परिसमाप्तं

॥ अथ चतुर्थं प्राभृतम् ॥

तदेवमुक्तं तृतीयं प्राभृतं, सम्प्रति चतुर्थमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः 'कथं श्वेततायाः संस्थितिराख्यात'इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते सेआते संठिईया आहितातिवदेज्जा ?, तत्थ खलु इमा दुविहा संठिती पं०, तं०—चंदिमसूरियसंठिती य १ तावक्खेत्तसंठिती य २, ता कहं ते चंदिमसूरियासंठिती आहितातिवदेज्जा ?, तत्थ खलु इमातो सोलस पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु—ता समचउरंससंठिता चंदिमसूरियासंठिती एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु, ता विसमचउरंससंठिता चंदिमसूरियसंठिती पं० २, एवं समचउक्कोणसंठिता ३ ता विसमचउक्कोणसंठिया ४ समचक्कवालसंठिता ५ विसमचक्कवालसंठिता ६ चक्कद्धचक्कवालसंठिता पं० एगे एवमाहंसु ७, एगे पुण एवमाहंसु ता छत्तागारसंठिता चंदिमसूरियसंठिता पं० ८ गेहसंठिता ९ गेहावणसंठिता १० पासादसंठिता ११ गोपुरसंठिया १२ पेच्छाघरसंठिता १३ वलभीसंठिता १४ हम्मियतलसंठिता १५ वालग्गपोतियासंठिता १६ चंदिमसूरियसंठिती पं०, तत्थ जे ते एवमाहंसु ता समचउरंससंठिता चंदिमसूरियसंठिती पं०, एतेणं णएणं णेतव्वं णो चेव णं इतरेहिं ॥ ता कहं ते तावक्खेत्तसंठिती आहितात्ति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ सोलस पडिवत्तीओ पन्नत्ताओ, तत्थ णं एगे एवमाहंसु ता गेहसंठिता तावखित्तसंठिती पं०, एवं जाव वालग्गपोतियासंठिता तावक्खेत्तसंठिती, एगे एवमाहंसु ता जस्सं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्थं प्राभृतं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२५]

दीप अनुक्रम [३९]

ठिते जंबुद्दीवे तस्संठिते तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता एगे एवमाहंसु ९, एगे पुण एवमाहंसु ता जस्संठिते भारहे वासे तस्संठिती पण्णत्ता १०, एवं उज्जाणसंठिया निज्जाणसंठिता एगतो णिसधसंठिता, दुहतो णिसहसंठिता सेयणगसंठिता एगे एवमाहंसु, एगे पुण एवमाहंसु, ता सेणगपट्टसंठिता तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु, वयं पुण एवं वदामो, ता उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठिता तावक्खेत्तसंठिती पं० अंतो संकुडा बाहिं वित्थडा अंतो वट्टा बाहिं पिधुला अंतो अंकमुहसंठिता बाहिं सत्थिमुहसंठिता उभतो पासेणं तीसे दुवे बाहाओ अवट्ठिताओ भवंति पणतालीसं २ जोयणसहस्साइं आयामेणं, तीसे दुवे बाहाओ अणवट्ठिताओ भवंति, तं०–सव्वब्भंतरिया चेव बाहा सव्वबाहिरिया चेव बाहा, तत्थ को हेतूत्तिवदेज्जा ?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव परिक्खेवेणं ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठिता तावखेत्तसंठिती आहितातिवदेज्जा अंतो संकुडा बाहिं वित्थडा अंतो वट्टा बाहिं पिधुला अंतो अंकमुहसंठिता बाहिं सत्थिमुहसंठिआ, दुहतो पासेणं तीसे तथेव जाव सव्वबाहिरिया चेव बाहा, तीसे णं सव्वब्भंतरिया बाहा मंदरपव्वयंतेणं णव जोयणसहस्साइं चत्तारि य छलसीते जोयणसते णव य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहितातिवदेज्जा, ता से णं परिक्खेवविसेसे कतो आहितातिवदेज्जा ?, ता जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहितातिं वदेज्जा, तीसे णं सव्वबाहिरिया बाहा लवणसमुद्दंतेणं चउणउतिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोयणसहस्साइं अट्ठ य अट्ठसट्ठे जोयणसते चत्तारि य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहितातिवदेज्जा, ता से णं परिक्खेवविसेसे कतो आहितातिवदेज्जा ?, ता जे णं जंबुद्दीवस्स २ परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहितातिवदेज्जा, तीसे णं तावक्खेत्ते केवतियं आयामेणं आहितातिवदेज्जा ?, ता अट्ठत्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तेत्तीसे जोयणसते जोयणतिभागे च आयामेणं आहितेति वदेज्जा, तया णं किंसंठिया अंधगारसंठिई आहितेति वदेज्जा ?, उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठिता तहेव जाव बाहिरिया चेव बाहा, तीसे णं सव्वब्भंतरिया बाहा मंदरपव्वतंतेणं छज्जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउवीसे जोयणसते छच्च दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहितेतिवदेज्जा, तीसे णं परिक्खेवविसेसे कतो आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवेणं तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता सेसं तहेव, तीसे णं सव्वबाहिरिया बाहा लवणसमुद्दंतेणं तेवट्ठिजोयणसहस्साइं दोण्णि य पणयाले जोयणसते छच्च दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं परिक्खेवविसेसे कत्तो आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं जंबुद्दीवस्स २ परिक्खेवे तं परिक्खेवं दोहिं गुणित्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहितेति वदेज्जा, ता से णं अंधकारे केवतियं आयामेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता अट्ठत्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तेत्तीसे जोयणसते जोयणतिभागं च आयामेणं आहितेति वदेज्जा, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, ता जया णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं किंसंठिती तावखेत्तसंठिती आहितेति वदेज्जा ?, ता उद्धामुहकलंबुयापुप्फसंठिती तावक्खेत्तसंठिती आहितेति वदेज्जा, एवं जं अब्भिंतरमंडले अंधकारसंठितीए पमाणं तं बाहिरमंडले तावक्खेत्तसंठितीए जं तहिं तावखेत्तसंठितीए तं बाहिरमंडले अंधकारसंठितीए भाणियव्वं, जाव तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, ता जंबुदीवे २ सूरिया केवतियं(खेत्तं) उड्ढं तवंति केवतियं खेत्तं अहे तवंति केवतियं खेत्तं तिरियं तवंति ?, ता जंबुदीवे णं दीवे सूरिया एगं जोयणसतं उड्ढं तवंति अट्ठारस जोयणसताइं अधे पतवंति सीतालीसं जोयणसहस्साइं दुन्नि य तेवट्ठे जोयणसते एकवीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स तिरियं तवंति (सूत्रं २५) ॥ चउत्थं पाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते सेयाए संठिई आहिया इति वदेज्जा ?' ता इति पूर्ववत्, कथं भगवन् ! त्वया श्वेततायाः संस्थितिराख्याता इति भगवान् वदेत् ?, एवं भगवता गौतमेनोक्ते वर्द्धमानस्वामी भगवानाह–'तत्थे'त्यादि, तत्र श्वेततायां विषये खल्वियं–वक्ष्यमाणस्वरूपा द्विविधा संस्थितिः,'तद्यथा' तामेव तद्यथेत्यादिनोपदर्शयति, तद्यथेत्यत्र तच्छब्दोऽव्ययं, ततोऽयमर्थः–सा श्वेतता यथा–येन प्रकारेण द्विधा भवति तथोपदर्श्यते, चन्द्रसूर्यसंस्थितिस्तापक्षेत्रसंस्थितिश्च, इह श्वेतता चन्द्रसूर्यविमानानामपि विद्यते तत्कृततापक्षेत्रस्य च ततः श्वेतायोगादुभयमपि श्वेतताशब्देनोच्यते, तेनोक्तप्रकारेण श्वेतता द्विविधा भवति, तत्र चन्द्रसूर्यसंस्थितिविषये प्रश्नयति–'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, कथं ते–त्वया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् ! चन्द्रसूर्यसंस्थितिराख्याता इति वदेत् ?, इह चन्द्रसूर्यविमानानां संस्थानरूपा संस्थितिः प्रागेवाभिहिता तत इह चन्द्रसूर्यविमानसंस्थितिश्चतुर्णामपि अवस्थानरूपा पृष्टा द्रष्टव्या, एवमुक्ते भगवानेतद्विषये यावत्यः परतीर्थिकानां प्रतिपत्तयस्तावतीरुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र चन्द्रसूर्यसंस्थितौ विचार्यमाणायां खल्विमाः षोडश प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एके वादिन एवमाहुः–समचतुरस्रसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, समचतुरस्रं संस्थितिं–संस्थानं यस्याश्चन्द्रसूर्यसंस्थितेः सा तथा, अत्रैवोपसंहारवाक्यमाह–एगे एवमाहंसु, एवं सर्वत्रापि प्रत्येकमुपसंहारवाक्यं द्रष्टव्यं १, एके पुनरेवमाहुः विषमचतुरस्रसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिराख्याता, अत्रापि विषमचतुरस्रं संस्थानं यस्याः सा तथेति विग्रहः २, एवं 'समचउक्कोणसंठिय'त्ति एवं–उक्तेन प्रकारेणापरेषामभिप्रायेण समचतुष्कोणसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिर्वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु समचउक्कोणसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' अत्र 'समचउक्कोणसंठिय'त्ति समाश्चत्वारः कोणा यत्र तत् समचतुष्कोणं (तत्) संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथेति विग्रहः ३, 'विसमचउक्कोणसंठिय'त्ति 'एगे पुण एवमाहंसु–विसमचउक्कोणसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' ४ 'समचक्कवालसंठिय'त्ति समचक्रवालं–समचक्रवालरूपं संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अपरेषामभिप्रायेण चन्द्रसूर्यसंस्थितिर्वक्तव्या, सा चैवम्– 'एगे एवमाहंसु समचक्कवालसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु' ५, 'विसमचक्कवालसंठिय'त्ति विषमचक्रवालं–विषमचक्रवालरूपं संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अन्येषां मतेन चन्द्रसूर्यसंस्थितिर्वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे एवमाहंसु विसमचक्कवालसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु' ६,'चक्कद्धचक्कवाल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संठिय'त्ति चक्रस्य–रथाङ्गस्य यदर्द्धचक्रवालं–चक्रवालस्यार्द्धं तद्रूपं संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा, अन्येषामभिप्रायेण वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु चक्कद्धचक्कवालसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' ७, 'एगे पुण'इत्यादि, एके पुनराहुः छत्राकारसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, अत्रैवोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ८ 'गेहसंठिय'त्ति गेहस्येव–वास्तुविद्योपनिबद्धस्य गृहस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अपरेषां मतेन चन्द्रसूर्यसंस्थितिर्वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु गेहसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' ९, 'गेहावणसंठिय'त्ति गृहयुक्त आपणो गृहापणो–वास्तुविद्याप्रसिद्धस्तस्येव संस्थितः–संस्थानं यस्याः सा तथा अन्येषामभिप्रायेण वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु, गेहावणसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु' १०, 'पासायसंठिय'त्ति प्रासादस्येव संस्थानं यस्याः सा तथाऽन्येषामभिप्रायेण वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु, पासायसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' ११ 'गोपुरसंठिय'त्ति, गोपुरस्येव–पुरद्वारस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथाऽन्येषां मतेनाभिधातव्या, सा चैवम् –'एगे पुण एवमाहंसु गोपुरसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' १२ 'पेच्छाघरसंठिय'त्ति प्रेक्षागृहस्येव वास्तुविद्याप्रसिद्धस्य संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अपरेषां मतेनाभिधातव्या, तद्यथा–'एगे पुण एवमाहंसु पिच्छाघरसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु' १३, 'वलभीसंठिय'त्ति वलभ्या इव–गृहाणामाच्छादनस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अन्येषां मतेनाभिधातव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु वलभीसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' १४,' 'हम्मियतलसंठिय'त्ति हर्म्य–धनवतां गृहं तस्य तल–उपरितनो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागस्तस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अपरेषामभिप्रायेण वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु हम्मियतल-संठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु' १५ 'वालग्गपोत्तियासंठिय'त्ति वालाग्रपोतिकाशब्दो देशीशब्द-त्वादाकाशतडागमध्ये व्यवस्थितं क्रीडास्थानं लघुप्रासादमाह तस्या इव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अपरेषां मतेन अ-भिधानीया, तद्यथा–'एगे पुण एवमाहंसु वालग्गपोत्तिया संठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु' १६। तदेवमुक्ताः परतीर्थिकानां प्रतिपत्तयः, एतासां च मध्ये या प्रतिपत्तिः समीचीना तामुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तेषां षोडशानां परतीर्थिकानां मध्ये ये ते वादिन एवमाहुः–समचतुरस्रसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिः प्रज्ञप्ता इति, एतेन नयेन नेतव्यं— एतेनाभिप्रायेणास्मन्मतेऽपि चन्द्रसूर्यसंस्थितिरवधार्येति भावः, तथाहि–इह सर्वेऽपि कालविशेषाः सुषमसुषमादयो युग-मूलाः, युगस्य चादौ श्रावणे मासि बहुलपक्षप्रतिपदि प्रातरुदयसमये एकः सूर्यो दक्षिणपूर्वस्यां दिशि वर्त्तते तद्द्वितीय-स्तस्वपरोत्तरस्यां चन्द्रमा अपि तत्समये एको दक्षिणापरस्यां दिशि वर्त्तते द्वितीय उत्तरपूर्वस्यामत एतेषु युगस्यादौ चन्द्र-सूर्याः समचतुरस्रसंस्थिता वर्त्तन्ते, यत्त्वत्र मण्डलकृतं वैषम्यं यथा सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरमण्डले वर्त्तेते चन्द्रमसौ सर्वबाह्ये इति तदल्पमितिकृत्वा न विवक्ष्यते, तदेवं यतः सकलकालविशेषाणां सुषमासुषमादिरूपाणामादिभूतस्य युगस्यादौ सम-चतुरस्रसंस्थिताः सूर्यचन्द्रमसो भवन्ति ततस्तेषां संस्थितिः समचतुरस्रसंस्थानेनोपवर्णिता, अन्यथा वा यथासम्प्रदायं समचतुरस्रसंस्थितिः परिभावनीयेति, 'नो चेव णं इयरेहिं'ति नो चेव–नैव इतरैः–शेषैर्नयैश्चन्द्रसूर्यसंस्थितिर्ज्ञातव्या, तेषां मिथ्यारूपत्वात्, तदेवमुक्ता चन्द्रसूर्यसंस्थितिः। सम्प्रति तापक्षेत्रसंस्थितिमभिधातुकामः प्रथमतस्तद्विषयं प्रश्नसू-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

त्रमाह–'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् कथं भगवन्! त्वया तापक्षेत्रसंस्थितिराख्याता इति भगवान् वदेत्?, एवमुक्ते भगवान् एतद्विषये यावत्यः परतीर्थिकानां प्रतिपत्तयस्तावतीरुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तस्यां तापक्षेत्रसंस्थितौ विषये खल्विमाः षोडश प्रतिपत्तयः–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र–तेषां षोडशानां परतीर्थिकानां मध्ये एके एवमाहुः–'गेहसंठिय'त्ति गेहस्येव–वास्तुविद्याप्रसिद्धगृहस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा, तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, अत्रैवोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु, एवं जाव वालग्गपोत्तियासंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता'इति, एवं–अनन्तरोक्तेन प्रकारेण–चन्द्रसूर्यसंस्थितिगतेन प्रकारेणेत्यर्थः, गृहसंस्थिताया ऊर्ध्वं तावद् वक्तव्यं यावद्वालाग्रपोत्तिकासंस्थिता प्रज्ञप्ता इति, तच्चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु गेहावणसंठिया तावखेत्तसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु पासायसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु गोपुरसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु पिच्छाघरसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु ५, एगे पुण एवमाहंसु वलभीसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु ६, एगे पुण एवमाहंसु हम्मियतलसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु ७, एगे पुण एवमाहंसु वालग्गपोत्तियासंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु ८' अत्र सर्वेष्वपि पदेषु विग्रहभावना प्रागिव कर्त्तव्या, 'एगे पुण'इत्यादि एके पुनरेवमाहुः 'जस्संठिय'त्ति यत् संस्थितं–संस्थानं यस्य स यत्संस्थितो जम्बूद्वीपो द्वीपस्तत्संस्थिता–तदेव–जम्बूद्वीपगतं संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ९, एके पुनरेवमाहुः–यत्संस्थितं भारतं वर्षं तत्संस्थिता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, अत्र विग्रहभावना प्रागिव वेदितव्या, अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' १०, एवं–उक्तेन प्रकारेण उद्यानसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिरपरेषामभिप्रायेण वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु, उज्जाणसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु, (ग्रंथाग्रं २०००) अत्र उद्यानस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथेति विग्रहः ११, 'निज्जाणसंठिय'त्ति निर्याणं–पुरस्य निर्गमनमार्गः तस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अपरेषामभिप्रायेण वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु, निज्जाणसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' १२, 'एगतोनिसहसंठिय'त्ति एकतो–रथस्य एकस्मिन् पार्श्वे यो नितरां सहते स्कन्धपृष्ठे वा समारोपितं भारमिति निषधो–बलीवर्दस्तस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा एकतोनिषधसंस्थिता अपरेषामभिप्रायेण वक्तव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु, एगतोनिसहसंठिया तावखित्तसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु' १३, 'दुहतोनिसहसंठिय'त्ति अपरेषामभिप्रायेणोभयतोनिषधसंस्थिता वक्तव्या, उभयतो–रथस्योभयोः पार्श्वयोर्यौ निषधौ–बलीवर्दौ तयोरिव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा, सा चैवं वक्तव्या–'एगे पुण एवमाहंसु दुहओनिसहसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता, एगे एवमाहंसु' १४ 'सेयणगसंठिय'त्ति श्येनकस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा अपरेषामभिप्रायेणाभिधातव्या, सा चैवम्–'एगे पुण एवमाहंसु सेयणगसंठिया तावखित्तसंठिई पन्नत्ता एगे एवमाहंसु' १५, 'एगे पुण'इत्यादि, एके पुनरेवमाहुः, सेचनकपृष्ठस्येव–श्येनपृष्ठस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, अत्रोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' १६, तदेवमुक्ताः षोडशापि प्रतिपत्तयः, एताश्च सर्वा अपि मिथ्यारूपा अत एता व्युदस्य भगवान् स्वमतं भिन्नमुपदर्शयति–'वयं पुण'इत्यादि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वयं पुनरुत्पन्नकेवलज्ञानाः केवलज्ञानेन यथावस्थितं वस्तूपलभ्य एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'उद्धीमुखे'त्यादि, ऊर्ध्वमुखकलम्बुकपुष्पसंस्थिता–ऊर्ध्वमुखस्य कलम्बुकापुष्पस्येव–नालिकापुष्पस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा, तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, सा कथम्भूतेत्यत आह–अन्तः–मेरुदिशि सङ्कुचा–सङ्कुचिता बहिः–लवणदिशि विस्तृता, तथा अन्तर्मेरुदिशि वृत्ता–वृत्तार्द्धवलयाकारा सर्वतोवृत्तमेरुगतान् त्रीन् द्वौ वा दशभागानभिव्याप्य तस्या व्यवस्थितत्वात्, बहिर्लवणदिशि पृथुला मुत्कलभावेन विस्तारमुपगता, एतदेव संस्थानकथनेन स्पष्टं स्पष्टयति–'अंतो अंकमुहसंठिया बाहिं सत्थिमुहसंठिय'त्ति अन्तर्मेरुदिशि अङ्कः–पद्मासनोपविष्टस्योत्सङ्गरूप आसनबन्धः तस्य मुखं–अग्रभागोऽर्द्धवलयाकारस्तस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा बहिर्लवणदिशि स्वस्तिकमुखसंस्थिता–स्वस्तिकः–सुप्रतीतः तस्य मुखं–अग्रभागः तस्येवातिविस्तीर्णतया संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा, 'उभओपासेणं'ति उभयपार्श्वेन मेरुपर्वतस्योभयोः पार्श्वयोस्तस्याः–तापक्षेत्रसंस्थितेः सूर्यभेदेन द्विधाव्यवस्थितायाः प्रत्येकमेकैकभावेन ये द्वे बाहे ते आयामेन–जम्बूद्वीपगतमायाममाश्रित्यावस्थिते भवतः, सा चैकैका आयामतः किंप्रमाणा इत्याह–पञ्चचत्वारिंशत् २ योजनसहस्राणि ४५०००, तस्यास्तापक्षेत्रसंस्थितेरेकैकस्या द्वे च बाहे अनवस्थिते भवतः, तद्यथा–सर्वाभ्यन्तरा सर्वबाह्या च, तत्र या मेरुसमीपे विष्कम्भमधिकृत्य बाहा सा सर्वाभ्यन्तरा, या तु लवणदिशि जम्बूद्वीपपर्यन्ते विष्कम्भमधिकृत्य बाहा सा सर्वबाह्या, आयामश्च दक्षिणोत्तरायततया प्रतिपत्तव्यो विष्कम्भः पूर्वापरायततया, एवमुक्ते सति भगवान् गौतमः स्वशिष्याणां स्पष्टावबोधनार्थं भूयः पृच्छति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तस्यामेवंविधायामनन्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रोदितायां वस्तुव्यवस्थायां को हेतुः ?–का उपपत्तिरिति भगवान् वदेत् ?, एवमुक्ते भगवानाह–'ता अयण्ण'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपवाक्यं पूर्ववत् परिपूर्णं भावनीयं, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा 'उद्धमुहकलंबुयापुप्फे'त्यादि, प्राग्वत् व्याख्येयं यावत्सर्वाभ्यन्तरा बाहा सर्वबाह्या च बाहा, 'तीसे ण'मित्यादि, तस्यास्तापक्षेत्रसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तरा बाहा मेरुपर्वतान्ते–मेरुपर्वतसमीपे, सा च परिक्षेपेण–मन्दरपरिक्षेपगततया नव योजनसहस्राणि चत्वारि योजनशतानि षडशीत्यधिकानि नव च दशभागा योजनस्य ९४८६ $\frac{९}{१०}$ आख्याता मया इति वदेत्, एवमुक्ते भगवान् गौतमः प्रश्नयति–'ता से ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, स तापक्षेत्रसंस्थितपरिक्षेपविशेषो–मंदरपरिरयपरिक्षेपणविशेषः कुतः–कस्मात्कारणादेवंप्रमाण आख्यातो नोनोऽधिको वेति वदेत्, भगवानाह–'ता जे ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यो णमिति वाक्यालङ्कारे मन्दरस्य–मेरोः पर्वतस्य परिक्षेपः–परिरयगणितप्रसिद्धस्तं परिक्षेपं त्रिभिर्गुणयित्वा तदनन्तरं च दशभिश्छित्त्वा–विभज्य, अथ कस्मादेवं क्रियत इति चेत्, उच्यते, इह सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानः सूर्यो जम्बूद्वीपगतस्य चक्रवालस्य यत्र तत्र प्रदेशे तत्तच्चक्रवालक्षेत्रप्रमाणानुसारेण त्रीन् दशभागान् प्रकाशयति, एतच्च प्रागेवोक्तं, सम्प्रति च मन्दरसमीपे तापक्षेत्रे चिन्ता क्रियमाणा वर्त्तते ततो मन्दरपरिरयः सुखावबोधार्थं प्रथमतस्त्रिभिर्गुण्यते गुणयित्वा च दशभिर्विभज्यत इति, दशभिश्च भागे ह्रियमाणे यथोक्तं मन्दरसमीपे तापक्षेत्रपरिमाणमागच्छति, तथाहि–मन्दरपर्वतस्य विष्कम्भो दश सहस्राणि १०००० तेषां वर्गो दश कोट्यः १००००००० तासां दशभिर्गुणने कोटिशतं १००००००००० अस्य वर्गमूलानयने लब्धानि एकत्रिंशत्सहस्राणि षट् शतानि किञ्चिदूनत्रयोविंशत्यधिकानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परं व्यवहारतः परिपूर्णानि विवक्ष्यन्ते ३१६२३, एष राशिस्त्रिभिर्गुण्यते, जातानि चतुर्नवतिः सहस्राणि अष्टौ शतानि एकोनसप्तत्यधिकानि ९४८७९, एतेषां दशभिर्भागहारे लब्धानि नव योजनसहस्राणि चत्वारि शतानि षडशीत्यधिकानि नव च दशभागा योजनस्य, तत एष एतावान्–अनन्तरोदितप्रमाणः परिक्षेपविशेषो–मन्दरपरिरयपरिक्षेपविशेषस्तापक्षेत्रसंस्थितेराख्यात इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः, अयं चार्थोऽन्यत्राप्युक्तः–"मन्दरपरिरयरासीतिगुण दसभाइयंमि जं लद्धं । तं होइ तावखेत्तं अब्भिंतरमंडले रविणो ॥ १ ॥" तदेवं सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमाने सूर्ये मन्दरसमीपे तापक्षेत्रसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तरबाहाया विष्कम्भपरिमाणमुक्तं, इदानीं लवणसमुद्रदिशि जम्बूद्वीपपर्यन्ते या सर्वबाह्या बाहा तस्या विष्कम्भपरिमाणमाह–'तीसे णं'मित्यादि, तस्याः–तापक्षेत्रसंस्थितेः लवणसमुद्रान्ते–लवणसमुद्रसमीपे सर्वबाह्या बाहा सा परिक्षेपेण–जम्बूद्वीपपरिरयपरिक्षेपेण चतुर्नवतियोजनसहस्राणि अष्टौ च अष्टषष्ट्यधिकानि योजनशतानि चतुरश्च दशभागान् योजनस्य ९४८६८ $\frac{४}{१०}$ यावदाख्याता इति वदेत्, अत्रैव स्पष्टावबोधाधानाय प्रश्नं करोति–'ता से णं'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, स एतावान् परिक्षेपविशेषस्तापक्षेत्रसंस्थितेः कुतः ?–कस्मात् कारणादाख्यातो नोनोऽधिको वेति वदेत्, भगवानाह–'ता जे णं'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् यो जम्बूद्वीपस्य परिक्षेपः–परिरयगणितप्रसिद्धस्तं परिक्षेपं त्रिभिर्गुणयित्वा तदनन्तरं च दशभिश्छित्वा–दशभिर्विभज्य अत्रार्थे कारणं प्रागुक्तमेवानुसरणीयं, दशभिर्भागे ह्रियमाणे यथोक्तं जम्बूद्वीपपर्यन्ते तापक्षेत्रपरिमाणमागच्छति, तथाहि–जम्बूद्वीपस्य परिक्षेपस्त्रीणि लक्षाणि षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके ३१६२२७ त्रीणि गव्यूतानि ३ अष्टाविंशं धनुःशतं १२८ त्रयोदश अङ्गुलानि १३ एकमर्द्धाङ्गुलं $\frac{१}{२}$, एतावता च

४ प्राभृतम्

॥ ७२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योजनमेकं किल किञ्चिदूनमिति व्यवहारतः परिपूर्णं विवक्ष्यते, ततो द्वे शते अष्टाविंशत्यधिके वेदितव्ये २१६२२८, एष त्रिभिर्गुण्यते जातानि नव लक्षाणि अष्टाचत्वारिंशत्सहस्राणि षट् शतानि चतुरशीत्यधिकानि ९४८६८४, एतेषां दशभिर्भागो ह्रियते, लब्धं यथोक्तं जम्बूद्वीपपर्यन्ते सर्वबाह्याया बाहाया विष्कम्भपरिमाणं, ततः 'एस ण'मित्यादि, एष एतावान् अनन्तरोदितप्रमाणः परिक्षेपविशेषो जम्बूद्वीपपरिरयः परिक्षेपविशेषस्तापक्षेत्रसंस्थितेराख्यात इति वदेत्, उक्तं चैतदन्यत्रापि—"जंबुद्दीवपरिरये तिगुणे दसभाइयंमि जं लद्धं। तं होइ तावखित्तं अब्भिंतरमंडले रविणो ॥ १ ॥" तदेवं जम्बूद्वीपे तापक्षेत्रसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तरायाः सर्वबाह्यायाश्च बाहाया विष्कम्भपरिमाणमुक्तं। सम्प्रति सामस्त्येनायामतस्तापक्षेत्रपरिमाणं जिज्ञासुस्तद्विषयं प्रश्नमाह—'ता से ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, तापक्षेत्रं आयामतः सामस्त्येन दक्षिणोत्तरायततया कियत्—किंप्रमाणमाख्यातमिति वदेत्?, भगवानाह—'ता अट्ठुत्तर'मित्यादि ता इति पूर्ववत् अष्टसप्ततिः योजनसहस्राणि त्रीणि योजनशतानि त्रयस्त्रिंशानि—त्रयस्त्रिंशदधिकानि योजनत्रिभागं च यावत् आयामेन दक्षिणोत्तरायततया आख्यातमिति वदेत्, तथाहि—सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानस्य सूर्यस्य तापक्षेत्रं दक्षिणोत्तरायततया मेरोरारभ्य तावद्गर्द्धते यावल्लवणसमुद्रस्य षष्ठो भागः, उक्तं च—"मेरुस्स मज्झभागा जाव य लवणस्स रुंदछब्भागा। तावायामो एसो सगडुद्धीसंठिओ नियमा ॥ १ ॥" अत्र 'एसो'इत्यादि, एष तापो नियमात् शकटोद्धिसंस्थितः, शेषं सुगमं, तत्र मेरोरारभ्य जम्बूद्वीपपर्यन्तं यावत्पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि लवणस्य विस्तारो द्वे योजनलक्षे तयोः षष्ठो भागस्त्रयस्त्रिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि योजनशतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि योजनस्य च विभागः, तत उभयमीलने यथोक्तमायामप्रमाणं भवति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ७३ ॥

इह सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानस्य सूर्यस्य लेश्या अभ्यन्तरं प्रविशन्ती मेरुणा प्रतिस्खल्यते, यदि पुनर्न प्रतिस्खल्यते ततो मेरोः सर्वमध्यभागगतं प्रदेशमवधीकृत्यायामतो जम्बूद्वीपस्य पञ्चाशतं योजनसहस्राणि प्रकाशयेत्, अत एवेत्थं जम्बूद्वीपस्य पञ्चाशतं योजनसहस्राणि प्रकाश्यानि सम्भाव्य सर्वाभ्यन्तरेऽपि मण्डले वर्त्तमाने सूर्ये तापक्षेत्रस्यायामप्रमाणं ज्योतिष्करण्डकमूलटीकायां श्रीपादलिप्तसूरिभिरुयशीतियोजनसहस्राणि त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि योजनस्य च त्रिभाग इत्युक्तं, युक्तं चैतत्सम्भावनया तापक्षेत्रायामपरिणामं, अन्यथा जम्बूद्वीपमध्ये तापक्षेत्रस्य पञ्चचत्वारिंशत्सहस्रमात्रपरिमाणाभ्युपगमे यथा सूर्यो बहिर्निष्क्रामति तथा तत्प्रतिबद्धं तापक्षेत्रमपि, ततो यदा सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा सर्वथा मन्दरसमीपे प्रकाशो न प्राप्नोति, अथ च तदापि तत्र मन्दरपरिरयपरिक्षेपेण विशेषपरिमाणमग्रे वक्ष्यते, तस्मात्पादलिप्तसूरिव्याख्यानमप्यभ्युपगन्तव्यमिति । तदेवं सर्वाभ्यन्तरमण्डलमधिकृत्य तापक्षेत्रसंस्थितिरुक्ता, सम्प्रति तदेव सर्वाभ्यन्तरमण्डलमधिकृत्यान्धकारसंस्थितिं प्रतिपिपादयिषुस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह– 'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारकाले 'किंसंठिय'त्ति किं संस्थितं—संस्थानं यस्याः यदिवा कस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा किंसंस्थिता अन्धकारसंस्थितिराख्याता इति वदेत्?, भगवानाह–'ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् ऊर्ध्वमुखकृतकलम्बुकापुष्पसंस्थिता अन्धकारसंस्थितिराख्याता इति वदेत्, सा च अन्तः–मेरुदिशि विष्कम्भमधिकृत्य सङ्कुचा–सङ्कुचिता, बहिः–लवणदिशि विस्तृता, तथा अन्तः–मेरुदिशि वृत्ता–वृत्तार्द्धवलयाकारा, सर्वतो वृत्तमेरुगतौ द्वौ दशभागौ व्याप्य तस्था व्यवस्थितत्वात्, बहिः–लवणदिशि पृथुला–विस्तीर्णा, एतदेव संस्थानकथनेन

४ प्राभृते तापक्षेत्र प्रमाणं सू २५

॥ ७३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्पष्टयति—'अंतो अंकमुहसंठिया बाहिं सत्थिमुहसंठिया' अनयोश्च पदयोर्व्याख्यानं प्रागिव वेदितव्यं, 'उभओ पासे ण'मित्यादि, तस्याः—अन्धकारसंस्थितेस्तापक्षेत्रसंस्थितिद्वैविध्यवशाद् द्विधा व्यवस्थिताया मेरुपर्वतस्योभयपार्श्वेन—उभयोः पार्श्वयोः प्रत्येकमेकैकभावेन ये जम्बूद्वीपगते बाहे ते आयामेन–आयामप्रमाणमधिकृत्यावस्थिते भवतस्तद्यथा—पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि ४५०००, द्वे च बाहे विष्कम्भमधिकृत्यैकैकस्या अन्धकारसंस्थितेर्भवतस्तद्यथा–सर्वाभ्यन्तरा सर्वबाह्या च, एतयोश्च व्याख्यानं प्रागिव द्रष्टव्यं, तत्र सर्वाभ्यन्तरायाः बाहायाः विष्कम्भमधिकृत्य प्रमाणमभिधित्सुराह–'तीसे ण'मित्यादि, तस्या–अन्धकारसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तरा या बाहा मन्दरपर्वतान्ते–मन्दरपर्वतसमीपे सा च षट् योजनसहस्राणि त्रीणि शतानि चतुर्विंशानि–चतुर्विंशत्यधिकानि ६३२४ षट् द्वादशभागान् योजनस्य यावत्परिक्षेपेण–परिरयपरिक्षेपणेनाख्याता इति वदेत् , अमुमेवार्थं स्पष्टावबोधनार्थं पृच्छति—'ता से ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, तस्याः–अन्धकारसंस्थितेः सः–यथोक्तप्रमाणपरिक्षेपविशेषो मन्दरपरिरयपरिक्षेपविशेषः कुतः ?–कस्मात्कारणात् आख्यातो नोनोऽधिको वेति भगवान् वदेत् ?, एवं प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता जेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यो णमिति वाक्यालङ्कारे मन्दरस्य पर्वतस्य परिक्षेपः प्रागुक्तप्रमाणः तं परिक्षेपं द्वाभ्यां गुणयित्वा, कस्माद् द्वाभ्यां गुणनमिति चेत्, उच्यते, इह सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरतोः सूर्ययोरेकस्यापि सूर्यस्य जम्बूद्वीपगतस्य चक्रवालस्य यत्र तत्र वा प्रदेशे यत्तच्चक्रवालक्षेत्रानुसारेण दशभागास्त्रयः प्रकाश्या भवन्ति अपरस्यापि सूर्यस्य त्रयः प्रकाश्या दशभागास्तत उभयमीलने षट् दशभागा भवन्ति, तेषां च त्रयाणां २ दशभागानामपान्तराले द्वौ २ दशभागौ रजनी ततो द्वाभ्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

गुणनं, तौ च द्वौ दशभागाविति दशभिर्भागहरणं, 'सेसं तं चेव'त्ति शेषं तदेव प्रागुक्तं वक्तव्यं, तच्चेदम्–'दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेववविसेसे आहियत्ति वइज्जा' अस्यायमर्थः–दशभिश्छित्त्वा–दशभिर्विभज्य दशभिर्भागे ह्रियमाणे यथोक्तमन्धकारसंस्थितेर्मन्दरपरिरयपरिक्षेपपरिमाणमागच्छति, तथाहि–मेरुपर्वतपरिरयपरिमाणमेकत्रिंशद्योजनसहस्राणि षट् शतानि त्रयोविंशत्यधिकानि ३१६२३, एतद् द्वाभ्यां गुण्यते, जातानि त्रिषष्टिः सहस्राणि द्वे शते षट्चत्वारिंशदधिके ६३२४६, एतेषां दशभिर्भागे हृते लब्धानि षट् योजनसहस्राणि त्रीणि शतानि चतुर्विंशत्यधिकानि षट् च दशभागा योजनस्य ६३२४ । $\frac{६}{१०}$, तत एष एतावाननन्तरोदितप्रमाणोऽन्धकारसंस्थितेः परिक्षेपविशेषो मन्दरपरिरयपरिक्षेपणविशेष आख्यात इति वदेत् । तदेवमुक्तमन्धकारसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तराया बाहाया विष्कम्भपरिमाणम् , अधुना सर्वबाह्याया बाहाया आह–'तीसे ण'मित्यादि, तस्याः–अन्धकारसंस्थितेः सर्वबाह्या बाहा लवणसमुद्रान्ते—लवणसमुद्रसमीपे जम्बूद्वीपपर्यन्ते, सा च परिक्षेपेण–जम्बूद्वीपपरिरयपरिक्षेपणेनाख्याता त्रिषष्टियोंजनसहस्राणि द्वे पञ्चचत्वारिंशे योजनशते षट् च दशभागान् योजनस्य यावत् ६३२४५ । $\frac{६}{१०}$, एतदेव स्पष्टं स्वशिष्यानवबोधयितुं भगवान् गौतमः पृच्छति–'ता से ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, तस्याः–अन्धकारसंस्थितेः सः–तावान् परिक्षेपविशेषो जम्बूद्वीपपरिक्षेपणविशेषः कुतः ?–कस्मात्कारणात् आख्यातो नोनोऽधिको वेति वदेत् ?, भगवान् वर्द्धमानस्वामी आह–'ता जे ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यो णमिति वाक्यालङ्कारे जम्बूद्वीपस्य परिक्षेपः प्रागुक्तप्रमाणः तं परिक्षेपं द्वाभ्यां गुणयित्वा दशभिश्छित्त्वा–दशभिर्विभज्य, अत्र कारणं प्रागेवोक्तं, दशभिर्भागे ह्रियमाणे यथोक्तमन्धकारसंस्थितेर्जम्बूद्वीपप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रिरयपरिक्षेपणमागच्छति, तथाहि–जम्बूद्वीपस्य परिक्षेपपरिमाणं त्रीणि लक्षाणि षोडश सहस्राणि द्वे शते अष्टाविंशत्यधिके ३१६२२८, एतद् द्वाभ्यां गुण्यते, जातानि षट् लक्षाणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि चत्वारि शतानि षट्पञ्चाशदधिकानि ६३२४५६, तेषां दशभिर्भागे हृते लब्धानि त्रिषष्टियोजनसहस्राणि द्वे शते पञ्चचत्वारिंशदधिके षट् च दशभागा योजनस्य ६३२४५ । $\frac{६}{१०}$, तत एष एतावान् अनन्तरोदितप्रमाणोऽन्धकारसंस्थितेः परिक्षेपविशेषो जम्बूद्वीपपरिरयपरिक्षेपणविशेष आख्यात इति वदेत्, तदेवमुक्तं सर्वबाह्याया अपि बाहाया विष्कम्भपरिमाणं, सम्प्रति सामस्त्येनान्धकारसंस्थितेरायामप्रमाणमाह–'तीसे ण'मित्यादि, इदं चायामप्रमाणं तापक्षेत्रसंस्थितिगतायामपरिमाणवत्परिभावनीयं, समानभावनिकत्वात्। अत्रैव सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानयोः सूर्ययोर्दिवसरात्रिमुहूर्त्तप्रमाणमाह–'तया ण'मित्यादि सुगमं । तदेवं सर्वाभ्यन्तरे मण्डले तापक्षेत्रसंस्थितिं अन्धकारसंस्थितिं चाभिधाय सम्प्रति सर्वबाह्यमण्डले तामभिधित्सुराह–'ता जया ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यदा सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा किंसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिराख्याता इति भगवान् वदेत् ?, भगवानाह–'ता ऊद्धमुहे'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, ऊर्ध्वमुखकलम्बुकापुष्पसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिराख्याता (इति) वदेत् स्वशिष्येभ्यः, 'एव'मित्यादि, एवं–पूर्वोक्तेन प्रकारेण यदभ्यन्तरमण्डले अभ्यन्तरमण्डलगते सूर्ये अन्धकारसंस्थितेः प्रमाणमुक्तं तद्बाह्यमण्डले–बाह्यमण्डलगते सूर्ये तापक्षेत्रसंस्थितेः परिमाणं भणितव्यं, यत्पुनस्तत्र–सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमाने सूर्ये तापक्षेत्रसंस्थितेः प्रमाणं तद्बाह्यमण्डले वर्त्तमाने सूर्येऽन्धकारसंस्थितेः प्रमाणमभिधातव्यं, तच्च तावत् 'तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई'त्यादि, तच्चैवं सूत्रतो भणनीयं–'अंतो संकुडा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२५]

दीप अनुक्रम [३९]

बाहिं वित्थडा अंतो वट्टा बाहिं पिहुला अंतो अंकमुहसंठिया बाहिं सत्थिमुहसंठिया,उभयोपासेणं तीसे दुवे बाहाओ अवट्ठियाओ भवंति, पणयालीसं २ जोयणसहस्साइं आयामेणं, दुवे य णं तीसे बाहाओ अणवट्ठिआओ भवंति, तंजहा–अब्भिंतरिया चेव बाहा सव्वबाहिरिया चेव बाहा, तीसे णं सव्वब्भंतरिथा बाहा मंदरपव्वयंतेणं छ जोयणसहस्साइं तिन्नि य चउवीसे जोयणसए छच्च दसभागा जोयणस्स परिक्खेवेणं आहियत्ति वएज्जा, तीसे णं परिक्खेवविसेसे कओ आहिवत्तिवएज्जा ?, ता जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे ते णं दोहिं गुणित्ता दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे, एस णं परिक्खेवविसेसे आहियत्ति वएज्जा?, ता से णं तावक्खेत्ते केवइयं आयामेणं आहियत्ति वएज्जा?, ता तेसीइ जोयणसहस्साइं तिन्नि तेत्तीसे जोयणसए जोयणतिभागं आहियत्ति वएज्जा, तया णं किंसंठिया अंधकारसंठिई आहिअत्ति वइज्जा ?, ता उद्धीमुहकलंबुयापुप्फसंठाणसंठिया आहियत्ति वएज्जा, अंतो संकुडा बाहिं वित्थडा अंतो वट्टा बाहिं पिहुला अंतो अंकमुहसंठिया बाहिं सत्थिमुहसंठिया उभओ पासेणं तीसे दुवे बाहाओ भवंति, पणयालीसं २ जोयणसहस्साइं आयामेणं, दुवे य णं तीसे बाहाओ अणवट्ठियाओ भवंति, तंजहा–सव्वब्भंतरिया चेव बाहा सव्वबाहिरिया चेव बाहा, तीसे णं सव्वब्भंतरिया बाहा मंदरपव्वयंतेणं नव जोयणसहस्साइं चत्तारि य छलसीए जोयणसए नव य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहियत्ति वएज्जा, ता जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे, एस णं परिक्खेवविसेसे आहियत्ति वएज्जा, तीसे णं सव्वबाहिरिया बाहा लवणसमुद्देतेणं चउणउइं जोयणसहस्साइं अट्ठ य अट्ठढे जोयणसए चत्तारि य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहिए इति वएज्जा, ता एस णं परिक्खेवविसेसे कओ

॥ ७५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

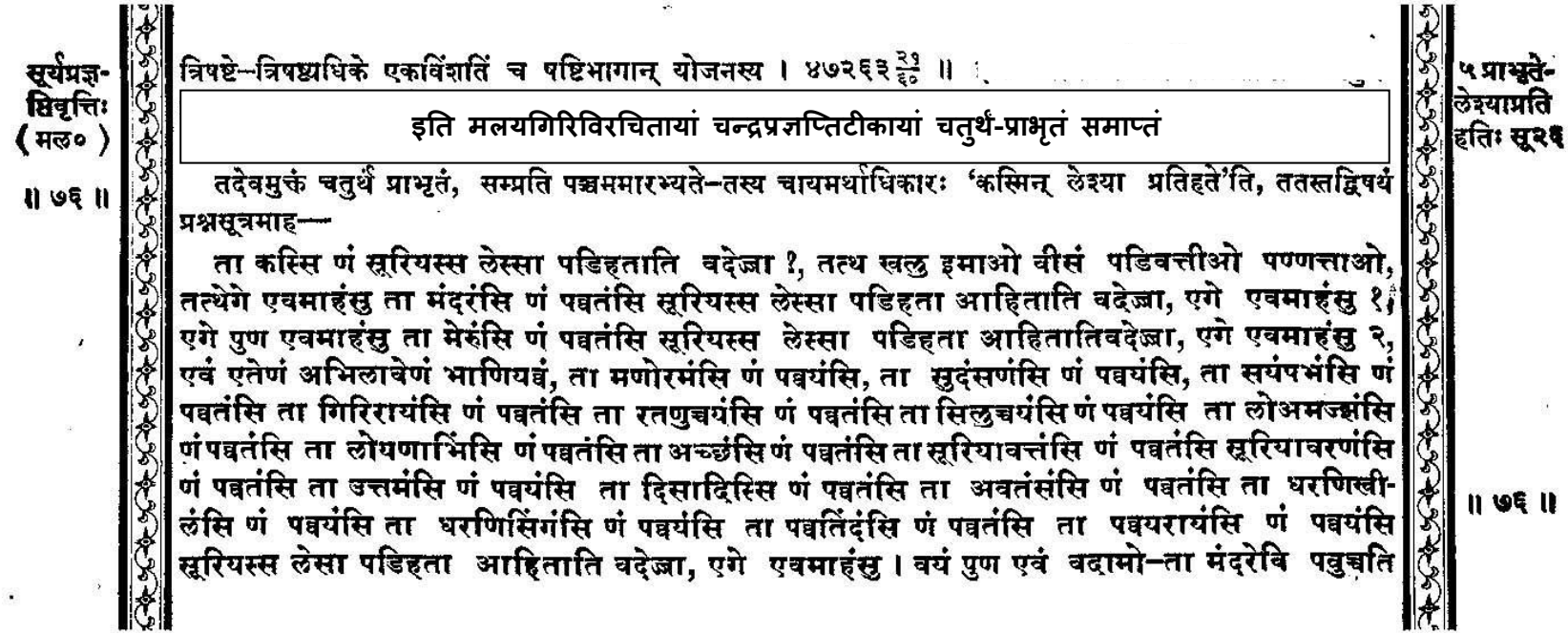
आहिए इति वएज्जा?, ता जे णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स परिक्खेवे पण्णत्ते तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिए इति वएज्जा, तीसे णं अंधकारे केवइए आयामेणं आहिए इति वइज्जा?, ता तेसीइ जोयणसहस्साइं तिन्नि य तित्तीसे जोयणसए जोयणत्तिभागं च आहिए इति वएज्जा, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' इदं च सकलमपि प्रागुक्तसूत्रव्याख्यानुसारेण स्वयं परिभावनीयं, तापक्षेत्रसंस्थितौ चिन्त्यमानायां यन्मंदरपरिरयादि द्वाभ्यां गुण्यते अन्धकारचिन्तायां तु तन्त्रिभिस्तदनन्तरं चोभयत्रापि दशभिर्विभजनं तथा सर्ववाह्ये मण्डले सूर्यस्य चारं चरतो लवणसमुद्रमध्ये पञ्च योजनसहस्राणि तापक्षेत्रं तदनुरोधाद्, अन्धकारश्चायामतो वर्द्धते ततस्त्र्यशीतियोजनसहस्राणि इत्युक्तमिति । तदेवमुक्तं तापक्षेत्रसंस्थितिपरिमाणमन्धकारसंस्थितिपरिमाणं च, सम्प्रत्यूर्ध्वमधः पूर्वविभागेऽपरविभागे च यावत्प्रकाशयतः सूर्यौ तन्निरूपणार्थं सूत्रमाह–'ता जंबुद्दीवे ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, जंबूद्वीपे कियत्–कियत्प्रमाणं क्षेत्रं सूर्याभ्यूर्ध्वं तापयतः–प्रकाशयतः कियत्क्षेत्रमधः कियत्क्षेत्रं तिर्यक्, पूर्वभागे अपरभागे चेत्यर्थः, भगवानाह–'ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, जम्बूद्वीपे द्वीपे सूर्यौ प्रत्येकं स्वविमानादूर्ध्वमेकं योजनशतं तापयतः–प्रकाशयतः अधस्तापयतोऽष्टादश योजनशतानि, एतच्चाधोलौकिकग्रामापेक्षया द्रष्टव्यं, तथाहि—अधोलौकिकग्रामाः समतलभूभागमवधीकृत्याधो योजनसहस्रेण व्यवस्थिता तत्रापि सूर्यप्रकाशः प्रसरति, ततः समतलभूभागस्याधो योजनसहस्रं तदूर्ध्वं चाष्टौ योजनशतानीत्युभयमीलनेऽष्टादश योजनशतानि, तिर्यक् स्वविमानात् पूर्वभागेऽपरभागे च प्रत्येकं तापयतः सप्तचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि द्वे योजनशते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२५]

दीप अनुक्रम [३९]



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ७६ ॥

त्रिषष्टे–त्रिषष्ट्यधिके एकविंशतिं च षष्टिभागान् योजनस्य । ४७२६३$\frac{२१}{६०}$ ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां चतुर्थ-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तं चतुर्थं प्राभृतं, सम्प्रति पञ्चममारभ्यते–तस्य चायमर्थाधिकारः 'कस्मिन् लेश्या प्रतिहते'ति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कस्सि णं सूरियस्स लेस्सा पडिहताति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ वीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता मंदरंसि णं पव्वतंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहता आहिताति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु ता मेरुंसि णं पव्वतंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहता आहितातिवदेज्जा, एगे एवमाहंसु २, एवं एतेणं अभिलावेणं भाणियव्वं, ता मणोरमंसि णं पव्वयंसि, ता सुदंसणंसि णं पव्वयंसि, ता सयंपभंसि णं पव्वतंसि ता गिरिरायंसि णं पव्वतंसि ता रतणुच्चयंसि णं पव्वतंसि ता सिलुच्चयंसि णं पव्वयंसि ता लोअमज्झंसि णं पव्वतंसि ता लोयणाभिंसि णं पव्वतंसि ता अच्छंसि णं पव्वतंसि ता सूरियावत्तंसि णं पव्वतंसि सूरियावरणंसि णं पव्वतंसि ता उत्तमंसि णं पव्वयंसि ता दिसादिसिं णं पव्वतंसि ता अवतंसंसि णं पव्वतंसि ता धरणिखीलंसि णं पव्वयंसि ता धरणिसिंगंसि णं पव्वयंसि ता पव्वतिंदंसि णं पव्वतंसि ता पव्वयरायंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहता आहिताति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु । वयं पुण एवं वदामो–ता मंदरेवि पवुच्चति

५ प्राभृते-लेश्याप्रतिहतिः सू२६

॥ ७६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र चतुर्थं प्राभृतं परिसमाप्तं

अथ पञ्चमं प्राभृतं आरभ्यते

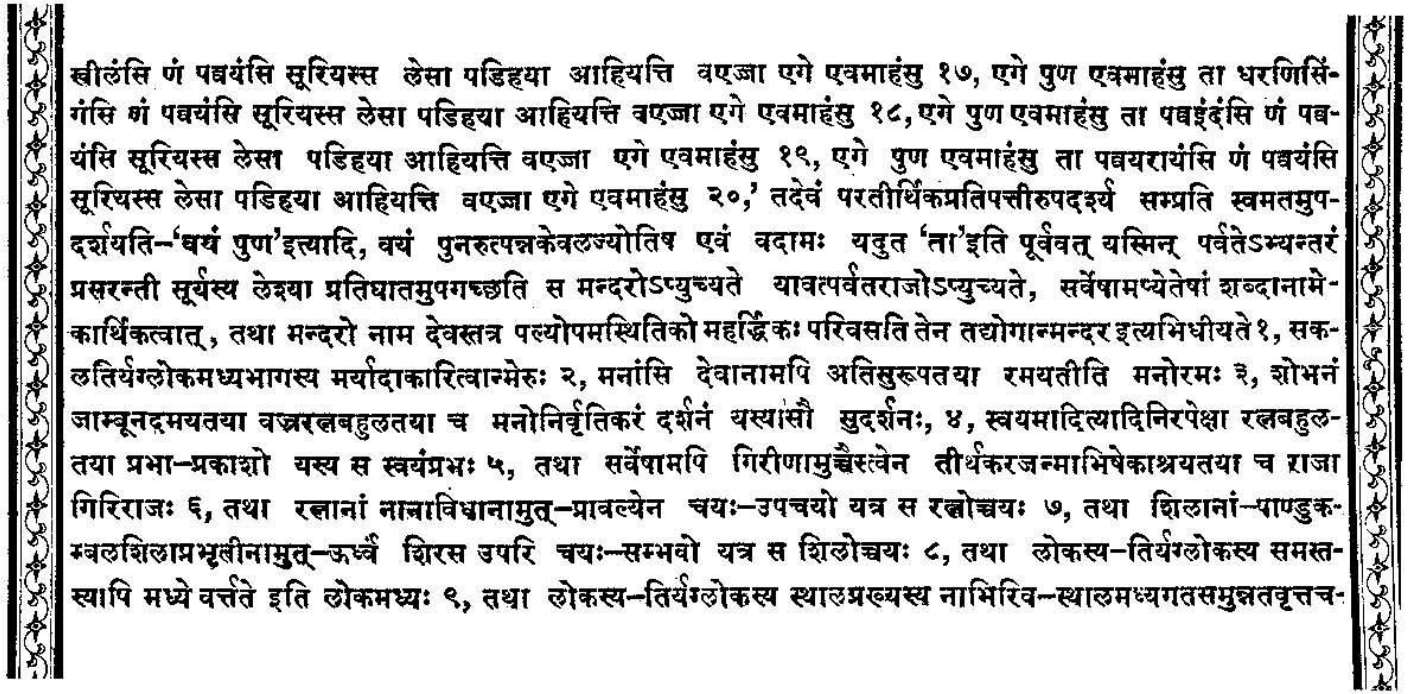
जाव पवयराया वुचति, ता जे णं पुग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति ते णं पुग्गला सूरियस्स लेसं पडिहणंति, अदिट्ठावि णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति, चरिमलेसंतरगतावि णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति ॥ (सूत्रं २६) ॥ सूरियपण्णत्तीए भगवतीए पंचमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता कस्सि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, अभ्यन्तरमण्डले सूर्यस्य लेश्या प्रसरतीति कस्मिन् स्थाने लेश्या प्रतिहता आख्याता इति वदेत् ?, अयमिह भावार्थः–इहावश्यमभ्यन्तरं प्रविशन्ती सूर्यस्य लेश्या कस्मिन् स्थाने प्रतिहतेत्यभ्युपगन्तव्यं, यतः सर्वाभ्यन्तरे सर्वबाह्ये च मण्डले जम्बूद्वीपगतं तापक्षेत्रमायामतः पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्रप्रमाणमेवाख्यातमेतच्च सर्वाभ्यन्तरमण्डलगते सूर्ये लेश्याप्रतिहतिमन्तरेण नोपपद्यते, अन्यथा निष्क्रामति सूर्ये तत्प्रतिबद्धस्य तापक्षेत्रस्यापि निष्क्रमणभावात् सर्वबाह्ये मण्डले चारं चरति सूर्ये हीनमायामतो भवेत् न च हीनमुक्तमतोऽवसीयते क्वापि लेश्या प्रतिघातमुपयाति ततस्तदवगमाय प्रश्न इति, एवं प्रश्ने कृते सति भगवानेतद्विषये यावत्यः प्रतिपत्तयस्तावतीरुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–सूर्यलेश्याप्रतिहतिविषये खल्विमा विंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा 'तत्र' तेषां विंशतेः परतीर्थिकानां मध्य एक एवमाहुः—मन्दरे पर्वते सूर्यस्य लेश्या प्रतिहता आख्याता इति वदेत्, वदेदिति तेषां मूलभूतं स्वशिष्यं प्रत्युपदेशः, अत्रैवोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः–मेरौ पर्वते सूर्यलेश्या प्रतिहता आख्याता इति वदेत्, एके एवमाहुः २, 'एव'मित्यादि एवं–उक्तेन प्रकारेण–एतेन वक्ष्यमाणेन प्रतिपत्तिविशेषभूतेनालापकेन शेषप्रतिपत्तिजातं नेतव्यं, तानेव प्रतिपत्तिविशेषभूतानालापकान् दर्शयति—'ता मणोरमंसि णं पव्वतंसी'-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्यादि प्रत्यालापकं च पूर्वोक्तानि पदानि योजनीयानि, तत एवं सूत्रपाठः–'एगे पुण एवमाहंसु ता मणोरमंसि णं पव्वयंसि सूरियलेसा पडिहया आहियत्ति वइज्जा एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु, ता सुदंसणंसि णं पव्वयंसि सूरियलेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु, ता सयंपहंसि णं पव्वयंसि सूरियलेसा पडिहया आहियत्ति वइज्जा एगे एवमाहंसु ५, एगे पुण एवमाहंसु ता गिरिरायंसि णं पव्वयंसि सूरियलेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ६, एगे पुण एवमाहंसु ता रयणुच्चयंसि णं पव्वयंसि सूरियलेसा पडिहया आहियत्ति वइज्जा, एगे एवमाहंसु ७, एगे पुण एवमाहंसु ता सिलुच्चयंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ८, एगे पुण एवमाहंसु ता लोयमज्झंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ९, एगे पुण एवमाहंसु ता लोगनाभिंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वइज्जा एगे एवमाहंसु १०, एगे पुण एवमाहंसु ता अच्छंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वइज्जा एगे एवमाहंसु ११, एगे पुण एवमाहंसु ता सूरियावत्तंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु १२, एगे पुण एवमाहंसु ता सूरियावरणंसि पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु १३, एगे पुण एवमाहंसु ता उत्तमंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु १४, एगे पुण एवमाहंसु ता दिसादिस्सि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु १५, एगे पुण एवमाहंसु ता अवतंसंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु १६, एगे पुण एवमाहंसु ता धरणि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



स्वीलंसि णं पवयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु १७, एगे पुण एवमाहंसु ता धरणिसिंगंसि णं पवयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु १८, एगे पुण एवमाहंसु ता पवइंदंसि णं पवयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु १९, एगे पुण एवमाहंसु ता पवयरायंसि णं पवयंसि सूरियस्स लेसा पडिहया आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु २०,' तदेवं परतीर्थिकप्रतिपत्तीरुपदर्श्य सम्प्रति स्वमतमुपदर्शयति–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलज्योतिष एवं वदामः यदुत 'ता'इति पूर्ववत् यस्मिन् पर्वतेऽभ्यन्तरं प्रसरन्ती सूर्यस्य लेश्या प्रतिघातमुपगच्छति स मन्दरोऽप्युच्यते यावत्पर्वतराजोऽप्युच्यते, सर्वेषामप्येतेषां शब्दानामेकार्थिकत्वात्, तथा मन्दरो नाम देवस्तत्र पल्योपमस्थितिको महर्द्धिकः परिवसति तेन तद्योगान्मन्दर इत्यभिधीयते १, सकलतिर्यग्लोकमध्यभागस्य मर्यादाकारित्वान्मेरुः २, मनांसि देवानामपि अतिसुरूपतया रमयतीति मनोरमः ३, शोभनं जाम्बूनदमयतया वज्ररत्नबहुलतया च मनोनिर्वृतिकरं दर्शनं यस्यासौ सुदर्शनः, ४, स्वयमादित्यादिनिरपेक्षा रत्नबहुलतया प्रभा–प्रकाशो यस्य स स्वयंप्रभः ५, तथा सर्वेषामपि गिरीणामुच्चैस्त्वेन तीर्थकरजन्माभिषेकाश्रयतया च राजा गिरिराजः ६, तथा रत्नानां नानाविधानामुत्–प्राबल्येन चयः–उपचयो यत्र स रत्नोच्चयः ७, तथा शिलानां–पाण्डुकम्बलशिलाप्रभृतीनामुत्–ऊर्ध्वं शिरस उपरि चयः–सम्भवो यत्र स शिलोच्चयः ८, तथा लोकस्य–तिर्यग्लोकस्य समस्तस्यापि मध्ये वर्त्तते इति लोकमध्यः ९, तथा लोकस्य–तिर्यग्लोकस्य स्थालप्रख्यस्य नाभिरिव–स्थालमध्यगतसमुन्नतवृत्तच-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्द्रक इव लोकनाभिः १०, तथा अच्छः–स्वच्छः सुनिर्म्मलजाम्बूनदरत्नबहुलत्वात् ११, तथा सूर्य उपलक्षणमेतत् चन्द्रग्रहनक्षत्रतारकाश्च प्रदक्षिणमावर्त्तन्ते यस्य स सूर्यावर्त्तः १२, तथा सूर्यैरुपलक्षणमेतत् चन्द्रग्रहनक्षत्रतारकाभिश्च समन्ततः परिभ्रमणशीलैराव्रियते स्म–वेष्ट्यते स्मेति सूर्यावरणः 'कृद्वहुल'मिति वचनात्कर्म्मण्यनट्प्रत्ययः १३, तथा गिरीणामुत्तम इति उत्तमः १४, दिशामादिः–प्रभवो दिगादिः, तथाहि–रुचकात् दिशां विदिशां च प्रभवो रुचकश्चाष्टप्रदेशात्मको मेरुमध्यवर्त्ती, ततो मेरुरपि दिगादिरित्युच्यते १५, तथा गिरीणामवतंसक इवेत्यवतंसकः १६, अमीषां च षोडशानां नाम्नां सङ्ग्राहिके इमे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिप्रसिद्धे गाथे–"मंदर मेरु मणोरम सुदंसण सयंपभे य गिरिराया । रयणोच्चए सिलोच्चय मज्झे लोगस्स नाभी य ॥ १ ॥ अच्छे य सूरियावत्ते, सूरियावरणे इय । उत्तमे य दिसाई य, वडिंसे इय सोलसे ॥२॥" तथा धरण्याः–पृथिव्याः कीलक इव धरणिकीलकः, तथा धरण्याः शृङ्गमिव धरणिशृङ्गः, पर्वतानामिन्द्रः पर्वतेन्द्रः, पर्वतानां राजा पर्वतराजः, तदेवं सर्वेऽपि मन्दरादयः शब्दाः परमार्थत एकार्थिकास्ततो भिन्नाभिप्रायतया प्रवृत्ताः प्राक्तनाः प्रतिपत्तयः सर्वा अपि मिथ्यारूपा अवगन्तव्याः । यापि च लेश्याप्रतिहतिः सा मन्दरेऽप्यस्ति अन्यत्रापि च, तथा चाह–'ता जे णं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् ये णमिति वाक्यालङ्कारे पुद्गला मेरुतटभित्तिसंस्थिताः सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति ते पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां प्रतिघ्नन्ति, अभ्यन्तरं प्रविशन्त्याः सूर्यलेश्यायास्तैः प्रतिस्खलितत्वात्, येऽपि पुद्गला मेरुतटभित्तिसंस्थिता अपि दृश्यमानपुद्गलान्तर्गताः सूक्ष्मत्वान्न चक्षुःस्पर्शमुपयान्ति तेऽप्यदृष्टा अपि सूर्यलेश्यां प्रतिघ्नन्ति, तैरप्यभ्यन्तरं प्रविशन्त्याः सूर्यलेश्यायाः स्वशक्त्यनुरूपं प्रतिस्खल्यमानत्वात्, येऽपि मेरोरन्यत्रापि चरमलेश्या-

॥ ७८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्तरगताः–चरमलेश्याविशेषसंस्पर्शिनः पुद्गलास्तेऽपि सूर्यलेश्यां प्रतिघ्नन्ति, तैरपि चरमलेश्यासंस्पर्शितया चरमलेश्यायाः प्रतिहन्यमानत्वात् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां पंचमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तं पञ्चमं प्राभृतं, सम्प्रति षष्ठमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः–'कथमोजःसंस्थितिराख्याता'इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह–

ता कहं ते ओयसंठिती आहितातिवदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता अणुसमयमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जे, अण्णा अवेति, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुमुहुत्तमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जति अण्णा अवेति २, एतेणं अभिलावेणं णेतव्वा, ता अणुराइंदियमेव ता अणुपक्खमेव ता अणुमासमेव ता अणुउडुमेव ता अणुअयणमेव ता अणुसंवच्छरमेव ता अणुजुगमेव ता अणुवाससयमेव ता अणुवाससहस्समेव ता अणुवाससयसहस्समेव ता अणुपुव्वमेव ता अणुपुव्वसयमेव अणुपुव्वसहस्समेव ता अणुपुव्वसतसहस्समेव ता अणुपलितोवममेव ता अणुपलितोवमसतमेव ता अणुपलितोवमसहस्समेव ता अणुपलितोवमसयसहस्समेव ता अणुसागरोवममेव, ता अणुसागरोवमसतमेव ता अणुसागरोवमसहस्समेव ता अणुसागरोवमसयसहस्समेव एगे एवमाहंसु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पञ्चमं प्राभृतं परिसमाप्तं

अथ षष्ठं प्राभृतं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ७९ ॥

ता अणुउस्सप्पिणिओसप्पिणिमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जति अण्णा अवेति, एगे एवमाहंसु। वयं पुण एवं वदामो ता तीसं २ मुहुत्ते सूरियस्स ओया अवट्ठिता भवति, तेण परं सूरियस्स ओया अणवट्ठिता भवति, छम्मासे सूरिए ओयं णिवुड्ढेति छम्मासे सूरिए ओयं अभिवड्ढेति, णिक्खममाणे सूरिए देसं णिवुड्ढेति पविसमाणे सूरिए देसं अभिवुड्ढेइ, तत्थ को हेतूति वदेज्जा ?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ सव्वदीवसमु० जाव परिक्खेवेणं, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं एगेणं राइंदिएणं एगं भागं ओयाए दिवसखित्तस्स णिवुड्ढित्ता रतणिक्खेत्तस्स अभिवड्ढित्ता चारं चरति, मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं सतेहिं छित्ता, तता णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया, से णिक्खममाणे सूरिए दोचंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतरतचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए अब्भिंतरतचं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं दोहिं राइंदिएहिं दो भागे ओयाए दिवसखेत्तस्स णिवुड्ढित्ता रयणिखित्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरति, मंडलं अट्ठारसतीसेहिं सएहिं छेत्ता, तता णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठिभागमु-

६ ओजःस्थितिप्राभृते सू २७

॥ ७९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७]

दीप अनुक्रम [४१]

हुत्तेहिं अहिया, एवं खलु एतेणुवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ एगमेगे मंडले एगमेगेणं राइंदिएणं एगमेगेणं २ भागं ओयाए दिवसखेत्तस्स णिवुड्ढेमाणे २ रयणिखेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरातो मंडलातो सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं सव्वब्भंतरं मंडलं पणिधाय एगेणं तेसीतेणं राइंदियसतेणं एगं तेसीतं भागसतं ओयाए दिवसखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरति मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं छेत्ता, तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, एस णं पढमछम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं एगेणं राइंदिएणं एगं भागं ओयाए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरति, मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं छेत्ता, तता णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिए, से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं दोहिं राइंदिएहिं दो भाए ओयाए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरति, मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं छेत्ता, तया णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ८० ॥

अट्ठासमुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिए, एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए तताणंतरातो तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ एगमेगेणं राइंदिएणं एगमेगेणं भागं ओयाए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेमाणे २ दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरातो मंडलातो सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिधाय एगेणं तेसीतेणं राइंदियसएणं एगं तेसीतं भागसतं ओयाए रयणिखित्तस्स णिवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरति, मंडलं अट्ठारसतीसेहिं सएहिं छेत्ता, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, एस णं दोचे छम्मासे एस णं दोचस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, एस णं आदिचे संवच्छरे, एस णं आदिचस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे (सूत्रं २७) ॥ छट्ठं पाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते ओयसंठिई'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण किं सर्वकालमेकरूपावस्थायितया उतान्यथा ओजसः–प्रकाशस्य संस्थितिः–अवस्थानमाख्याता इति वदेत्, एवमुक्ते भगवानेतद्विषये यावत्यः प्रतिपत्तयः सम्भवन्ति तावतीः कथयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–ओजःसंस्थितौ विषये खल्विमाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र–तेषां पञ्चविंशतेः परतीर्थिकानां मध्ये एके वादिन एवमाहुः, 'ता'इति पूर्ववत्, अनुसमयमेव–प्रतिक्षणमेव सूर्यस्य ओजोऽन्यदुत्पद्यते अन्यदपैति, किमुक्तं भवति ?–प्रतिक्षणं सूर्यस्य ओजः प्राक्तनभिन्नप्रमाणं विनश्यति, अन्य-

६ ओ स्थिति-प्राभृते सू २५

॥ ८० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देव प्राक्तनाद्भिन्नप्रमाणमोज उत्पद्यते, सूत्रे च ओजःशब्दस्य स्त्रीत्वेन निर्देशः प्राकृतत्वादार्षत्वाद्वा, अत्रैवोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः, 'ता'इति पूर्ववत्, अनुमुहूर्त्तमेव–प्रतिमुहूर्त्तमेव सूर्यस्य ओजोऽन्यदुत्पद्यते अन्यच्च प्राक्तनमपैति, अत्रैवोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' २,'एव'मित्यादि, एवं–उक्तेन प्रकारेण एतेन वक्ष्यमाणेन प्रतिपत्तिविशेषभूतेनालापकेन शेषं प्रतिपत्तिजातं नेतव्यं, तानेवाभिलापविशेषान् दर्शयति–'ता अणुराइंदियमेवे'त्यादि, सुगमं, नवरं रात्रिन्दिवं रात्रिन्दिवमनु अनुरात्रिंदिवमित्येवं सर्वत्र विग्रहभावना करणीया, पाठः पुनरेवं सूत्रस्य वेदितव्यः– एगे एवमाहंसु ता अणुराइंदियमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अन्ना अवेति, एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपक्खमेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुमासमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जति(अन्ना) अवेइ, एगे एवमाहंसु ५, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुउउमेव सूरियस्स ओआ अन्ना उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु ६, एगे एवमाहंसु ता अणुअयणमेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु ७, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुसंवच्छरमेव सूरियस्स ओजा अन्ना उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु ८, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुजुगमेव सूरियस्स ओआ अन्ना उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु ९, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुवाससयमेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु १०, ता एगे पुण एवमाहंसु अणुवाससहस्समेव सूरियस्स ओआ अण्णा उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु ११, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुवाससयसहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु १२, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपुव्वमेव सूरि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु १३, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपुव्वसयमेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु १४, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपुव्वसहस्समेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु १५, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपुव्वसयसहस्समेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु १६, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपलिओवममेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु १७, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपलिओवमसयमेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु १८, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपलिओवमसहस्समेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु १९, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुपलिओवमसयसहस्समेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु २०, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुसागरोवममेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु २१, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुसागरोवमसयमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु २२, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुसागरोवमसहस्समेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु २३, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुसागरोवमसयसहस्समेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु २४, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुउस्सप्पिणिओसप्पिणिमेव सूरियस्स ओया अन्ना उप्पज्जइ, अन्ना अवेइ, एगे एवमाहंसु २५' एताश्च प्रतिपत्तयः सर्वा अपि मिथ्यात्वरूपा यतोऽत एतासामपोहेन भगवान् स्वमतमुपदर्शयति–वयं पुनरेवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'ता तीस'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, जम्बूद्वीपे प्रतिवर्षं परिपूर्णतया त्रिंशतं त्रिंशतं मुहूर्त्तान्

॥ ८१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

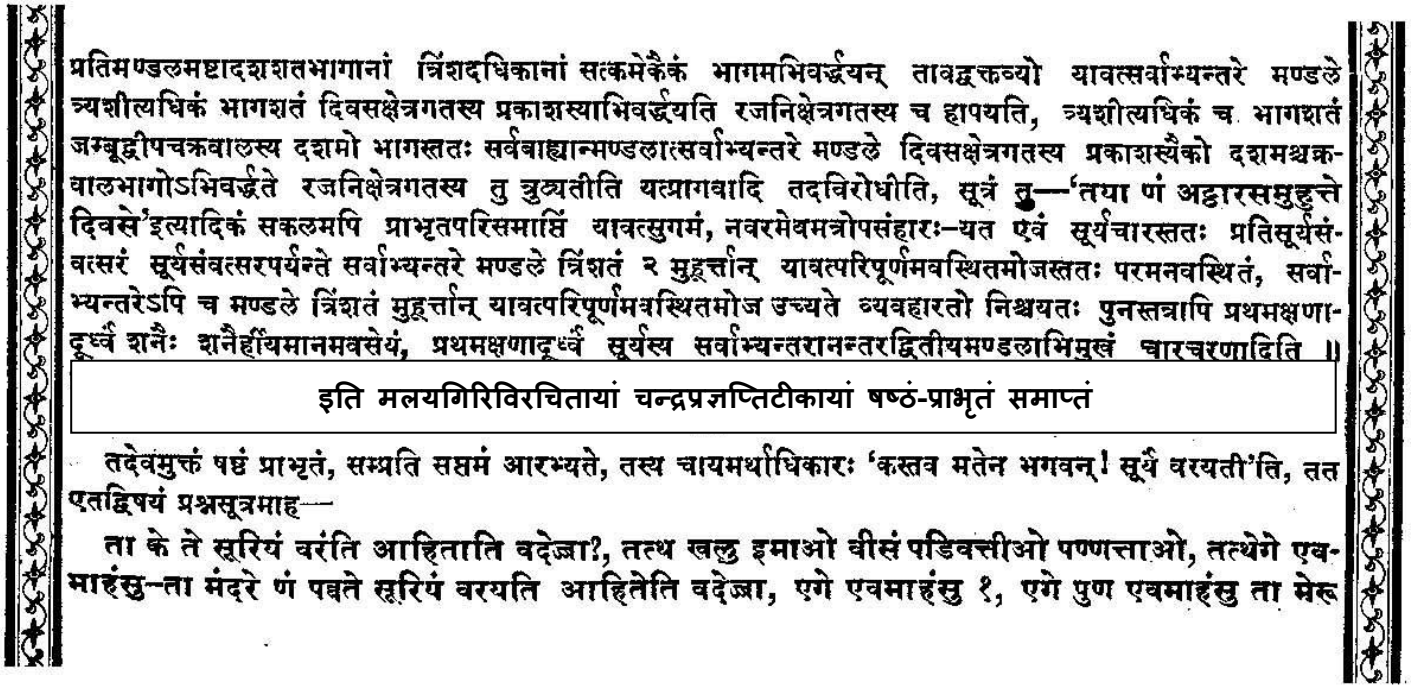
यावत् सूर्यस्य ओजः–प्रकाशोऽवस्थितं भवति, किमुक्तं भवति?, सूर्यसंवत्सरपर्यन्ते यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरति तदा सूर्यस्य जम्बूद्वीपगतमोजः परिपूर्णप्रमाणं त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावद् भवति, 'तेण परं'ति ततः परं सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परमित्यर्थः, सूर्यस्यौजोऽनवस्थितं भवति, कस्मादनवस्थितं भवतीति चेत्, अत आह–'छम्मासे' इत्यादि, यस्मात्कारणात्सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतः प्रथमान् सूर्यसंवत्सरसत्कान् षण्मासान् यावत्सूर्यो जम्बूद्वीपगतमोजः–प्रकाशं प्रत्यहोरात्रमेकैकस्य त्रिंशदधिकाष्टादशशतसङ्ख्यभागसत्कस्य भागस्य हापनेन निर्वेष्टयति–हापयति, तदनन्तरं द्वितीयान् षण्मासान् सूर्यसंवत्सरसत्कान् यावत्सूर्यः प्रत्यहोरात्रमेकैकत्रिंशदधिकाष्टादशशतसङ्ख्यसत्कभागवर्द्धनेनौजः–प्रकाशमभिवर्द्धयति, एतदेव व्यक्तं व्याचष्टे–'निक्खममाणे'इत्यादि, सुगमम्, नवरं देशमिति–त्रिंशदधिकानामष्टादशशतसङ्ख्यानां भागानां सत्कं प्रत्यहोरात्रमेकैकं भागं, तेनोच्यते सर्वाभ्यन्तरे मण्डले परिपूर्णतया त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावदवस्थितं सूर्यस्यौजस्ततः परमनवस्थितमिति, एतदेव वैतत्येन विभावयिषुः प्रश्नसूत्रमुपन्यस्यन्नाह—'तत्थे'त्यादि, तत्र–निष्क्रामन् सूर्यो देशं–यथोक्तरूपं निर्वेष्टयति प्रविशन्नभिवर्द्धयतीत्येतस्मिन् विषये को हेतुः ?–का उपपत्तिरिति वदेत्, भगवानाह— 'ता अयन्न'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपवाक्यं पूर्ववत् परिपूर्णं पठनीयं व्याख्यानीयं च,'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्त उत्कर्षकोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्या द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, ततः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलादुक्तप्रकारेण निष्क्रामन् सूर्यो नवं संवत्सरमाददानो नवस्य संवत्सरस्य प्रथमेऽहोरात्रेऽभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सर्वाभ्यन्तरान-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकेन रात्रिन्दिवेन सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतेन प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैः कलामात्रकलामात्रहापनेनाहोरात्रपर्यन्ते एकं भागमोजसः–प्रकाशस्य दिवसक्षेत्रगतस्य निर्वेष्ट्य—हापयित्वा तमेव चैकं भागं रजनिक्षेत्रस्याभिवर्द्धयित्वा चारं चरति, कियत्प्रमाणं पुनर्भागं दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्य हापयित्वा रजनिक्षेत्रस्य वर्द्धयित्वा ?, तत आह–मण्डलमष्टादशभिस्त्रिंशैः–त्रिंशदधिकैः शतैश्छित्त्वा, किमुक्तं भवति ?–द्वितीयं मण्डलमष्टादशभिस्त्रिंशदधिकैर्भागशतैर्विभज्य तत्सत्कमेकं भागमिति, कस्मात्पुनर्मण्डलस्याष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि भागानां परिकल्प्यन्ते ?, उच्यते, इह एकैकं मण्डलं द्वाभ्यां सूर्याभ्यां एकेनाहोरात्रेण भ्रम्या पूर्यते, अहोरात्रश्च त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणः, प्रतिसूर्यं चाहोरात्रगणने परमार्थतो द्वावहोरात्रौ भवतः, द्वयोश्चाहोरात्रयोः षष्टिर्मुहूर्त्ताः, ततो मण्डलं प्रथमतः षष्ट्या भागैर्विभज्यते, निष्कामन्तौ च सूर्यौ प्रत्यहोरात्रं प्रत्येकं द्वौ द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभागौ हापयतः प्रविशन्तौ चाभिवर्द्धयतः, यौ च द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभागौ तौ समुदितावेकः सार्द्धत्रिंशत्तमो भागः, ततः षष्टिरपि भागाः सार्द्धया त्रिंशता गुण्यन्ते, जातान्यष्टादश शतानि त्रिंशताऽधिकानि च भागानां, एवं निष्क्रामन् सूर्यः प्रतिमण्डलं त्रिंशदधिकाष्टादशशतसङ्ख्यानां भागानां सत्कमेकैकं भागं दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्य हापयन् रजनिक्षेत्रस्याभिवर्द्धयन्[1] तावद्वक्तव्यः यावत्सर्वबाह्ये मण्डले व्यशीत्यधिकं भागशतं दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्य हापयिता रजनिक्षेत्रस्य चाभिवर्द्धयिता भवति, व्यशीत्यधिकं च भागशतमष्टादशशतानां त्रिंशदधिकानां दशमो भागः, ततः 'सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात् सर्वबाह्ये मण्डले जम्बूद्वीपचक्रवालदशभागस्रुट्यति रजनिक्षेत्रस्याभिवर्द्धते' इति यत्प्रागभिहितं तदपि समीचीनं जातमिति, एवमभ्यन्तरं प्रविशन्

॥ ८२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



प्रतिमण्डलमष्टादशशतभागानां त्रिंशदधिकानां सत्कमेकैकं भागमभिवर्द्धयन् तावद्वक्तव्यो यावत्सर्वाभ्यन्तरे मण्डले व्यशीत्यधिकं भागशतं दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्याभिवर्द्धयति रजनिक्षेत्रगतस्य च हापयति, व्यशीत्यधिकं च भागशतं जम्बूद्वीपचक्रवालस्य दशमो भागस्ततः सर्वबाह्यान्मण्डलात्सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्यैको दशमश्चक्रवालभागोऽभिवर्द्धते रजनिक्षेत्रगतस्य तु व्रुत्यतीति यत्प्रागवादि तदविरोधीति, सूत्रं तु—'तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे'इत्यादिकं सकलमपि प्राभृतपरिसमाप्तिं यावत्सुगमं, नवरमेवमत्रोपसंहारः–यत एवं सूर्यचारस्ततः प्रतिसूर्यसंवत्सरं सूर्यसंवत्सरपर्यन्ते सर्वाभ्यन्तरे मण्डले त्रिंशतं २ मुहूर्त्तान् यावत्परिपूर्णमवस्थितमोजस्ततः परमनवस्थितं, सर्वाभ्यन्तरेऽपि च मण्डले त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावत्परिपूर्णमवस्थितमोज उच्यते व्यवहारतो निश्चयतः पुनस्तत्रापि प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैर्हीयमानमवसेयं, प्रथमक्षणादूर्ध्वं सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलाभिमुखं चारचरणादिति ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां षष्ठं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तं षष्ठं प्राभृतं, सम्प्रति सप्तमं आरभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः 'कस्तव मतेन भगवन्! सूर्यं वरयती'ति, तत एतद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता के ते सूरियं वरंति आहितेति वदेज्जा?, तत्थ खलु इमाओ वीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु–ता मंदरे णं पव्वते सूरियं वरयति आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु ता मेरू

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र षष्ठं प्राभृतं परिसमाप्तं	अथ सप्तमं प्राभृतं आरभ्यते

णं पवते सूरियं वरति आहितेति वदेज्जा, एवं एएणं अभिलावेणं णेतव्वं जाव पवतराये णं पवते सूरियं वरयति आहितेति वदेज्जा, तं एगे एवमाहंसु, वयं पुण एवं वदामो–ता मंदरेवि पवुच्चति तहेव जाव पवतरावि पवुच्चति, ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति ते पोग्गला सूरियं वरयंति, अदिट्ठावि णं पोग्गला सूरियं वरयंति, चरमलेसंतरगतावि णं पोग्गला सूरियं वरयति (सूत्रं २८) ॥ सत्तमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता के ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कस्तव मतेन भगवन् ! सूर्यं वरयति ?, वरयन् 'वर ईप्सायां' आत्मुमिच्छन् स्वप्रकाशकत्वेन स्वीकुर्वन्, आख्यात इति वदेत्, एवमुक्ते भगवान् एतद्विषया यावत्यः परतीर्थिकानां प्रतिपत्तयः तावतीः कथयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र सूर्यं प्रति वरणविषये खल्विमा विंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र–तेषां विंशतेः परतीर्थिकानां मध्ये एके प्रथमा एवमाहुः–मन्दरः पर्वतः सूर्यं वरयति, मन्दरः पर्वतो हि सूर्येण मण्डलपरिभ्रम्या सर्वतः प्रकाश्यते, ततः सूर्यं प्रकाशकत्वेन वरयतीत्युच्यते, अत्रोपसंहारः–'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः, मेरुपर्वतः सूर्यं वरयन्नाख्यात इति वदेत्, अत्राप्युपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' २, 'एव'मित्यादि, एवं–उक्तेन प्रकारेण लेश्याप्रतिहतिविषयविप्रतिपत्तिवत् तावन्नेतव्यं यावत्पर्वतराजः पर्वतः सूर्यं वरयन् आख्यात इति वदेत्, एके एवमाहुरिति, किमुक्तं भवति ?–यथा प्राक् लेश्याप्रतिहतिविषये विंशतिः प्रतिपत्तयो येन क्रमेणोक्तास्तेन क्रमेणात्रापि वक्तव्याः, सूत्रपाठोऽपि प्रथमप्रतिपत्तिगतपाठानुसारेणान्यूनातिरिक्तः स्वयं परिभावनीयो, ग्रन्थगौरवभयात्तु न लिख्यते, तदेवमुक्ताः परतीर्थिकप्रतिपत्तयः, संप्रति भगवान् स्वमतमुपदर्शयति–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरेवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकार-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२८]

दीप अनुक्रम [४२]

माह–'ता मंदरेऽवी'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, योऽसौ पर्वतः सूर्यं वरयन् आख्यातः स मन्दरोऽप्युच्यते मेरुरप्युच्यते यावत्पर्वतराजोऽप्युच्यते, एतच्च प्रागेव भावितं, ततो भिन्नभिन्नविषयतया प्रवृत्ताः प्राक्तन्यः प्रतिपत्तयः सर्वा अपि मिथ्यारूपा अवगन्तव्याः, अपि च–न केवलो मेरुरेव सूर्यं वरयति, किं त्वन्येऽपि पुद्गलाः, तथा चाह–'ता जे ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् जे णमिति वाक्यालङ्कारे पुद्गला मेरुगता अमेरुगता वा सूर्यलेश्यां स्पृशन्ति ते पुद्गलाः स्वप्रकाशकत्वेन सूर्यं वरयन्ति, ईप्सितं हि सूर्येण प्रकाश्यते, ततो लेश्यापुद्गलैः सह सम्बन्धात्परंपरया ते–सूर्यं स्वं कुर्वन्तीत्युच्यते, ये च प्रकाश्यमानपुद्गलस्कन्धान्तर्गता मेरुगता अमेरुगता वा सूर्येण प्रकाशिता अपि सूक्ष्मत्वान्न चक्षुःस्पर्शमुपगच्छन्ति तेऽपि प्रागुक्तयुक्त्या सूर्यं वरयन्ति, येऽपि च चरमलेश्यान्तरगताः–स्वचरमलेश्याविशेषस्पर्शिनः पुद्गलास्तेऽपि सूर्यं वरयन्ति, तेषामपि सूर्येण प्रकाश्यमानत्वात् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां सप्तमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तं सप्तमं प्राभृतं, सम्प्रति अष्टममारभ्यते—तस्य चायमर्थाधिकारः—'कथं त्वया भगवन्! उदयसंस्थितिराख्याता' इति, तत इत्थंभूतमेव प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते उदयसंठिती आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु, ता जया णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तता णं उत्तरड्ढेवि अट्ठारसमु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र सप्तमं प्राभृतं परिसमाप्तं	अथ अष्टमं प्राभृतं आरभ्यते

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ८४ ॥

हुत्ते दिवसे भवति, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तया णं दाहिणड्ढेऽवि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, त(ज)दा णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवति तया णं उत्तरड्ढेवि सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवति, जया णं उत्तरड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवति तदा णं दाहिणड्ढेवि सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवति, एवं परिहावेतवं, सोलसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ते दिवसे चउद्दसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ते दिवसे जाव णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे तया णं उत्तरड्ढेवि बारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जता णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवति तता णं दाहिणड्ढेवि बारसमुहुत्ते दिवसे भवति, तता णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवति तता णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं सता पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवति सदा पण्णरसमुहुत्ता राई भवति, अवट्ठिता णं तत्थ राइंदिया पण्णत्ता समणाउसो !, एगे एवमाहंसु, एगे पुण एवमाहंसु जता णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तया णं उत्तरड्ढेवि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तता णं दाहिणड्ढेवि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ एवं परिहावेतवं, सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति, सोलसमुहुत्ताणंतरे०, पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति, चोद्दसमुहुत्ताणंतरे०, तेरसमुहुत्ताणंतरे०, जया णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं उत्तरड्ढेवि बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, जता णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढेवि बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स

८ उदय-स्थिति-प्राभृते सू २९

॥ ८४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं णो सदा पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवति णो सदा पण्णरसमुहुत्ता राई भवति, अणवट्ठिता णं तत्थ राइंदिया णं समणाउसो !, एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु, ता जया णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तदा णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवति, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तदा णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता (राई भवइ, जया णं दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ता) णंतरे दिवसे भवति तदा णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ, जता णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवति, एवं णेतव्वं सगलेहिं य अणंतरेहि य एक्केक्के दो दो आलावगा, सव्वेहिं दुवालसमुहुत्ता राई भवति, जाव ता जता णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवति, जया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं दाहिणड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवति, तता णं जंबुद्दीवे २ मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं णेवत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवति णेवत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवति, वोच्छिण्णा णं तत्थ राइंदिया पं० समणाउसो ! एगे एवमाहंसु ३ । वयं पुण एवं वदामो, ता जंबुद्दीवे २ सूरिया उदीणपाईणमुग्गच्छंति पाईणदाहिणमागच्छंति, पाईणदाहिणमुग्गच्छंति दाहिणपडीणमागच्छंति दाहिणपडीणमुग्गच्छंति पडीणउदीणमागच्छन्ति पडीणउदीणमुग्गच्छन्ति उदीणपाईणमागच्छन्ति, ता जता णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे दिवसे भवति तदा णं उत्तरड्ढे दिवसे भवति, जदा णं उ० तदा णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मपच्चच्छिमे णं राई भवति, ता जया णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं दिवसे भवति तदा णं पच्चच्छिमेणवि दिवसे भवति, जया णं पच्चत्थिमे णं दिवसे भवति तदा णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं राई भवति, ता जया णं दाहिणद्धेवि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तया णं उत्तरद्धे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जदा उत्तरद्धे० तदा णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,ता जया णं जंबुद्दीवे २ मन्दरस्स पव्वतस्स पुरच्छिमे णं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तता णं पच्चत्थिमेणवि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जता णं पच्चत्थिमे णं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तता णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, एवं एएणं गमेणं णेतव्वं, अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगदुवालसमुहुत्ता राई भवति, सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राई, सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति सातिरेगतेरसमुहुत्ता राई भवति, सोलसमुहुत्ते दिवसे भवति चोद्दसमुहुत्ता राई, भवति, सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति सातिरेगचोद्दसमुहुत्ता राई भवति, पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई, पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगपण्णरसमुहुत्ता राई भवइ, चउद्दसमुहुत्ते दिवसे सोलसमुहुत्ता राई, चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगसोलसमुहुत्ता राई, तेरसमुहुत्ते दिक्से सत्तरसमुहुत्ता राई, तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगसत्तरसमुहुत्ता राई, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, एवं भणितव्वं, ता जया णं जंबुद्दीवे २

॥ ८५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जति तता णं उत्तरड्ढेवि वासाणं पढमे समए पडिवज्जति, जता णं उत्तरड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जति तता णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमे णं अणंतरपुरक्खडकालसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, ता जया णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमे णं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तता णं पच्चत्थिमेणवि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, जया णं पच्चत्थिमे णं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तता णं जंबुद्दीवे २ मंदरदाहिणे णं अणंतरपच्छाकयकालसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवण्णे भवति, जहा समओ एवं आवलिया आणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते पक्खे मासे उऊ, एवं दस आलावगा जहा वासाणं एवं हेमंताणं गिम्हाणं च भाणितव्वा, ता जता णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जति तदा णं उत्तरड्ढेवि पढमे अयणे पडिवज्जइ, जता णं उत्तरड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जति तदा णं दाहिणड्ढेवि पढमे अयणे पडिवज्जइ, जता णं उत्तरड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जति तता णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं अणंतरपुरक्खडकालसमयंसि पढमे अयणे पडिवज्जति, ता जया णं जंबुद्दीवे २ मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं पढमे अयणे पडिवज्जति तता णं पच्चत्थिमेणवि पढमे अयणे पडिवज्जइ, जया णं पच्चत्थिमे णं पढमे अयणे पडिवज्जइ तदा णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं अणंतरपच्छाकडकालसमयंसि पढमे अयणे पडिवण्णे भवति, जहा अयणे तहा संवच्छरे जुगे वाससते, एवं वाससहस्से वाससयसहस्से पुव्वंगे पुव्वे एवं जाव सीसपहेलिया पलितोवमे सागरोवमे, ता जया णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

उस्सप्पिणी पडिवज्जति तता णं उत्तरद्धेवि उस्सप्पिणी पडिवज्जति, जता णं उत्तरद्धे उस्सप्पिणी पडिवज्जति तता णं जंबुदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं णेवत्थि ओसप्पिणी णेव अत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिते णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो !, एवं उस्सप्पिणीवि । ता जया णं लवणे समुद्दे दाहिणद्धे दिवसे भवति तता णं लवणसमुद्दे उत्तरद्धे दिवसे भवति, जता णं उत्तरद्धे दिवसे भवति तता णं लवणसमुद्दे पुरच्छिमपच्चत्थिमे णं राई भवति, जहा जंबुदीवे २ तहेव जाव उस्सप्पिणी, तहा धायइसंडे णं दीवे सूरिया ओदीण० तहेव, ता जता णं धायइसंडे दीवे दाहिणद्धे दिवसे भवति तता णं उत्तरद्धेवि दिवसे भवति, जता णं उत्तरद्धे दिवसे भवति तता णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वताणं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं राई भवति, एवं जंबुदीवे २ जहा तहेव जाव उस्सप्पिणी, कालोए णं जहा लवणे समुद्दे तहेव, ता अब्भंतरपुक्खरद्धे णं सूरिया उदीणपाईणमुग्गच्छ तहेव ता जया णं अब्भंतरपुक्खरद्धे णं दाहिणद्धे दिवसे भवति तदा णं उत्तरद्धेवि दिवसे भवति, जता णं उत्तरद्धेवि दिवसे भवति तता णं अब्भिंतरपुक्खरद्धे मंदराणं पव्वताणं पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं राई भवति सेसं जहा जंबुदीवे तहेव जाव उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ ॥ (सूत्रं २९) ॥ अट्ठमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण सूर्यस्य उदयसंस्थितिस्ते–त्वया भगवन्नाख्याता इति वदेत् ?, एवमुक्ते भगवानेतद्विषया यावत्यः प्रतिपत्तयः तावतीरुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तस्यामुदयसंस्थितौ विषये तिस्रः प्रतिपत्तयः–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र–तेषां त्रयाणां परतीर्थिकानां मध्ये एके–प्रथमाः परती-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

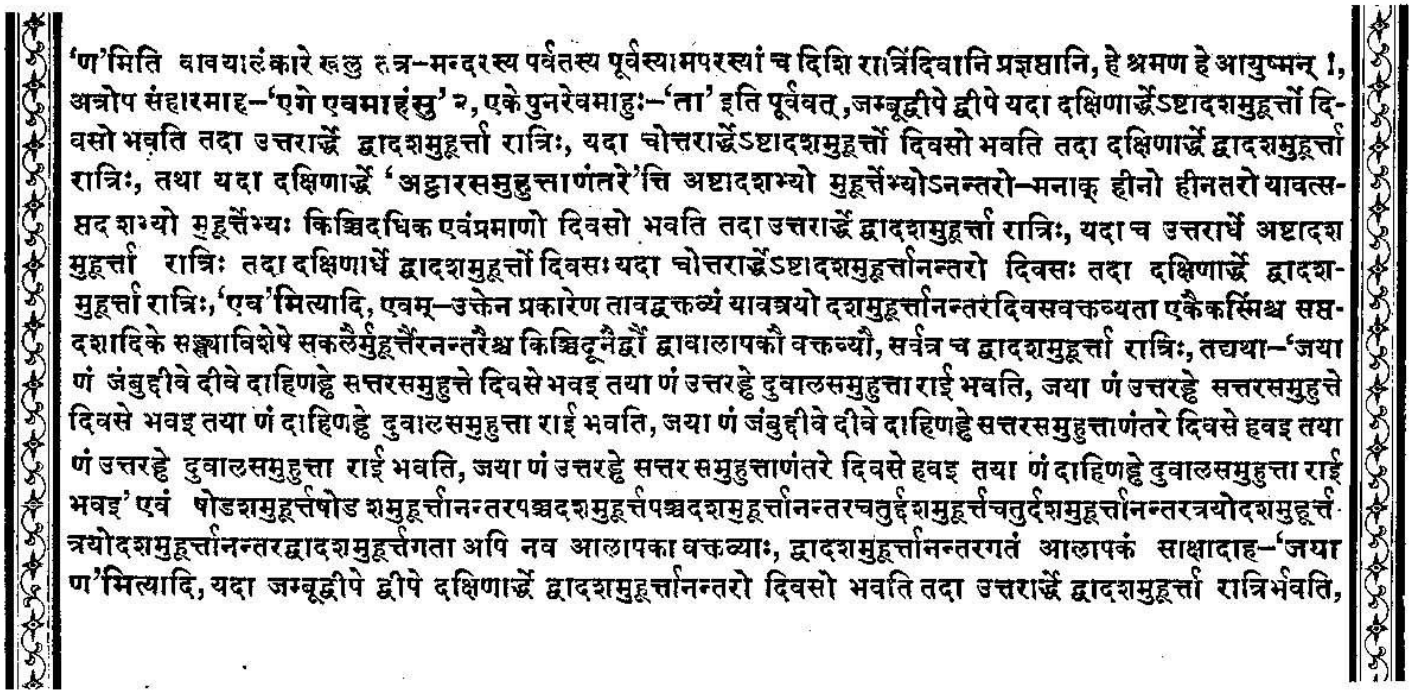
थिंका एवमाहुः–'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति वाक्यालङ्कारे अस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे अष्टादश मुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः, तदेवं दक्षिणार्द्धनियमनेनोत्तरार्द्धनियम उक्तः, सम्प्रति उत्तरार्द्धनियमनेन दक्षिणार्द्धनियमनमाह–'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा उत्तरार्द्धे अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा दक्षिणार्द्धेऽपि अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः, 'ता जया ण'मित्यादि, यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे सप्तदश-मुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, यदा चोत्तरार्द्धे सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा दक्षिणार्द्धेऽपि सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसः, 'एवं'इत्यादि, एवं–उक्तेन प्रकारेण एकैकमुहूर्त्तहान्या परिहारतव्यं, परिहानि-मेव क्रमेण दर्शयति–प्रथमत उक्तप्रकारेण षोडशमुहूर्त्तो दिवसो वक्तव्यः, तदनन्तरं पञ्चदशमुहूर्त्तस्ततश्चतुर्दशमुहूर्त्त-स्ततस्त्रयोदशमुहूर्त्तः, सूत्रपाठोऽपि प्रागुक्तसूत्रानुसारेण स्वयं परिभावनीयः, स चैवम्–'जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढेवि सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढेवि सोलसमुहुत्ते दिवसे भवइ'इत्यादि, द्वादशमुहूर्त्तदिवसप्रतिपादकं सूत्रं साक्षादाह–'ता जया ण'मित्यादि, ता इति–तत्र यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो, यदा उत्तरार्द्धे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसस्तदा दक्षिणार्द्धेऽपि द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः, तदा च अष्टादशमुहूर्त्तादिदिवसकाले जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि सदा–सर्वकालं पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सदैव च पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिः, कुत इत्याह–अवस्थितानि–सकलकालमेकप्रमाणानि, णमिति वाक्यालङ्कारे, तत्र मन्दरस्य पर्वतस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि रात्रिंदिवानि प्रज्ञप्तानि, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, एतच्च प्रथमानां परतीर्थिकानां मूलभूतं स्वशिष्यं प्रत्यामन्त्रणवाक्यं, अत्रैवोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः—यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणेऽस्मिन्नर्द्धेऽष्टादशमुहूर्त्तानन्तरः—अष्टादशभ्यो मुहूर्त्तेभ्योऽनन्तरो—मनाक् हीनो हीनतरो वा यावत्सप्तदशभ्यो मुहूर्त्तेभ्यः किञ्चित्समधिकप्रमाणो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धेऽप्यष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति, यदा चोत्तरार्द्धेऽष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा दक्षिणार्द्धेऽपि अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः, तथा यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः, यदा उत्तरार्द्धे सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसस्तदा दक्षिणार्द्धेऽपि सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः, 'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण एकैकमुहूर्त्तहान्या परिहातव्यं, परिहानिप्रकारमेवाह—'सोलसे'त्यादि, प्रथमतः षोडशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो वक्तव्यः, ततः पञ्चदशमुहूर्त्तानन्तरस्तदनन्तरं चतुर्दशमुहूर्त्तानन्तरः, ततः त्रयोदशमुहूर्त्तानन्तरः, एतेषां हि मतेन न कदाचनापि परिपूर्णमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति, ततः सर्वत्रानन्तरशब्दप्रयोगः, द्वादशमुहूर्त्तानन्तरसूत्रं तु साक्षादर्शयति,—'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसस्तदा उत्तरार्द्धेऽपि द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः, यदा चोत्तरार्द्धे द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसस्तदा दक्षिणार्द्धेऽपि द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः, तदा चाष्टादशमुहूर्त्तानन्तरादिदिवसकाले जम्बूद्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि नो—नैव सदा—सर्वकालं पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति नापि सदा पञ्चदश मुहूर्त्ता रात्रिः, कुत इत्याह—'अणवट्ठिया ण'मित्यादि, अनवस्थितानि—अनियतप्रमाणानि,

॥ ८७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



'ण'मिति वाक्यालंकारे खलु तत्र–मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि रात्रिंदिवानि प्रज्ञप्तानि, हे श्रमण हे आयुष्मन् !, अत्रोप संहारमाह–'एगे एवमाहंसु' २, एके पुनरेवमाहुः–'ता' इति पूर्ववत्, जम्बूद्वीपे द्वीपे यदा दक्षिणार्द्धेऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, यदा चोत्तरार्द्धेऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा दक्षिणार्द्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तथा यदा दक्षिणार्द्धे 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे'त्ति अष्टादशभ्यो मुहूर्त्तेभ्योऽनन्तरो–मनाक् हीनो हीनतरो यावत्सप्तदशभ्यो मुहूर्त्तेभ्यः किञ्चिदधिक एवंप्रमाणो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, यदा च उत्तरार्धे अष्टादश मुहूर्त्ता रात्रिः तदा दक्षिणार्धे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः यदा चोत्तरार्द्धेऽष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः तदा दक्षिणार्द्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः,'एव'मित्यादि, एवम्–उक्तेन प्रकारेण तावद्वक्तव्यं यावत्त्रयो दशमुहूर्त्तानन्तरंदिवसवक्तव्यता एकैकस्मिंश्च सप्तदशादिके सङ्ख्याविशेषे सकलैर्मुहूर्त्तैरनन्तरैश्च किञ्चिदूनैर्द्वौ द्वावालापकौ वक्तव्यौ, सर्वत्र च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तद्यथा–'जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवति, जया णं उत्तरड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवति, जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे हवइ तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवति, जया णं उत्तरड्ढे सत्तर समुहुत्ताणंतरे दिवसे हवइ तया णं दाहिणड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' एवं षोडशमुहूर्त्तषोडशमुहूर्त्तानन्तरपञ्चदशमुहूर्त्तपञ्चदशमुहूर्त्तानन्तरचतुर्दशमुहूर्त्तचतुर्दशमुहूर्त्तानन्तरत्रयोदशमुहूर्त्तत्रयोदशमुहूर्त्तानन्तरद्वादशमुहूर्त्तगता अपि नव आलापका वक्तव्याः, द्वादशमुहूर्त्तानन्तरगतं आलापकं साक्षादाह–'जया ण'मित्यादि, यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदा चोत्तरार्द्धे द्वादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति (तदा दक्षिणार्धे द्वादशमुहूर्तानन्तरो दिवसो भवति) यदा चोत्तरार्द्धे द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा दक्षिणार्द्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तदा चाष्टादशमुहूर्त्तानन्तरादिदिवसकाले जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरच्छिमपच्चत्थिमे णं'ति पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि नैवास्त्येतत् यदुत पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, नाप्यस्येतत् यथा–पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति, कुत इत्याह–'वोच्छिन्ना ण'मित्यादि, व्यवच्छिन्नानि णमिति वाक्यालंकारे खलु तत्र मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि रात्रिन्दिवानि प्रज्ञप्तानि, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, अत्रैवोपसंहारः'एगे एवमाहंसु ३' एताश्च तिस्रोऽपि प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपाः, भगवतोऽननुमतत्वात्, अपिच–ये तृतीया वादिनः सदैव रात्रिं द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणामिच्छन्ति तेषां प्रत्यक्षविरोधः, प्रत्यक्षत एव हीनाधिकरूपाया रात्रेरुपलभ्यमानत्वात्। सम्प्रति स्वमतं भगवानुपदर्शयति–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरेवं–वक्ष्यमाणेन प्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'ता जंबुद्दीवे दीवे' इत्यादि, 'ता'इति पूर्ववत् जम्बूद्वीपे २ सूर्यौ यथायोगं मण्डलपरिभ्रम्या भ्रमन्तौ मेरोरुदक्प्राच्यां–उत्तरपूर्वस्यां दिशि उद्गच्छतः, तत्र चोद्गत्य प्राग्दक्षिणस्यां–दक्षिणपूर्वस्यामागच्छतः, ततो भरतादिक्षेत्रापेक्षया प्राग्दक्षिणस्यां–दक्षिणपूर्वस्यामुद्गत्य दक्षिणापाच्यां–दक्षिणापरस्यामागच्छतस्तत्रापि च दक्षिणापरस्यामपरविदेहक्षेत्रापेक्षया उद्गत्यापागुदीच्यां–अपरोत्तरस्यामागच्छतः, तत्रापि चापरोत्तरस्यामैरावतादिक्षेत्रापेक्षया उद्गत्य उदक्प्राच्यां–उत्तरपूर्वस्यामागच्छतः, एवं तावत्सामान्यतो द्वयोरपि सूर्ययोरुदयविधिरुपदर्शितो, विशेषतः पुनरयं–यदैकः सूर्यः पूर्वदक्षिणस्यामुद्गच्छति तदा अपरोऽपरोत्तरस्यां दिशि समुद्गच्छति, दक्षिणपूर्वोद्गतश्च सूर्यो भरतादीनि क्षेत्राणि मेरुदक्षिणदिग्वर्तीनि मण्डलभ्रम्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिभ्रमन् प्रकाशयति, अपरोऽपरोत्तरस्यामुद्गतः सन् तत ऊर्ध्वं मण्डलपरिभ्रम्या परिभ्रमन् ऐरावतादीनि क्षेत्राणि भेरो-रुत्तरदिग्भावीनि प्रकाशयति, भारतश्च सूर्यो दक्षिणापरस्यामागतः सन्नपरविदेहक्षेत्रापेक्षया उदयमासादयति, ऐरावतः सूर्यः पुनरुत्तरपूर्वस्यामागतः पूर्वविदेहापेक्षया समुद्गच्छति, ततो दक्षिणापरस्यामुद्गतः सन् तत ऊर्ध्वं मण्डलभ्रम्या परिभ्रमन् अपरविदेहान् प्रकाशयति, उत्तरपूर्वस्यामुद्गतस्तु तत ऊर्ध्वं मण्डलगत्या चरन् पूर्वविदेहानवभासयति, तत एष पूर्वविदेहप्रकाशको भूयो दक्षिणपूर्वस्यां भरतादिक्षेत्रापेक्षयोदयमासादयति, अपरविदेहप्रकाशकस्त्वपरोत्तरस्यामिति। तदेवं जम्बूद्वीपे सूर्ययोरुदयविधिरुक्तः, सम्प्रति क्षेत्रविभागेन दिवसरात्रिविभागमाह–'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति वाक्यालङ्कारे जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि दिवसो भवति, एकस्य सूर्यस्य दक्षिण-दिशि परिभ्रमणसम्भवे अपरस्य सूर्यस्यावश्यमुत्तरदिशि परिभ्रमणसंभवात्, यदा चोत्तरार्धेऽपि दिवसस्तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरच्छिमपच्चत्थिमे णं'ति पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि रात्रिर्भवति, तदानीमेकस्यापि सूर्यस्य तत्रा-भावात् 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यां दिशि दिवसो भवति तदा पश्चिमाया-मपि दिशि दिवसो भवति, एकस्य सूर्यस्य पूर्वदिग्भावसम्भवे अपरस्य सूर्यस्यावश्यमपरस्यां दिशि भावात्, एतच्च प्रागेव भावितं, यदा च पश्चिमायामपि दिशि दिवसो भवति तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरदाहिणे णं'ति उत्तरतो दक्षिणतश्च रात्रिर्भवति, 'ता जया ण'मित्यादि तत्र यदा णमिति प्राग्वत्, जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे उत्कर्षकः–उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः, उत्कृष्टो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ह्यष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारित्वे, तत्र च यदैकः सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारी भवति तदा अपरोऽप्यवश्यं तत्समया श्रेण्या सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारी भवतीति दक्षिणार्द्धे उत्कृष्टदिवससम्भवे उत्तरार्द्धेऽप्युत्कृष्टदिवससम्भवः, यदा उत्तरार्द्धे उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं'ति पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि जघन्या द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरतोः सूर्ययोः सर्वत्रापि रात्रेर्द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणाया एव भावात्, तथा 'जया ण'मित्यादि, तत्र यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यां दिशि उत्कर्षकः–उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा मन्दरपर्वतस्य पश्चिमायामपि दिशि उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः, कारणं दक्षिणोत्तरार्द्धगतं प्रागुक्तमनुसरणीयं, यदा च मन्दरपर्वतस्य पश्चिमायामपि दिशि उत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरदाहिणे णं'ति उत्तरतो दक्षिणतश्च जघन्या द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, अत्रापि कारणं पूर्वपश्चिमार्द्धरात्रिगतं प्रागुक्तमनुसरणीयं,'एव'मित्यादि, एवम्–उक्तेन प्रकारेण एतेनानन्तरोदितेन गमेन–आलापकगमेन वक्ष्यमाणमपि नेतव्यं, किं तद् वक्ष्यमाणमित्याह–'अट्ठारसमुहुत्ताणंतर'इत्यादि, यदा मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणोत्तरार्द्धयोः पूर्वपश्चिमयोर्वा अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरः–सप्तदशभ्यो मुहूर्त्तेभ्य ऊर्ध्वं किञ्चिदूनाष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः तदा पूर्वपश्चिमयोर्दक्षिणोत्तरार्द्धयोर्वा सातिरेकद्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति, एवं शेषाण्यपि पदानि भावनीयानि, सूत्रपाठोऽपि प्रागुक्तालापकगमानुसारेण स्वयं परिभावनीयः, स चैवम्–'ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे हवइ तया णं उत्तरड्ढेवि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९]

दीप अनुक्रम [४३]

अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे हवइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमे णं सातिरेगदुवालसमुहुत्ता राई भवइ, ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे हवइ तया णं पच्चत्थिमे णं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे हवइ, जया णं पच्चत्थिमेणवि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं साइरेगदुवालसमुहुत्ता राई भवइ, एवं सप्तदशमुहुर्त्तदिवसादिप्रतिपादका अपि सूत्रालापका भावनीयाः, 'ता जया ण'मित्यादि तत्र यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे वर्षाणां–वर्षाकालस्य प्रथमः समयः प्रतिपद्यते–भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि वर्षाणां प्रथमः समयो भवति, समकालनैयत्येन दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च सूर्ययोश्चारभावात्, यदा चोत्तरार्द्धे वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरच्छिमपच्चत्थिमे णं' पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि 'अणंतरपुरक्खडे'त्ति अनन्तरं–अव्यवधानेन पुरष्कृतः–अग्रेकृतो यः सोऽनन्तरपुरस्कृतोऽनन्तरं द्वितीय इत्यर्थः, तस्मिन् 'कालसमयंसि'त्ति समयः सङ्केतादिरपि भवति ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं कालग्रहणं, कालश्चासौ समयश्च कालसमयः, तत्र वर्षाकालस्य प्रथमः समयः प्रतिपद्यते–भवति, किमुक्तं भवति ?–यस्मिन् समये दक्षिणार्द्धोत्तरार्द्धयोर्वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति तस्मादूर्ध्वमनन्तरे द्वितीये समये पूर्वपश्चिमयोर्वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा 'ण'मिति प्राग्वत् जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यां दिशि वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति तदा मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमायामपि दिशि वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति, सर्वकालनैयत्येन पूर्वपश्चिमयोरपि सूर्ययोश्चारचरणात्, यदा च पश्चिमायामपि दिशि वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति तदा जम्बूद्वीपे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरदाहिणे णं'ति उत्तरतो दक्षिणतश्च अनन्तरः–अव्यवधानेन पश्चात्कृतोऽनन्तरपश्चात्कृतः तस्मिन् कालसमये वर्षाकालस्य प्रथमः समयः प्रतिपन्नो भवति, भूत इत्यर्थः, इह यस्मिन् समये दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति तदनन्तरे अग्रेतने द्वितीये समये पूर्वपश्चिमयोर्वर्षाणां प्रथमः समयो भवतीति, एतावन्मात्रोक्तावपि यस्मिन् समये पूर्वपश्चिमयोर्वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति ततोऽनन्तरे पश्चाद्भाविनि समये दक्षिणोत्तरार्द्धयोर्वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवतीति गम्यते तत्किमर्थमस्योपादानं ?, उच्यते, इह क्रमोत्क्रमाभ्यामभिहितोऽर्थः प्रपञ्चितज्ञानां शिष्याणामतिसुनिश्चितो भवति ततस्तेषामनुग्रहाय तदुक्तमित्यदोषः, 'जहा समय'इत्यादि, यथा समय उक्तः तथा आवलिका प्राणापानौ स्तोको लवो मुहूर्त्तोऽहोरात्रः पक्षो मास ऋतुश्च–प्रावृडादिरूपो वक्तव्यः, एवं च समयगतमालापकमादिं कृत्वा दश आलापका एते भवन्ति, ते च समयगतालापकरीत्या स्वयं परिभावनीयाः, तद्यथा–'जया णं जंबुद्दीवे दीवे वासाणं पढमा आवलिया पडिवज्जइ तया णं उत्तरद्धेवि वासाणं पढमा आवलिया पडिवज्जइ, जया णं उत्तरद्धे वासाणं पढमा आवलिया पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमे णं अणंतरपुरक्खडकालसमयंसि वासाणं पढमा आवलिया पडिवज्जइ, ता जया णं जंबुद्दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमे णं वासाणं पढमा आवलिया पडिवज्जइ [तया णं पच्चत्थिमे णं पढमा आवलिया पडिवज्जइ २] तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं अणंतरपच्छाकडकालसमयंसि वासाणं पढमा आवलिया पडिवन्ना भवइ' इदं च प्रागुक्तव्याख्यानुसारेण व्याख्येयं, नवरं 'आवलिया पडिवज्जइ'त्ति आवलिका परिपूर्णा भवति, शेषं तथैव, एवं प्राणापानादिका अप्यालापका

॥ ९० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भणनीयाः 'एए'इत्यादि, यथा वर्षाणां–वर्षाकालस्य एते अनन्तरोदिताः समयादिगता अत्र आलापका भणिताः 'एवं हेमंताणं'ति शीतकालस्य, 'गिम्हाणं'ति ग्रीष्मकालस्योष्णकालस्येत्यर्थः, प्रत्येकं समयादिगता दश दश आलापका भणितव्याः, अयनगतं स्वालापकं साक्षात्पठति–'ता जया ण'मित्यादि सुगमं, 'जहा अयणे'इत्यादि, यथा अयने आलापको भणितः तथा संवत्सरे युगे–वक्ष्यमाणस्वरूपे चन्द्रादिसंवत्सरपञ्चकात्मके वर्षशते वर्षसहस्रे वर्षशतसहस्रे पूर्वाङ्गे पूर्वे एवं 'जाव सीसपहेलिय'त्ति, एवं यावत्करणादमून्यपान्तराले पदानि द्रष्टव्यानि, 'तुडियंगे तुडिए अडडंगे अडडे अववंगे अववे हूहूयंगे हूहूये उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे नलिणंगे नलिणे अत्थनिउरंगे अत्थनिउरे अउयंगे अउए नउअंगे नउए चूलियंगे चूलिए सीसपहेलियंगे' इति, अत्र चतुरशीतिर्वर्षलक्षाण्येकं पूर्वाङ्गं, चतुरशीतिः पूर्वाङ्गलक्षाणि एकं पूर्वमेवं पूर्वः पूर्वो राशिश्चतुरशीतिलक्षैर्गुणित उत्तरोत्तरो राशिर्भवति, यावच्चतुरशीतिशीर्षप्रहेलिकाङ्गलक्षाणि एका शीर्षप्रहेलिका, एतावान् राशिर्गणितविषयोऽत ऊर्ध्वं गणनातीतः, स च पल्योपमादि, 'पलिओवमे सागरोवमे' अनयोः स्वरूपं सङ्ग्रहणीटीकायामुक्तं, आलापकास्तु स्वयं वक्तव्याः, अवसर्पिण्युत्सर्पिणीविषयमालापकं साक्षादाह–'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणार्द्धेऽवसर्पिणी प्रतिपद्यते–परिपूर्णा भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि अवसर्पिणी प्रतिपद्यते, यदा उत्तरार्द्धे अवसर्पिणी प्रतिपद्यते–परिपूर्णा भवति, तदा दक्षिणार्धेऽपि अवसर्पिणी प्रतिपद्यते–प्रतिपूर्णा भवति, यदा उत्तरार्द्धेऽपि अवसर्पिणी प्रतिपद्यते तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि नैवास्त्यवसर्पिणी नाप्युत्सर्पिणी, कुत इत्याह–अवस्थितो णमिति खलु तत्र पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि कालः प्रज्ञप्तो मया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेषैश्च तीर्थकरैः हे श्रमणायुष्मन् ! ततस्तत्रावसर्पिण्युत्सर्पिण्यभावः, 'एवमुस्सप्पिणीवि'त्ति, एवमुक्तेन प्रकारेणोत्सर्पिण्यपि–उत्सर्पिण्यालापकोऽपि वक्तव्यः, स चैवम्–'ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पढमा उस्सप्पिणी पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि पढमा उस्सप्पिणी पडिवज्जइ, जया णं उत्तरड्ढेवि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं नेव अत्थि अवसप्पिणी णेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पन्नत्ते समणाउसो!' तदेवं जंबूद्वीपवक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति लवणसमुद्रवक्तव्यतामाह–'लवणे णं समुद्दे'इत्यादि,'तहेव'त्ति यथा जम्बूद्वीपे उद्गमविषये आलापक उक्तः तथा लवणसमुद्रेऽपि वक्तव्यः, स चैवम्–'लवणे णं सूरिया उईणपाईणमुग्गच्छ पाईणदाहिणमागच्छंति, पाईणदाहिणमुग्गच्छ दाहिणपाईणमागच्छंति, दाहिणपाईणमुग्गच्छ पाईणउईणमागच्छंति, पाईणउईणमुग्गच्छ उईणपाईणमागच्छंति' इदं च सूत्रं जम्बूद्वीपगतोद्गमसूत्रवत् स्वयं परिभावनीयं, नवरमत्र सूर्याश्चत्वारो वेदितव्याः,' 'चत्तारि य सागरे लवणे' इति वचनात्, ते च जम्बूद्वीपगतसूर्याभ्यां सह समश्रेण्या प्रतिबद्धाः, तद्यथा–द्वौ सूर्यौ एकस्य जम्बूद्वीपगतस्य सूर्यस्य श्रेण्या प्रतिबद्धौ द्वौ द्वितीयस्य जम्बूद्वीपगतस्य सूर्यस्य, तत्र यदैकः सूर्यो जम्बूद्वीपे दक्षिणपूर्वस्यामुद्गच्छति तदा तत्समश्रेण्या प्रतिबद्धौ द्वौ सूर्यौ लवणसमुद्रे तस्यामेव दक्षिणपूर्वस्यामुदयमागच्छतस्तदैव जम्बूद्वीपगतेन सूर्येण सह तत्समश्रेण्या प्रतिबद्धौ द्वावपरौ लवणसमुद्रे अपरोत्तरस्यां दिशि उदयमासादयतः, तत उदयविधिरपि द्वयोर्द्वयोः सूर्ययोर्जम्बूद्वीपसूर्ययोरिव भावनीयः, तेन दिवसरात्रिविभागोऽपि क्षेत्रविभागेन तथैव द्रष्टव्यः, तथा चाह–'ता जया ण'मित्यादि सुगमं, नवरं 'जहा जंबुद्दीवे दीवे'इत्यादि, यथा जम्बूद्वीपे द्वीपे 'पुरच्छिमपच्च-

॥ ९१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

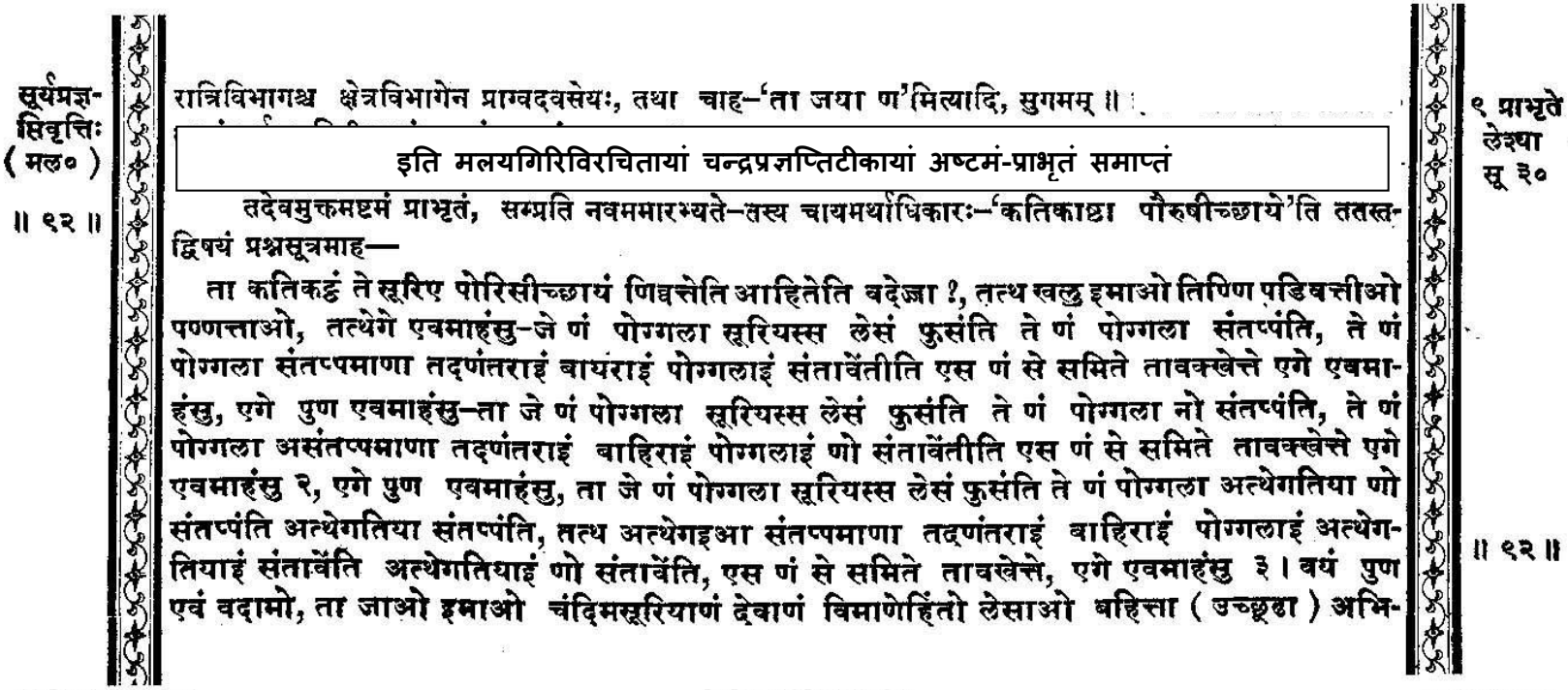
च्छिमे णं राई भवइ'इत्यादिकं सूत्रमुक्तं यावदुत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिण्या लापकस्तथा लवणसमुद्रेऽप्यन्यूनातिरिक्तं समस्तं भणितव्यं, नवरं जम्बूद्वीपे द्वीपे इत्यस्य स्थाने लवणसमुद्रे इति वक्तव्यमिति शेषः । तदेवं लवणसमुद्रगताऽपि वक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति धातकीखण्डविषयां तामाह–'धायइसंडे णं सूरिया'इत्यादि, अत्राप्युद्गमविधिः प्राग्वद् भावनीयः, नवरमत्र सूर्या द्वादश, 'धायइसंडे दीवे बारस चंदा य सूरा य' इति वचनात्, ततः षट् सूर्या दक्षिणदिक्चारिभिर्जम्बूद्वीपगतलवणसमुद्रगतैः सूर्यैः सह समश्रेण्या प्रतिबद्धाः षट् उत्तरदिक्चारिभिः, सम्प्रत्यत्रापि क्षेत्रविभागेन दिवसरात्रिविभागमाह–'ता जया ण'मित्यादि, यदा धातकीखण्डे द्वीपे दक्षिणार्द्धे दिवसो भवति तदा उत्तरार्द्धेऽपि दिवसो भवति, यदा उत्तरार्द्धेऽपि दिवसस्तदा धातकीखण्डे मन्दरयोः पर्वतयोः पूर्वार्द्धपश्चिमार्द्धगतयोः प्रत्येकं पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि रात्रिर्भवति, 'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण यथा जम्बूद्वीपे उक्तं तथैवात्रापि वक्तव्यं, तच्च तावद्यावदुत्सर्प्पिण्यालापकः । 'कालोए'इत्यादि, कालोदे समुद्रे यथा लवणेऽभिहितं तथैवाभिधातव्यं, नवरं कालोदे सूर्या द्विचत्वारिंशत्, तत्रैकविंशतिर्दक्षिणदिक्चारिभिर्जम्बूद्वीपलवणसमुद्रधातकीखण्डगतैः सह समश्रेण्या सम्बद्धा एकविंशतिरुत्तरदिक्चारिभिः, तत उदयविधिर्दिवसरात्रिविभागश्च क्षेत्रविभागेन तथैव वेदितव्यः । साम्प्रतमभ्यन्तरपुष्करवरार्द्धवक्तव्यतामाह–'ता अब्भिंतरपुक्खरद्धे'इत्यादि, इदमपि सूत्रं सुगमं, 'तहेव'त्ति तथैव जम्बूद्वीप इव वक्तव्यं, नवरमत्र सूर्या द्वासप्ततिः, तत्र षट्त्रिंशद्दक्षिणदिक्चारिभिर्जम्बूद्वीपादिगतैः सह समश्रेण्या प्रतिबद्धाः षट्त्रिंशदुत्तरदिक्चारिभिः, तत उदयविधिर्दिवस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२९]

दीप अनुक्रम [४३]



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ९२ ॥

रात्रिविभागश्च क्षेत्रविभागेन प्राग्वदवसेयः, तथा चाह–'ता जया ण'मित्यादि, सुगमम् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां अष्टमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तमष्टमं प्राभृतं, सम्प्रति नवममारभ्यते–तस्य चायमर्थाधिकारः–'कतिकाष्ठा पौरुषीच्छाये'ति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कतिकट्ठं ते सूरिए पोरिसीच्छायं णिवत्तेति आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु–जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति ते णं पोग्गला संतप्पंति, ते णं पोग्गला संतप्पमाणा तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं संतावेंतीति एस णं से समिते तावक्खेत्ते एगे एवमाहंसु, एगे पुण एवमाहंसु–ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति ते णं पोग्गला नो संतप्पंति, ते णं पोग्गला असंतप्पमाणा तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं णो संतावेंतीति एस णं से समिते तावक्खेत्ते एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु, ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति ते णं पोग्गला अत्थेगतिया णो संतप्पंति अत्थेगतिया संतप्पंति, तत्थ अत्थेगइआ संतप्पमाणा तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं अत्थेगतियाइं संतावेंति अत्थेगतियाइं णो संतावेंति, एस णं से समिते तावखेत्ते, एगे एवमाहंसु ३। वयं पुण एवं वदामो, ता जाओ इमाओ चंदिमसूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेसाओ बहिस्ता (उच्छूढा) अभि-

९ प्राभृते लेश्या सू ३०

॥ ९२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र अष्टमं प्राभृतं परिसमाप्तं	अथ नवमं प्राभृतं आरभ्यते

णिसट्ठाओ पतावेंति, एतासि णं लेसाणं अंतरेसु अण्णतरीओ छिण्णलेसाओ संमुच्छंति, तते णं ताओ छिण्णलेस्साओ संमुच्छियाओ समाणीओ तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं संतावेंतीति एस णं से समिते तावक्खेत्ते ॥ (सूत्रं ३०) ॥

'ता कइकट्ठं ते'इत्यादि पूर्ववत् 'कति' किंप्रमाणा काष्ठा–प्रकर्षो यस्याः सा कतिकाष्ठा तां कतिकाष्ठां–किंप्रमाणां ? 'ते' तव मते सूर्यः 'पौरुषीं' पुरुषे भवा पौरुषी तां पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, निर्वर्त्तयन्नाख्यात इति वदेत् ?, किंप्रमाणां पौरुषीछायामुत्पादयन् सूर्यो भगवान् त्वया आख्यात इति वदेदिति सङ्क्षेपार्थः, एवं प्रश्ने कृते भगवानेतद्विषये यावन्त्यः प्रतिपत्तयस्तावतीरुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तस्याः पौरुष्याः छायायाः प्रमाणचिन्तायां प्रथमतस्तावदिमास्तापक्षेत्रस्वरूपविषयाः खलु तिस्रः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–'तत्र' तेषां त्रयाणां परतीर्थिकानां मध्ये एके–प्रथमा एवमाहुः–'ता जे ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, ये णमिति वाक्यालङ्कारे पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति ते पुद्गलाः सूर्यलेश्यासंस्पर्शतः सन्तप्यन्ते–सन्तापमनुभवन्ति, सन्तप्यन्त इति कर्मकर्त्तरि प्रयोगः, ते च पुद्गलाः सन्तप्यमानाः तदनन्तरान्–तेषां सन्तप्यमानानां पुद्गलानामव्यवधानेन ये स्थिताः पुद्गलास्ते तदनन्तरास्तान् बाह्यान् पुद्गलान्, सूत्रे च नपुंसकनिर्देशः प्राकृतत्वात्, सन्तापयन्ति, इतिशब्दः प्रस्तुतवक्तव्यतापरिसमाप्तिसूचकः, 'एस ण'मित्यादि एतत्–एवंस्वरूपं 'से' तस्य सूर्यस्य समितं–उपपन्नं तापक्षेत्रं, अत्रोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः, 'ता' इति पूर्ववत्, ये णमिति प्राग्वत् पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति ते पुद्गला न सन्तप्यन्ते–न सन्तापमनुभवन्ति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यश्च पीठफलकादीनां सूर्यलेश्यासंसृष्टानां सन्ताप उपलभ्यते स तदाश्रितानां सूर्यलेश्यापुद्गलानामेव स्वरूपेण, न पीठफलकादिगतानां पुद्गलानामिति न प्रत्यक्षविरोधः, ते णमिति प्राग्वत्, पुद्गला असन्ताप्यमानास्तदनन्तरान् बाह्यान् पुद्गलान्न सन्तापयन्ति–नोष्णीकुर्वन्ति, स्वतस्तेषामसन्तप्तत्वात्, इतिशब्दः प्राग्वत् व्यक्तः, 'एस ण'मित्यादि, एतत्–एवंस्वरूपं 'से' तस्य सूर्यस्य तापक्षेत्रं समितं–उपपन्नमिति, अत्र उपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' २, एके पुनरेवमाहुः, 'ता'इति पूर्ववत्, णमिति प्राग्वत् ये पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति ते पुद्गला अस्तीति प्राकृतत्वान्निपातत्वाद्वा सन्ति एककाः केचन पुद्गला ये सूर्यलेश्यासंस्पर्शतः सन्तप्यन्ते–सन्तापमनुभवन्ति, तथा सन्त्येककाः केचन पुद्गला ये न सन्तप्यन्ते, तत्र ये सन्त्येककाः सन्तप्यमानास्ते तदनन्तरान् बाह्यान् पुद्गलान् अस्त्येतत् यत् एककान्–कांश्चित्सन्तापयन्ति, अस्त्येतद्यदेककान्–कांश्चिन्न सन्तापयन्ति, इतिशब्दः पूर्ववत्, 'एस ण'मित्यादि, एतत्–एवंस्वरूपं 'से' तस्य सूर्यस्य समितं–उपपन्नं तापक्षेत्रं, अत्रोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' ३। एतास्तिस्रोऽपि प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपास्तथा च एता व्युदस्य भगवान् भिन्नं स्वमतमाह—'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरेवं–वक्ष्यमाणेन प्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'ता जईए'(जाओ इमाओ) इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, या इमाः प्रत्यक्षत उपलभ्यमानाश्चन्द्रसूर्याणां देवानां सत्केभ्यो विमानेभ्यो लेश्या उच्छूढाः, एतदेव व्याचष्टे–अभिनिःसृतास्ताः प्रतापयन्ति–बाह्यं यथोचितमाकाशवर्त्ति प्रकाश्यं प्रकाशयन्ति, एतासां चेत्थं विमानेभ्यो निःसृतानां लेश्यानामन्तरेषु–अपान्तरालेष्वन्यतराच्छिन्नलेश्याः सम्मूर्च्छन्ति, ततस्ता मूलच्छिन्ना लेश्याः सम्मूर्च्छिताः सत्यस्तदनन्तरान् बाह्यान् पुद्गलान् संतापयन्ति, इतिशब्दः पूर्ववत्, 'एस ण'मित्यादि, एतत्–एवंस्वरूप,

॥ ९३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'से' तस्य सूर्यस्य समितं-उपपन्नं तापक्षेत्रमिति । तदेवं तापक्षेत्रस्य स्वरूपसम्भव उक्तः, सम्प्रति किंप्रमाणां पोरुषीछायां निर्वर्त्तयतीत्येतत् बोद्धुकामः पृच्छन्नाह—

ता कतिकट्ठे ते सूरिए पोरिसीच्छायं णिवत्तेति आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता अणुसमयमेव सूरिए पोरिसिच्छायं णिवत्तेइ आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुमुहुत्तमेव सूरिए पोरिसिच्छायं णिवत्तेति आहितेति वदेज्जा, एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं, ता जाओ चेव ओयसंठितीए पणुवीसं पडिवत्तीओ ताओ चेव णेतव्वाओ, जाव अणुउस्सप्पिणीमेव सूरिए पोरिसीए च्छायं णिवत्तेति आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु । वयं पुण एवं वदामो–ता सूरियस्स णं उच्चत्तं च लेसं च पडुच्च छाउद्देसे उच्चत्तं च छायं च पडुच्च लेसुद्देसे लेसं च छायं च पडुच्च उच्चत्तोदेसे, तत्थ खलु इमाओ दुवे पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु–ता अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसीच्छायं निवत्तेइ, अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसीच्छायं णिवत्तेति एगे एवमाहंसु१,एगे पुणएवमाहंसु ता अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसीच्छायं णिवत्तेति अत्थि णं से दिवसे जंसि दिवसंसि सूरिए नो किंचि पोरिसिच्छायं णिवत्तेति २, तत्थ जे ते एवमाहंसु ता अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसियं छायं णिवत्तेति, अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए दोपोरिसियं छायं निवत्तेइ ते एवमाहंसु, ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, तेसिं च णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसीयं छायं निवत्तेति, ता उग्गमणमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य लेसं अभिवड्ढेमाणे नो चेव णं णिव्वुड्ढेमाणे, ता जता णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, तंसि च णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसियं छायं निवत्तेइ, तं०–उग्गमणमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य, लेसं अभिवड्ढेमाणे नो चेव णं निवुड्ढेमाणे १, तत्थ णं जे ते एवमाहंसु ता अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसियं छायं णिवत्तेइ अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए णो किंचि पोरिसियं छायं णिवत्तेति ते एवमाहंसु, ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति, तंसि च णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसियं छायं णिवत्तेति, तं०–उग्गमणमुहुत्तंसि अत्थमणमुहुत्तंसि य लेसं अभिवड्ढेमाणे णो चेव णं णिव्वुड्ढेमाणे, ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति तंसि च णं दिवसंसि सूरिए णो किंचि पोरिसीए छायं णिवत्तेति, तं०–उग्गमणमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य, नो चेव णं लेसं अभिवुड्ढेमाणे वा निवुड्ढेमाणे वा, ता कइकट्ठं ते सूरिए पोरिसीच्छायं निवत्तेइ आहियत्ति क-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इज्जा ?, तत्थ इमाओ छण्णउइ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु, अत्थि णं ते से देसे जंसि णं देसंसि सूरिए एगपोरिसीयं छायं निवत्तेइ एगे एवमाहंसु, एगे पुण एवमाहंसु, ता अत्थि णं से देसे जंसि देसंसि सूरिए दुपोरिसियं छायं णिवत्तेति, एवं एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं, जाव छण्णउतिं पोरिसियं छायं णिवत्तेति, तत्थ जे ते एवमाहंसु ता अत्थि णं से देसे जंसि णं देसंसि सूरिए एगपोरिसियं छायं णिवत्तेति ते एवमाहंसु ता सूरियस्स णं सव्वहेट्ठिमातो सूरप्पडिहितो बहित्ता अभिणिसट्ठाहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ जावतियं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं एवतियाए एगाए अद्धाए एगेणं छायाणुमाणप्पमाणेणं उमाए तत्थ से सूरिए एगपोरिसीयं छायं णिवत्तेति, तत्थ जे ते एवमाहंसु, ता अत्थि णं से देसे जंसि णं देसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं णिवत्तेति, ते एवमाहंसु–ता सूरियस्स णं सव्वहेट्ठिमातो सूरियपडिधीतो बहित्ता अभिणिसट्ठिताहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो जावतियं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं एवतियाहिं दोहिं अद्धाहिं दोहिं छायाणुमाणप्पमाणेहिं उमाए एत्थ णं से सूरिए दुपोरिसियं छायं णिवत्तेति, एवं णेयव्वं जाव तत्थ जे ते एवमाहंसु ता अत्थि णं से देसे जंसि णं देसंसि सूरिए छण्णउतिं पोरिसियं छायं णिवत्तेति ते एवमाहंसु–ता सूरियस्स णं सव्वहिट्ठिमातो सूरप्पडिधीओ बहित्ता अभिणिसट्ठाहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं इसीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो जावतियं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं एवतियाहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

छण्णवतीए छायाणुमाणुप्पमाणेहिं उमाए एत्थ णं से सूरिए छण्णउतिं पोरिसियं छायं णिवत्तेति एगे एवमाहंसु, वयं पुण एवं वदामो, सातिरेगअउणट्ठिपोरिसीणं सूरिए पोरिसीछायं णिवत्तेति, अवद्धपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?, ता तिभागे गते वा सेसे वा, ता पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?, ता चउब्भागे गते वा सेसे वा, ता दिवद्धपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?, ता पंचमभागे गते वा सेसे वा, एवं अद्धपोरिसिं छोडुं पुच्छा दिवसस्स भागं छोडुं वाकरणं जाव ता अद्धअउणासट्ठिपोरिसीछायादिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?, ता एगूणवीससतभागे गते वा सेसे वा, ता अउणसट्ठिपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा बावीससहस्सभागे गते वा सेसे वा, ता सातिरेगअउणसट्ठिपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?, ता णत्थि किंचि गते वा सेसे वा, तत्थ खलु इमा पणवीसनिविट्ठा छाया पं०, तं०–खंभछाया रज्जुछाया पागारछाया पासायछाया उवग्गछाया उच्चत्तछाया अणुलोमछाया आरुभिता समा पडिहता खीलच्छाया पक्खच्छाया पुरतोउदया पुरिमकंठभाउवगता पच्छिमकंठभाउवगता छायाणुवादिणी किट्ठाणुवादिणाछाया छायछाया (गोलछाया तत्थ णं गोलच्छाया अट्ठविहा) पं० तं०–गोलच्छाया अवद्धगोलच्छाया गाढलगोलछाया अवद्धगाढलगोलछाया गोलावलिच्छाया अवद्धगोलावलिच्छाया गोलपुंजछाया अवद्धगोलपुंजछाया ॥ (सूत्रं ३१) ॥ णवमं पाहुडं समत्तं ॥

९ प्राभृते पौरुषीछाया सू ३१

॥ ९५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'ता कइकट्ठं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कतिकाष्ठां–किंप्रमाणां भगवन् ! त्वया सूर्यः पौरुषीच्छायां निर्वर्त्तयन्नाख्यात इति वदेत् ?, एवमुक्ते भगवान् प्रथमतो लेश्यास्वरूपविषये यावन्त्यः परतीर्थिकानां प्रतिपत्तयस्तावतीरुपदर्शयति–'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र–तस्यां पौरुष्यां छायायां विषये लेश्यामधिकृत्य खल्विमाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र–तेषां पञ्चविंशतेः परतीर्थिकानां मध्ये एके एवमाहुः–ता इति पूर्ववत्, अनुसमयमेव–प्रतिक्षणमेव सूर्यः पौरुषीछायां, इह लेश्यावशतः पौरुषीछाया भवतीति ततः कारणे कार्योपचारात् पौरुषीछायेति लेश्या द्रष्टव्या, तां निर्वर्त्तयति निर्वर्त्तयन्नाख्यात इति वदेत्, किमुक्तं भवति ?–प्रतिक्षणमन्यामन्यां सूर्यो लेश्यां निर्वर्त्तयन् आख्यात इति वदेत्, अत्रोपसंहारः–'एगे एवमाहंसु, 'एव'मित्यादि, एवं–उक्तेन प्रकारेण एतेनानन्तरोदितेनाभिलापेन सूर्यपाठगमेन था एव ओजःसंस्थितौ पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः उक्ताः ता एव क्रमेणात्रापि नेतव्याः, तावद्यावच्चरमप्रतिपत्तिप्रतिपादकमिदं सूत्रं–'एगे पुण एवमाहंसु–ता अणु–ओसप्पिणिउस्सप्पिणिमेव सूरिए'इत्यादि, मध्यमास्त्वालापका एवं ज्ञातव्याः–'एगे पुण एवमाहंसु ता अणुमुहुत्तमेव सूरिए पोरिसिच्छायं निवत्तेइ आहियत्ति वएज्जा 'एगे एवमाहंसु' इत्यादि, तदेवं लेश्याविषयाः परप्रतिपत्तीरुपदर्श्य सम्प्रति तद्विषयं स्वमतमाह—'वयं पुण' इत्यादि, वयं पुनरेवं वदामः, कथमित्याह–'ता सूरियस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, सूर्यस्य णमिति वाक्यालङ्कारे उच्चत्वं लेश्यां च प्रतीत्य छायोद्देशः, किमुक्तं भवति ?–यथा सूर्य उच्चैरुच्चैस्तरामधिरोहति यथा च मध्याह्नादूर्ध्वं नीचैस्तरामतिक्रामति एतदपि लौकिकव्यवहारापेक्षया उच्यते, लौकिका हि प्रथमतो दूरतरवर्त्तिनं सूर्यं उदयमानमतिनीचैस्तरां पश्यन्ति, ततः प्रत्यासन्नं प्रत्यासन्नतरं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [४५]

भवन्तमुच्चैरुच्चैस्तरां मध्याह्नादूर्ध्वं च क्रमेण दूरं दूरतरं भवन्तं नीचैर्नीचैस्तरामिति, तथा यथा लेश्याः सञ्चरन्ति, तद्यथा-अतिनीचैस्तरां वर्त्तमाने सूर्ये सर्वस्यापि प्रकाश्यस्य वस्तुन उपरि प्लवमाना वस्तुनो दूरतः परिपतन्ति, ततः प्रकाश्यस्य वस्तुनो महती महत्तरा छाया भवति, उच्चैरुच्चैस्तरां वर्द्धमाने सूर्ये प्रत्यासन्नाः प्रत्यासन्नतराः परिपतन्ति, ततः प्रकाश्यस्य वस्तुनो हीना हीनतरा छाया भवति, तत एवं तथा तथा वर्त्तमानं सूर्यस्योच्चत्वं लेश्यां च प्रतीत्य छायाया अन्यथा-भवन्त्या उद्देशो ज्ञातव्यः, इह प्रतिक्षणं तत्तत्पुद्गलोपचयेन तत्तत्पुद्गलहान्या वा यत् छायाया अन्यत्वं तत्केवल्येव जानाति छद्मस्थस्तूद्देशतस्तत उक्तं–छायोद्देश इति, 'उच्चत्तं च छायं च पडुच्च लेसोद्देस'इति, तथा तथा विवर्त्तमानं सूर्यस्योच्चत्वं छायां च हीनां हीनतरामधिकामधिकतरां च तथा तथा भवन्तीं प्रतीत्य–आश्रित्य लेश्यायाः–प्रकाश्यस्य वस्तुनः प्रत्यासन्नं प्रत्यासन्नतरं दूरं दूरतरं वा परिपतन्त्या उद्देशो ज्ञातव्यः, तथा 'लेसं च छायं च पडुच्च उच्चत्तोद्देसे' इति, लेश्यां–प्रकाश्यस्य वस्तुनो दूरं दूरतरमासन्नमासन्नतरं परिपतन्तीं छायां च हीनां हीनतरामधिकामधिकतरां च तथा तथा भवन्तीं प्रतीत्य सूर्यगतस्योच्चत्वस्य तथा तथा विवर्त्तमानस्योद्देशो ज्ञातव्यः, किमुक्तं भवति ?–त्रीण्यप्येतानि प्रतिक्षणमन्यथान्यथा विवर्त्तन्ते, तत एकस्य द्वयस्य वा तथा तथा विवर्त्तमानस्योद्देशत उपलम्भादितरस्याप्युद्देशतोऽव-गमः कर्त्तव्य इति । तदेवं लेश्यास्वरूपमुक्तं, सम्प्रति पौरुष्याश्छायायाः परिमाणविषये परतीर्थिकप्रतिपत्तिसम्भवं कथ-यति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तस्यां पौरुष्याश्छायायाः परिमाणचिन्तायां विषये खल्विमे द्वे प्रतिपत्ती प्रज्ञप्ते, तद्यथा–तत्र–तेषां द्वयानां परतीर्थिकानां मध्ये एके एवमाहुः–अस्ति स दिवसो यस्मिन् दिवसे सूर्य उद्गमनमुहूर्त्ते अस्तमयमुहूर्त्ते च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुष्पौरुषीं–चतुष्पुरुषप्रमाणां पुरुषग्रहणमुपलक्षणं तेन सर्वस्यापि प्रकाश्यस्य वस्तुनश्चतुर्गुणां छायां निर्वर्त्तयति, अस्ति स दिवसो यस्मिन् दिवसे उद्गमनमुहूर्त्ते अस्तमयमुहूर्त्ते च द्विपौरुषीं–द्विपुरुषप्रमाणां छायां सूर्यो निर्वर्त्तयति, अत्रापि पुरुषग्रहणमुपलक्षणं ततः सर्वस्यापि वस्तुनः प्रकाश्यस्य द्विगुणां छायां निर्वर्त्तयतीति द्रष्टव्यं, अत्रोपसंहारः–'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः–ता इति पूर्ववत्, अस्ति स दिवसो यस्मिन् दिवसे उद्गमनमुहूर्त्ते अस्तमयमुहूर्त्ते च सूर्यो द्विपौरुषीं–पुरुषद्वयप्रमाणां छायां निर्वर्त्तयति, पुरुषग्रहणस्योपलक्षणत्वात् सर्वस्यापि प्रकाश्यवस्तुनो द्विगुणां छायां निर्वर्त्तयतीत्यर्थः, तथा अस्ति स दिवसो यस्मिन् दिवसे सूर्योऽस्तमयमुहूर्त्ते उद्गमनमुहूर्त्ते च न काञ्चिदपि पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति । सम्प्रत्येते एव मते भावयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तेषां द्वयानां मध्ये ये ते वादिन एवमाहुः–अस्ति स दिवसो यस्मिन् दिवसे चतुष्पौरुषीं छायां सूर्यो निर्वर्त्तयति, अस्ति स दिवसो यस्मिन् दिवसे सूर्यो द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, एवं स्वमतविभावनार्थमाहुः–'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा–यस्मिन् काले णमिति वाक्यालङ्कारे सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्त उत्कर्षकोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्या द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तस्मिंश्च दिवसे सूर्यश्चतुष्पौरुषीं–चतुष्पुरुषप्रमाणां छायां निर्वर्त्तयति, तद्यथा–उद्गमनमुहूर्त्तेऽस्तमयमुहूर्त्ते च, स चोद्गमनमुहूर्त्तेऽस्तमयमुहूर्त्ते च चतुष्पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति लेश्यामभिवर्द्धयन् प्रकाश्यवस्तुन उपरि प्लवमानां दूरं दूरतरं परिक्षिपन् नो चैव–नैव निर्वेष्टयन्–प्रकाश्यवस्तुन उपरि प्लवमानां प्रत्यासन्नं प्रत्यासन्नतरं परिक्षिपन् तथा सति छायाया हीनहीनतरत्वसम्भवात्, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ९१ ॥

प्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यो द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, तस्मिंश्च दिवसे सूर्यो द्विपौरुषीं–पुरुषद्वयप्रमाणां छायां निर्वर्त्तयति, तद्यथा–उद्गमनमुहूर्त्ते अस्तमयमुहूर्त्ते च, स च तदा द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, लेश्यामभिवर्द्धयन् नो चैव निर्वेष्टयन्, अस्य वाक्यस्य भावार्थः प्राग्वद्भावनीयः। तथा तत्र–तेषां द्वयानां मध्ये ये वादिन एवमाहुः–अस्ति स दिवसो यस्मिन् दिवसे स सूर्यो द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति अस्ति स दिवसो यस्मिन् दिवसे सूर्यो न कांचिदपि पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति त एवं स्वमतविभावनार्थमाचक्षते–'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्त उत्कर्षकोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्या द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तस्मिंश्च दिवसे सूर्यो द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, तद्यथा–उद्गमनमुहूर्त्तेऽस्तमयमुहूर्त्ते च, स च तदानीं द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति लेश्यामभिवर्द्धयन् नो चैव निर्वेष्टयन्, 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति वाक्यालङ्कारे सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, जघन्यो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसस्तस्मिंश्च दिवसे उद्गमनमुहूर्त्तेऽस्तमयमुहूर्त्ते च सूर्यो न काञ्चिदपि पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, 'नो चेव ण'मित्यादि, न च–नैव तदानीं सूर्यो लेश्यामभिवर्द्धयन् भवति निर्वेष्टयन् वा, अभिवर्द्ध[य]ने अधिकाधिकतराया निर्वेष्ट[य]ने हीनहीनतरायाश्छायायाः सम्भवप्रसङ्गात्। तदेवं परतीर्थिकप्रतिपत्तिद्वयं श्रुत्वा भगवान् गौतमः स्वमतं पृच्छति–'ता कइकट्ठ'मित्यादि, यद्येवं परतीर्थिकानां प्रतिपत्ती 'ता' तर्हि भगवान् स्वमतेन त्वया कतिकाष्ठां–किंप्रमाणां सूर्यः पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयन् आख्यात इति वदेत् ?, तत्र भगवान् स्वमतेन देशविभागतः पौरुषीं छायां तथा तथा अनिय-

९ प्राभृते पौरुषीछाया सू ३१

॥ ९१ ॥

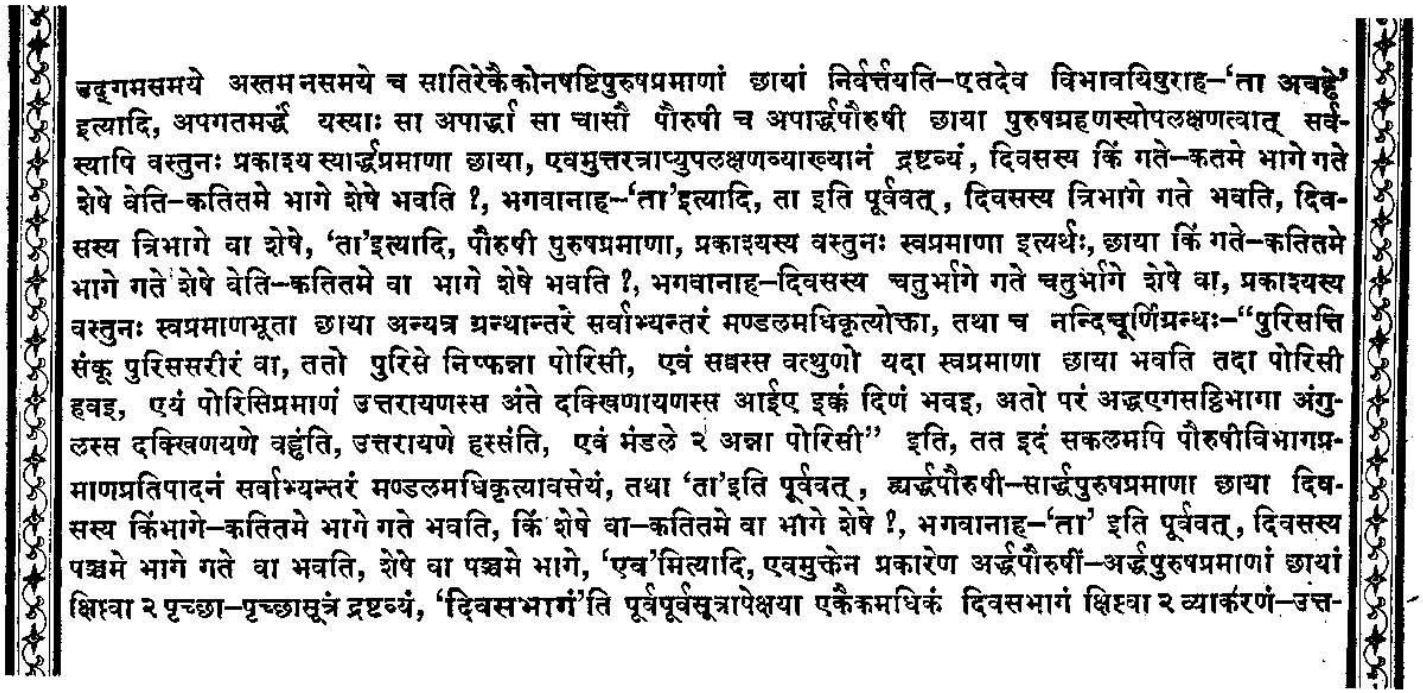
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तप्रमाणां वक्ष्यति, परतीर्थिकास्तु प्रतिनियतामेव प्रतिदिवसं देशविभागेनेच्छंति ततः प्रथमतस्तन्मतान्येवोपदर्शयति-'तत्थे'त्यादि, तत्र–तस्मिन् देशविभागेन प्रतिदिवसं प्रतिनियतायाः पौरुष्याश्छायाया विषये षण्णवतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र–तेषां षण्णवतेः परतीर्थिकानां मध्ये एके एवमाहुः, ता इति पूर्ववत्, अस्ति स देशो यस्मिन् देशे सूर्य आगतः सन् एकपौरुषीं–एकपुरुषप्रमाणां पुरुषग्रहणमुपलक्षणं सर्वस्यापि प्रकाश्यवस्तुनः स्वप्रमाणां छायां निर्वर्त्तयति, अत्रोपसंहारः–'एगे एवमाहंसु' १, 'एके पुनरेवमाहुः–अस्ति स देशो यस्मिन् देशे समागतः सूर्यो द्विपौरुषीं–द्विपुरुषप्रमाणां पुरुषग्रहणस्योपलक्षणत्वात् सर्वस्यापि वस्तुनः प्रकाश्यस्य द्विगुणामित्यर्थः, छायां निर्वर्त्तयति, अत्रोपसंहारः–'एगे एवमाहंसु' २, 'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण एतेनानन्तरोदितेनाभिलापेन–सूत्रपाठगमेन शेषप्रतिपत्तिगतमपि सूत्रं नेतव्यं तावद्यावच्चरमप्रतिपत्तिगतं सूत्रं, तदेव खण्डशो दर्शयति–'छन्नउ'इत्यादि, एतच्चैवं परिपूर्णं द्रष्टव्यं–'एगे पुण एवमाहंसु, अत्थि णं से देसे जंसि णं देसंसि सूरिए छन्नउइपोरसिं छायं निवत्तइ आहियत्तिवएज्जा एगे एवमाहंसु' मध्यमप्रतिपत्तिगतास्त्वालापकाः सुगमत्वात् स्वयं परिभावनीयाः, सम्प्रत्येतासामेव षण्णवतिप्रतिपत्तीनां भावनिकां चिकीर्षुराह–'तत्थे'त्यादि, तत्र–तेषां षण्णवतिपरतीर्थिकानां मध्ये ये ते वादिन एवमाहुः–अस्ति स देशो यस्मिन् देशे समागतः सूर्य एकपौरुषीं–प्रकाश्यवस्तुनः स्वप्रमाणां छायां निर्वर्त्तयति त एवं स्वमतविभावनार्थमाहुः–'ता सूरियस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, सूर्यस्य सर्वाधस्तनात् सूर्यप्रतिधेः–सूर्यप्रतिधानात् सूर्यनिवेशादित्यर्थः बहिर्निःसृता या लेश्यास्ताभिः 'ताडिज्जमाणाहिं'ति ताड्यमानाभिरस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद्यावति सूर्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऊर्ध्वमुच्चैस्त्वेन व्यवस्थित एतावताऽध्वना, सूत्रे चाध्वशब्दस्य स्त्रीत्वेन निर्देशः प्राकृतत्वात्, एकेन च छायानुमानप्रमाणेन प्रकाश्यस्य वस्तुनो यदुद्देशतः प्रमाणमनुमीयते तेन, इहाकाशदेशे सूर्यसमीपे प्रकाश्यस्य वस्तुनः प्रमाणं नैव साक्षात् परिग्रहीतुं शक्यते किन्तु देशतोऽनुमानेन ततश्छायानुमानप्रमाणेनेत्युक्तं, 'उमाए'त्ति अवमितः परिच्छिन्नो यो देशः–प्रदेशो यस्मिन् प्रदेशे आगतः सन् सूर्य एकपौरुषीं पुरुषग्रहणस्योपलक्षणत्वात् सर्वस्य प्रकाश्यस्य वस्तुनः प्रमाणभूतां छायां निर्वर्त्तयति, इयमत्र भावना—प्रथमत उदयमाने सूर्ये या लेश्या विनिर्गत्य प्रकाशमाश्रितास्ताभिः प्रकाश्यवस्तुदेशे ऊर्ध्वं क्रियमाणाभिः किञ्चित्पूर्वाभिमुखमवनताभिः प्रकाश्येन च वस्तुना यः सम्भाव्यते परिच्छिन्न आकाशप्रदेशः तत्रागतः सूर्यः प्रकाश्यवस्तुप्रमाणां छायां निर्वर्त्तयति, एवमुत्तरत्रापि भावना कार्या, 'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते वादिन एवमाहुः–अस्ति स देशो यस्मिन् देशे समागतः सूर्यो द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति त एवं स्वमतविस्फारणार्थमाहुः–'ता सूरियस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् सूर्यस्य सर्वाधस्तात् सूर्यप्रतिधेः–सूर्यनिवेशाद्बहिर्निःसृताभिर्लेश्याभिस्ताड्यमानाभिरस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयाद्भूमिभागादूर्ध्वमुच्चत्वेन व्यवस्थितः एतावद्भ्यां द्वाभ्यामद्धाभ्यां द्वाभ्यां छायानुमानप्रमाणाभ्यां प्रकाश्यवस्तुप्रमाणाभ्यामवमितः–परिच्छिन्नो यो देशस्तत्र समागतः सूर्यो द्विपौरुषीं–प्रकाश्यवस्तुनो द्विगुणां छायां निर्वर्त्तयति, एवमेकैकप्रतिपत्तावेकैकच्छायानुमानप्रमाणवृद्ध्या तावन्नेतव्यं यावत्षण्णवतितमा प्रतिपत्तिः, तदुगतानि च सूत्राणि स्वयं परिभावनीयानि, सुगमत्वात्, तदेवमुक्ताः परतीर्थिकप्रतिपत्तयः । सम्प्रति स्वमतमुपदर्शयति—'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरेवं–वक्ष्यमाणेन प्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'सातिरेगे'त्यादि, सूर्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



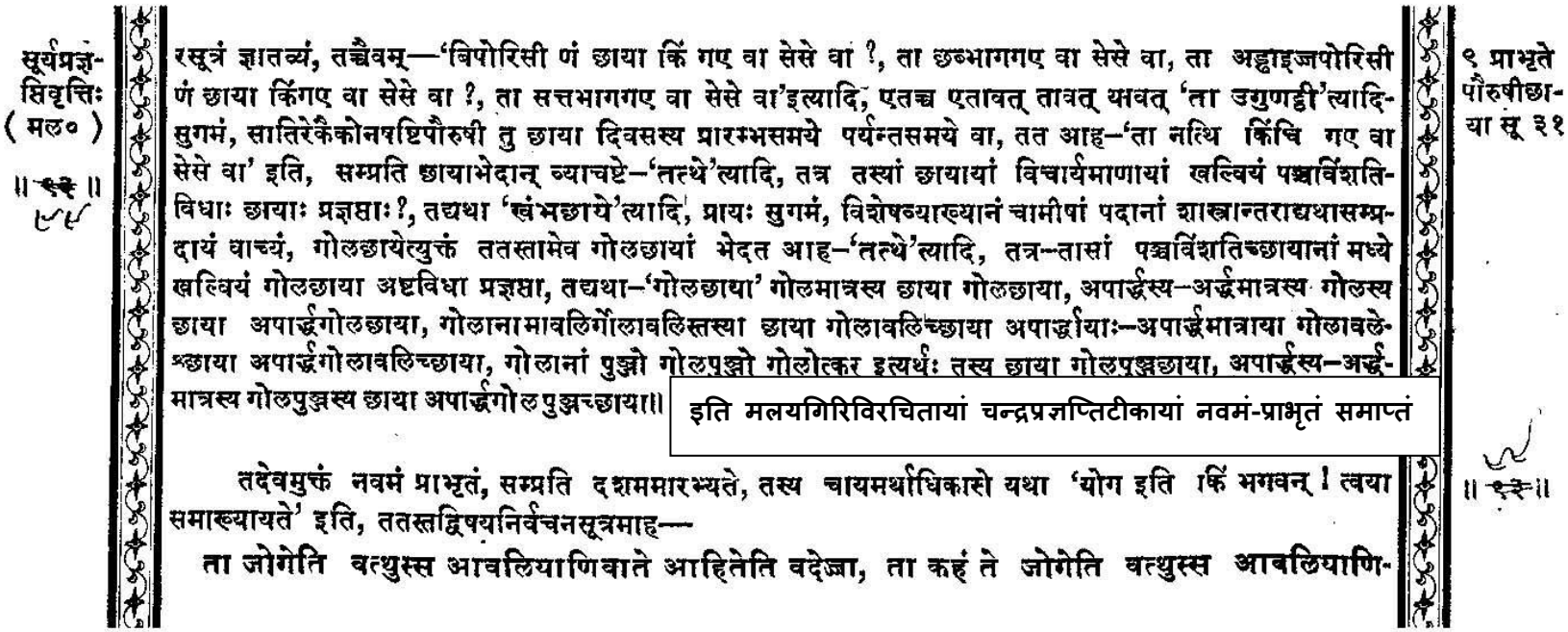
उद्गमसमये अस्तमनसमये च सातिरेकैकोनषष्टिपुरुषप्रमाणां छायां निर्वर्त्तयति–एतदेव विभावयिषुराह–'ता अवहे' इत्यादि, अपगतमर्द्धं यस्याः सा अपार्द्धा सा चासौ पौरुषी च अपार्द्धपौरुषी छाया पुरुषग्रहणस्योपलक्षणत्वात् सर्वस्यापि वस्तुनः प्रकाश्य स्यार्द्धप्रमाणा छाया, एवमुत्तरत्राप्युपलक्षणव्याख्यानं द्रष्टव्यं, दिवसस्य किं गते–कतमे भागे गते शेषे वेति–कतितमे भागे शेषे भवति ?, भगवानाह–'ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, दिवसस्य त्रिभागे गते भवति, दिवसस्य त्रिभागे वा शेषे, 'ता'इत्यादि, पौरुषी पुरुषप्रमाणा, प्रकाश्यस्य वस्तुनः स्वप्रमाणा इत्यर्थः, छाया किं गते–कतितमे भागे गते शेषे वेति–कतितमे वा भागे शेषे भवति ?, भगवानाह–दिवसस्य चतुर्भागे गते चतुर्भागे शेषे वा, प्रकाश्यस्य वस्तुनः स्वप्रमाणभूता छाया अन्यत्र ग्रन्थान्तरे सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमधिकृत्योक्ता, तथा च नन्दिचूर्णिग्रन्थः–"पुरिसत्ति संकू पुरिससरीरं वा, ततो पुरिसे निप्फन्ना पोरिसी, एवं सव्वस्स वत्थुणो यदा स्वप्रमाणा छाया भवति तदा पोरिसी हवइ, एयं पोरिसिप्रमाणं उत्तरायणस्स अंते दक्खिणायणस्स आईए इक्कं दिणं भवइ, अतो परं अद्धएगसट्ठिभागा अंगुलस्स दक्खिणयणे वड्ढंति, उत्तरायणे हस्संति, एवं मंडले २ अन्ना पोरिसी" इति, तत इदं सकलमपि पौरुषीविभागप्रमाणप्रतिपादनं सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमधिकृत्यावसेयं, तथा 'ता'इति पूर्ववत्, द्व्यर्द्धपौरुषी–सार्द्धपुरुषप्रमाणा छाया दिवसस्य किंभागे–कतितमे भागे गते भवति, किं शेषे वा–कतितमे वा भागे शेषे ?, भगवानाह–'ता' इति पूर्ववत्, दिवसस्य पञ्चमे भागे गते वा भवति, शेषे वा पञ्चमे भागे, 'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण अर्द्धपौरुषीं–अर्द्धपुरुषप्रमाणां छायां क्षिप्त्वा २ पृच्छा–पृच्छासूत्रं द्रष्टव्यं, 'दिवसभागं'ति पूर्वपूर्वसूत्रापेक्षया एकैकमधिकं दिवसभागं क्षिप्त्वा २ व्याकरणं–उत्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [४५]



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥ ९२ ॥

रसूत्रं ज्ञातव्यं, तच्चैवम्—'बिपोरिसी णं छाया किं गए वा सेसे वा ?, ता छब्भागगए वा सेसे वा, ता अट्ठाइज्जपोरिसी णं छाया किंगए वा सेसे वा ?, ता सत्तभागगए वा सेसे वा'इत्यादि, एतच्च एतावत् तावत् यावत् 'ता उगुणट्ठी'त्यादिसुगमं, सातिरेकैकोनषष्टिपौरुषी तु छाया दिवसस्य प्रारम्भसमये पर्यन्तसमये वा, तत आह—'ता नत्थि किंचि गए वा सेसे वा' इति, सम्प्रति छायाभेदान् व्याचष्टे—'तत्थे'त्यादि, तत्र तस्यां छायायां विचार्यमाणायां खल्वियं पञ्चविंशतिविधाः छायाः प्रज्ञप्ताः ?, तद्यथा 'खंभछाये'त्यादि, प्रायः सुगमं, विशेषव्याख्यानं चामीषां पदानां शास्त्रान्तराद्यथासम्प्रदायं वाच्यं, गोलछायेत्युक्तं ततस्तामेव गोलछायां भेदत आह—'तत्थे'त्यादि, तत्र—तासां पञ्चविंशतिच्छायानां मध्ये खल्वियं गोलछाया अष्टविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—'गोलछाया' गोलमात्रस्य छाया गोलछाया, अपार्द्धस्य—अर्द्धमात्रस्य गोलस्य छाया अपार्द्धगोलछाया, गोलानामावलिर्गोलावलिस्तस्या छाया गोलावलिच्छाया अपार्द्धायाः—अपार्द्धमात्राया गोलावलेश्छाया अपार्द्धगोलावलिच्छाया, गोलानां पुञ्जो गोलपुञ्जो गोलोत्कर इत्यर्थः तस्य छाया गोलपुञ्जछाया, अपार्द्धस्य—अर्द्धमात्रस्य गोलपुञ्जस्य छाया अपार्द्धगोलपुञ्जच्छाया॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां नवमं-प्राभृतं समाप्तं

९ प्राभृते पौरुषीछाया सू ३१

॥ ९२ ॥

तदेवमुक्तं नवमं प्राभृतं, सम्प्रति दशममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो यथा 'योग इति किं भगवन् ! त्वया समाख्यायते' इति, ततस्तद्विषयनिर्वचनसूत्रमाह—

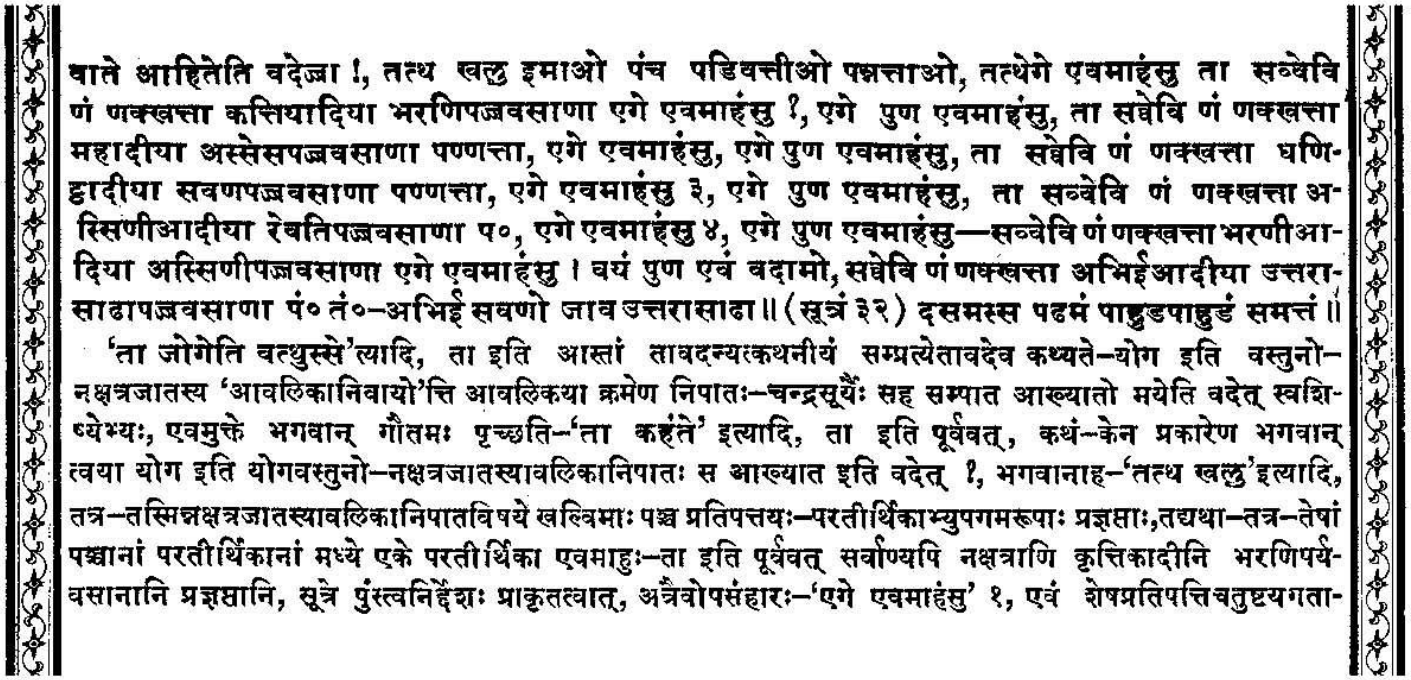
ता जोगेति वत्थुस्स आवलियाणिवाते आहितेति वदेज्जा, ता कहं ते जोगेति वत्थुस्स आवलियाणि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र नवमं प्राभृतं परिसमाप्तं

अथ दशमं प्राभृतं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [३२] दीप अनुक्रम [४६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



वाते आहितेति वदेज्जा !, तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पन्नत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता सव्वेवि णं णक्खत्ता कत्तियादिया भरणिपज्जवसाणा एगे एवमाहंसु ?, एगे पुण एवमाहंसु, ता सवेवि णं णक्खत्ता महादीया अस्सेसपज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु, एगे पुण एवमाहंसु, ता सवेवि णं णक्खत्ता धणिट्ठादीया सवणपज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु, ता सव्वेवि णं णक्खत्ता अस्सिणीआदीया रेवतिपज्जवसाणा प०, एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु—सव्वेवि णं णक्खत्ता भरणीआदिया अस्सिणीपज्जवसाणा एगे एवमाहंसु । वयं पुण एवं वदामो, सवेवि णं णक्खत्ता अभिईआदीया उत्तरासाढापज्जवसाणा पं० तं०–अभिई सवणो जाव उत्तरासाढा ॥ (सूत्रं ३२) दसमस्स पढमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता जोगेति वत्थुस्से'त्यादि, ता इति आस्तां तावदन्यत्कथनीयं सम्प्रत्येतावदेव कथ्यते–योग इति वस्तुनो–नक्षत्रजातस्य 'आवलिकानिवायो'त्ति आवलिकया क्रमेण निपातः–चन्द्रसूर्यैः सह सम्पात आख्यातो मयेति वदेत् स्वशिष्येभ्यः, एवमुक्ते भगवान् गौतमः पृच्छति–'ता कहंते' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं–केन प्रकारेण भगवान् त्वया योग इति योगवस्तुनो–नक्षत्रजातस्यावलिकानिपातः स आख्यात इति वदेत् ?, भगवानाह–'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र–तस्मिन्नक्षत्रजातस्यावलिकानिपातविषये खल्विमाः पञ्च प्रतिपत्तयः–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपाः प्रज्ञप्ताः,तद्यथा–तत्र–तेषां पञ्चानां परतीर्थिकानां मध्ये एके परतीर्थिका एवमाहुः–ता इति पूर्ववत् सर्वाण्यपि नक्षत्राणि कृत्तिकादीनि भरणिपर्यवसानानि प्रज्ञप्तानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, अत्रैवोपसंहारः–'एगे एवमाहंसु' १, एवं शेषप्रतिपत्तिचतुष्टयगता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १ आरभ्यते

न्यपि सूत्राणि परिभावनीयानि, तदेवं परप्रतिपत्तीरुपदर्श्य सम्प्रति स्वमतमुपदर्शयति–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरेवं–वक्ष्यमाणेन प्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'ता सव्वेऽवि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, सर्वाण्यपि नक्षत्राणि अभिजिदादीनि उत्तराषाढापर्यवसानानि प्रज्ञप्तानि, कस्मादिति चेत् ?, उच्यते, इह सर्वेषामपि सुषमसुषमादिरूपाणां कालविशेषाणामादि युगं 'एए उ सुसमसुसमादयो अद्धाविसेसा जुगादिणा सह पवत्तंति जुगंतेण सह समप्पंती'ति श्रीपादलिप्तसूरिवचनप्रामाण्यात्, युगस्य चादिः प्रवर्त्तते श्रावणमासि बहुलपक्षे प्रतिपदि तिथौ बालवकरणे अभिजिन्नक्षत्रे चन्द्रेण सह योगमुपागच्छति, तथा चोक्तं ज्योतिष्करण्डके–"सावणबहुलपडिवए बालवकरणे अभीइनक्खत्ते । सव्वत्थ पढमसमये जुगस्स आइं वियाणाहि ॥ १ ॥' अत्र सर्वत्र भरतैरवते महाविदेहे च, शेषं सुगमं, ततः इत्थं सर्वेषामपि कालविशेषाणामादौ चन्द्रयोगमधिकृत्याभिजिन्नक्षत्रस्य वर्त्तमानत्वादभिजिदादीनि नक्षत्राणि प्रज्ञप्तानि, तान्येव तद्यथेत्यादिनोपदर्शयति–'अभिई सवणे'त्यादि, ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति द्वितीयमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो 'नक्षत्रविषयं मुहूर्त्तपरिमाणं वक्तव्य'मिति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते मुहुत्ता य आहितेति वदेज्जा ?, ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ते जेणं

॥ ९४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २ आरभ्यते

णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेणं सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं पण्णरस-मुहुत्ते चंदेणं सद्धिं जोयं पजोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं पणतालीसे मुहुत्ते चंदेणं सद्धिं जोएंति, ता एएसि णं अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं कयरे नक्खत्ते जे णं नवमुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चंदेणं सद्धिं जोएन्ति, कयरे नक्खत्ता जे णं पण्णरसमुहुत्ते चंदेणं सद्धिं जोगं जोएंति, कतरे नक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोइंति, कतरे नक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोइंति ?, ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ते जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति से णं एगे अभीयी, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पण्णरस मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं छ, तं०–सतभिसया भरणी अद्दा अस्सेसा साति जेट्ठा, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्तं चंदेण सद्धिं जोयं जोयंति ते पण्णरस, तं०–सवणे धणिट्ठा पुव्वा भद्दवता रेवति अस्सिणी कत्तिया मग्गसिर पुस्सा महा पुव्वाफग्गुणी हत्थो चित्ता अणुराहा मूलो पुव्वआसाढा, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पणतालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति ते णंछ, तंजहा–उत्तराभद्दपद रोहिणी पुणवसू उत्तराफग्गुणी विसाहा उत्तरासाढा॥(सूत्रं३३)

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं भगवन् ! प्रतिनक्षत्रं मुहूर्त्ताग्रं–मुहूर्त्तपरिमाणमाख्यातमिति वदेत् ?, एवमुक्ते भगवानाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, 'ता'इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्येऽस्ति तन्नक्षत्रं यन्नव मुहूर्त्तान् एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिं सप्तषष्टिभागान् यावत् चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति–उपैति, तथा अस्ति–निपात-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वाद् व्यत्ययाद्वा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि पञ्चदश मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगमुपयान्ति, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगमश्नुवते, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि पञ्चचत्वारिंशतं मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्ति, एवं सामान्येन भगवतोक्ते विशेषनिर्द्धारणार्थं भगवान् पृच्छति गौतमः–'ता एएसि ण'–मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये कतरन्नक्षत्रं यन्नव मुहूर्त्तानेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिं सप्तषष्टिभागान् यावच्चन्द्रेण सह योगं युनक्ति, तथा कतराणि तानि नक्षत्राणि यानि पञ्चदश मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्ति, तथा कतराणि तानि नक्षत्राणि यानि त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगमश्नुवते, तथा कतराणि तानि नक्षत्राणि यानि पञ्चचत्वारिंशतं मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सार्द्धं योगमुपयन्ति, एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह–'ता एएसिण'मित्यादि, 'ता'इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये यन्नक्षत्रं नव मुहूर्त्तानेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिं सप्तषष्टिभागान् यावच्चन्द्रेण सह योगं युनक्ति तदेकमभिजिन्नक्षत्रमवसेयं, कथमिति चेत्?, उच्यते, इह अभिजिन्नक्षत्रं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्यैकविंशतिं भागान् चन्द्रेण सह योगमुपैति, ते च एकविंशतिरपि भागा मुहूर्त्तगतभागकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि षट् शतानि त्रिंशदधिकानि ६३०, तथा च एतावान् कालमधिकृत्य सीमाविस्तारोऽभिजिन्नक्षत्रस्यान्यत्राप्युक्तः "छ चेव सया तीसा भागाण अभिइ सीमविक्खंभो। दिट्ठो सबडहरगो सव्वेहिं अणंतनाणीहिं॥ १॥" तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः ९$\frac{२७}{६७}$, उक्तं च–"अभिइस्स चंदजोगो सत्तट्ठीखंडिओ अहोरत्तो। भोगा य एगवीसं ते पुण अहिया नव मुहुत्ता ॥ १ ॥" तथा 'तत्थे'त्यादि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्र–तेषामष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि पञ्चदश मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगमश्नुवते तानि षट्, तद्यथा–शतभिषक् इत्यादि, तथाहि–एतेषां षण्णामपि नक्षत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्य सत्कान् सार्द्धान् त्रयस्त्रिंशद्भागान् यावच्चन्द्रेण सह योगो भवति, ततो मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागकरणार्थं त्रयस्त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि नव शतानि नवत्यधिकानि ९९०, यदपि सार्द्धं तदपि त्रिंशता गुणयित्वा द्विकेन भज्यते लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्तस्य सप्तषष्टिभागास्ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातः पूर्वराशिः सहस्रं पञ्चोत्तरं १००५, तथा चैतेषां प्रत्येकं कालमधिकृत्य सीमाविस्तारो मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागानां पञ्चोत्तरं सहस्रं, उक्तं च–"सयभिसयाभरणीए अद्दा अस्सेस साइ जिट्ठाए। पंचोत्तरं सहस्सं भागाणं सीमविक्खंभो ॥ १ ॥" अस्य पञ्चोत्तरसहस्रस्य सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ताः, उक्तं च–"सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जिट्ठा य। एए छन्नक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजोगा ॥ २ ॥" तथा तत्र–तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्ति तानि पञ्चदश, तद्यथा–'सवणो' इत्यादि, तथाहि–एतेषां कालमधिकृत्य प्रत्येकं सीमाविष्कम्भो मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागानां दशोत्तरे द्वे सहस्रे २०१०, ततस्तयोः सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः त्रिंशन्मुहूर्त्ताः, तथा तत्र यानि नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशतं मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सार्द्धं योगं युञ्जन्ति तानि षट्, तद्यथा–'उत्तरभद्रपदा' इत्यादि, तेषां हि प्रत्येकं कालमधिकृत्य सीमाविष्कम्भो मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागानां त्रीणि सहस्राणि पञ्चदशोत्तराणि ३०१५, ततस्तेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चचत्वारिंशदेव मुहूर्त्ता लभ्यन्ते, उक्तं च–"तिन्नेव उत्तराइं पुणवसू रोहिणी विसाहा य। एए छन्नक्खत्ता पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३]

दीप अनुक्रम [४७]

अवसेसा नक्खत्ता पनरस ए हुंति तीसइमुहुत्ता । चंदंमि एस जोगो नक्खत्ताणं समक्खाओ ॥ २ ॥" तदेवमुक्तो नक्षत्राणां चन्द्रेण सह योगः, सम्प्रति सूर्येण सह तमभिधित्सुराह—

ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते बारस य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कतरे णक्खत्ते जं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, कतरे णक्खत्ते जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसमुहुत्ते सूरेणं सद्धिं जोयं जोएंति, कतरे णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते बारस मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति कतरे णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं तत्थ जे से णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति से णं अभीयी, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं छ, तं०–सतभिसया भरणी अद्दा अस्सेसा साती जेट्ठा, तत्थ जे ते तेरस अहोरत्ते दुवालस य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं पण्णरस, तंजहा–सवणो धणिट्ठा पुव्वाभद्दवता रेवती अस्सिणी कत्तिया मग्गसिरं पूसो महा पुव्वाफग्गुणी हत्थो चित्ता अणुराधा मूलो पुव्वाआसाढा, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्द्धिं जोयं जोएंति ते णं छ, तंजहा–उत्तराभद्दवता रोहिणी पुणव्वसू उत्तरफग्गुणी विसाहा उत्तरासाढा (सूत्रं ३४) दसमस्स बितीयमिति ॥

'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामनन्तरोदितानामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्येऽस्ति तन्नक्षत्रं यच्चतुरोऽहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् यावत् सूर्येण सार्द्धं योगमुपैति, तथा अस्तीति सन्ति तानि यानि षट् अहोरात्रान् एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्द्धं योगं युञ्जन्ति, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि त्रयोदश अहोरात्रान् द्वादश मुहूर्त्तान् यावत्सूर्येण सह योगमुपयन्ति, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि विंशतिमहोरात्रान् त्रीन् मुहूर्त्तान् यावत्सूर्येण समं योगं युञ्जन्ति, एवं भगवता सामान्येनोक्ते विशेषावगमनिमित्तं भूयोऽपि भगवान् गौतमः पृच्छति—'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवान् निर्वचनमाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यन्नक्षत्रं चतुरोऽहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्द्धं योगं युनक्ति तदेकमभिजिन्नक्षत्रमवसेयं, तथाहि—सूर्ययोगविषयं पूर्वाचार्यप्रदर्शितमिदं प्रकरणं–"जं रिक्खं जावइए वच्चइ चंदेण भागं सत्तट्ठी । तं पणभागे राइंदियस्स सूरेण तावइए ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—यत् ऋक्षं–नक्षत्रं यावतो रात्रिन्दिवस्य–अहोरात्रस्य सम्बन्धिनः सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण सह योगं व्रजति तन्नक्षत्रं रात्रिन्दिवस्य पञ्चभागान् तावतः सूर्येण समं व्रजति, तत्राभिजिदेकविंशतिं सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण समं वर्त्तते, तत एतावतः पञ्चभागानहोरात्रस्य सूर्येण समं वर्त्तमानमवसेयं, एकविंशतिश्च पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाश्चत्वारोऽहोरात्राः एकः पञ्चमो भागोऽवतिष्ठते, स मुहूर्त्तानयनाय त्रिंशता गुण्यते, जाता त्रिंशत्तस्याः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाः षण्मुहूर्त्ता इति, उक्तं च—"अभिई छच्च मुहुत्ते चत्तारि य केवले अहोरत्ते । सूरेण समं वच्चइ इत्तो सेसाण वुच्छामि ॥ १ ॥" [ग्रंथाग्रं० ३०००] तथा तत्र—तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि षट् अहोरात्रानेकविंशतिं च मुहूर्त्तान् यावत् सूर्येण समं योगमुपयन्ति तानि षट्, तद्यथा—'सयभिसया'इत्यादि, तथाहि—एतानि नक्षत्राणि प्रत्येकं चन्द्रेण समं सार्द्धान् त्रयस्त्रिंशत्सङ्ख्याकान् सप्तषष्टिभागानहोरात्रस्य व्रजन्ति अपार्द्धक्षेत्रत्वादेतेषां, तत एतावतः पञ्चभागानहोरात्रस्य सूर्येण समं व्रजन्तीति प्रत्येयं, प्रागुक्तकरणप्रामाण्यात्, त्रयस्त्रिंशतश्च पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाः षट् अहोरात्राः, पश्चादवतिष्ठन्ते सार्द्धास्त्रयः पञ्चभागाः, ते सवर्णनायां जाताः सप्त, मुहूर्त्तानयनाय त्रिंशता गुण्यन्ते, जाते द्वे शते दशोत्तरे २१०, एते च मुहूर्त्तार्द्धगते, ततः परिपूर्णमुहूर्त्तानयनाय दशभिर्भागो ह्रियते, लब्धा एकविंशतिर्मुहूर्त्ताः, उक्तं च—"सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जिट्ठा य । वच्चंति मुहुत्ते इक्कवीस छच्चेवऽहोरत्ते ॥ १ ॥" तथा तत्र—तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि त्रयोदश अहोरात्रान् द्वादश च मुहूर्त्तान् यावत् सूर्येण समं योगं युञ्जन्ति तानि पञ्चदश, तद्यथा—'सवणो'इत्यादि, तथाहि–अमूनि परिपूर्णान् सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण समं व्रजन्ति, ततः सूर्येण सह एतानि पञ्चभागानप्यहोरात्रस्य सप्तषष्टिसङ्ख्यान् गच्छन्ति, सप्तषष्टेश्च पञ्चभिर्भागे लब्धास्त्रयोदश अहोरात्राः, शेषौ च द्वौ भागौ तिष्ठतः, तौ त्रिंशता गुण्येते, जाताः षष्टिः, तस्याः पञ्चभिर्भागे हृते लब्धा द्वादश मुहूर्त्ताः, उक्तं च—"अवसेसा नक्खत्ता पन्नरसवि सूर सहगया जंति । बारस चेव मुहुत्ते तेरस य समे अहोरत्ते ॥ १ ॥" तथा तत्र—तेषामष्टाविंशतिर्नक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि विंशतिमहोरात्रान् त्रीन् मुहू-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४]

दीप अनुक्रम [४८]

र्त्तान् यावत्सूर्येण समं योगमश्नुवते तानि षट्, तद्यथा—'उत्तरभद्दवया'इत्यादि, एतानि हि षडपि नक्षत्राणि प्रत्येकं चन्द्रेण समं सप्तषष्टिभागानां शतमेकस्य च सप्तषष्टिभागस्यार्द्धं व्रजन्ति, तत एतावतः पञ्चभागान् अहोरात्रस्य सूर्येण समं व्रजनमवगन्तव्यं, शतस्य च पञ्चभिर्भागे हृते लब्धा विंशतिः अहोरात्राः, यदपि चैकस्य पञ्चभागस्यार्द्धमुद्धरति तदपि त्रिंशता गुण्यते, जाता त्रिंशत्, तस्या दशभिर्भागे हृते लब्धास्रयो मुहूर्त्ता इति ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- २ समाप्तं

उक्तं दशमस्य प्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति तृतीयमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'एवंभागानि नक्षत्राणि वक्तव्यानी'ति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते एवंभागा आहितातिवदेज्जा ?, ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ता एवंभागा समखेत्ता पं०, अत्थि णक्खत्ता पच्छंभागा समक्खेत्ता तीसमुहुत्ता पं०, अत्थि णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढखेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पं०, अत्थि णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पणतालीसं मुहुत्ता पं०, ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कतरे णक्खत्ता पुवंभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पं० कतरे० कतरे० कतरे नक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पणतालीसतिमुहुत्ता पं०, ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ता पुवंभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पं० ते णं छ, तंजहा—पुव्वापोट्ठवता कत्तिया मघा पुव्वाफग्गुणी मूलो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ३ आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [३५]

दीप अनुक्रम [४९]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१०४॥

पुव्वासाढा, तत्थ जे णक्खत्ता पच्छंभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पं०, ते णं दस, तंजहा–अभिई सवणो धणिट्ठा रेवती अस्सिणी मिगसिरं पूसो हत्थो चित्ता अणुराधा, तत्थ जे ते णक्खत्ता णत्तंभागा अद्धद्धखेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पं० ते णं छ, तंजहा—सयभिसया भरणी अद्दा अस्सेसा साती जेट्ठा, तत्थ जे ते णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पण्णतालीसं मुहुत्ता पं० ते णं छ, तंजहा–उत्तरापोट्ठवता रोहिणी पुणवसू उत्तराफग्गुणी विसाहा उत्तरासाढा (सूत्रं ३५) दसमस्स तइयं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण भगवन् ! त्वया एवंभागानि—वक्ष्यमाणप्रकारभागानि नक्षत्राणि आख्यातानि इति भगवान् वदेत् ?, एवमुक्ते भवगानाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, 'ता' इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्येऽस्तीति सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि पूर्वभागानि–दिवसस्य पूर्वभागश्चन्द्रयोगस्यादिमधिकृत्य विद्यते येषां तानि पूर्वभागानि 'समक्खेत्ता' इति समं–पूर्णमहोरात्रप्रमितं क्षेत्रं चन्द्रयोगमधिकृत्यास्ति येषां तानि समक्षेत्राणि अत एव त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि पश्चाद्भागानि–दिवसस्य पश्चात्तनो भागश्चन्द्रयोगस्यादिमधिकृत्य विद्यते येषां तानि पश्चाद्भागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि 'नक्तंभागानि' नक्तं–रात्रौ चन्द्रयोगस्यादिमधिकृत्य भागः–अवकाशो येषां तानि तथा, 'अपार्द्धक्षेत्राणी'ति अपगतमर्द्धं यस्य तदपार्द्धं, अर्द्धमात्रमित्यर्थः, अपार्द्धमर्द्धमात्रं क्षेत्रमहोरात्रप्रमितं येषां चन्द्रयोगमधिकृत्य तानि अपार्द्धक्षेत्राणि, अत एव पञ्चदशमुहूर्त्तानि, पञ्चदश चन्द्रयोगमधिकृत्य मुहूर्त्ता विद्यन्ते येषां तानि तथा प्रज्ञप्तानि, तथा

१० प्राभृते ३ प्राभृतप्राभृतं पश्चाद्भागादीनि सू३५

॥१०४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३५]

दीप अनुक्रम [४९]

सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि नक्षत्राणि 'उभयभागानि' उभयं–दिवसरात्री तस्य दिवसस्य रात्रेश्चेत्यर्थः, चन्द्रयोगस्यादिमधिकृत्य भागो येषां तानि तथा, तथाहि—द्व्यर्द्धक्षेत्राणि, द्वितीयमर्द्धं यस्य तद् द्व्यर्धं सार्द्धमित्यर्थः, द्व्यर्द्धं–सार्द्धमहोरात्रप्रमितं क्षेत्रं येषां तानि तथा, अत एव पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि, एवं भगवता सामान्येनोक्ते विशेषावबोधनार्थं भगवान् गौतमः पृच्छति–'ता एएसि ण'मित्यादि सुगमं, भगवान् प्रतिवचनमाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि पूर्वभागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि तानि षट्, तद्यथा—'पुव्वपुट्ठवया'इत्यादि, एतच्चानन्तरे एव प्राभृतप्राभृते योगस्यादौ चिन्त्यमाने भावयिष्यते, तथा तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि पश्चाद्भागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि तानि दश, तद्यथा—'अभिई' इत्यादि, तथा तत्र–तेषां अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि नक्तंभागानि अपार्द्धक्षेत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि तानि षट्,तद्यथा—'सयभिसया'इत्यादि,तथा तत्र–तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राण्युभयभागानि तानि द्व्यर्द्धक्षेत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि तानि षट्, तद्यथा—'उत्तरापुट्ठवया'इत्यादि, सर्वत्रापि च भावना अग्रेऽनन्तरमेव भावयिष्यते ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- ३ समाप्तं

–तदेवमुक्तं तृतीयं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति चतुर्थमारभ्यते–तस्य चायमर्थाधिकारो 'योगस्यादिर्वक्तव्य' इति, किञ्च–पूर्वमनन्तरप्राभृतप्राभृते नक्षत्राणां पूर्वभागगताद्युक्तं,तच्च योगस्यादिपरिज्ञानमन्तरेण नावगन्तुं शक्यते ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ३ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ४ आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३६]

दीप अनुक्रम [५०]

ता कहं ते जोगस्स आदी आहितेति वदेज्जा?, ता अभियीसवणा खलु दुवे णक्खत्ता पच्छाभागा समखित्ता सातिरेगऊतालीसतिमुहुत्ता तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, ततो पच्छा अवरं सातिरेयं दिवसं, एवं खलु अभिईसवणा दुवे णक्खत्ता एगराइं एगं च सातिरेगं दिवसं चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति, जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टंति जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं धणिट्ठाणं समप्पंति, ता धणिट्ठा खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसतिमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोगं जोएति, २ त्ता चंदेणं सद्धिं जोगं जोएत्ता ततो पच्छा राइं अवरं च दिवसं, एवं खलु धणिट्ठाणक्खत्ते एगं च राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टिति जोयं अणुपरियट्टित्ता सागं चंदं सतभिसयाणं समप्पेति ता सयभिसया खलु णक्खत्ते णत्तंभागे अवट्ठे खेत्ते पण्णरसमुहुत्ते पढमताए सागं चंदेण सद्धिं जोएति णो लभति अवरं दिवसं, एवं खलु संयभिसया णक्खत्ते एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टति, जोयं अणुपरियट्टित्ता तो चंदं पुव्वाणं पोट्ठवताणं समप्पेति, ता पुव्वापोट्ठवता खलु नक्खत्ते पुव्वंभागे समखेत्ते तीसतिमुहुत्ते तप्पढमताए पातो चंदेणं सद्धिं जोयं जोएति, ततो पच्छा अवररातं, एवं खलु पुव्वापोट्ठवता णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेणं सद्धिं जोयं जोएति २ त्ता जोयं अणुपरियट्टति २ पातो चंदं उत्तरापोट्ठवताणं समप्पेति, ता उत्तरपोट्ठवता खलु नक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढखेत्ते पणतालीसमुहुत्ते तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं जोयं जोएति अवरं च रातिं ततो पच्छा अवरं दिवसं,

॥१०५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु उत्तरापोट्ठवताणक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति अवरं च रातिं, ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु उत्तरापोट्ठवताणक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टति त्ता सागं चंदं रेवतीणं समप्पेति, ता रेवती खलु णक्खत्ते पच्छभागे समखेत्ते तीसतिमुहुत्ते तप्पढमताए सागं चंदेणं सद्धिं जोयं जोएति, ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु रेवतीणक्खत्ते एगं राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति २ त्ता जोयं अणुपरियट्टति २ त्ता सागं चंदं अस्सिणीणं समप्पेति, ता अस्सिणी खलु णक्खत्ते पच्छिमभागे समखेत्ते तीसतिमुहुत्ते तप्पढमताए सागं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु अस्सिणीणक्खत्ते एगं च राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति २ त्ता जोगं अणुपरियट्टइ २ त्ता सागं चंदं भरणीणं समप्पेति, ता भरणी खलु णक्खत्ते णस्संभागे अवट्ठखेत्ते पण्णरसमुहुत्ते तप्पढमताए सागं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, णो लभति अवरं दिवसं, एवं खलु भरणीणक्खत्ते एगं राइं चंदेणं सद्धिं जोयं जोएति २ त्ता जोयं अणुपरियट्टति २ त्ता पादो चंदं कत्तियाणं समप्पेति, ता कत्तिया खलु णक्खत्ते पुव्वंभागे समक्खित्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमताए सागं चंदेणं सद्धिं जोगं जोएति २ त्ता जोयं अणुपरियट्टइ २ हित्ता पादो चंदं रोहिणीणं समप्पेति, रोहिणी जहा उत्तरभद्दवता मगसिरं जहा धणिट्ठा अद्दा जहा सतभिसया पुणव्वसु जहा उत्तराभद्दवता पुस्सो जहा धणिट्ठा अस्सेसा जहा सतभिसया मघा जहा पुव्वाफग्गुणी पुव्वाफग्गुणी जहा पुव्वाभद्दवया उत्तराफग्गुणी जहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराभद्दवता हत्थो चित्ता य जहा धणिट्ठा साती जहा सतभिसया विसाहा जहा उत्तरभद्दवदा अणुराहा जहा धणिट्ठा सयभिसया मूला पुव्वासाढा य जहा पुव्वभद्दपदा उत्तरासाढा जहा उत्तराभद्दवता (सूत्रं ३६)॥ दसमस्स चउत्थं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं त्वया भगवन् योगस्यादिराख्यात इति वदेत्?, इह निश्चयनयमतेन चन्द्रयोगस्यादिः सर्वेषामपि नक्षत्राणामप्रतिनियतकालप्रमाणा, ततः सा करणवशादवगन्तव्या, तच्च करणं ज्योतिष्करण्डके समस्तीति तट्टीकां कुर्वता तत्रैव सप्रपञ्चं भावितं अतस्ततोऽवधार्यं, अत्र तु व्यवहारनयमधिकृत्य बाहुल्येन यस्य नक्षत्रस्य यदा चन्द्रयोगस्यादिर्भवति तमभिधित्सुराह—'अभीइ'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, द्वे अभिजिच्छ्रवणाख्ये नक्षत्रे पश्चाद्भागे समक्षेत्रे, इहाभिजिन्नक्षत्रं न समक्षेत्रं नाप्यपार्द्धक्षेत्रं नापि द्व्यर्द्धक्षेत्रं, केवलं श्रवणनक्षत्रेण सह सम्बद्धमुपात्तमित्यभेदोपचारात् तदपि समक्षेत्रमुपकल्प्य समक्षेत्रमित्युक्तं, सातिरेकैकोनचत्वारिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणे, तथाहि—सातिरेका नव मुहूर्त्ता अभिजितस्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः श्रवणस्येत्युभयमीलने यथोक्तं मुहूर्त्तपरिमाणं भवति, तत्प्रथमतया—चन्द्रयोगस्य प्रथमतया सायं—विकालवेलायां, इह दिवसस्य कतिमाच्चरमाद्भागादारभ्य यावद्रात्रेः कतिमो भागो यावन्नाद्यापि परिस्फुटनक्षत्रमण्डलालोकस्तावान् कालविशेषः सायमिति विवक्षितो द्रष्टव्यः, तस्मिन् सायंसमये चन्द्रेण सार्द्धं योगं युङ्क्तः, इहाभिजित्नक्षत्रं यद्यपि युगस्यादौ प्रातश्चन्द्रेण सह योगमुपैति तथापि श्रवणेन सह सम्बद्धमिह तद्विवक्षितं, श्रवणनक्षत्रं च मध्याह्नादूर्ध्वमपसरति दिवसे चन्द्रेण सह योगमुपादत्ते ततस्तत्साहचर्यात् तदपि सायंसमये चन्द्रेण

॥१०६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युज्यमानं विवक्षित्वा सामान्यतः सायं चन्द्रेण 'सद्धिं जोगं जुंजंति' इत्युक्तं, अथवा युगस्यादिमतिरिच्यान्यदा बाहुल्यमधिकृत्येदमुक्तं ततो न कश्चिद्दोषः, 'ततो पच्छा'इत्यादि, पश्चात्--तत ऊर्ध्वं अपरमन्यं सातिरेकं दिवसं यावत्, एतदेवोपसंहारव्याजेन व्यक्तीकरोति—'एवं खलु'इत्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण खल्विति निश्चये अभिजिच्छ्रवणे द्वे नक्षत्रे सायंसमयादारभ्य एकां रात्रिं एकं च सातिरेकं दिवसं चन्द्रेण सार्द्धं योगं युङ्क्तः, एतावन्तं च कालं योगं युक्त्वा तदनन्तरं योगमनुपरिवर्त्तयते, आत्मनश्चयावयत इत्यर्थः, योगं चानुपरिवर्त्य सायं दिवसस्य कतितमे पश्चाद्भागे चन्द्रं धनिष्ठायाः समर्पयतस्तदेवमभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाः सायंसमये चन्द्रेण सह प्रथमतो योगं युञ्जन्ति, तेनामूनि त्रीण्यपि पश्चाद्भागान्यवगन्तव्यानि, 'ता'इत्यादि, ततः समर्पणादनन्तरं धनिष्ठा खलु नक्षत्रं पश्चाद्भागं, सायंसमये तस्य प्रथमतश्चन्द्रेण सह युज्यमानत्वात्, समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायंसमये चन्द्रेण सह योगं युनक्ति, चन्द्रेण सह योगं युक्त्वा ततः सायंसमयादूर्ध्वं ततः पश्चाद्रात्रिमपरं च दिवसं यावद्योगं युनक्ति, एतदेवोपसंहारव्याजेन व्याचष्टे—'एवं खल्वि'त्यादि सुगमं, यावद्योगमनुपरिवर्त्य सायंसमये चन्द्रं शतभिषजः समर्प्पयति प्रायः परिस्फुटनक्षत्रमण्डलावलोके, तत इदं नक्षत्रं नक्तंभागं द्रष्टव्यं, तथा चाह--'ता'इत्यादि, ता इति ततः समर्प्पणादनन्तरं शतभिषक् नक्षत्रं खलु नक्तंभागमपार्द्धक्षेत्रं पञ्चदशमुहूर्त्तं तत्प्रथमतया चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, तच्च तथायुक्तं च सन्न लभते अपरं दिवसं, पञ्चदशमुहूर्त्तप्रमाणत्वात्, किन्तु रात्र्यन्तरेव योगमधिकृत्य परिसमाप्तिमुपैति, तथा चाह—'एवं खल्वि'त्यादि सुगमं, यावद्योगमनुपरिवर्त्य प्रातश्चन्द्रं पूर्वयोः प्रोष्ठपदयोः--भद्रपदयोः समर्पयति, इह पूर्वप्रोष्ठपदानक्षत्रस्य प्रातश्चन्द्रेण सह प्रथम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३६]

दीप अनुक्रम [५०]

तथा योगः प्रवृत्त इतीदं पूर्वभागमुच्यते, तथा चाह—'ता पुवे'त्यादि, ततः समर्प्पणादनन्तरं पूर्वप्रोष्ठपदानक्षत्रं खलु पूर्वभागं समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातश्चन्द्रेण सह योगं युनक्ति, तच्च तथायुक्तं सत् ततः प्रातः समयादूर्ध्वं तं सकलं दिवसमपरां च रात्रिं यावद्वर्त्तते, एतदेवोपसंहारव्याजेनाह—'एवं खल्वि'त्यादि सुगमं यावद्योगमनुपरिवर्त्त्य प्रातश्चन्द्रमुत्तरयोः प्रोष्ठपदयोः समर्प्पयति, इदं किलोत्तराभद्रपदाख्यं—नक्षत्रमुक्तप्रकारेण प्रातश्चन्द्रेण सह योगमधिगच्छति, केवलं प्रथमान् पञ्चदश मुहूर्त्तान् अधिकानपनीय समक्षेत्रं कल्पयित्वा यदा योगश्चिन्त्यते तदा नक्तमपि योगोऽस्तीत्युभयभागमवसेयं, तथा चाह—'ता'इत्यादि, ततः समर्प्पणादनन्तरं (उत्तरं) प्रोष्ठपदानक्षत्रं खलूभयभागं व्यर्द्धक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया—योगप्रथमतया प्रातश्चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, तच्च तथायुक्तं सत् तं सकलमपि दिवसमपरां च रात्रिं ततः पश्चादपरं दिवसं यावद् वर्त्तते, एतदेवोपसंहारव्याजेन व्यक्तीकरोति—'एवं खल्वि'त्यादि सुगमं, यावद्योगमनुपरिवर्त्त्य सायंसमये चन्द्रं रेवत्याः समर्प्पयति, तत्र रेवतीनक्षत्रं सायंसमये चन्द्रेण सह योगमधिगच्छति, ततस्तत्पश्चाद्भागमवसेयं, तथा चाह—'ता रेवई' इत्यादि, 'ता' इति ततः समर्प्पणादनन्तरं शेषं सुगमं, इदं च चन्द्रेण सह युक्तं सत्सायंसमयादूर्द्ध्वं सकलां रात्रिं अपरं च दिवसं यावच्चन्द्रेण सह युक्तमवतिष्ठते, समक्षेत्रत्वात्, एतदेवोपसंहारत आह—'एवं खल्वि'त्यादि सुगमं, यावद्योगमनुपरिवर्त्त्य सायंसमये चन्द्रमश्विन्याः समर्प्पयति, तत इदमप्यश्विनीनक्षत्रं सायंसमये चन्द्रेण सह युज्यमानत्वात् पश्चाद्भागमवसेयं, तथा चाह—'ता'इत्यादि सुगमं, नवरमिदमपि अश्विनीनक्षत्रं समक्षेत्रत्वात् सायंसमयादारभ्य तां सकलां रात्रिमपरं च दिवसं यावच्चन्द्रेण सह

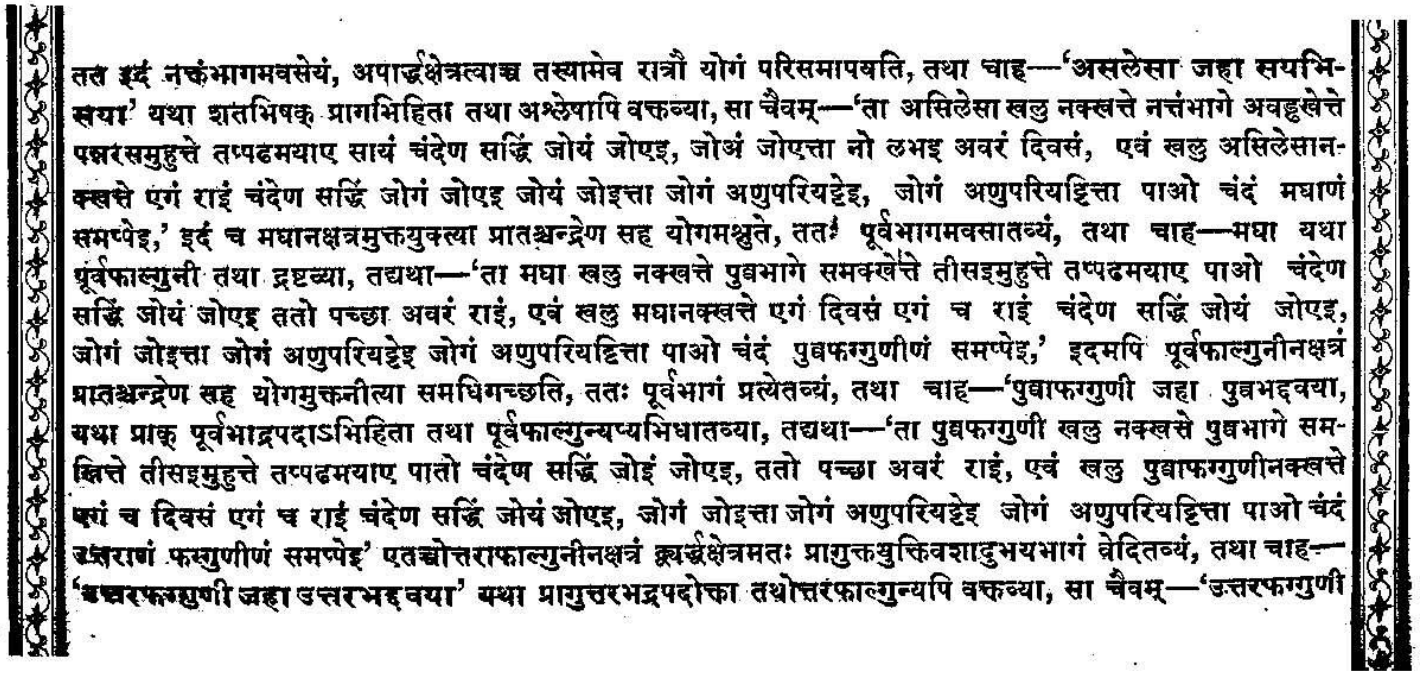
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युक्तमवतिष्ठते, एतदेवोपसंहारव्याजेनाह—'एवं खल्वि'त्यादि सुगमं, यावद्योगमनुपरिवर्त्य सायं प्रायः परिस्फुटनक्षत्रमण्डलालोकसमये चन्द्रं भरण्याः समर्प्पयति, इदं च भरणीनक्षत्रमुक्तयुक्त्या रात्रौ चन्द्रेण सह योगमुपैति, ततो नक्तंभागमवसेयं, तथा चाह–'ता भरणी'त्यादि, पाठसिद्धं, नवरमिदमपार्द्धक्षेत्रत्वाद्रात्रावेव योगं परिसमापयति, ततो न लभते चन्द्रेण सह युक्तमपरं दिवसं, एतदेवोपसंहारव्याजेन परिस्फुटयति–'एवं खल्वि'त्यादि सुगमं, यावद्योगमनुपरिवर्त्य प्रातश्चन्द्रं कृत्तिकानां समर्प्पयति, इदं च कृत्तिकानक्षत्रमुक्तयुक्त्या प्रातश्चन्द्रेण सह योगमुपैति, ततः पूर्वभागमवसेयं, एतदेवाह—'ता कत्तिये'त्यादि सुगमं, नवरमिदं समक्षेत्रत्वात् प्रातःसमयादूर्ध्वं सकलं दिवसं ततः पश्चाद्रात्रिं परिपूर्णां चन्द्रेण सह युक्तं वर्त्तते, एतदेवोपसंहारव्याजेन व्यक्तीकरोति—'एवं खलु'इत्यादि सुगमं, यावद्योगमनुपरिवर्त्य प्रातश्चन्द्रं रोहिण्याः समर्प्पयति, इदं च कृत्तिकानक्षत्रं व्यर्द्धक्षेत्रं, अतः प्रागुक्तयुक्तिवशादुभयभागं प्रतिपत्तव्यं, 'रोहिणी जहा उत्तरभद्दवय'त्ति रोहिणी यथा प्रागुत्तरभद्रपदा उक्ता तथा वक्तव्या, सा चैवम्—'ता रोहिणी खलु नक्खत्ते उभयभागे दिवड्ढखेत्ते पणयालीसमुहुत्ते तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ अवरं च राइं ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु रोहिणीनक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं मिगसिरस्स समप्पेइ' 'मिगसिरं जहा धणिट्ठ'त्ति मृगशिरो नक्षत्रं यथा प्राग् धनिष्ठोक्ता तथा वक्तव्या, तद्यथा—'ता मिगसिरे नक्खत्ते पच्छंभागे तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, सायं चंदेण सद्धिं जोगं जोएत्ता ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु मिगसिरे नक्खत्ते एगं राइं एगं च दिवसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्देण सद्धिं जोयं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं अद्दाए समप्पेइ' अत्र सायमिति प्रायः परिस्फुटनक्षत्रमण्डलालोकसमये अत एवैतन्नक्तंभागं, तथा चाह—'अद्दा जहा सयभिसया' आर्द्रा यथा प्राक् शतभिषगभिहिता तथाऽभिधातव्या, सा चैवम्—'ता अद्दा खलु नक्खत्ते नत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पन्नरसमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोअं जोएइ, नो लभेइ अवरं दिवसं, एवं खलु अद्दा एगं राइं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टेइ, जोयं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं पुणवसूणं समप्पेइ' इदं च पुनर्वसुनक्षत्रं व्यर्द्धक्षेत्रत्वात् प्रागुक्तयुक्तेः उभयभागमवसेयं, तथा चाह—'पुणवसू जहा उत्तरभद्दवया' पुनर्वसुनक्षत्रं यथा प्राक् उत्तरभद्रपदानक्षत्रमुक्तं तथा वक्तव्यं, तच्चैवम्—'ता पुणवसू खलु नक्खत्ते उभयभागे दिवड्ढखेत्ते पणयालीसमुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, अवरं च राइं ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु पुणवसू नक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोअं जोएइ, जोगं जोएत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं पुस्सस्स समप्पेइ' इदं च पुष्यनक्षत्रं सायंसमये दिवसावसानरूपे चन्द्रेण सह योगमधिगच्छति, ततः पश्चाद्गमवसेयं, तथा चाह—'पुस्सो जहा धणिट्ठा' पुष्यो यथा पूर्वं धनिष्ठाऽभिहिता तथाऽभिधातव्या, तद्यथा—'ता पुस्से खलु नक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ जोयं जोएत्ता ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु पुस्से नक्खत्ते एगं राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं असिलेसाए समप्पेइ,' इदं चाश्लेषानक्षत्रं सायंसमये–परिस्फुटनक्षत्रमण्डलालोकरूपे प्रायश्चन्द्रेण सह योगमुपैति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तत इदं नक्तंभागमवसेयं, अपार्द्धक्षेत्रत्वाच्च तस्यामेव रात्रौ योगं परिसमापयति, तथा चाह—'असलेसा जहा सयभिसया' यथा शतभिषक् प्रागभिहिता तथा अश्लेषापि वक्तव्या, सा चैवम्—'ता असिलेसा खलु नक्खत्ते नत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पन्नरसमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोअं जोएत्ता नो लभइ अवरं दिवसं, एवं खलु असिलेसानक्खत्ते एगं राइं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ जोयं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं मघाणं समप्पेइ,' इदं च मघानक्षत्रमुक्तयुक्त्या प्रातश्चन्द्रेण सह योगमश्नुते, ततः पूर्वभागमवसातव्यं, तथा चाह—मघा यथा पूर्वफाल्गुनी तथा द्रष्टव्या, तद्यथा—'ता मघा खलु नक्खत्ते पुव्वभागे समक्खेत्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ ततो पच्छा अवरं राइं, एवं खलु मघानक्खत्ते एगं दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं पुव्वफग्गुणीणं समप्पेइ,' इदमपि पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रं प्रातश्चन्द्रेण सह योगमुक्तनीत्या समधिगच्छति, ततः पूर्वभागं प्रत्येतव्यं, तथा चाह—'पुव्वाफग्गुणी जहा पुव्वभद्दवया, यथा प्राक् पूर्वभाद्रपदाऽभिहिता तथा पूर्वफाल्गुन्यप्यभिधातव्या, तद्यथा—'ता पुव्वफग्गुणी खलु नक्खत्ते पुव्वभागे समक्खित्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं जोइं जोएइ, ततो पच्छा अवरं राइं, एवं खलु पुव्वाफग्गुणीनक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं उत्तराणं फग्गुणीणं समप्पेइ' एतच्चोत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं क्रूरार्द्धक्षेत्रमतः प्रागुक्तयुक्तिवशादुभयभागं वेदितव्यं, तथा चाह—'उत्तरफग्गुणी जहा उत्तरभद्दवया' यथा प्रागुत्तरभद्रपदोक्ता तथोत्तरफाल्गुन्यपि वक्तव्या, सा चैवम्—'उत्तरफग्गुणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खलु णक्खत्ते पणयालीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ अवरं च राइं, ततो पच्छा अवरं च दिवसं, एवं खलु उत्तरफग्गुणीनक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोगं जोएत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं हत्थस्स समप्पेइ,' इदं च हस्तनक्षत्रं सायं–दिवसावसानसमये चन्द्रेण सह योगमधिरोहति, तेन पश्चाद्भागमवसेयं, चित्रानक्षत्रं तु किञ्चित्समधिके दिवसावसाने चन्द्रयोगमधिगच्छति, ततस्तदपि पश्चाद्भागं मन्तव्यं, एतदेवाह—'हत्थो चित्ता य जहा धणिट्ठा' यथा धनिष्ठा तथा हस्तं चित्रा च वक्तव्या, तद्यथा—'ता हत्थे खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खित्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु हत्थनक्खत्ते एगं राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं चित्ताए समप्पेइ'त्ति, 'ता चित्ता खलु नक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, ततो पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु चित्ता नक्खत्ते एगं राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोयं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं साईए समप्पेइ', स्वातिश्च सायं–प्रायः परिस्फुटदृश्यमाननक्षत्रमण्डलरूपे चन्द्रेण सह योगमुपैति, तत इयं नक्तंभागा प्रत्येया, तथा चाह—'साई जहा सयभिसया' यथा शतभिषक् तथा वक्तव्या, सा चैवम्—'साई खलु नक्खत्ते नत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पन्नरसमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, नो लभेइ अवरं दिवसं, एवं खलु साई नक्खत्ते एगं राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता पातो चंदं विसाहाणं समप्पेइ' इदं च विशाखानक्षत्रं द्व्यर्द्धक्षेत्रं, अतः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रागुक्तयुक्तिवशादुभयभागमवगन्तव्यं, तथा चाह–'विसाहा जहा उत्तरभद्दवया' यथा उत्तरभद्रपदा तथा विशाखा वक्तव्या, तद्यथा—'ता विसाहा खलु नक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढखित्ते पणयालीसमुहुत्ते तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ अवरं च राइं, तओ पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु विसाहानक्खत्ते दो दिवसं एगं च राइं चंदेणं सद्धिं जोगं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं अणुराहाए समप्पेइ', तत एवमनुराधानक्षत्रं सायंसमये–दिवसावसानरूपे चन्द्रेण सह योगमुपैतीति पश्चाद्भागमवसेयं, तथा चाह—'अणुराहा जहा धणिट्ठा' यथा धनिष्ठा तथाऽनुराधा वक्तव्या, सा चैवम्—'अणुराधा खलु नक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, तओ पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु अणुराहा नक्खत्ते एगं राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं जिट्ठाए समप्पेइ' ज्येष्ठायाश्च सायंसमये समर्प्पयति, प्रायः परिस्फुटं दृश्यमाने नक्षत्रमण्डले, तत इदं ज्येष्ठानक्षत्रं नक्तंभागमवसेयं, तथा चाह—'जिट्ठा जहा सयभिसया' यथा शतभिषक् तथा ज्येष्ठा वक्तव्या, तद्यथा—'ता जेट्ठा खलु नक्खत्ते नत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पन्नरसमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोअं जोएइ, नो लभइ अवरं दिवसं, एवं खलु जिट्ठानक्खत्ते एगं राइं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ, जोगं अणुपरियट्टित्ता पातो चंदं मूलस्स समप्पेइ' मूलनक्षत्रं चेदमुक्तयुक्त्या प्रातश्चन्द्रेण सह योगमुपागच्छत् पूर्वभागमवसेयं, तथा चाह—'मूलो जहा पुव्वभद्दवया' यथा पूर्वभद्रपदा तथा मूलनक्षत्रमभिधातव्यं, तच्चैवम्—'ता मूले खलु नक्खत्ते पुव्वंभागे समक्खित्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोगं जोएइ, तओ पच्छा अवरं च राइं, एवं खलु मूलनक्खत्तं एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता पातो चंदं पुव्वासाढाणं समप्पेइ' इदमपि पूर्वाषाढानक्षत्रं प्रातश्चन्द्रेण सह योगमुक्तयुक्त्या समुपैति इति पूर्वभागं विज्ञेयं, एतदेवाह–'पुव्वासाढा जहा पुव्वभद्दवया,' यथा पूर्वभद्रपदा तथा पूर्वाषाढा वक्तव्या, सा चैवम्—'ता पुव्वासाढा खलु नक्खत्ते पुव्वभागे समक्खेत्ते तीसइमुहुत्ते तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, अवरं च राइं, एवं खलु पुव्वासाढानक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, जोगं जोइत्ता जोगं अणुपरियट्टेइ जोगं अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं उत्तरासाढाणं समप्पेइ', उत्तराषाढानक्षत्रं च अर्द्धक्षेत्रत्वादुभयभागमवसेयं, तथा चाह—'उत्तरासाढा जहा उत्तरभद्दवया' यथा उत्तरभद्रपदा तथा उत्तराषाढा वक्तव्या, तद्यथा—'उत्तरासाढा खलु नक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढखेत्ते पणयालीसमुहुत्ते तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ अवरं च राइं तओ पच्छा अवरं दिवसं, एवं खलु उत्तरासाढानक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, जोगं जोइत्ता सायं चंदमभिईसवणाणं समप्पेइ,' तदेवं बाहुल्यमधिकृत्योक्तप्रकारेण यथोक्तेषु कालेषु नक्षत्राणि चन्द्रेण सह योगमुपयन्ति, ततः कानिचित्पूर्वभागानि कानिचित्पश्चाद्भागानि कानिचिन्नक्तंभागानि कानिचिदुभयभागान्युक्तानीति ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- ४ समाप्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य चतुर्थं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति पञ्चममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो–यथा 'कुलानि वक्तव्यानीति,' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते कुला आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमे बारस कुला बारस उवकुला चत्तारि कुलोवकुला, बारस कुला, तंजहा–धणिट्ठाकुलं उत्तराभद्दवताकुलं अस्सिणीकुलं कत्तियाकुलं संठाणाकुलं पुस्साकुलं महाकुलं उत्तराफग्गुणीकुलं चित्ताकुलं विसाहाकुलं मूलाकुलं उत्तरासाढाकुलं,बारस उवकुला, तंजहा–सवणो उवकुलं पुव्वपट्ठवताउवकुलं रेवतीउवकुलं भरणीउवकुलं, पुणव्वसुउवकुलं अस्सेसाउवकुलं पुव्वाफग्गुणीउवकुलं हत्थाउवकुलं सातीउवकुलं जेट्ठाउवकुलं पुव्वासाढाउवकुलं, चत्तारि कुलोवकुला तं०–अभीयीकुलोवकुलं सतभिसयाकुलोवकुलं अद्धाकुलोवकुलं अणुराधाकुलोवकुलं (सूत्रं ३७)॥ दसमस्स पाहुडस्स पंचमं पाहुडं पाहुडं समत्तं॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण भगवन्! त्वया कुलान्याख्यातानीति वदेत्, एवमुक्ते भगवानाह–'तत्थे'त्यादि, इह न केवलं भगवता कुलान्येवाख्यातानि किंतूपकुलानि कुलोपकुलानि च, ततो निर्द्धारणार्थप्रतिपत्त्यर्थं तत्रेति, भगवान् ब्रूते–'तत्र' तेषां कुलादीनां मध्ये खल्विमानि द्वादश कुलानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, इमे इति च प्रतिपदमभिसम्बध्यते, इमानि वक्ष्यमाणस्वरूपाणि द्वादश उपकुलानि, इमानि–वक्ष्यमाणस्वरूपाणि चत्वारि कुलोपकुलानि प्रज्ञप्तानि, अथ किं कुलादीनां लक्षणम्?, उच्यते, इह यैर्नक्षत्रैः प्रायः सदा मासानां परिसमाप्तय उपजायन्ते माससदृशनामानि च तानि नक्षत्राणि कुलानीति प्रसिद्धानि, तद्यथा—श्राविष्ठो मासः प्रायः श्रविष्ठया धनिष्ठापरपर्यायया परिसमा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ४ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ५ आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३७]

दीप अनुक्रम [५१]

सिमुपैति १ भाद्रपद उत्तरभद्रपदया २ अश्वयुक् अश्विन्या इति ३, धनिष्ठादीनि प्रायो मासपरिसमापकानि मासस्दृशनामानि कुलानि, यानि च कुलानामुपकुलानां चाधस्तनानि तानि कुलोपकुलानि अभिजिदादीनि चत्वारि नक्षत्राणि, उक्तं च–"मासाणं परिणामा हुंति कुला उवकुला उ हिट्ठिमगा । हुंति पुण कुलोवकुला अभिईसयभद्दअणुराहा ॥ १ ॥" अत्र 'मासाणं परिणामा' इति प्रायो मासानां परिसमापकानि क्वचित् 'मासाण सरिसनामा' इति पाठः, तत्र मासानां सदृशनामानीति व्याख्येयं, 'सय'त्ति शतभिषक्, शेषं सुगमं, सम्प्रति यानि द्वादश कुलानि यानि च द्वादश उपकुलानि यानि च चत्वारि कुलोपकुलानि तानि क्रमेण कथयति–'बारस कुला तंजहा'इत्यादि सुगमं ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- ५ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य पञ्चमं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति षष्ठमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः–'यथा पौर्णमास्योऽमावास्याश्च वक्तव्या' इति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता-कहं ते पुण्णिमासिणी आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ बारस पुण्णिमासिणीओ बारस अमावासाओ पण्णत्ताओ, तंजहा–सावित्ती पोट्ठवती आसोया कत्तिया मग्गसिरी पोसी माही फग्गुणी चेती विसाही जेट्ठामूली आसाढी, ता सावित्तिण्णं पुण्णमासिं कति णक्खत्ता जोएति ?, ता तिण्णि णक्खत्ता जोइंति, तं०–अभिई सवणो धणिट्ठा, ता पुट्ठवती, पुट्ठवतीण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता

॥१११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ५ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ६ आरभ्यते

जोएंति ?, ता तिन्नि नक्खत्ता जोयंति, तं०–सतिभिसया पुव्वासाढवती उत्तरापुट्ठवता, ता आसोदिण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं०–रेवती य अस्सिणी य, कत्तियण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति तं०–भरणी कत्तिया य, ता मागसिरीपुन्निमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं०–रोहिणी मग्गसिरो य, ता पोसिण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं०–अद्दा पुणव्वसू पुस्सो, ता माहिण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि नक्खत्ता जोयंति, तं०–अस्सेसा महा य, ता फग्गुणीण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता दुन्नि नक्खत्ता जोएंति, तं०–पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी य, ता चित्तिण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि० तं०–हत्थो चित्ता य, ता विसाहिण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, दोण्णि णक्खत्ता जोएंति तं०–साती विसाहा य, ता जेट्ठामूलिण्णं पुण्णिमासिण्णं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता तिन्नि णक्खत्ता जोयंति, तं०–अणुराहा जेट्ठा मूलो, आसाढिण्णं पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता दो णक्खत्ता जोएंति, तं०–पुव्वासाढा उत्तरासाढा (सूत्रं ३८) ॥

'ता कहं ते' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ? केन प्रकारेण केन नक्षत्रेण परिसमाप्यमाना इत्यर्थः, पौर्णमास्य आख्याताः, अत्र पौर्णमासीग्रहणममावास्योपलक्षणं, तेन कथममावास्या अप्याख्याता इति वदेत्, एवमुक्ते भगवानाह— 'तत्थे'त्यादि, तत्र–तासां पौर्णमासीनाममावास्यानां च मध्ये जातिभेदमधिकृत्य खल्विमा द्वादश पौर्णमास्यो द्वादश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चेमा अमावास्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–'श्राविष्ठी प्रौष्ठपदी' इत्यादि, तत्र श्रविष्ठा–धनिष्ठा तस्यां भवा श्राविष्ठी–श्रावणमासभाविनी प्रोष्ठपदा–उत्तरभाद्रपदा तस्यां भवा प्रौष्ठपदी– भाद्रपदमासभाविनी, अश्वयुजि भवा आश्वयुजी अश्वयुग्मासभाविनी, एवं मासक्रमेण तत्तन्नामानुरूपनक्षत्रयोगात् शेषा अपि वक्तव्याः। सम्प्रति यैर्नक्षत्रैरेकैका पूर्णमासी परिसमाप्यते तानि पिपृच्छिषुराह–'ता सावट्ठिन्न'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, श्राविष्ठीं पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जंति ?–कति नक्षत्राणि चन्द्रेण सह संयुज्य परिसमापयन्ति, भगवानाह–'ता तिन्नि' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति–त्रीणि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह यथायोगं संयुज्य परिसमापयन्ति, तद्यथा–अभिजित् श्रवणो धनिष्ठा च, इह श्रवणधनिष्ठारूपे द्वे एव नक्षत्रे श्राविष्ठीं पौर्णमासीं परिसमापयतः, केवलमभिजिन्नक्षत्रं श्रवणेन सह सम्बद्धमिति तदपि परिसमापयतीत्युक्तं, कथमेतदवसीयते इति चेत् , उच्यते, इह प्रवचनप्रसिद्धममावास्यापौर्णमासीविषयंचन्द्रयोगपरिज्ञानार्थमिदं करणम्—

नाउमिह अमावासं जइ इच्छसि कम्मि होइ रिक्खम्मि। अवहारं ठाविज्जा तत्तियरूवेहि संगुणए ॥ १ ॥ छावट्ठी य मुहुत्ता बिसट्ठिभागा य पंच पडिपुन्ना। बासट्ठिभागसत्तट्ठिगो य इक्को हवइ भागो ॥ २ ॥ एयमवहाररासिं इच्छअमावासंगुणं कुज्जा। नक्खत्ताणं एत्तो सोहणगविहिं निसामेह ॥ ३ ॥ बावीसं च मुहुत्ता छायालीसं बिसट्ठिभागा य। एयं पुणब्बसुस्स य सोहेयव्वं हवइ वुच्छं ॥ ४ ॥ बावत्तरं सयं फग्गुणीणं बाणउइय बे विसाहासु। चत्तारि अ बायाला सोज्झा अह उत्तरासाढा ॥ ५ ॥ एयं पुणब्बसुस्स य बिसट्ठिभागसहियं तु सोहणगं। इत्तो अभिईआइं बिइयं वुच्छामि सोहणगं ॥ ६ ॥ अभिइस्स नव मुहुत्ता बिसट्ठिभागा य हुंति चउवीसं। छावट्ठी असमत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

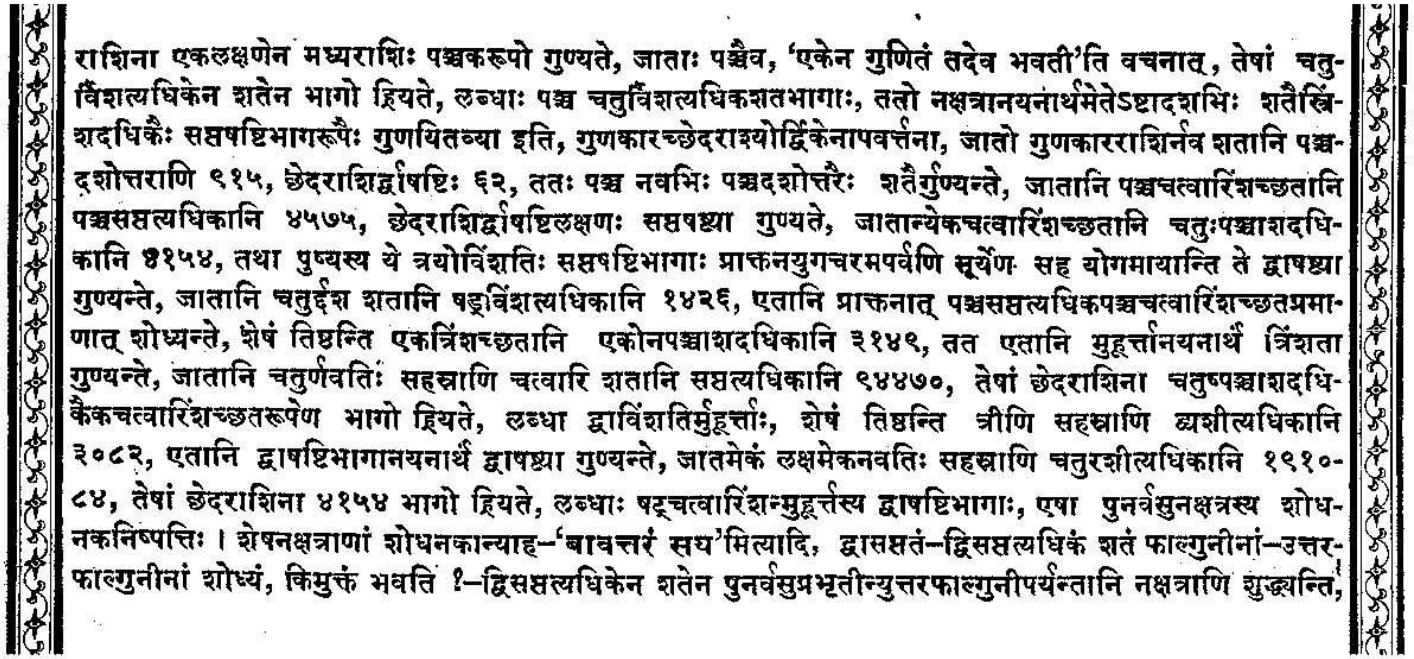
भागा सत्तट्ठिछेअकया ॥ ७ ॥ उगुणइं पोइवयातिसु चेव नवोत्तरं च रोहिणिया । तिसु नवनवएसु भवे पुणवसू फग्गुणीओ य ॥ ८ ॥ पंचेव उगुणपन्नं सयाइ उगुणुत्तराइं छच्चेव । सोज्झाणि विसाहासुं मूले सत्तेव चोआला ॥ ९ ॥ अट्ठसय उगुणवीसा सोहणगं उत्तराण साढाणं । चउवीसं खलु भागा छावट्ठी चुण्णिआओ य ॥ १० ॥ एआइ सोहइत्ता जं सेसं तं हवेइ नक्खत्तं । इत्थं करेइ उडुवइ सूरेण समं अमावासं ॥ ११ ॥ इच्छापुन्निमगुणिओ अवहारो सोत्थ होइ कायव्वो । तं चेव य सोहणगं अभिइं अइं तु कायव्वं ॥ १२ ॥ सुद्धंमि अ सोहणगे जं सेसं तं भविज्ज नक्खत्तं । तत्थ य करेइ उडुवइ पडिपुन्नो पुन्निमं विउलं ॥ १३ ॥

एतासां गाथानां क्रमेण व्याख्या—याममावास्यामिह–युगे ज्ञातुमिच्छसि, यथा कस्मिन्नक्षत्रे वर्त्तमाना परिसमाप्ता भवतीति तावद्भूपैर्यावत्योऽमावास्या अतिक्रान्तास्तावत्याः सङ्ख्याया इत्यर्थः, वक्ष्यमाणस्वरूपं अवधार्यते–प्रथमतया स्थाप्यते इत्यवधार्यो–ध्रुवराशिस्तमवधार्यराशिं पट्टिकादौ स्थापयित्वा चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन सङ्गुणयेत्, अथ किंप्रमाणोऽसाववधार्यो राशिरिति तत्प्रमाणनिरूपणार्थमाह–'छावट्ठी' गाहा, षट्पष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च परिपूर्णा द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टितमो भागः, एतावत्प्रमाणोऽवधार्यराशिः, कथमेतावत्प्रमाणस्यास्योत्पत्तिरिति चेत् ?, उच्यते, इह यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यां पर्वभ्यां किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१२४ । ५ । २ । अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यो राशिः पञ्चलक्षणो गुण्यते, जाता दश, तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागहरणं, तत्र छेद्यच्छेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना क्रियते, जात उपरितनश्छेद्यो राशिः पञ्चकरूपोऽऽधस्तनो द्वाषष्टिरूपः, लब्धाः पञ्च द्वाषष्टिभागाः, एतेन नक्षत्राणि कर्त्तव्यानीति नक्षत्रकरणार्थमष्टा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभागरूपैर्गुण्यन्ते, जातान्येकनवतिः शतानि पञ्चाशदधिकानि ९१५०, छेदराशिरपि द्वाषष्टिप्रमाणः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, उपरितनराशिर्मुहूर्त्तानयनाय भूयस्त्रिंशता गुण्यते, जाते द्वे लक्षे चतुःसप्ततिः सहस्राणि पञ्च शतानि २७४५००, तेषां चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छतैर्भागहरणं, लब्धाः षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः ६६, शेषा अंशास्तिष्ठन्ति त्रीणि शतानि षट्त्रिंशदधिकानि ३३६, ततो द्वाषष्टिभागानयनार्थं तानि द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि विंशतिः सहस्राणि अष्टौ शतानि द्वात्रिंशदधिकानि २०८३२, तेषामनन्तरोक्तेन छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च द्वाषष्टिभागाः ५, शेषास्तिष्ठन्ति द्वाषष्टिः, ततस्तस्या द्वाषष्ट्या अपवर्त्तना क्रियते, जात एकः, छेदराशेरपि द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तनार्थं लब्धाः सप्तषष्टिः, तत आगतं षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभाग इति, तदेवमुक्तमवधार्यराशिप्रमाणं, सम्प्रति शेषविधिमाह—'एयमवहारे'त्यादि, एतं–अनन्तरोदितस्वरूपमवधार्यराशिमिच्छाऽमावास्यासंगुणं–याममावास्यां ज्ञातुमिच्छसि तत्सङ्ख्यया गुणितं कुर्यात्, अत ऊर्ध्वं च नक्षत्राणि शोधनीयानि, ततोऽत ऊर्ध्वं नक्षत्राणां शोधनकविधिं–शोधनकप्रकारं वक्ष्यमाणं निशमयत–आकर्णयत । तत्र प्रथमतः पुनर्वसुशोधनकमाह—'बावीसं'चेत्यादिगाथा, द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः एतद्–एतावत्प्रमाणं पुनर्वसुनक्षत्रस्य परिपूर्णं भवति शोद्धव्यं, कथमेवं प्रमाणस्य शोधनकस्योत्पत्तिरिति चेत् ?, उच्यते, इह यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तदैकं पर्वातिक्रम्य कतिपयास्तेनैकेन पर्वणा लभ्यन्ते ?, राशित्रयस्थापना–१२४ । ५ । १ । अत्रान्त्येन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

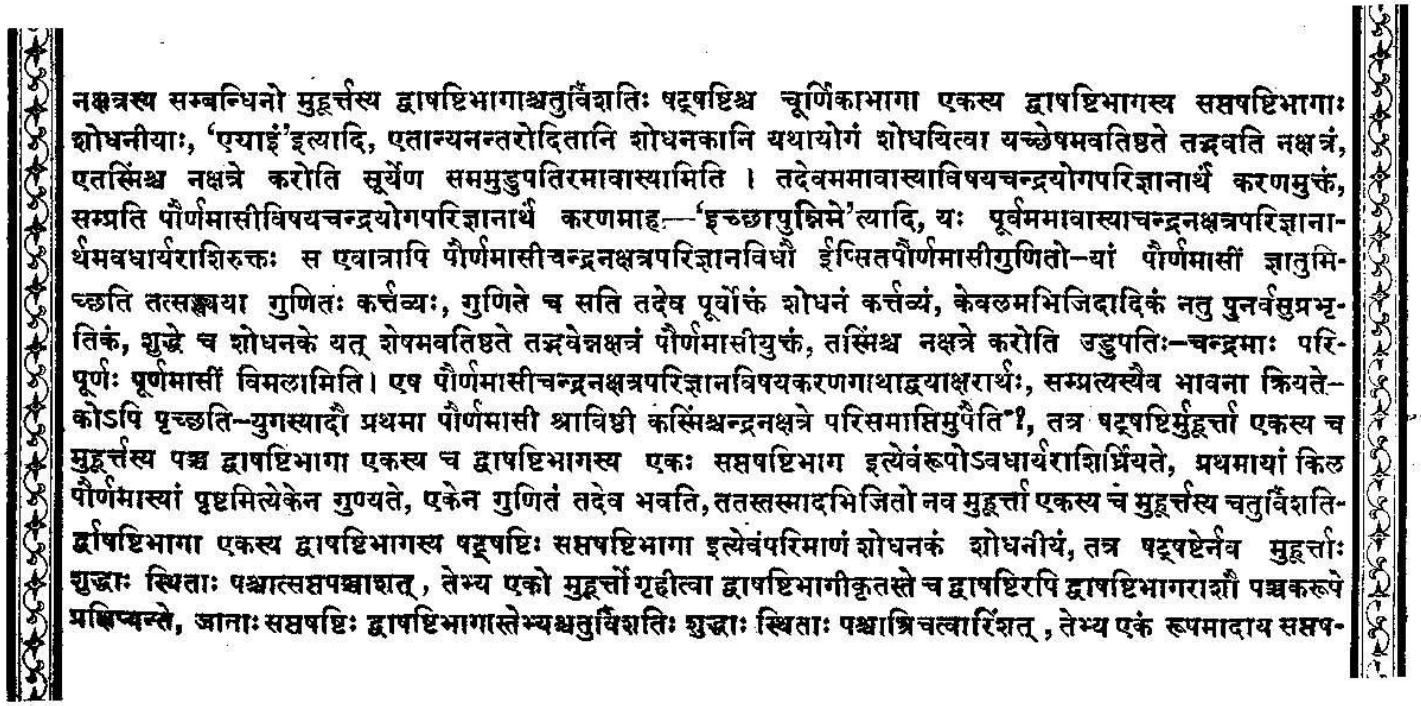


राशिना एकलक्षणेन मध्यराशिः पञ्चकरूपो गुण्यते, जाताः पञ्चैव, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति वचनात्, तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः, ततो नक्षत्रानयनार्थमेतेऽष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभागरूपैः गुणयितव्या इति, गुणकारच्छेदराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना, जातो गुणकारराशिर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, छेदराशिर्द्वाषष्टिः ६२, ततः पञ्च नवभिः पञ्चदशोत्तरैः शतैर्गुण्यन्ते, जातानि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि ४५७५, छेदराशिर्द्वाषष्टिलक्षणः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि ४१५४, तथा पुष्यस्य ये त्रयोविंशतिः सप्तषष्टिभागाः प्राक्तनयुगचरमपर्वणि सूर्येण सह योगमायान्ति ते द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि चतुर्दश शतानि षड्विंशत्यधिकानि १४२६, एतानि प्राक्तनात् पञ्चसप्तत्यधिकपञ्चचत्वारिंशच्छतप्रमाणात् शोध्यन्ते, शेषं तिष्ठन्ति एकत्रिंशच्छतानि एकोनपञ्चाशदधिकानि ३१४९, तत एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चतुर्णवतिः सहस्राणि चत्वारि शतानि सप्तत्यधिकानि ९४४७०, तेषां छेदराशिना चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छतरूपेण भागो ह्रियते, लब्धा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः, शेषं तिष्ठन्ति त्रीणि सहस्राणि व्यशीत्यधिकानि ३०८२, एतानि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातमेकं लक्षमेकनवतिः सहस्राणि चतुरशीत्यधिकानि १९१०८४, तेषां छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते, लब्धाः षट्चत्वारिंशन्मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाः, एषा पुनर्वसुनक्षत्रस्य शोधनकनिष्पत्तिः । शेषनक्षत्राणां शोधनकान्याह–'बावत्तरं सय'मित्यादि, द्वासप्ततं–द्विसप्तत्यधिकं शतं फाल्गुनीनां–उत्तरफाल्गुनीनां शोध्यं, किमुक्तं भवति ?–द्विसप्तत्यधिकेन शतेन पुनर्वसुप्रभृतीन्युत्तरफाल्गुनीपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवमुत्तरत्रापि भावार्थो भावनीयः, तथा विशाखासु–विशाखापर्यन्तेषु नक्षत्रेषु शोधनकं द्वे शते द्विनवत्यधिके २९२, अथानन्तमुत्तराषाढापर्यन्तानि नक्षत्राण्यधिकृत्य शोध्यानि चत्वारि शतानि द्विचत्वारिंशदधिकानि ४४२, 'एयं पुणे'त्यादिगाथा, एतदनन्तरोक्तं शोधनकं सकलमपि पुनर्वसुसत्कद्वाषष्टिभागसहितमवसेयं, एतदुक्तं भवति–ये पुनर्वसुसत्का द्वात्रिंशतिर्मुहूर्त्तांस्ते सर्वेऽप्युत्तरस्मिन् शोधनकेऽन्तःप्रविष्टाः प्रवर्त्तन्ते, नतु द्वाषष्टिभागाः, ततो यद्यच्छोधनकं शोध्यते तत्र तत्र पुनर्वसुसत्काः षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा उपरितना शोधनीया इति, एतच्च पुनर्वसुप्रभृत्युत्तराषाढापर्यन्तं प्रथमं शोधनकं, अत ऊर्ध्वमभिजितमादिं कृत्वा द्वितीयं शोधनकं वक्ष्यामि, तत्र प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—'अभिइस्से'त्यादिगाथाचतुष्टयं, अभिजितो नक्षत्रस्य शोधनकं नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सत्काश्चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिश्छेदकृताः परिपूर्णाः षट्षष्टिभागाः, तथा एकोनषष्टं–एकोनषष्ट्यधिकं शतं प्रोष्ठपदानां–उत्तरभद्रपदानां शोधनकं, किमुक्तं भवति ?–एकोनषष्ट्यधिकेन शतेनाभिजिदादीन्युत्तरभद्रपदापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, एवमुत्तरत्रापि भावना कर्त्तव्या, तथा त्रिषु नवोत्तरेषु शतेषु रोहिणिका–रोहिणिपर्यन्तानि शुद्ध्यन्ति, तथा त्रिषु नवनवतेषु–नवनवत्यधिकेषु शतेषु शोधितेषु पुनर्वसुपर्यन्तं नक्षत्रजातं शुद्ध्यति, तथा एकोनपञ्चाशदधिकानि पञ्च शतानि प्राप्य फाल्गुन्यश्च–उत्तरफाल्गुनीपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, विशाखासु–विशाखापर्यन्तेषु नक्षत्रेषु एकोनसप्तत्यधिकानि षट् शतानि ६६९ शोध्यानि, मूलपर्यन्ते नक्षत्रजाते सप्त शतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि शोध्यानि ७४४, उत्तराषाढानां–उत्तराषाढापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनकमष्टौ शतानि एकोनविंशत्यधिकानि ८१९, सर्वेष्वपि च शोधनेषूपरि अभिजितो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

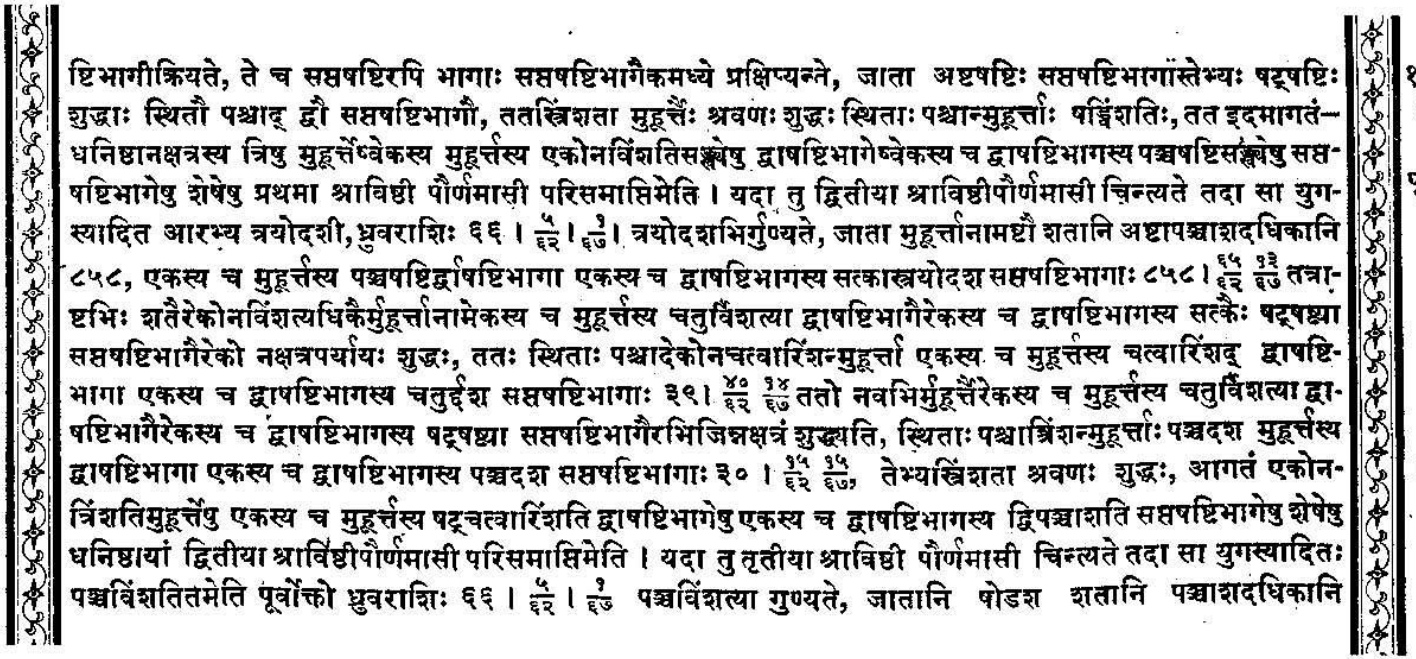


नक्षत्रस्य सम्बन्धिनो मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाश्चतुर्विंशतिः षट्षष्टिश्च चूर्णिकाभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागाः शोधनीयाः, 'एयाइं'इत्यादि, एतान्यनन्तरोदितानि शोधनकानि यथायोगं शोधयित्वा यच्छेषमवतिष्ठते तद्भवति नक्षत्रं, एतस्मिंश्च नक्षत्रे करोति सूर्येण सममुडुपतिरमावास्यामिति । तदेवममावास्याविषयचन्द्रयोगपरिज्ञानार्थं करणमुक्तं, सम्प्रति पौर्णमासीविषयचन्द्रयोगपरिज्ञानार्थं करणमाह—'इच्छापुन्निमे'त्यादि, यः पूर्वममावास्याचन्द्रनक्षत्रपरिज्ञानार्थमवधार्यराशिरुक्तः स एवात्रापि पौर्णमासीचन्द्रनक्षत्रपरिज्ञानविधौ ईप्सितपौर्णमासीगुणितो—यां पौर्णमासीं ज्ञातुमिच्छति तत्सङ्ख्यया गुणितः कर्त्तव्यः, गुणिते च सति तदेव पूर्वोक्तं शोधनं कर्त्तव्यं, केवलमभिजिदादिकं नतु पुनर्वसुप्रभृतिकं, शुद्धे च शोधनके यत् शेषमवतिष्ठते तद्भवेन्नक्षत्रं पौर्णमासीयुक्तं, तस्मिंश्च नक्षत्रे करोति उडुपतिः—चन्द्रमाः परिपूर्णः पूर्णमासीं विमलामिति। एष पौर्णमासीचन्द्रनक्षत्रपरिज्ञानविषयकरणगाथाद्वयाक्षरार्थः, सम्प्रत्यस्यैव भावना क्रियते—कोऽपि पृच्छति—युगस्यादौ प्रथमा पौर्णमासी श्राविष्ठी कस्मिंश्चन्द्रनक्षत्रे परिसमाप्तिमुपैति?, तत्र षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभाग इत्येवंरूपोऽवधार्यराशिर्भ्रियते, प्रथमायां किल पौर्णमास्यां पृष्टमित्येकेन गुण्यते, एकेन गुणितं तदेव भवति, ततस्तस्मादभिजितो नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा इत्येवंपरिमाणं शोधनकं शोधनीयं, तत्र षट्षष्टेर्नव मुहूर्त्ताः शुद्धाः स्थिताः पञ्चात्सप्तपञ्चाशत्, तेभ्य एको मुहूर्त्तो गृहीत्वा द्वाषष्टिभागीकृतस्ते च द्वाषष्टिरपि द्वाषष्टिभागराशौ पञ्चकरूपे प्रक्षिप्यन्ते, जाताः सप्तषष्टिः द्वाषष्टिभागास्तेभ्यश्चतुर्विंशतिः शुद्धाः स्थिताः पञ्चात्रिचत्वारिंशत्, तेभ्य एकं रूपमादाय सप्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥११५॥

ष्टिभागीक्रियते, ते च सप्तषष्टिरपि भागाः सप्तषष्टिभागैकमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाता अष्टषष्टिः सप्तषष्टिभागास्तेभ्यः षट्षष्टिः शुद्धाः स्थितौ पश्चाद् द्वौ सप्तषष्टिभागौ, ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणः शुद्धः स्थिताः पश्चान्मुहूर्त्ताः षड्विंशतिः, तत इदमागतं–धनिष्ठानक्षत्रस्य त्रिषु मुहूर्त्तेष्वेकस्य मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिसङ्ख्येषु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चषष्टिसङ्ख्येषु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु प्रथमा श्राविष्ठी पौर्णमासी परिसमाप्तिमेति । यदा तु द्वितीया श्राविष्ठीपौर्णमासी चिन्त्यते तदा सा युगस्यादित आरभ्य त्रयोदशी, ध्रुवराशिः ६६ । $\frac{५}{६२}$ । $\frac{१}{६७}$ । त्रयोदशभिर्गुण्यते, जाता मुहूर्त्तानामष्टौ शतानि अष्टापञ्चाशदधिकानि ८५८, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चषष्टिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्कास्त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः ८५८ । $\frac{६५}{६२}$ $\frac{१३}{६७}$ तत्राष्टभिः शतैरेकोनविंशत्यधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्कैः षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरेको नक्षत्रपर्यायः शुद्धः, ततः स्थिताः पश्चादेकोनचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दश सप्तषष्टिभागाः ३९। $\frac{४०}{६२}$ $\frac{१४}{६७}$ ततो नवभिर्मुहूर्त्तैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिन्नक्षत्रं शुद्ध्यति, स्थिताः पश्चात्रिंशन्मुहूर्त्ताः पञ्चदश मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चदश सप्तषष्टिभागाः ३० । $\frac{१५}{६२}$ $\frac{१५}{६७}$, तेभ्यस्त्रिंशता श्रवणः शुद्धः, आगतं एकोनत्रिंशतिमुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु धनिष्ठायां द्वितीया श्राविष्ठीपौर्णमासी परिसमाप्तिमेति । यदा तु तृतीया श्राविष्ठी पौर्णमासी चिन्त्यते तदा सा युगस्यादितः पञ्चविंशतितमेति पूर्वोक्तो ध्रुवराशिः ६६ । $\frac{५}{६२}$ । $\frac{१}{६७}$ पञ्चविंशत्या गुण्यते, जातानि षोडश शतानि पञ्चाशदधिकानि

१० प्राभृते ६ प्राभृतप्राभृतं पूर्णिमादि नक्षत्रं सू ३८

॥११५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६५०, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशं शतं द्वाषष्टिभागानां १२५ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतिः सप्तषष्टिभागाः २५, तत्र षोडशभिः शतैरष्टात्रिंशदधिकैः १६३८ मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाचत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैः ४८ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशदधिकेन शतेन १३२ द्वौ नक्षत्रपर्यायौ शुद्ध्यतः, स्थिताः पश्चाद् द्वादश मुहूर्त्ताः १२ एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चसप्ततिद्वाषष्टिभागाः ७५ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः २७, ततो नवभिर्मुहूर्त्तैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिन्नक्षत्रं शुद्ध्यति, स्थिताः पश्चात्रयोदश मुहूर्त्ताः १३ एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः $\frac{५०}{६२}$ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टाविंशतिः सप्तषष्टिभागाः $\frac{२८}{६७}$, आगतं श्रवणनक्षत्रं षड्विंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकादशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु तृतीयां श्राविष्ठीं पौर्णमासीं परिसमापयति, एवं चतुर्थीं श्राविष्ठीं पौर्णमासीं धनिष्ठानक्षत्रं षोडशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च सुमुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति, पञ्चमीं श्राविष्ठीं पौर्णमासीं श्रवणनक्षत्रं द्वादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च सुमुहूर्त्तस्य षष्टिसप्तकेषु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य द्वाषष्टिभागस्य द्वाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमाप्तिं नयतीति । तदेवं यानि नक्षत्राणि श्राविष्ठीं पौर्णमासीं परिसमापयन्ति तान्युक्तानि, सम्प्रति यानि प्रोष्ठपदीं समापयन्ति तान्याह—'ता पोट्ठवइण्णं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, प्रोष्ठपदीं—भाद्रपदीं णमिति वाक्यालङ्कारे पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति—कति नक्षत्राणि यथायोगं चन्द्रेण सह संयुज्य परिसमापयन्तीत्यर्थः, एवं सर्वत्रापि युञ्जन्तीत्यस्य पदस्य भावना कर्त्तव्या, भगवानाह—'ता' इत्यादि, 'ता'इति पूर्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

वत्, त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा–शतभिषक् पूर्वप्रोष्ठपदा उत्तरप्रोष्ठपदा च, तत्र प्रथमां प्रोष्ठपदीं पौर्णमासीमुत्तरभद्रपदानक्षत्रं सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्दशसु द्वाषष्टिभागेषु चतुःषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमाप्तिं नयति, द्वितीयां प्रौष्ठपदीं पौर्णमासीं पूर्वभद्रपदानक्षत्रमष्टसु मुहूर्त्तेषु शेषेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्यैकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिणमयति, तृतीयां प्रौष्ठपदीं पौर्णमासीं शतभिषक् पञ्चसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्सु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं प्रौष्ठपदीं पौर्णमासीं उत्तरभद्रपदानक्षत्रं चत्वारिंशति मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्यैकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीं प्रौष्ठपदीं पौर्णमासीं पूर्वभद्रपदानक्षत्रमेकविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकादशसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिणमयति, 'ता आसोइं ण'मित्यादि, आश्वयुजीं णमिति वाक्यलङ्कारे पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह—'ता' इत्यादि, ता इति पूर्ववत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा–रेवती अश्विनी च, इहोत्तरभद्रपदानक्षत्रमपि कांश्चिदाश्वयुजीं पौर्णमासीं परिसमापयति, परं तत्प्रौष्ठपदीमपि पौर्णमासीं परिसमापयति, तत्रैव च लोके तस्य प्राधान्यं, तन्नाम्ना तस्याः पौर्णमास्याः अभिधानादतस्तदिह न विवक्षितमित्यदोषः, तथाहि–प्रथमामाश्वयुजीं पौर्णमासीमश्विनीनक्षत्रमेकविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति, द्वितीयामाश्वयुजीं पौर्णमासीं रेवतीनक्षत्रं सप्तदशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चाशति सप्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [५२]

षष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयामाश्वयुजीं पौर्णमासीमुत्तरभद्रपदानक्षत्रं चतुर्दशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकस्मिन् द्वाषष्टिभागे एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीमाश्वयुजीं पौर्णमासीं रेवतीनक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य द्वाषष्टिभागस्य त्रयोविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीमाश्वयुजीं पौर्णमासीमुत्तरभद्रपदानक्षत्रमेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य दशसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति। 'कत्तियपुण्ण'मित्यादि, कार्त्तिकीं पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह–द्वे नक्षत्रे युञ्जन्ति, तद्यथा–भरणी कृत्तिका वा, इहाप्यश्विनीनक्षत्रमपि काश्चित् कार्त्तिकीं पौर्णमासीं परिसमापयति परं तदाश्वयुज्यां पौर्णमास्यां प्रधानमितीह तन्न विवक्षितं, तत्र प्रथमां कार्त्तिकीं पौर्णमासीं कृत्तिकानक्षत्रमेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्षु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, द्वितीयां कार्तिकीं पौर्णमासीं कृत्तिकानक्षत्रं षड्विंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्यैकत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयां कार्त्तिकीं पौर्णमासीमश्विनीनक्षत्रं सप्तसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टापञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं कार्त्तिकीं पौर्णमासीं कृत्तिकानक्षत्रं षोडशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टापञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीं कार्त्तिकीं पौर्णमासीं भरणीनक्षत्रं नव मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य नवसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति। 'ता मग्गसिरं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति'त्ति ता इति पूर्ववत्, कति नक्षत्राणि मार्गशीर्षीं पौर्णमासीं युञ्जन्ति?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवानाह–'ता दोण्णी'त्यादि, ता इति प्राग्वत्, द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा–रोहिणिका मृगशिरश्च, तत्र प्रथमां मार्गशीर्षीं पौर्णमासीं मृगशिरोऽष्टसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सम्बन्धिनो द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, द्वितीयां मार्गशीर्षीं पौर्णमासीं रोहिणीनक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टाचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयां मार्गशीर्षीं पौर्णमासीं रोहिणीनक्षत्रमेकविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं मार्गशीर्षीं पौर्णमासीं मृगशिरोनक्षत्रं द्वाविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोदशसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीं मार्गशीर्षीं पौर्णमासीं रोहिणीनक्षत्रं अष्टादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिणमयति, 'ता पोसीं ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, पौषीं णमिति वाक्यालङ्कारे पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह–'ता' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा–आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्यश्च, तत्र प्रथमां पौषीं पौर्णमासीं पुनर्वसुनक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोरेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु, द्वितीयां पौषीं पौर्णमासीं एकोनत्रिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयां पौषीं पौर्णमासीमधिकमासादर्वाक्तनीमार्द्रानक्षत्रं दशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, अधिकमासभाविनीं पुनस्तामेव तृतीयां पौर्णमासीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुष्यनक्षत्रमेकोनविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं पौषीं पौर्णमासीं पुनर्वसुनक्षत्रं षोडशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीं पौषीं पौर्णमासीं पुनर्वसुनक्षत्रं द्विचत्वारिंशति मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमाप्तिं नयति। 'ता माहीण्ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, माघीं णमिति वाक्यालङ्कारे पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह–'ता दोण्णी'त्यादि, द्वे नक्षत्रे युञ्जः, तद्यथा–अश्लेषा मघा च, चशब्दात्काञ्चिन्माघीं पौर्णमासीं पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रं काञ्चित्पुष्यनक्षत्रं च, तद्यथा–प्रथमां माघीं पौर्णमासीं मघानक्षत्रमेकादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, द्वितीयां माघीं पौर्णमासीमश्लेषानक्षत्रमष्टसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडशसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयां माघीं पौर्णमासीं पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रमष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टात्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं माघीं पौर्णमासीं मघानक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिषु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीं माघीं पौर्णमासीं पुष्यनक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्सु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति, 'ता फग्गुणीण्ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् फाल्गुनीं णमिति वाक्यालङ्कारे पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह—'ता दोण्णी'त्यादि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥११८॥

ता इति प्राग्वत्, द्वे नक्षत्रे, तद्यथा—पूर्वफाल्गुनी उत्तरफाल्गुनी च, तत्र प्रथमां फाल्गुनीं पौर्णमासीमुत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं विंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टापञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, द्वितीयां फाल्गुनीं पौर्णमासीं पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोरेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकादशसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयां फाल्गुनीं पौर्णमासीमुत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं सप्तसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं फाल्गुनीं पौर्णमासीमुत्तरफाल्गुनीनक्षत्रं त्रयस्त्रिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टादशसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु; पञ्चमीं फाल्गुनीं पौर्णमासीं पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रं पञ्चदशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशतौ द्वाषष्टिसप्तभागेषु भागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति । 'ता चित्तिण्ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, चैत्रीं पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह—'ता'इत्यादि, द्वे नक्षत्रे युञ्जः, तद्यथा—हस्तः चित्रा च, तत्र प्रथमां चैत्रीं पौर्णमासीं चित्रानक्षत्रं चतुर्दशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, द्वितीयां चैत्रीं पौर्णमासीं हस्तनक्षत्रमेकादशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्सु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुश्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु; तृतीयां चैत्रीं पौर्णमासीं चित्रानक्षत्रमेकस्मिन् मुहूर्त्ते एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं चैत्रीं पौर्णमासीं चित्रानक्षत्रं सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु

१० प्राभृते ६ प्राभृतप्राभृतं पूर्णिमादि नक्षत्रं सू ३८

॥११८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

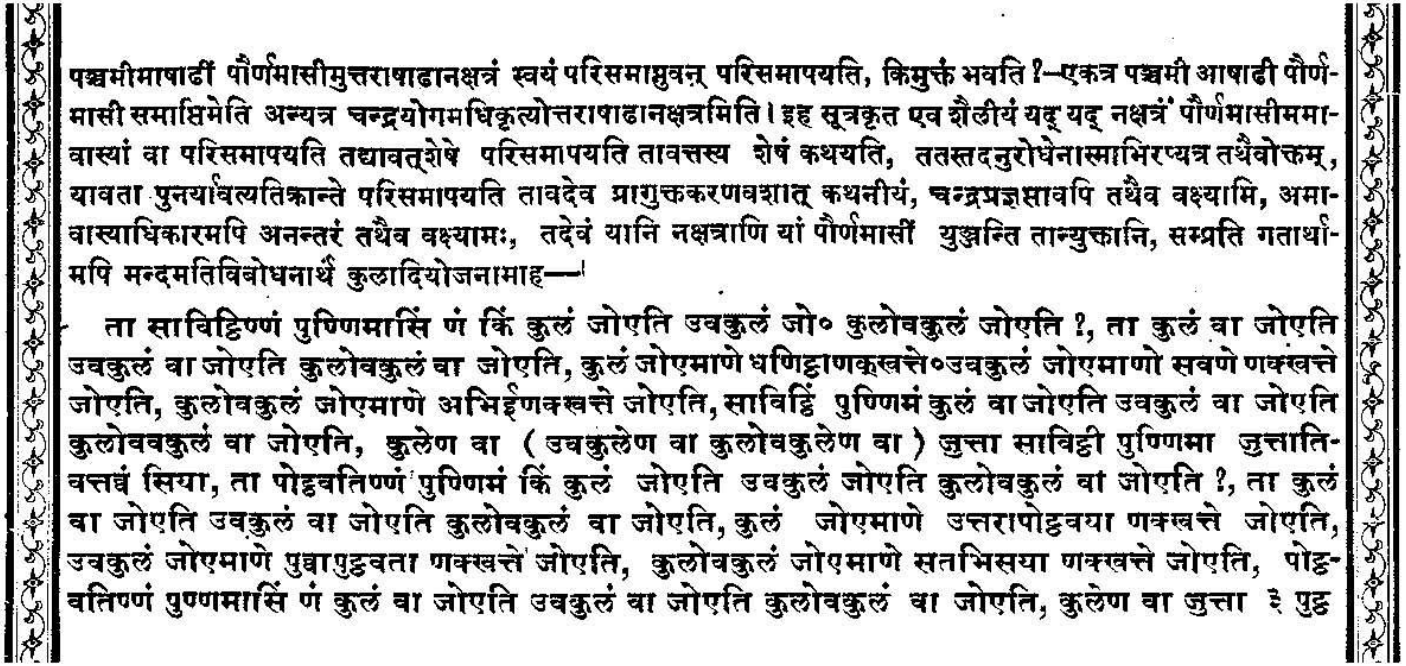
एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तदशसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीं चैत्रीं पौर्णमासीं हस्तनक्षत्रं चतुर्विंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य विंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्षु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिणमयति। 'ता वइसाहिंण्ण'-मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, वैशाखीं णमिति वाक्यालङ्कारे पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह–'ता दोण्णी'-त्यादि, ता इति प्राग्वत्, द्वे नक्षत्रे युञ्जः, तद्यथा–स्वातिः विशाखा च, चशब्दादनुराधा च, इदं हि अनुराधानक्षत्रं विशाखातः परं, विशाखा चास्यां पौर्णमास्यां प्रधाना, ततः परस्यामेव पौर्णमास्यां तत्साक्षादुपात्तं नेहेति, तत्र प्रथमां वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रमष्टसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, द्वितीयां वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकस्मिन् द्वाषष्टि-भागे एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयां वैशाखीं पौर्णमासीं अनुराधानक्षत्रं पञ्चवि-शतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रमेकविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाष-ष्टिभागस्य षोडशसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीं वैशाखीं पौर्णमासीं स्वातिनक्षत्रं त्रिषु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च-दशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिणमयति। 'ता जेट्ठामूलिं ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, ज्येष्ठामौलीं णमिति वाक्यभूषणे पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह–'ता'इत्यादि, ता इति पूर्व-वत्, त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा–अनुराधा ज्येष्ठा मूलं च, तत्र प्रथमां ज्येष्ठामौलीं पौर्णमासीं मूलनक्षत्रं सप्तद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकत्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, द्वितीयां ज्येष्ठामौलीं पौर्णमासीं ज्येष्ठानक्षत्रं त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टापञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयां ज्येष्ठामौलीं पौर्णमासीं मूलनक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्तस्याष्टादशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीं ज्येष्ठामौलीं पौर्णमासीं ज्येष्ठानक्षत्रमेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चदशसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, पञ्चमीं ज्येष्ठामूलीं पौर्णमासीं अनुराधानक्षत्रं द्वादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वयोः सप्तषष्टिभागयोः परिसमाप्तिमुपनयति । 'आसाढिन्न'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् , आषाढीं णमिति वाक्यालङ्कारे पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह–'ता दो'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् , द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा–पूर्वाषाढा उत्तराषाढा च, तत्र प्रथमामाषाढीं पौर्णमासीमुत्तराषाढानक्षत्रं षड्विंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, द्वितीयामाषाढीं पौर्णमासीं पूर्वाषाढानक्षत्रं सप्तसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तृतीयामाषाढीं पौर्णमासीं उत्तराषाढानक्षत्रं त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोदशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, चतुर्थीमाषाढीं पौर्णमासीमुत्तराषाढानक्षत्रमेकोनचत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दशसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति,

॥११९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



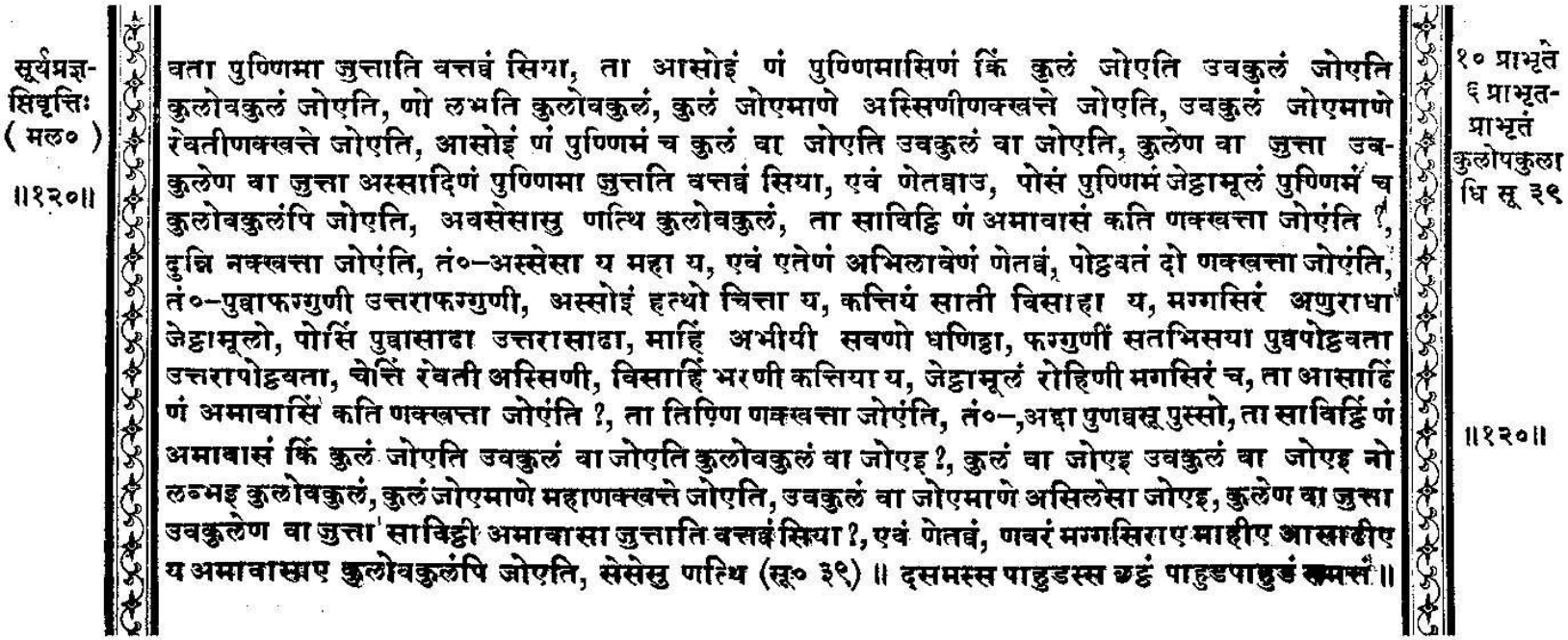
पञ्चमीमाषादीं पौर्णमासीमुत्तराषाढानक्षत्रं स्वयं परिसमामुवन् परिसमापयति, किमुक्तं भवति ?–एकत्र पञ्चमी आषाढी पौर्णमासी समाप्तिमेति अन्यत्र चन्द्रयोगमधिकृत्योत्तराषाढानक्षत्रमिति। इह सूत्रकृत एव शैलीयं यद् यद् नक्षत्रं पौर्णमासीममावास्यां वा परिसमापयति तद्यावत्शेषे परिसमापयति तावत्तस्य शेषं कथयति, ततस्तदनुरोधेनास्माभिरप्यत्र तथैवोक्तम्, यावता पुनर्यावत्यतिक्रान्ते परिसमापयति तावदेव प्रागुक्तकरणवशात् कथनीयं, चन्द्रप्रज्ञप्तावपि तथैव वक्ष्यामि, अमावास्याधिकारमपि अनन्तरं तथैव वक्ष्यामः, तदेवं यानि नक्षत्राणि यां पौर्णमासीं युञ्जन्ति तान्युक्तानि, सम्प्रति गतार्थमपि मन्दमतिविबोधनार्थं कुलादियोजनामाह—

ता साविट्ठिण्णं पुण्णिमासिं णं किं कुलं जोएति उवकुलं जो० कुलोवकुलं जोएति ?, ता कुलं वा जोएति उवकुलं वा जोएति कुलोवकुलं वा जोएति, कुलं जोएमाणे धणिट्ठाणक्खत्ते०उवकुलं जोएमाणो सवणे णक्खत्ते जोएति, कुलोवकुलं जोएमाणे अभिईणक्खत्ते जोएति, साविट्ठिं पुण्णिमं कुलं वा जोएति उवकुलं वा जोएति कुलोववकुलं वा जोएति, कुलेण वा (उवकुलेण वा कुलोवकुलेण वा) जुत्ता साविट्ठी पुण्णिमा जुत्तातिवत्तचं सिया, ता पोट्ठवतिण्णं पुण्णिमं किं कुलं जोएति उवकुलं जोएति कुलोवकुलं वा जोएति ?, ता कुलं वा जोएति उवकुलं वा जोएति कुलोवकुलं वा जोएति, कुलं जोएमाणे उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते जोएति, उवकुलं जोएमाणे पुव्वापुट्ठवता णक्खत्ते जोएति, कुलोवकुलं जोएमाणे सतभिसया णक्खत्ते जोएति, पोट्ठवतिण्णं पुण्णमासिं णं कुलं वा जोएति उवकुलं वा जोएति कुलोवकुलं वा जोएति, कुलेण वा जुत्ता ३ पुट्ठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [५३]



सूर्यप्रज्ञ-सिवृत्तिः (मल०) ॥१२०॥

वता पुण्णिमा जुत्तति वत्तव्वं सिया, ता आसोइं णं पुण्णिमासिणं किं कुलं जोएति उवकुलं जोएति कुलोवकुलं जोएति, णो लभति कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे अस्सिणीणक्खत्ते जोएति, उवकुलं जोएमाणे रेवतीणक्खत्ते जोएति, आसोइं णं पुण्णिमं च कुलं वा जोएति उवकुलं वा जोएति, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता अस्सादिणं पुण्णिमा जुत्तति वत्तव्वं सिया, एवं णेतव्वाउ, पोसं पुण्णिमं जेट्ठामूलं पुण्णिमं च कुलोवकुलंपि जोएति, अवसेसासु णत्थि कुलोवकुलं, ता सावित्ति णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?, दुन्नि नक्खत्ता जोएंति, तं०–अस्सेसा य महा य, एवं एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं, पोट्ठवतं दो णक्खत्ता जोएंति, तं०–पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी, अस्सोइं हत्थो चित्ता य, कत्तियं साती विसाहा य, मग्गसिरं अणुराधा जेट्ठामूलो, पोसिं पुव्वासाढा उत्तरासाढा, माहिं अभीयी सवणो धणिट्ठा, फग्गुणीं सतभिसया पुव्वपोट्ठवता उत्तरापोट्ठवता, चेत्तिं रेवती अस्सिणी, विसाहिं भरणी कत्तिया य, जेट्ठामूलं रोहिणी मगसिरं च, ता आसाढिं णं अमावासिं कति णक्खत्ता जोएंति ?, ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं०–,अद्दा पुणव्वसू पुस्सो, ता सावित्ति णं अमावासं किं कुलं जोएति उवकुलं वा जोएति कुलोवकुलं वा जोएइ ?, कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ नो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे महाणक्खत्ते जोएति, उवकुलं वा जोएमाणे असिलेसा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता सावित्ती अमावासा जुत्तति वत्तव्वं सिया ?, एवं णेतव्वं, णवरं मग्गसिराए माहीए आसाढीए य अमावासाए कुलोवकुलंपि जोएति, सेसेसु णत्थि (सू० ३९) ॥ दसमस्स पाहुडस्स छट्ठं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

१० प्राभृते ६ प्राभृत-प्राभृतं कुलोपकुलाधि सू ३९

॥१२०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [५३]

'ता साविट्ठिण्ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, श्राविष्ठीं पौर्णमासीं किं कुलं युनक्ति उपकुलं युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्ति ?, भगवानाह–'ता कुलं वा' इत्यादि, कुलं वा युनक्ति, वाशब्दः समुच्चये, ततः कुलमपि युनक्तीत्यर्थः, एवं उपकुलमपि कुलोपकुलमपि, तत्र कुलं युञ्जन् धनिष्ठानक्षत्रं युनक्ति, तस्यैव कुलं (लतया) प्रसिद्धस्य सतः श्राविष्ठ्यां पौर्णमास्यां भावात्, उपकुलं युञ्जन् श्रवणनक्षत्रं युनक्ति, कुलोपकुलं युञ्जन् अभिजिन्नक्षत्रं युनक्ति, तद्धि तृतीयायां श्राविष्ठ्यां पौर्णमास्यां द्वादशसु मुहूर्त्तेषु किञ्चित्समधिकेषु शेषेषु चन्द्रेण सह योगमुपैति, ततः श्रवणेन सह सहचरत्वात् स्वयमपि तस्याः पौर्णमास्याः पर्यन्तवर्त्तित्वात् तदपि तां परिसमापयतीति विवक्षितत्वाद् युनक्तीत्युक्तं, सम्प्रति उपसंहारमाह–'साविट्ठिन्न'मित्यादि, यत एवं त्रिभिरपि कुलादिभिः श्राविष्ठ्याः पौर्णमास्या योजनाऽस्ति ततः श्राविष्ठीं पौर्णमासीं कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्तीति वक्तव्यं स्यात्–इति स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादनं कुर्यात्, यदिवा कुलेन वा युक्ता सती श्राविष्ठी पौर्णमासी उपकुलेन वा युक्ता कुलोपकुलेन वा युक्ता युक्तेति वक्तव्यं स्यात्, एवं शेषमपि सूत्रं निगमनीयं, यावत् 'एवं नेयव्वाओ'इत्यादि, एतमुक्तेन प्रकारेण शेषा अपि पौर्णमास्यो नेतव्याः–पाठक्रमेण वक्तव्याः, नवरं पौषीं पौर्णमासीं ज्येष्ठामूलीं च पौर्णमासीं कुलोपकुलमपि युनक्ति, अवशेषासु च पौर्णमासीषु कुलोपकुलं नास्तीति परिभाव्य वक्तव्याः, ताश्चैवम्–'ता कत्तियण्णं पुन्निमासिणीं किं कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ ?, ता कुलंपि जोएइ उवकुलंपि जोएइ, नो लभेइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे कत्तिआणक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे भरणीनक्खत्ते जोएइ, ता कत्तिअन्नं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता कत्तियपु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिमा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ'इत्यादि, तावद्वक्तव्यं यावदाषाढीपौर्णमासीसूत्रपर्यन्तः, तथा चाह–'जाव आसाढीपुन्निमा जुत्तत्तिवत्तव्वं सिया'। तदेवं पौर्णमासीवक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति अमावास्यावक्तव्यतामाह–'दुवालसे'त्यादि, द्वादश अमावास्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–श्राविष्ठी प्रौष्ठपदी इत्यादि, तत्र मासपरिसमापकेन श्रविष्ठानक्षत्रेणोपलक्षितो यः श्रावणो मासः सोऽप्युपचारात् श्राविष्ठा तत्र भवा श्राविष्ठी, किमुक्तं भवति ?—श्रविष्ठानक्षत्रपरिसमाप्यमानश्रावणमासभाविनीति, प्रोष्ठपदी प्रोष्ठपदानक्षत्रपरिसमाप्यमानभाद्रपदमासभाविनी, एवं सर्वत्रापि वाक्यार्थो भावनीयः, 'ता साविट्ठिण्ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, श्राविष्ठीममावास्यां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?–कति नक्षत्राणि यथायोगं चन्द्रेण सह संयुज्य श्राविष्ठीं अमावास्यां परिसमापयन्ति, भगवानाह–'ता दोण्णी'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा–अश्लेषा मघा च, इह व्यवहारनयमते यस्मिन्नक्षत्रे पौर्णमासी भवति तत आरभ्यावृत्तेने पञ्चदशे नक्षत्रे अमावास्या भवति, यस्मिंश्च नक्षत्रे अमावास्या तत आरभ्य परतः पञ्चदशे नक्षत्रे पौर्णमासी, तत्र श्राविष्ठी पौर्णमासी किल श्रवणे धनिष्ठायां वोक्ता ततोऽमावास्यायामप्यस्यां श्राविष्ठ्यां अश्लेषा मघाश्चोक्ताः, लोके च तिथिगणितानुसारतो गतायामप्यमावास्यायां वर्त्तमानायामपि च प्रतिपदि यस्मिन्नहोरात्रे प्रथमतोऽमावास्याऽभूत् स सकलोऽप्यहोरात्रो अमावास्येति व्यवह्रियते, ततो मघानक्षत्रमप्येवं व्यवहारतोऽमावास्यायां प्राप्यत इति न कश्चिद्विरोधः, परमार्थतः पुनरिममावास्यां श्राविष्ठीमिमानि त्रीणि नक्षत्राणि परिसमापयन्ति, तद्यथा–पुनर्वसुः पुष्योऽश्लेषा च, तथाहि–अमावास्याचन्द्रयोगपरिज्ञानार्थं करणं प्रागेवोक्तं, तत्र तद्भावना क्रियते–कोऽपि पृच्छति–युगस्यादौ प्रथमा श्राविष्ठ्यमावास्या केन चन्द्रयुक्तेन नक्षत्रेणोपेता सती

॥१२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [५३]

समाप्तिमुपयाति ?, तत्र पूर्वोदितस्वरूपोऽवधार्यराशिः षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभाग इति प्रमाणो ध्रियते, धृत्वा चैकेन गुण्यते, प्रथमाया अमावास्यायाः पृष्टत्वात्, एकेन गुणितं तदेव भवतीति राशिस्तावानेव जातः, ततस्तस्माद् द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा इत्येवंपरिमाणं पुनर्वसुशोधनकं शोध्यते, तत्र षट्षष्टेर्मुहूर्त्तेभ्यो द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शुद्धाः, स्थिताः पश्चाच्चतुश्चत्वारिंशत् ४४, तेभ्य एकं मुहूर्त्तमपकृष्य तस्या द्वाषष्टिर्भागाः क्रियन्ते, कृत्वा च ते द्वाषष्टिभागराशिमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाताः सप्तषष्टिः, तेभ्यः षट्चत्वारिंशत् शुद्धाः, शेषास्तिष्ठन्त्येकविंशतिः, त्रिचत्वारिंशतो मुहूर्त्तेभ्यस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः पुष्यः शुद्धः, स्थिताः पश्चात् त्रयोदश मुहूर्त्ताः, अश्लेषानक्षत्रं च द्विक्षेत्रमिति पञ्चदश मुहूर्त्तप्रमाणं, तत इदमागतं–अश्लेषानक्षत्रमेकस्मिन् मुहूर्त्ते एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधाछिन्नस्य षट्षष्टिसङ्ख्येषु भागेषु शेषेषु प्रथमाऽमावास्या समाप्तिमुपगच्छति, तथा च वक्ष्यति–'ता एएसिं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे केणं नक्खत्तेणं जोएइ ?, ता असिलेसाहि, असिलेसाणं एक्को मुहुत्तो चत्तालीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता छावट्ठी चुण्णिआभागा सेसा'इति, यदा तु द्वितीयामावास्या चिन्त्यते तदा सा युगस्यादित आरभ्य त्रयोदशीति स ध्रुवराशिः ६६ । $\frac{5}{6}$ । $\frac{1}{67}$ । त्रयोदशभिर्गुण्यते, जातानि मुहूर्त्तानामष्टौ शतान्यष्टापञ्चाशदधिकानि ८५८ एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चषष्टिर्द्वाषष्टिभागा ६५ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्कास्त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः १३, तत्र 'चत्तारि य बायाला अह सोज्झा उत्तरासाढा' इति वचनात् चतुर्भिर्द्विचत्वारिंशदधिकैर्मुहूर्त्तशतैः षट्चत्वारिंशता च द्वाषष्टिभागै-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१२२॥

रुत्तराषाढापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थितानि पश्चान्मुहूर्त्तानां चत्वारि शतानि षोडशोत्तराणि एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्कास्त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः। ४१६। $\frac{19}{62}$। $\frac{13}{67}$। तत एतस्मात् त्रीणि शतानि नवनवत्यधिकानि मुहूर्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ३९९ $\frac{24}{62}$ $\frac{66}{67}$ इति शोधनीयं, तत्र षोडशोत्तरेभ्यश्चतुःशतेभ्यः त्रीणि शतानि नवनवत्यधिकानि शुद्धानि, स्थिताः पश्चात् सप्तदश मुहूर्त्ताः, तेभ्यः एकं मुहूर्त्तं गृहीत्वा तस्य द्वाषष्टिर्भागाः क्रियन्ते, कृत्वा च द्वाषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जाता एकाशीतिः, तस्याश्चतुर्विंशतिः शुद्धाः, स्थिताः पश्चात् सप्तपञ्चाशत्, तस्या रूपमेकमादाय सप्तषष्टिर्भागाः क्रियन्ते, तेभ्यः षट्षष्टिः शुद्धाः, पश्चादेकोऽवतिष्ठते, स सप्तषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यते, जाताश्चतुर्दश सप्तषष्टिभागाः, आगतं पुष्यनक्षत्रं–षोडशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दशसु सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु द्वितीयां श्राविष्ठीममावास्यां परिसमापयति, यदा तु तृतीयाश्राविष्ठ्यमावास्या चिन्त्यते सा युगादित आरभ्य पञ्चविंशतितमेति स ध्रुवराशिः ६६। $\frac{5}{62}$। $\frac{1}{67}$। पञ्चविंशत्या गुण्यते, जातानि षोडश शतानि पञ्चाशदधिकानि मुहूर्त्तानां १६५० एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशं द्वाषष्टिभागशतं। $\frac{125}{62}$। एकस्य द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतिः सप्तषष्टिभागाः $\frac{25}{67}$। तत्र चतुर्भिर्द्विचत्वारिंशदधिकैर्मुहूर्त्तशतैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैः प्रथममुत्तराषाढापर्यन्तं शोधनकं शुद्धं, स्थितानि पश्चान्मुहूर्त्तानां द्वादश शतान्यष्टोत्तराणि १२०८ द्वाषष्टिभागाश्च मुहूर्त्तस्य एकोनाशीतिः ७९ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतिः सप्तषष्टिभागाः २५, ततोऽष्टभिः शतैरेकोनविंशत्यधिकैः ८१९

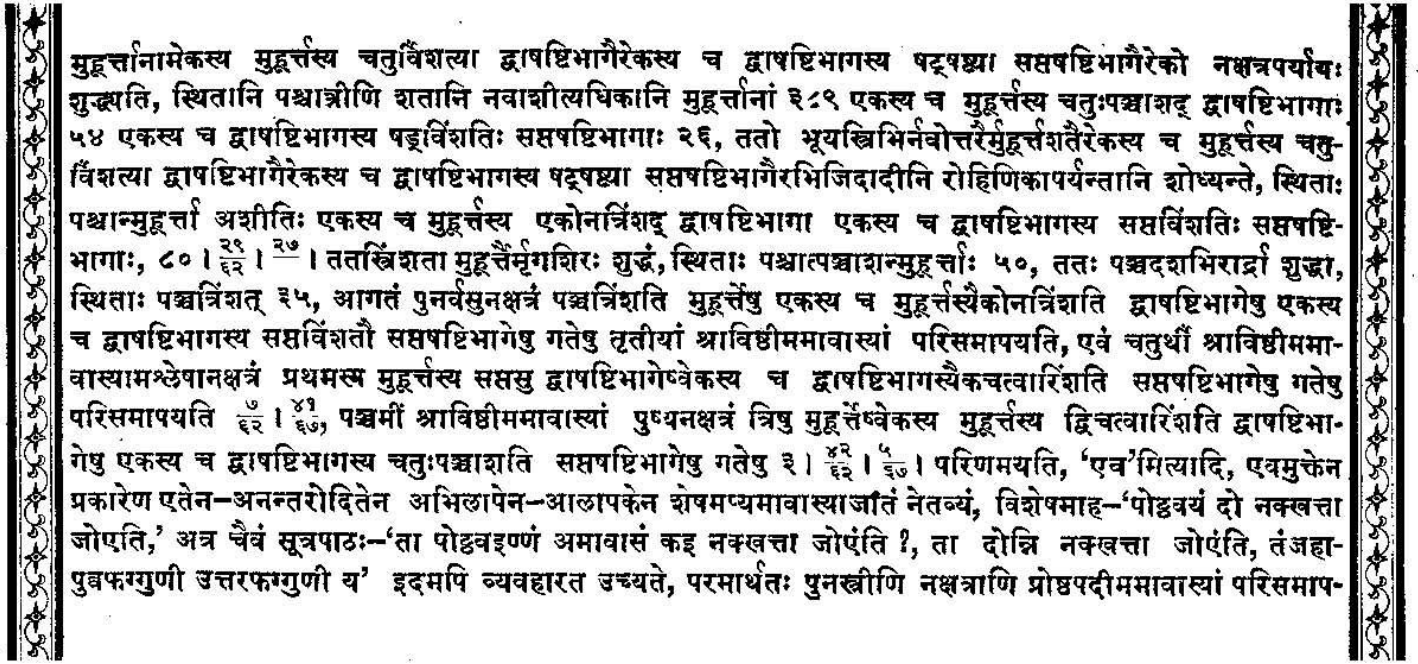
१० प्राभृते ६ प्राभृत-प्राभृतं कुलोपकुलाधि सू ३९

॥१२२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [५३]



मुहूर्त्तानामेकस्य मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरेको नक्षत्रपर्यायः शुद्ध्यति, स्थितानि पञ्चात्रीणि शतानि नवाशीत्यधिकानि मुहूर्त्तानां ३८९ एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुःपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः ५४ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षड्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः २६, ततो भूयस्त्रिभिर्नवोत्तरैर्मुहूर्त्तशतैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि रोहिणिकापर्यन्तानि शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चान्मुहूर्त्ता अशीतिः एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनत्रिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, ८० । २९/६२ । २७ । ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैर्मृगशिरः शुद्धं, स्थिताः पश्चात्पञ्चाशन्मुहूर्त्ताः ५०, ततः पञ्चदशभिरार्द्रा शुद्धा, स्थिताः पञ्चत्रिंशत् ३५, आगतं पुनर्वसुनक्षत्रं पञ्चत्रिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकोनत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु गतेषु तृतीयां श्राविष्ठीममावास्यां परिसमापयति, एवं चतुर्थीं श्राविष्ठीममावास्यामश्लेषानक्षत्रं प्रथमस्य मुहूर्त्तस्य सप्तसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु परिसमापयति ७/६२ । ४१/६७, पञ्चमीं श्राविष्ठीममावास्यां पुष्यनक्षत्रं त्रिषु मुहूर्त्तेष्वेकस्य मुहूर्त्तस्य द्विचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुःपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ३ । ४२/६२ । ५/६७ । परिणमयति, 'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण एतेन–अनन्तरोदितेन अभिलापेन–आलापकेन शेषमप्यमावास्याजातं नेतव्यं, विशेषमाह–'पोट्ठवयं दो नक्खत्ता जोएति,' अत्र चैवं सूत्रपाठः–'ता पोट्ठवइण्णं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएंति ?, ता दोन्नि नक्खत्ता जोएंति, तंजहा-पुव्वफग्गुणी उत्तरफग्गुणी य' इदमपि व्यवहारत उच्यते, परमार्थतः पुनस्त्रीणि नक्षत्राणि प्रोष्ठपदीममावास्यां परिसमाप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यन्ति, तद्यथा–मघा पूर्वफाल्गुनी उत्तरफाल्गुनी च, तत्र प्रथमां प्रोष्ठपदीममावास्यामुत्तरफाल्गुनीनक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वयोः सप्तषष्टिभागयोः ४ । २६ । २ अतिक्रान्तयोः, द्वितीयां प्रोष्ठपदीममावास्यां पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रं सप्तसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकषष्टौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चदशसु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ७ । ६१ । १५ । तृतीयां प्रोष्ठपदीममावास्यां मघानक्षत्रमेकादशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ११ । ३४ । २८, चतुर्थीं प्रोष्ठपदीममावास्यां पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रमेकविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वादशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २१ । १२ । ४२ । पञ्चमीं प्रोष्ठपदीममावास्यां मघानक्षत्रं चतुर्विंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु २४ । ४७ । ५५ । परिसमापयति, 'आसोइं दोण्णी'त्यादि, अत्राप्येवं पाठः–'ता आसोइण्णं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि नक्खत्ता जोएंति, तंजहा–हत्थो चित्ता य' एतदपि व्यवहारतो, निश्चयतः पुनराश्वयुजीममावास्यां त्रीणि नक्षत्राणि परिसमापयन्ति, तद्यथा–उत्तरफाल्गुनी हस्तः चित्रा च, तत्र प्रथमामाश्वयुजीममावास्यां हस्तनक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषु सप्तषष्टिभागेषु २५ । ३१ । ३ गतेषु, द्वितीयामाश्वयुजीममावास्यामुत्तरफाल्गुनीनक्षत्रं चतुश्चत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्षु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षोडशसु सप्तषष्टिभागेषु ४४ । ४ । १६ गतेषु, तृतीयामाश्वयुजीममावास्यां उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रं सप्तद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनात्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु १७। ३९। २९। गतेषु, चतुर्थीमाश्वयुजीममावास्यां हस्तनक्षत्रं द्वादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तदशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु १२ $\frac{१७}{६२}$। $\frac{४३}{६७}$। गतेषु, पञ्चमीमाश्वयुजीममावास्यां उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रं त्रिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुःपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ३०। ५२। ५४ गतेषु परिसमापयति, 'कत्तियण्णं साई विसाहा य'त्ति, अत्राप्येवं सूत्रपाठः–'ता कत्तियण्णं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि नक्खत्ता जोइंति, तंजहा– 'साईविसाहा य'त्ति, एतदपि व्यवहारनयमते, निश्चयतः पुनस्त्रीणि नक्षत्राणि कार्त्तिकीममावास्यां परिसमापयन्ति, तद्यथा–स्वातिर्विशाखा चित्रा च, तत्र प्रथमां कार्त्तिकीममावास्यां विशाखानक्षत्रं षोडशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्षु सप्तषष्टिभागेषु १६। ३६। ४ गतेषु, द्वितीयां कार्त्तिकीममावास्यां स्वातिनक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तदशसु सप्तषष्टिभागेषु ५। २२। १७ गतेषु, तृतीयां कार्त्तिकीममावास्यां चित्रानक्षत्रमष्टसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुश्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ८। ४४। ३० गतेषु, चतुर्थीं कार्तिकीममावास्यां विशाखानक्षत्रं त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुश्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु १३। २२। ४४ गतेषु, पञ्चमीं कार्त्तिकीममावास्यां चित्रानक्षत्रं एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [५३]

सप्तपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु २१।५७।५७। गतेषु समाप्तिमुपनयति,'मग्गसिरं तिण्णि, तंजहा–अणुराहा जिट्ठा मूलो' इति, अत्रापि सूत्रालापक एवम्–'ता मग्गसिरं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएंति ?, ता तिन्नि नक्खत्ता जोएंति, तंजहा–अनुराहा जिट्ठा मूलो य' इति, एतदपि व्यवहारतो निश्चयतः पुनरिमानि त्रीणि नक्षत्राणि मार्गशीर्षीममावास्यां परिसमापयन्ति, तद्यथा–विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा च, तत्र प्रथमां मार्गशीर्षीममावास्यां ज्येष्ठानक्षत्रं सप्तसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चसु सप्तषष्टिभागेषु ७।४१।५, द्वितीयां मार्गशीर्षीममावास्यामनुराधानक्षत्रमेकादशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्दशसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टादशसु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ११।१४।१८, तृतीयां मार्गशीर्षीममावस्यां विशाखानक्षत्रमेकोनत्रिंशति मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकत्रिंशति सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु २९।४९।३१, चतुर्थीं मार्गशीर्षीममावास्यामनुराधानक्षत्रं चतुर्विंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २४।२७।४५, पञ्चमीं मार्गशीर्षीममावास्यां विशाखानक्षत्रं त्रिचत्वारिंशति मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सम्बन्धिनो द्वाषष्टिभागस्याष्टापञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ४३।०।५८। परिसमापयति। 'पोसिं च दोन्नि–पुव्वासाढा उत्तरासाढा य'त्ति, अत्रैवं सूत्रालापकः'ता पोसिं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएंति ?, ता दोन्नि नक्खत्ता जोएंति, तंजहा–पुव्वासाढा य उत्तरासाढा य'त्ति, एतदपि व्यवहारत उक्तं, निश्चयतः पुनस्त्रीणि नक्षत्राणि परिसमापयन्ति, तद्यथा–मूलं पूर्वाषाढा उत्तराषाढा च, तथाहि–प्रथमां पौषीममावास्यां पूर्वाषाढानक्षत्रमष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्सु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २८।२६।६। द्वितीयां पौषीममावास्यां पूर्वाषाढानक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोरेकस्य च मुहूर्त्तस्यैकोनविंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनविंशतौ सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु २।१९।१९। तृतीयामधिकमासभाविनीं पौषीममावास्यामुत्तराषाढानक्षत्रमेकादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकोनषष्टौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ११।५९।३३, चतुर्थीं पौषीममावास्यां पूर्वाषाढानक्षत्रं पञ्चदशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु १५।५६।४६, पञ्चमीं पौषीममावास्यां मूलनक्षत्रमेकोनविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनषष्टौ सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु १९।५।५९ परिसमापयति। 'माहिं तिण्णि अभीई सवणो धणिट्ठा' इति, अत्राप्येवं सूत्रालापकः–'ता माहिण्णं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएंति ?, ता तिण्णि नक्खत्ता जोएंति, तंजहा–अभिई सवणो धणिट्ठा य' एतदपि व्यवहारतो, निश्चयतः पुनरमूनि त्रीणि नक्षत्राणि माघीममावास्यां परिसमापयन्ति, तद्यथा–उत्तराषाढा अभिजित् श्रवणश्च, तथाहि–प्रथमां माघीममावास्यां श्रवणनक्षत्रं दशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य द्वाषष्टिभागस्याष्टसु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु।१०।२६।८, द्वितीयां माघीममावास्यामभिजिन्नक्षत्रं त्रिषु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु गतेषु।३।२६।२०, तृतीयां माघीममावास्यां श्रवणनक्षत्रं त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्यैकोनचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गतेषु २३ । ३९ । ३५, चतुर्थी माघीममावास्यां अभिजिन्नक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु व्यतिक्रान्तेषु ६ । ३७ । ४७, पञ्चमीं माघीममावास्यामुत्तराषाढानक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २५ । १० । ६० परिसमापयति । 'फग्गुणीं दोन्नि तंजहा–सयभिसया पुवभद्दवय'त्ति, अत्राप्येवं सूत्रालापकः– 'ता फग्गुणीं णं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि नक्खत्ता जोएंति, तंजहा–सयभिसया पुवभद्दवया य,, एतदपि व्यवहारतो, निश्चयतः पुनरमूनि त्रीणि नक्षत्राणि फाल्गुनीममावास्यां परिसमापयन्ति, तद्यथा–धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वभद्रपदा च, तत्र प्रथमां फाल्गुनीममावास्यां पूर्वभद्रपदानक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्यैकत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य नवसु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु । ६ । ३१ । ९, द्वितीयां फाल्गुनीममावास्यां धनिष्ठानक्षत्रं विंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्षु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु व्यतिक्रान्तेषु २० । ४ । २२, तृतीया फाल्गुनीममावास्यां पूर्वाषाढानक्षत्रं चतुर्दशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुश्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु १४ । ४४ । ३६, चतुर्थीं फाल्गुनीममावास्यां शतभिषक् नक्षत्रं त्रिषु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तदशसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ३ । १७ । ४९, पञ्चमीं फाल्गुनीममावास्यां धनिष्ठानक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्केषु द्वाषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ६ । ५२ । ६२ । परिणमयति । 'चित्तिं तिन्नि, तंजहा–उत्तरभद्दवया रेवती

॥१२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्सिणी य'त्ति अत्राप्येवं सूत्रालापकः–'ता चित्तिन्नं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएंति ?, ता तिण्णि नक्खत्ता जोएंति, तंजहा–उत्तरभद्दवया रेवई अस्सिणी य' एतदपि व्यवहारतो, निश्चयतः पुनरमूनि त्रीणि नक्षत्राणि चैत्रीममावास्यां परिसमापयन्ति, तद्यथा–पूर्वभद्रपदा उत्तरभद्रपदा रेवती च, तत्र प्रथमां चैत्रीममावास्यामुत्तरभद्रपदानक्षत्रं सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य दशसु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २७।३६।१०, द्वितीयां चैत्रीममावास्यामुत्तरभद्रपदानक्षत्रमेकादशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य नवसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ११।९।२३, तृतीयां चैत्रीममावास्यां रेवतीनक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकोनपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशति सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु ५।४२।३७, चतुर्थीं चैत्रीममावास्यामुत्तरभद्रपदानक्षत्रं त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाविंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २३।२२।५०, पञ्चमीं चैत्रीममावास्यां पूर्वभद्रपदानक्षत्रं सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषष्टौ सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु २७।५७।६३ परिसमापयति। 'वइसाहीं भरणी कत्तिया य'त्ति, अत्राप्येवं सूत्रपाठः–'ता वइसाहिण्णं अमावासं कइ नक्खत्ता जोएन्ति ?, ता दोण्णि नक्खत्ता जोएंति, तंजहा–'भरणी कत्तिया य'त्ति, एतदपि व्यवहारतो, निश्चयतः पुनस्त्रीणि नक्षत्राणि वैशाखीममावास्यां परिसमापयन्ति, तानि चामूनि–तद्यथा–रेवती अश्विनी भरणी च, तत्र प्रथमां वैशाखीममावास्यामश्विनीनक्षत्रमष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यै-

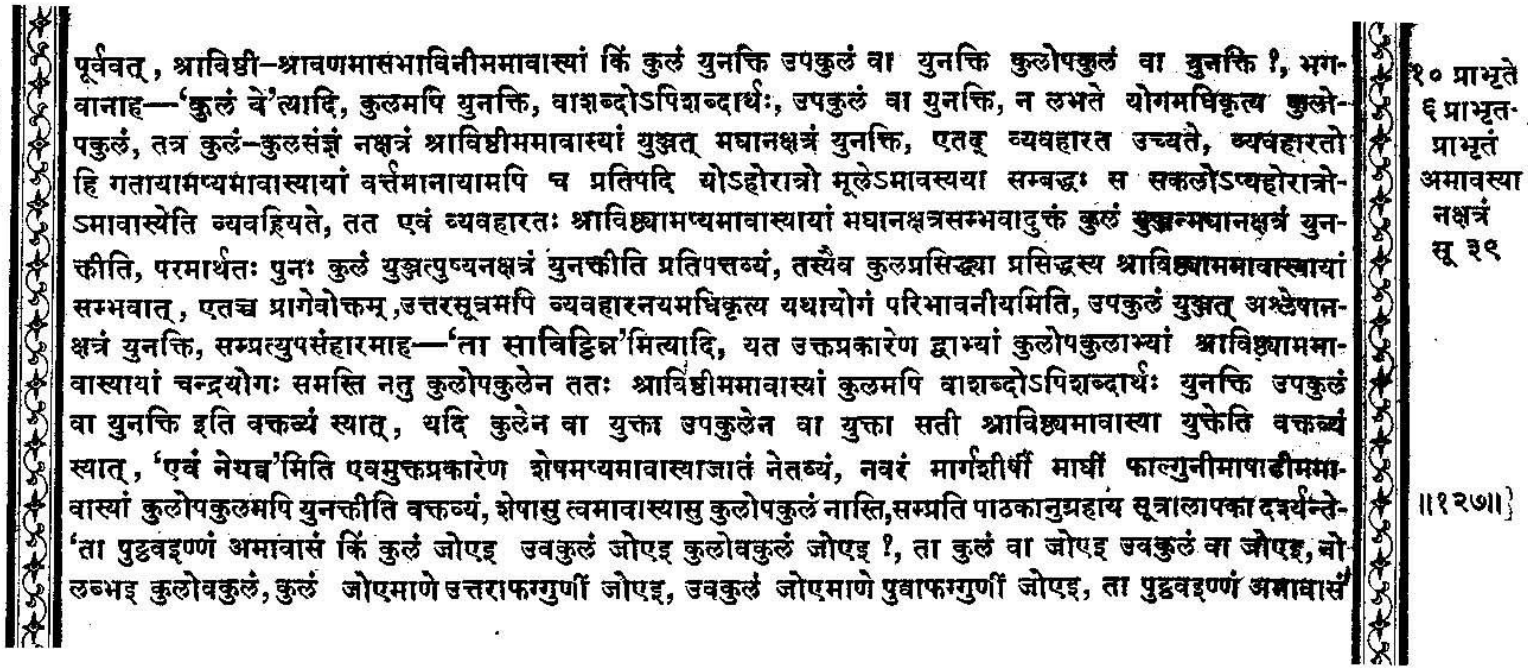
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कादशसु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २८।४१।११, द्वितीयां वैशाखीममावास्यां अश्विनीनक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोरेकस्य च मुहूर्त्तस्यैकोनचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु व्यतिक्रान्तेषु २।३९।२३, तृतीयां वैशाखीममावास्यां भरणीनक्षत्रमेकादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुःपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टात्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु । ११।५४।३८, चतुर्थीं वैशाखीममावास्यामश्विनीनक्षत्रं पञ्चदशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु १५।२७।५१, पञ्चमीं वैशाखीममावास्यां रेवतीनक्षत्रमेकोनविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सम्बन्धिनो द्वाषष्टिभागस्य सत्केषु चतुःषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु १९।०।६४। परिणमयति, 'जिट्ठामूलिं रोहिणी मिगसिरं च'त्ति, अत्राप्येवं सूत्रालापकः–'ता जेट्ठामूलिण्णं अमावासं कइ णक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति, तंजहा–रोहिणी मिगसिरो य'त्ति, एतदपि व्यवहारतः, निश्चयतः पुनर्द्वे नक्षत्रे ज्येष्ठामूलीममावास्यां परिसमापयतः, तद्यथा–रोहिणी कृत्तिका च, तत्र प्रथमां ज्येष्ठामूलीममावास्यां रोहिणीनक्षत्रमेकोनविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादशसु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु १९।४६।१२, द्वितीयां ज्येष्ठामूलीममावास्यां कृत्तिकानक्षत्रं त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतौ सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु २३।१९।२५, तृतीयां ज्येष्ठामूलीममावास्यां रोहिणीनक्षत्रं द्वात्रिंशति मुहूर्त्तेष्वेकस्य मुहूर्त्तस्यैकोनषष्टौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु समतिक्रान्तेषु ३२।५९।३९, चतुर्थीं ज्येष्ठामूलीममावास्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रोहिणीनक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वात्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ६ । ३२ । ५२ । पञ्चमीं ज्येष्ठामूलीममावास्यां कृत्तिकानक्षत्रं दशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य मुहूर्त्तस्य पञ्चसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु गतेषु १० । ५ । ६५ परिसमापयति । 'ता आसाढीं ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, आसाढीं णमिति वाक्यालङ्कारे, कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, भगवानाह—'ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा—आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्यश्च, एतदपि व्यवहारत उक्तं, परमार्थतः पुनरमूनि त्रीणि नक्षत्राणि आषाढीममावास्यां परिणमयन्ति, तद्यथा—मृगशिर आर्द्रा पुनर्वसुश्च, तत्र प्रथमामाषाढीममावास्यामार्द्रानक्षत्रं द्वादशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोदशसु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २ । ५१ । १३ । द्वितीयामाषाढीममावास्यां मृगशिरो नक्षत्रं चतुर्दशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षड्विंशतौ सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु १४ । २४ । २६। तृतीयामाषाढीममावास्यां पुनर्वसुनक्षत्रं नवसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वयोर्द्वाषष्टिभागयोरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु ९ । २ । ४० । चतुर्थीमाषाढीममावास्यां मृगशिरोनक्षत्रं सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु २७। ३७ । ५३ । पञ्चमीमाषाढीममावास्यां पुनर्वसुनक्षत्रं द्वाविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडशसु द्वाषष्टिभागेषु समतिक्रान्तेषु २२ । १६ । ० । परिसमापयतीति । तदेवं द्वादशानामप्यमावास्यानां चन्द्रयोगोपेतनक्षत्रविधिरुक्तः । सम्प्रत्येतासामेव कुलादियोजनामाह—'ता साविट्ठिन्न'मित्यादि, ता इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१२७॥

पूर्ववत्, श्राविष्ठी–श्रावणमासभाविनीममावास्यां किं कुलं युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्ति ?, भगवानाह—'कुलं वे'त्यादि, कुलमपि युनक्ति, वाशब्दोऽपिशब्दार्थः, उपकुलं वा युनक्ति, न लभते योगमधिकृत्य कुलोपकुलं, तत्र कुलं–कुलसंज्ञं नक्षत्रं श्राविष्ठीममावास्यां युञ्जत् मघानक्षत्रं युनक्ति, एतद् व्यवहारत उच्यते, व्यवहारतो हि गतायामप्यमावास्यायां वर्त्तमानायामपि च प्रतिपदि योऽहोरात्रो मूलेऽमावस्यया सम्बद्धः स सकलोऽप्यहोरात्रोऽमावास्येति व्यवह्रियते, तत एवं व्यवहारतः श्राविष्ठ्यामप्यमावास्यायां मघानक्षत्रसम्भवादुक्तं कुलं युञ्जन्मघानक्षत्रं युनक्तीति, परमार्थतः पुनः कुलं युञ्जत्पुष्यनक्षत्रं युनक्तीति प्रतिपत्तव्यं, तस्यैव कुलप्रसिद्ध्या प्रसिद्धस्य श्राविष्ठ्याममावास्यायां सम्भवात्, एतच्च प्रागेवोक्तम्,उत्तरसूत्रमपि व्यवहारनयमधिकृत्य यथायोगं परिभावनीयमिति, उपकुलं युञ्जत् अश्लेषानक्षत्रं युनक्ति, सम्प्रत्युपसंहारमाह—'ता साविट्ठिन्न'मित्यादि, यत उक्तप्रकारेण द्वाभ्यां कुलोपकुलाभ्यां श्राविष्ठ्याममावास्यायां चन्द्रयोगः समस्ति नतु कुलोपकुलेन ततः श्राविष्ठीममावास्यां कुलमपि वाशब्दोऽपिशब्दार्थः युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति इति वक्तव्यं स्यात्, यदि कुलेन वा युक्ता उपकुलेन वा युक्ता सती श्राविष्ठ्यमावास्या युक्तेति वक्तव्यं स्यात्, 'एवं नेयव्व'मिति एवमुक्तप्रकारेण शेषमप्यमावास्याजातं नेतव्यं, नवरं मार्गशीर्षीं माघीं फाल्गुनीमाषाढीममावास्यां कुलोपकुलमपि युनक्तीति वक्तव्यं, शेषासु त्वमावास्यासु कुलोपकुलं नास्ति,सम्प्रति पाठकानुग्रहाय सूत्रालापकान् दर्शयन्ते-'ता पुट्ठवइण्णं अमावासं किं कुलं जोएइ उवकुलं जोएइ कुलोवकुलं जोएइ ?, ता कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे उत्तराफग्गुणीं जोएइ, उवकुलं जोएमाणे पुव्वाफग्गुणीं जोएइ, ता पुट्ठवइण्णं अमावासं

१० प्राभृते ६ प्राभृतप्राभृतं अमावस्या नक्षत्रं सू ३९

॥१२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [५३]

कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता पोट्ठवया अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया । ता आसाइण्णं अमावासं किं कुलं जोएइ उवकुलं जोएइ कुलोवकुलं जोएइ ?, ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे चित्तानक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे हत्थनक्खत्ते जोएइ, ता आसाइण्णं अमावासं कुलं जोएइ उवकुलं जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता आसाई अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया । ता कत्तियण्णं अमावासं किं कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ कुलोवकुलं वा जोएइ ?, ता कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे विसाहानक्खत्ते जोएइ, उवकुलं वा जोएमाणे साइनक्खत्ते जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता कत्तिई अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया । ता मग्गसिरिण्णं अमावासं किं कुलं जोएइ उवकुलं जोएइ कुलोवकुलं वा जोएइ ?, ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ, कुलं जोएमाणे मूलनक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे जेट्ठानक्खत्ते जोएइ, कुलोवकुलं जोएमाणे अणुराहानक्खत्ते जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता कुलोवकुलेण वा जुत्ता मागसिरि णं अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिया । पोसिण्णं अमावासं किं कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ कुलोवकुलं वा जोएइ ?, कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे पुव्वासाढा णक्खत्ते जोएइ उवकुलं जोएमाणे उत्तरासाढा णक्खत्ते जोएइ, ता कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता पोसी णं अमावासा जुत्तत्ति वत्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [५३]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१२८॥

वं सिया'इत्यादि, निश्चयतः पुनः कुलादियोजना प्रागुक्तं चन्द्रयोगमधिकृत्य स्वयं परिभावनीया ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- ६ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य षष्ठं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति सप्तममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः–'पौर्णमास्यमावास्यानां चन्द्रयोगमधिकृत्य सन्निपातो वक्तव्यः' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते सण्णिवाते आहितेति वदेज्जा ?, ता जया णं सावित्ठीपुण्णिमा भवति तता णं माही अमावासा भवति, जया णं माही पुण्णिमा भवति तता णं सावित्ठी अमावासा भवति, जता णं पुट्ठवती पुण्णिमा भवति तता णं फग्गुणी अमावासा भवति, जया णं फग्गुणी पुण्णिमा भवति तता णं पुट्ठवती अमावासा भवति, जया णं आसाई पुण्णिमा भवति तता णं चेत्ती अमावासा भवति, जया णं चित्ती पुण्णिमा भवति तया णं आसोइ अमावासा भवति, जया णं कत्तियी पुण्णिमा भवति तता णं वेसाही अमावासा भवति, जता णं वेसाही पुण्णिमा भवति तता णं कत्तिया अमावासा भवति, जया णं मग्गसिरी पुण्णिमा भवति तता णं जेट्ठामूले अमावासा भवति, जता णं जेट्ठामूले पुण्णिमा भवति तता णं मग्गसिरी अमावासा भवति, जता णं पोसी पुण्णिमा भवति तता णं आसाढी अमावासा भवति, जता णं आसाढी पुण्णिमा भवति तता णं पोसी अमावासा भवति (सूत्रं ४०) दसमस्स पाहुडस्स सत्तमं पाहुडपाहुडं समत्तं॥

१० प्राभृते ७ प्राभृत-प्राभृतं पूर्णिमामावास्या सन्नि पातः सू४०

॥१२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

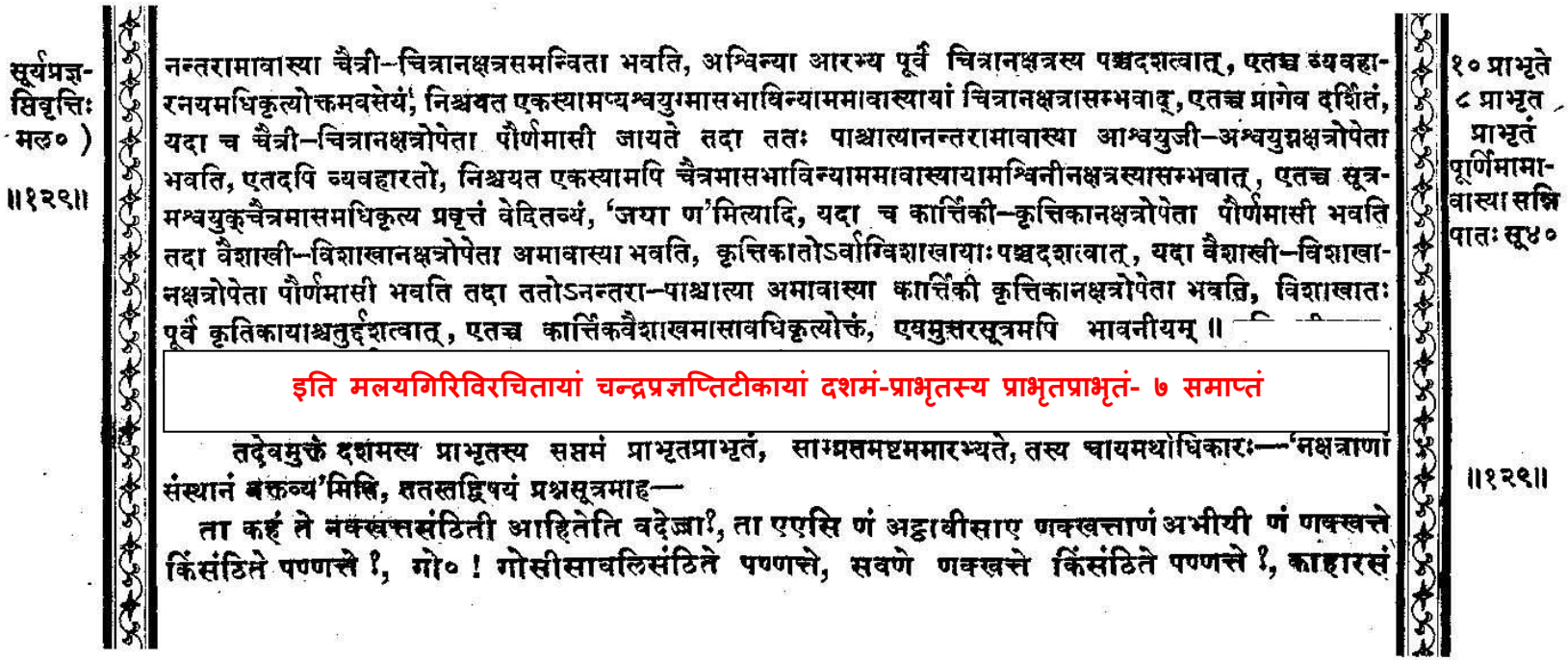
अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ६ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ७ आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [४०]

दीप अनुक्रम [५४]

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण भगवन् ! त्वया चन्द्रयोगमधिकृत्य पौर्णमास्यमावास्यानां सन्निपात आख्यात इति वदेत् ?, एवमुक्ते भगवानाह—'ता जया ण'मित्यादि, इह व्यवहारनयमतेन यस्मिन्नक्षत्रे पौर्णमासी भवति तत आरभ्यार्वाक्तने पञ्चदशे चतुर्दशे वा नक्षत्रे नियमतोऽमावास्या, ततो यदा श्राविष्ठी–श्रविष्ठानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा तस्यामर्वाक्तनी अमावास्या माघी–मघानक्षत्रयुक्ता भवति, मघानक्षत्रादारभ्य श्रविष्ठानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, एतच्च श्रावणमासमधिकृत्य भावनीयं, यदा तु णमिति वाक्यालङ्कारे माघी–मघानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा पाश्चात्या अमावास्या श्राविष्ठी–श्रविष्ठायुक्ता भवति, मघात आरभ्य पूर्वं श्रविष्ठानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, एतच्च माघमासमधिकृत्य वेदितव्यं, तथा 'ता जया ण'मित्यादि, तत्र यदा णमिति वाक्यालङ्कारे प्रोष्ठपदी–उत्तरभद्रपदायुक्ता पौर्णमासी भवति तदा णमिति प्राग्वत् पाश्चात्या अमावास्या फाल्गुनी–उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रयुक्ता भवति, उत्तरभद्रपदात आरभ्य पूर्वमुत्तरफाल्गुनीनक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, यत्त्वपान्तराले अभिजिन्नक्षत्रं तत्स्तोककालत्वात् प्रायो न व्यवहारपथमवतरति, तथा च समवायाङ्गसूत्रम्—'जंबुद्दीवे दीवे अभिईवज्जेहिं सत्तावीसाए नक्खत्तेहिं संववहारो वट्टइ'त्ति, ततः सदपि तन्न गण्यते इति पञ्चदशमेवोत्तरभद्रपदात आरभ्य पूर्वमुत्तरफाल्गुनीनक्षत्रमिति, एतच्च भाद्रपदमासमधिकृत्योक्तमवसेयं,'जया ण'मित्यादि, यदा च फाल्गुनी–उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा पाश्चात्या अमावास्या प्रौष्ठपदी–उत्तरभद्रपदोपेता भवति, उत्तरफाल्गुन्या आरभ्य पूर्वमुत्तरभद्रपदानक्षत्रस्य चतुर्दशत्वात्, इदं च फाल्गुनमासमधिकृत्योक्तं, 'जया ण'मित्यादि, यदा च आश्वयुजी–अश्वयुग्नक्षत्रोपेता पौर्णमासी भवति तदा पाश्चात्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः मल०) ॥१२९॥

नन्तरामावास्या चैत्री–चित्रानक्षत्रसमन्विता भवति, अश्विन्या आरभ्य पूर्वं चित्रानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, एतच्च व्यवहारनयमधिकृत्योक्तमवसेयं, निश्चयत एकस्यामप्यश्वयुग्मासभाविन्याममावास्यायां चित्रानक्षत्रासम्भवाद्, एतच्च प्रागेव दर्शितं, यदा च चैत्री–चित्रानक्षत्रोपेता पौर्णमासी जायते तदा ततः पाश्चात्यानन्तरामावास्या आश्वयुजी–अश्वयुग्नक्षत्रोपेता भवति, एतदपि व्यवहारतो, निश्चयत एकस्यामपि चैत्रमासभाविन्याममावास्यायामश्विनीनक्षत्रस्यासम्भवात्, एतच्च सूत्रमश्वयुक्चैत्रमासमधिकृत्य प्रवृत्तं वेदितव्यं, 'जया ण'मित्यादि, यदा च कार्त्तिकी–कृत्तिकानक्षत्रोपेता पौर्णमासी भवति तदा वैशाखी–विशाखानक्षत्रोपेता अमावास्या भवति, कृत्तिकातोऽर्वाग्विशाखायाः पञ्चदशत्वात्, यदा वैशाखी–विशाखानक्षत्रोपेता पौर्णमासी भवति तदा ततोऽनन्तरा–पाश्चात्या अमावास्या कार्त्तिकी कृत्तिकानक्षत्रोपेता भवति, विशाखातः पूर्वं कृतिकायाश्चतुर्दशत्वात्, एतच्च कार्त्तिकवैशाखमासावधिकृत्योक्तं, एवमुत्तरसूत्रमपि भावनीयम् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- ७ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य सप्तमं प्राभृतप्राभृतं, साम्प्रतमष्टममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'नक्षत्राणां संस्थानं वक्तव्य'मिति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

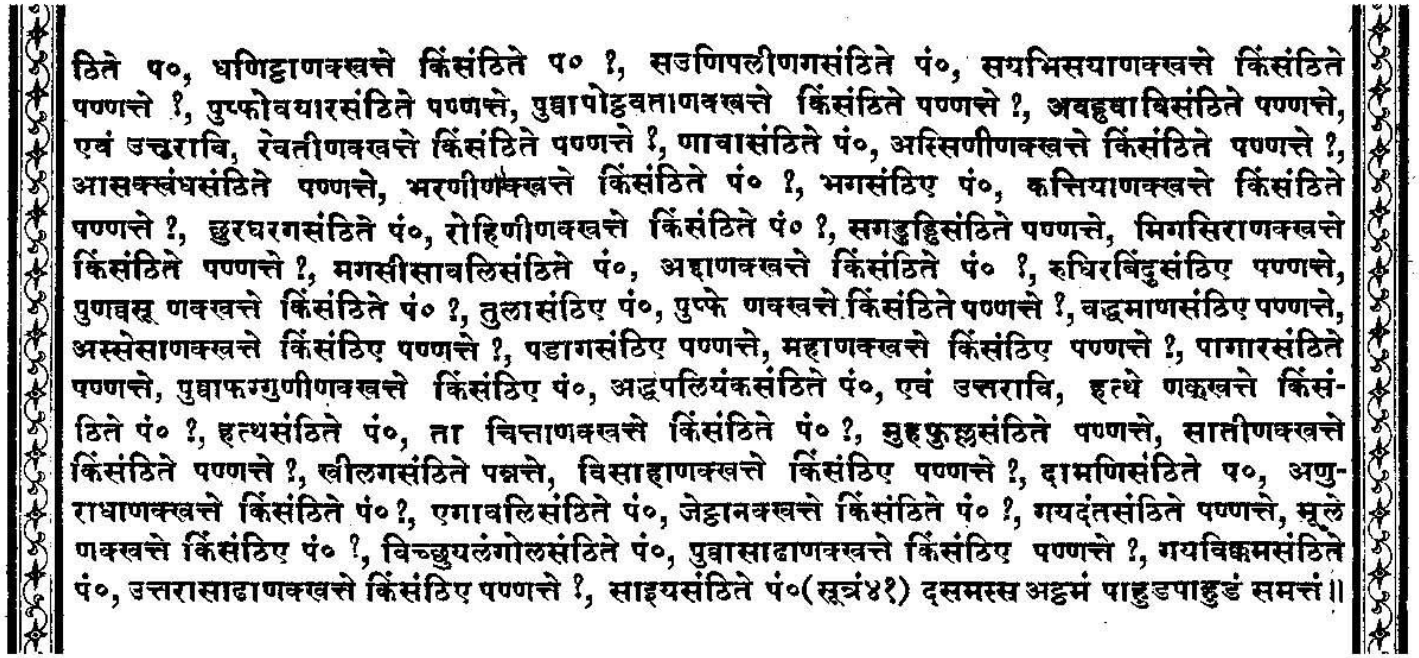
ता कहं ते नक्खत्तसंठिती आहितेति वदेज्जा?, ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभीयी णं णक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, गो० ! गोसीसावलिसंठिते पण्णत्ते, सवणे णक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, काहारसं

१० प्राभृते ८ प्राभृत प्राभृतं पूर्णिमामावास्या सन्निपातः सू४०

॥१२९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ७ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ८ आरभ्यते



ठिते प०, धणिट्ठाणक्खत्ते किंसंठिते प० ?, सउणिपलीणगसंठिते पं०, सयभिसयाणक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, पुप्फोवयारसंठिते पण्णत्ते, पुव्वापोट्ठवताणक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, अवट्ठयासंठिते पण्णत्ते, एवं उत्तरावि, रेवतीणक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, णावासंठिते पं०, अस्सिणीणक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, आसक्खंधसंठिते पण्णत्ते, भरणीणक्खत्ते किंसंठिते पं० ?, भगसंठिए पं०, कत्तियाणक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, छुरघरगसंठिते पं०, रोहिणीणक्खत्ते किंसंठिते पं० ?, सगडुद्धिसंठिते पण्णत्ते, मिगसिराणक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, मगसीसावलिसंठिते पं०, अद्दाणक्खत्ते किंसंठिते पं० ?, रुधिरबिंदुसंठिए पण्णत्ते, पुणव्वसू णक्खत्ते किंसंठिते पं० ?, तुलासंठिए पं०, पुप्फे णक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, वद्धमाणसंठिए पण्णत्ते, अस्सेसाणक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते ?, पडागसंठिए पण्णत्ते, महाणक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते ?, पागारसंठिते पण्णत्ते, पुव्वाफग्गुणीणक्खत्ते किंसंठिए पं०, अद्धपलियंकसंठिते पं०, एवं उत्तरावि, हत्थे णक्खत्ते किंसंठिते पं० ?, हत्थसंठिते पं०, ता चित्ताणक्खत्ते किंसंठिते पं० ?, मुहफुल्लसंठिते पण्णत्ते, सातीणक्खत्ते किंसंठिते पण्णत्ते ?, खीलगसंठिते पन्नत्ते, विसाहाणक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते ?, दामणिसंठिते प०, अणुराधाणक्खत्ते किंसंठिते पं० ?, एगावलिसंठिते पं०, जेट्ठानक्खत्ते किंसंठिते पं० ?, गयदंतसंठिते पण्णत्ते, मूले णक्खत्ते किंसंठिए पं० ?, विच्छुयलंगोलसंठिते पं०, पुव्वासाढाणक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते ?, गयविक्कमसंठिते पं०, उत्तरासाढाणक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते ?, साइयसंठिते पं०(सूत्रं४१) दसमस्स अट्ठमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [५५]

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् , कथं ?—केन प्रकारेण भगवन् ! नक्षत्राणां संस्थितिः—संस्थानमाख्यातेति वदेत् ?, एवमुक्त्वा भूयः प्रत्येकं प्रश्नं विदधाति–'ता'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, एतेषामनन्तरोदितानामष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये यदभिजिन्नक्षत्रं तत् 'किंसंठितं'ति कस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्य तत्किंसंस्थितं प्रज्ञप्तं ?, भगवानाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, एतेषाममन्तरोदितानामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्येऽभिजिन्नक्षत्रं गोशीर्षावलिसंस्थितं प्रज्ञप्तं, गोः शीर्षं गोशीर्षं तस्यावली–तत्पुद्गलानां दीर्घरूपा श्रेणिः तत्समं संस्थानं प्रज्ञप्तं, एवं शेषाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, नवरं दामनी–पशुबन्धनं, शेषं प्रायः सुगमं, संस्थानसङ्ग्राहिकाश्चेमा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसत्कास्तिस्रो गाथाः—'गोसीसावलि १ काहार २ सउणि ३ पुप्फोवयार ४ थावी ५ य [उत्तराद्धयं] । णावा ६ आसक्खंधग ७ भग ८ छुरघरए ९ य सगडुद्धी १० ॥ १ ॥ मिगसीसावलि ११ रुधिरबिंदु १२ तुल १३ वद्धमाणग १४ पडागा १५ । पागारे १६ पल्लंके १७ [फाल्गुनीद्वयं] हत्थे १८ मुहफुल्लए १९ चेव ॥ २ ॥ खीलग २० दामणि २१ एगावली २२ य गयदंत २३ विच्छुयअले २४ य । गयविक्कमे २५ य तत्तो सीहनिसाई २६ य संठाणा ॥ ३ ॥"

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- ८ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्याष्टमं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति नवममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'प्रतिनक्षत्रं ताराप्रमाणं वक्तव्य' मिति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ८ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ९ आरभ्यते

– ता कहं ते तारग्गे आहितेति वदेज्जा ?, ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभीईणक्खत्ते कतितारे पं० ?, तितारे पण्णत्ते, सवणेणक्खत्ते कतितारे पं० ?, तितारे पण्णत्ते, धनिट्ठाणक्खत्ते कतितारे प० ?, पण तारे पण्णत्ते, सतभिसयाणक्खत्ते कतितारे पं० ?, सततारे पण्णत्ते, पुव्वापोट्ठवता कतितारे पं० ?, दुतारे पण्णत्ते, एवं उत्तरावि, रेवतीणक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?, बत्तीसतितारे पण्णत्ते, अस्सिणीणक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?, तितारे पण्णत्ते, एवं सव्वे पुच्छिज्जंति, भरणी तितारे पं०, कत्तिया छतारे पण्णत्ते, रोहिणी पंचतारे पण्णत्ते, सवणे तितारे पं०, अद्दा एगतारे पं०, पुणव्वसू पंचतारे पण्णत्ते, पुस्से णक्खत्ते तितारे प०, अस्सेसा छत्तारे पन्नत्ते, महा सत्ततारे पण्णत्ते, पुव्वाफग्गुणी दुतारे पन्नत्ते, एवं उत्तरावि, हत्थे पंचतारे पण्णत्ते, चित्ता एकतारे पण्णत्ते, साती एकतारे पण्णत्ते, विसाहा पंचतारे पं०, अणुराहा पंचतारे पं०, जेट्ठा तितारे पं०, मूले एगतारे पण्णत्ते, पुव्वासाढा चउतारे पण्णत्ते, उत्तरासाढाणक्खत्ते चउतारे पं० ॥ (सूत्रं ४२) दसमस्स पाहुडस्स नवमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण ते–त्वया भगवन् ! नक्षत्राणां 'ताराग्रं' ताराप्रमाणमाख्यातं इति वदेत्, एवं सामान्यतः प्रश्नं कृत्वा सम्प्रति प्रतिनक्षत्रं पृच्छति—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणामभिजिन्नक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तं, एवं शेषाण्यपि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि भावनीयानि, ताराप्रमाणसङ्ग्राहिके चेमे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसत्के गाथे—"तिग १ तिग २ पंचग ३ सय ४ दुग ५ दुग ६ बत्तीसं ७ तिगं ८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४२]

दीप अनुक्रम [५६]

तह तिगं ९ च । छ १० प्पंचग ११ तिग १२ इक्कग १३ पंचग १४ तिग १५ इक्कगं १६ चेव ॥ १ ॥ सत्तग १७ दुग १८ दुग १९ पंचग २० इक्कि २१ क्कग २२ पंच २३ चउ २४ तिगं २५ चेव । इक्कारसग २६ चउक्कं २७ चउक्कगं २८ चेव तारग्गं ॥ २ ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- ९ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य नवमं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति दशममारभ्यते—तस्य चायमर्थाधिकारः—यथा 'कति नक्षत्राणि स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया कं मासं नयन्ती'ति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते णेता आहितेति वदेज्जा ?, ता वासाणं पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, ता चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तंजहा–उत्तरासाढा अभिई सवणो धणिट्ठा, उत्तरासाढा चोद्दस अहोरत्ते णेति, अभिई सत्त अहोरत्ते णेति, सवणे अट्ठ अहोरत्ते णेति धणिट्ठा एगं अहोरत्तं नेइ, तंसि णं मासंसि चउरंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पादाइं चत्तारि य अंगुलाणि पोरिसी भवति। ता वासाणं दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, ता चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं०–धणिट्ठा सतभिसया पुव्वपोट्ठवता उत्तरपोट्ठवया, धणिट्ठा चोद्दस अहोरत्तं णेति, सयभिसया सत्त अहोरत्ते णेति, पुव्वाभद्दवया अट्ठ अहोरत्ते णेइ, उत्तरापोट्ठवता एगं अहोरत्तं णेति, तंसि णं मासंसि अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पदाइं अट्ठ अंगुलाइं पोरिसी भवति। ता वासाणं ततियं मासं कति णक्खत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ९ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १० आरभ्यते

णेंति ?, ता तिण्णि णक्खत्ता णिंति, तं०–उत्तरपोट्ठवता रेवती अस्सिणी, उत्तरापोट्ठवता चोद्दस अहोरत्ते णेति, रेवती पण्णरस अहोरत्ते णेति, अस्सिणी एगं अहोरत्तं णेइ, तंसिं च णं मासंसि दुवालसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमदिवसे लेहत्थाइं तिण्णि पदाइं पोरिसी भवति, ता वासाणं चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, ता तिन्नि नक्खत्ता णेंति, तं०–अस्सिणी भरणी कत्तिया, अस्सिणी चउद्दस अहोरत्ते णेइ, भरणी पन्नरस अहोरत्ते णेइ, कत्तिया एगं अहोरत्तं णेइ, तंसिं च णं मासंसि सोलसंगुला पोरिसी छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिन्नि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ। ता हेमंताणं पढमं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ?, ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं०–कत्तिया रोहिणी संठाणा, कत्तिया चोद्दस अहोरत्ते णेति, रोहिणी पन्नरस अहोरत्ते णेति, संठाणा एगं अहोरत्तं णेति, तंसि च णं मासंसि वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पदाइं अट्ठ अंगुलाइं पोरिसी भवति। ता हेमंताणं दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं०–संठाणा अद्दा पुणव्वसू पुस्सो, संठाणा चोद्दस अहोरत्ते णेति अद्दा सत्त अहोरत्ते णेति पुणव्वसू अट्ठ अहोरत्ते णेति पुस्से एगं अहोरत्तं णेति, तंसि च णं मासंसि चउवीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाणि चत्तारि पदाइं पोरिसी भवति। ता हेमंताणं ततियं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं०–पुस्से अस्सेसा महा, पुस्से चोद्दस अहोरत्ते णेति, अस्सेसा पंचदस अहोरत्ते णेति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महा एगं अहोरत्तं णेति, तंसि च णं मासंसि वीसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पदाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवति। ता हेमंताणं चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, ता तिण्णि नक्खत्ता णेंति, तं०–महा पुव्वफग्गुणी उत्तराफग्गुणी, महा चोद्दस अहोरत्ते णेति, पुव्वाफग्गुणी पनरस अहोरत्ते णेति, उत्तराफग्गुणी एगं अहोरत्तं णेति, तंसि च णं मासंसि सोलस अंगुलाइं पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पदाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवति । ता गिम्हाणं पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, ता तिन्नि णक्खत्ता णेंति, तं०–उत्तराफग्गुणी हत्थो चित्ता, उत्तराफग्गुणी चोद्दस अहोरत्ते णेति, हत्थो पण्णरस अहोरत्ते णेति, चित्ता एगं अहोरत्तं णेइ, तंसि च णं मासंसि दुवालसअंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइ य तिण्णि पदाइं पोरिसी भवति। ता गिम्हाणं बितियं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं०–चित्ता साई विसाहा, चित्ता चोद्दस अहोरत्ते णेति, साती पण्णरस अहोरत्ते णेति, विसाहा एगं अहोरत्तं णेति, तंसि च णं मासंसि अट्ठंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पदाइं अट्ठ अंगुलाइं पोरिसी भवति । गिम्हाणं ततियं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, ता ति णक्खत्ता णेंति, तं०–विसाहा अणुराधा जेट्ठामूलो, विसाहा चोद्दस अहोरत्ते णेति, अणुराधा सत्त (पण्णरस), जेट्ठामूलं एगं अहोरत्तं णेति, तंसि च णं मासंसि चउरंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरिमे दिवसे दो पादाणि य चत्तारि अंगुलाणि पोरिसी भवति, ता गिम्हाणं चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं०–मूलो पुव्वासाढा उत्तरासाढा, मूलो चोद्दस अहोरत्ते णेति, पुव्वासाढा पण्णरस अहोरत्ते णेति, उत्तरासाढा एगं अहोरत्तं णेइ, तंसि च णं मासंसि वट्टाए समचउरंससंठिताए णग्गोधपरिमंडलाए सकायमणुरंगिणीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टति, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइं दो पदाइं पोरिसीए भवति (सूत्रं ४३) दसमस्स पाहुडस्स दसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १०–१० ॥

'ता कहं ते नेता आहियत्ति वएज्जा' 'ता' इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण भगवंस्ते–त्वया स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापको नक्षत्ररूपो नेता आख्यात इति वदेत् ?, एतदेव प्रतिमासं पिपृच्छिषुराह–'ता वासाण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् वर्षाणां–वर्षाकालस्य चतुर्मासप्रमाणस्य प्रथमं मासं श्रावणलक्षणं कति नक्षत्राणि स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया नयन्ति–गमयन्ति ?, भगवानाह–'ता चत्तारी'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, चत्वारि नक्षत्राणि स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया क्रमेण नयन्ति, तद्यथा–उत्तरासाढा अभिजित् श्रवणो धनिष्ठा च, तत्रोत्तराषाढा प्रथमान् चतुर्दश अहोरात्रान् स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया नयति, तदनन्तरमभिजिन्नक्षत्रं सप्ताहोरात्रान्नयति, ततः परं श्रवणनक्षत्रमष्टौ अहोरात्रान्नयति, एवं च सर्वसङ्कलनया श्रावणमासस्यैकोनत्रिंशदहोरात्रा गताः, ततः परं श्रावणमासस्य सम्बन्धिनं चरममेकमहोरात्रं धनिष्ठानक्षत्रं स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया नयति, एवं चत्वारि नक्षत्राणि श्रावणं मासं नयन्ति, 'तस्सिं च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च श्रावणे मासे चतुरङ्गुलपौरुष्या–चतुरङ्गुलाधिकपौरुष्या छायया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्योऽनु–प्रतिदिवसं परावर्त्तते, किमुक्तं भवति ?–श्रावणमासे प्रथमादहोरात्रादारभ्य प्रतिदिनमन्यान्यमण्डलसङ्क्रान्त्या तथा कथञ्चनापि परावर्त्तते यथा तस्य श्रावणमासस्य पर्यन्ते चतुरङ्गुलाधिका द्विपदा पौरुषी भवति, तदेवाह–'तस्स ण'मित्यादि, तस्य श्रावणमासस्य चरमे दिवसे द्वे पदे चत्वारि चाङ्गुलानि पौरुषी भवति, 'ता वासाण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् वर्षाणां–वर्षाकालस्य चतुर्मासप्रमाणस्य द्वितीयं भाद्रपदलक्षणं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ?, अस्य वाक्यस्य भावार्थः प्राग्वद्भावनीयः, भगवानाह–'ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा–धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वप्रोष्ठपदा उत्तरप्रोष्ठपदा च, तत्र धनिष्ठा तस्मिन् भाद्रपदे मासे प्रथमान् चतुर्दश अहोरात्रान् स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया नयति, तदनन्तरं शतभिषक्नक्षत्रं सप्ताहोरात्रान् ततः परमष्टावहोरात्रान् पूर्वप्रोष्ठपदा तदनन्तरमेकमहोरात्रमुत्तरप्रोष्ठपदा, एवमेनं भाद्रपदं मासं चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, 'तंसि च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च णमिति वाक्यालङ्कारे, मासे भाद्रपदे अष्टाङ्गुलपौरुष्या–अष्टाङ्गुलाधिकपौरुष्या छायया सूर्योऽनु–प्रतिदिवसं परावर्त्तते, अत्राप्ययं भावार्थः–भाद्रपदे मासे प्रथमादहोरात्रादारभ्य प्रतिदिवसमन्यान्यमण्डलसङ्क्रान्त्या तथा कथमपि परावर्त्तते यथा तस्य भाद्रपदस्य मासस्यान्ते अष्टाङ्गुलिका पौरुषी भवति, एतदेवाह–'तस्स ण'मित्यादि सुगमं, एवं शेषमासगतान्यपि सूत्राणि भावनीयानि, नवरं 'लेहत्थाइं तिन्नि पयाइ'न्ति रेखा–पादपर्यन्तवर्त्तिनी सीमा तत्स्थानि त्रीणि पदानि पौरुषी भवति, किमुक्तं भवति ?–परिपूर्णानि त्रीणि पदानि पौरुषी भवति, एषा चतुरङ्गुला प्रतिमासं वृद्धिस्तावदवसेया यावत्पौषो मासः, तदनन्तरं प्रतिमासं चतुरङ्गुला हानिर्वक्तव्या, सा च तावत् यावदाषाढो मासः, तेनाषाढपर्यन्ते द्विपदा

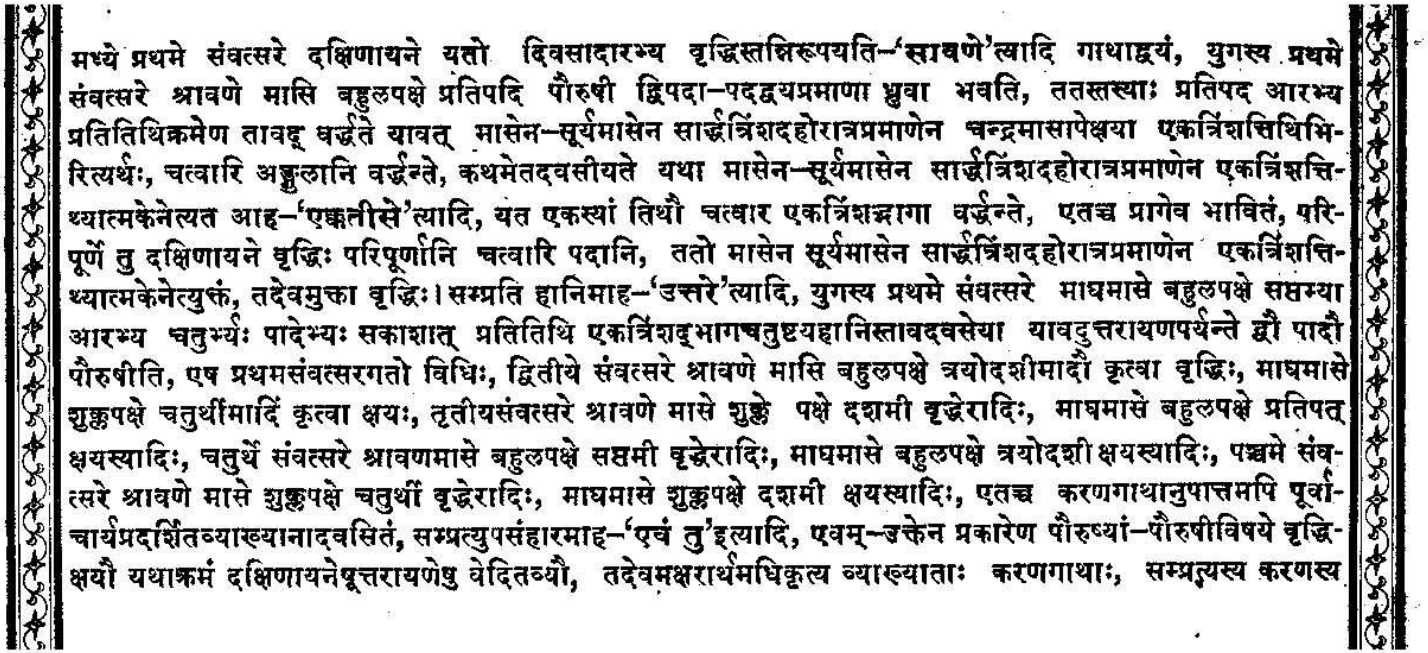
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पौरुषी भवति, इदं च पौरुषीपरिमाणं व्यवहारत उक्तं, निश्चयतः सार्द्धैस्त्रिंशता अहोरात्रैश्चतुरङ्गुला वृद्धिर्हानिर्वा वेदितव्या, तथा च निश्चयतः पौरुषीपरिमाणप्रतिपादनार्थमिमाः पूर्वाचार्यप्रदर्शिताः करणगाथाः–"पंचे पन्नरसगुणे तिहि सहिए पोरिसीयँ आणयणे। छलसीयसयविभत्ते जं लद्धं तं वियाणाहि ॥ १ ॥ जइ होइ विसमलद्धं दक्खिणमयणं ठविज्ज नायव्वं। अह हवइ समं लद्धं नायव्वं उत्तरं अयणं ॥ २ ॥ अयणगए तिहिरासी चतुग्गुणे पक्खपाय भइयव्वं। जं लद्धमंगुलाणि खयवुड्ढी पोरुसीए उ ॥ ३ ॥ दक्खिणवुड्ढी दुपया अंगुलयाणं तु होइ नायव्वा। उत्तर अयणे हाणी कायव्वा चउहि पाएहिं ॥ ४ ॥ सावणबहुलपडिवया दुपया पुण पोरिसी धुवा होइ। चत्तारि अंगुलाइं मासेणं वड्ढए तत्तो ॥ ५ ॥ इक्कत्तीसइ भागा तिहिए पुण अंगुलस्स चत्तारि। दक्खिणअयणे वुड्ढी जाव उ चत्तारि उ पयाइं ॥ ६ ॥ उत्तर अयणे हाणी चउहिं पायाहि जाव दो पाया। एवं तु पोरिसीए वुड्ढिखया हुंति नायव्वा ॥ ७ ॥ वुड्ढी वा हाणी वा जावइया पोरिसीए दिट्ठा उ। तत्तो दिवसगएणं जं लद्धं तं खु अयणगयं ॥ ८ ॥" एतासां क्रमेण व्याख्या–युगमध्ये यस्मिन् पर्वणि यस्यां तिथौ पौरुषीपरिमाणं ज्ञातुमिष्यते ततः पूर्वं युगादित आरभ्य यानि पर्वाण्यतिक्रान्तानि तानि त्रिंयन्ते, धृत्वा च पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते, गुणयित्वा च विवक्षितायास्तिथेर्याः प्रागतिक्रान्तास्तिथयस्ताभिः सहितानि क्रियन्ते, कृत्वा च षडशीत्यधिकेन शतेन तेषां भागो ह्रियते, इह एकस्मिन्नयने त्र्यशीत्यधिकमण्डलशतपरिमाणे चन्द्रनिष्पादितानां तिथीनां षडशीत्यधिकं शतं भवति, ततस्तेन भागहरणं भागे च हृते यल्लब्धं तद्विजानीहि सम्यगवधारयेत्यर्थः। तत्र यदि लब्धं विषमं भवति यथा एकस्त्रिकः पञ्चकः सप्तको नवको वा तदा तत्पर्यन्तवर्त्ति दक्षिणमयनं ज्ञातव्यं, अथ भवति लब्धं समं तद्यथा–द्विकश्चतुष्कः षट्को ऽ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ष्टको दशको वा तदा तत्पर्यन्तवर्त्ति उत्तरायणमवसेयं, तदेवमुक्तो दक्षिणायनोत्तरायणपरिज्ञानोपायः। सम्प्रति षडशीत्यधिकेन शतेन भागे हृते यच्छेषमवतिष्ठते यदिवा भागासम्भवेन यच्छेषं तिष्ठति तद्गतविधिमाह–'अयणगए'इत्यादि, यः पूर्वं भागे हृते भागासम्भवे वा शेषीभूतोऽयनगतस्तिथिराशिर्वर्त्तते सँ चतुर्भिर्गुण्यते, गुणयित्वा च पर्वपादेन–युगमध्ये यानि सर्वसङ्ख्यया (ग्रंथाग्रं० ४०००) पर्वाणि चतुर्विंशत्यधिकशतसङ्ख्यानि तेषां पादेन–चतुर्थेनांशेन एकत्रिंशता इत्यर्थः, तथा भागे हृते यल्लब्धं तान्यङ्गुलानि चकारादङ्गुलांशाश्च पौरुष्याः क्षयवृद्ध्या ज्ञातव्यानि, दक्षिणायने पदध्रुवराशेरुपरि वृद्धौ ज्ञातव्यानि, उत्तरायणे पदध्रुवराशेः क्षये ज्ञातव्यानीत्यर्थः, अथैवंभूतस्य गुणकारस्य भागहारस्य वा कथमुत्पत्तिः ?, उच्यते, यदि षडशीत्यधिकेन तिथिशतेन चतुर्विंशतिरङ्गुलानि क्षये वृद्धौ वा प्राप्यन्ते, तत एकस्यां तिथौ का वृद्धिः क्षयो वा ?, राशित्रयस्थापना १८६। २४। १ अत्रान्त्येन राशिना एकलक्षणेन मध्यमो राशिश्चतुर्विंशतिरूपो गुण्यते, जातः स तावानेव, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति वचनात्, तत आद्येन राशिना षडशीत्यधिकशतरूपेण भागो ह्रियते, तत्रोपरितनराशेः स्तोकत्वाद्भागो न लभ्यते, ततः छेद्यच्छेदकराश्योः षट्केनापवर्त्तना, जात उपरितनो राशिश्चतुष्करूपोऽधस्तन एकत्रिंशत्, लब्धमेकस्यां तिथौ चत्वार एकत्रिंशद्भागाः क्षये वृद्धौ वेति चतुष्को गुणकार उक्त एकत्रिंशद् भागहार इति, इह यल्लब्धं तान्यङ्गुलानि क्षये वृद्धौ वा ज्ञातव्यानि इत्युक्तं, तत्र कस्मिन्नयने कियत्प्रमाणं ध्रुवराशेरुपरि वृद्धौ कस्मिन् वा अयने किंप्रमाणं ध्रुवराशेः क्षये इत्येतन्निरूपणार्थमाह–"दक्खिणवुड्ढी"इत्यादि, दक्षिणायने द्विपदात्–पदद्वयस्योपरि अङ्गुलानां वृद्धिर्ज्ञातव्या, उत्तरायणे चतुर्भ्यः पादेभ्यः सकाशादङ्गुलानां हानिः, तत्र युग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



मध्ये प्रथमे संवत्सरे दक्षिणायने यतो दिवसादारभ्य वृद्धिस्तन्निरूपयति–'सावणे'त्यादि गाथाद्वयं, युगस्य प्रथमे संवत्सरे श्रावणे मासि बहुलपक्षे प्रतिपदि पौरुषी द्विपदा–पदद्वयप्रमाणा ध्रुवा भवति, ततस्तस्याः प्रतिपद आरभ्य प्रतितिथिक्रमेण तावद् वर्द्धते यावत् मासेन–सूर्यमासेन सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणेन चन्द्रमासापेक्षया एकत्रिंशत्तिथिभिरित्यर्थः, चत्वारि अङ्गुलानि वर्द्धन्ते, कथमेतदवसीयते यथा मासेन–सूर्यमासेन सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणेन एकत्रिंशत्तिथ्यात्मकेनेत्यत आह–'एक्कतीसे'त्यादि, यत एकस्यां तिथौ चत्वार एकत्रिंशद्भागा वर्द्धन्ते, एतच्च प्रागेव भावितं, परिपूर्णे तु दक्षिणायने वृद्धिः परिपूर्णानि चत्वारि पदानि, ततो मासेन सूर्यमासेन सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणेन एकत्रिंशत्तिथ्यात्मकेनेत्युक्तं, तदेवमुक्ता वृद्धिः। सम्प्रति हानिमाह–'उत्तरे'त्यादि, युगस्य प्रथमे संवत्सरे माघमासे बहुलपक्षे सप्तम्या आरभ्य चतुर्भ्यः पादेभ्यः सकाशात् प्रतितिथि एकत्रिंशद्भागचतुष्टयहानिस्तावदवसेया यावदुत्तरायणपर्यन्ते द्वौ पादौ पौरुषीति, एष प्रथमसंवत्सरगतो विधिः, द्वितीये संवत्सरे श्रावणे मासि बहुलपक्षे त्रयोदशीमादौ कृत्वा वृद्धिः, माघमासे शुक्लपक्षे चतुर्थीमादिं कृत्वा क्षयः, तृतीयसंवत्सरे श्रावणे मासे शुक्ले पक्षे दशमी वृद्धेरादिः, माघमासे बहुलपक्षे प्रतिपत् क्षयस्यादिः, चतुर्थे संवत्सरे श्रावणमासे बहुलपक्षे सप्तमी वृद्धेरादिः, माघमासे बहुलपक्षे त्रयोदशी क्षयस्यादिः, पञ्चमे संवत्सरे श्रावणे मासे शुक्लपक्षे चतुर्थी वृद्धेरादिः, माघमासे शुक्लपक्षे दशमी क्षयस्यादिः, एतच्च करणगाथानुपात्तमपि पूर्वाचार्यप्रदर्शितव्याख्यानादवसितं, सम्प्रत्युपसंहारमाह–'एवं तु'इत्यादि, एवम्–उक्तेन प्रकारेण पौरुष्यां–पौरुषीविषये वृद्धिक्षयौ यथाक्रमं दक्षिणायनेषूत्तरायणेषु वेदितव्यौ, तदेवमक्षरार्थमधिकृत्य व्याख्याताः करणगाथाः, सम्प्रत्यस्य करणस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावना क्रियते–कोऽपि पृच्छति–युगे आदित आरभ्य पञ्चाशीतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ कतिपदा पौरुषी भवति ?, तत्र चतुरशीतिर्ध्रियते, तस्याश्चाधस्तात् पञ्चम्यां तिथौ पृष्टमिति पञ्च, चतुरशीतिश्च पञ्चदशभिर्गुण्यते जातानि द्वादश शतानि षष्ट्यधिकानि १२६०, एतेषु मध्येऽधस्तनाः पञ्च प्रक्षिप्यन्ते, जातानि द्वादश शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि १२६५, तेषां षडशीत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धाः षट्, आगतं षट् अयनान्यतिक्रान्तानि सप्तममयनं वर्त्तते, तद्गतं च शेषमेकोनपञ्चाशदधिकं शतं तिष्ठति १४९, ततश्चतुर्भिर्गुण्यते, जातानि पञ्च शतानि षण्णवत्यधिकानि ५९६, तेषामेकत्रिंशता भागहरणे लब्धा एकोनविंशतिः, शेषास्तिष्ठन्ति सप्त, तत्र द्वादशाङ्गुलानि पाद इत्येकोनविंशतेर्द्वादशभिः पदं लब्धं, शेषाणि तिष्ठन्ति सप्त अङ्गुलानि, षष्ठं चायनमुत्तरायणं तद् गतं सप्तमं तु दक्षिणायनं वर्त्तते, ततः पदमेकं सप्त अङ्गुलानि पदद्वयप्रमाणे ध्रुवराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रीणि पदानि सप्त अङ्गुलानि, ये च सप्त एकत्रिंशद्भागाः शेषीभूता वर्त्तन्ते तान् यवान् कुर्म्मः, तत्राष्टौ यवा अङ्गुले इति ते सप्त अष्टभिर्गुण्यन्ते, जाताः षट्पञ्चाशत् ५६, तस्या एकत्रिंशता भागे हृते लब्ध एको यवः, शेषास्तिष्ठन्ति यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः, आगतं पञ्चाशीतितमे पर्वणि पञ्चम्यां त्रीणि पदानि सप्त अङ्गुलानि एको यव एकस्य च यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागा इत्येतावती पौरुषीति । तथाऽपरः कोऽपि पृच्छति–सप्तनवतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ कतिपदा पौरुषी ?, तत्र षण्णवतिर्ध्रियते, तस्याश्चाधस्तात् पञ्च, षण्णवतिश्च पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातानि चतुर्दश शतानि चत्वारिंशदधिकानि १४४०, तेषां मध्येऽधस्तनाः पञ्च प्रक्षिप्यन्ते, जातानि चतुर्दश शतानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि १४४५, तेषां षडशीत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धानि सप्त अयनानि,

॥१३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेषं तिष्ठति त्रिचत्वारिंशदधिकं शतं १४३, तत् चतुर्भिर्गुण्यते, जातानि पञ्च शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ५७२, तेषामेकत्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धान्यष्टादशाङ्गुलानि १८, तेषां मध्ये द्वादशभिरङ्गुलैः पदमिति लब्धमेकं पदं षट् अङ्गुलानि, उपरि चांशा उद्धरन्ति चतुर्दश १४, ते यवानयनार्थमष्टभिर्गुण्यन्ते, जातं द्वादशोत्तरं शतं ११२, तस्यैकत्रिंशता भागे हृते लब्धास्त्रयो यवाः, शेषास्तिष्ठन्ति यवस्य एकोनविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः, सप्त चायनान्यतिक्रान्तानि अष्टमं वर्त्तते, अष्टमं चायनमुत्तरायणं, उत्तरायणे च पदचतुष्टयरूपात् ध्रुवराशेर्हानिर्वक्तव्या तत एकं पदं सप्त अङ्गुलानि त्रयो यवा एकस्य च यवस्य एकोनविंशतिरेकत्रिंशद्भागा इति पदचतुष्टयात्पात्यते, शेषं तिष्ठति द्वे पदे पञ्चाङ्गुलानि चत्वारो यवा एकस्य च यवस्य द्वादश एकत्रिंशद्भागाः, एतावती युगे आदित आरभ्य सप्तनवतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ पौरुषीति, एवं सर्वत्र भावनीयं । सम्प्रति पौरुषीपरिमाणतोऽयनगतपरिमाणज्ञापनार्थमियं करणगाथा–'बुड्ढी वे'त्यादि, पौरुष्यां यावती वृद्धिर्हानिर्वा दृष्टा ततः सकाशाद् दिवसगतेन प्रवर्त्तमानेन वा त्रैराशिककर्म्मानुसारणतो यत् लब्धं तत् अयनगतं–अयनस्य तावत्प्रमाणं गतं वेदितव्यं, एष करणगाथाक्षरार्थः । भावना त्वियम्–तत्र दक्षिणायने पदद्वयस्योपरि चत्वारि अङ्गुलानि वृद्धौ दृष्टानि, ततः कोऽपि पृच्छति–कियद् गतं दक्षिणायनस्य ?, अत्र त्रैराशिककर्म्मावतारो–यदि चतुर्भिरङ्गुलस्य एकत्रिंशद्भागैरेका तिथिर्लभ्यते ततश्चतुर्भिरङ्गुलैः कति तिथीर्लभामहे ?, राशित्रयस्थापना ४, १, ४ । अत्रान्त्यो राशिरङ्गुलरूप एकत्रिंशद्भागकरणार्थमेकत्रिंशता गुण्यते जातं चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४, तेन मध्यो राशिर्गुण्यते, जातं तदेव चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४, 'एकगुणने तदेव भवती'ति वचनात्, तस्य चतुष्करूपेणादिराशिना भागो ह्रियते, लब्धा एकत्रिं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शत्तिथयः, आगतं दक्षिणायने एकत्रिंशत्तमायां तिथौ चतुरङ्गुला पौरुष्यां वृद्धिरिति । तथा उत्तरायणे पदचतुष्टयाद-ङ्गुलाष्टकं हीनं पौरुष्यामुपलभ्य कोऽपि पृच्छति–किं गतमुत्तरायणस्य ?, अत्रापि त्रैराशिकं–यदि चतुर्भिरङ्गुलस्य एकत्रिं-शद्भागैरेका तिथिर्लभ्यते ततोऽष्टभिरङ्गुलैर्हीनैः कति तिथयो लभ्यन्ते ?, राशित्रयस्थापना ४।१।८। अत्रान्त्यो राशि-रेकत्रिंशद्भागकरणार्थमेकत्रिंशता गुण्यते, जाते द्वे शते अष्टाचत्वारिंशदधिके २४८, ताभ्यां मध्यो राशिरेककरूपो गुण्यते, जाते ते एव द्वे शते अष्टाचत्वारिंशदधिके २४८, तयोराद्येन राशिना चतुष्करूपेण भागहरणं, लब्धा द्वाषष्टिः ६२, आगतमुत्तरायणे द्वाषष्टितमायां तिथौ अष्टावङ्गुलानि पौरुष्यां हीनानीति । 'तंसि च णं मासंसि वट्टाए'इत्यादि, तस्मिन्नाषाढे मासे प्रकाश्यस्य वस्तुनो वृत्तस्य वृत्तया समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितस्य समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितया न्यग्रोध-परिमण्डलसंस्थानस्य न्यग्रोधपरिमण्डलया उपलक्षणमेतत् शेषसंस्थानसंस्थितस्य प्रकाश्यस्य वस्तुनः शेषसंस्थानसंस्थितया, आषाढे हि मासे प्रायः सर्वस्यापि प्रकाश्यस्य वस्तुनो दिवसस्य चतुर्भागेऽतिक्रान्ते शेषे वा स्वप्रमाणा छाया भवति, निश्चयतः पुनराषाढमासस्य चरमदिवसे, तत्रापि सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमाने सूर्ये, ततो यत्प्रकाश्यं वस्तु यत्संस्थानं भवति तस्य छायाऽपि तथासंस्थानोपजायते, तत उक्तं–'वत्तस्य वत्तयाए'इत्यादि, एतदेवाह–'स्वकायमनुरङ्गिन्या' स्वस्य–स्वकीयस्य छायानिबन्धनस्य वस्तुनः कायः–शरीरं स्वकायस्तं अनुरज्यते–अनुकारं विदधातीत्येवंशीलाऽनुरङ्गिनी 'द्विषद्गृहे'त्यादिना घिनञ्प्रत्ययः, तया स्वकायमनुरङ्गिन्या छायया सूर्योऽनु–प्रतिदिवसं परावर्त्तते, एतदुक्तं भवति–आषाढस्य प्रथमादहोरात्रादारभ्य प्रतिदिवसमन्यान्यमण्डलसङ्क्रान्त्या तथा कथञ्चनापि सूर्यः परावर्त्तते यथा सर्वस्यापि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश्यवस्तुनो दिवसस्य चतुर्भागेऽतिक्रान्ते शेषे वा स्वानुकारा स्वप्रमाणा च छाया भवतीति, शेषं सुगमम् ॥ इति

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १० समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य दशमं प्राभृतप्राभृतं, साम्प्रतमेकादशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो यथा 'नक्षत्राण्यधिकृत्य चन्द्रमार्गा वक्तव्या' इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते चंदमग्गा अहितेति वदेज्जा ?, ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ता जे णं सता चंदस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं सता चंदस्स उत्तरेणं जोयं जोयंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणावि उत्तरेणावि पमद्दंपि जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणावि पमद्दंपि जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ते जे णं चंदस्स सदा पमद्दं जोअं जोएंति, ता एएसि णं अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं कतरे नक्खत्ता जे णं सता चंदस्स दाहिणेणं जोयं जोएंति, तहेव जाव कतरे नक्खत्ता जे णं सदा चंदस्स पमद्दं जोयं जोएंति ?, ता एतेसि णं अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं जे णं नक्खत्ता सया चंदस्स दाहिणेण जोयं जोएंति ते णं छ, तं०—संठाणा अद्धा पुस्सो अस्सेसा हत्थो मूलो, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं सदा चंदस्स उत्तरेणं जोयं जोएंति, ते णं बारस, तंजहा—अभिई सवणो धणिट्ठा सतभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरापोट्ठवता रेवती अस्सिणी भरणी पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी साती १२, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १० परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ११ आरभ्यते

चंदस्स दाहिणेणवि उत्तरेणवि पमद्दंपि जोयं जोएंति ते णं सत्त, तंजहा–कत्तिया रोहिणी पुणव्वसू महा चित्ता विसाहा अणुराहा, तत्थ जे ते नक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणवि पमद्दंपि जोयं जोएंति ताओ णं दो आसाढाओ सव्वबाहिरे मंडले जोयं जोएंसु वा जोएंति वा जोएस्संति वा, तत्थ जे ते णक्खत्ते जे णं सदा चंदस्स पमद्दं जोयं जोएंति, सा णं एगा जेट्ठा (सूत्रं ४४) ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण नक्षत्राणां दक्षिणत उत्तरतः प्रमर्दतो यदिवा सूर्यनक्षत्रैर्विरहिततया अविरहिततया चन्द्रस्य मार्गाः–चन्द्रस्य मण्डलगत्या परिभ्रमणरूपा मण्डलरूपा वा मार्गा आख्याता इति वदेत्, भगवानाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्येऽस्तीति निपातत्वादार्षत्वाद्वा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि णमिति वाक्यालङ्कारे सदा चन्द्रस्य दक्षिणेन–दक्षिणस्यां दिशि व्यवस्थितानि योगं युञ्जन्ति–कुर्वन्ति, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्य उत्तरेण–उत्तरस्यां दिशि व्यवस्थितानि योगं युञ्जन्ति, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि चन्द्रस्य दक्षिणस्यामपि दिशि स्थितानि उत्तरस्यामपि दिशि स्थितानि योगं युञ्जन्ति, प्रमर्दमपि–प्रमर्दरूपमपि योगं कुर्वन्ति, तथा सन्ति तानि नक्षत्राणि यानि चन्द्रस्य दक्षिणस्यामपि दिशि व्यवस्थितानि योगं युञ्जन्ति प्रमर्दरूपमपि योगं युञ्जन्ति, अस्ति तन्नक्षत्रं यत्सदा चन्द्रस्य प्रमर्दरूपं योगं युनक्ति, एवं सामान्येन भगवतोक्ते भगवान् गौतमो विशेषावगमनिमित्तं भूयः प्रश्नयति–'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामनन्तरोदितानामष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये यानि नक्षत्राणि सदा चन्द्रस्य दक्षिणस्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिशि व्यवस्थितानि योगं कुर्वन्ति तानि षट्, तद्यथा–मृगशिर आर्द्रा पुष्योऽश्लेषा हस्तो मूलश्च, एतानि हि सर्वाण्यपि पञ्चदशस्य चन्द्रमण्डलस्य बहिश्चारं चरन्ति, तथा चोक्तं करणविभावनायां–'पन्नरसमस्स चंदमंडलस्स बाहिरओ मिगसिर अद्दा पुस्सो असिलेहा हत्थ मूलो य" जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तावप्युक्तम्–"संठाण अद्द पुस्सोऽसिलेस हत्थो तहेव मूलो य । बाहिरओ बाहिरमंडलस्स छप्पे य नक्खत्ता ॥ १ ॥" ततः सदैव दक्षिणदिग्व्यवस्थितान्येव तानि चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्त्युपपद्यन्ते नान्यथेति, तथा तत्र–तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यानि तानि नक्षत्राणि यानि सदा–सर्वकालं चन्द्रस्योत्तरेण–उत्तरस्यां दिशि व्यवस्थितानि योग युजन्ति–कुर्वन्ति तानि द्वादश, तद्यथा–'अभिई'इत्यादि, एतानि हि द्वादशापि नक्षत्राणि सर्वाभ्यन्तरे चन्द्रमण्डले चारं चरन्ति, तथा चोक्तं करणविभावनायां–"से पढमे सव्वब्भंतरे चंदमंडले नक्खत्ता इमे, तंजहा–अभिई सवणो धणिट्ठा सयभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया रेवई अस्सिणी भरणी पुव्वफग्गुणी उत्तरफग्गुणी साई" इति, यदा चैतैः सह चन्द्रस्य योगस्तदा स्वभावाच्चन्द्रः शेषेष्वेव मण्डलेषु वर्त्तते, ततः सदैवैतान्युत्तरदिग्व्यवस्थितान्येव चन्द्रमसा सह योगमुपयन्तीति, तथा तत्र तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यानि तानि नक्षत्राणि यानि चन्द्रस्य दक्षिणस्यामपि दिशि व्यवस्थितानि योगं युञ्जन्ति उत्तरस्यामपि दिशि व्यवस्थितानि योगं युञ्जन्ति प्रमर्दरूपमपि योगं युञ्जन्ति तानि सप्त, तद्यथा–कृत्तिका रोहिणी पुनर्वसु मघा चित्रा विशाखा अनुराधा, केचित् पुनर्ज्येष्ठानक्षत्रमपि दक्षिणोत्तरप्रमर्दयोगि मन्यन्ते, तथा चोक्तं लोकश्रियाम्–'पुणवसु रोहिणिचित्तामहजेट्ठणुराह कत्तिय विसाहा । चंदस्स उभयजोगी'त्ति, अत्र 'उभयजोगि'त्ति व्याख्यानयता टीकाकृतोक्तं–एतानि नक्षत्राणि उभययो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गीनि–चन्द्रस्योत्तरेण दक्षिणेन च युज्यन्ते, कदाचिद् भेदमप्युपयान्तीति, तच्च वक्ष्यमाणज्येष्ठासूत्रेण सह विरोधीति न प्रमाणं, तथा तत्र–तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये ये ते नक्षत्रे ये णमिति वाक्यालङ्कारे सदा चन्द्रस्य दक्षिणेनापि–दक्षिणस्यामपि दिशि व्यवस्थिते योगं युङ्क्तः, प्रमर्दं च–प्रमर्दरूपं च योगं युक्तः, ते णमिति वाक्यालङ्कारे, द्वे आषाढे पूर्वाषाढोत्तराषाढारूपे, ते हि प्रत्येकं चतुस्तारे, तथा च प्रागेवोक्तम्–'पुव्वासाढे चउत्तारे पण्णत्ते' इति, तत्र द्वे द्वे तारे सर्वबाह्यस्य पञ्चदशस्य मण्डलस्याभ्यन्तरतो द्वे द्वे बहिः, तथा चोक्तं करणविभावनायाम्–"पुव्वुत्तराण आसाढाणं दो दो ताराओ अब्भिंतरओ दो दो बाहिरओ सव्वबाहिरस्स मंडलस्स" इति, ततो ये द्वे द्वे तारे अभ्यन्तरतस्तयोर्मध्येन चन्द्रो गच्छतीति तदपेक्षया प्रमर्दं योगं युङ्क्त इत्युच्यते, ये तु द्वे द्वे तारे बहिस्ते चन्द्रस्य पञ्चदशेऽपि मण्डले चारं चरतः सदा दक्षिणदिग्व्यवस्थिते ततस्तदपेक्षया दक्षिणेन योगं युङ्क्त इत्युक्तं, सम्प्रत्येतयोरेव प्रमर्दयोगभावनार्थं किञ्चिदाह–'ताओ य सव्वबाहिरे'त्यादि, ते च–पूर्वाषाढोत्तराषाढारूपे नक्षत्रे चन्द्रेण सह योगमयुङ्क्तां युक्तौ योक्ष्येते वा सदा सर्वबाह्ये मण्डले व्यवस्थिते, ततो यदा पूर्वाषाढोत्तराषाढाभ्यां सह चन्द्रो योगमुपैति तदा नियमतोऽभ्यन्तरतारकाणां मध्येन गच्छतीति तदपेक्षया प्रमर्दमपि योगं युङ्क्त इत्युक्तं, तथा तत्र–तेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये यत्तन्नक्षत्रं यत्सदा चन्द्रस्य प्रमर्द–प्रमर्दरूपं योगं युनक्ति सा एका ज्येष्ठा । तदेवं मण्डलगत्या परिभ्रमणरूपाश्चन्द्रमार्गा उक्ताः, सम्प्रति मण्डलरूपान् चन्द्रमार्गानभिधित्सुः प्रथमतस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कति ते चंदमंडला पण्णत्ता ?, ता पण्णरस चंदमंडला पं०, ता एएसि णं पण्णरसण्हं चंदमंडलाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि चंदमंडला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया, अत्थि चंदमंडला जे णं रविससिणक्खत्ताणं सामण्णा भवंति, अत्थि मंडला जे णं सया आदिच्चेहिं विरहिया, ता एतेसि णं पण्णरसण्हं चंदमंडलाणं कयरे चंदमंडला जे णं सता णक्खत्तेहिं अविरहिया, जाव कयरे चंदमंडला जे णं सदा आदिच्चविरहिता ?, ता एतेसि णं पण्णरसण्हं चंदमंडलाणं तत्थ जे ते चंदमंडला जे णं सदा णक्खत्तेहिं अविरहिता ते णं अट्ठ, तं०–पढमे चंदमंडले तइए चंदमंडले छट्ठे चंदमंडले सत्तमे चंदमंडले अट्ठमे चंदमंडले दसमे चंदमंडले एक्कादसे चंदमंडले पण्णरसमे चंदमंडले, तत्थ जे ते चंदमंडला जे णं सदा णक्खत्तेहिं विरहिया ते णं सत्त, तं०–बितिए चंदमंडले चउत्थे चंदमंडले पंचमे चंदमंडले नवमे चंदमंडले बारसमे चंदमंडले तेरसमे चंदमंडले चउद्दसमे चंदमंडले, तत्थ जे ते चंदमंडले जे णं ससिरविनक्खत्ताणं समाणा भवंति, ते णं चत्तारि, तंजहा–पढमे चंदमंडले बीए चंदमंडले इक्कारसमे चंदमंडले पन्नरसमे चंदमंडले, तत्थ जे ते चंदमंडला जे णं सदा आदिच्चविरहिता ते णं पंच, तं०–छट्ठे चंदमंडले सत्तमे चंदमंडले अट्ठमे चंदमंडले नवमे चंदमंडले दसमे चंदमंडले, (सूत्रं ४५) दसमस्स एक्कारसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कइ ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कतिसङ्ख्यानि णमिति वाक्यालङ्कारे, चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—'ता पण्णरसे'त्यादि, ता इति प्राग्वत्, पञ्चदश चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि, तत्र पञ्च चन्द्रमण्डलानि जम्बूद्वीपे शेषाणि च दश मण्डलानि लवणसमुद्रे, तथा चोक्तं "जंबूद्दीपप्रज्ञप्तौ–'जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयं ओगाहित्ता केव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इया चंदमंडला पन्नत्ता ?, गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे असीयं जोयणसयं ओगाहित्ता एत्थ णं पंच चंदमंडला पण्णत्ता, लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं ओगाहित्ता केवइया चंदमंडला पण्णत्ता ?, गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसाइं जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दस चंदमंडला पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे लवणे य पन्नरस चंदमंडला भवन्तीति अक्खायं" 'ता' इत्यादि, 'ता' इति तत्र–एतेषां पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां मध्ये 'अत्थि' त्ति सन्ति तानि चन्द्रमण्डलानि यानि सदा नक्षत्रैरविरहितानि, तथा सन्ति तानि चन्द्रमण्डलानि यानि सदा नक्षत्रैर्विरहितानि, तथा सन्ति तानि चन्द्रमण्डलानि यानि रविशशिनक्षत्राणां सामान्यानि–साधारणानि, किमुक्तं भवति ?–रविरपि तेषु मण्डलेषु गच्छति शश्यपि नक्षत्राण्यपीति, तथा सन्ति तानि चन्द्रमण्डलानि यानि सदा आदित्याभ्यां सूत्रे द्वित्वेऽपि बहुवचनं प्राकृतत्वात् विरहितानि, येषु न कदाचिदपि द्वयोः सूर्ययोर्मध्ये एकोऽपि सूर्यो गच्छतीति भावः, एवं भगवता सामान्येनोक्ते भगवान् गौतमो विशेषावगमननिमित्तं भूयः प्रश्नयति–'ता एएसि ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् एतेषां पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां मध्ये यानि तानि चन्द्रमण्डलानि यानि णमिति प्राग्वत् सदा नक्षत्रैरविरहितानि तान्यष्टौ, तद्यथा–'पढमे चंदमंडले' इत्यादि, तत्र प्रथमे चन्द्रमण्डले अभिजिदादीनि द्वादश नक्षत्राणि, तथा च तत्सङ्ग्रहणिगाथा–'अभिई सवण धणिट्ठा सयभिसया दो य होंति भद्दवया । रेवइ अस्सिणी भरणी दो फग्गुणि साइ पढमंमि ॥ १ ॥' तृतीये चन्द्रमण्डले पुनर्वसुमघे षष्ठे चन्द्रमण्डले कृत्तिका सप्तमे रोहिणीचित्रे अष्टमे विशाखा दशमे अनुराधा एकादशे ज्येष्ठा पञ्चदशे मृगशिर आर्द्रापुष्यौ अश्लेषा हस्तो मूलः पूर्वाषाढा उत्तराषाढा च,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्राद्यानि षट् नक्षत्राणि यद्यपि पञ्चदशस्य मण्डलस्य बहिश्चारं चरन्ति तथापि तानि तस्य प्रत्यासन्नानीति तत्र गण्यन्ते, ततो न कश्चिद्विरोधः, तथा तत्र–तेषां पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां मध्ये यानि तानि चन्द्रमण्डलानि यानि सदा नक्षत्रैर्विरहितानि तानि सप्त, तद्यथा–द्वितीयं चन्द्रमण्डलमित्यादि, तथा तत्र–तेषां पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां मध्ये यानि तानि चन्द्रमण्डलानि रविशशिनक्षत्राणां सामान्यानि भवन्ति तानि णमिति प्राग्वत् चत्वारि, तद्यथा–'पढमे चंदमंडले' इत्यादि, तथा तत्र–तेषां पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां मध्ये यानि तानि चन्द्रमण्डलानि यानि सदा आदित्याभ्यां विरहितानि तानि पञ्च, तद्यथा–'छट्ठे चंदमंडले'इत्यादि सुगमं, एतद्गणनाच्च यान्यभ्यन्तराणि पञ्च चन्द्रमण्डलानि, तद्यथा-प्रथमं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थं पञ्चमं, यानि च सर्वबाह्यानि चन्द्रमण्डलानि, तद्यथा–एकादशं द्वादशं त्रयोदशं चतुर्दशं पञ्चदशमित्येतानि दश सूर्यस्यापि साधारणानीति गम्यते, तथा चोक्तमन्यत्र–'दस चेव मंडलाइं अब्भिंतरबाहिरा रविससीणं । सामन्नाणि उ नियमा पत्तेया होंति सेसाणि ॥ १ ॥" अस्याक्षरगमनिका–पञ्चाभ्यन्तराणि पञ्च बाह्यानि सर्वसङ्ख्यया दश मण्डलानि नियमाद्रविशशिनोः सामान्यानि–साधारणानि, शेषाणि तु यानि चन्द्रमण्डलानि षडादीनि दशपर्यन्तानि तानि प्रत्येकानि–असाधारणानि चन्द्रस्य, तेषु चन्द्र एव गच्छति नतु जातुचिदपि सूर्य इति भावः, इह किं चन्द्रमण्डलं कियता भागेन सूर्यमण्डलेन न स्पृश्यते कियन्ति वा चन्द्रमण्डलस्यापान्तराले सूर्यमण्डलानि कथं वा षडादीनि दशपर्यन्तानि पञ्च चन्द्रमण्डलानि सूर्येण न स्पृश्यन्ते इति चिन्तायां विभागोपदर्शनं पूर्वाचार्यैः कृतं, ततस्तद्विनेयजनानुग्रहायोपदर्श्यते–तत्र प्रथमत एतद्विभावनार्थं विकम्पक्षेत्रकाष्ठा निरूप्यते, इह सूर्यस्य. विकम्पक्षेत्रकाष्ठा पञ्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योजनशतानि दशोत्तराणि, तथाहि–यदि सूर्यस्यैकेनाहोरात्रेण विकम्पो द्वे योजने एकस्य च योजनस्याष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा लभ्यन्ते, ततस्त्र्यशीत्यधिकेनाहोरात्रशतेन किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना– १ | ३ | १८३ / ४८ / ६१ अत्र सवर्णनार्थं द्वे योजने एकषष्ट्या गुण्यते, गुणयित्वा चोपरितना अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातं सप्तत्यधिकं शतं १७०, एतत्त्र्यशीत्यधिकेन शतेनान्त्यराशिना गुण्यते, जातान्येकत्रिंशत् सहस्राणि शतमेकं दशोत्तरं ३१११०, तत एतस्य राशेर्योजनानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धानि पञ्च योजनशतानि दशोत्तराणि ५१०, एतावती सूर्यस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा, चन्द्रमसः पुनर्विकम्पक्षेत्रकाष्ठा पञ्च योजनशतानि नवोत्तराणि एकस्य च योजनस्य त्रिपञ्चाशदेकषष्टिभागाः, तथाहि–यदि चन्द्रमस एकेनाहोरात्रेण विकम्पः षट्त्रिंशद्योजनानि एकस्य च योजनस्य पञ्चविंशतिरेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तभागा लभ्यन्ते ततश्चतुर्दशभिरहोरात्रैः किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना– १ | ३६ | १४ / ३५ / ६१ / ४ अत्र सवर्णनार्थं प्रथमतः षट्त्रिंशतं एकषष्ट्या गुण्यते गुणयित्वा चोपरितनाः पञ्चविंशतिरेकषष्टिभागास्तत्र प्रक्षिप्यन्ते, जातानि द्वाविंशतिः शतानि एकविंशत्यधिकानि २२२१, एतानि सप्तभिर्गुण्यन्ते, गुणयित्वा चोपरितनाश्चत्वारः सप्तभागास्तत्र प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातानि पञ्चदश सहस्राणि पञ्च शतान्येकपञ्चाशदधिकानि १५५५१, ततो योजनानयनार्थं छेदराशिरप्येकषष्टिलक्षणः सप्तभिर्गुण्यते, जातानि चत्वारि शतानि सप्तविंशत्यधिकानि ४२७, तत उपरितनो राशिश्चतुर्दशभिरन्त्यराशिरूपैर्गुण्यते, ततो जातो द्वे लक्षे सप्तदश सहस्राणि सप्तदशानि चतुर्दशाधिकानि २१७७१५, ततश्छेद्यच्छेदकराश्योः सप्तभिरपवर्त्तना, जात उपरितनो राशिरेकत्रिंशत्सहस्राणि शतमेकं द्व्युत्तरं ३११०२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छेदराशिरेकषष्टिस्ततस्तया भागे हृते लब्धानि पञ्च योजनशतानि नवोत्तराणि एकस्य च योजनस्य त्रिपञ्चाशदेकषष्टि-भागाः [५०९|५३/६१], एतावती चन्द्रमसो विकम्पक्षेत्रकाष्ठा, सूर्यमण्डलस्य २ च परस्परमन्तरं द्वे द्वे योजने चन्द्रमण्डलस्य चन्द्रमण्डलस्य च परस्परं अन्तरं पञ्चत्रिंशद् योजनानि एकस्य च योजनस्य त्रिंशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तभागाः, उक्तं च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ–"सूरमंडलस्स णं भंते ! सूरमंडलस्स एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! दो जोयणाइं सूरमंडलस्स सूरमंडलस्स अबाहाए अंतरे पण्णत्ते" तथा "चंदमंडलस्स णं भंते ! चंदमंडलस्स एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! पन्नत्तीसं जोयणाइं तीसं च एगट्ठिभागा जोअणस्स एगं च एगट्ठिभागं सत्तहा छित्ता चत्तारि अ चुण्णिआ भागा सेसा चंदमंडलस्स अबाहाए अंतरे पण्णत्ते" इति, एतदेव च सूर्यमण्डलस्य चन्द्रमण्डलस्य च स्वस्वमण्डलविष्कम्भपरिमाणयुक्तं सूर्यस्य चन्द्रमसश्च विकम्पपरिमाणमवसेयं, तथा चोक्तम्–"सूरविकंपो एक्को समंडला होइ मंडलंतरिया । चंदविकंपो य तहा समंडला मंडलंतरिया ॥ १ ॥" अस्या गाथाया अक्षरगमनिका–एकः सूर्यविकम्पो भवति 'मंडलंतरिय'त्ति अन्तरमेव आन्तर्यं, भेषजादित्वात् स्वार्थे यण्, ततः स्त्रीत्वविवक्षायां ङीप्रत्यये आन्तरी आन्तर्यैव आन्तरिका मण्डलस्य मण्डलस्यान्तरिका मण्डलान्तरिका 'समंडल'त्ति इह मण्डलशब्देन मण्डलविष्कम्भ उच्यते, परिमाणे परिमाणवत उपचारात्, ततः सह मण्डलेन–मण्डलविष्कम्भपरिमाणेन परिमाणेन वर्त्तते इति समण्डला, किमुक्तं भवति ?–एकस्य सूर्यमण्डलान्तरस्य यत्परिमाणं योजनद्वयलक्षणं तदेकसूर्यमण्डलविष्कम्भपरिमाणेन अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागलक्षणेन सहितमेकस्य सूर्यमण्डलस्यविकम्पपरिमाणमिति, तथा मण्डलान्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रिकाचन्द्रमण्डलान्तरपरिमाणं पञ्चत्रिंशत् योजनानि एकस्य च योजनस्य त्रिंशदेकषष्टिभागा एकस्य चैकषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तभागा इत्येवंरूपं 'समंडल'त्ति मण्डलविष्कम्भपरिमाणेन सहिता एकश्चन्द्रविकम्पो भवति, यस्तु विकम्पक्षेत्रकाष्ठादर्शनतो विकम्पपरिमाणं ज्ञातुमिच्छति तं प्रतीयं पूर्वाचार्योपदर्शिता करणगाथा–"सगमंडलेहिं लद्धं सगकट्ठाओ हवंति सविकंपा । जे सगविक्खंभजुया हवंति सगमंडलंतरिया ॥ १ ॥" अस्या अक्षरमात्रगमनिका–ये चन्द्रमसः सूर्यस्य वा विकम्पाः, कथम्भूतास्ते इत्याह—'स्वकविष्कम्भयुताः स्वकमण्डलान्तरिकाः' स्वस्वमण्डलविष्कम्भपरिमाणसहितस्वस्वमण्डलान्तरिकारूपा इत्यर्थः, भवन्ति स्वकाष्ठातः–स्वस्वविकम्पयोग्यक्षेत्रपरिमाणस्य स्वकमण्डलैः–स्वस्वमण्डलसङ्ख्यया भागे हृते यल्लब्धं तावत्परिमाणास्ते स्वविकम्पाः–स्वस्वविकम्पा भवन्ति, तथाहि—सूर्यस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा पञ्च योजनशतानि दशोत्तराणि ५१०, तान्येकषष्टिभागकरणार्थमेकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातान्येकत्रिंशत्सहस्राणि शतमेकं दशोत्तरं ३१११०, सूर्यस्य मण्डलानि विकम्पक्षेत्रे त्र्यशीत्यधिकं शतं १८३, ततो योजनानयनार्थं त्र्यशीत्यधिकं मण्डलशतमेकषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकादश सहस्राणि शतमेकं त्रिषष्ट्यधिकं १११६३, एतेन पूर्वराशेर्भागो ह्रियते, लब्धे द्वे योजने, शेषमुपरिष्टादुद्धरति सप्ताशीतिः शतानि चतुरशीत्यधिकानि ८७८४, ततः सम्प्रत्येकषष्टिभागा आनेतव्या इत्यधस्तात् छेदराशिः त्र्यशीत्यधिकं शतं १८३, तेन भागे हृते लब्धा अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ४८, एतावदेकैकस्य सूर्यविकम्पस्य परिमाणं, तथा चन्द्रस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा पञ्च योजनशतानि नवोत्तराणि त्रिपञ्चाशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य ५०९ $\frac{५३}{६१}$, तत्र योजनान्येकषष्टिभागकरणार्थं एकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातान्येकत्रिंशत्सहस्राणि एकोनपञ्चाशदधिकानि ३१०४९, तत

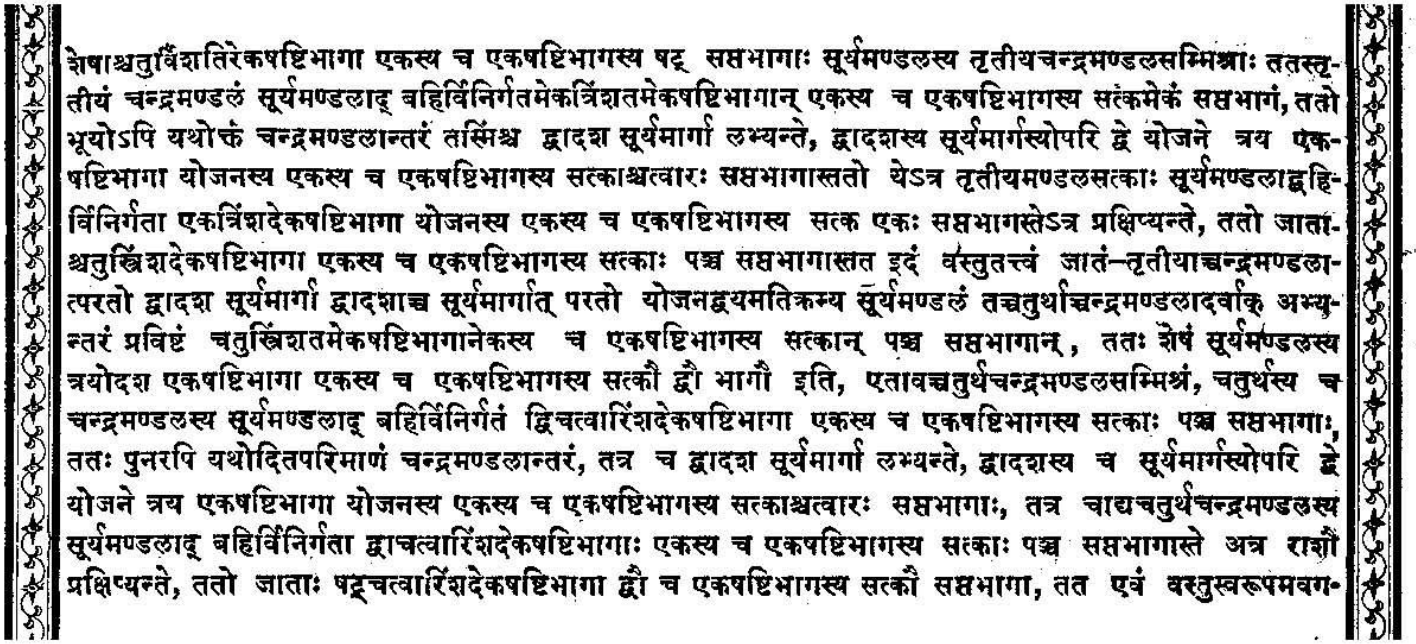
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपरितनास्त्रिपञ्चाशदेकषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातान्येकत्रिंशत्सहस्राणि शतमेकं द्व्युत्तरं ३११०२, चन्द्रस्य तु विकम्पक्षेत्रमध्ये मण्डलानि चतुर्दश १४, ततो योजनानयनार्थं चतुर्दश एकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातान्यष्टौ शतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि ८५४, तैः पूर्वराशेर्भागो ह्रियते, लब्धानि षट्त्रिंशद् योजनानि ३६, शेषाणि तिष्ठन्ति त्रीणि शतान्यष्टापञ्चाशदधिकानि ३५८, अत ऊर्ध्वं एकषष्टिभागा आनेतव्याः, ततश्चतुर्दशरूपोऽधस्तात् छेदराशिः १४, तेन भागे हृते लब्धाः पञ्चविंशतिरेकषष्टिभागाः २५, शेषास्तिष्ठन्ति अष्टौ, सप्तभागकरणार्थं सप्तभिर्गुण्यन्ते जाताः षट्पञ्चाशत् ५६, तस्याश्चतुर्दशभिर्भागे लब्धाश्चत्वारः सप्तभागाः, एतावत्परिमाण एकैकश्चन्द्रविकम्प इति। तदेवं चन्द्रस्य सूर्यस्य च विकम्पक्षेत्रकाष्ठा चन्द्रमण्डलानां सूर्यमण्डलानां च परस्परमन्तरमुक्तं, सम्प्रति प्रस्तुतमभिधीयते–तत्र सर्वाभ्यन्तरे चन्द्रमण्डले सर्वाभ्यन्तरं सूर्यमण्डलं सर्वात्मना प्रविष्टं, केवलमष्टावेकषष्टिभागाश्चन्द्रमण्डलस्य बहिः शेषा वर्त्तन्ते, चन्द्रमण्डलात् सूर्यमण्डलस्याष्टाभिरेकषष्टिभागैर्हीनत्वात्, ततो द्वितीयाच्चन्द्रमण्डलादर्वागपान्तराले द्वादश सूर्यमार्गाः, तथाहि— द्वयोश्चन्द्रमण्डलयोरन्तरं पञ्चत्रिंशत् योजनानि त्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागाः, तत्र योजनान्येकषष्टिभागकरणार्थमेकषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा चोपरितनास्त्रिंशदेकषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातान्येकविंशतिः शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि २१६५, सूर्यस्य विकम्पो द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य, तत्र द्वे योजने एकषष्ट्या गुण्येते, जातं द्वाविंशं शतं १२२, तत उपरितना अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य प्रक्षिप्यन्ते जातं सप्तत्यधिकं शतं १७०, तेन पूर्वराशेर्भागो ह्रियते, लब्धा द्वादश, एतावन्तोऽपान्तराले सूर्यमार्गा भवन्ति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेषं तिष्ठति पञ्चविंशं शतं १२५, तत्र द्वाविंशेन शतेन द्वादशस्य सूर्यमार्गस्योपरि द्वे योजने लब्धे शेषास्तिष्ठन्ति त्रय एकषष्टिभागाः, येऽपि च प्रथमे चन्द्रमण्डले रविमण्डलात् शेषा अष्टावेकषष्टिभागास्तेऽप्यत्र प्रक्षिप्यन्ते इति जाता एकादश एकषष्टिभागाः, तत इदमागतं द्वादशात्सूर्यमार्गात् परतो द्वितीयाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् द्वे योजने एकादश च एकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागाः, तत्र योजनद्वयानन्तरं सूर्यमण्डलमतो द्वितीयाच्चन्द्रमण्डलादर्वागभ्यन्तरं प्रविष्टं सूर्यमण्डलं एकादश एकषष्टिभागस्य सत्कान् चतुरः सप्तभागान्, ततः परं षट्त्रिंशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कास्त्रयः सप्तभागा इत्येतावत्परिमाणं सूर्यमण्डलं चन्द्रमण्डलसम्मिश्रं, ततः सूर्यमण्डलात्परतो बहिर्विनिर्गतं चन्द्रमण्डलमेकोनविंशतिमेकषष्टिभागानेकस्य च एकषष्टिभागस्य चतुरः सप्तभागान्, ततः परं भूयस्तृतीय[स्य] चन्द्रमण्डलादर्वाग् यथोक्तपरिमाणमन्तरं, तद्यथा–पञ्चत्रिंशद् योजनानि त्रिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागाः, एतावति चान्तरे द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते, उपरि च द्वे योजने त्रयश्चैकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागास्ततोऽत्र प्रागुक्ता द्वितीयस्य चन्द्रमण्डलस्य सत्काः सूर्यमण्डलाद् बहिर्विनिर्गता एकोनविंशतिरेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तभागाः प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातास्त्रयोविंशतिरेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्क एकः सप्तभागः, तत इदमायातं–द्वितीयाच्चन्द्रमण्डलात्परतो द्वादश सूर्यमार्गाः, द्वादशाच्च सूर्यमार्गात् परतो योजनद्वयातिक्रमेण सूर्यमण्डलं, तच्च तृतीयाच्चन्द्रमण्डलादर्वागभ्यन्तरं प्रविष्टं त्रयोविंशतिमेकषष्टिभागान् एकं च एकषष्टिभागसत्कं सप्तभागं, ततः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



शेषाश्चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य षट् सप्तभागाः सूर्यमण्डलस्य तृतीयचन्द्रमण्डलसम्मिश्राः ततस्तृतीयं चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलाद् बहिर्विनिर्गतमेकत्रिंशतमेकषष्टिभागान् एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कमेकं सप्तभागं, ततो भूयोऽपि यथोक्तं चन्द्रमण्डलान्तरं तस्मिंश्च द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते, द्वादशस्य सूर्यमार्गस्योपरि द्वे योजने त्रय एकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागास्ततो येऽत्र तृतीयमण्डलसत्काः सूर्यमण्डलाद्बहिर्विनिर्गता एकत्रिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्क एकः सप्तभागस्तेऽत्र प्रक्षिप्यन्ते, ततो जाताश्चतुस्त्रिंशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः पञ्च सप्तभागास्तत इदं वस्तुतत्त्वं जातं–तृतीयाच्चन्द्रमण्डलात्परतो द्वादश सूर्यमार्गा द्वादशाच्च सूर्यमार्गात् परतो योजनद्वयमतिक्रम्य सूर्यमण्डलं तच्चतुर्थाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अभ्यन्तरं प्रविष्टं चतुस्त्रिंशतमेकषष्टिभागानेकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कान् पञ्च सप्तभागान्, ततः शेषं सूर्यमण्डलस्य त्रयोदश एकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कौ द्वौ भागौ इति, एतावच्चतुर्थचन्द्रमण्डलसम्मिश्रं, चतुर्थस्य च चन्द्रमण्डलस्य सूर्यमण्डलाद् बहिर्विनिर्गतं द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः पञ्च सप्तभागाः, ततः पुनरपि यथोदितपरिमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं, तत्र च द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते, द्वादशस्य च सूर्यमार्गस्योपरि द्वे योजने त्रय एकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागाः, तत्र चाद्यचतुर्थचन्द्रमण्डलस्य सूर्यमण्डलाद् बहिर्विनिर्गता द्वाचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः पञ्च सप्तभागास्ते अत्र राशौ प्रक्षिप्यन्ते, ततो जाताः षट्चत्वारिंशदेकषष्टिभागा द्वौ च एकषष्टिभागस्य सत्कौ सप्तभागा, तत एवं वस्तुस्वरूपमवग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्तव्यं–चतुर्थाच्चन्द्रमण्डलात् परतो द्वादश सूर्यमार्गा द्वादशाच्च सूर्यमार्गात्परतो योजनद्वयातिक्रमे सूर्यमण्डलं, तच्च पञ्चमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अभ्यन्तरं प्रविष्टं षट्चत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् द्वौ च एकस्यैकषष्टिभागस्य सत्कौ सप्तभागौ, शेषं सूर्यमण्डलस्य एक एकषष्टिभाग एकस्य च एकषष्टिभागस्य पञ्च सप्तभागा इत्येतावत्परिमाणं पञ्चमचन्द्रमण्डलसम्मिश्रं, तस्य पञ्चमस्य चन्द्रमण्डलस्य सूर्यमण्डलाद्बहिर्विनिर्गतं चतुःपञ्चाशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य द्वौ सप्तभागौ, तदेवं पञ्च सर्वाभ्यन्तराणि चन्द्रमण्डलानि सूर्यमण्डलसम्मिश्राणि, चतुर्षु च चन्द्रमण्डलान्तरेषु द्वादश द्वादश सूर्यमार्गा इति जातं, सम्प्रति षष्ठादीनि दशमपर्यन्तानि पञ्च चन्द्रमण्डलानि सूर्यमण्डलासंस्पृष्टानि भाव्यन्ते–तत्र पञ्चमाच्चन्द्रमण्डलात्परतो भूयः षष्ठं चन्द्रमण्डलमधिकृत्यान्तरं [तच्च] पञ्चत्रिंशद् योजनानि त्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागाः, तत्र च पञ्चत्रिंशद्योजनान्येकषष्टिभागकरणार्थमेकषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा चोपरितनास्त्रिंशदेकषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातान्येकविंशतिः शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि २१६५, येऽपि च पञ्चमस्य चन्द्रमण्डलस्य सूर्यमण्डलाद् बहिर्विनिर्गताश्चतुःपञ्चाशदेकषष्टिभागा द्वौ च एकषष्टिभागस्य सत्कौ सप्तभागौ तेऽत्र प्रक्षिप्यन्ते, जातानि द्वाविंशतिः शतान्येकोनविंशत्यधिकानि २२१९, सूर्यस्य विकम्पो द्वे योजने अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागाधिके, तत्र द्वे योजने एकषष्ट्या गुण्येते जातं द्वाविंशं शतमेकषष्टिभागानां, तत उपरितना अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातं सप्तत्यधिकं शतं १७०, तेन पूर्वराशेर्भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयोदश, शेषास्तिष्ठन्ति नव एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः षट् सप्तभागास्तत इदमागतं–पञ्चमाच्चन्द्रमण्डलात्परतस्त्रयोदश सूर्यमार्गास्त्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४५]

दीप अनुक्रम [५९]

योदशस्य च सूर्यमार्गस्योपरि षष्ठाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरं नव एकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः षट् सप्तभागाः, ततः परतः षष्ठं चन्द्रमण्डलं, तच्च षट्पञ्चाशदेकषष्टिभागात्मकं, ततः परतः सूर्यमण्डलादर्वागन्तरं षट्पञ्चाशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य एकः सप्तभागस्तदनन्तरं सूर्यमण्डलं तस्माच्च परत एकषष्टिभागानां चतुरुत्तरेण शतेन एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्केनैकेन सप्तभागेन हीनं यथोदितप्रमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं प्राप्यते इति तस्मात्सूर्यमण्डलात्परतोऽन्ये द्वादशसूर्यमार्गा लभ्यन्ते, ततः सर्वसङ्कलनया तस्मिन्नप्यन्तरे त्रयोदश सूर्यमार्गाः, तस्य च त्रयोदशस्य सूर्यमार्गस्योपरि सप्तमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरमेकविंशतिरेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य त्रयः सप्तभागाः, ततः सप्तमं चन्द्रमण्डलं, तस्माच्च सप्तमाच्चन्द्रमण्डलात्परतः चतुश्चत्वारिंशता एकषष्टिभागैरेकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कैश्चतुर्भिः सप्तभागैः सूर्यमण्डलं, ततो द्विनवतिसङ्ख्यैरेकषष्टिभागैश्चतुर्भिश्च एकस्य एकषष्टिभागस्य सत्कैः सप्तभागैः न्यूनं यथोदितप्रमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं ततः परमस्तीत्यन्येऽपि द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते, ततस्तस्मिन्नप्यन्तरे सर्वसङ्कलनया त्रयोदश सूर्यमार्गास्त्रयोदशस्य सूर्यमार्गस्य बहिरष्टमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरं त्रयस्त्रिंशदेकषष्टिभागाः, ततोऽष्टमं चन्द्रमण्डलं, तस्माच्चाष्टमाच्चन्द्रमण्डलात्परतस्त्रयस्त्रिंशता एकषष्टिभागैः सूर्यमण्डलं, ततः एकाशीतिसङ्ख्यैरेकषष्टिभागैरूनं यथोदितप्रमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं पुरतो विद्यते इति ततः पुरतोऽन्येऽपि द्वादश सूर्यमार्गास्ततस्तस्मिन्नप्यन्तरे सर्वसङ्कलनया त्रयोदश सूर्यमार्गास्त्रयोदशाच्च सूर्यमार्गात् पुरतो नवमाच्चन्द्रमण्डलादर्वागन्तरं चतुश्चत्वारिंशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तभागाः, ततः परं नवमं चन्द्रमण्डलं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१४४॥

तस्माच्च नवमाच्चन्द्रमण्डलात् परत एकविंशत्या एकषष्टिभागैरेकस्य च एकषष्टिभागस्य त्रिभिः सप्तभागैः सूर्यमण्डलं तत एकोनसप्ततिसप्तभागैरेकषष्टिभागैरेकस्य च एकषष्टिभागस्य त्रिभिः सप्तभागैः परिहीणं यथोक्तप्रमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं, तत्र चान्ये द्वादश सूर्यमार्गाः, एवं चास्मिन्नप्यन्तरे सर्वसङ्कलनया त्रयोदश सूर्यमार्गाः, तस्य च त्रयोदशस्य सूर्यमार्गस्योपरि दशमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरं षट्पञ्चाशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य एकः सप्तभागः, ततो दशमं चन्द्रमण्डलं, तस्माच्च दशमाच्चन्द्रमण्डलात्परतो नवभिरेकषष्टिभागैरेकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तकैः षड्भिः सप्तभागैः सूर्यमण्डलं ततः सप्तपञ्चाशता एकषष्टिभागैरेकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तकैः षड्भिः सप्तभागैरूनं प्रागुक्तपरिमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं, ततो भूयोऽपि द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते इति तस्मिन्नप्यन्तरे सर्वसङ्कलनया त्रयोदश सूर्यमार्गाः, ततस्त्रयोदशस्य सूर्यमार्गस्योपरि एकादशाच्चन्द्रमण्डलादर्वागन्तरं सप्तषष्टिः एकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तकाः पञ्च सप्तभागाः, तदेवं पञ्च चन्द्रमण्डलानि षष्ठादीनि दशमपर्यन्तानि सूर्यासम्मिश्राणि, षट्सु च चन्द्रमण्डलान्तरेषु त्रयोदश सूर्यमार्गा इति जातं । सम्प्रत्येतदनन्तरमुच्यते–तत्र एकादशे चन्द्रमण्डले चतुष्पञ्चाशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तकौ द्वौ सप्तभागौ इत्येतावत् सूर्यमण्डलादभ्यन्तरं प्रविष्टं एक एकषष्टिभाग एकस्य च एकषष्टिभागस्य पञ्च सप्तभागाः इत्येतावन्मात्रं सूर्यमण्डलसम्मिश्रं एकादशाच्चन्द्रमण्डलाद्बहिर्विनिर्गतं सूर्यमण्डलं, षट्चत्वारिंशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तकौ द्वौ सप्तभागौ तत् एतावता हीनं परतश्चन्द्रमण्डलान्तरमस्तीति द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते, ततः परमेकोनाशीत्या एकषष्टिभागैरेकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तकाभ्यां द्वाभ्यां सप्तभागाभ्यां द्वादशं चन्द्रमण्डलं, तच्च

१०प्राभृते ११प्राभृतप्राभृते चन्द्रमण्डलमार्गः सू ४५

॥१४४॥

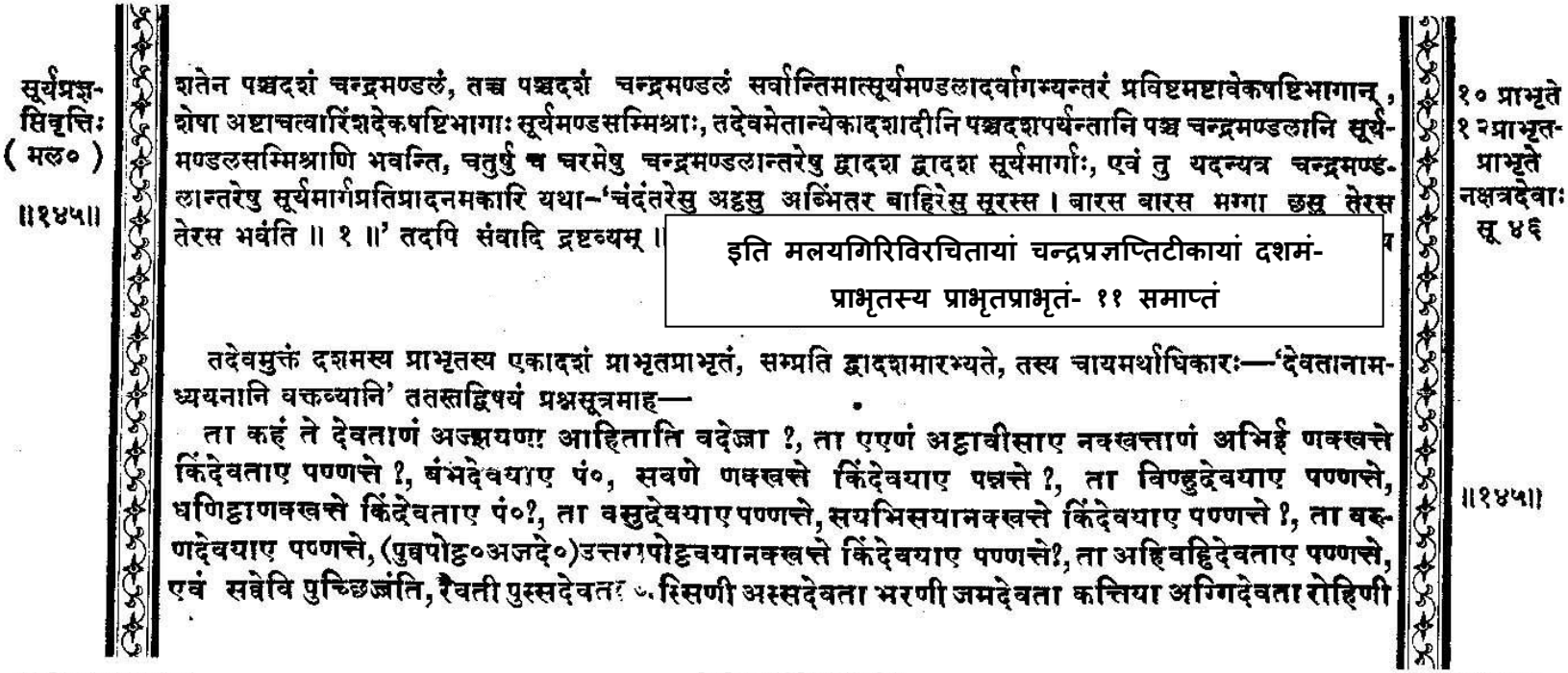
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वादशं चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलादभ्यन्तरं प्रविष्टं द्वाचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कान् पञ्च सप्तभागान्, शेषं च त्रयोदश एकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कौ द्वौ सप्तभागौ इत्येतावन्मात्रं सूर्यमण्डलसम्मिश्रं, तस्माच्च द्वादशाच्चन्द्रमण्डलाद्बहिर्विनिर्गतं सूर्यमण्डलं चतुस्त्रिंशतमेकषष्टिभागान् योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कान् पञ्च सप्तभागान्, तत एतावन्मात्रेण हीनं परतश्चन्द्रमण्डलान्तरं, तत्र च द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते, द्वादशाच्च सूर्यमार्गात्परतो नवतिसङ्ख्यैरेकषष्टिभागैरेकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कैः षड्भिः सप्तभागैस्त्रयोदशं चन्द्रमण्डलं, तच्च त्रयोदशं चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलादभ्यन्तरं प्रविष्टं, एकत्रिंशतमेकषष्टिभागान् एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कमेकं सप्तभागं, शेषं चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागाः एकस्य एकषष्टिभागस्य सत्काः षट् सप्तभागा इत्येतावन्मात्रं सूर्यमण्डलसम्मिश्रं, तस्माच्च त्रयोदशाच्चन्द्रमण्डलाद् बहिः सूर्यमण्डलं विनिर्गतं त्रयोविंशतिमेकषष्टिभागान् एकस्य एकषष्टिभागस्य सत्कमेकं सप्तभागं, तत एतावता हीनं परतश्चन्द्रमण्डलान्तरं, तत्र च द्वादश सूर्यमार्गाः, द्वादशाच्च सूर्यमार्गात् परत एकषष्टिभागानां द्व्युत्तरेण शतेन एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कैस्त्रिभिः सप्तभागैश्चतुर्दशं चन्द्रमण्डलं, तच्च चतुर्दशं चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डादभ्यन्तरं प्रविष्टमेकोनविंशतिमेकषष्टिभागानेकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कान् चतुरः सप्तभागान्, शेषं षट्त्रिंशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कास्त्रयः सप्तभागा इत्येतावत्परिमाणं सूर्यमण्डलसम्मिश्रं, तस्माच्चतुर्दशाच्चन्द्रमण्डलाद् बहिर्विनिर्गतं सूर्यमण्डलमेकादश एकषष्टिभागान् एकस्य च एकषष्टिभागस्य चतुरः सप्तभागान्, तत एतावता हीनं यथोक्तपरिमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं, तत्र च द्वादश सूर्यमार्गाः, द्वादशाच्च सूर्यमार्गात् परतः एकषष्टिभागानां चतुर्दशोत्तरेण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४५]

दीप अनुक्रम [५९]]



सूर्यप्रज्ञ-सिवृत्तिः (मल०) ॥१४५॥

शतेन पञ्चदशं चन्द्रमण्डलं, तच्च पञ्चदशं चन्द्रमण्डलं सर्वान्तिमात्सूर्यमण्डलादर्वागभ्यन्तरं प्रविष्टमष्टावेकषष्टिभागान्, शेषा अष्टाचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः सूर्यमण्डलसम्मिश्राः, तदेवमेतान्येकादशादीनि पञ्चदशपर्यन्तानि पञ्च चन्द्रमण्डलानि सूर्यमण्डलसम्मिश्राणि भवन्ति, चतुर्षु च चरमेषु चन्द्रमण्डलान्तरेषु द्वादश द्वादश सूर्यमार्गाः, एवं तु यदन्यत्र चन्द्रमण्डलान्तरेषु सूर्यमार्गप्रतिपादनमकारि यथा–'चंदंतरेसु अट्ठसु अब्भिंतर बाहिरेसु सूरस्स । बारस बारस मग्गा छसु तेरस तेरस भवंति ॥ १ ॥' तदपि संवादि द्रष्टव्यम् ।

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- ११ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य एकादशं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति द्वादशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'देवतानामध्ययनानि वक्तव्यानि' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

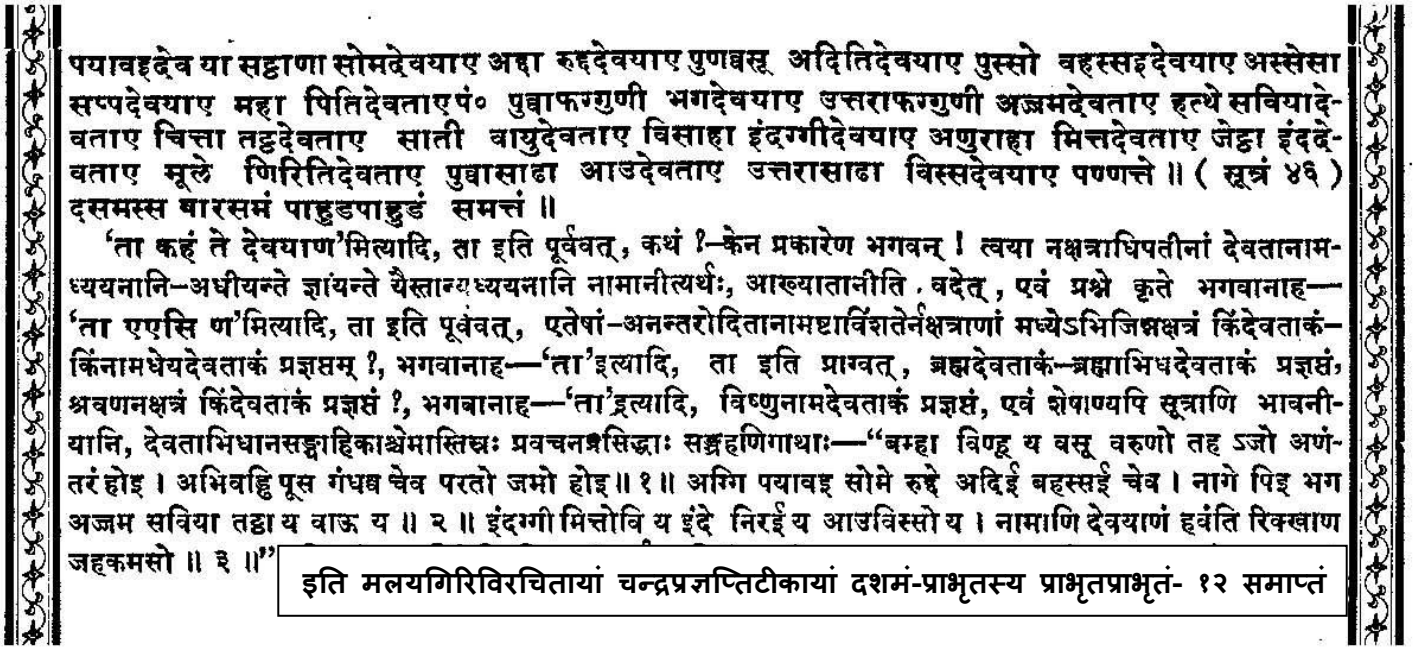
ता कहं ते देवताणं अज्झयणा आहितेति वदेज्जा ?, ता एएणं अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंदेवताए पण्णत्ते ?, बंभदेवयाए पं०, सवणे णक्खत्ते किंदेवयाए पन्नत्ते ?, ता विण्हुदेवयाए पण्णत्ते, धणिट्ठाणक्खत्ते किंदेवताए पं०?, ता वसुदेवयाए पण्णत्ते, सयभिसयानक्खत्ते किंदेवयाए पण्णत्ते ?, ता वरुणदेवयाए पण्णत्ते, (पुवपोट्ठ०अजदे०)उत्तरापोट्ठवयानक्खत्ते किंदेवयाए पण्णत्ते?, ता अहिवड्ढिदेवताए पण्णत्ते, एवं सवेवि पुच्छिज्जंति, रेवती पुस्सदेवता ०रिसणी अस्सदेवता भरणी जमदेवता कत्तिया अग्गिदेवता रोहिणी

१० प्राभृते १२ प्राभृत-प्राभृते नक्षत्रदेवाः सू ४६

॥१४५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- ११ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १२ आरभ्यते



पयावइदेव या सट्ठाणा सोमदेवयाए अद्दा रुद्ददेवयाए पुणव्वसू अदितिदेवयाए पुस्सो बहस्सइदेवयाए अस्सेसा सप्पदेवयाए महा पितिदेवताए पं० पुव्वाफग्गुणी भगदेवयाए उत्तराफग्गुणी अज्जमदेवताए हत्थे सवियादेवताए चित्ता तट्ठदेवताए साती वायुदेवताए विसाहा इंदग्गीदेवयाए अणुराहा मित्तदेवताए जेट्ठा इंददेवताए मूले णिरितिदेवताए पुव्वासाढा आउदेवताए उत्तरासाढा विस्सदेवयाए पण्णत्ते ॥ (सूत्रं ४६) दसमस्स बारसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते देवयाण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण भगवन् ! त्वया नक्षत्राधिपतीनां देवतानामध्ययनानि–अधीयन्ते ज्ञायन्ते यैस्तान्यध्ययनानि नामानीत्यर्थः, आख्यातानीति वदेत्, एवं प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषां–अनन्तरोदितानामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्येऽभिजिन्नक्षत्रं किंदेवताकं–किंनामधेयदेवताकं प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—'ता'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, ब्रह्मदेवताकं–ब्रह्माभिधदेवताकं प्रज्ञप्तं, श्रवणनक्षत्रं किंदेवताकं प्रज्ञप्तं ?, भगवानाह—'ता'इत्यादि, विष्णुनामदेवताकं प्रज्ञप्तं, एवं शेषाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, देवताभिधानसङ्ग्राहिकाश्चेमास्तिस्रः प्रवचनप्रसिद्धाः सङ्ग्रहणिगाथाः—"बम्हा विण्हू य वसू वरुणो तह ऽजो अणंतरं होइ । अभिवड्ढि पूस गंधव्व चेव परतो जमो होइ ॥ १ ॥ अग्गि पयावइ सोमे रुद्दे अदिई बहस्सई चेव । नागे पिइ भग अज्जम सविया तट्ठा य वाऊ य ॥ २ ॥ इंदग्गी मित्तोवि य इंदे निरई य आउविस्सो य । नामाणि देवयाणं हवंति रिक्खाण जहकमसो ॥ ३ ॥"

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १२ समाप्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [४७] + ॥१-३॥

दीप अनुक्रम [६१-६४]

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य द्वादशं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति त्रयोदशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'मुहूर्त्तानां नामधेयानि वक्तव्यानि' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

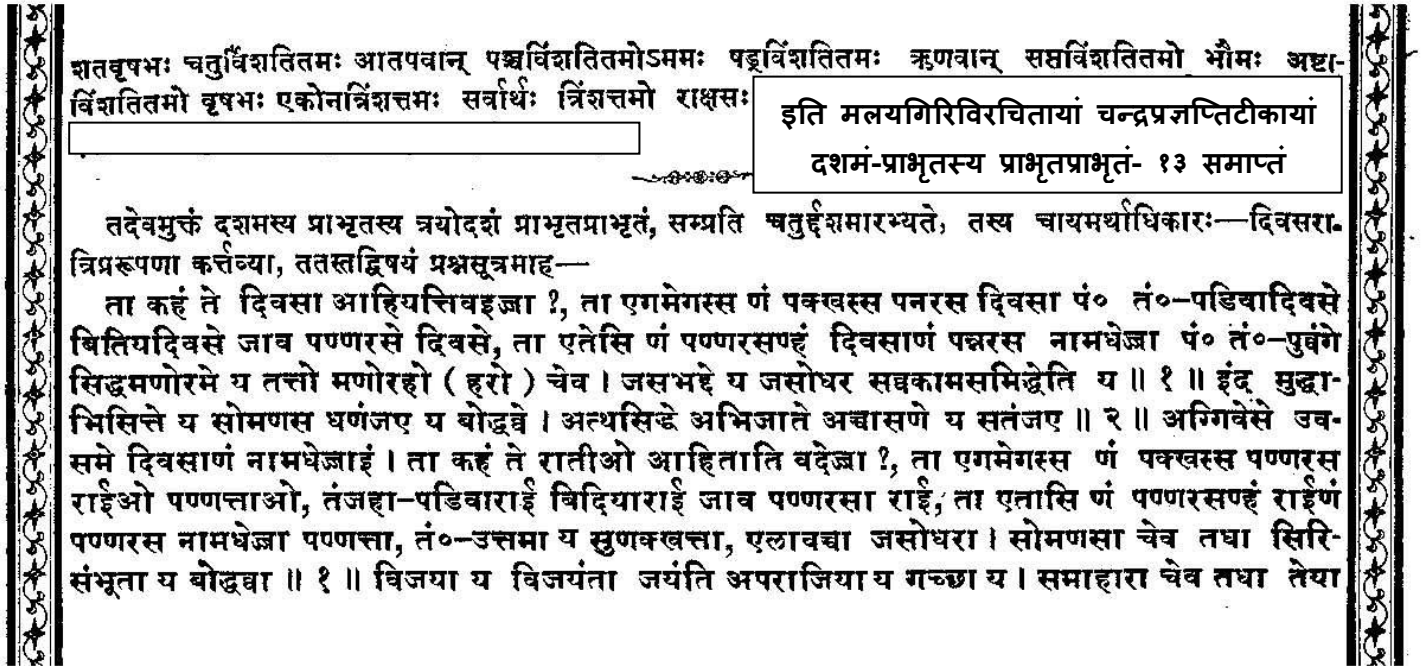
ता कहं ते मुहुत्ताणं नामधेज्जा आहितेति वदेज्जा ?, ता एगमेगस्स णं अहोरत्तस्स तीसं मुहुत्ता तं०—"रोद्दे सेते मित्ते, वायु सुगीए (पी) त अभिचंदे । महिंद बलवं बंभो, बहुसच्चे चेव ईसाणे ॥ १ ॥ तट्ठे य भावियप्पा वेसमणे वरुणे य आणंदे । विजएँ (य) वीससेणे पयावई चेव उवसमेय ॥ २ ॥ गंधव्व अग्गिवेसे सयरिसहे आयवं च अममे य । अणवं च भोग रिसहे सव्वट्ठे रक्खसे चेव ॥ ३ ॥ (सूत्रं ४७) दसमस्स पाहुडस्स तेरसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते मुहुत्ताण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?—केन प्रकारेण भगवन् ! त्वया मुहूर्त्तानां नामधेयानि—नामान्येव नामधेयानि, 'नामरूपभागाद्धेय' इति स्वार्थे धेयप्रत्ययः, आख्यातानीति वदेत्, भगवानाह—'ता एगमेगस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकस्याहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ता वक्ष्यमाणनामधेययुक्ता इति शेषः, तान्येव नामधेयान्याह—'तंजहा—रोद्दे'त्यादि गाथात्रयं, तत्र प्रथमो मुहूर्त्तो रुद्रो द्वितीयः श्रेयान् तृतीयो मित्रश्चतुर्थो वायुः पञ्चमः सुपीतः षष्ठोऽभिचन्द्रः सप्तमः माहेन्द्रोऽष्टमः बलवान् नवमः ब्रह्मा दशमः बहुसत्यः एकादश ईशानो द्वादशः त्वष्टा त्रयोदशः भावितात्मा चतुर्दशः वैश्रमणः पञ्चदशः वारुणः षोडशः आनन्दः सप्तदशो विजयः अष्टादशो विश्वसेनः एकोनविंशतितमः प्राजापत्यः विंशतितमः उपशमः एकविंशतितमो गन्धर्वः द्वाविंशतितमोऽग्निवेश्यः त्रयोविंशतितमः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १२ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १३ आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [४७] + ॥१-३॥ दीप अनुक्रम [६१-६४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:



शतवृषभः चतुर्विंशतितमः आतपवान् पञ्चविंशतितमोऽममः षड्विंशतितमः ऋणवान् सप्तविंशतितमो भौमः अष्टाविंशतितमो वृषभः एकोनत्रिंशत्तमः सर्वार्थः त्रिंशत्तमो राक्षसः

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १३ समाप्तं

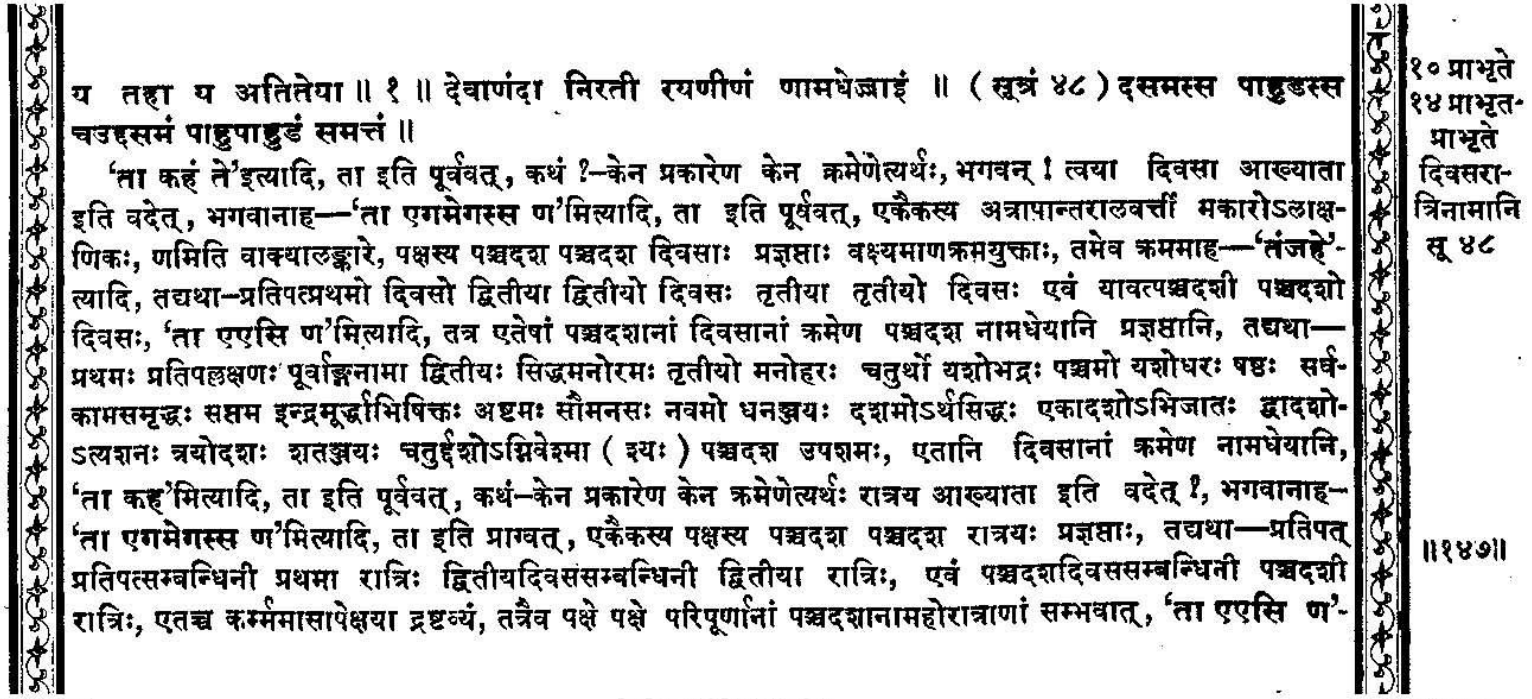
तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य त्रयोदशं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति चतुर्दशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—दिवसरात्रिप्ररूपणा कर्त्तव्या, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते दिवसा आहियत्तिवइज्जा ?, ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पनरस दिवसा पं० तं०—पडिवादिवसे बितियदिवसे जाव पण्णरसे दिवसे, ता एतेसि णं पण्णरसण्हं दिवसाणं पन्नरस नामधेज्जा पं० तं०—पुव्वंगे सिद्धमणोरमे य तत्तो मणोरहो (हरो) चेव । जसभद्दे य जसोधर सव्वकामसमिद्धेति य ॥ १ ॥ इंद मुद्धाभिसित्ते य सोमणस धणंजए य बोद्धव्वे । अत्थसिद्धे अभिजाते अच्चासणे य सतंजए ॥ २ ॥ अग्गिवेसे उवसमे दिवसाणं नामधेज्जाइं । ता कहं ते रातीओ आहितात्ति वदेज्जा ?, ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस राईओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पडिवाराई बिदियाराई जाव पण्णरसा राई, ता एतासि णं पण्णरसण्हं राईणं पण्णरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं०—उत्तमा य सुणक्खत्ता, एलावच्चा जसोधरा । सोमणसा चेव तधा सिरिसंभूता य बोद्धव्वा ॥ १ ॥ विजया य विजयंता जयंति अपराजिया य गच्छा य । समाहारा चेव तधा तेया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १३ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १४ आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [४८] + गाथा: दीप अनुक्रम [६५-७१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः मल०) ॥१४७॥

य तहा य अतितेया ॥ १ ॥ देवाणंदा निरती रयणीणं णामधेज्जाइं ॥ (सूत्रं ४८) दसमस्स पाहुडस्स चउद्दसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण केन क्रमेणेत्यर्थः, भगवन् ! त्वया दिवसा आख्याता इति वदेत्, भगवानाह—'ता एगमेगस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकस्य अत्रापान्तरालवर्त्ती मकारोऽलाक्षणिकः, णमिति वाक्यालङ्कारे, पक्षस्य पञ्चदश पञ्चदश दिवसाः प्रज्ञप्ताः वक्ष्यमाणक्रमयुक्ताः, तमेव क्रममाह—'तंजहे'त्यादि, तद्यथा–प्रतिपत्प्रथमो दिवसो द्वितीया द्वितीयो दिवसः तृतीया तृतीयो दिवसः एवं यावत्पञ्चदशी पञ्चदशो दिवसः, 'ता एएसि ण'मित्यादि, तत्र एतेषां पञ्चदशानां दिवसानां क्रमेण पञ्चदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— प्रथमः प्रतिपल्लक्षणः पूर्वाङ्गनामा द्वितीयः सिद्धमनोरमः तृतीयो मनोहरः चतुर्थो यशोभद्रः पञ्चमो यशोधरः षष्ठः सर्वकामसमृद्धः सप्तम इन्द्रमूर्द्धाभिषिक्तः अष्टमः सौमनसः नवमो धनञ्जयः दशमोऽर्थसिद्धः एकादशोऽभिजातः द्वादशोऽत्यशनः त्रयोदशः शतञ्जयः चतुर्दशोऽग्निवेश्मा (श्यः) पञ्चदश उपशमः, एतानि दिवसानां क्रमेण नामधेयानि, 'ता कह'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं–केन प्रकारेण केन क्रमेणेत्यर्थः रात्रय आख्याता इति वदेत् ?, भगवानाह— 'ता एगमेगस्स ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, एकैकस्य पक्षस्य पञ्चदश पञ्चदश रात्रयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रतिपत् प्रतिपत्सम्बन्धिनी प्रथमा रात्रिः द्वितीयदिवससम्बन्धिनी द्वितीया रात्रिः, एवं पञ्चदशदिवससम्बन्धिनी पञ्चदशी रात्रिः, एतच्च कर्म्ममासापेक्षया द्रष्टव्यं, तत्रैव पक्षे पक्षे परिपूर्णानां पञ्चदशानामहोरात्राणां सम्भवात्, 'ता एएसि ण'-

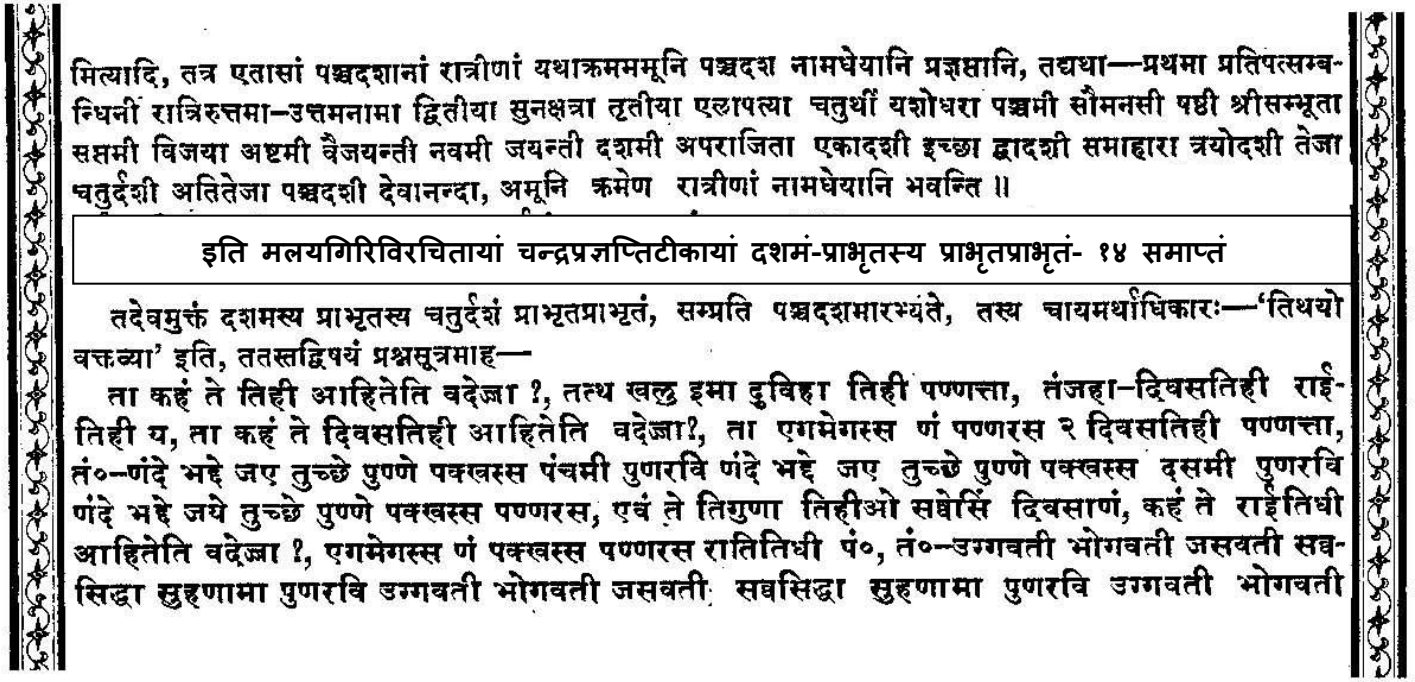
१० प्राभृते १४ प्राभृतप्राभृते दिवसरात्रिनामानि सू ४८

॥१४७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १३ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १४ आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [४८] + गाथा: दीप अनुक्रम [६५-७१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



मित्यादि, तत्र एतासां पञ्चदशानां रात्रीणां यथाक्रमममूनि पञ्चदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—प्रथमा प्रतिपत्सम्बन्धिनी रात्रिरुत्तमा–उत्तमनामा द्वितीया सुनक्षत्रा तृतीया एलापत्या चतुर्थी यशोधरा पञ्चमी सौमनसी षष्ठी श्रीसम्भूता सप्तमी विजया अष्टमी वैजयन्ती नवमी जयन्ती दशमी अपराजिता एकादशी इच्छा द्वादशी समाहारा त्रयोदशी तेजा चतुर्दशी अतितेजा पञ्चदशी देवानन्दा, अमूनि क्रमेण रात्रीणां नामधेयानि भवन्ति ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १४ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य चतुर्दशं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति पञ्चदशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'तिथयो वक्तव्या' इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते तिही आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमा दुविहा तिही पण्णत्ता, तंजहा–दिवसतिही राईतिही य, ता कहं ते दिवसतिही आहितेति वदेज्जा?, ता एगमेगस्स णं पण्णरस २ दिवसतिही पण्णत्ता, तं०–णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पंचमी पुणरवि णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स दसमी पुणरवि णंदे भद्दे जये तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पण्णरस, एवं ते तिगुणा तिहीओ सव्वेसिं दिवसाणं, कहं ते राईतिधी आहितेति वदेज्जा ?, एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस रातितिधी पं०, तं०–उग्गवती भोगवती जसवती सव्वसिद्धा सुहणामा पुणरवि उग्गवती भोगवती जसवती सव्वसिद्धा सुहणामा पुणरवि उग्गवती भोगवती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १४ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १५ आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [४९]

दीप अनुक्रम [७२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

जसवती सवसिद्धा सुहणामा, एते तिगुणा तिहीओ सवासिं रातीणं ॥ (सूत्रं ४९) दसमस्स पाहुडस्स पण्णरसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते तिहीं'त्यादि, 'ता' इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण केन क्रमेण तिथय आख्याता इति वदेत्, ननु दिवसेभ्यस्तिथीनां कः प्रतिविशेषः येन एताः पृथक् पृच्छयन्ते ?, उच्यते, इह सूर्यनिष्पादिता अहोरात्राः चन्द्रनिष्पादिताः तिथयः, तत्र चन्द्रमसा तिथयो निष्पाद्यन्ते वृद्धिहानिभ्यां, तथा चोक्तम्—"तं रयय कुमुयसिरिसप्पभस्स चंदस्स राइसुरुगस्स । लोए तिहित्ति निययं भण्णइ वुड्ढीऍ हाणीऍ ॥ १ ॥" [त्वं रचय (पूजां) कुमुदश्रीसत्प्रभस्य चन्द्रस्य रात्रिसुरुचेः । लोके तिथिरिति नियतं भण्यते (यस्य) वृद्ध्या हान्या ॥ १ ॥] तत्र वृद्धिहानी चन्द्रमण्डलस्य न स्वरूपतः किन्तु राहुविमानावरणानावरणकृते, तथाहि—इह द्विविधो राहुः, तद्यथा—पर्वराहुः ध्रुवराहुश्च, तत्र यः पर्वराहुः तद्गता चिन्ताऽत्रानुपयोगिनीत्यग्रे वक्ष्यते क्षेत्रसमासटीकायां वा कृतेति ततोऽवधार्या, यस्तु ध्रुवराहुस्तस्य विमानं कृष्णं, तच्च चन्द्रमण्डलस्याधस्ताच्चतुरङ्गुलमसम्प्राप्तं सत् चारं चरति, तत्र चन्द्रमण्डलं बुद्ध्या द्वापष्टिसङ्ख्यैर्भागैः परिकल्प्यते, परिकल्प्य च तेषां भागानां पञ्चदशभिर्भागो ह्रियते, लब्धाश्चत्वारो द्वापष्टिभागाः शेषौ द्वौ भागौ तिष्ठतः, तौ च सदा तावृद्धौ (सदानावृतौ) एषा किल चन्द्रमसः षोडशी कलेति प्रसिद्धिः, तत्र कृष्णपक्षे प्रतिपदि ध्रुवराहुविमानं कृष्णं, तच्च चन्द्रमण्डलस्याधस्ताच्चतुरङ्गुलमसंप्राप्तं सत् चारं चरत् आत्मीयेन पञ्चदशेन भागेन द्वौ द्वापष्टिभागौ सदाऽनावार्यस्वभावौ मुक्त्वा शेषषष्टिसत्कषष्टिभागात्मकस्य चन्द्रमण्डलस्य एकं चतुर्भागात्मकं पञ्चदशभागमावृणोति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४९]

दीप अनुक्रम [७२]

द्वितीयस्यामात्मीयाभ्यां द्वाभ्यां पञ्चदशभागाभ्यां द्वौ पञ्चदशभागौ, तृतीयस्यामात्मीयैस्त्रिभिः पञ्चदशभागैस्त्रीन् पञ्चदशभागान्, एवं यावदमावास्यायां पञ्चदश भागानावृणोति, ततः शुक्लपक्षे प्रतिपदि एकं पञ्चदशभागं प्रकटीकरोति, द्वितीयस्यां द्वौ पञ्चदशभागौ तृतीयस्यां त्रीन् पञ्चदशभागान् एवं यावत् पञ्चदश्यां पञ्चदशापि भागाननावृतान् करोति, तदा च सर्वात्मना परिपूर्णं चन्द्रमण्डलं लोके प्रकटं भवति, वक्ष्यति चामुमर्थमग्रेऽपि सूत्रकृत्—'तत्थ णं जे से धुवराहू से णं बहुलपक्खस्स पडिवए पण्णरसभागेणं' मित्यादिना ग्रन्थेन, तत्र यावता कालेन कृष्णपक्षे षोडशो भागो द्वाषष्टिभागसत्कचतुर्भागात्मको हानिमुपगच्छति स तावान् कालविशेषस्तिथिरित्युच्युते, तथा यावता कालेन शुक्लपक्षे षोडशभागो द्वाषष्टिभागसत्कभागचतुष्टयप्रमाणः परिवर्द्धते तावत्प्रमाणः कालविशेषस्तिथिर्भवति, उक्तं च—"सोलसभागा काऊण उडुवई हायएत्थ पन्नरस । तित्तियमित्ते भागे पुणोऽवि परिवड्ढए जोण्हे ॥ १ ॥ कालेण जेण हायइ सोलस भागो उ सा तिही होइ । तह चेव य वुड्ढीए एवं तिहिणो समुप्पत्ती ॥२॥" अत्र 'जोण्हे' इति जोत्स्ने शुक्लपक्षे इत्यर्थः, शेषं सुगमं, अयं च पूर्वाचार्यपरम्परायात उपनिषदुपदेशः–अहोरात्रस्य द्वाषष्टिभागप्रविभक्तस्य ये एकषष्टिभागास्तावत्प्रमाणा तिथिरिति, अथाहोरात्रस्त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणः सुप्रतीतः, प्रागेव सूत्रकृता तस्य तावत्प्रमाणतयाऽभिधानात्, तिथिस्तु किंमुहूर्त्तप्रमाणेति ?, उच्यते, परिपूर्णा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, उक्तं च—"अउणत्तीसं पुन्ना उ मुहुत्ता सोमओ तिही होइ । भागावि य बत्तीसं बाव(दुस)ट्ठिकाएण छेएणं ॥१॥" कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, इह अहोरात्रस्य द्वाषष्टिभागीकृतस्य सत्का ये एकषष्टिभागास्तावत्प्रमाणा तिथिरित्युच्यते, तत्रैकषष्टि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रिंशता गुण्यते जातानि अष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, एते च किल द्वाषष्टिभागीकृतसकलतिथिगतमुहूर्त्तसत्का अंशाः, ततो मुहूर्त्तानयनार्थं तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ता द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, एतावन्मुहूर्त्तप्रमाणा तिथिः, एतावता हि कालेन चन्द्रमण्डलगतः पूर्वोदितप्रमाणः षोडशो भागो हानिं वोपगच्छति वर्द्धते वा, तत एतावानेव तिथेः परिमाणकालः, तदेवमहोरात्रादस्ति तिथेः प्रतिविशेष इत्युपपन्नस्तिथिविषये पृथक्प्रश्नः, एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र—तिथिविचारविषये खल्विमा—वक्ष्यमाणस्वरूपा द्विविधास्तिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—दिवसतिथयो रात्रितिथयश्च, तत्र तिथेर्यः पूर्वार्द्धभागः स दिवसतिथिरित्युच्यते, यस्तु पश्चार्द्धभागः स रात्रितिथिरिति, 'ता कह'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?—केन प्रकारेण कया नाम्नां परिपाट्या इत्यर्थः, दिवसतिथय आख्याता इति वदेत्, भगवानाह—'एगमेगस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकस्य णमिति वाक्यालङ्कारे पक्षस्य मध्ये पञ्चदश दिवसतिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमा नन्दा द्वितीया भद्रा तृतीया जया चतुर्थी तुच्छा पञ्चमी पक्षस्य पूर्णा, ततः पुनरपि षष्ठी तिथिर्नन्दा सप्तमी भद्रा अष्टमी जया नवमी तुच्छा दशमी पक्षस्य पूर्णा, ततः पुनरप्येकादशी तिथिर्नन्दा द्वादशी भद्रा त्रयोदशी जया चतुर्दशी तुच्छा पक्षस्य पञ्चदशी पूर्णा,'एव'मित्यादि, एवं—उक्तेन प्रकारेण, एते इति स्त्रीत्वेऽपि प्राप्ते पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, एता अनन्तरोदितास्तिथयो नन्दाद्याः, नन्दादीन्यनन्तरोदितानि तिथिनामानीत्यर्थः, त्रिगुणाः, त्रिगुणितानीति भावः, सर्वेषां पक्षान्तर्वर्त्तिनां दिवसानां, सर्वासां पक्षान्तर्वर्त्तिनीनां दिवसतिथीनामित्यर्थः, 'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?—केन प्रकारेण, कया नाम्नां परिपाट्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इत्यर्थः, भगवन् ! ते त्वया रात्रितिथय आख्याता इति वदेत्, भगवानाह—'ता एगमेगस्स ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, एकैकस्य पक्षस्य पञ्चदश पञ्चदश रात्रितिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमा उग्रवती द्वितीया भोगवती तृतीया यशोमती चतुर्थी सर्वसिद्धा पञ्चमी शुभनामा ततः पुनरपि षष्ठी उग्रवती सप्तमी भोगवती अष्टमी यशोमती नवमी सर्वसिद्धा दशमी शुभनामा ततः पुनरप्येकादशी उग्रवती द्वादशी भोगवती त्रयोदशी यशोमती चतुर्दशी सर्वसिद्धा पञ्चदशी शुभनामा, एवमेतास्त्रिगुणास्तिथयः, एवमेतानि त्रिगुणानि तिथिनामानीत्यर्थः, सर्वासां रात्रीणां—रात्रितिथीनां वाचकानीति शेषः ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १५ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य पञ्चदशं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति षोडशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—यथा 'गोत्राणि वक्तव्यानी'ति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते गोत्ता आहितेति वदेज्जा ?, ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभियी णक्खत्ते किंगोत्ते ?, ता मोग्गल्लायणसगोत्ते पण्णत्ते, सवणे णक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, संखायणसगोत्ते पण्णत्ते, धणिट्ठाणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, अग्गतावसगोत्ते पं०, सतभिसयाणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, कण्णलोयणसगोत्ते पं०, पुव्वापोट्ठवताणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, जोउकण्णियसगोत्ते पण्णत्ते, उत्तरापोट्ठवताणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, धणंजयसगोत्ते पण्णत्ते, रेवतीणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ? पुस्सायणसगोत्ते पण्णत्ते, अस्सिणीनक्खत्ते किंगोत्ते

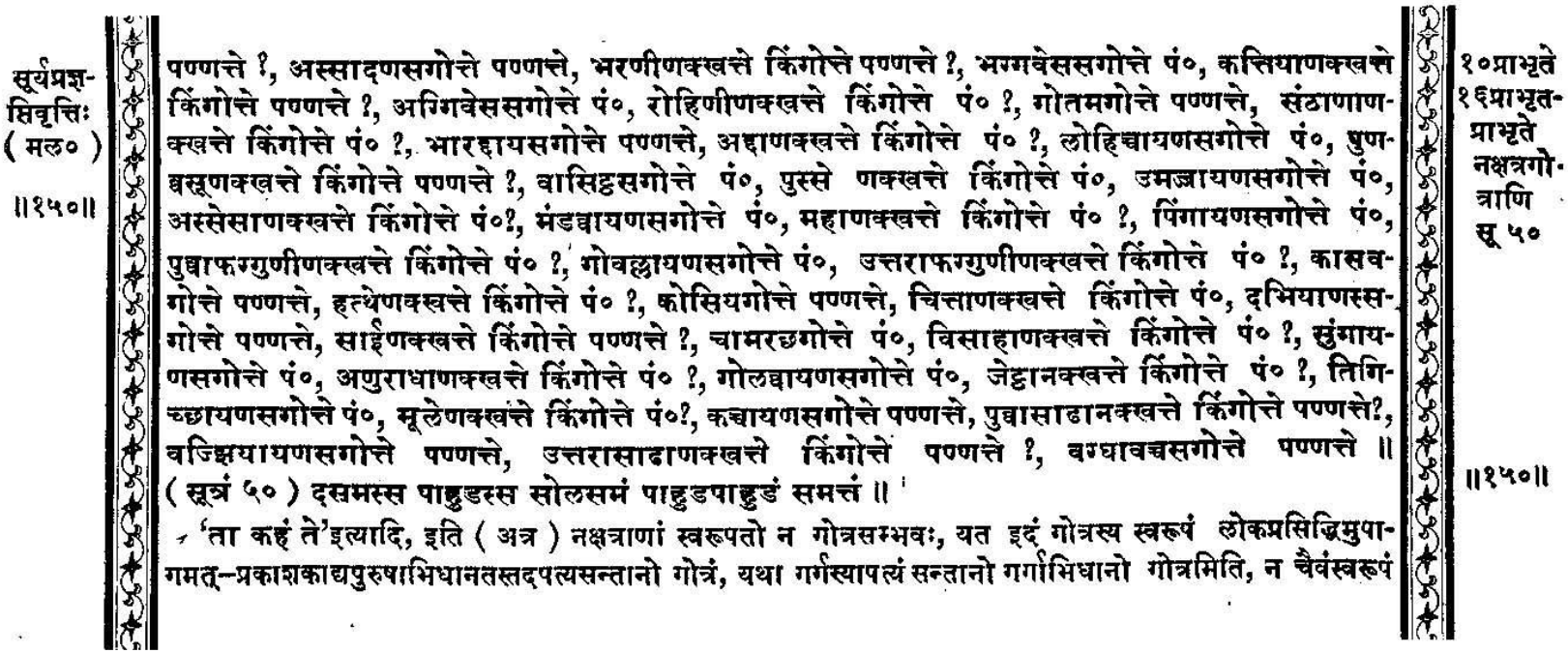
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १५ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १६ आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५०]

दीप अनुक्रम [७३]



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१५०॥

पण्णत्ते ?, अस्सादणसगोत्ते पण्णत्ते, भरणीणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, भग्गवेससगोत्ते पं०, कत्तियाणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, अग्गिवेससगोत्ते पं०, रोहिणीणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, गोतमगोत्ते पण्णत्ते, संठाणाणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, भारद्दायसगोत्ते पण्णत्ते, अद्दाणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, लोहिच्चायणसगोत्ते पं०, पुणव्वसूणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, वासिट्ठसगोत्ते पं०, पुस्से णक्खत्ते किंगोत्ते पं०, उमज्जायणसगोत्ते पं०, अस्सेसाणक्खत्ते किंगोत्ते पं०?, मंडव्वायणसगोत्ते पं०, महाणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, पिंगायणसगोत्ते पं०, पुव्वाफग्गुणीणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, गोवल्लायणसगोत्ते पं०, उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, कासवगोत्ते पण्णत्ते, हत्थेणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, कोसियगोत्ते पण्णत्ते, चित्ताणक्खत्ते किंगोत्ते पं०, दभियाणसगोत्ते पण्णत्ते, साईणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, चामरछगोत्ते पं०, विसाहाणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, सुंगायणसगोत्ते पं०, अणुराधाणक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, गोलव्वायणसगोत्ते पं०, जेट्ठानक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, तिगिच्छायणसगोत्ते पं०, मूलेणक्खत्ते किंगोत्ते पं०?, कच्चायणसगोत्ते पण्णत्ते, पुव्वासाढानक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते?, वज्झियायणसगोत्ते पण्णत्ते, उत्तरासाढाणक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?, वग्घावच्चसगोत्ते पण्णत्ते ॥ (सूत्रं ५०) दसमस्स पाहुडस्स सोलसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, इति (अत्र) नक्षत्राणां स्वरूपतो न गोत्रसम्भवः, यत इदं गोत्रस्य स्वरूपं लोकप्रसिद्धिमुपागमत्–प्रकाशकाद्यपुरुषाभिधानतस्तदपत्यसन्तानो गोत्रं, यथा गर्गस्यापत्यं सन्तानो गर्गाभिधानो गोत्रमिति, न चैवंस्वरूपं

१०प्राभृते १६प्राभृतप्राभृते नक्षत्रगोत्राणि सू ५०

॥१५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५०] दीप अनुक्रम [७३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

नक्षत्राणां गोत्रं सम्भवति, तेषामौपपातिकत्वात्, तत इत्थं गोत्रसम्भवो द्रष्टव्यः–यस्मिन्नक्षत्रे शुभैरशुभैर्वा ग्रहैः समानं यस्य गोत्रस्य यथाक्रमं शुभमशुभं वा भवति तत्तस्य गोत्रं, ततः प्रश्नोपपत्तिः, 'ता'इति पूर्ववत्, कथं त्वया नक्षत्राणां गोत्राणि आख्यातानीति वदेत् ?, भगवानाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये अभिजिन्नक्षत्रं मोद्गल्यायनसगोत्रं–मौद्गल्यायनेन सह गोत्रेण वर्त्तते यत्तत्तथा, श्रवणनक्षत्रं शाङ्खायनसगोत्रं, एवं शेषाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, क्रमेण गोत्रसङ्ग्राहिकाश्चेमा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसत्काश्चतस्रः सङ्ग्रहणिगाथाः–

"मोग्गल्लायण १ संखायणे २ य तह अग्गभाव ३ कण्हे ४ । तत्तो य जोइकण्णे ५ धणंजए ६ चेव बोद्धव्वे ॥ १ ॥
पुस्सायण ७ अस्सायण ८ भग्गवेसे ९ य अग्गिवेसे १० य । गोयम ११ भारद्दाए १२ लोहिच्चे १३ चेव वासिट्ठे १४ ॥ २ ॥ उज्जायण १५ मंडव्वायणे १६ य पिंगायणे १७ य गोवल्ले १८ । कासव १९ कोसिय २० दब्भिय २१ भाग (चाम) रच्छा य २२ सुंगाए २३ ॥३॥ गोलव्वायण २४ तिगिंछायणे य २५ कच्चायणे २६ हवइ मूले । तत्तो य वज्झियायण २७ वग्घावच्चे २८ य गुत्ताइं ॥४॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभतप्राभतं- १६ समाप्तं

प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥'

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य षोडशं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति सप्तदशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'भोजनानि वक्तव्यानि' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते भोयणा आहितेति वदेज्जा ?, ता एएसि णं अट्ठावीसाए णं णक्खत्ताणं कत्तियाहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १६ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १७ आरभ्यते

दधिणा भोचा कज्जं साधिंति, रोहिणीहिं चसम (मस) मंसं भोचा कज्जं साधेंति, संठाणाहिं मिगमंसं भोचा कज्जं साधिंति, अद्दाहिं णवणीतेण भोचा कज्जं साधेंति, पुणव्वसुणाऽथ घतेण भोचा कज्जं साधेंति, पुस्सेणं खीरेण भोचा कज्जं साधेंति, अस्सेसाए दीवगमंसं भोचा कज्जं साधेंति, महाहिं कसोतिं भोचा कज्जं साधेंति, पुवाहिं फग्गुणीहिं मेढकमंसं भोचा कज्जं साधेंति, उत्तराहिं फग्गुणीहिं णक्खीमंसं भोचा कज्जं साधेंति, हत्थेण वत्थाणीएण भोचा कज्जं साधेंति, चित्ताहिं मग्गसूवेणं भोचा कज्जं साधेंति, सादिणा फलाइं भोचा कज्जं साधेंति, विसाहाहिं आसित्तियाओ भोचा कज्जं साधेंति, अणुराहाहिं मिस्साकूरं भोचा कज्जं साधेंति, जेट्ठाहिं लट्ठिएणं भोचा कज्जं साधेंति, पुवाहिं आसाढाहिं आमलगसरीरे भोचा कज्जं साधेंति, उत्तराहिं आसाढाहिं बलेहिं भोचा कज्जं साधेंति, अभीयिणा पुप्फेहिं भोचा कज्जं साधेंति, सवणेणं खीरेणं भोचा कज्जं साधेंति, सयभिसयाए तुवराउ भोचा कज्जं साधेंति, पुवाहिं पुट्ठवयाहिं कारिल्लएहिं भुचा कज्जं साधेंति, उत्तराहिं पुट्ठवताहिं वराहमंसं भोचा कज्जं साधेंति, रवेतीहिं जलयरमंसं भोचा कज्जं साधेंति, अस्सिणीहिं तित्तिरमंसं भोचा कज्जं साधेंति वट्टकमंसं वा, भरणीहिं तलं तंदुलकं भोचा कज्जं साधेंति (सूत्रं ५१) दसमस्स पाहुडस्स सत्तरसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते भोयणे'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं?—केन प्रकारेण नक्षत्रविषयाणि भोजनानि आख्यातानीति वदेत्, भगवानाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामनन्तरोदितानामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये कृत्तिकाभिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५१]

दीप अनुक्रम [७४]

पुमान् कार्यं साधयति, दध्ना सम्मिश्रमोदनं भुक्त्वा, किमुक्तं भवति ?–कृत्तिकासु प्रारब्धं कार्यं दध्नि भुक्ते प्रायो निर्विघ्नं सिद्धिमासादयतीति, एवं शेषेष्वपि सूत्रेषु भावना द्रष्टव्या ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १७ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य सप्तदशं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रत्यष्टादशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'चन्द्रादित्यचारा वक्तव्याः' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते चारा आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमा दुविहा चारा पं०, तं०–आदिच्चचारा य चन्दचारा य, ता कहं ते चंदचारा आहितेति वदेज्जा ?, ता पंचसंवच्छरिएणं जुगे, अभीइणक्खत्ते सत्तसट्ठिचारे चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, सवणे णं णक्खत्ते सत्तट्ठिं चारे चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, एवं जाव उत्तरासाढाणक्खत्ते सत्तट्ठिचारे चंदेणं सद्धिं जोयं जोएति । ता कहं ते आइच्चचारा आहितेति वदेज्जा ?, ता पंचसंवच्छरिए णं जुगे, अभीयीणक्खत्ते पंचचारे सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, एवं जाव उत्तरासाढाणक्खत्ते पंचचारे सूरेण सद्धिं जोयं जोएति (सूत्रं ५२) दसमस्स पाहुडस्स अट्ठारसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण किंप्रमाणया सङ्ख्यया इत्यर्थः, चारा आख्याता इति वदेत्, भगवानाह—'तत्थे'त्यादि, तत्र–चारविचारविषये खल्विमे वक्ष्यमाणस्वरूपा द्विविधा–द्विप्रकाराश्चाराः प्रज्ञप्ताः, द्वैविध्यमेवाह–तद्यथा–आदित्यचाराश्चन्द्रचाराश्च, चशब्दौ परस्परसमुच्चये, तत्र प्रथमतश्चन्द्रचारपरिज्ञानार्थं तद्विषयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १७ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १८ आरभ्यते

प्रश्नसूत्रमाह—'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, कथं ?—केन प्रकारेण, कया सङ्ख्यया इत्यर्थः, त्वया भगवन् ! चन्द्रचारा आख्याता इति वदेत्, भगवानाह—'ता पंचे'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, पञ्चसांवत्सरिके—चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभिवर्द्धितरूपपञ्चसंवत्सरप्रमाणे णमिति वाक्यालङ्कारे युगे अभिजिन्नक्षत्रं सप्तषष्टिं चारान् यावत् चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति—योगमुपपद्यते, किमुक्तं भवति ?—चन्द्रोऽभिजिन्नक्षत्रेण सह संयुक्तो युगमध्ये सप्तषष्टिसङ्ख्यान् चारान् चरतीति, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, इह योगमधिकृत्य सकलनक्षत्रमण्डलीपरिसमाप्तिरेकेन नक्षत्रमासेन भवति, नक्षत्रमासाश्च युगमध्ये सप्तषष्टिरेतच्चाग्रे भावयिष्यते ततः प्रतिनक्षत्रपर्यायमेकैकं चारमभिजिता नक्षत्रेण सह चन्द्रस्य योगसम्भवादुपपद्यते चन्द्रोऽभिजिता नक्षत्रेण सह संयुक्तो युगमध्ये सप्तषष्टिसङ्ख्यान् चारान् चरतीति, एवं प्रतिनक्षत्रं भावनीयं । सम्प्रति आदित्यचारविषयं प्रश्नसूत्रमाह—'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, कथं—किंप्रमाणया सङ्ख्यया भगवन् ! त्वया आदित्यचारा आख्याता इति वदेत् ?, भगवानाह—'पंचसंवच्छरिए ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, पञ्चसांवत्सरिके—चन्द्रादिपञ्चसंवत्सरप्रमाणे युगे—युगमध्येऽभिजिन्नक्षत्रं पञ्च चारान् यावत् सूर्येण सह योगं युनक्ति, अत्राप्ययं भावार्थः—अभिजिता नक्षत्रेण संयुक्तः सूर्यो युगमध्ये पञ्चसङ्ख्यान् चारान् चरति, कथमेतदवगम्यते इति चेत्, उच्यते, इह योगमधिकृत्य सूर्यस्य सकलनक्षत्रमण्डलीपरिसमाप्तिरेकेन सूर्यसंवत्सरेण, सूर्यसंवत्सराश्च युगे भवन्ति पञ्च, ततः प्रतिनक्षत्रपर्यायमेकैकं चारमभिजिता नक्षत्रेण सह योगस्य सम्भवात् घटतेऽभिजिता नक्षत्रेण सह संयुक्तः सूर्यो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युगे पञ्च चारान् चरति, एवं शेषनक्षत्रेष्वपि भावना भावनीया ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां
दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १८ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्याष्टादशं प्राभृतप्राभृतं, साम्प्रतमेकोनविंशतितममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'मासप्ररूपणा कर्त्तव्ये'ति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते मासा आहितेति वदेज्जा ?, ता एगमेगस्स णं संवच्छरस्स बारस मासा पण्णत्ता, तेसिं च दुविहा नामधेज्जा पण्णत्ता, तं०—लोइया लोउत्तरिया य, तत्थ लोइया णामा सावणे भद्दवते आसोए जाव आसाढे, लोउत्तरिया णामा—अभिणंदे सुपइट्ठे य, विजये पीतिवद्धणे। सेज्जंसे य सिवे यावि, सिसिरेवि य हेमवं ॥ १ ॥ नवमे वसंतमासे, दसमे कुसुमसंभवे। एकादसमे णिदाहो, वणविरोही य बारसे ॥ २ ॥ (सूत्रं ५३) दसमस्स पाहुडस्स एगूणवीसतितमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, पूर्ववत्, कथं ?—केन प्रकारेण कया नाम्नां परिपाट्या इत्यर्थः भगवन् ! त्वया मासानां नामधेयानि आख्यातानीति वदेत्, भगवानाह—'एगमेगस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकस्य संवत्सरस्य द्वादश मासाः प्रज्ञप्ताः, तेषां च द्वादशानामपि मासानां नामधेयानि द्विविधानि प्रज्ञप्तानि—लौकिकानि लोकोत्तराणि च, तत्र लोके प्रसिद्धानि लौकिकानि, लोकादुत्तराणि यानि न लोके प्रसिद्धानि किन्तु प्रवचन एव तानि लोकोत्तराणि, तत्र लौकिकलोकोत्तराणां मध्ये लौकिकानि नामान्यमूनि, तद्यथा—'श्रावणो भाद्रपद' इत्यादि, लोकोत्तराणि नामान्यमूनि;

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १८ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १९ आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५३] + ॥१-२॥

दीप अनुक्रम [७६-७८]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१५३॥

तद्यथा—प्रथमः श्रावणरूपो मासोऽभिनन्दः द्वितीयः सुप्रतिष्ठः तृतीयो विजयः चतुर्थः प्रीतिवर्द्धनः पञ्चमः श्रेयान् षष्ठः शिवः सप्तमः शिशिरः अष्टमो हैमवान् नवमो वसन्तमासः दशमः कुसुमसम्भवः एकादशो निदाघः द्वादशो वनविरोधी ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- १९ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य एकोनविंशतितमं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति विंशतितममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'यथा पञ्च संवत्सराः प्रतिपाद्या' इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कति णं भंते ! संवच्छरे आहितेति वदेज्जा ?, ता पंच संवच्छरा आहितेतिवदेज्जा, तं०—णक्खत्तसंवच्छरे जुगसंवच्छरे पमाणसंवच्छरे लक्खणसंवच्छरे सणिच्छरसंवच्छरे (सूत्रं ५४) । ता णक्खत्तसंवच्छरे णं दुवालसविहे पण्णत्ते, सावणे भद्दवए जाव आसाढे, जं वा बहस्सतीमहग्गहे दुवालसहिं संवच्छरेहिं सव्वं णक्खत्तमंडलं समाणेति (सूत्रं ५५) ॥

'ता कइ ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कति–किंसङ्ख्याः णमिति वाक्यालङ्कारे संवत्सरा आख्याता इति वदेत्? भगवानाह—'ता'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, पञ्च संवत्सरा आख्याता इति वदेत्, तद्यथा–नक्षत्रसंवत्सर इत्यादि, तत्र यावता कालेनाष्टाविंशत्यापि नक्षत्रैः सह क्रमेण योगपरिसमाप्तिस्तावान् कालविशेषो द्वादशभिर्गुणितो नक्षत्रसंवत्सरः, उक्तं च—"नक्खत्तचंदजोगो बारसगुणिओ य नक्खत्तो" अत्र पुनरेकोनितनक्षत्रपर्यायोयोग एको नक्षत्रमासः सप्तविंशतिरहोरात्रा एकविंशतिश्च सप्तषष्टिभागा अहोरात्रस्य, एष राशिर्यदा द्वादशभिर्गुण्यते तदा त्रीण्यहोरात्रशतानि सप्त

१० प्राभृते १९ प्राभृतप्राभृते माता सू ५३ २० प्राभृते प्राभृत संवत्सराः सू ५४ नक्षत्रसंव० सू ५५ ॥१५३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- १९ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २० आरभ्यते

विंशत्यधिकानि एकपञ्चाशच्च सप्तषष्टिभागा अहोरात्रस्य एतावत्प्रमाणो नक्षत्रसंवत्सरः। युगं पञ्चवर्षात्मकं तत्पूरकः संवत्सरो युगसंवत्सरः। युगस्य प्रमाणहेतुः संवत्सरः प्रमाणसंवत्सरः। लक्षणेन यथावस्थितेनोपेतः संवत्सरो लक्षणसंवत्सरः। शनैश्चर-निष्पादितः संवत्सरः शनैश्चरसंवत्सरः शनैश्चर सम्भवः। तदेवं पञ्चापि शनैश्चर संवत्सरान् नामतः प्रतिपाद्य सम्प्रत्येतेषामेव संवत्सराणां यथाक्रमं भेदानाह—'ता नक्खत्ते'त्यादि, ता इति प्राग्वत् नक्षत्रसंवत्सरो द्वादशविधो–द्वादशप्रकारः, तद्य-था—'श्रावणो भाद्रपद'इत्यादि, इह एकः समस्तनक्षत्रयोगपर्यायो द्वादशभिर्गुणितो नक्षत्रसंवत्सरैः, ततो ये नक्षत्रसंवत्सरस्य पूरका द्वादश समस्तनक्षत्रयोगपर्यायाः श्रावणभाद्रपदादिनामानस्तेऽप्यवयवे समुदायोपचारात् नक्षत्रसंवत्सरः, ततः श्राव-णादिभेदात् द्वादशविधो नक्षत्रसंवत्सरः, 'जं वे'त्यादि, वाशब्दः पक्षान्तरसूचने, अथवा यत् सर्वं–समस्तं नक्षत्रमण्डलं बृहस्पतिर्महाग्रहो योगमधिकृत्य द्वादशभिः संवत्सरैः समानयति–परिभ्रमन् समापयति एष नक्षत्रसंवत्सरः, किमुक्तं भवति ?–यावता कालेन बृहस्पतिनामा महाग्रहो योगमधिकृत्याभिजिदादीन्यष्टाविंशतिमपि नक्षत्राणि परिसमापयति तावान् कालविशेषो द्वादशवर्षप्रमाणो नक्षत्रसंवत्सरः।

ता जुगसंवच्छरे णं पंचविहे पण्णत्ते, तं०–चंदे चंदे अभिवड्ढिए चंदे अभिवड्ढिए चेव, ता पढमस्स णं चंदस्स संवच्छरस्स चउवीसं पव्वा पं०, दोच्चस्स णं चंदसंवच्छरस्स चउवीसं पव्वा पं०, तच्चस्स णं अभिवड्ढित-संवच्छरस्स छव्वीसं पव्वा पं०, चउत्थस्स णं चंदसंवच्छरस्स चउवीसं पव्वा पं०, पंचमस्स णं अभिवड्ढियसंव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

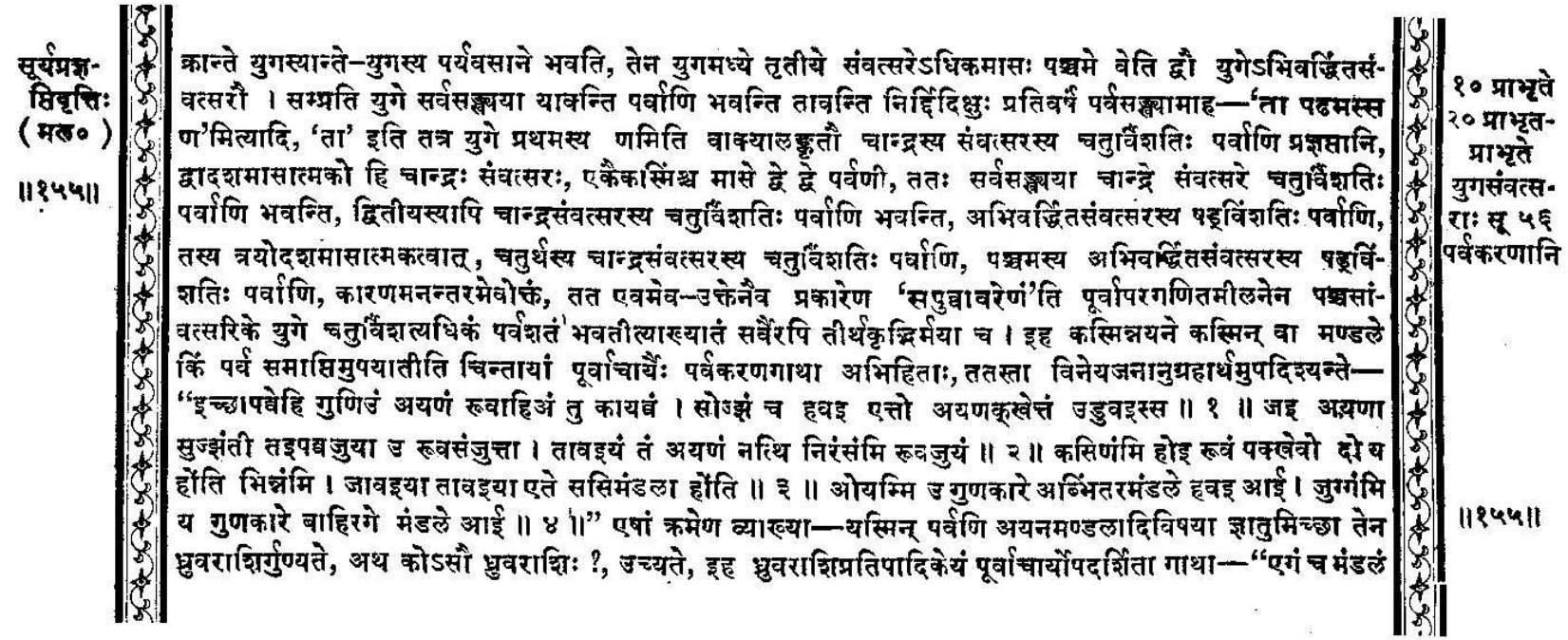
च्छरस्स छवीसं पव्वा पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं पंचसंवच्छरिए जुगे एगे चउवीसे पव्वसते भवतीति मक्खातं (सूत्रं ५६) ॥[1]

'ता जुगसंवच्छरे ण'मित्यादि, युगसंवत्सरो–युगपूरकः संवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—चान्द्रश्चान्द्रोऽभिवर्द्धितश्चान्द्रोऽभिवर्द्धितश्चैव, उक्तं च—"चंदो चंदो अभिवड्ढिओ य चंदोऽभिवड्ढिओ चेव । पंचसहियं जुगमिणं दिट्ठं तेलोक्कदंसीहिं ॥ १ ॥ पढमबिइया उ चंदा तइयं अभिवड्ढियं वियाणाहि । चंदं चेव चउत्थं पंचममभिवड्ढियं जाण ॥ २ ॥" तत्र द्वादशपूर्णमासीपरावर्त्ता यावता कालेन परिसमाप्तिमुपयान्ति तावान् कालविशेषश्चान्द्रः संवत्सरः, उक्तं च—'पुण्णिमपरियट्टा पुण बारस संवच्छरो हवइ चंदो ।' एकश्च पूर्णमासीपरावर्त्त एकश्चान्द्रमासः, तस्मिंश्च चान्द्रमासे रात्रिन्दिवपरिमाणचिन्तायामेकोनत्रिंशदहोरात्रा द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य, एतद् द्वादशभिर्गुण्यते, जातानि त्रीणि शतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि रात्रिन्दिवानां द्वादश च द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य, एवं परिमाणश्चान्द्रः संवत्सरः, तथा यस्मिन् संवत्सरेऽधिकमाससम्भवेन त्रयोदश चन्द्रमासा भवन्ति सोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः, उक्तं च–"तेरस य चंदमासा एसो अभिवड्ढिओ उ नायव्वो ।' एकस्मिंश्चन्द्रमासे अहोरात्रा एकोनत्रिंशद्भवति द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य, एतच्चानन्तरमेवोक्तं, तत एष राशिस्त्रयोदशभिर्गुण्यते, जातानि त्रीण्यहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य, एतावदहोरात्रप्रमाणोऽभिवर्द्धितसंवत्सर उपजायते । कथमधिकमाससम्भवो येनाभिवर्द्धितसंवत्सर उपजायते ?, कियता वा कालेन सम्भवतीति ?, उच्यते, इह युगं चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्द्धितरूपपञ्चसंवत्सरं सूर्यसंवत्सरापेक्षया परिभाव्यमानमन्यूनातिरिक्तानि पञ्च वर्षाणि भवन्ति, सूर्यमासश्च सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणश्चन्द्रमास एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य, ततो गणितसम्भावनया सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे एकश्चन्द्रमासोऽधिको लभ्यते, स च यथा लभ्यते तथा (ज्ञापनाय) पूर्वाचार्यप्रदर्शितेयं करणगाथा–'चंदस्स जो विसेसो आइच्चस्स य हविज्ज मासस्स । तीसइगुणिओ संतो हवइ हु अहिमासगो एक्को ॥ १ ॥' अस्या अक्षरगमनिका–आदित्यसंवत्सरसम्बन्धिनो मासस्य मध्यात् चन्द्रस्य–चन्द्रमासस्य यो भवति विश्लेषः, इह विश्लेषे कृते सति यदवशिष्यते तदप्युपचाराद्विश्लेषः, स त्रिंशता गुणितः सन् भवत्येकोऽधिकमासः, तत्र सूर्यमासपरिमाणात् सार्द्धत्रिंशदहोरात्ररूपाच्चन्द्रमासपरिमाणमेकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्येत्येवंरूपं शोध्यते, ततः स्थितं पञ्चाह्निनमेकमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनं, तच्च दिनं त्रिंशता गुण्यते, जातानि त्रिंशद्दिनानि, एकश्च द्वाषष्टिभागस्त्रिंशता गुणितो जाताः त्रिंशद् द्वाषष्टिभागास्ते त्रिंशद्दिनेभ्यः शोध्यन्ते, ततः स्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य, एतावत्परिमाणश्चान्द्रो मास इति भवति सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिकमासो, युगे च सूर्यमासाः षष्टिस्ततो भूयोऽपि सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे द्वितीयोऽधिकमासो भवति, उक्तं च—"सट्ठीए अइयाए हवइ हु अहिमासगो जुगद्धंमि । बावीसे पवसए हवइ य बीओ जुगद्धंमि ॥ १ ॥" अस्याप्यक्षरगमनिका—एकस्मिन् युगेऽनन्तरोदितस्वरूपे पर्वणां–पक्षाणां षष्टौ अतीतायां, षष्टिसङ्ख्येषु पक्षेष्वतिक्रान्तेषु इत्यर्थः, एतस्मिन्नवसरे युगार्द्धेषु–युगार्द्धप्रमाणे एकोऽधिकमासो भवति, द्वितीयस्त्वधिकमासो द्वाविंशे–द्वाविंशत्यधिके पर्वशते–पक्षशतेऽति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१५५॥

क्रान्ते युगस्यान्ते–युगस्य पर्यवसाने भवति, तेन युगमध्ये तृतीये संवत्सरेऽधिकमासः पञ्चमे वेति द्वौ युगेऽभिवर्द्धितसंवत्सरौ । सम्प्रति युगे सर्वसङ्ख्यया यावन्ति पर्वाणि भवन्ति तावन्ति निर्दिदिक्षुः प्रतिवर्षं पर्वसङ्ख्यामाह—'ता पढमस्स ण'मित्यादि, 'ता' इति तत्र युगे प्रथमस्य णमिति वाक्यालङ्कृतौ चान्द्रस्य संवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि, द्वादशमासात्मको हि चान्द्रः संवत्सरः, एकैकस्मिंश्च मासे द्वे द्वे पर्वणी, ततः सर्वसङ्ख्यया चान्द्रे संवत्सरे चतुर्विंशतिः पर्वाणि भवन्ति, द्वितीयस्यापि चान्द्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि भवन्ति, अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि, तस्य त्रयोदशमासात्मकत्वात्, चतुर्थस्य चान्द्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि, पञ्चमस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि, कारणमनन्तरमेवोक्तं, तत एवमेव–उक्तेनैव प्रकारेण 'सपुव्वावरेणं'ति पूर्वापरगणितमीलनेन पञ्चसांवत्सरिके युगे चतुर्विंशत्यधिकं पर्वशतं भवतीत्याख्यातं सर्वैरपि तीर्थकृद्भिर्मया च । इह कस्मिन्नयने कस्मिन् वा मण्डले किं पर्व समाप्तिमुपयातीति चिन्तायां पूर्वाचार्यैः पर्वकरणगाथा अभिहिताः, ततस्ता विनेयजनानुग्रहार्थमुपदिश्यन्ते— "इच्छापव्वेहि गुणिउं अयणं रूवाहिअं तु कायव्वं । सोज्झं च हवइ एत्तो अयणक्खेत्तं उडुवइस्स ॥ १ ॥ जइ अयणा सुज्झंती तइपव्वजुया उ रूवसंजुत्ता । तावइयं तं अयणं नत्थि निरंसंमि रूवजुयं ॥ २ ॥ कसिणंमि होइ रूवं पक्खेवो दो य होंति भिन्नंमि । जावइया तावइया एते ससिमंडला होंति ॥ ३ ॥ ओयम्मि उ गुणकारे अब्भिंतरमंडले हवइ आई । जुग्गंमि य गुणकारे बाहिरगे मंडले आई ॥ ४ ॥" एषां क्रमेण व्याख्या—यस्मिन् पर्वणि अयनमण्डलादिविषया ज्ञातुमिच्छा तेन ध्रुवराशिर्गुण्यते, अथ कोऽसौ ध्रुवराशिः ?, उच्यते, इह ध्रुवराशिप्रतिपादिकेयं पूर्वाचार्योपदर्शिता गाथा—"एगं च मंडलं

१० प्राभृते २० प्राभृतप्राभृते युगसंवत्सराः सू ५६ पर्वकरणानि

॥१५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

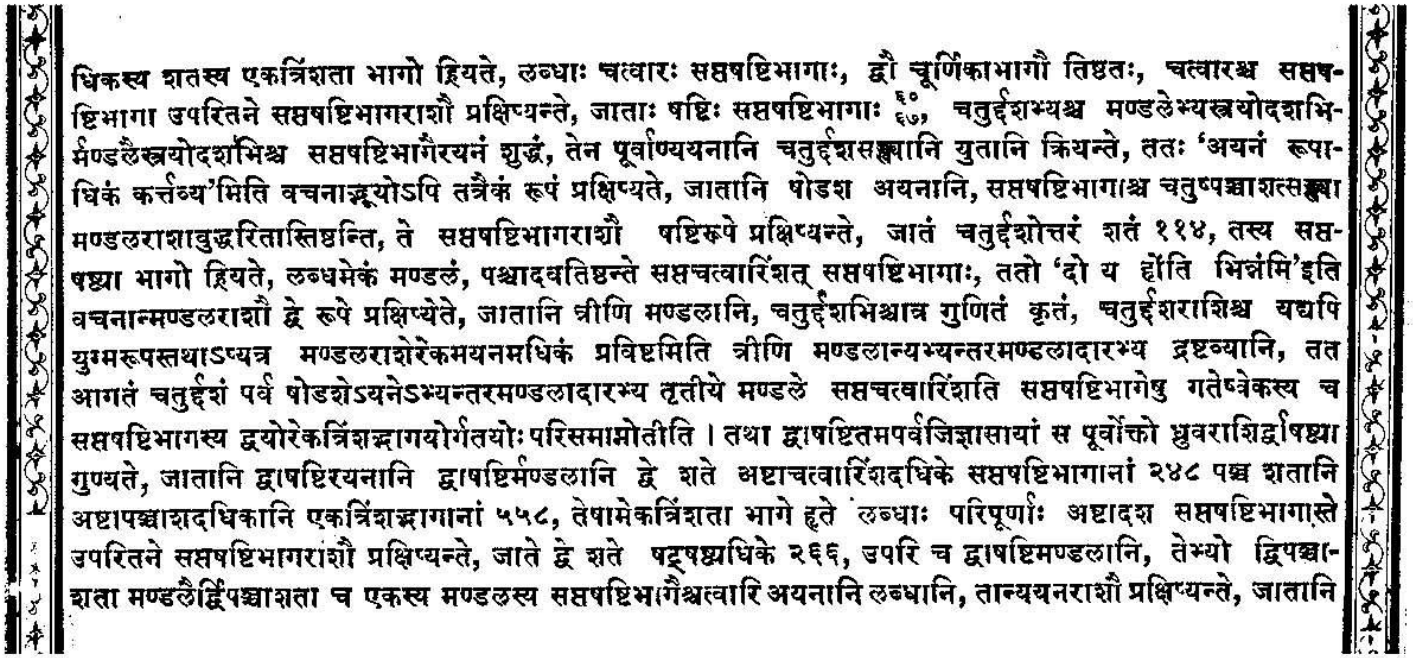
मंडलस्स सत्तट्ठभाग चत्तारि । नव चेव चुण्णियाओ इगतीसकएण छेएण ॥१॥" अस्या अक्षरयोजना–एकं मण्डलमेकस्य च मण्डलस्य सप्तषष्टिभागाश्चत्वारः च नव चूर्णिकाभागा एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशत्कृतेन छेदेन ये चूर्णिका भागास्तेन च, एतावत्प्रमाणो ध्रुवराशिः, अयं च पर्वगतक्षेत्रादयनगतक्षेत्रापगमे शेषीभूतः, एतस्य चोत्पत्तिमात्रं भावयिष्यामः, तत एवंभूतं ध्रुवराशिमीप्सितपर्वभिर्गुणयित्वा तदनन्तरमयनं रूपाधिकं कर्त्तव्यं, तथागुणितस्य मण्डलराशेः यदि चन्द्रमसोऽयनक्षेत्रं परिपूर्णमधिकं वा सम्भाव्यते तत एतस्मादीप्सितपर्वसङ्ख्यागुणितात् मण्डलराशेरुद्धृतेः–चन्द्रमसोऽयनक्षेत्रं भवति शोध्यं, यति च–यावत्सङ्ख्यानि चायनानि शुद्ध्यन्ति ततिभिर्युक्तानि पर्वाणि अयनानि क्रियन्ते, कृत्वा च भूयो रूपसंयुक्तानि विधेयानि, यदि पुनः परिपूर्णानि मण्डलानि शुद्ध्यन्ति राशिश्च पश्चान्निर्लेपो जायते तदा तदयनसङ्ख्यानैर्निरंशं सद्रूपयुक्तं नास्ति, न तत्रायनराशौ रूपं प्रक्षिप्यते इति भावः, तथा कृत्स्ने–परिपूर्णे राशौ भवत्येकं रूपं मण्डलराशौ प्रक्षेपणीयं, भिन्ने–खण्डे अंशसहिते राशावित्यर्थः, द्विरूपे मण्डलराशौ प्रक्षेपणीये प्रक्षेपे च कृते सति यावान् मण्डलराशिर्भवति तावन्ति मण्डलानि तावतिथे ईप्सिते पर्वणि भवन्ति । तथा यदि ईप्सितेन पर्वणा ओजोरूपेण–विषमलक्षणेन गुणकारो भवति तत आदिरभ्यन्तरे मण्डले द्रष्टव्यः, युग्मे तु–समे तु गुणकारे आदिर्बाह्ये मण्डलेऽवसेयः, एष करणगाथासमूहाक्षरार्थः, भावना त्वियम्–कोऽपि पृच्छति–युगादौ प्रथमं पर्व कस्मिन्नयने कस्मिन् वा मण्डले समाप्तिमुपयाति ?, तत्र प्रथमं पर्व पृष्टमिति वामपार्श्वे पर्वसूचक एककः स्थाप्यते, ततस्तस्यानुश्रेणि दक्षिणपार्श्वे एकमयनं, तस्य चानुश्रेणि एकं मण्डलं, तस्य च मडलस्याधस्ताच्चत्वारः सप्तषष्टिभागास्तेषामप्यधस्तान्नव एकत्रिंशद्भागाः, एष सर्वोऽपि राशिर्ध्रुवराशिः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स च ईप्सितेन एकेन पर्वणा गुण्यते, 'एकेन च गुणितं तदेव भवती'ति जातस्तावानेव राशिः, ततः 'अयनं रूपाधिकं च कर्त्तव्य'मिति वचनादेकं रूपमयने प्रक्षिप्यते, मण्डलराशौ चायनं न शुद्ध्यति, ततो 'दो य होंति भिन्नंमि' इति वचनात् मण्डलराशौ द्वे रूपे प्रक्षिप्येते, तत आगतमिदं प्रथमं पर्व द्वितीयेऽयने तृतीयस्य मण्डलस्य, 'ओयंमि य गुणकारे अब्भिंतरमंडले हवइ आई' इति वचनात्, अभ्यन्तरवर्त्तिनश्चतुर्षु सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य नवस्वेकत्रिंशद्भागेषु गतेषु समाप्तिमुपयातीति, अयनं चेह चन्द्रायणमवसेयं, चन्द्रायणं च युगस्यादौ प्रथममुत्तरायणं द्वितीयं दक्षिणायनमिति द्वितीयेऽयनेऽभ्यन्तरवर्त्तिनस्तृतीयस्य मण्डलस्येत्युक्तं, तथा कोऽपि पृच्छति–द्वितीयं पर्व कस्मिन्नयने कस्मिन् वा मण्डले समाप्तिमधिगच्छतीति, तत्र द्वितीयं पर्व पृष्टमिति स एव प्रागुक्तो ध्रुवराशिः समस्तोऽपि द्वाभ्यां गुण्यते, ततो जाते द्वे अयने द्वे मण्डले अष्टौ सप्तषष्टिभागा अष्टादश एकत्रिंशद्भागास्ततः 'अयनं रूपाधिकं कर्त्तव्य'मिति वचनात् अयने रूपं प्रक्षिप्यते, मण्डलराशौ चायनं न शुद्ध्यति, ततो 'दो य होंति भिन्नंमि' इति वचनान्मण्डलराशौ द्वे प्रक्षिप्येते, तत आगतं द्वितीयं पर्व तृतीयेऽयने चतुर्थस्य मण्डलस्य 'जुग्गंमि व गुणकारे बाहिरगे मंडले हवइ आई' इति वचनात् बाह्यमण्डलादर्वाग्वर्त्तिनः अष्टसु सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्याष्टादशस्वेकत्रिंशद्भागेष्वतिक्रान्तेषु परिसमाप्तिमुपैति, तथा कोऽपि प्रश्नयति–चतुर्दशं पर्व कतिसङ्ख्येष्वयनेषु मण्डलेषु वा समाप्तिं गच्छतीति, स एव प्रागुक्तो ध्रुवराशिः समस्तोऽपि चतुर्दशभिर्गुण्यते, जातानि अयनानि चतुर्दश मण्डलान्यपि चतुर्दश, चत्वारः सप्तषष्टिभागाश्चतुर्दशभिर्गुणिताः षट्पञ्चाशत् ५६, नव एकत्रिंशद्भागाश्चतुर्दशभिर्गुणिता जातं षड्विंशत्यधिकं शतं १२६, तत्र षष्ट्या शत्य-

॥१५६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



धिकस्य शतस्य एकत्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धाः चत्वारः सप्तषष्टिभागाः, द्वौ चूर्णिकाभागौ तिष्ठतः, चत्वारश्च सप्तषष्टिभागा उपरितने सप्तषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जाताः षष्टिः सप्तषष्टिभागाः $\frac{६०}{६७}$, चतुर्दशभ्यश्च मण्डलेभ्यस्त्रयोदशभिर्मण्डलैस्त्रयोदशभिश्च सप्तषष्टिभागैरयनं शुद्धं, तेन पूर्वाण्ययनानि चतुर्दशसङ्ख्यानि युतानि क्रियन्ते, ततः 'अयनं रूपाधिकं कर्त्तव्य'मिति वचनाद्भूयोऽपि तत्रैकं रूपं प्रक्षिप्यते, जातानि षोडश अयनानि, सप्तषष्टिभागाश्च चतुष्पञ्चाशत्सङ्ख्या मण्डलराशावुद्धरितास्तिष्ठन्ति, ते सप्तषष्टिभागराशौ षष्टिरूपे प्रक्षिप्यन्ते, जातं चतुर्दशोत्तरं शतं ११४, तस्य सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धमेकं मण्डलं, पश्चादवतिष्ठन्ते सप्तचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः, ततो 'दो य हौंति भिन्नंमि'इति वचनान्मण्डलराशौ द्वे रूपे प्रक्षिप्येते, जातानि त्रीणि मण्डलानि, चतुर्दशभिश्चात्र गुणितं कृतं, चतुर्दशराशिश्च यद्यपि युग्मरूपस्तथाऽप्यत्र मण्डलराशेरेकमयनमधिकं प्रविष्टमिति त्रीणि मण्डलान्यभ्यन्तरमण्डलादारभ्य द्रष्टव्यानि, तत आगतं चतुर्दशं पर्व षोडशेऽयनेऽभ्यन्तरमण्डलादारभ्य तृतीये मण्डले सप्तचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य द्वयोरेकत्रिंशद्भागयोर्गतयोः परिसमाप्तीतीति । तथा द्वाषष्टितमपर्वजिज्ञासायां स पूर्वोक्तो ध्रुवराशिर्द्वाषष्ट्या गुण्यते, जातानि द्वाषष्टिरयनानि द्वाषष्टिर्मण्डलानि द्वे शते अष्टाचत्वारिंशदधिके सप्तषष्टिभागानां २४८ पञ्च शतानि अष्टापञ्चाशदधिकानि एकत्रिंशद्भागानां ५५८, तेषामेकत्रिंशता भागे हृते लब्धाः परिपूर्णाः अष्टादश सप्तषष्टिभागास्ते उपरितने सप्तषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जाते द्वे शते षट्षष्ट्यधिके २६६, उपरि च द्वाषष्टिमण्डलानि, तेभ्यो द्विपञ्चाशता मण्डलैर्द्विपञ्चाशता च एकस्य मण्डलस्य सप्तषष्टिभागैश्चत्वारि अयनानि लब्धानि, तान्ययनराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षट्षष्टिरयनानि ६६, पश्चादवतिष्ठन्ते नव मण्डलानि पञ्चदश च सप्तषष्टिभागा मण्डलस्य, तत्र पञ्चदश सप्तषष्टिभागाः सप्तषष्टिभागराशिमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाते द्वे शते एकाशीत्यधिके २८१, तयोः सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धानि चत्वारि मण्डलानि, शेषा अवतिष्ठन्ते त्रयोदश सप्तषष्टिभागा मण्डलस्य, ते च मण्डलराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रयोदश मण्डलानि, त्रयोदशभिर्मण्डलैस्त्रयोदशभिश्च सप्तषष्टिभागैः परिपूर्णमेकमयनं लब्धमिति तदयनराशौ प्रक्षिप्यते, जातानि सप्तषष्टिरयनानि, 'नत्थि निरंसंमि रूवजुय'मिति वचनादयनराशौ रूपं न प्रक्षिप्यते, केवलं 'कसिणंमि होइ रूवं पक्खेवो' इति वचनान्मण्डलस्थाने एकं रूपं न्यस्यते, द्वाषष्ट्या चात्र गुणकारः कृतो द्वाषष्टिरूपश्च राशिर्युग्मो यान्यपि च चत्वार्ययनानि प्रविष्टानि तान्यपि युग्मरूपाणि रूपं चात्राधिकमेकं न प्रक्षिप्तमिति पञ्चममयनं तत्स्थाने द्रष्टव्यमिति बाह्यमण्डलमादिर्द्रष्टव्यं, तत आगतं द्वाषष्टितमं पर्व सप्तषष्टावयनेषु परिपूर्णेषु जातेषु बाह्यमण्डले प्रथमरूपे परिसमाप्ते परिसमाप्तिं गतमिति, एवं सर्वाण्यपि पर्वाणि भावनीयानि, केवलं विनेयजनानुग्रहाय पर्वायनप्रस्तारो लेशतोऽक्षरताडित उपदर्श्यते, तत्र प्रथमं पर्व द्वितीयेऽयने तृतीये मण्डले तृतीयस्य मण्डलस्य चतुर्षु सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य नवस्वेकत्रिंशद्भागेषु गतेषु समाप्तमिति ध्रुवराशिं कृत्वा पर्वायनमण्डलेषु प्रत्येकमेकैकं रूपं प्रक्षेप्तव्यं, भागे च तावत्संख्याका भागाः, मण्डले चायनक्षेत्रे परिपूर्णे त्रयोदश मण्डलानि एकस्य च मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागा इत्येतावत्प्रमाणमयनक्षेत्रं शोधयित्वाऽयनमयनराशौ प्रक्षेप्तव्यं, अनेन क्रमेण वक्ष्यमाणः प्रस्तारः सम्यक् परिभावनीयः, स च प्रस्तारोऽयं–प्रथमं पर्व द्वितीयेऽयने तृतीये मण्डले तृतीयस्य मण्डलस्य चतुर्षु सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभा-

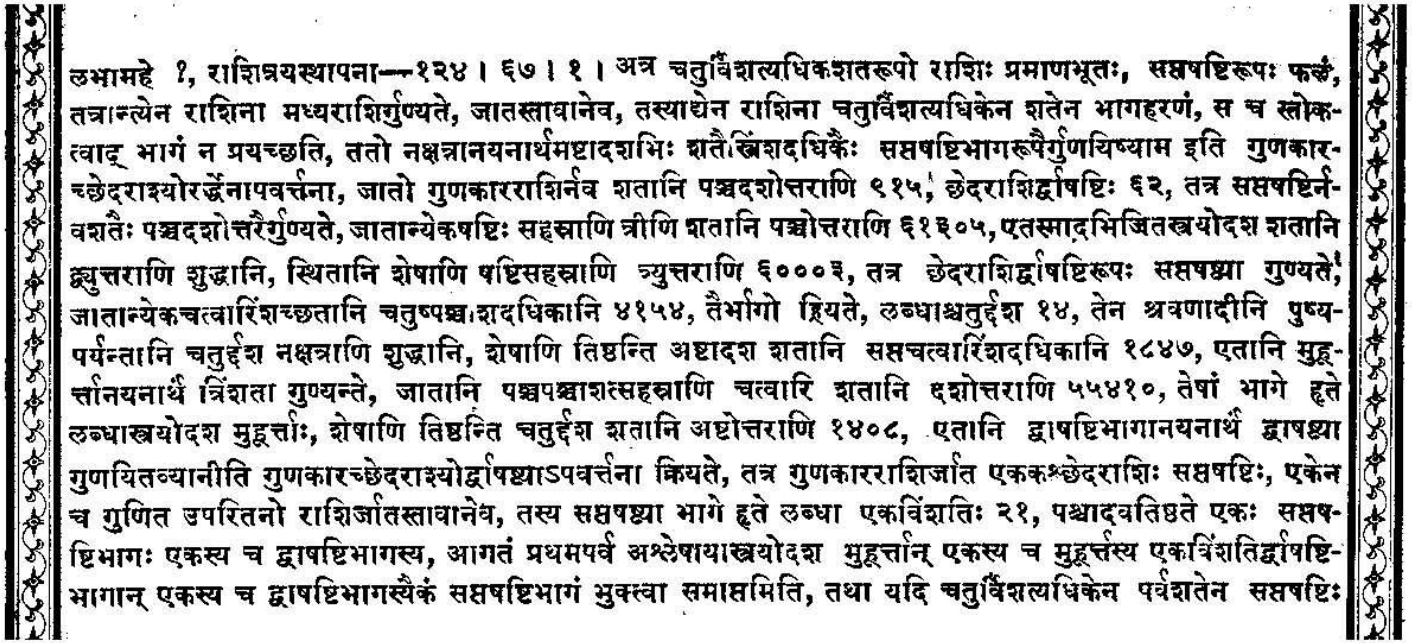
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गस्य नवस्वेकत्रिंशद्भागेषु गतेषु समाप्तं, द्वितीयं पर्व तृतीयेऽयने चतुर्थे मण्डले चतुर्थस्य मण्डलस्य अष्टसु सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशद्भागेषु अष्टादशसु, तृतीयं पर्व चतुर्थेऽयने पञ्चमे मण्डले पञ्चमस्य मण्डलस्य द्वादशसु सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य सप्तविंशतौ एकत्रिंशद्भागेषु, चतुर्थं पर्व पञ्चमेऽयने षष्ठे मण्डले षष्ठस्य मण्डलस्य सप्तदशसु सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य पञ्चस्वेकत्रिंशद्भागेषु, पञ्चमं पर्व षष्ठेऽयने सप्तमे मण्डले सप्तमस्य मण्डलस्य एकविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य चतुर्दशस्वेकत्रिंशद्भागेषु,षष्ठं पर्व सप्तमेऽयनेऽष्टमे मण्डलेऽष्टमस्य मण्डलस्य पञ्चविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य त्रयोविंशतावेकत्रिंशद्भागेषु, सप्तमं पर्व अष्टमेऽयने नवमे मण्डले नवमस्य मण्डलस्य त्रिंशति सप्तषष्टिभागेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य एकस्मिन्नेकत्रिंशद्भागे अष्टमं पर्व नवमेऽयने दशमे मण्डले दशमस्य मण्डलस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य दशस्वेकत्रिंशद्भागेषु, नवमं पर्व दशमेऽयने एकादशे मण्डले एकादशस्य मण्डलस्याष्टात्रिंशति सप्तषष्टिभागेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य एकोनविंशतावेकत्रिंशद्भागेषु, दशमं पर्व एकादशेऽयने द्वादशे मण्डले द्वादशस्य च मण्डलस्य द्वाचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु एकस्य च सप्तषष्टिभागस्याष्टाविंशतौ एकत्रिंशद्भागेषु, एकादशं पर्व द्वादशेऽयने त्रयोदशे मण्डले त्रयोदशस्य मण्डलस्य सप्तचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य षट्सु एकत्रिंशद्भागेषु, द्वादशं पर्व चतुर्दशेऽयने प्रथमे मण्डले प्रथमस्य मण्डलस्याष्टात्रिंशति सप्तषष्टिभागेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य पञ्चदशस्वेकत्रिंशद्भागेषु, त्रयोदशं पर्व पञ्चदशेऽयने द्वितीये मण्डले द्वितीयस्य मण्डलस्य द्वाचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य चतुर्विंशतौ एकत्रिंशद्भागेषु, चतु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शं पर्व षोडशेऽयने तृतीये मण्डले तृतीयस्य मण्डलस्य सप्तचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य द्वयोरेकत्रिंशद्भागयोः, पञ्चदशं पर्व सप्तदशेऽयने चतुर्थे मण्डले चतुर्थस्य मण्डलस्य एकपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेष्वेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य एकादशस्वेकत्रिंशद्भागेषु, एवं शेषेष्वपि पर्वस्वयनमण्डलप्रस्तारो भावनीयो, ग्रन्थगौरवभयात्तु न लिख्यते। अथ किं पर्व कस्मिन् चन्द्रनक्षत्रयोगे परिसमाप्तिमुपयातीति चिन्तायां पूर्वाचार्यैः करणमुपदर्शितं, सम्प्रति तदप्युपदर्श्यते—'चउवीससयं काऊण पमाणं सत्तसट्ठिमेव फलं। इच्छापत्तेहिं गुणं काऊणं पज्जया लद्धा ॥ १ ॥ अट्ठारसहिं सएहिं तीसेहिं सेसगम्मि गुणियम्मि। तेरस विउत्तरेहिं सएहिं अभिइम्मि सुद्धम्मि ॥ २ ॥ सत्तट्ठिबिसट्ठीणं सवग्गेणं तओ उ जं सेसं। तं रिक्खं नायवं जत्थ समत्तं हवइ पवं ॥ ३ ॥' त्रैराशिकविधौ चतुर्विंशत्यधिकं शतं प्रमाणं—प्रमाणराशिं कृत्वा सप्तषष्टिरूपं फलं—फलराशिं कुर्यात्, कृत्वा च ईप्सितैः पर्वभिर्गुणं—गुणकारं विदध्यात्, विधाय चाद्येन राशिना चतुर्विंशत्यधिकशतेन भागे हृते यल्लब्धं ते पर्याया ज्ञातव्याः, यत्पुनः शेषमवतिष्ठते तदष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः सङ्गुण्यते, सङ्गुणिते च तस्मिन् ततस्त्रयोदशभिः शतैर्द्व्युत्तरैरभिजित् शोधनीयः, अभिजितो भोग्यानामेकविंशतेः सप्तषष्टिभागानां द्वाषष्ट्या गुणने एतावतः शोधनकस्य लभ्यमानत्वात्, ततस्तस्मिन् शोधने सप्तषष्टिसङ्ख्या या द्वाषष्टयस्तासां सर्वाग्रेण यद्भवति, किमुक्तं भवति, ?—सप्तषष्ट्या द्वाषष्टौ गुणितायां यद् भवति तेन भागे हृते यल्लब्धं तावन्ति नक्षत्राणि शुद्धानि, यत्पुनस्ततोऽपि भागहरणादपि—शेषमवतिष्ठते तादृशं नक्षत्रं ज्ञातव्यं यत्र विवक्षितं पर्व समाप्तमिति, एष करणगाथाक्षरार्थः,. भावना त्वियम्—यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन सप्तषष्टिः पर्याया लभ्यन्ते तत एकेन पर्वणा किं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



लभामहे १, राशित्रयस्थापना—१२४ । ६७ । १ । अत्र चतुर्विंशत्यधिकशतरूपो राशिः प्रमाणभूतः, सप्तषष्टिरूपः फलं, तत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुण्यते, जातस्तावानेव, तस्याद्येन राशिना चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागहरणं, स च स्तोकत्वाद् भागं न प्रयच्छति, ततो नक्षत्रानयनार्थमष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभागरूपैर्गुणयिष्याम इति गुणकारच्छेदराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, जातो गुणकारराशिर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, छेदराशिर्द्वाषष्टिः ६२, तत्र सप्तषष्टिर्नवशतैः पञ्चदशोत्तरैर्गुण्यते, जातान्येकषष्टिः सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि ६१३०५, एतस्मादभिजितस्त्रयोदश शतानि द्व्युत्तराणि शुद्धानि, स्थितानि शेषाणि षष्टिसहस्राणि त्र्युत्तराणि ६०००३, तत्र छेदराशिर्द्वाषष्टिरूपः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, तैर्भागो ह्रियते, लब्धाश्चतुर्दश १४, तेन श्रवणादीनि पुष्यपर्यन्तानि चतुर्दश नक्षत्राणि शुद्धानि, शेषाणि तिष्ठन्ति अष्टादश शतानि सप्तचत्वारिंशदधिकानि १८४७, एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि चत्वारि शतानि दशोत्तराणि ५५४१०, तेषां भागे हृते लब्धास्त्रयोदश मुहूर्त्ताः, शेषाणि तिष्ठन्ति चतुर्दश शतानि अष्टोत्तराणि १४०८, एतानि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यानीति गुणकारच्छेदराश्योर्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना क्रियते, तत्र गुणकारराशिर्जात एककश्छेदराशिः सप्तषष्टिः, एकेन च गुणित उपरितनो राशिर्जातस्तावानेव, तस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धा एकविंशतिः २१, पश्चादवतिष्ठते एकः सप्तषष्टिभागः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य, आगतं प्रथमपर्व अश्लेषायास्त्रयोदश मुहूर्त्तान् एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिर्द्वाषष्टिभागान् एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकं सप्तषष्टिभागं भुक्त्वा समाप्तमिति, तथा यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन सप्तषष्टिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर्याया लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यां पर्वभ्यां किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना–१२४ । ६७ । २ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुण्यते, जातं चतुस्त्रिंशदधिकं शतं १३४, तस्याद्येन राशिना चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण भागो ह्रियते, लब्ध एको नक्षत्रपर्यायः, स्थिताः शेषा दश, तत एतान् नक्षत्रानयनायाष्टादशभिः शतैः त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभागैर्गुणयिष्याम इति गुणकारच्छेदराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, जातो गुणकारराशिर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, छेदराशिर्द्वाषष्टिः ६२, तत्र दश नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैर्गुण्यन्ते, जातान्येकंनवतिः शतानि पञ्चाशदधिकानि ९१५०, तेभ्यस्त्रयोदश शतानि द्व्युत्तराण्यभिजितः शुद्धानि, स्थितानि पञ्चादष्टसप्ततिः शतानि अष्टाचत्वारिंशदधिकानि ७८४८, तत्र द्वाषष्टिरूपश्छेदराशिः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, तैर्भागो ह्रियते, लब्धमेकं श्रवणरूपं नक्षत्रं, शेषाणि तिष्ठन्ति षट्त्रिंशच्छतानि चतुर्नवत्यधिकानि ३६९४, एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातमेकं लक्षं दश सहस्राणि अष्टौ शतानि विंशत्युत्तराणि ११०८२०, तेषां छेदराशिना भागे हृते लब्धाः षड्विंशतिर्मुहूर्त्ताः २६, शेषाणि तिष्ठन्ति षोडशोत्तराणि अष्टाविंशतिः शतानि २८१६, एतानि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यानि, तत्र गुणकारच्छेदराश्योर्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना, तत्र गुणकारराशिरेकरूपो जातश्छेदराशिः सप्तषष्टिः, तत्रैकेन उपरितनो राशिर्गुणितो जातस्तावानेव तस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धा द्वाचत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ, आगतं द्वितीयं पर्व धनिष्ठानक्षत्रस्य षड्विंशतिं मुहूर्त्तान् एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाचत्वारिंशतं द्वाषष्टिभागानेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ भुक्त्वा समाप्तिमुपगच्छति, एवं शेषेष्वपि पर्वसु सर्वाणि नक्ष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्राणि भावनीयानि, तत्सङ्ग्राहिकाश्चेमाः पूर्वाचार्यप्रदर्शिताः पञ्च गाथाः—"सप्प धाणट्ठा अज्जम अभिवुड्ढी चित्त आस इंदग्गि । रोहिणि जिट्ठा मिगसिर विस्साऽदिति सवण पिउदेवा ॥१॥ अज अज्जम अभिवुड्ढी चित्ता आसो तहा विसाहाओ। रोहिणि मूलो अद्दा वीसं पुस्सो धणिट्ठा य ॥ २॥ भग अज अज्जम पूसो साई अग्गी य मित्तदेवा य । रोहिणि पुव्वासाढा पुणवसू वीसदेवा य ॥ ३ ॥ अहिवसु भगाभिवुड्ढी हत्थस्स विसाह कत्तिया जेट्ठा । सोमाउ रवी सवणो पिउ वरुण भगाभिवुड्ढी य ॥ ४ ॥ चित्तास विसाहग्गी मूलो अद्दा य विस्स पुस्सो अ । एए जुगपुव्वद्धे विसट्ठिपव्वेसु नक्खत्ता ॥ ५ ॥" एतासां व्याख्या–प्रथमस्य पर्वणः समाप्तौ सर्प्पः–सर्प्पदेवतोपलक्षितं नक्षत्रं (अश्लेषा) १ द्वितीयस्य धनिष्ठा २ तृतीयस्यार्यमा–अर्यमदेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्यः २ चतुर्थस्याभिवृद्धिः–अभिवृद्धिदेवतोपलक्षिता उत्तरभद्रपदा ४ पञ्चमस्य चित्रा ५ षष्ठस्याश्वः–अश्वदेवतोपलक्षिता अश्विनी ६ सप्तमस्य इंद्राग्निः–इन्द्राग्निदेवतोपलक्षिता विशाखा ७ अष्टमस्य रोहिणी ८ नवमस्य ज्येष्ठा ९ दशमस्य मृगशिरः १० एकादशस्य विश्वदेवतोपलक्षिता उत्तराषाढा ११ द्वादशस्यादितिः–अदितिदेवतोपलक्षितः पुनर्वसुः १२ त्रयोदशस्य श्रवणः १३ चतुर्दशस्य पितृदेवा–मघाः १४ पञ्चदशस्याजः–अजदेवतोपलक्षिताः पूर्वभद्रपदाः १५ षोडशस्यार्यमा–अर्यमदेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्यः १६ सप्तदशस्याभिवृद्धिः–अभिवृद्धिदेवतोपलक्षिता उत्तरभद्रपदा १७ अष्टादशस्य चित्रा १८ एकोनविंशतितमस्याश्वः–अश्वदेवतोपलक्षिता अश्विनी १९ विंशतितमस्य विशाखा २० एकविंशतितमस्य रोहिणी २१ द्वाविंशतितमस्य मूलः २२ त्रयोविंशतितमस्य आर्द्रा २३ चतुर्विंशतितमस्य विष्वक्–विष्वग्देवतोपलक्षिता उत्तराषाढा २४ पञ्चविंशतितमस्य पुष्यः २५ षड्विंशतितमस्य धनिष्ठा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२६ सप्तविंशतितमस्य भगो–भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वफाल्गुन्यः २७ अष्टाविंशतितमस्याजः–अजदेवतोपलक्षिताः पूर्वभद्रपदाः २८ एकोनत्रिंशत्तमस्यार्यमा–अर्यमदेवता उत्तरफाल्गुन्यः २९ त्रिंशत्तमस्य पुष्यः–पुष्यदेवताका रेवती ३० एकत्रिंशत्तमस्य स्वातिः ३१ द्वात्रिंशत्तमस्याग्निः–अग्निदेवतोपलक्षिताः कृत्तिकाः ३२ त्रयस्त्रिंशत्तमस्य मित्रदेवा–मित्रनामा देवो यस्याः सा तथा अनुराधा इत्यर्थः ३३ चतुस्त्रिंशत्तमस्य रोहिणी ३४ पञ्चत्रिंशत्तमस्य पूर्वाषाढा ३५ षट्त्रिंशत्तमस्य पुनर्वसुः ३६ सप्तत्रिंशत्तमस्य विष्वग्देवाः उत्तराषाढा इत्यर्थः ३७, अष्टात्रिंशत्तमस्याहिः–अहिदेवतोपलक्षिता अश्लेषा ३८ एकोनचत्वारिंशत्तमस्य वसुः वसुदेवोपलक्षिताः धनिष्ठा ३९ चत्वारिंशत्तमस्य भगो–भगदेवाः पूर्वफाल्गुन्यः ४० एकचत्वारिंशत्तमस्याभिवृद्धिः–अभिवृद्धिदेवतोपलक्षिता उत्तरभद्रपदा ४१ द्विचत्वारिंशत्तमस्य हस्तः ४२, त्रिचत्वारिंशत्तमस्याश्वः–अश्वदेवा अश्विनी ४३ चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य विशाखा ४४ पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य कृत्तिका ४५ षट्चत्वारिंशत्तमस्य ज्येष्ठा ४६ सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सोमः–सोमदेवोपलक्षितं मृगशिरोनक्षत्रं ४७ अष्टाचत्वारिंशत्तमस्यायुः–आयुर्देवाः पूर्वाषाढाः ४८ एकोनपञ्चाशत्तमस्य रविः–रविनामकदेवोपलक्षितं पुनर्वसुनक्षत्रं ४९ पञ्चाशत्तमस्य श्रवणः ५० एकपञ्चाशत्तमस्य पिता–पितृदेवा मघाः ५१ द्विपञ्चाशत्तमस्य वरुणो–वरुणदेवोपलक्षितं शतभिषक् नक्षत्रं ५२ त्रिपञ्चाशत्तमस्य भगो–भगदेवाः पूर्वफाल्गुन्यः ५३ चतुःपञ्चाशत्तमस्याभिवृद्धिः–अभिवृद्धिदेवा उत्तरभद्रपदा ५४ पञ्चपञ्चाशत्तमस्य चित्रा ५५ षट्पञ्चाशत्तमस्याश्वः–अश्वदेवा अश्विनी ५६ सप्तपञ्चाशत्तमस्य विशाखा ५७ अष्टपञ्चाशत्तमस्याग्निः–अग्निदेवोपलक्षिताः कृत्तिकाः५८ एकोनषष्टितमस्य मूलः ५९ षष्टितमस्य आर्द्रा ६० एकषष्टितमस्य विष्वक्–विष्वग्देवा उत्तराषाढाः ६१ द्वाषष्टितमस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुष्यः ६२, एतदुपसंहारमाह—एतानि नक्षत्राणि युगस्य पूर्वार्द्धे यानि द्वाषष्टिसङ्ख्यानि पर्वाणि तेषु क्रमेण वेदितव्यानि, एवं प्रागुक्तकरणवशादुत्तरार्द्धेऽपि द्वाषष्टिसङ्ख्येषु पर्वस्ववगन्तव्यानि। सम्प्रति कस्मिन् सूर्यमण्डले किं पर्व समाप्तिं यातीति चिन्तायां यत्पूर्वाचार्यैरुपदर्शितं करणं तदभिधीयते—"सूरस्सवि नायवो सगेण अयणेण मंडलविभागो। अयणंमि उ जे दिवसा रूवहिए मंडले हवइ ॥ १ ॥" अस्या व्याख्या—सूर्यस्यापि पर्वविषयो मण्डलविभागो ज्ञातव्यः स्वकीयेनायनेन, किमुक्तं भवति ?—सूर्यस्य स्वकीयमयनमपेक्ष्य तस्मिन् तस्मिन् मण्डले तस्य तस्य पर्वणः परिसमाप्तिरवधारणीयेति, तत्र अयने शोधिते सति ये दिवसा उद्धरिता वर्त्तन्ते तत्सङ्ख्ये रूपाधिके मण्डले तदीप्सितं पर्व परिसमाप्तं भवतीति वेदितव्यं, एषा करणगाथाऽक्षरघटना, भावार्थस्त्वयम्–इह यत्पर्व कस्मिन् मण्डले समाप्तमिति ज्ञातुमिष्यते तत्सङ्ख्या ध्रियते, धृत्वा च पञ्चदशभिर्गुण्यते, गुणयित्वा च रूपाधिका क्रियते, ततः सम्भवन्तोऽवमरात्राः पात्यन्ते, ततो यदि त्र्यशीत्यधिकेन शतेन भागः पतति तर्हि भागे हृते यल्लब्धं तान्ययनानि ज्ञातव्यानि, केवलं या पश्चाद्दिवससङ्ख्याऽवतिष्ठते तदन्तिमे मण्डले विवक्षितं पर्व समाप्तमित्यवसेयं, उत्तरायणे वर्त्तमाने बाह्यं मण्डलमादिः कर्त्तव्यं दक्षिणायने च सर्वाभ्यन्तरमिति। सम्प्रति भावना क्रियते–ततः कोऽपि पृच्छति–कस्मिन् मण्डले स्थितः सूर्यो युगे प्रथमं पर्व समापयतीति, इह प्रथमं पर्व पृष्टमित्येकको ध्रियते, स पञ्चदशभिर्गुण्यते, जाताः पञ्चदश, अत्रैकोऽप्यवमरात्रो न सम्भवतीति न किमपि पात्यते, ते च पञ्चदश रूपाधिकाः क्रियन्ते, जाता षोडश, युगादौ च प्रथमं पर्व दक्षिणायने, तत आगतं सर्वाभ्यन्तरमण्डलमादिं कृत्वा षोडशे मण्डले प्रथमं पर्व परिसमाप्तमिति। तथाऽपरः पृच्छति–चतुर्थं पर्व कस्मिन् मण्डले परिसमाप्तो-

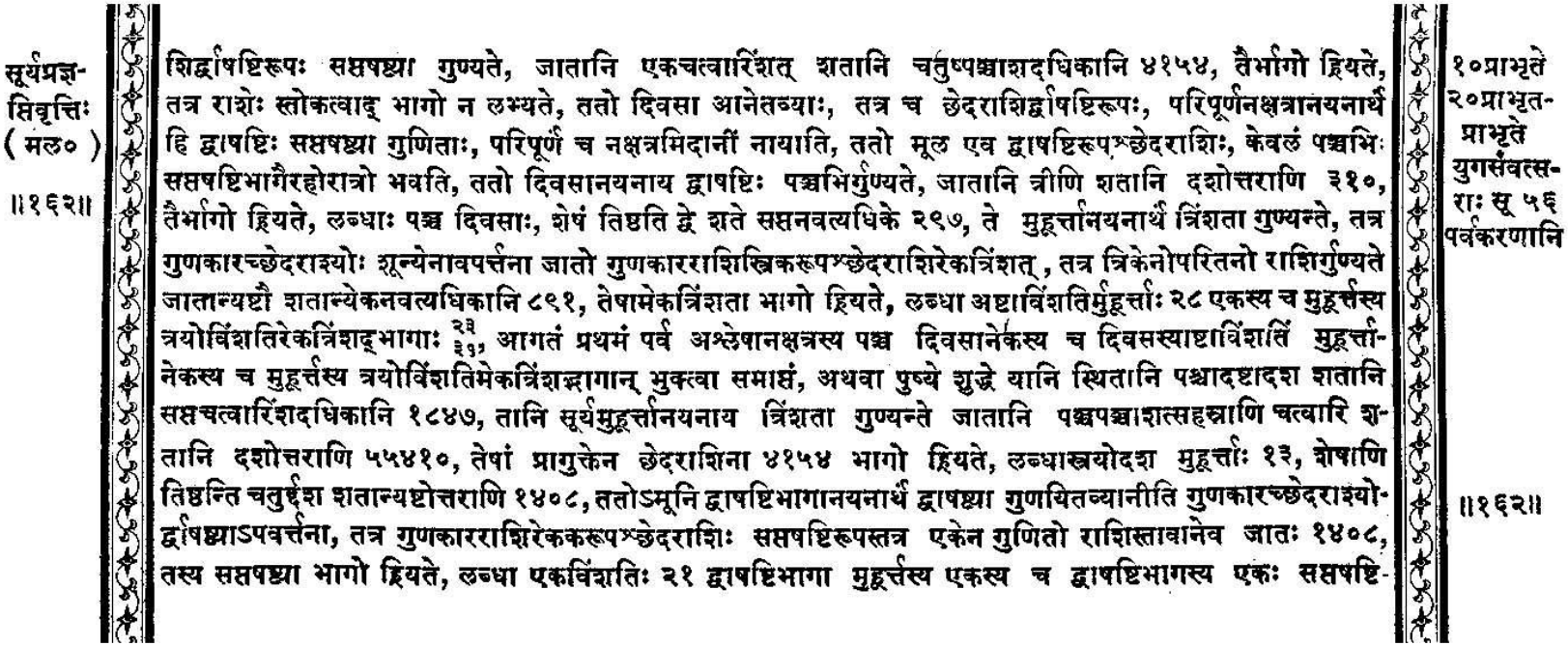
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीति ?, तत्र चतुष्को ध्रियते, भूत्वा च पञ्चदशभिर्गुण्यते, जाता षष्टिः, अत्रैकोऽवमरात्रः सम्भवतीत्येकः पात्यते, जाता एकोनषष्टिः ५९, सा भूयोऽप्येकरूपयुता क्रियते, जाता षष्टिः, आगतं सर्वाभ्यन्तरमण्डलमादिं कृत्वा षष्टितमे मण्डले चतुर्थं पर्व समाप्तमिति । तथा पञ्चविंशतितमपर्वजिज्ञासायां पञ्चविंशतिः स्थाप्यते, सा पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातानि त्रीणि शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि ३७५, अत्र षडवमरात्रा जाता इति षट् शोध्यन्ते, जातानि त्रीणि शतानि एकोनसप्तत्यधिकानि ३६९, तेषां त्र्यशीत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धौ द्वौ, पश्चात्तिष्ठन्ति त्रीणि, तानि रूपयुतानि क्रियन्ते, जातानि चत्वारि, यौ च द्वौ लब्धौ ताभ्यां द्वे अयने दक्षिणायनोत्तरायणरूपे शुद्धे, तत आगतं तृतीये दक्षिणायनरूपे सर्वाभ्यन्तरमण्डलमादिं कृत्वा चतुर्थे मण्डले पञ्चविंशतितमं पर्व परिसमाप्तमिति । चतुर्विंशत्यधिकशततमपर्वजिज्ञासायां चतुर्विंशत्यधिकं शतं स्थाप्यते, तत्पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातान्यष्टादश शतानि षष्ट्यधिकानि १८६०, चतुर्विंशत्यधिकपर्वशते च त्रिंशदमवरात्रा भूता इति त्रिंशत्पात्यते, जातानि पञ्चादष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, तानि रूपयुतानि क्रियन्ते, जातानि अष्टादश शतान्येकत्रिंशदधिकानि १८३१, तेषां त्र्यशीत्यधिकेन शतेन भागे हृते लब्धानि दशायनानि पञ्चादवतिष्ठते एकः, दशमं च अयनं युगपर्यन्ते उत्तरायणं, तत आगतमुत्तरायणपर्यन्ते सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चतुर्विंशत्यधिकं शततमं पर्व समाप्तमिति । सम्प्रति किं पर्व कस्मिन् सूर्यनक्षत्रे समाप्तिमधिगच्छति एतन्निरूपणार्थं यत्पूर्वाचार्यैः करणमुक्तं तदुपदर्श्यते—'चउवीससयं काऊण पमाणं पञ्जए य पंच फलं । इच्छापव्वेहिं गुणं काऊणं पञ्जया लद्धा ॥ १ ॥ अट्ठारस य सएहिं तीसेहिं सेसगंमि गुणियम्मि । सत्तावीससएसुं अट्ठावीसेसु पूसंमि ॥ २ ॥ सत्तट्ठबिसट्ठीणं सवग्गेणं तओ उ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जं सेसं । तं रिक्खं सूरस्स उ जत्थ समत्तं हवइ पवं ॥ ३ ॥' एतासां तिसृणां गाथानां क्रमेण व्याख्या—त्रैराशिकविधौ चतुर्विंशत्यधिकशतप्रमाणं प्रमाणराशिं कृत्वा पञ्च पर्यायान् फलं कुर्यात्, कृत्वा च ईप्सितैः पर्वभिर्गुणं–गुणकारं विद्ध्यात्, विधाय चाद्येन राशिना–चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण भागो हर्त्तव्यो, भागे हृते यल्लब्धं ते पर्यायाः शुद्धा ज्ञातव्याः, यत्पुनः शेषमवतिष्ठते तदष्टादशभिः शतैः त्रिंशदधिकैर्गुण्यते, गुणितें च तस्मिन् सप्तविंशतिशतेषु अष्टाविंशत्यधिकेषु शुद्धेषु पुष्यः शुद्ध्यति, तस्मिन् शुद्धे सप्तषष्टिसङ्ख्या या द्वाषष्टयस्तासां सर्वाग्रेण यद्भवति, किमुक्तं भवति ?–सप्तषष्ट्या द्वाषष्टौ गुणितायां यद् भवति तेन भागे हृते यल्लब्धं तावन्ति नक्षत्राणि शुद्धानि द्रष्टव्यानि, यत्पुनस्ततोऽपि–भागहरणादपि शेषमवतिष्ठते तदक्षं सूर्यस्य सम्बन्धि द्रष्टव्यं यत्र विवक्षितं पर्व समाप्तमिति, एष करणगाथात्रयाक्षरार्थः । भावनात्वियम्–यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तत एकेन पर्वणा किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१२४ । ५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुण्यते, जातस्तावानेव पञ्चकरूपः, तस्याद्येन राशिना चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागहरणं, स च स्तोकत्वाद्भागं न प्रयच्छति, ततो नक्षत्रानयनार्थं अष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभागैर्गुणयिष्याम इति गुणकारच्छेदराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, जातो गुणकारराशिर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५ छेदराशिर्द्वाषष्टिः ६२, तत्र पञ्च नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैर्गुण्यन्ते, जातानि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि ४५७५, पुष्यस्य चतुश्चत्वारिंशद् भागा द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि सप्तविंशतिः शतानि अष्टाविंशत्यधिकानि २७२८, एतानि पूर्वराशेः शोध्यन्ते, स्थितानि पञ्चादष्टादश शतानि सप्तचत्वारिंशदधिकानि १८४७, तत्र छेदरा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१६२॥

शिद्वाषष्टिरूपः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातानि एकचत्वारिंशत् शतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, तैर्भागो ह्रियते, तत्र राशेः स्तोकत्वाद् भागो न लभ्यते, ततो दिवसा आनेतव्याः, तत्र च छेदराशिर्द्वाषष्टिरूपः, परिपूर्णनक्षत्रानयनार्थं हि द्वाषष्टिः सप्तषष्ट्या गुणिताः, परिपूर्णं च नक्षत्रमिदानीं नायाति, ततो मूल एव द्वाषष्टिरूपश्छेदराशिः, केवलं पञ्चभिः सप्तषष्टिभागैरहोरात्रो भवति, ततो दिवसानयनाय द्वाषष्टिः पञ्चभिर्गुण्यते, जातानि त्रीणि शतानि दशोत्तराणि ३१०, तैर्भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च दिवसाः, शेषं तिष्ठति द्वे शते सप्तनवत्यधिके २९७, ते मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, तत्र गुणकारच्छेदराश्योः शून्येनापवर्त्तना जातो गुणकारराशिस्त्रिकरूपश्छेदराशिरेकत्रिंशत्, तत्र त्रिकेनोपरितनो राशिर्गुण्यते जातान्यष्टौ शतान्येकनवत्यधिकानि ८९१, तेषामेकत्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धा अष्टाविंशतिर्मुहूर्त्ताः २८ एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः $\frac{२३}{३१}$, आगतं प्रथमं पर्व अश्लेषानक्षत्रस्य पञ्च दिवसानेकस्य च दिवसस्याष्टाविंशतिं मुहूर्त्तानेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिमेकत्रिंशद्भागान् भुक्त्वा समाप्तं, अथवा पुष्ये शुद्धे यानि स्थितानि पञ्चादष्टादश शतानि सप्तचत्वारिंशदधिकानि १८४७, तानि सूर्यमुहूर्त्तानयनाय त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि चत्वारि शतानि दशोत्तराणि ५५४१०, तेषां प्रागुक्तेन छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयोदश मुहूर्त्ताः १३, शेषाणि तिष्ठन्ति चतुर्दश शतान्यष्टोत्तराणि १४०८, ततोऽमूनि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यानीति गुणकारच्छेदराश्योर्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना, तत्र गुणकारराशिरेककरूपश्छेदराशिः सप्तषष्टिरूपस्तत्र एकेन गुणितो राशिस्तावानेव जातः १४०८, तस्य सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकविंशतिः २१ द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टि-

१०प्राभृते २०प्राभृत-प्राभृते युगसंवत्सराः सू ५६ पर्वकरणानि

॥१६२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागः, तत आगतं युगस्यादौ प्रथमं पर्व अमावास्यालक्षणमश्लेषानक्षत्रस्य त्रयोदश मुहूर्त्तानेकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिं द्वाषष्टिभागानेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकं सप्तषष्टिभागं भुक्त्वा सूर्यः समापयति, तथा च वक्ष्यति—'ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे केण नक्खत्तेणं जोएइ ?, ता असिलेसाहि, असिलेसाणं एकमुहुत्ते चत्तालीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता छावट्ठि चुण्णिआ सेसा। तं समयं च णं सूरे केणं नक्खत्तेणं जोएइ ?, ता असिलेसाहिं चेव, असिलेसाणं एको मुहुत्तो चत्तालीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता छावट्ठी चुण्णिया सेसा' इति, तथा यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यां पर्वभ्यां किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१२४।५।२। अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यराशिः पञ्चकरूपो गुण्यते, जाता दश १०, तेषामाद्येन राशिना भागहरणं, ते च स्तोकत्वाद् भागं न प्रयच्छन्ति, ततो नक्षत्रानयनार्थमष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैर्गुणयितव्या इति, गुणकारच्छेदराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, जातो गुणकारराशिर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५ छेदराशिर्द्वाषष्टिः ६२, तत्र नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैः दश गुण्यन्ते, जातानि एकनवतिः शतानि पञ्चाशदुत्तराणि ९१५०, तेभ्यः सप्तविंशतिः शतान्यष्टाविंशत्यधिकानि पुष्यसत्कानि शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चाच्चतुःषष्टिः शतानि द्वाविंशत्यधिकानि ६४२२, छेदराशिर्द्वाषष्टिरूपः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, तैर्भागो ह्रियते, लब्धमेकं नक्षत्रं, तच्चाश्लेषारूपमश्लेषानक्षत्रं चार्द्धक्षेत्रं अत एतद्गताः पञ्चदश सूर्यमुहूर्त्ता अधिका वेदितव्याः, शेषाणि तिष्ठन्ति द्वाविंशतिः शतान्यष्टषष्ट्यधिकानि २२६८, ततो मुहूर्त्तानयनार्थमेतानि त्रिंशता गुण्यन्ते, जाता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्यष्टषष्टिः सहस्राणि चत्वारिंशदधिकानि ६८०४०, तेषां छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते, लब्धाः षोडश मुहूर्त्ताः १६, शेषाण्यवतिष्ठन्ते पञ्चदश शतानि षट्सप्तत्यधिकानि १५७६, तानि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यानीति गुणकारच्छेदराश्योर्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना, जातो गुणकारराशिरेकरूपः छेदराशिः सप्तषष्टिः ६७, तत्रोपरितनो राशिरेकेन गुणितस्तावानेव जातः, तस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धास्त्रयोविंशतिर्द्वाषष्टिभागाः २३ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः ३५, तत्र ये लब्धाः षोडश मुहूर्त्ता ये चोद्धरिताः पाश्चात्याः पञ्चदश मुहूर्त्तास्ते एकत्र मील्यन्ते, जाता एकत्रिंशत् ३१, तत्र त्रिंशता मघा शुद्धा, पश्चादुद्धरत्येकः सूर्यमुहूर्त्तः, तत आगतं द्वितीयं पर्व श्रावणमासभावि पौर्णमासीरूपं पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्यैकं मुहूर्त्तमेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिं द्वाषष्टिभागानेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशतं सप्तषष्टिभागान् भुक्त्वा सूर्यः परिसमापयतीति, तथा च वक्ष्यति–"ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णमासिं चंदे केणं नक्खत्तेणं जोएइ ?, ता धणिट्ठाहिं, धणिट्ठाणं तिन्नि मुहुत्ता एगूणवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता पण्णट्ठी चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केण नक्खत्तेणं जोएइ ?, ता पुव्वाहिं फग्गुणीहिं पुव्वाणं फग्गुणीणं अट्ठावीसं च मुहुत्ता अट्ठावी(त्ती)सं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता बत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा" इति, तथा यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते ततस्त्रिभिः किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१२४ । ५ । ३ । अत्रान्त्येन राशिना त्रिकलक्षणेन मध्यो राशिः पञ्चकरूपो गुण्यते, जाताः पञ्चदश १५, तेषामाद्येन राशिना भागहरणं, तत्र राशेः स्तोकत्वाद् भागो न लभ्यते, ततो नक्षत्रानयनार्थमष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभागैर्गुणयिष्यामः इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणकारच्छेदराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, जातो गुणकारराशिर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, छेदराशिर्द्वाषष्टिः ६२, तत्र नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैः पञ्चदश गुण्यन्ते, जातानि त्रयोदश सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि १३७२५, तेभ्यः सप्तविंशतिः शतान्यष्टाविंशत्यधिकानि पुष्यसत्कानि शोध्यन्ते, स्थितानि पञ्चादश सहस्राणि नव शतानि सप्तनवत्यधिकानि १०९९७, छेदराशिर्द्वाषष्टिरूपः सप्तषष्ट्या गुणितो जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, तैर्भागो ह्रियते, लब्धे द्वे नक्षत्रे २, ते चाश्लेषामघारूपे, अश्लेषानक्षत्रं चार्द्धक्षेत्रमित्येतद्गताः पञ्चदश सूर्यमुहूर्त्ता उद्धरिता वेदितव्याः, शेषाणि तिष्ठन्ति षड्विंशतिः शतानि नवाशीत्यधिकानि २६८९, एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातान्यशीतिः सहस्राणि षट् शतानि सप्तत्यधिकानि ८०६७०, तेषां छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते, लब्धा एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः १९, शेषाण्यवतिष्ठन्ते सप्तदश शतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि १७४४, एतानि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यानीति गुणकारच्छेदराश्योर्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना, जातो गुणकारराशिरेकरूपः छेदराशिः सप्तषष्टिः ६७, तत्रोपरितनो राशिरेकेन गुणितस्तावानेव जातः १४४४, तस्य सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः षड्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ । $\frac{२६}{६२}$ । $\frac{२}{६७}$, तत्र ये लब्धा एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः ये चोद्धरिताः पञ्चात्याः पञ्चदश मुहूर्त्तास्ते एकत्र मील्यन्ते, जाताश्चतुस्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः, तत्र त्रिंशता पूर्वफाल्गुनी शुद्धा, शेषास्तिष्ठन्ति चत्वारो मुहूर्त्ताः, तत आगतं तृतीयं पर्व भाद्रपदगतामावास्यारूपं उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रस्य चतुरो मुहूर्त्तानेकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतिं द्वाषष्टिभागानेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ भुक्त्वा सूर्यः परिसमापयति, तथा च वक्ष्यति—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं चंदे केणं नक्खत्तेणं जोएइ ?, ता उत्तराहिं फग्गुणीहिं, उत्तरफग्गुणीणं चत्तालीसं मुहुत्ता पण्णत्तीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता पण्णट्ठी चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं नक्खत्तेणं जोएइ ?, ता उत्तराहिं चेव फग्गुणीहिं, उत्तराणं फग्गुणीणं चत्तालीसं मुहुत्ता पणतीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता पण्णट्ठी चुण्णिया भागा सेसा" इति, एवं शेषपर्वसमापकान्यपि सूर्यनक्षत्राण्यानेतव्यानि। अथवेदं पर्वसु सूर्यनक्षत्रपरिज्ञानार्थं पूर्वाचार्योपदर्शितं करणं–'तित्तीसं च मुहुत्ता बिसट्ठि भागो य दो मुहुत्तस्स । चुत्ती चुण्णियभागा पवीकया रिक्खधुवरासी ॥ १ ॥ इच्छापव्वगुणाओ धुवरासीओ य सोहणं कुणसु । पूसाईणं कमसो जह दिट्ठमणंतनाणीहिं ॥ २ ॥ उगवीसं च मुहुत्ता तेयालीसं बिसट्ठिभागा य । तेत्तीस चुण्णियाओ पूसस्स य सोहणं एयं ॥ ३ ॥ उगुयालसयं उत्तरफग्गु उगुणट्ठ दो विसाहासु । चत्तारि नवोत्तर उत्तराण साढाण सोज्झाणि । (अं० ५०००) ॥ ४ ॥ सव्वत्थ पुस्ससेसं सोज्झं अभिइस्स चउरउगवीसा । बावट्ठी छब्भागा बत्तीसं चुण्णिया भागा ॥ ५ ॥ उंगुणत्तरपंचसया उत्तरभद्दवय सत्त उगुवीसा। रोहिणि अट्ठनवोत्तर पुणवसंतम्मि सोज्झाणि ॥६॥ अट्ठसया उगुवीसा बिसट्ठिभागा य होंति चउवीसं । छावट्ठी सत्तट्ठिभागा पुसस्स सोहणगं ॥ ७ ॥' एतासां क्रमेण व्याख्या–त्रयस्त्रिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वौ द्वाषष्टिभागावेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशच्चूर्णिकाभागाः ३३ । २ । ३४, एष सर्वेष्वपि पर्वसु पर्वीकृत–एकेन पर्वणा निष्पादित ऋक्षध्रुवराशिः–सूर्यनक्षत्रविषयो ध्रुवराशिः, कथमेतस्योत्पत्तिरिति चेत्, उच्यते, त्रैराशिकात्, तच्चेदं त्रैराशिकं–यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते, तत एकेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५६]

दीप अनुक्रम [८१]

पर्वणा किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१२४ । ५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुण्यते, जातः स तावानेव, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति वचनात्, ततः चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन भागो ह्रियते, तत्रोपरितनराशेः स्तोकत्वाद् भागो न लभ्यते, लब्धा एकस्य सूर्यनक्षत्रपर्यायस्य पञ्च चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः, तत्र नक्षत्राणि कुर्म्म इत्यष्टादशभिः शतैः त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभागैः पञ्च गुणयिष्याम इति गुणकारच्छेदराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, जातो गुणकारराशिर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, छेदराशिर्द्वाषष्टिः ६२, तत्र नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैः पञ्च गुण्यन्ते, जातानि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि ४५७५, एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातमेकं लक्षं सप्तत्रिंशत्सहस्राणि द्वे शते पञ्चाशदधिके १३७२५०, छेदराशिश्च द्वाषष्टिरूपः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, तैर्भागो ह्रियते लब्धास्त्रयस्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः ३३, शेषं तिष्ठत्यष्टषष्ट्यधिकं शतं १६८, एतद् द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यमिति गुणकारच्छेदराश्योर्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना, जातो गुणकारराशिरेकरूपश्छेदराशिः सप्तषष्टिरूपः, एकेन च गुणितं तदेव भवति, ततोऽष्टषष्ट्यधिकमेव शतं जातं, तस्य सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धौ द्वौ द्वाषष्टिभागौ, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागा इति । 'इच्छापर्वे'त्यादि, इच्छाविषयं यत्पर्व–पर्वसङ्ख्यानं तदिच्छापर्व तद्गुणो–गुणकारो यस्य ध्रुवराशेस्तत्स्मात्, किमुक्तं भवति ?–ईप्सितं यत्पर्व तत्सङ्ख्यया गुणितात् ध्रुवराशेः पुष्यादीनां नक्षत्राणां क्रमशः–क्रमेण शोधनं कुर्याद्यथा दिष्टं–यथा कथितमनन्तज्ञानिभिः, कथं कथितमित्याह—'उगवीसं चे'त्यादि गाथा, एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशच्चूर्णिका-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागाः १९ । ४३ । ३३ । एतद्–एतावत्प्रमाणं पुष्यशोधनकं, कथमेतावतः पुष्यशोधनकस्योत्पत्तिरिति चेत्, उच्यते, इह पाश्चात्ययुगपरिसमाप्तौ पुष्यस्य त्रयोविंशतिः सप्तषष्टिभागा गताश्चतुश्चत्वारिंशदवतिष्ठन्ते, ततस्ते मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि त्रयोदश शतानि विंशत्यधिकानि १३२०, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः १९, शेषास्तिष्ठति सप्तचत्वारिंशत् ४७, सा द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकोनत्रिंशत् शतानि चतुर्दशोत्तराणि २९१४, तत एतेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धास्त्रिचत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागा इति । 'उगुयालसय'मित्यादि, एकोनचत्वारिंशं–एकोनचत्वारिंशदधिकं मुहूर्त्तशतमुत्तराफाल्गुनीनां–उत्तराफाल्गुनीपर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यम् १३९, द्वे शते एकोनषष्टे–एकोनषष्ट्यधिके विशाखासु–विशाखापर्यन्तेषु शोध्ये २५९, चत्वारि मुहूर्त्तशतानि नवोत्तराणि उत्तराषाढानां–उत्तराषाढापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यानि ४०९, 'सवत्थे'त्यादि, एतेषु सर्वेष्वपि शोधनेषु यत्पुष्यस्य मुहूर्त्तेभ्यः शेषं–त्रिचत्वारिंशन्मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागा इति तत्प्रत्येकं शोधनीयं, तथा अभिजितश्चत्वारि मुहूर्त्तशतानि एकोनविंशानि–एकोनविंशत्यधिकानि षट् द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्यैकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशच्चूर्णिकाभागाः–सप्तषष्टिभागा इति शोध्यम्, एतावता पुष्यादीन्यभिजिदन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्तीतिभावार्थः । तथा 'उगुणत्तरे'त्यादि, एकोनसप्ततानि–एकोनसप्तत्यधिकानि पञ्च मुहूर्त्तशतानि उत्तरभाद्रपदानां–उत्तरभाद्रपदान्तानां शोध्यानि ५६९, तथा सप्तशतान्येकोनविंशानि–एकोनविंशत्यधिकानि ७१९ रोहिणीपर्यन्तानां शोध्यानि, पुनर्वस्वन्ते–पुनर्वसुपर्यन्ते अष्टौ शतानि नवोत्तराणि ८०९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शोध्यानि । 'अट्ठसए'त्यादि, अष्टौ शतान्येकोनविंशानि–एकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा इति पुष्यस्य शोधनकं, एतावता परिपूर्णं एको नक्षत्रपर्यायः शुद्ध्यतीति तात्पर्यार्थः, एष करणगाथाक्षरार्थः । सम्प्रतिकरणभावना क्रियते—तत्र कोऽपि पृच्छति प्रथमं पर्व कस्मिन् सूर्यनक्षत्रे परिसमाप्तिमुपैति ?, तत्र ध्रुवराशिस्त्रयस्त्रिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वौ द्विषष्टिभागावेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागा इत्येवंरूपो भ्रियते ३३ । २ । ३४ । भृत्वा चैकेन गुण्यते, एकेन गुणितं तदेव भवति, ततः पुष्यशोधनकमेकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागा इत्येवंप्रमाणं शोध्यते, तत स्थितास्त्रयोदश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभागः । १३ । २१ । १, तत आगतमेतावदश्लेषानक्षत्रस्य सूर्यो भुक्त्वा प्रथमं पर्व श्रावणमासभाव्यमावास्यालक्षणं परिसमापयतीति । द्वितीयपर्वचिन्तायां स एव ध्रुवराशिः ३३ । २ । ३४ द्वाभ्यां गुण्यते, जाता षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभागः । ६६ । ५ । १, एतस्माद् यथोदितप्रमाणं १९ । ४३ । ३३ पुष्यशोधनकं शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् षट्चत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः त्रयोविंशतिर्द्वाषष्टिभागाः मुहूर्त्तस्य एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः ४६ । २३ । ३५ । ततः पञ्चदशभिर्मुहूर्त्तैरश्लेषा शुद्धा त्रिंशता मघा, स्थितः पश्चादेको मुहूर्त्तः तत आगतं द्वितीयं पर्व पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्यैकं मुहूर्त्तमेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिं द्वाषष्टिभागानेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशतं सप्तषष्टिभागान् भुक्त्वा सूर्यः परिसमाप्तिं नयति । तृतीय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर्वचिन्तायां स एव ध्रुवराशिः । ३३ । २ । ३४ त्रिभिर्गुण्यते जाता नवनवतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्त द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः ९९ । ७ । ३५, एतस्मात्पुष्यशोधनं १९ । ४३ । ३३ शोध्यन्ते, स्थिताः पञ्चादेकोनसप्ततिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ ६९ । २६ । २, ततः पञ्चदशभिर्मुहूर्त्तैरश्लेषा त्रिंशता मघा त्रिंशता पूर्वफाल्गुनी, स्थिताः पञ्चात् चत्वारो मुहूर्त्ताः, आगतं तृतीयं पर्व भाद्रपदामावास्यारूपमुत्तरफाल्गुनीनक्षत्रस्य चतुरो मुहूर्त्तानेकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतिं द्वाषष्टिभागान् एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ भुक्त्वा सूर्यः परिसमापयति, एवं शेषपर्वस्वपि सूर्यनक्षत्राणि वेदितव्यानि । तत्र युगपूर्वार्द्धभाविद्वाषष्टिपर्वगतसूर्यनक्षत्रसूचिका इमाः पूर्वाचार्योपदर्शिता गाथाः—"सप्पभग अज्जमदुगं हत्थो चित्ता विसाह मित्तो य । जेट्ठाइगं च छक्कं अजाभिवुड्ढीदु पूसासा ॥ १ ॥ छक्कं च कत्तियाई पिइभग अज्जमदुगं च चित्ता य । वाउ विसाहा अणुराह जेट्ठ आउं च वीसुदुगं ॥ २ ॥ सवण धनिट्ठा अजदेव अभिवुड्ढी दु अस्स जमबहुला । रोहिणि सोमदिइदुगं पुस्सो पिइ भगज्जमा हत्थो ॥ ३ ॥ चित्ता य जिट्ठवज्जा अभिईअंताणि अट्ठ रिक्खाणि । एए जुगपुवद्धे बिसट्ठिपवेसु रिक्खाणि ॥ ४ ॥" एतासां व्याख्या—प्रथमस्य पर्वणः समाप्तौ सूर्यनक्षत्रं सर्प्पः—सर्प्पदेवतोपलक्षिता अश्लेषा १, द्वितीयस्य भगो—भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वफाल्गुन्यः २ ततोऽर्यमद्विकमिति तृतीयस्य पर्वणोऽर्यमदेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्यः ३ चतुर्थस्याप्युत्तरफाल्गुन्यः ४ पञ्चमस्य हस्तः ५ षष्ठस्य चित्रा ६ सप्तमस्य विशाखा ७ अष्टमस्य मित्रो—मित्रदेवतोपलक्षिता अनुराधा ८ ततो ज्येष्ठादिकं षट्कं क्रमेण वक्तव्यम् , तद्यथा—नवमस्य ज्येष्ठा ९ दशमस्य मूलं १०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

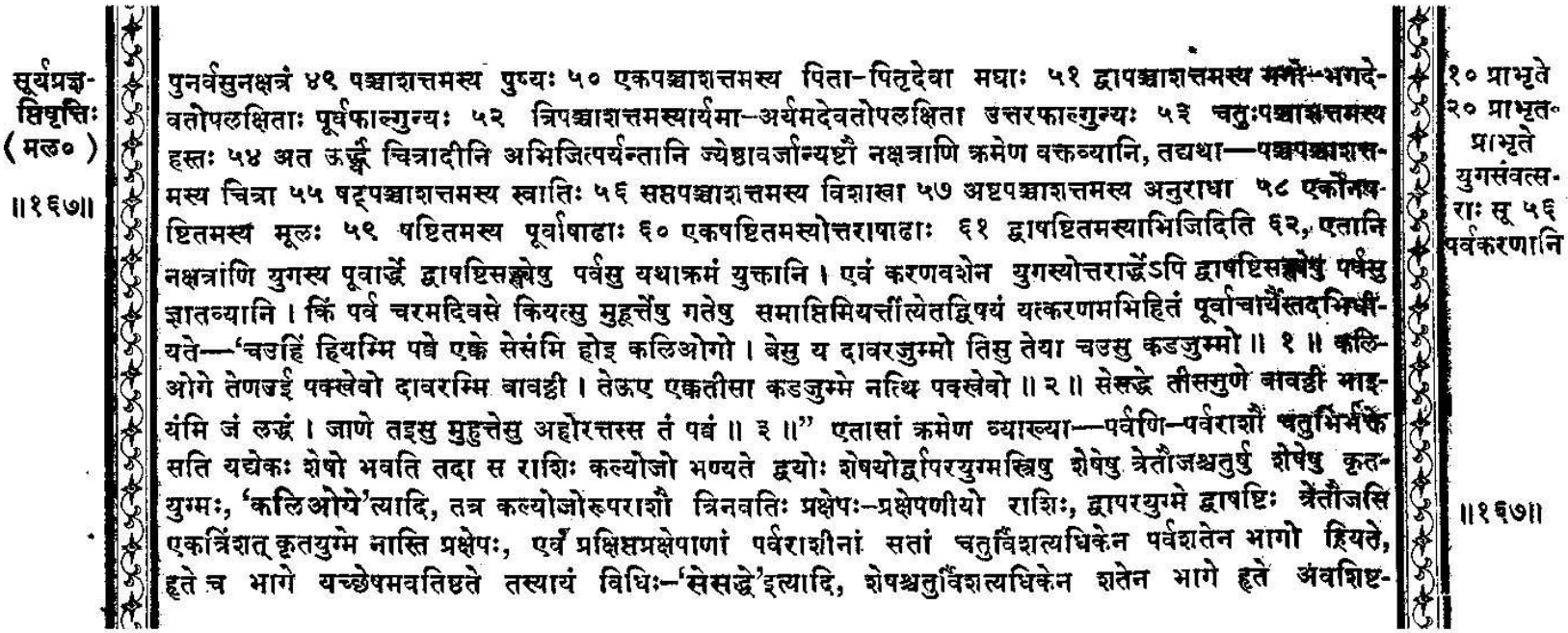
एकादशस्य पूर्वाषाढा ११ द्वादशस्योत्तराषाढा १२ त्रयोदशस्य श्रवणः १३ चतुर्दशस्य धनिष्ठा १४ पञ्चदशस्य अजः-अजदेवतोपलक्षिताः पूर्वभद्रपदाः १५ षोडशस्याभिवृद्धिः–अभिवृद्धिदेवतोपलक्षिता उत्तरभद्रपदा १६ सप्तदशस्योत्तरभद्रपदा १७ अष्टादशस्य पुष्यः–पुष्यदेवतोपलक्षिता रेवती १८ एकोनविंशतितमस्याश्वः–अश्वदेवतोपलक्षिता अश्विनी १९ षट्कं च कृत्तिकादिकमिति, विंशतितमस्य कृत्तिकाः २० एकविंशतितमस्य रोहिणी २१ द्वाविंशतितमस्य मृगशिरः २२ त्रयोविंशतितमस्यार्द्रा २३ चतुर्विंशतितमस्य पुनर्वसुः २४ पञ्चविंशतितमस्य पुष्यः २५ षड्विंशतितमस्य पितरः–पितृदेवतोपलक्षिता मघाः २६ सप्तविंशतितमस्य भगो–भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वफाल्गुन्यः २७ अष्टाविंशतितमस्यार्यमा–अर्यमदेवा उत्तरफाल्गुन्यः २८ एकोनत्रिंशत्तमस्याप्युत्तरफाल्गुन्यः २९ त्रिंशत्तमस्य चित्रा ३० एकत्रिंशत्तमस्य वायुः–वायुदेवतोपलक्षिता स्वातिः ३१ द्वात्रिंशत्तमस्य विशाखा ३२ त्रयस्त्रिंशत्तमस्यानुराधा ३३ चतुस्त्रिंशत्तमस्य ज्येष्ठा ३४ पञ्चत्रिंशत्तमस्य पुनरायुः–आयुर्देवतोपलक्षिताः पूर्वाषाढाः ३५ षट्त्रिंशत्तमस्य विष्वग्देवा उत्तराषाढा ३६ सप्तत्रिंशत्तमस्याप्युत्तराषाढा ३७ अष्टात्रिंशत्तमस्य श्रवणः ३८ एकोनचत्वारिंशत्तमस्य धनिष्ठा ३९ चत्वारिंशत्तमस्याजः–अजदेवतोपलक्षिता पूर्वभद्रपदा ४० एकचत्वारिंशत्तमस्याभिवृद्धिः–अभिवृद्धिदेवा उत्तरभद्रपदाः ४१ द्वाचत्वारिंशत्तमस्याप्युत्तरभद्रपदा ४२ चत्वारिंशत्तमस्याश्वः–अश्वदेवा अश्विनी ४३ चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य यमो–यमदेवा भरणी ४४ पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य बहुलाः–कृत्तिकाः ४५ षट्चत्वारिंशत्तमस्य रोहिणी ४६ सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सोमः–सोमदेवोपलक्षितं मृगशिरः ४७ अदितिद्विकमिति अष्टचत्वारिंशत्तमस्यादितिः–अदितिदेवोपलक्षितं पुनर्वसुनक्षत्रं ४८ एकोनपञ्चाशत्तमस्यापि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५६]

दीप अनुक्रम [८१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:



पुनर्वसुनक्षत्रं ४९ पञ्चाशत्तमस्य पुष्यः ५० एकपञ्चाशत्तमस्य पिता-पितृदेवा मघाः ५१ द्वापञ्चाशत्तमस्य भगो-भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वफाल्गुन्यः ५२ त्रिपञ्चाशत्तमस्यार्यमा-अर्यमदेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्यः ५३ चतुःपञ्चाशत्तमस्य हस्तः ५४ अत ऊर्द्धं चित्रादीनि अभिजित्पर्यन्तानि ज्येष्ठावर्जान्यष्टौ नक्षत्राणि क्रमेण वक्तव्यानि, तद्यथा—पञ्चपञ्चाशत्तमस्य चित्रा ५५ षट्पञ्चाशत्तमस्य स्वातिः ५६ सप्तपञ्चाशत्तमस्य विशाखा ५७ अष्टपञ्चाशत्तमस्य अनुराधा ५८ एकोनषष्टितमस्य मूलः ५९ षष्टितमस्य पूर्वाषाढाः ६० एकषष्टितमस्योत्तराषाढाः ६१ द्वाषष्टितमस्याभिजिदिति ६२, एतानि नक्षत्राणि युगस्य पूर्वार्द्धे द्वाषष्टिसङ्ख्येषु पर्वसु यथाक्रमं युक्तानि । एवं करणवशेन युगस्योत्तरार्द्धेऽपि द्वाषष्टिसङ्ख्येषु पर्वसु ज्ञातव्यानि । किं पर्व चरमदिवसे कियत्सु मुहूर्त्तेषु गतेषु समाप्तिमियर्त्तीत्येतद्विषयं यत्करणमभिहितं पूर्वाचार्यैस्तदभिधीयते—'चउहिं हियम्मि पव्वे एक्के सेसंमि होइ कलिओगो । बेसु य दावरजुम्मो तिसु तेया चउसु कडजुम्मो ॥ १ ॥ कलिओगे तेणजई पक्खेवो दावरम्मि बावट्ठी । तेऊए एक्कतीसा कडजुम्मे नत्थि पक्खेवो ॥ २ ॥ सेसद्धे तीससुणे बावट्ठी भाइयंमि जं लद्धं । जाणे तइसु मुहुत्तेसु अहोरत्तस्स तं पव्वं ॥ ३ ॥" एतासां क्रमेण व्याख्या—पर्वणि-पर्वराशौ चतुर्भिर्भक्ते सति यद्येकः शेषो भवति तदा स राशिः कल्योजो भण्यते द्वयोः शेषयोर्द्वापरयुग्मस्त्रिषु शेषेषु त्रेतौजश्चतुर्षु शेषेषु कृतयुग्मः, 'कलिओगे'त्यादि, तत्र कल्योजोरूपराशौ त्रिनवतिः प्रक्षेपः-प्रक्षेपणीयो राशिः, द्वापरयुग्मे द्वाषष्टिः त्रेतौजसि एकत्रिंशत् कृतयुग्मे नास्ति प्रक्षेपः, एवं प्रक्षिप्तप्रक्षेपाणां पर्वराशीनां सतां चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन भागो ह्रियते, हृते च भागे यच्छेषमवतिष्ठते तस्यायं विधिः-'सेसद्धे'इत्यादि, शेषश्चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागे हृते अवशिष्ट-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्यार्द्धं क्रियते, कृत्वा च त्रिंशता गुण्यते, गुणयित्वा च द्वाषष्ट्या भज्यते, भक्ते सति यल्लब्धं तान् मुहूर्त्तान् जानीहि, लब्धशेषं मुहूर्त्तभागान्, तत एवं स्वशिष्येभ्यः प्ररूपय, तद्विवक्षितं पर्व चरमे अहोरात्रे सूर्योदयात्तावत्सु मुहूर्त्तेषु तावत्सु च मुहूर्त्तभागेषु अतिक्रान्तेषु परिसमाप्तमिति, एष करणगाथाक्षरार्थः । भावना त्वियम्—प्रथमं पर्व चरमेऽहोरात्रे कति मुहूर्त्तानतिक्रम्य समाप्तमिति जिज्ञासायामेको ध्रियते, अयं किल कल्योजो राशिरित्यत्र त्रिनवतिः प्रक्षिप्यते, जाता चतुर्नवतिः, अस्य चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो हर्त्तव्यः, स च भागो न लभ्यते राशेः स्तोकत्वात्, ततो यथासम्भवं करणलक्षणं कर्त्तव्यं, तत्र चतुर्नवतेरर्द्धं क्रियते, जाता सप्तचत्वारिंशत् ४७, सा त्रिंशता गुण्यते, जातानि चतुर्दश शतानि दशोत्तराणि १४१०, तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ता २२, शेषा तिष्ठति षट्चत्वारिंशत् ४६, ततश्छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, लब्धास्त्रयोविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः $\frac{२३}{३१}$, आगतं प्रथमं पर्व चरमे अहोरात्रे द्वाविंशतिं मुहूर्त्तान् एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिमेकत्रिंशद्भागानतिक्रम्य समाप्तिं गतमिति । द्वितीयपर्वजिज्ञासायां द्विको ध्रियते, स किल द्वापरयुग्मराशिरिति द्वाषष्टिः प्रक्षिप्यते, जाता चतुःषष्टिः, सा च चतुर्विंशत्यधिकस्य शतस्य भागं न प्रयच्छति ततस्तस्यार्द्धं क्रियते, जाता द्वात्रिंशत्, सा त्रिंशता गुण्यते, जातानि नव शतानि षष्ट्यधिकानि ९६०, तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ताः १५, पश्चादवतिष्ठते त्रिंशत्, ततश्छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, लब्धाः पञ्चदश एकत्रिंशद्भागाः $\frac{१५}{३१}$, आगतं द्वितीयं पर्व चरमेऽहोरात्रे पञ्चदश मुहूर्त्तानेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदश एकत्रिंशद्भागानतिक्रम्य [द्वितीयं पर्व] समाप्तमिति । तृतीयपर्वजिज्ञासायां त्रिको ध्रियते, स किल त्रेतौजोराशिरिति तत्रैकत्रिंशत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रक्षिप्यते, जाता चतुस्त्रिंशत् ३४, सा चतुर्विंशत्यधिकस्य शतस्य भागं न प्रयच्छति ततस्तस्यार्द्धं क्रियते, जाताः सप्तदश, ते त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि पञ्च शतानि दशोत्तराणि ५१०, तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा अष्टौ ८, शेषास्तिष्ठन्ति चतुर्दश १४, ततश्छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, लब्धाः सप्त एकत्रिंशद्भागाः $\frac{७}{३१}$, आगतं तृतीयं पर्व चरमेऽहोरात्रे अष्टौ मुहूर्त्तानेकस्य सप्त एकत्रिंशद्भागानतिक्रम्य समाप्तिं गतमिति । चतुर्थपर्वजिज्ञासायां चतुष्को ध्रियते, स किल कृतयुग्मराशिरिति न किमपि तत्र प्रक्षिप्यते, चत्वारश्चतुर्विंशत्यधिकस्य शतस्य भागं न प्रयच्छति, ततस्तेऽर्द्धं क्रियन्ते, जातौ द्वौ, तौ त्रिंशता गुण्येते, जाता षष्टिः ६०, तस्या द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, भागश्च न लभ्यते इति छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना, जातास्त्रिंशदेकत्रिंशद्भागाः $\frac{३०}{३१}$, आगतं चतुर्थं पर्व चरमेऽहोरात्रे मुहूर्त्तस्य त्रिंशतमेकत्रिंशद्भागानतिक्रम्य समाप्तिं गच्छतीत्येवं शेषेष्वपि पर्वसु भावनीयं । चतुर्विंशत्यधिकशततमपर्वजिज्ञासायां चतुर्विंशत्यधिकं शतं ध्रियते, तस्य किल चतुर्भिर्भागे हृते न किमपि शेषमवतिष्ठते इति कृतयुग्मोऽयं राशिः, ततोऽत्र न किमपि प्रक्षिप्यते, ततश्चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, जातो राशिर्निर्लेपः, आगतं परिपूर्णं चरममहोरात्रं भुक्त्वा चतुर्विंशतितमं पर्व समाप्तिं गतमिति । तदेवं यथा पूर्वाचार्यैरिदमेव पर्वसूत्रमवलम्ब्य पर्वविषयं व्याख्यानं कृतं तथा मया विनेयजनानुग्रहाय स्वमत्यनुसारेणोपदर्शितं, सम्प्रति प्रस्तुतमनुश्रियते—तत्र युगसंवत्सरोऽभिहितः, साम्प्रतं प्रमाणसंवत्सरमाह—

ता पमाणसंवच्छरे पंचविहे पं०, तं०–नक्खत्ते चंदे उडू आइच्चे अभिवड्ढिए (सूत्रं ५७) ॥

'पमाणे'त्यादि, प्रमाणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—नक्षत्रसंवत्सर ऋतुसंवत्सरश्चन्द्रसंवत्सरः आदित्यसंव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्सरोऽभिवर्द्धितसंवत्सरश्च, तत्र नक्षत्रचन्द्राभिवर्द्धितसंवत्सराणां स्वरूपं प्रागेवोक्तमिदानीं ऋतुसंवत्सरादित्यसंवत्सरयोः स्वरूपमुच्यते–तत्र द्वे घटिके एको मुहूर्त्तस्त्रिंशन्मुहूर्त्ता अहोरात्रः पञ्चदश परिपूर्णा अहोरात्राः पक्षः द्वौ पक्षौ मासो द्वादश मासाः संवत्सरो, यस्मिंश्च संवत्सरे त्रीणि शतानि षष्ट्यधिकानि परिपूर्णान्यहोरात्राणां भवति एष ऋतुसंवत्सरः, ऋतवो लोकप्रसिद्धाः वसन्तादयः तत्प्रधानः संवत्सर ऋतुसंवत्सरः, अस्य चापरमपि नामद्वयमस्ति, तद्यथा—कर्म्मसंवत्सरः सवनसंवत्सरः, तत्र कर्म्म–लौकिको व्यवहारस्तत्प्रधानः संवत्सरः कर्म्मसंवत्सरः, लोको हि प्रायः सर्वोऽप्यनेनैव संवत्सरेण व्यवहरति, तथा चैतद्गतं मासमधिकृत्यान्यत्रोक्तम्—"कम्मो निरंसयाए मासो ववहारकारगो लोए। सेसाओ संसयाए ववहारे दुक्करो घित्तुं ॥ १ ॥" तथा सवनं–कर्म्मसु प्रेरणं 'षू प्रेरणे' इति वचनात् तत्प्रधानः संवत्सरः सवनसंवत्सर इत्यप्यस्य नाम, तथा चोक्तं—"बे नालिया मुहुत्तो सट्ठी उण नालिया अहोरत्तो। पन्नरस अहोरत्ता पक्खो तीसं दिणा मासो ॥१॥ संवच्छरो उ बारस मासा पक्खा य ते चउवीसं। तिन्नेव सया सट्ठा हवंति राइंदियाणं तु ॥२॥ एसो उ कमो भणिओ निअमा संवच्छरस्स कम्मस्स। कम्मोत्ति सावणोत्ति य उउइत्तिय तस्स नामाणि ॥ ३ ॥" तथा यावता कालेन षडपि प्रावृडादयः ऋतवः परिपूर्णाः प्रावृत्ता भवन्ति तावान् कालविशेष आदित्यसंवत्सरः, उक्तं च—"छप्पि उऊपरियट्टा एसो संवच्छरो उ आइच्चो" तत्र यद्यपि लोके षष्ट्यहोरात्रप्रमाणः प्रावृडादिक ऋतुः प्रसिद्धः तथापि परमार्थतः स एकषष्ट्यहोरात्रप्रमाणो वेदितव्यः, तथैवोत्तरकालमव्यभिचारदर्शनात्, अत एव चास्मिन् संवत्सरे त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवानां द्वादशभिश्च मासैः संवत्सरं भवति, तथा चान्यत्रापि पञ्चस्वपि संवत्सरेषु यथोक्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेव राशिन्दिवानां परिमाणमुक्तं, "तिन्नि अहोरत्तसया छावट्ठा भक्खरो हवइ वासो । तिन्नि सया पुण सट्ठा कम्मो संवच्छरो होइ ॥ १ ॥ तिन्नि अहोरत्तसया चउपन्ना नियमसो हवइ चंदो । भागो य बारसेव य बावट्ठिकएण छेएण ॥ २ ॥ तिन्नि अहोरत्तसया सत्तावीसा य होंति नक्खत्ता । एक्कावन्नं भागा सत्तट्ठिकएण छेएण ॥ ३ ॥ तिन्नि अहोरत्तसया तेसीईं चेव होइ अभिवड्ढी । चोयालीसं भागा बावट्ठिकएण छेएण ॥ ४ ॥ एताश्चतस्रोऽपि गाथाः सुगमाः, इदं च प्रतिसंवत्सरं रात्रिन्दिवपरिमाणमग्रेऽपि वक्ष्यति परमिह प्रस्तावादुक्तं । सम्प्रति विनेयजनानुग्रहाय संवत्सरसङ्ख्यातो माससङ्ख्या प्रदर्श्यते—तत्र सूर्यसंवत्सरस्य परिमाणं त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवानां द्वादशभिश्च मासैः संवत्सरस्तत्र त्रयाणां शतानां षट्षष्ट्यधिकानां द्वादशभिर्भागो ह्रियते, लब्धाः त्रिंशत् ३०, शेषाणि तिष्ठन्ति षट्, ते अर्द्धे क्रियते, जाता द्वादश, ततो लब्धमेकं दिवसस्यार्द्धमेतावत्परिमाणः सूर्यमासः, तथा कर्म्मसंवत्सरस्य परिमाणं त्रीणि शतानि षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवानां तेषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धास्त्रिंशदहोरात्रा एतावत्कर्म्ममासपरिमाणं, तथा चन्द्रसंवत्सरस्य परिमाणं त्रीण्यहोरात्रशतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि द्वादश च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य, तत्र त्रयाणां शतानां चतुष्पञ्चाशदधिकानां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धा एकोनत्रिंशदहोरात्राः, शेषाः तिष्ठन्ति षट् अहोरात्राः, ते द्वाषष्टिभागकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि त्रीणि शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ३७२, येऽपि द्वादश द्वाषष्टिभागा उपरितनास्तेऽपि तत्र प्रक्षिप्यन्ते जातानि त्रीणि शतानि चतुरशीत्यधिकानि, तेषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धा द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः, एतावच्चन्द्रमासपरिमाणं । तथा नक्षत्रसंवत्सरस्य परिमाणं त्रीणि शतानि सप्तविंशत्यधिकानि रात्रिन्दिवानामेकस्य च रात्रि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

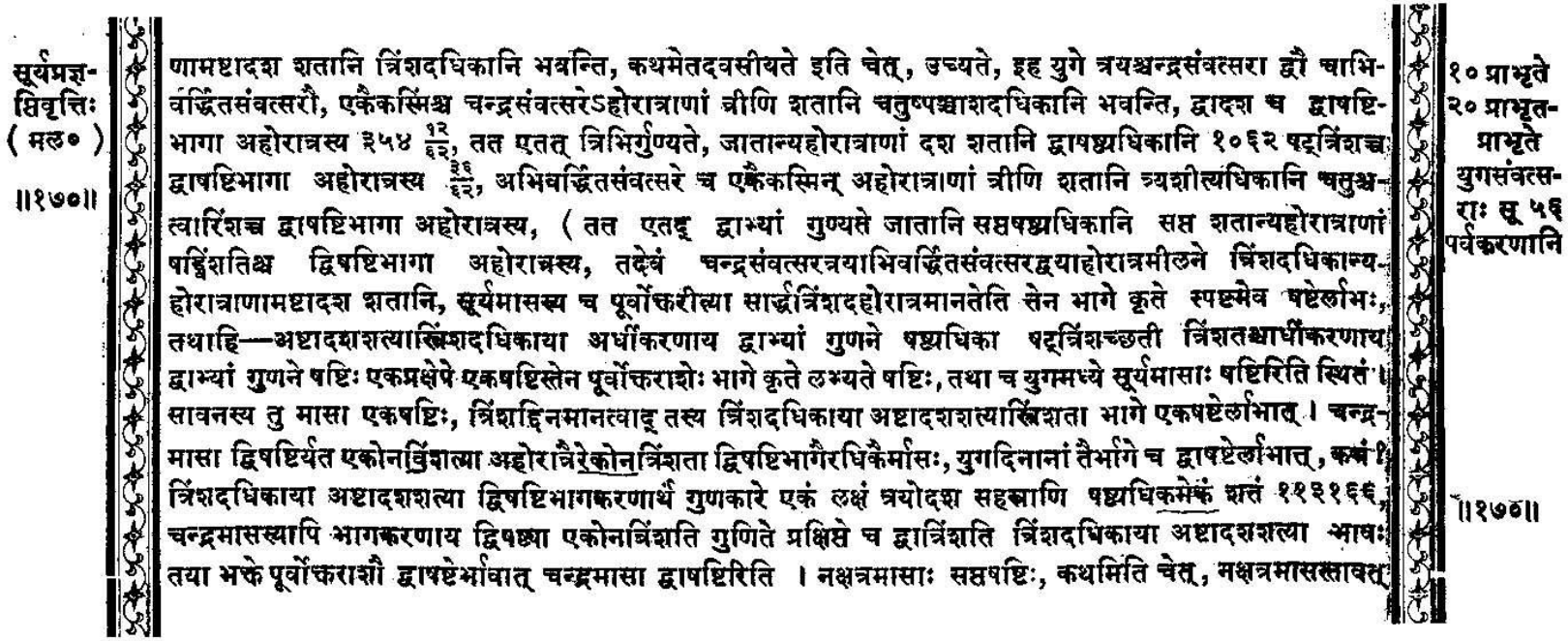
न्दिवस्य एकपञ्चाशत्सप्तषष्टिभागाः, तत्र त्रयाणां शतानां सप्तविंशत्यधिकानां द्वादशभिभागो ह्रियते, लब्धाः सप्तविंशतिरहोरात्राः, शेषास्त्रयस्तिष्ठन्ति, ततस्तेऽपि सप्तषष्टिभागकरणार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, जाते द्वे शते एकोत्तरे २०१, येऽपि च उपरितना एकपञ्चाशत्सप्तषष्टिभागास्तेऽपि तत्र प्रक्षिप्यन्ते, जाते द्वे शते द्विपञ्चाशदधिके २५२, तेषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धा एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, एतावन्नक्षत्रमासपरिमाणं, तथा अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य परिमाणं त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य, तत्र त्रयाणां शतानां त्र्यशीत्यधिकानां द्वादशभिर्भागो ह्रियते, लब्धा एकत्रिंशदहोरात्राः शेषास्तिष्ठन्त्यहोरात्रा एकादश, ते च चतुर्विंशत्युत्तरशतभागकरणार्थं चतुर्विंशत्युत्तरशतेन १२४ गुण्यन्ते, जातानि त्रयोदश शतानि चतुःषष्ट्यधिकानि १३६४, येऽपि चोपरितनाश्चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागास्तेऽपि चतुर्विंशत्युत्तरशतभागकरणार्थं द्वाभ्यां गुण्यन्ते, जाताऽष्टाशीतिः, साऽनन्तरराशौ प्रक्षिप्यते, जातानि चतुर्दश शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि १४५२, तेषां द्वादशभिर्भागो ह्रियते, लब्धमेकविंशत्युत्तरं शतं चतुर्विंशत्युत्तरशतभागानां, एतावदभिवर्द्धितमासपरिमाणं, तथा चोक्तम्—"आइच्चो खलु मासो तीसं अद्धं च सावणो तीसं। चंदो एगुणतीसं बिसट्ठिभागा य बत्तीसं ॥ १ ॥ नक्खत्तो खलु मासो सत्तावीसं भवे अहोरत्ता । अंसा य एक्कवीसा सत्तट्ठिकएण छेएण ॥ २ ॥ अभिवड्ढिओ य मासो एकतीसं भवे अहोरत्ता । भागसयमेगवीसं चउवीससएण छेएणं ॥३॥" सम्प्रति एतैरेव पञ्चभिः संवत्सरैः प्रागुक्तस्वरूपं युगं–पञ्चसंवत्सरात्मकं मासानधिकृत्य प्रमीयते, तत्र युगं–प्रागुदितस्वरूपं यदि सूर्यमासैर्विभज्यते ततः षष्टिः सूर्यमासा युगं भवन्ति, तथाहि—सूर्यमासे सार्द्धास्त्रिंशदहोरात्रा युगे चाहोरात्रा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७]

दीप अनुक्रम [८२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



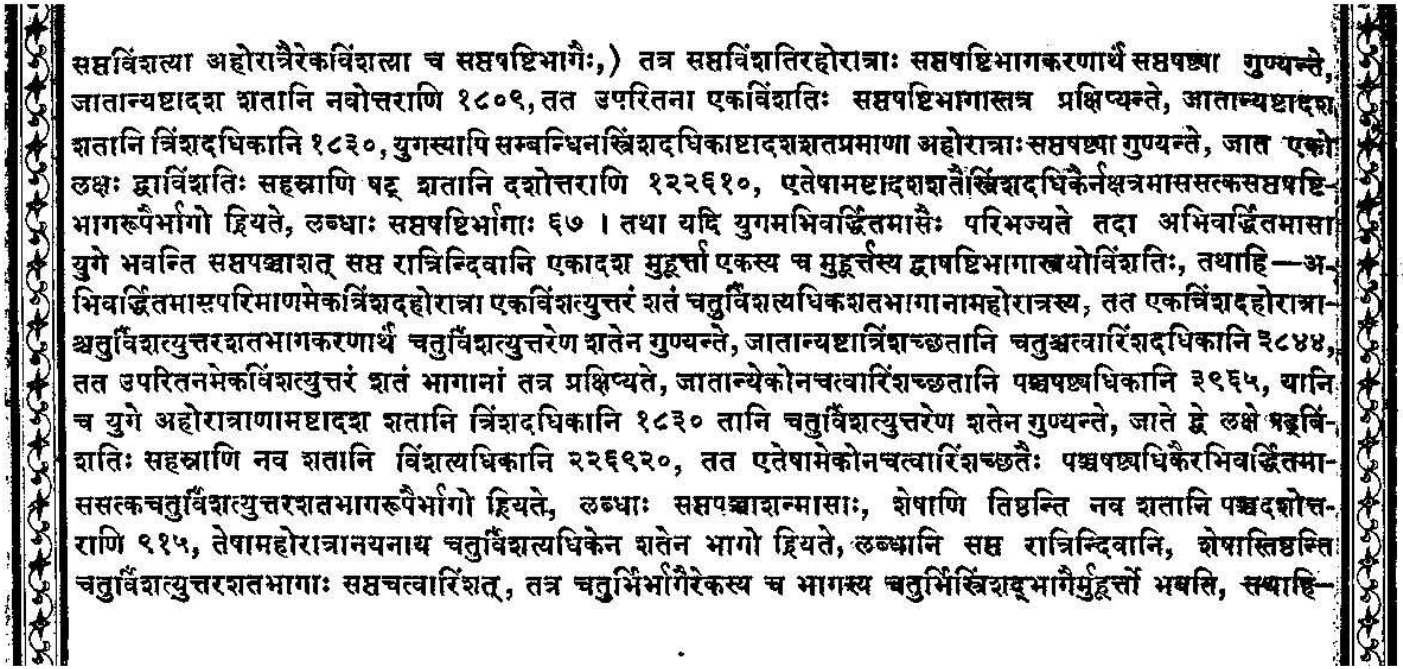
सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१७०॥

णामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि भवन्ति, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, इह युगे त्रयश्चन्द्रसंवत्सरा द्वौ चाभिवर्द्धितसंवत्सरौ, एकैकस्मिंश्च चन्द्रसंवत्सरेऽहोरात्राणां त्रीणि शतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि भवन्ति, द्वादश च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य ३५४ $\frac{१२}{६२}$, तत एतत् त्रिभिर्गुण्यते, जातान्यहोरात्राणां दश शतानि द्वाषष्ट्यधिकानि १०६२ षट्त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य $\frac{३६}{६२}$, अभिवर्द्धितसंवत्सरे च एकैकस्मिन् अहोरात्राणां त्रीणि शतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य, (तत एतद् द्वाभ्यां गुण्यते जातानि सप्तषष्ट्यधिकानि सप्त शतान्यहोरात्राणां षट्त्रिंशतिश्च द्विषष्टिभागा अहोरात्रस्य, तदेवं चन्द्रसंवत्सरत्रयाभिवर्द्धितसंवत्सरद्वयाहोरात्रमीलने त्रिंशदधिकान्यहोरात्राणामष्टादश शतानि, सूर्यमासस्य च पूर्वोक्तरीत्या सार्द्धत्रिंशदहोरात्रमानतेति तेन भागे कृते स्पष्टमेव षष्टेर्लाभः, तथाहि—अष्टादशशत्यास्त्रिंशदधिकाया अर्धीकरणाय द्वाभ्यां गुणने षष्ट्यधिका षट्त्रिंशच्छती त्रिंशतश्चार्धीकरणाय द्वाभ्यां गुणने षष्टिः एकप्रक्षेपे एकषष्टिस्तेन पूर्वोक्तराशेः भागे कृते लभ्यते षष्टिः, तथा च युगमध्ये सूर्यमासाः षष्टिरिति स्थितं । सावनस्य तु मासा एकषष्टिः, त्रिंशद्दिनमानत्वाद् तस्य त्रिंशदधिकाया अष्टादशशत्यास्त्रिंशता भागे एकषष्टेर्लाभात् । चन्द्रमासा द्विषष्टिर्यत एकोनत्रिंशत्या अहोरात्रैरेकोनत्रिंशता द्विषष्टिभागैरधिकैर्मासः, युगदिनानां तैर्भागे च द्वाषष्टेर्लाभात्, कथं ?, त्रिंशदधिकाया अष्टादशशत्या द्विषष्टिभागकरणार्थं गुणकारे एकं लक्षं त्रयोदश सहस्राणि षष्ट्यधिकमेकं शतं ११३१६६, चन्द्रमासस्यापि भागकरणाय द्विषष्ट्या एकोनत्रिंशति गुणिते प्रक्षिप्ते च द्वात्रिंशति त्रिंशदधिकाया अष्टादशशत्या भागः तया भक्ते पूर्वोक्तराशौ द्वाषष्टेर्भावात् चन्द्रमासा द्वाषष्टिरिति । नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिः, कथमिति चेत्, नक्षत्रमासस्तावत्

१० प्राभृते २० प्राभृतप्राभृते युगसंवत्सराः सू ५६ पर्वकरणानि

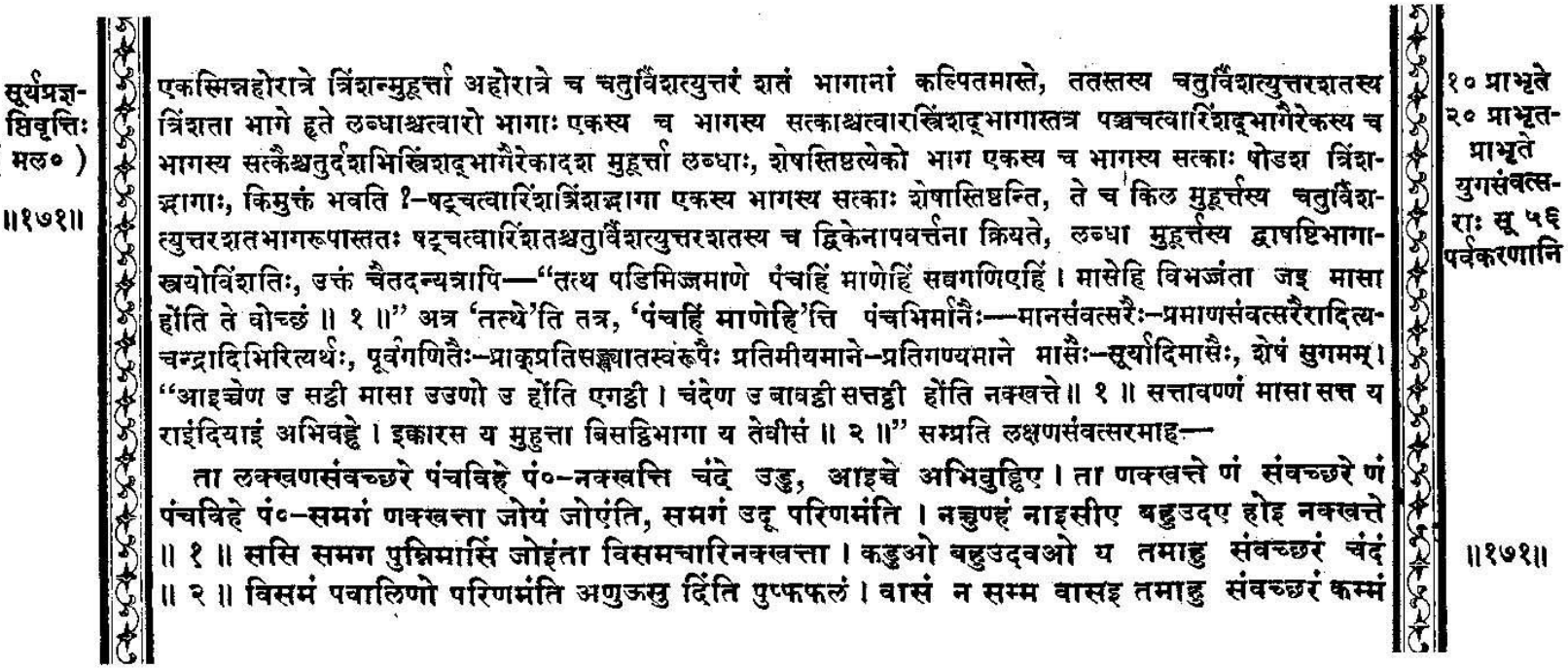
॥१७०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सप्तविंशत्या अहोरात्रैरेकविंशत्या च सप्तषष्टिभागैः,) तत्र सप्तविंशतिरहोरात्राः सप्तषष्टिभागकरणार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, जातान्यष्टादश शतानि नवोत्तराणि १८०९, तत उपरितना एकविंशतिः सप्तषष्टिभागास्तत्र प्रक्षिप्यन्ते, आतान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, युगस्यापि सम्बन्धिनस्त्रिंशदधिकाष्टादशशतप्रमाणा अहोरात्राः सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, जात एको लक्षः द्वाविंशतिः सहस्राणि षट् शतानि दशोत्तराणि १२२६१०, एतेषामष्टादशशतैस्त्रिंशदधिकैर्नक्षत्रमाससत्कसप्तषष्टिभागरूपैर्भागो ह्रियते, लब्धाः सप्तषष्टिर्भागाः ६७ । तथा यदि युगमभिवर्द्धितमासैः परिभज्यते तदा अभिवर्द्धितमासा युगे भवन्ति सप्तपञ्चाशत् सप्त रात्रिन्दिवानि एकादश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागास्त्रयोविंशतिः, तथाहि—अभिवर्द्धितमासपरिमाणमेकत्रिंशदहोरात्रा एकविंशत्युत्तरं शतं चतुर्विंशत्यधिकशतभागानामहोरात्रस्य, तत एकत्रिंशदहोरात्राश्चतुर्विंशत्युत्तरशतभागकरणार्थं चतुर्विंशत्युत्तरेण शतेन गुण्यन्ते, जातान्यष्टात्रिंशच्छतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ३८४४, तत उपरितनमेकविंशत्युत्तरं शतं भागानां तत्र प्रक्षिप्यते, जातान्येकोनचत्वारिंशच्छतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि ३९६५, यानि च युगे अहोरात्राणामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३० तानि चतुर्विंशत्युत्तरेण शतेन गुण्यन्ते, जाते द्वे लक्षे षड्विंशतिः सहस्राणि नव शतानि विंशत्यधिकानि २२६९२०, तत एतेषामेकोनचत्वारिंशच्छतैः पञ्चषष्ट्यधिकैरभिवर्द्धितमाससत्कचतुर्विंशत्युत्तरशतभागरूपैर्भागो ह्रियते, लब्धाः सप्तपञ्चाशन्मासाः, शेषाणि तिष्ठन्ति नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, तेषामहोरात्रानयनाय चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धानि सप्त रात्रिन्दिवानि, शेषास्तिष्ठन्ति चतुर्विंशत्युत्तरशतभागाः सप्तचत्वारिंशत्, तत्र चतुर्भिर्भागैरेकस्य च भागस्य चतुर्भिस्त्रिंशद्भागैर्मुहूर्त्तो भवति, तथाहि—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१७१॥

एकस्मिन्नहोरात्रे त्रिंशन्मुहूर्त्ता अहोरात्रे च चतुर्विंशत्युत्तरं शतं भागानां कल्पितमास्ते, ततस्तस्य चतुर्विंशत्युत्तरशतस्य त्रिंशता भागे हृते लब्धाश्चत्वारो भागाः एकस्य च भागस्य सत्काश्चत्वारिंशद्भागास्तत्र पञ्चचत्वारिंशद्भागैरेकस्य च भागस्य सत्कैश्चतुर्दशभिस्त्रिंशद्भागैरेकादश मुहूर्त्ता लब्धाः, शेषस्तिष्ठत्येको भाग एकस्य च भागस्य सत्काः षोडश त्रिंशद्भागाः, किमुक्तं भवति ?–षट्चत्वारिंशत्त्रिंशद्भागा एकस्य भागस्य सत्काः शेषास्तिष्ठन्ति, ते च किल मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्युत्तरशतभागरूपास्ततः षट्चत्वारिंशतश्चतुर्विंशत्युत्तरशतस्य च द्विकेनापवर्त्तना क्रियते, लब्धा मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागास्त्रयोविंशतिः, उक्तं चैतदन्यत्रापि—"तत्थ पडिमिज्जमाणे पंचहिं माणेहिं सवगणिएहिं । मासेहि विभज्जंता जइ मासा होंति ते वोच्छं ॥ १ ॥" अत्र 'तत्थे'ति तत्र, 'पंचहिं माणेहि'त्ति पंचभिर्मानैः—मानसंवत्सरैः–प्रमाणसंवत्सरैरादित्यचन्द्रादिभिरित्यर्थः, पूर्वगणितैः–प्राक्प्रतिसङ्ख्यातस्वरूपैः प्रतिमीयमाने–प्रतिगण्यमाने मासैः–सूर्यादिमासैः, शेषं सुगमम् । "आइच्चेण उ सट्ठी मासा उउणो उ होंति एगट्ठी । चंदेण उ बावट्ठी सत्तट्ठी होंति नक्खत्ते ॥ १ ॥ सत्तावण्णं मासा सत्त य राइंदियाइं अभिवड्ढे । इक्कारस य मुहुत्ता बिसट्ठिभागा य तेवीसं ॥ २ ॥" सम्प्रति लक्षणसंवत्सरमाह—

ता लक्खणसंवच्छरे पंचविहे पं०–नक्खत्ति चंदे उडु, आइचे अभिवुड्ढिए । ता णक्खत्ते णं संवच्छरे णं पंचविहे पं०–समगं णक्खत्ता जोयं जोएंति, समगं उदू परिणमंति । नच्चुण्हं नाइसीए बहुउदए होइ नक्खत्ते ॥ १ ॥ ससि समग पुन्निमासिं जोइंता विसमचारिनक्खत्ता । कडुओ बहुउदवओ य तमाहु संवच्छरं चंदं ॥ २ ॥ विसमं पवालिणो परिणमंति अणुऊसु दिंति पुप्फफलं । वासं न सम्म वासइ तमाहु संवच्छरं कम्मं

१० प्राभृते २० प्राभृतप्राभृते युगसंवत्सराः सू ५६ पर्वकरणानि

॥१७१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ ३ ॥ पुढविदगाणं च रसं पुप्फफलाणं च देइ आइचे । अप्पेणवि वासेणं संमं निप्फज्जए सस्सं ॥ ४ ॥ आइच्चतेयतविया खणलवदिवसा उऊ परिणमन्ति । पूरेति निणय (ण्ण) थलये तमाहु अभिवड्ढितं जाण ॥ ५ ॥ ता सणिच्छरसंवच्छरे णं अट्ठावीसतिविहे पं०, तं०–अभियी सवणे जाव उत्तरासाढा, जं वा सणिच्छरे महग्गहे तीसाए संवच्छरेहिं सव्वं णक्खत्तमंडलं समाणेति (सूत्रं ५८) ॥ दसमस्स पाहुडस्स वीसतिमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'लक्खणे संवच्छरे'त्यादि, लक्षणसंवत्सरः पञ्चविधः–पञ्चप्रकारः प्रज्ञप्तः, तच्च पञ्चविधत्वं प्रागुक्तमेव द्रष्टव्यं, तद्यथा–नक्षत्रसंवत्सरः चन्द्रसंवत्सरः ऋतुसंवत्सरः आदित्यसंवत्सरोऽभिवर्द्धितश्च, किमुक्तं भवति ?–न केवलमेते नक्षत्रादिसंवत्सरा यथोक्तरात्रिन्दिवपरिमाणा भवन्ति किन्तु तेभ्यः पृथग्भूता अन्येऽपि वक्ष्यमाणलक्षणोपेताः, ततो लक्षणोपपन्नः संवत्सरः पृथक् पञ्चविधो भवतीति, तत्र प्रथमतो नक्षत्रसंवत्सरलक्षणमाह—'ता नक्खत्ते'त्यादि, 'ता' इति तत्र नक्षत्रसंवत्सरो लक्षणमधिकृत्य पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, किमुक्तं भवति ?—नक्षत्रसंवत्सरस्य पञ्चविधं लक्षणं प्रज्ञप्तमिति, तदेवाह—"समगं नक्खत्ता जोगं जोएंति समगं उऊ परिणमंति । नच्चुण्ह नातिसीतो बहुउदओ होइ नक्खत्तो ॥ १ ॥" यस्मिन् संवत्सरे समकं—समकमेव एककालमेव ऋतुभिः सहेति गम्यते नक्षत्राणि—उत्तराषाढाप्रभृतीनि योगं युञ्जन्ति–चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्ति सन्ति तां पौर्णमासीं परिसमापयन्ति, तथा समकमेव–एककालमेव तया तया परिसमाप्यमानया पौर्णमास्या सह ऋतवो निदाघाद्याः परिणमन्ति–परिसमाप्तिमुपयन्ति, इय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मत्र भावना—यस्मिन् संवत्सरे नक्षत्रैर्मासंसदृशनामकैस्तस्य तस्य ऋतोः पर्यन्तवर्त्तीं मासः परिसमाप्यते, तेषु च तां तां पौर्णमासीं परिसमापयत्सु तथा तथा पौर्णमास्या सह ऋतवोऽपि निदाघादिकाः परिसमाप्तिमुपयन्ति, यथा उत्तराषाढानक्षत्रं आषाढीं पौर्णमासीं परिसमापयति, तया आषाढपौर्णमास्या सह निदाघोऽपि ऋतुः परिसमाप्तिमुपैति, स नक्षत्रसंवत्सरः, नक्षत्रानुरोधेन तस्य तथा तथा परिणममानत्वात्, एतेन च लक्षणद्वयमभिहितं द्रष्टव्यं, तथा न विद्यतेऽतिशयेन उष्णं—उष्णरूपः परितापो यस्मिन् स नात्युष्णः तथा न विद्यतेऽतिशयेन शीतं यत्र स नातिशीतो बहु उदकं यत्र स बहूदकः एवंरूपैः पञ्चभिः समग्रैर्लक्षणैरुपेतो भवति नक्षत्रसंवत्सरः। सम्प्रति चन्द्रसंवत्सरलक्षणमाह—"ससिसमगपुण्णमासिं जोएंता विसमचारिनक्खत्ता। कडुओ बहुउदओया तमाहु संवच्छरं चंदं ॥ १ ॥" यस्मिन् संवत्सरे नक्षत्राणि विषमचारीणि मासविसदृशनामानीत्यर्थः, शशिना समकं योगमुपगतानि तां तां पौर्णमासीं युञ्जन्ति—परिसमापयन्ति, यश्च कटुकः—शीतातपरोगादिदोषबहुलतया परिणामदारुणो बहूदकश्च तमाहुर्महर्षयः संवत्सरं चान्द्रं—चन्द्रसम्बन्धिनं चन्द्रानुरोधतस्तत्र मासानां परिसमाप्तिभावान्न माससदृशनामनक्षत्रानुरोधतः। सम्प्रति कर्म्मसंवत्सरलक्षणमाह—"विसमं पवालिणो परिणमंति अणुऊसु दिंति पुप्फफलं। वासं न सम्म वासइ तमाहु संवच्छरं कम्मं ॥ १ ॥" यस्मिन् संवत्सरे वनस्पतयो विषमं—विषमकालं 'प्रवालिनः परिणमन्ति' प्रवालः—पल्लवाङ्कुरस्तद्युक्ततया परिणमन्ति, तथा अनृतुष्वपि—स्वस्वऋत्वभावेऽपि पुष्पं फलं च ददति—प्रयच्छन्ति, तथा वर्षे—पानीयं न सम्यक् यस्मिन् संवत्सरे मेघो वर्षति तमाहुर्महर्षयः संवत्सरं कर्म्म—कर्म्मसंवत्सरमित्यर्थः। अधुना सूर्यसंवत्सरलक्षणमाह—"पुढविदगाणं च रसं पुप्फफलाणं च देइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आइच्चो । अप्पेणवि वासेणं सम्मं निप्फज्जए सस्सं ॥ १ ॥" पृथिव्या उदकस्य तथा पुष्पानां फलानां च रसमादित्यसंवत्सरो ददाति तथा अल्पेनापि–स्तोकेनापि वर्षेण–वृष्ट्या सस्यं निष्पद्यते–अन्तर्भूतण्यर्थत्वात् सस्यं निष्पादयति, किमुक्तं भवति ?–यस्मिन् संवत्सरे पृथिवी तथाविधोदकसम्पर्कादतीव सरसा भवति उदकमपि परिणामसुन्दररसोपेतं परिणमते पुष्पानां च–मधूकादिसम्बन्धिनां फलानां च–चूतफलादीनां रसः प्रचुरः सम्भवति स्तोकेनापि वर्षेण धान्यं सर्वत्र सम्यक् निष्पद्यते तमादित्यसंवत्सरं पूर्वर्षयः उपदिशन्ति । अभिवर्द्धितसंवत्सरलक्षणमाह–"आइच्चतेयतविया खणलवदिवसा उऊ परिणमंति । पूरेइ निण्णथलए तमाहु अभिवड्ढियं जाण ॥ १॥" यस्मिन् संवत्सरे क्षणलवदिवसा ऋतव आदित्यतेजसा कृत्वा अतीव तप्ताः परिणमन्ते यश्च सर्वाण्यपि निम्नस्थानानि स्थलानि च जलेन पूरयति तं संवत्सरं जानीहि यथा तं संवत्सरमभिवर्द्धितमाहुः पूर्वर्षय इति । तदेवं लक्षणसंवत्सर उक्तः, सम्प्रति शनैश्चरसंवत्सरमाह–'ता सणिच्छरे'त्यादि, तत्र शनैश्चरसंवत्सरोऽष्टाविंशतिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अभिजित्–अभिजित्शनैश्चरसंवत्सरः श्रवणः–श्रवणशनैश्चरसंवत्सरः, एवं यावदुत्तराषाढा–उत्तराषाढाशनैश्चरसंवत्सरः, तत्र यस्मिन् संवत्सरे अभिजिता नक्षत्रेण सह शनैश्चरो योगमुपादत्ते सोऽभिजित्शनैश्चरसंवत्सरः, श्रवणेन सह यस्मिन् संवत्सरे योगमुपादत्ते स श्रवणशनैश्चरसंवत्सरः, एवं सर्वत्र भावनीयं—'जं वे'त्यादि, वाशब्दः प्रकारान्तरताद्योतनाय तत्सर्वं–समस्तं नक्षत्रमण्डलं शनैश्चरो महाग्रहस्त्रिंशता संवत्सरैः समानयति एतावान् कालविशेषस्त्रिंशद्वर्षप्रमाणः शनैश्चरसंवत्सरः
विंशतितमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तं ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- २० समाप्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५९]

दीप अनुक्रम [९०]

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य विंशतितमं प्राभृतप्राभृतं, साम्प्रतं एकविंशतितममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो यथा 'नक्षत्रचक्रस्य द्वाराणि वक्तव्यानि,' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते जोतिसस्स दारा आहितातिवदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता कत्तियादी णं सत्त नक्खत्ता पुव्वादारिया पण्णत्ता एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु ता महादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु ता धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिआ पण्णत्ता एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु अस्सिणीयादीया णं सत्त णक्खत्ता पुव्वादारिया पं० एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु ता भरणीयादीआ णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिआ पण्णत्ता । तत्थ जे ते एवमाहंसु ता कत्तियादी णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पं० ते एवमाहंसु–तं०-कत्तिया रोहिणी संठाणा अद्दा पुणव्वसू पुस्सो असिलेसा, सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पं० तं०–महा पुव्वफग्गुणी उत्तराफग्गुणी हत्थो चित्ता साई विसाहा, अणुराधादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पं० तं०–अणुराधा जेट्ठा मूलो पुव्वासाढा उत्तरासाढा अभियी सवणो, धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पं० तं०–धणिट्ठा सतभिसया पुव्वापोट्ठवता उत्तरापोट्ठवता रेवती अस्सिणी भरणी ॥ तत्थ जे ते एवमाहंसु ता महादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पं० ते एवमाहंसु तं०–महा पुव्वाफग्गुणी हत्थो चित्ता साती विसाहा, अणुराधादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पं० तं०–अणुराधा जेट्ठा मूले पुव्वासाढा उत्तरासाढा अभियी

॥१७३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २० परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २१ आरभ्यते

सवणे, धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पं० तं०–धणिट्ठा सतभिसया पुव्वापोट्ठवता उत्तरापोट्ठवता रेवती अस्सिणी भरणी, कत्तियादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पं०, तंजहा–कत्तिया रोहिणी संठाणा अद्दा पुणव्वसू पुस्सो अस्सेसा । तत्थ णं जे ते एवमाहंसु, ता धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पं० ते एवमाहंसु, तंजहा–धणिट्ठा सत्तरिसया पुव्वाभद्दवया उत्तराभद्दवता रेवती अस्सिणी भरणी, कत्तियादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पं० तंजहा–कत्तिया रोहिणी संठाणा अद्दा पुणव्वसू पुस्सो अस्सेसा, महादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पं० तंजहा–महा पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी हत्थो चित्ता साती विसाहा, अणुराधादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पं० तं०–अणुराधा जेट्ठा मूलो पुव्वासाढा उत्तरासाढा अभीयी सवणो ॥ तत्थ जे ते एवमाहंसु, ता अस्सिणीआदीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एते एवमाहंसु, तंजहा–अस्सिणी भरणी कत्तिया रोहिणी संठाणा अद्दा पुणव्वसू, पुस्सादिया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता तं०–पुस्सा अस्सेसा महा पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी हत्थो चित्ता, सादीयादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पं० तंजहा–साती विसाहा अणुराहा जेट्ठा मूलो पुव्वासाढा उत्तरासाढा, अभीयीआदि सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पं०, तं०–अभिई सवणो धणिट्ठा सतभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया रेवती ॥ तत्थ जे ते एवमाहंसु ता भरणिआदीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पं० ते एवमाहंसु, तंजहा–भरणी कत्तिया रोहिणी संठाणा अद्दा पुणव्वसू पुस्सो, अस्सेसादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता,

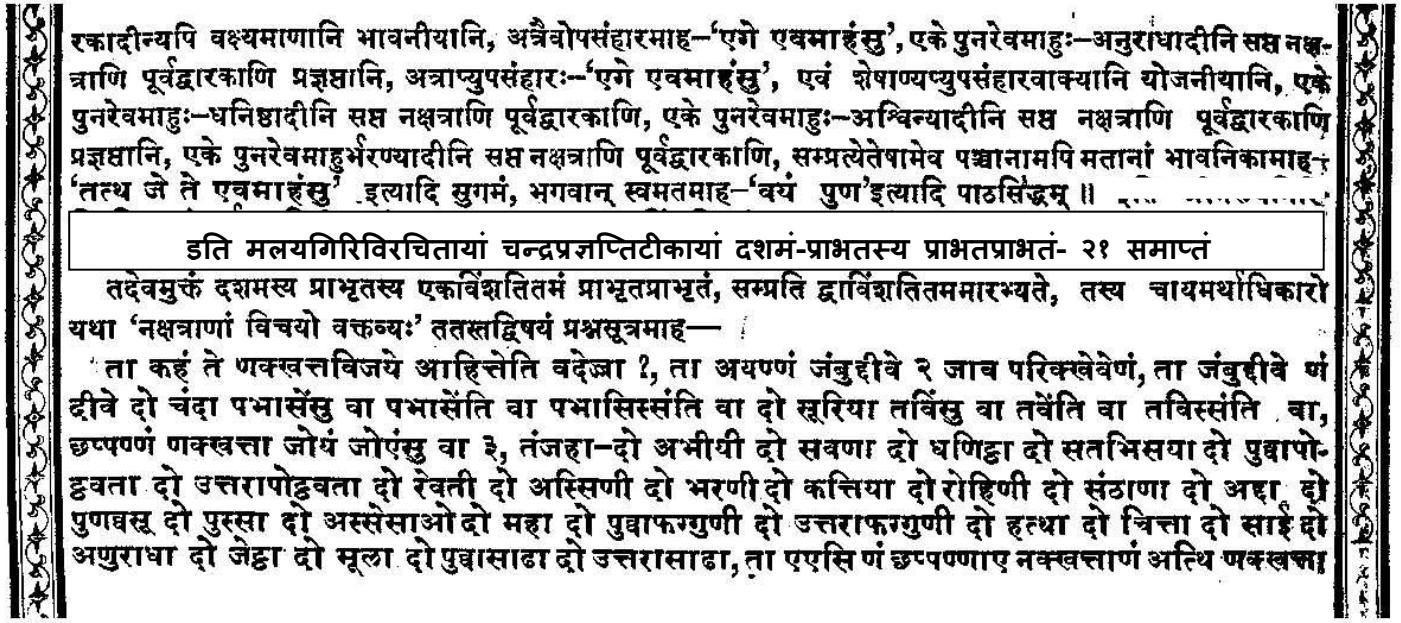
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तंजहा–अस्सेसा महा पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी हत्थो चित्ता साई, विसाहादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पं० तं०–विसाहा अणुराहा जेट्ठा मूलो पुव्वासाढा उत्तरासाढा अभिई, सवणादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं०–सवणो धणिट्ठा सतभिसया पुव्वापोट्ठवया उत्तरपोट्ठवया रेवती अस्सिणी, एते एवमाहंसु, वयं पुण एवं वदामो ता अभिईयादि सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, तं०–अभियी सवणो धणिट्ठा सतभिसया पुव्वापोट्ठवता उत्तरापोट्ठवया रेवती, अस्सिणीआदीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पं० तं०–अस्सिणी भरणी कत्तिया रोहिणी संठाणा अद्दा पुणव्वसू, पुस्सादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पं० तं०–पुस्सो अस्सेसा महा पुव्वाफग्गुणी उत्तरफग्गुणी हत्थो चित्ता, सातिआदीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पं०, तं०–साती विसाहा अणुराहा जेट्ठा मूले पुव्वासाढा उत्तरासाढा (सूत्रं ५९) दसमस्स पाहुडस्स एक्कवीसतितमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते जोइसदारा' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण केन क्रमेणेत्यर्थः ज्योतिषो–नक्षत्रचक्रस्य द्वाराणि आख्यातानीति वदेत् ?, एवमुक्ते भगवानेतद्विषये यावत्यः परतीर्थिकानां प्रतिपत्तयस्तावतीरुपदर्शयति—'तत्थे'त्यादि, तत्र–द्वारविचारविषये खल्विमा–वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्च परतीर्थिकानां प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, ता एव क्रमेणाह—'तत्थेगे'त्यादि, तत्र–तेषां पञ्चानां परतीर्थिकसङ्घातानां मध्ये एके एवमाहुः—कृत्तिकादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारकाणि प्रज्ञप्तानि, इह येषु नक्षत्रेषु पूर्वस्यां दिशि गच्छतः प्रायः शुभमुपजायते तानि पूर्वद्वारकाणि, एवं दक्षिणद्वा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५९] दीप अनुक्रम [९०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



रकादीन्यपि वक्ष्यमाणानि भावनीयानि, अत्रैवोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु', एके पुनरेवमाहुः–अनुराधादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारकाणि प्रज्ञप्तानि, अत्राप्युपसंहारः–'एगे एवमाहंसु', एवं शेषाण्यप्युपसंहारवाक्यानि योजनीयानि, एके पुनरेवमाहुः–धनिष्ठादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारकाणि, एके पुनरेवमाहुः–अश्विन्यादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारकाणि प्रज्ञप्तानि, एके पुनरेवमाहुर्भरण्यादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारकाणि, सम्प्रत्येतेषामेव पञ्चानामपि मतानां भावनिकामाह–'तत्थ जे ते एवमाहंसु' इत्यादि सुगमं, भगवान् स्वमतमाह–'वयं पुण'इत्यादि पाठसिद्धम् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- २१ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमस्य प्राभृतस्य एकविंशतितमं प्राभृतप्राभृतं, सम्प्रति द्वाविंशतितममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो यथा 'नक्षत्राणां विचयो वक्तव्यः' ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते णक्खत्तविजये आहिएत्ति वदेज्जा ?, ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव परिक्खेवेणं, ता जंबुद्दीवे णं दीवे दो चंदा पभासेंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा दो सूरिया तविंसु वा तवेंति वा तविस्संति वा, छप्पण्णं णक्खत्ता जोयं जोएंसु वा ३, तंजहा–दो अभीयी दो सवणा दो धणिट्ठा दो सतभिसया दो पुव्वापोट्ठवता दो उत्तरापोट्ठवता दो रेवती दो अस्सिणी दो भरणी दो कत्तिया दो रोहिणी दो संठाणा दो अद्दा दो पुणव्वसू दो पुस्सा दो अस्सेसाओ दो महा दो पुव्वाफग्गुणी दो उत्तराफग्गुणी दो हत्था दो चित्ता दो साई दो अणुराधा दो जेट्ठा दो मूला दो पुव्वासाढा दो उत्तरासाढा, ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २१ परिसमाप्तं अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २२ आरभ्यते

जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि नक्खत्ता जे णं पण्णरस मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं तीसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं कतरे णक्खत्ते जे णं णवमुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तसट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, कतरे णक्खत्ता जे णं पन्नरसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, कतरे णक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेणं सद्धिं जोयं जोएंति, कतरे णक्खत्ता जे णं पणतालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं दो अभीयी, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पण्णरस मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं बारस, तंजहा–दो सतभिसया दो भरणी दो अद्दा दो अस्सेसा दो साती दो जेट्ठा, तत्थ जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं तीसं, तंजहा–दो सवणा दो धणिट्ठा दो पुव्वभद्दवता दो रेवती दो अस्सिणी दो कत्तिया दो संठाणा दो पुस्सा दो महा दो पुव्वाफग्गुणी दो हत्था दो चित्ता दो अणुराधा दो मूला दो पुव्वासाढा, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पणतालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोएंति ते णं बारस, तंजहा–दो उत्तरापोट्ठवता दो रोहिणी दो पुणव्वसू दो उत्तराफग्गुणी दो विसाहा दो उत्तरासाढा, ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एकवीसं च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, अत्थि णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिन्नि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं तं चेव उच्चारेयव्वं, ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ते णं दो अभीयी, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ते णं बारस, तंजहा–दो सतभिसया दो अद्दा दो अस्सेसा दो साती दो विसाहा दो जेट्ठा, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते बारस मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ते णं तीसं, तंजहा–दो सवणा जाव दो पुव्वासाढा, तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण जोयं जोएंति, ते णं बारस, तंजहा–दो उत्तरापोट्ठवता जाव उत्तरासाढा (सूत्रं ६०)

'ता कहं ते' इत्यादि, ता इति पूर्ववत् , कथं !–केन 'नक्खत्तविजयं'ति विपूर्वश्चिङ् स्वभावात् स्वरूपनिर्णये वर्त्तते, तथा चोक्तमन्यत्र "आप्तवचनं प्रवचनं ज्ञात्वा विचयस्तदर्थनिर्णयनम् ।" तत्र विचयनं विचयो नक्षत्राणां विचयो नक्षत्रविचयः–नक्षत्राणां स्वरूपनिर्णय आख्यात इति वदेत् ?, भगवानाह–'ता अयण्ण'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपवाक्यं पूर्ववत् परिपूर्णं स्वयं कृत्वा परिभावनीयं, 'ता जंबुद्दीवे ण'मित्यादि, तत्र जम्बूद्वीपे णमिति वाक्यालङ्कारे द्वीपे द्वौ चन्द्रौ प्रभासितवन्तौ प्रभासेते प्रभासिष्येते, द्वौ सूर्यौ तापितवन्तौ तापयतस्तापयिष्यतः, षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि चन्द्रादिभिः सह योगमयुञ्जन् युञ्जन्ति योक्ष्यन्ति, तत्र तान्येव षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि दर्शयति–'तंजहे'त्यादि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुगमं, इह भरतक्षेत्रे प्रतिदिवसमष्टाविंशतिरेव नक्षत्राणि चारं चरन्ति, ततः पूर्वमस्य दशमस्य प्राभृतस्य द्वितीये प्राभृतप्राभृतेऽष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां चन्द्रमसा सूर्येण च सह योगपरिमाणं चिन्तितं, सम्प्रति पुनः सकलमेव जम्बूद्वीपमधिकृत्य नक्षत्राणि चिन्त्यमानानि वर्त्तन्ते, तानि च सर्वसङ्ख्यया षट्पञ्चाशत्, ततस्तेषां सर्वेषामपि चन्द्रसूर्याभ्यां सह योगमधिकृत्य मुहूर्त्तपरिमाणं चिचिन्तयिषुरिदमाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, एतच्च प्रागुक्तद्वितीयप्राभृतप्राभृतवत्परिभावनीयम्'। तदेवं कालमधिकृत्य चन्द्रमसा सूर्येण च सह योगपरिमाणं चिन्तितं, सम्प्रति क्षेत्रमधिकृत्य तच्चिचिन्तयिषुः प्रथमतः सीमाविष्कम्भविषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते सीमाविक्खंभे आहितेति वदेज्जा?, ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ता जेसि णं छसया तीसा सत्तट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो, अत्थि णक्खत्ता जेसि णं सहस्सं पंचोत्तरं सत्तसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो, अत्थि णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा दसुत्तरा सत्तसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो, अत्थि णक्खत्ता जेसि णं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सत्तसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो, ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं कतरे णक्खत्ता जेसि णं छसया तीसा तं चेव उच्चारेतव्वं, ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जेसि णं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सत्तसट्ठिभागतीसइभागाणं सीमाविक्खंभो?, ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ता णं तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं छ सता तीसा सत्तट्ठिभागतीसतिभागेणं सीमाविक्खंभो ते णं दो अभीयी, तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं सहस्सं पंचु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सरं सत्तसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो ते णं बारस, तंजहा–दो सतभिसया जाव दो जेट्ठा, तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा दसुत्तरा सत्तट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो ते णं तीसं, तं०–दो सवणा जाव दो पुव्वासाढा, तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं तिण्णि सहस्सा पण्णरसुत्तरा सत्तट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो ते णं बारस, तं०–दो उत्तरा पोट्ठवता जाव उत्तरासाढा वा (सूत्रं ६१) एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं किं सता पादो चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं किं सया सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति?, एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं किं सया दुहा पविसिय २ चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति?, ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं न किंपि तं जं सया पादो चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, नो सया सागं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, नो सया दुहओ पविसित्ता २ चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, णण्णत्थ दोहिं अभीयीहिं, ता एतेणं दो अभीयी पायंचिय २ चोत्तालीसं २ अमावासं जोएंति, णो चेव णं पुण्णिमासिणिं (सूत्रं ६२)

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण कियत्या विभागसङ्ख्यया इत्यर्थः, भगवन्! त्वया सीमाविष्कम्भ आख्यात इति वदेत्, भगवानाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, इहाष्टाविंशत्या नक्षत्रैः स्वगत्या स्वस्वकालपरिमाणेन क्रमशो यावत् क्षेत्रं बुद्ध्या व्याप्यमानं सम्भाव्यते तावदेकमर्द्धमण्डलमुपकल्प्यते, एतावत्प्रमाणमेव द्वितीयमर्धमण्डलमित्येवंप्रमाणं बुद्धिपरिकल्पितमेकं परिपूर्णमण्डलं, तस्य मण्डलस्य 'मण्डलं सयसहस्सेण अट्ठाणउए सएहिं छित्ता इच्चेस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नक्खत्ते खेत्तपरिभागे नक्खत्तविजए पाहुडे आहियत्तिबेमि' इति वक्ष्यमाणवचनात् अष्टानवतिशताधिकशतसहस्रविभागैर्विभज्यते, किमेवंसङ्ख्यानां भागानां कल्पने निबन्धनमिति चेत्, उच्यते, इह त्रिविधानि नक्षत्राणि, तद्यथा–समक्षेत्राणि अर्द्धक्षेत्राणि द्व्यर्द्धक्षेत्राणि च, तत्र यावत्प्रमाणं क्षेत्रमहोरात्रेण गम्यते नक्षत्रैस्तावत्क्षेत्रप्रमाणं चन्द्रेण सह योगं यानि गच्छंति तानि समक्षेत्राणि, तानि च पञ्चदश, तद्यथा–श्रवणो धनिष्ठा पूर्वभद्रपदा रेवती अश्विनी कृत्तिका मृगशिरः पुष्यो मघा पूर्वफाल्गुनी हस्तः चित्राऽनुराधा मूलः पूर्वाषाढा इति, तथा यानि अहोरात्रप्रमितस्य क्षेत्रस्यार्द्धं चन्द्रेण सह योगमनुवते तान्यर्द्धक्षेत्राणि, तानि च षट्, तद्यथा–शतभिषक् भरणी आर्द्रा अश्लेषा स्वातिर्ज्येष्ठेति, तथा द्वितीयमर्धं यस्य तत् द्व्यर्द्धं, सार्धमित्यर्थः, द्व्यर्द्धमर्द्धाधिकं क्षेत्रमहोरात्रप्रमितं चन्द्रयोगयोग्यं येषां तानि द्व्यर्द्धक्षेत्राणि, तान्यपि षट्, तद्यथा–उत्तरभद्रपदा उत्तरफाल्गुनी उत्तराषाढा रोहिणी पुनर्वसु विशाखा चेति, तत्र सीमापरिमाणचिन्तायामहोरात्रः सप्तषष्टिभागीक्रियते इति समक्षेत्राणां क्षेत्रं प्रत्येकं सप्तषष्टिभागाः परिकल्प्यन्ते, अर्द्धक्षेत्राणां त्रयस्त्रिंशत् अर्द्धं च, द्व्यर्द्धक्षेत्राणां शतमेकमर्द्धं च, अभिजिन्नक्षत्रस्य एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, समक्षेत्राणि च नक्षत्राणि पञ्चदशेति सप्तषष्टिः पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातं सहस्रं पञ्चोत्तरं १००५, अर्द्धक्षेत्राणि षडिति ततः सार्द्धा त्रयस्त्रिंशत् षड्भिर्गुण्यते, जाते द्वे शते एकोत्तरे २०१, द्व्यर्द्धक्षेत्राण्यपि षट्, ततः शतमेकमर्द्धं च षड्भिस्ताड्यते, जातानि षट् शतानि त्र्युत्तराणि ६०३, अभिजिन्नक्षत्रस्य एकविंशतिः, सर्वसङ्ख्यया जातानि अष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, एतावद्भागपरिमाणमेकमर्द्धमण्डलमेतावद्भागमेव द्वितीयमिति त्रिंशदधिकान्यष्टादश शतानि द्वाभ्यां गुण्यन्ते जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधि-

॥१७७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१-६२]

दीप अनुक्रम [९२-९३]

कानि ३६६०, एकैकस्मिन्नहोरात्रे किल त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति प्रत्येकमेतेषु षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतसङ्ख्येषु भागेषु त्रिंशद्भागक-ल्पनायां त्रिंशता गुण्यन्ते, जातमेकं शतसहस्रमष्टानवतिः शतानि १०९८००, तत इत्थं मण्डलस्य भागान् परिकल्प्य भगवान् प्रतिवचनं ददाति–'ता'इति तत्र एतेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्येऽस्तीति निपातत्वादार्षत्वाद्वा स्तस्ते नक्षत्रे ययोः प्रत्येकं षट् शतानि त्रिंशानि–त्रिंशदधिकानि सप्तषष्टित्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः–सीमापरिमाणं, तथाऽस्तीति सन्ति तानि नक्षत्राणि येषां प्रत्येकं पञ्चोत्तरं सहस्रं सप्तषष्टित्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः, सन्ति तानि नक्षत्राणि येषां प्रत्येकं द्वे सहस्रे दशोत्तरे सप्तषष्टित्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः, सन्ति तानि नक्षत्राणि येषां प्रत्येकं त्रीणि सहस्राणि पञ्चदशोत्तराणि सप्तषष्टित्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः, एवं भगवता सामान्येनोक्ते भगवान् गौतमो विशेषावगमनिमित्तं भूयः प्रश्नयति–'ता एएसि ण'मित्यादि, तत्र एतेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये कतराणि तानि नक्षत्राणि येषां षट् शतानि त्रिंशानि सप्तषष्टित्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः, 'तं चेव उच्चारेयव्वं'ति तदेवानन्तरोक्तमुक्तप्रकारेणोच्चारयि-तव्यं, तद्यथा–'कयरे नक्खत्ता जेसिं सहस्सं पंचोत्तरं सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं सीमाविक्खंभो, कयरे नक्खत्ता जेसिं दो सहस्सा दसुत्तरा सत्तट्ठिभागा तीसइभागाणं सीमाविक्खंभो'इति, चरमं तु सूत्रं साक्षादाह–'कयरे नक्खत्ता'इत्यादि, एतानि त्रीण्यपि सूत्राणि सुगमानि (च), भगवानाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, तत्र एतेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये यानि तानि नक्षत्राणि येषां षट् शतानि त्रिंशानि सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः ते द्वे अभिजिन्नक्षत्रे, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, इह एकैकस्याभिजितो नक्षत्रस्य सप्तषष्टि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खण्डीकृतस्याहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य सत्का एकविंशतिर्भागाश्चन्द्रयोगयोग्याः, एकैकस्मिंश्च भागे त्रिंशद्भागपरिकल्पनादेकविंशतित्रिंशता गुण्यते, जातानि षट् शतानि त्रिंशदधिकानि ६३०, तथा तत्र तेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये यानि तानि नक्षत्राणि येषां प्रत्येकं पञ्चोत्तरं सहस्रं सप्तषष्टित्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः तानि द्वादश, तद्यथा–द्वे शतभिषजौ 'जाव दो जेट्ठाउ'त्ति यावच्छब्दकरणादेवं द्रष्टव्यं–'दो भरणीओ दो अद्दाओ दो अस्सेसाओ दो साईओ दो जेट्ठाओ' इति, तथाहि–एतेषां द्वादशानामपि नक्षत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य सत्काः सार्द्धत्रयस्त्रिंशद्भागाश्चन्द्रयोगे योग्यास्ततस्त्रयस्त्रिंशत् त्रिंशता गुण्यते जातानि नव शतानि नवत्यधिकानि ९९०, अर्द्धस्यापि च त्रिंशता गुणयित्वा द्वाभ्यां भागे हृते लब्धाः पञ्चदश १५, सर्वसङ्ख्यया जातं पञ्चोत्तरं सहस्रं १००५, तथा तत्र तेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये यानि तानि नक्षत्राणि येषां द्वे सहस्रे दशोत्तरे सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भस्तानि त्रिंशत्, तद्यथा–द्वौ श्रवणौ 'जाव दो पुव्वासाढा'इति यावच्छब्दादेवं पाठो द्रष्टव्यः–'दो धणिट्ठा दो पुवभद्दवया दो रेवई दो अस्सिणी दो कत्तिया दो मिगसिरा दो पुस्सा दो मघा दो पुवफग्गुणीओ दो हत्था दो चित्ता दो अणुराहा दो मूला दो पुव्वासाढा'इति, तथाहि–एतानि नक्षत्राणि समक्षेत्राणि, तत एतेषां सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य सत्काः परिपूर्णाः सप्तषष्टिभागाः प्रत्येकं चन्द्रयोगयोग्याः, तेन सप्तषष्टित्रिंशता गुण्यते, जाते द्वे सहस्रे दशोत्तरे इति, तथा तत्र–तेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये यानि तानि नक्षत्राणि येषां प्रत्येकं त्रीणि सहस्राणि पञ्चदशोत्तराणि सप्तषष्टित्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भस्तानि द्वादश, तद्यथा–द्वे उत्तरे प्रोष्ठपदे 'जाव दो उत्तरासाढा'इति यावच्छब्दकरणादेवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१-६२]

दीप अनुक्रम [९२-९३]

द्रष्टव्यं 'दो रोहिणी दो पुणवसू दो उत्तरफग्गुणी दो विसाहा दो उत्तरासाढा' इति, एतानि हि नक्षत्राणि द्व्यर्द्धक्षेत्राणि ततः सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य सत्काश्चन्द्रयोगयोग्या भागाः शतमेकमर्द्धं च प्रत्येकमवगन्तव्याः, तत्र शतं त्रिंशता गुण्यते, जातानि त्रीणि सहस्राणि, अर्द्धमपि त्रिंशता गुणयित्वा द्वाभ्यां विभज्यते लब्धाः पञ्चदशेति। 'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति तत्र तेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये किं नक्षत्रं यत् सदा प्रातरेव चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति ?, किं नक्षत्रं यत्सदा सायं-दिवसावसानसमये चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, किं तन्नक्षत्रं यत्सदा द्विधा-प्रातः सायं च समये प्रविश्य २ चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति ?, भगवानाह-'ता एएसि ण'मित्यादि, तत्र एतेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये न किमपि तन्नक्षत्रमस्ति यत्सदा प्रातरेव चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, किं सर्वथा नेत्याह-'नक्षत्थे'त्यादि, नेति प्रतिषेधोऽन्यत्र द्वाभ्यामभिजिद्भ्यामवसेयः, कस्मादित्याह-'ता एएसि ण'मित्यादि ता इति तत्र-तेषां षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये एते-अनन्तरोदिते द्वे अभिजितौ-अभिजिन्नक्षत्रे युगे युगे प्रातरेव प्रातरेव चतुश्चत्वारिंशत्तममामावास्यां चन्द्रेण सह योगमुपगम्य युङ्क्तः-परिसमापयतः, नो चैव पौर्णमासीं, अथ कथमेतदवसीयते, यथा युगे युगे चतुश्चत्वारिंशत्तमा २ ममावास्यां सदैव प्रातः समये अभिजिन्नक्षत्रं चन्द्रेण सार्द्धं योगमुपागभ्य परिसमापयतीति ?, उच्यते, पूर्वाचार्योपदर्शितकरणवशात्, तथाहि-तिथ्यानयनार्थं तावत्करणमिदं-'तिहिरासिमेव बावट्ठिभाइया सेसमेगसट्ठिगुणणं च। बावट्ठीएँ विभत्तं सेसा अंसा तिहिसमत्ती॥ १॥" अस्या अक्षरगमनिका-ये युगमध्ये चन्द्रमासा अतिक्रान्तास्ते तिथिराश्यानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, गुणयित्वा च तस्य राशेर्भागो द्वाषष्ट्या ह्रियते, हृते च भागे यदवतिष्ठते तस्मिन्नेकषष्ट्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१-६२]

दीप अनुक्रम [९२-९३]

गुणयित्वा द्वाषष्ट्या विभक्ते ये अंशा उद्धरन्ति सा विवक्षिते दिने विवक्षिततिथिपरिसमाप्तिः, ततश्चतुश्चत्वारिंशत्तमाया-ममावास्यायां चिन्त्यमानायां त्रिचत्वारिंशच्चन्द्रमासा एकं च चन्द्रमासस्य पर्वावाप्यते, ततस्त्रिचत्वारिंशत्त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि द्वादश शतानि नवत्यधिकानि १२९०, तत उपरितनाः पर्वगताः पञ्चदश प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रयोदश शतानि पञ्चोत्तराणि १३०५, तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा एकविंशतिः, सा त्यज्यते, शेषास्तिष्ठन्ति त्रयः, ते एकषष्ट्या गुण्य-न्ते, जातं त्र्यशीत्यधिकं शतं १८३, तस्य द्वाषष्ट्या भागे हृते लब्धौ द्वौ, तौ त्यक्तौ, शेषा तिष्ठत्येकोनषष्टिः ५९, आग-तमेकोनषष्टिर्द्वाषष्टिभागास्तस्मिन् दिनेऽमावास्या । अमावास्यासु पौर्णमासीषु च नक्षत्रानयनार्थं प्रागुक्तमेव करणं, तत्र ध्रुवराशिः, षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभागः ६६ ।$\frac{५}{६२}$।$\frac{१}{६७}$, तत्र चतुश्चत्वारिंशत्तमा अमावास्या चिन्तयितुमारब्धा, ततश्चतुश्चत्वारिंशता स गुण्यते, जातानि मुहूर्त्तानामेकोनत्रिंश-च्छतानि चतुरुत्तराणि २९०४ एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागानां द्वे शते विंशत्यधिके २२० एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुश्चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः $\frac{४४}{६७}$, तत्र पुनर्वसुप्रभृतिकमुत्तराषाढापर्यन्तं चत्वारि शतानि द्विचत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्ता-नामेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः ४४२ $\frac{४६}{६२}$ इत्येवंप्रमाणं शोध्यते, जातानि मुहूर्त्तानां चतुर्विंशतिः शतानि द्वाषष्ट्यधिकानि २४६२ एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुःसप्तत्यधिकं शतं द्वाषष्टिभागानां १७४, ततोऽभिजिदादिसक-लनक्षत्रमण्डलशोधनकमष्टौ शतानि एकोनविंशत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाष-ष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ८१९ । २४ । ६६ इत्येवंप्रमाणं यावत्सम्भवं शोधनीयं, तत्र त्रिगुणमपि शुद्धिमासा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दयतीति त्रिगुणं कृत्वा शोध्यते, स्थिताः पश्चात् षण्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः ६ । ३७ । ४७ । आगतं चतुश्चत्वारिंशत्तमाममावास्यायामभिजिन्नक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेषु सप्तमस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु परिसमापयति । सम्प्रत्यमावास्यापौर्णमासीप्रक्रमादेव तत्प्ररूपणां चिकीर्षुरिदमाह–

तत्थ खलु इमाओ बावट्ठिं पुण्णिमासिणीओ बावट्ठिं अमावासाओ पण्णत्ताओ, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णिमासिणिं चंदं किंसि देसंसि जोएइ ?, ता जंसि णं देसंसि चंदे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएति ताए तेणं पुण्णिमासिणिट्ठाणातो मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दुवत्तीसं भागे उवातिणावित्ता एत्थ णं से चंदे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएति, ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं दोचं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएति, ता जंसि णं देसंसि चंदे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएति, ता तेणं पुण्णिमासिणिट्ठाणातो मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दुवत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से चंदे दोचं पुण्णिमासिणिं जोएति, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तचं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?, ता जंसि णं देसंसि चंदो दोचं पुण्णिमासिणिं जोएति, ताते पुण्णिमासिणीठाणातो मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दुवत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता, एत्थ णं तचं चंदे पुण्णिमासिणिं जोएति, ता एतेणं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएंति ?, ता जंसि णं देसंसि चंदे तचं पुण्णिमासिणिं जोएति, ताते पुण्णिमा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिणिट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दोण्णि अट्ठासीते भागसते उवायिणावेत्ता एत्थ णं से चंदे दुवालसमं पुण्णिमासिणिं जोएति, एवं खलु एतेणुवाएणं ताते २ पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दुवत्तीसंभागे उवातिणावेत्ता तंसि २ देसंसि तं तं पुण्णिमासिणिं चंदे जोएति, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?, ता जंबुद्दीवस्स णं २ पाईणपडिणायताए उदीणदाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दाहिणिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि सत्तावीसं चउभागे उवायणावेत्ता अट्ठावीसतिभागे वीसहा छेत्ता अट्ठारसभागे उवातिणावेत्ता तिहिं भागेहिं दोहि य कलाहिं पचत्थिमिल्लं चउब्भागमंडलं असंपत्ते एत्थ णं चंदे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएति (सूत्रं ६३)

'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र युगे खलु इमा–वक्ष्यमाणस्वरूपा द्वाषष्टिः पौर्णमास्यो द्वाषष्टिरमावास्याः प्रज्ञप्ताः, एवमुक्ते भगवान् गौतमः पृच्छति—'ता'इति तत्र युगे एतेषामनन्तरोदितानां चन्द्रादीनां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमां पौर्णमासीं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति–परिसमापयति ?, भगवानाह—'ता जंसि ण' मित्यादि, तत्र यस्मिन् देशे चन्द्रश्चरमां पाश्चात्ययुगपर्यन्तवर्त्तिनीं द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं युनक्ति–परिसमापयति तस्मात् पूर्णमासीस्थानात्–चरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिस्थानात् परतो मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा–विभज्य तद्गतान् द्वात्रिंशतं भागान् उपादाय–गृहीत्वा अत्र द्वात्रिंशद्भागरूपे देशे चन्द्रः प्रथमां पौर्णमासीं युनक्ति–परिसमापयति, भूयः प्रश्नं करोति, 'ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएसि ण'मित्यादि, ता इति–तत्र युगे एतेषामनन्तरोदितानां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये या द्वितीया पौर्णमासी तां चन्द्रः कस्मिन् देशे परिसमापयति ?, भगवानाह—'ता जंसि ण'मित्यादि, तत्र यस्मिन् देशे चन्द्रः प्रथमां पौर्णमासीं युनक्ति–परिसमापयति तस्मात्पूर्णमासीस्थानात्–प्रथमपौर्णमासीपरिसमाप्तिस्थानात् परतो मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा तद्गतान् द्वात्रिंशतं भागानुपादायात्र प्रदेशे चन्द्रो द्वितीयां पौर्णमासीं परिसमापयति, एवं तृतीयपौर्णमासीविषयमपि सूत्रं व्याख्येयम्, एवं द्वादशपौर्णमासीविषयमपि, नवरं 'दोण्णि अट्ठासीए भागसए'त्ति तृतीयस्याः पौर्णमास्याः परतो द्वादशी किल पौर्णमासी नवमी भवति, ततो नवभिर्द्वात्रिंशतो गुणने द्वे शते अष्टाशीत्यधिके भवतः २८८, सम्प्रत्यतिदेशमाह—'एवं खलु' इत्यादि, एवं–उक्तेन प्रकारेण खलु–निश्चितमेतेनानन्तरोदितेनोपायेन यां यां पौर्णमासीं यत्र यत्र देशे परिसमापयति तस्यास्तस्याः पौर्णमास्यास्ततोऽनन्तरां पौर्णमासीं तस्मात्पाश्चात्यपौर्णमासीपरिसमाप्तिस्थानात् मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा परतस्तद्गतान् द्वात्रिंशतं द्वात्रिंशतं भागानुपादाय तस्मिन् तस्मिन् देशे चन्द्रः परिसमापयति, स चैवं परिसमापयन् तावद्वेदितव्यो यावद् भूयोऽपि चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं तस्मिन् देशे परिसमापयति यस्मिन् देशे पाश्चात्ये युगे चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं परिसमापितवान्, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, गणितक्रमवशात्, तथाहि—पाश्चात्ययुगचरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिस्थानात् परतो मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतप्रविभक्तस्य सत्कानां द्वात्रिंशतो भागानामतिक्रमे तस्यास्तस्याः पौर्णमास्याः परिसमाप्तिः, द्वाषष्टिश्च सर्वसङ्ख्यया युगे पौर्णमास्यः, ततो द्वात्रिंशत् द्वाषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकोनविंशत्यधिकानि चतुरशीत्यधिकानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥१८१॥

१९८४, तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धाः षोडश सकलमण्डलपरावर्त्ताः, समस्तस्यापि च राशेर्निर्लेपीभवनादागतं यस्मिन् देशे पाश्चात्ययुगसम्बन्धिचरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिः, चरमद्वाषष्टितमपरिसमाप्तिदेशं पृच्छति–'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति–तत्र युगे एतेषामनन्तरोदितानां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति–परिसमापयति?, भगवानाह–'जंबुद्दीवस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, जम्बूद्वीपस्य णमिति वाक्यालङ्कारे द्वीपस्योपरि प्राचीनापाचीनायतया, इह प्राचीनग्रहणेनोत्तरपूर्वा गृह्यते, अपाचीनग्रहणेन दक्षिणापरा, ततोऽयमर्थः–पूर्वोत्तरदक्षिणापरायतया, एवमुदीचिदक्षिणायतया–पूर्वदक्षिणोत्तरापरायतया जीवया–प्रत्यञ्चया दवरिकया इत्यर्थः, मण्डलं चतुर्विंशेन–चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा–विभज्य भूयश्चतुर्भिर्विभज्यते, ततो दाक्षिणात्ये चतुर्भागमण्डले एकत्रिंशद्भागप्रमाणे सप्तविंशतिभागानुपादायाष्टाविंशतितमं च भागं विंशतिधा छित्त्वा तद्गतानष्टादश भागानुपादाय शेषैस्त्रिभिर्भागैश्चतुर्थस्य भागस्य द्वाभ्यां कलाभ्यां पाश्चात्यं चतुर्भागमण्डलमसम्प्राप्तः, अस्मिन् प्रदेशे चन्द्रो द्वाषष्टितमां चरमां पौर्णमासीं परिसमापयति॥ तदेवं चन्द्रस्य पौर्णमासीपरिसमाप्तिदेश उक्तः, सम्प्रति सूर्यस्य पौर्णमासीपरिसमाप्तिदेशं प्रतिपिपादयिषुस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह— [1]

ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएति?, ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएति तासे पुण्णिमासिणिट्ठाणातो मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता चउणवतिं भागे उवातिणावेत्ता एत्थ णं से सूरिए पढमं पुण्णिमासिणिं जोएइ, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छ-

१० प्राभृते २२ प्राभृतप्राभृते पूर्णिमामावास्याः सू ६३

॥१८१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राणं दोचं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएति?, ता जंसि णं देसंसि सूरे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएइ ताए पुण्णिमासिणीठाणाओ मंडलं चउवीसं सएण छेत्ता दो चउणवइभागे उवाइणावित्ता एत्थ णं से सूरे दोचं पुण्णमासिणिं जोएइ, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तचं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?, ता जंसि णं देसंसि सूरे दोचं पुण्णिमासिणिं जोएति ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउवीसं सतेणं छेत्ता चउणउतिभागे उवातिणावेत्ता एत्थ णं से सूरे तचं पुण्णिमासिणिं जोएति, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसं पुण्णिमासिणिं० जोएति, ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता अट्ठछत्तालं भागसते उवाइणावेत्ता, एत्थ णं से सूरे दुवालसमं पुण्णिमासिणिं जोएति, एवं खलु एतेणुवाएणं ताते २ पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेण छेत्ता चउणउतिं २ भागे उवातिणावेत्ता तंसि णं २ देसंसि तं तं पुण्णिमासिणिं सूरे जोएति, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएति?,ता जंबुदीवस्स णं पाईणपडिणीयताए उदीणदाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसेणं सएणं छेत्ता पुरच्छिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि सत्तावीसं भागे उवातिणावेत्ता अट्ठावीसतिभागं वीसधा छेत्ता अट्ठारसभागे उवादिणावेत्ता तिहिं भागेहि दोहि य कलाहिं दाहिणिल्लं चउभागमंडलं असंपत्ते एत्थ णं सूरे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमं जोएति (सूत्रं ६४) । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?, ता जंसि णं देसंसि चंदे चरिमबावट्ठिं अमावासं जोएति ताते अमावासट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१८२॥

छेत्ता दुबत्तीसं भागे उवादिणावेत्ता एत्थ णं से चंदे पढमं अमावासं जोएति, एवं जेणेव अभिलावेणं चंदस्स पुण्णिमासिणिओ तेणेव अभिलावेणं अमावासाओ भणितव्वाओ बीइया ततिया दुवालसमी, एवं खलु एतेणुवाएणं ताते २ अमावासाठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दुवीसं २ भागे उवादिणावेत्ता तंसि २ देसंसि तं तं अमावासं चंदेण जोएति, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?, ता जंसि णं देसंसि चंदे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएति, ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मंडलं चउवीसेणं सतेणं छत्तीसोलसभागे उक्कोवइत्ता एत्थ णं से चंदे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएति (सूत्रं ६५) ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं सूरे कंसि देसंसि जोएति ?, ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएति ता ते अमावासट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता चउणउतिभागे उवायिणावेत्ता एत्थ णं से सूरे पढमं अमावासं जोएति, एवं जेणेव अभिलावेणं सूरियस्स पुण्णिमासिणीओ तेणेव अमावासाओवि, तंजहा–बिदिया तइया दुवालसमी, एवं खलु एतेणुवाएणं ताते अमावासट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता चउणउतिं २ भागे उवायिणावेत्ता ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं अमावास जोएति ता ते पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता सत्तालीसं भागे उक्कोवइत्ता एत्थ णं से सूरे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएति (सूत्रं ६६) ॥

'ता एएसि णं'मित्यादि, ता इति–तत्र युगे एतेषामनन्तरोदितानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमां पौर्णमासीं सूर्यः कस्मिन्

१० प्राभृते २२ प्राभृतप्राभृते पूर्णिमामावास्याः सू ६४-६५-६६

॥१८२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देशे स्थितः सन् युनक्ति–परिसमापयति ?, भगवानाह—'ता जंसि ण'मित्यादि, तत्र यस्मिन् देशे स्थितः सन् सूर्यश्चरमां–पाश्चात्ययुगवर्त्तिनीं द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं युनक्ति—परिसमापयति तस्मात् पौर्णमासीस्थानात्–चरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिनिबन्धनात् स्थानात् परतो मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा–विभज्य तद्गतान् चतुर्नवतिं भागान् उपादाय सूर्यः प्रथमां पौर्णमासीं परिसमापयति, किमत्र कारणमिति चेत्, उच्यते, इह परिपूर्णेषु त्रिंशदहोरात्रेषु परिसमाप्तेषु सत्सु स एव सूर्यस्तस्मिन्नेव देशे वर्त्तमानः प्राप्यते, न कतिपयभागन्यूनेषु, पौर्णमासी च चन्द्रमासपर्यन्ते परिसमाप्तिमुपैति, चन्द्रमासस्य च परिमाणमेकोनत्रिंशदहोरात्रा एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागास्ततस्त्रिंशत्तमेऽहोरात्रे द्वात्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु गतेषु सूर्यश्चरमद्वाषष्टितमात् पौर्णमासीपरिसमाप्तिनिबन्धनात् स्थानात् चतुर्नवतौ चतुर्विंशत्यधिकशतभागेष्वतिक्रान्तेषु प्रथमां पौर्णमासीं परिसमापयन्नवाप्यते, किमुक्तं भवति ?–त्रिंशता भागैस्तमेव देशमप्राप्तः सन्नवाप्यते इति, त्रिंशतो द्वाषष्टिभागानामहोरात्रसत्कानामद्यापि स्थितत्वात्, भूयः प्रश्नयति—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति तत्र युगे एतेषां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये द्वितीयां पौर्णमासीं सूर्यः कस्मिन् देशे स्थितः सन् युनक्ति–परिसमापयति ?, भगवानाह—'ता जंसि ण'मित्यादि, ता इति तत्र यस्मिन् देशे स्थितः सन् सूर्यः प्रथमां पौर्णमासीं परिसमापयति तस्मात् पौर्णमासीस्थानात्–प्रथमात् पौर्णमासीपरिसमाप्तिनिबन्धनात् स्थानात् परतो मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा तद्गतान् चतुर्नवतिभागान् उपादाय अत्र देशे स्थितः सन् सूर्यो द्वितीयां पौर्णमासीं परिसमापयति एवं तृतीयपौर्णमासीविषयमपि सूत्रं कर्त्तव्यं, एवं द्वादशपौर्णमासीविषयमपि, नवरं 'अट्ठछत्ताले भाग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सए'त्ति तृतीयस्याः पौर्णमास्याः परतो द्वादशी किल पौर्णमासी नवमी, ततश्चतुर्नवतिर्नवभिर्गुण्यते, जातान्यष्टौ शतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि ८४६, सम्प्रति शेषपौर्णमासीविषयमतिदेशमाह–'एवं खलु'इत्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण खलु-निश्चितमेतेनानन्तरोदितेनोपायेन यां यां पौर्णमासीं यत्र यत्र देशे परिसमापयति तस्यास्तस्याः पौर्णमास्यास्तां तामनन्तरा-मनन्तरां पौर्णमासीं तस्मात् तस्मात् पाश्चात्यपाश्चात्यपौर्णमासीपरिसमाप्तिनिबन्धनात् स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा परतस्तद्गतान् चतुर्नवतिभागानुपादाय तस्मिन् तस्मिन् देशे स्थितः सन् सूर्यः परिसमापयति, स चैवं परिसमापयन् तावद् वेदितव्यो यावत् भूयोऽपि चरमां द्वाषष्टिं–द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं तस्मिन् देशे परिसमापयति यस्मिन् देशे पाश्चात्ययुगसम्बन्धिनीं चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापितवान्, एतच्चावसीयते गणितक्रमवशात्, तथाहि—पाश्चात्ययुगचरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिनिबन्धनात् स्थानात् परतो मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशत-प्रविभक्तस्य सत्कानां चतुर्नवतिचतुर्नवतिभागानामतिक्रमे तस्याः तस्याः पौर्णमास्याः परिसमाप्तिः, ततश्चतुर्नवतिर्द्वाषष्ट्या गुण्यते, जातान्यष्टापञ्चाशच्छतानि अष्टाविंशत्यधिकानि ५८२८, तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धाः सप्तचत्वारिंशत्सकलमण्डलपरावर्त्ताः, न च तैः प्रयोजनं, केवलं राशेर्निर्लेपीभवनादागतं यस्मिन् देशे स्थितः सन् पाश्चा-त्ययुगसम्बन्धिचरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमापकस्तस्मिन्नेव देशे विवक्षितस्यापि युगस्य चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयतीति, सम्प्रति चरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिनिबन्धनं देशं पृच्छति—'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता जंबुद्दीवस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य प्राचीनापाचीनायतया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४-६६]

दीप अनुक्रम [९५-९७]

अत्रापि प्राचीनग्रहणेनोत्तरपूर्वा दिक् गृह्यते अपाचीनग्रहणेन दक्षिणापरा, ततोऽयमर्थः–उत्तरपूर्वदक्षिणापरायतया एव-मुदीच्यदक्षिणायतया–उत्तरापरदक्षिणपूर्वायतया जीवया–दवरिकया मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा–विभज्य भूयश्चतुर्भिर्भक्त्वा 'पुरत्थिमिल्लंसि'त्ति पूर्वदिग्वर्त्तिनि चतुर्भागमण्डले एकत्रिंशद्भागप्रमाणे सप्तविंशतिभागानुपादायाष्टा-विंशतितमं च भागं विंशतिधा छित्त्वा तद्गतानष्टादश भागानुपादाय शेषैस्त्रिभिर्भागैश्चतुर्थस्य च भागस्य द्वाभ्यां कलाभ्यां विंशतितमाभ्यामित्यर्थः दाक्षिणात्यं च चतुर्भागमण्डलमसंप्राप्तः सन् तत्र प्रदेशे स सूर्यश्चरमां द्वाषष्टिं–द्वाषष्टितमां पौर्ण-मासीं परिसमापयति ॥ तदेवं सूर्याचन्द्रमसोः पौर्णमासीपरिसमाप्तिदेश उक्तः, सम्प्रति तयोरेवामावास्यापरिसमाप्तिदेशं प्रतिपिपादयिषुः प्रथमतः चन्द्रविषयं प्रश्नसूत्रमाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, तत्र युगे एतेषामनन्तरोदितानां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमाममावास्यां चन्द्रः कस्मिन् देशे स्थितः परिसमापयति ?, भगवानाह—'ता जंसि ण'मित्यादि, तत्र यस्मिन् देशे स्थितः सन् चन्द्रश्चरमां द्वाषष्टिं–द्वाषष्टितमाममावास्यां परिसमापयति, ततोऽमावास्यास्थानाद्–अमावास्याप-रिसमाप्तिस्थानात्परतो मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा तद्गतान् द्वात्रिंशतं भागान् उपादायात्र प्रदेशे स चन्द्रः प्रथमाममावास्यां परिसमापयति—'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण येनैवाभिलापेन चन्द्रस्य पौर्णमास्यो भणितास्ते-नैवाभिलापेनामावास्या अपि भणितव्याः, तद्यथा—द्वितीया तृतीया द्वादशी च, ताश्चैवम्—'ता एएसि णं पंचण्हं संव-च्छराणं दोच्चं अमावासं चंदे कंसि देसंमि जोएइ ?, ता जंसि णं देसंसि चंदे पढमं अमावासं जोएइ ताओ णं अमावा-सट्ठाणाओ मंडलं चउवीसेणं सएणं छेत्ता दुबत्तीसभागे उवायिणावेत्ता एत्थ णं से चंदे दोच्चं अमावासं जोएइ, ता एएसि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?, ता जंसि णं देसंसि चंदे दोच्चं अमावासं जोएइ ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउवीसएणं सएणं छित्ता दुबत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से चंदे तच्चं अमावासं जोएइ, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?, ता जंसि णं देसंसि चंदे तच्चं अमावासं जोएइ ताओ णं अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउवीसेणं सएणं छेत्ता दोन्नि अट्ठासीए भागसए उवाइणावेत्ता एत्थ णं चंदे दुवालसमं अमावासं जोएइ' सम्प्रति शेषासु अमावास्यास्वतिदेशमाह—'एवं खलु' इत्यादि, एतत् प्राग्वद्व्याख्येयं, सम्प्रति चरमद्वाषष्टितमामावास्यापरिसमाप्तिनिबन्धनं देशं पृच्छति—'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता जंसि ण'मित्यादि, तत्र यस्मिन् देशे स्थितः सन् चन्द्रो द्वाषष्टिं—द्वाषष्टितमां चरमां पौर्णमासीं युनक्ति—परिसमापयति तस्मात् पौर्णमासीस्थानात्—पौर्णमासीपरिसमाप्तिस्थानात् मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा—विभज्य पूर्वं षोडशभागानवष्वष्क्य चरमद्वाषष्टितमामावास्यायाः चरमद्वाषष्टितमपौर्णमास्याः पक्षेण—पञ्चात्पक्षेण च विवक्षितप्रदेशात् चन्द्रः षोडशभिश्चतुर्विंशत्यधिकशतभागैः परतः प्ररूप्यते, मासेन द्वात्रिंशता भागैः परतो वर्त्तमानस्य लभ्यमानत्वात्, ततः षोडश भागान् पूर्वमवष्वष्क्येत्युक्तं अत्र—अस्मिन् प्रदेशे स्थितः सन् चन्द्रश्चरमां द्वाषष्टितमाममावास्यां परिसमापयति। सम्प्रति सूर्यस्यामावास्यापरिसमाप्तिनिबन्धनं देशं पिपृच्छिषुराह—'ता एएसि ण'मित्यादि, एतत्प्राग्वद्व्याख्येयं, 'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण येनैवाभिलापेन सूर्यस्य पौर्णमास्य उक्तास्तेनैवाभिलापेनामावास्या अपि वक्तव्याः, तद्यथा—द्वितीया तृतीया द्वादशी च, ताश्चैवम्—'एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं सूरे कंसि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देसंसि जोएइ ?, ता जंसि णं देसंसि सूरे पढमं अमावासं जोएइ ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउवीसेणं सएणं छेत्ता चउणउई भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं से सूरे दोच्चं अमावासं जोएइ, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?, ता जंसि णं देसंसि दोच्चं अमावासं जोएइ ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउवीसेणं सएणं छेत्ता चउणउइभागे उवाइणावेत्ता तच्चं अमावासं जोएइ, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसं अमावासं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?, ता जंसि णं देसंसि सूरे तच्चं अमावासं जोएइ, ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउवीसेणं सएणं छेत्ता अट्ठछत्ताले भागसए उवाइणावेत्ता एत्थ णं से सूरे दुवालसमं अमावासं जोएइ' सम्प्रति शेषास्वमावास्यासु अतिदेशमाह— 'एवं खल्वि'त्यादि, एतत् प्राग्वद्व्याख्येयं, सम्प्रति चरमद्वापष्टितमामावास्यापरिसमाप्तिनिबन्धनं देशं पृच्छति–'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता जंसि ण'मित्यादि, यस्मिन् देशे स्थितः सन् सूर्यश्चरमां–द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयति तस्मात्पौर्णमासीस्थानात्–पौर्णमासीपरिसमाप्तिनिबन्धनात् देशात् मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा–विभज्यार्वाक् सप्तचत्वारिंशतं भागान् अवष्वष्क्य अत्र प्रदेशे स्थितः सन् सूर्यश्चरमां द्वाषष्टितमाममावास्यां युनक्ति–परिसमापयति । अथ कां पौर्णमासीं केन नक्षत्रेण युक्तश्चन्द्रः सूर्यो वा परिसमापयतीति प्रष्टुकाम आह—

ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता धणिट्ठाहिं, धणिट्ठाणं तिण्णि मुहुत्ता एकूणवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता पण्णट्ठि चुण्णियाभागा सेसा, तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुव्वाफग्गुणीणं अट्ठावीसे मुहुत्ता अट्ठ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता दुवत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं पोट्ठवत्ताहिं, उत्तराणं पोट्ठवताणं सत्तावीसं मुहुत्ता चोद्दस य बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बावट्ठिचुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं फग्गुणीहिं उत्तराफग्गुणीणं सत्त मुहुत्ता तेत्तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता एक्कवीसं चुण्णिया भागा सेसा, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णिमासिणीं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता अस्सिणीहिं अस्सिणीणं एक्कवीसं मुहुत्ता णव य एगट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेवट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केण णक्खत्तेणं जोएति ?, ता चित्ताहिं, चित्ताणं एक्को मुहुत्तो अट्ठावीसं च बावट्ठिं भागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तीसं चुण्णिया भागा सेसा, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णिमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं च आसाढाणं छदुवीसं मुहुत्ता छदुवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिं भागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता चउपण्णं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं च आसाढाणं छदुवीसं च बावट्ठिं भागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता चउपण्णं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुणव्वसुणा पुणव्वसुस्स सोलस मुहुत्ता अट्ठ य बावट्ठि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

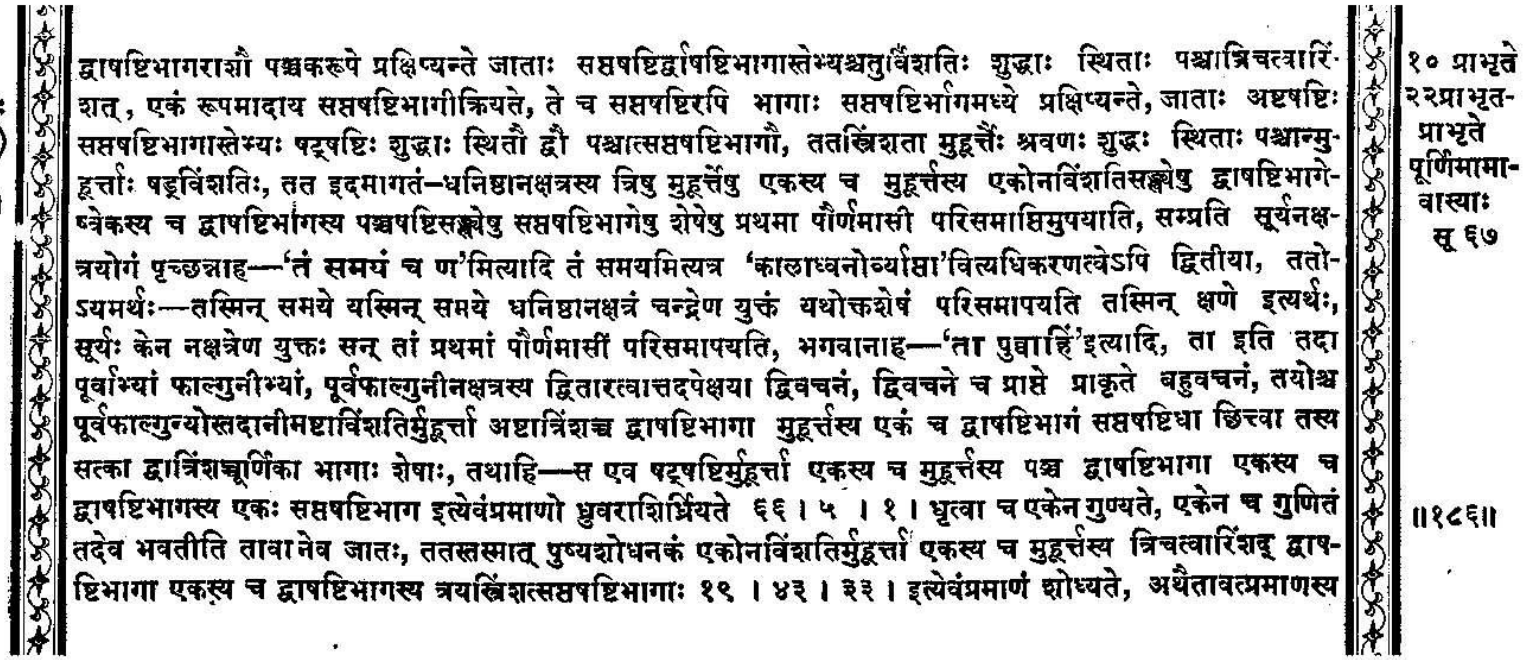
प्रत सूत्रांक [६७]

दीप अनुक्रम [९८]

भागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता वीसं चुण्णिया भागा सेसा, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, उत्तराहि आसाढाहिं उत्तराणं आसाढाणं चरमसमए, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुस्सेणं, पुस्सस्स एकूणवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठि भागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा (सूत्रं ६७) ॥

'ता एएसि ण'मित्यादि, 'ता' इति तत्र युगे एतेषामनन्तरोदितानां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमां पौर्णमासीं चन्द्र उपलक्षणमेतत् सूर्यो वा केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् युनक्ति–परिसमापयति ?, भगवानाह—'ता धणिट्ठाहिं'इत्यादि, ता इति–तत्र तेषां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमां पौर्णमासीं चन्द्रः परिसमापयति धनिष्ठाभिः, धनिष्ठानक्षत्रस्य पञ्चतारत्वात्तदपेक्षया बहुवचनं अन्यथा त्वेकवचनं द्रष्टव्यं, तासां च धनिष्ठानां त्रयो मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा पञ्चषष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—पौर्णमासीविषयस्य चन्द्रनक्षत्रयोगस्य परिज्ञानार्थं करणं प्रागेवोक्तं, तत्र षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकः सप्तषष्टिभागः ६६ । $\frac{5}{62}$ । $\frac{1}{67}$ । इत्येवंरूपो ध्रुवराशिर्ध्रियते, धृत्वा च प्रथमायां पौर्णमास्यां चन्द्रनक्षत्रयोगो ज्ञातुमिष्ट इत्येकेन गुण्यते, एकेन च गुणितं तदेव भवतीति तावानेव जातः, तस्मादभिजितो नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा इत्येवंप्रमाणं शोधनकं शोध्यते, तत्र षट्षष्टेर्नव मुहूर्त्ताः शुद्धाः, स्थिताः पश्चात् सप्तपञ्चाशत्, तेभ्य एको मुहूर्त्तो गृहीत्वा द्वाषष्टिभागीकृतस्ते च द्वाषष्टिरपि भागा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१८६॥

द्वाषष्टिभागराशौ पञ्चकरूपे प्रक्षिप्यन्ते जाताः सप्तषष्टिर्द्वाषष्टिभागास्तेभ्यश्चतुर्विंशतिः शुद्धाः स्थिताः पञ्चात्रिचत्वारिंशत्, एकं रूपमादाय सप्तषष्टिभागीक्रियते, ते च सप्तषष्टिरपि भागाः सप्तषष्टिभागमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाताः अष्टषष्टिः सप्तषष्टिभागास्तेभ्यः षट्षष्टिः शुद्धाः स्थितौ द्वौ पश्चात्सप्तषष्टिभागौ, ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणः शुद्धः स्थिताः पञ्चान्मुहूर्त्ताः षड्विंशतिः, तत इदमागतं–धनिष्ठानक्षत्रस्य त्रिषु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिसङ्ख्येषु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चषष्टिसङ्ख्येषु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु प्रथमा पौर्णमासी परिसमाप्तिमुपयाति, सम्प्रति सूर्यनक्षत्रयोगं पृच्छन्नाह—'तं समयं च ण'मित्यादि तं समयमित्यत्र 'कालाध्वनोर्व्याप्ता'वित्यधिकरणत्वेऽपि द्वितीया, ततोऽयमर्थः—तस्मिन् समये यस्मिन् समये धनिष्ठानक्षत्रं चन्द्रेण युक्तं यथोक्तशेषं परिसमापयति तस्मिन् क्षणे इत्यर्थः, सूर्यः केन नक्षत्रेण युक्तः सन् तां प्रथमां पौर्णमासीं परिसमापयति, भगवानाह—'ता पुव्वाहिं'इत्यादि, ता इति तदा पूर्वाभ्यां फाल्गुनीभ्यां, पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्य द्वितारत्वात्तदपेक्षया द्विवचनं, द्विवचने च प्राप्ते प्राकृते बहुवचनं, तयोश्च पूर्वफाल्गुन्योस्तदानीमष्टाविंशतिर्मुहूर्त्ता अष्टात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का द्वात्रिंशच्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—स एव षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभाग इत्येवंप्रमाणो ध्रुवराशिर्ध्रियते ६६ । ५ । १ । धृत्वा च एकेन गुण्यते, एकेन च गुणितं तदेव भवतीति तावानेव जातः, ततस्तस्मात् पुष्यशोधनकं एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः १९ । ४३ । ३३ । इत्येवंप्रमाणं शोध्यते, अथैतावत्प्रमाणस्य

१० प्राभृते २२प्राभृतप्राभृते पूर्णिमामावास्याः सू ६७

॥१८६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुष्यशोधनकस्य कथमुत्पत्तिरिति, उच्यते, इह पूर्वयुगपरिसमाप्तिवेलायां पुष्यस्य त्रयोविंशतिः सप्तषष्टिभागाः परिसमाप्ताश्चत्वारिंशदवतिष्ठन्ति, ततस्ते चतुश्चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागा मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि त्रयोदश शतानि विंशत्यधिकानि १३२०, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्ति सप्तचत्वारिंशत् ४७, ते (च) द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि एकोनत्रिंशच्छतानि चतुर्दशोत्तराणि २९१४, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धास्त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः $\frac{४३}{६२}$, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः $\frac{३३}{६७}$, एतद् ध्रुवराशेः शोध्यते, तद्यथा—षट्षष्टेर्मुहूर्त्तेभ्यः एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः शुद्धाः स्थिताः पश्चात्सप्तचत्वारिंशत्तेभ्य एको मुहूर्त्तो गृह्यते स्थिताः षट्चत्वारिंशद्, गृहीतस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाः कृत्वा द्वाषष्टिभागराशौ पञ्चकरूपे प्रक्षिप्यन्ते, जाता द्वाषष्टिभागाः सप्तषष्टिस्तेभ्यस्त्रिचत्वारिंशत् शोध्यन्ते स्थिताः पश्चाच्चतुर्विंशतिस्तेभ्यः एकरूपमुपादीयते जाता त्रयोविंशतिः गृहीतस्य च रूपस्य सप्तषष्टिभागाः क्रियन्ते कृत्वा च सप्तषष्टिभागैकमध्ये प्रक्षिप्यन्ते जाता अष्टषष्टिः सप्तषष्टिभागास्तेभ्यस्त्रयस्त्रिंशत् शुद्धाः स्थिताः पञ्चत्रिंशत्, ततः पञ्चदशमुहूर्त्तैरश्लेषा त्रिंशता च मुहूर्त्तैर्मघा शुद्धा, स्थितः पश्चादेको मुहूर्त्त एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः । १ । २३ । ३५ । तत आगतं—पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्याष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टात्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु सूर्यः प्रथमां पौर्णमासीं परिसमापयति, एते च सूर्यमुहूर्त्ताः, एवंभूतैश्च सूर्यमुहूर्त्तैस्त्रिंशता त्रयोदश रात्रिन्दिवानि एकस्य च रात्रिन्दिवस्य द्वादश व्यावहारिका मुहूर्त्ता भवन्ति, तत एतदनुसारेण गतै-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥१८७॥

कदिवसभागगणना शेषस्थितदिवसगणना च पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्य स्वयं कर्त्तव्या, एवमुत्तरसूत्रेष्वपि सूर्यनक्षत्रयोगे परिभावनीयं । 'ता एएसि ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता उत्तराहि'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, उत्तराभ्यां प्रोष्ठपदाभ्यामत्रापि द्विवचनं उत्तरप्रोष्ठपदानक्षत्रस्य द्वितारकत्वात्, बहुवचनं च सूत्रे प्राकृतत्वात्, तयोश्च प्रोष्ठपदयोः सप्तविंशतिर्मुहूर्त्ताश्चतुर्दश च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काश्चतुःषष्टिः चूर्णिकाभागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । द्वितीयपौर्णमासीचिन्तायां द्वाभ्यां गुण्यते, मुहूर्त्तानां जातं द्वात्रिंशतं शतं १३२, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दश द्वाषष्टिभागाः १० एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ २, ततः पूर्वरीत्या अभिजितो नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्काः षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः शोध्यन्ते जातं द्वात्रिंशं शतं मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशद्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः १२२ । ४७ । ३ ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणस्त्रिंशता धनिष्ठा पञ्चदशभिः शतभिषक् त्रिंशता पूर्वभद्रपदा शुद्धेति स्थिताः पश्चात् सप्तदश मुहूर्त्ताः शेषं तथैव १७ । ४७ । ३ । तत आगतं उत्तरभद्रपदानक्षत्रस्य सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्दशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुःषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु द्वितीया पौर्णमासी परिसमाप्तिमुपैति, सम्प्रत्यस्यामेव पौर्णमास्यां सूर्यनक्षत्रयोगं पृच्छति—'तं समयं च ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता उत्तराहि'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, उत्तराभ्यां फाल्गुनीभ्यां, तयोश्च उत्तरयोः फाल्गुन्योस्तदानीं द्वितीयपौर्णमासीपरिसमाप्तिवेलायां सप्त मुहूर्त्तास्त्रयस्त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागं च एकं सप्तष-

१० प्राभृते २२ प्राभृतप्राभृते पूर्णिमामावास्याः सू ६७

॥१८७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का एकत्रिंशच्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिर्ध्रियते ६६ । ५ । १ धृत्वा च द्वितीयस्याः पौर्णमास्याः सम्प्रति चिन्तेति द्वाभ्यां गुण्यते जातं द्वात्रिंशं शतं मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य दश द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ १३२ । १० । २ । तत एतस्मात् पुष्यशोधनकमेकोनविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः १९ । ४३ । ३३ । इत्येवंपरिमाणं पूर्ववरीत्या शोध्यते, स्थितं पश्चाद् द्वादशोत्तरं शतं मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः ११२ । २८ । ३६ । ततः पञ्चदशभिर्मुहूर्त्तैरश्लेषा त्रिंशता मघा त्रिंशता पूर्वफाल्गुनी शुद्धा, स्थिताः पश्चान्मुहूर्त्ताः सप्तत्रिंशच्छेषं तथैव, तत आगतं सूर्येण युक्तमुत्तरफाल्गुनीनक्षत्रं सप्तसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु द्वितीयां पौर्णमासीं परिसमापयति, अधुना तृतीयपौर्णमासीविषयं चन्द्रनक्षत्रयोगं पृच्छति—'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'अस्सिणीहिं'इत्यादि, अश्विनीनक्षत्रं त्रितारमिति तदपेक्षया बहुवचनं, तदानीं च—तृतीयपौर्णमासीपरिसमाप्तिवेलायां अश्विनीनक्षत्रस्य एकविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य नव द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कास्त्रिषष्टिश्चूर्णिकाभागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ तृतीयपौर्णमासी चिन्त्यमाना वर्त्तत इति त्रिभिर्गुण्यते, जातमष्टानवत्यधिकं शतं मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदश द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः १९८ । १५ । ३ तत 'उग्गुणट्ठं पोट्ठवया' इति वचनात् एकोनषष्ट्यधिकेन मुहू-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतेन चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीन्युत्तरभद्रपदापर्यन्तानि षट् नक्षत्राणि शुद्धानि, पश्चादवतिष्ठन्ते अष्टात्रिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तषष्टिभागाः ३८ । ५२ । ४, ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तै रेवतीनक्षत्रं शुद्धं तिष्ठत्यष्टौ मुहूर्त्तास्तत आगतं चन्द्रयुक्तमश्विनीनक्षत्रमेकविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य नवसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति । सम्प्रत्यस्यामेव तृतीयस्यां पौर्णमास्यां सूर्यनक्षत्रयोगं पृच्छति—'तं समयं च ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह—'ता चित्ताहिं'इत्यादि, चित्रया युक्तः सूर्यः परिसमापयति, तदानीं च—तृतीयपौर्णमासीपरिसमाप्तिवेलायां चित्रायामेको मुहूर्त्त एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टाविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का त्रिंशत् चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । सम्प्रति तृतीयपौर्णमासी चिन्तितेति त्रिभिर्गुण्यते, जातमष्टानवत्यधिकं शतं मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदश द्वाषष्टिभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः १९८ । १५ । ३ तत एतस्मात्पुष्यशोधनकं १९ । ४३ । ३३ । पूर्वोक्तप्रकारेण शोध्यते, स्थितं पश्चादष्टसप्तत्यधिकं मुहूर्त्तानां शतमेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः १७८ । ३३ । ३७ । ततः पञ्चाशदधिकेन मुहूर्त्तशतेनाश्लेषादीनि हस्तपर्यन्तानि पञ्च नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, शेषास्तिष्ठन्ति अष्टाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शेषं तथैव २८ । ३३ । ३७ । तत आगतं सूर्येण सह सम्प्रयुक्तं चित्रानक्षत्रमेकस्मिन् मुहूर्त्ते एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु तृतीयां पौर्ण-

॥१८८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

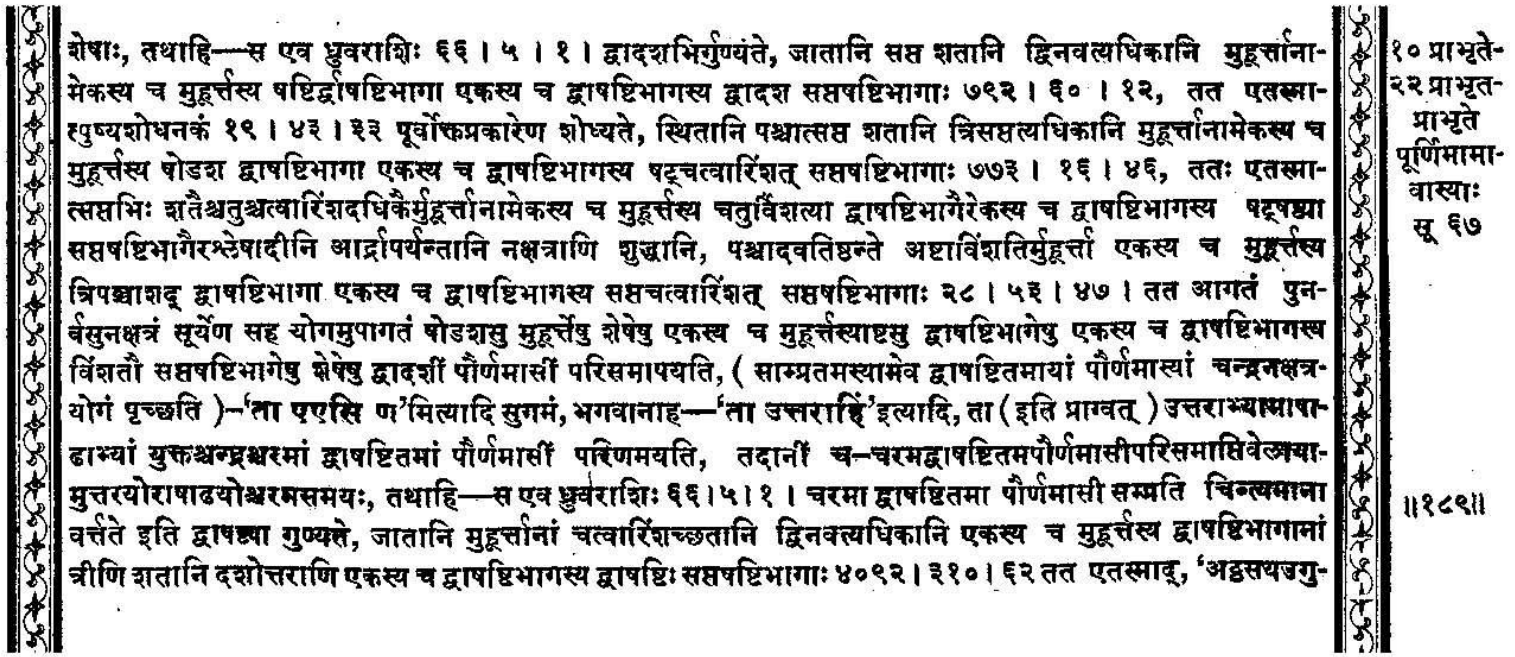
प्रत सूत्रांक [६७] दीप अनुक्रम [९८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

मासीं परिसमापयति । सम्प्रति द्वादश्यां पौर्णमास्यां चन्द्रनक्षत्रयोगं पृच्छति 'ता एएसि ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह—'ता उत्तराहिं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, उत्तराभ्यामाषाढाभ्यां द्वादशीं पौर्णमासीं चन्द्रः परिसमापयति, तदानीं च तयोरुत्तरयोराषाढयोः षड्विंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काश्चतुःपञ्चाशच्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । द्वादशी किल पौर्णमासी चिन्त्यते इति द्वादशभिर्गुण्यते, जातानि सप्त शतानि द्विनवत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादश सप्तषष्टिभागाः ७९२ । ६० । १२ । तत एतस्मात् 'मूले सत्तेव बायाला' इत्यादिवचनात्, सप्तभिश्च द्विचत्वारिंशदधिकैर्मुहूर्त्तानां शतैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि मूलपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः पूर्वाषाढा, शेषं तिष्ठन्ति अष्टादश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः १८ । ३५ । १३ तत आगतं चन्द्रेण युक्तमुत्तराषाढानक्षत्रं द्वादशीं पौर्णमासीं षड्विंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुःपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु परिसमापयति । सम्प्रत्यस्यामेव द्वादश्यां पौर्णमास्यां सूर्यनक्षत्रयोगं पृच्छति—'तं समयं च ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता पुणवसुणा'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, पुनर्वसुना युक्तः सूर्यः परिसमापयति, तदानीं च—द्वादशीपौर्णमासीपरिसमाप्तिवेलायां पुनर्वसुनक्षत्रस्य षोडश मुहूर्त्ता अष्टौ च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का विंशतिश्चूर्णिका भागाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६७]

दीप अनुक्रम [९८]



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१८९॥

शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । द्वादशभिर्गुण्यंते, जातानि सप्त शतानि द्विनवत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादश सप्तषष्टिभागाः ७९२ । ६० । १२, तत एतस्मात्पुष्यशोधनकं १९ । ४३ । ३३ पूर्वोक्तप्रकारेण शोध्यते, स्थितानि पश्चात्सप्त शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडश द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः ७७३ । १६ । ४६, ततः एतस्मात्सप्तभिः शतैश्चतुश्चत्वारिंशदधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरश्लेषादीनि आर्द्रापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, पश्चादवतिष्ठन्ते अष्टाविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः २८ । ५३ । ४७ । तत आगतं पुनर्वसुनक्षत्रं सूर्येण सह योगमुपागतं षोडशसु मुहूर्त्तेषु शेषेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु द्वादशीं पौर्णमासीं परिसमापयति, (साम्प्रतमस्यामेव द्वाषष्टितमायां पौर्णमास्यां चन्द्रनक्षत्रयोगं पृच्छति)–'ता पएसि ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह—'ता उत्तराहिं'इत्यादि, ता (इति प्राग्वत्) उत्तराभ्याम्आषाढाभ्यां युक्तश्चन्द्रश्चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिणमयति, तदानीं च–चरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिवेलायामुत्तरयोराषाढयोश्चरमसमयः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । चरमा द्वाषष्टितमा पौर्णमासी सम्प्रति चिन्त्यमाना वर्त्तते इति द्वाषष्ट्या गुण्यते, जातानि मुहूर्त्तानां चत्वारिंशच्छतानि द्विनवत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागानां त्रीणि शतानि दशोत्तराणि एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः ४०९२ । ३१० । ६२ तत एतस्माद्, 'अट्ठसयउगु-

१० प्राभृते-२२ प्राभृत-प्राभृते पूर्णिमामावास्याः सू ६७

॥१८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवीसा सोहणगं उत्तराण साढाणं । चउवीसं खलु भागा छावट्ठी चुण्णियाओ य'॥१॥इत्येवंप्रमाणमेकं सकलनक्षत्रपर्यायशोधनकं पञ्चभिर्गुणयित्वा शोध्यते, तच्च पूर्वोक्तेन प्रकारेण शोध्यमानं परिपूर्णं शुद्धिमासादयतीति न किञ्चित्पश्चादवतिष्ठते, तत आगतं उत्तराषाढानक्षत्रं चन्द्रेण सह युक्तं चरमसमये चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयति। सम्प्रत्यस्यामेव द्वाषष्टितमायां पौर्णमास्यां सूर्यनक्षत्रयोगं पृच्छति–'तं समयं च ण'मित्यादि सुगमम्, भगवानाह–'ता पुस्सेण'मित्यादि, पुष्येण युक्तः सूर्यश्चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयति, तदानीं च–द्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिवेलायामेकोनविंशतिर्मुहूर्तास्त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्तस्य द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कास्त्रयस्त्रिंशत् चूर्णिकाभागाः शेषाः, तथाहि— स एव ध्रुवराशिः६६।५।१। द्वाषष्ट्या गुण्यते,जातानि मुहूर्त्तानां चत्वारिंशच्छतानि द्विनवत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागानां त्रीणि शतानि दशोत्तराणि एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः ४०९२ । ३१० । ६२ । इह पुष्यस्य दशमुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादशसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु पाश्चात्ययुगं परिसमाप्तिमुपैति, तदनन्तरमन्यत् युगं प्रवर्तते, पुष्यस्यापि च तावन्मात्रादतिक्रान्तात् परतो यावद्भूयोऽपि तावन्मात्रस्य पुष्यस्यातिक्रम एतावत्प्रमाणः एकः परिपूर्णो नक्षत्रपर्यायः, तस्य च प्रमाणमष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ८१९ । २४ । ६६ । तत एतत्पञ्चभिर्गुणयित्वा प्रागुक्तात् ध्रुवराशेर्द्वाषष्टिगुणितात् शोध्यते, तच्च परिपूर्णं शुद्ध्यति, पश्चाच्च राशिर्निर्लेपो जायते, तत आगतं पुष्यस्य सूर्येण युक्तस्य दशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादशसु द्वाषष्टिभागे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६७]

दीप अनुक्रम [९८]

ष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेष्वतिक्रान्तेषु एकोनविंशतौ च मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु चरमा द्वाषष्टितमा पौर्णमासी परिसमाप्तिमगमदिति । तदेवं पौर्णमासीविषयश्चन्द्रनक्षत्रयोगः सूर्यनक्षत्रयोगश्चोक्तः, सम्प्रत्यमावास्याविषयं सूर्यनक्षत्रयोगं चन्द्रनक्षत्रयोगं च प्रतिपिपादयिषुः प्रथमतः प्रथममावास्याविषयं प्रश्नसूत्रमाह—

एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति?, ता अस्सेसाहिं, अस्सेसाणं एक्के मुहुत्ते चत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बावट्ठिं चुण्णिया सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति?, ता अस्सेसाहिं चेव, अस्सेसाणं एक्को मुहुत्तो चत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं सत्तट्ठिधा छेत्ता बावट्ठि चुण्णिया भागा सेसा, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति?, ता उत्तराहिं फग्गुणीहिं, उत्तराणं फग्गुणीणं चत्तालीसं मुहुत्ता पणतीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता पण्णट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति?, ता उत्तराहिं चेव फग्गुणीहिं, उत्तराणं फग्गुणीणं जहेव चंदस्स । ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं चंदे केणं नक्खत्तेणं जोएति?, ता हत्थेणं, हत्थस्स चत्तारि मुहुत्ता तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बावट्ठि चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति?, ता हत्थेणं चेव, हत्थस्स जहा चंदस्स, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं अमावासं चंदे केणं णक्ख-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेणं जोएति ?, अद्दाहिं, अद्दाणं चत्तारि मुहुत्ता दस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिं च सत्तट्ठिधा छेत्ता चउपण्णं चुण्णिया भागा सेसा । तं समयं च णं सूरे केणं नक्खत्तेणं जोएति ?, ता अद्दाहिं चेव, अद्दाणं जहा चंदस्स । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठिं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स बावीसं मुहुत्ता बायालीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स सेसा । तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुणव्वसुणा चेव, पुणव्वसुस्स णं जहा चंदस्स (सूत्रं ६८) ॥

'ता एएसि ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह—'ता असिलेसाहि'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, अश्लेषाभिः सह युक्तश्चन्द्रः प्रथमाममावास्यां परिसमापयति, अश्लेषानक्षत्रस्य षट्तारत्वात्तदपेक्षया बहुवचनं, तदानीं च-प्रथमामावास्यापरिसमाप्तिवेलायामश्लेषानक्षत्रस्य एको मुहूर्त्तश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा षट्षष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । प्रथमामावास्या किल सम्प्रति चिन्त्यमाना वर्त्तते इत्येकेन गुण्यते, एकेन च गुणितं तदेव भवतीति तावानेव जातः, तत एतस्मात् "बावीसं च मुहुत्ता छायालीसं बिसट्ठिभागा य । एयं पुणव्वसुस्स य सोहेयव्वं हवइ पुण्णं ॥ १ ॥" इति वचनात् द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागा इत्येवंप्रमाणं पुनर्वसुशोधनकं शोध्यते, तत्र षट्षष्टेर्मुहूर्त्तेभ्यो द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शुद्धाः, स्थिताः पश्चाच्चतुश्चत्वारिंशत् ४४, तेभ्य एकमुहूर्त्तमपेक्ष्य तस्य द्वाषष्टिभागाः कृताः, ते द्वाषष्टिभागराशिमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाताः सप्तषष्टिः, तेभ्यः षट्चत्वारिंशत् शुद्धाः, शेषास्तिष्ठन्ति एकविंशतिः, त्रिचत्वारिंशतो मुहूर्त्तेभ्यस्त्रिंशता पुष्यः शुद्धः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थिताः पञ्चात्रयोदश मुहूर्त्ता, अश्लेषानक्षत्रं चार्द्धक्षेत्रमिति पञ्चदशमुहूर्त्तप्रमाणं, तत इदमागतं–अश्लेषानक्षत्रस्य एकस्मिन् मुहूर्त्ते चत्वारिंशति मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधा छिन्नस्य षट्षष्टिभागेषु शेषेषु प्रथमामावास्या समाप्तिमुपगच्छति । सम्प्रत्यस्यामेव प्रथमायाममावास्यायां सूर्यनक्षत्रं पृच्छति—'तं समयं च ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता अस्सिलेसाहिं चेवे'त्यादि, इह य एवास्याममावास्यायां चन्द्रनक्षत्रयोगे ध्रुवराशिर्यदेव शोधनकं स एव सूर्यनक्षत्रयोगविषयेऽपि ध्रुवराशिस्तदेव च शोधनकमिति तदेव सूर्यनक्षत्रयोगेऽपि नक्षत्रं तावदेव च तस्य नक्षत्रस्य शेषमिति, तदेवाह—अश्लेषाभिर्युक्तः सूर्यः प्रथमाममावास्यां परिसमापयति, तस्यां च परिसमाप्तिवेलायामश्लेषाणामेको मुहूर्त्त एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः शेषाः । द्वितीयामावास्याविषयं प्रश्नसूत्रमाह—'ता एएसि ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह—'ता उत्तराहिं'इत्यादि, उत्तराभ्यां फाल्गुनीभ्यां युक्तः चन्द्रो द्वितीयाममावास्यां परिसमापयति, तदानीं च–अमावास्यापरिसमाप्तिवेलायामुत्तरायाः फाल्गुन्याश्चत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः पञ्चत्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काः पञ्चषष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । द्वाभ्यां गुण्यते, जातं द्वात्रिंशदधिकं मुहूर्त्तानां शतं, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागा दश एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधा छिन्नस्य द्वौ चूर्णिकाभागौ । १३२ । १० । २ । तत्र प्रथमं पुनर्वसुशोधनकं शोध्यते, द्वात्रिंशदधिकमुहूर्त्तशतात् द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शुद्धाः स्थितं पश्चादशोत्तरं शतं, तेभ्योऽप्येको मुहूर्त्तो गृहीत्वा द्वाषष्टिभागीक्रियते, कृत्वा च ते द्वाषष्टिभागा द्वाषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जाता द्विसप्तति-

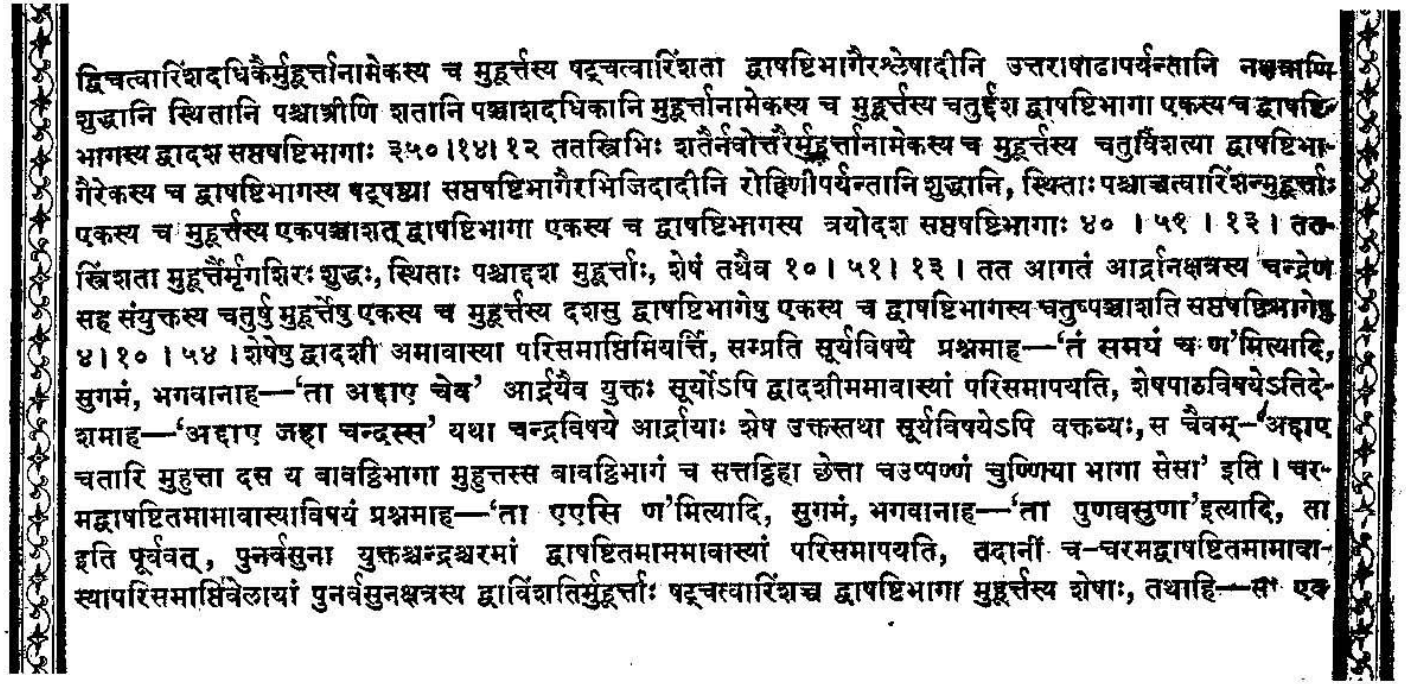
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वाषष्टिभागास्तेभ्यः षट्चत्वारिंशत् शुद्धाः स्थिताः पश्चात् षड्विंशतिः, नवोत्तराश्च मुहूर्त्तशतात् त्रिंशता पुष्यः शुद्धः, स्थिताः पश्चादेकोनाशीतिः, ततोऽपि पञ्चदशभिर्मुहूर्त्तैरश्लेषा शुद्धा, स्थिता पश्चाच्चतुःषष्टिः, ततोऽपि त्रिंशता मघाः शुद्धाः, स्थिता चतुस्त्रिंशत्, ततोऽपि त्रिंशता पूर्वफाल्गुनी शुद्धा, स्थिताः पश्चात् चत्वारः, उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रं द्व्यर्द्धक्षेत्रमिति पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणं, तत इदमागतं–उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रस्य चन्द्रयोगमुपागतस्य चत्वारिंशति मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधा छिन्नस्य पञ्चषष्टौ चूर्णिकाभागेषु शेषेषु द्वितीयामावास्या समाप्तिं याति । सम्प्रति अस्यामेव द्वितीयस्याममावास्यायां सूर्यनक्षत्रं पृच्छति–'तं समयं च ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता उत्तराहिं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, उत्तराभ्यामेव फाल्गुनीभ्यां युक्तः सूर्यो द्वितीयाममावास्यां परिसमापयति, तदानीं च–द्वितीयामावास्यापरिसमाप्तिवेलायामुत्तरायाः फाल्गुन्याः 'तहेव जहा चंदस्स'त्ति यथा चन्द्रस्य विषये उक्तं तथैवात्रापि विषये वक्तव्यं, तद्यथा–'चत्तालीसं मुहुत्ता पणतीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता पण्णट्ठि चुण्णिआ भागा सेसा' इति, एतच्चोभयोरपि चन्द्रसूर्ययोर्नक्षत्रयोःपरिज्ञानहेतोः करणस्य समानत्वादवसेयम्। तृतीयामावास्याविषयं प्रश्नसूत्रमाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता हत्थेण'इत्यादि, हस्तेन युक्तश्चन्द्रस्तृतीयामावास्यां परिसमापयति, तदानीं हस्तस्य चत्वारो मुहूर्त्ताश्चिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागं चैकं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काश्चतुःषष्टिश्चूर्णिकाभागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । तृतीयस्या अमावास्यायाः सम्प्रति चिन्तेति त्रिभिर्गुण्यते, जातमष्टानवत्यधिकं शतं मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदश द्वाषष्टि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः १९८ । १५ । ३ तत एतस्माद् द्विसप्तत्यधिकेन मुहूर्त्तशतेन षट्चत्वारिंशता च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागैरश्लेषादीनि उत्तराफाल्गुनीपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, पञ्चादवतिष्ठन्ते पञ्चविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकत्रिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः २५ । ३१ । ३ । तत आगतं हस्तनक्षत्रस्य चन्द्रेण सह योगमुपागतस्य चतुर्षु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुःषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु तृतीयाममावास्यां परिसमापयति । अत्रैव सूर्यविषयं प्रश्नसूत्रमाह—'तं समयं च ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता हत्थेणं चेव'त्ति हस्तेनैव नक्षत्रेण युक्तः सूर्योऽप्यमावास्यां तृतीयां परिसमापयति, एतच्चोभयोरपि करणस्य समानार्थत्वादवसेयं, एवमुत्तरसूत्रयोरपि द्रष्टव्यं, शेषपाठविषयेऽतिदेशमाह—'हत्थस्स जं चेव चंदस्स' यथा चन्द्रस्य विषये हस्तस्य शेष उक्तः तथा सूर्यस्यापि विषये वक्तव्यः, स चैवम्—'हत्थस्स चत्तारि मुहुत्ता तीसं चेव बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता बावट्ठी चुण्णिया भागा सेसा' इति, सम्प्रति द्वादशामावास्याविषयं प्रश्नसूत्रमाह—'ता एएसि ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह—'ता अद्दाहिं'इत्यादि, आर्द्रया युक्तश्चन्द्रो द्वादशीममावास्यां परिसमापयति, तदानीं चार्द्रायाश्चत्वारो मुहूर्त्ता दश मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागा द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा चतुःपञ्चाशच्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः—६६ । ५ । १ । द्वादश्यमावास्या चिन्त्यमाना वर्त्तते इति द्वादशभिर्गुण्यते, जातानि सप्त शतानि द्विनवत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादश सप्तषष्टिभागाः ७९२ । ६० । १२ । एतस्माच्चतुर्भिः शतैः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



द्विचत्वारिंशदधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैरश्लेषादीनि उत्तराषाढापर्यन्तानि नक्षत्राण्यि-
शुद्धानि स्थितानि पञ्चात्रीणि शतानि पञ्चाशदधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्हीश द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टि-
भागस्य द्वादश सप्तषष्टिभागाः ३५०।१४। १२ ततस्त्रिभिः शतैर्नवोत्तरैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभा-
गैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि रोहिणीपर्यन्तानि शुद्धानि, स्थिताः पञ्चाचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः
एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकपञ्चाशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः ४० । ५९ । १३ । तत-
स्त्रिंशता मुहूर्त्तैर्मृगशिरः शुद्धः, स्थिताः पञ्चादश मुहूर्त्ताः, शेषं तथैव १० । ५१ । १३ । तत आगतं आर्द्रानक्षत्रस्य चन्द्रेण
सह संयुक्तस्य चतुर्षु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु
४।१० । ५४ । शेषेषु द्वादशी अमावास्या परिसमाप्तिमियर्त्ति, सम्प्रति सूर्यविषये प्रश्नमाह—'तं समयं च ण'मित्यादि,
सुगमं, भगवानाह—'ता अद्दाए चेव' आर्द्रयैव युक्तः सूर्योऽपि द्वादशीममावास्यां परिसमापयति, शेषपाठविषयेऽतिदे-
शमाह—'अद्दाए जहा चन्दस्स' यथा चन्द्रविषये आर्द्रायाः शेष उक्तस्तथा सूर्यविषयेऽपि वक्तव्यः, स चैवम्—'अद्दाए
चतारि मुहुत्ता दस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता चउप्पण्णं चुण्णिया भागा सेसा' इति । चर-
मद्वाषष्टितमामावास्याविषयं प्रश्नमाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता पुणवसुणा'इत्यादि, ता
इति पूर्ववत्, पुनर्वसुना युक्तश्चन्द्रश्चरमां द्वाषष्टितमाममावास्यां परिसमापयति, तदानीं च—चरमद्वाषष्टितमामावा-
स्यापरिसमाप्तिवेलायां पुनर्वसुनक्षत्रस्य द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः षट्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य शेषाः, तथाहि—स एव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

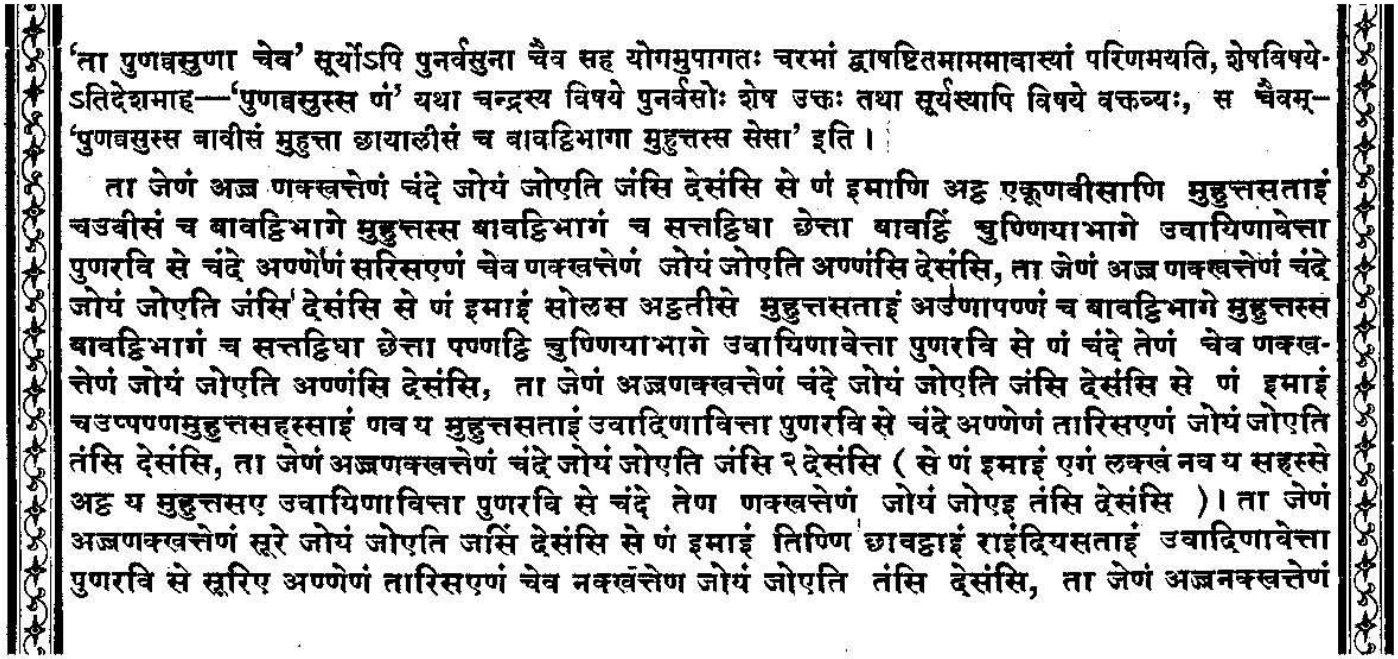
॥१९३॥

ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । द्वाषष्ट्या गुण्यते, जातानि मुहूर्त्तानां चत्वारिंशच्छतानि द्विनवत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागानां त्रीणि शतानि दशोत्तराणि एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः ४०९२ । ३१० । ६२ । तत एतस्मात् चतुर्भिः शतैर्द्विचत्वारिंशदधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैः प्रथमं शोधनकं शुद्धं, जातानि षट्त्रिंशच्छतानि पञ्चाशदधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वे शते चतुःषष्ट्यधिके द्वाषष्टिभागानामेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः ३६५० । २६४ । ६२ । ततोऽभिजिदाद्युत्तराषाढापर्यन्तसकलनक्षत्रपर्यायविषयं शोधनकमष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ८१९ । २४ । ६६ । इत्येवंप्रमाणं चतुर्भिर्गुणयित्वा शोध्यते, स्थितानि पञ्चात्रीणि शतानि चतुःसप्तत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुःषष्ट्यधिकं शतं द्वाषष्टिभागानामेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ३७४ । १६४ । ६६ । ततो भूयस्त्रिभिः शतैर्मुहूर्त्तानां नवोत्तरैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य द्वाषष्टिभागस्य च षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैः ३०९ । २४ । ६६ । अभिजिदादीनि रोहिणीपर्यन्तानि शुद्धानि, स्थिताः पश्चात् सप्तषष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडश द्वाषष्टिभागाः ६७ । १६ । ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैर्मृगशिरः पञ्चदशभिरार्द्रा शुद्धा, स्थिताः शेषा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडश द्वाषष्टिभागाः २२, तत आगतं चंद्रेण सह संयुक्तं पुनर्वसुनक्षत्रं द्वाविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु शेषेषु चरमां द्वाषष्टितमाममावास्यां परिसमापयति, सूर्यविषयं प्रश्नमाह—'तं समयं च ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—

१० प्राभृते २२ प्राभृतप्राभृते अमावास्यानक्षत्राणि सू ६८

॥१९३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



'ता पुणव्वसुणा चेव' सूर्योऽपि पुनर्वसुना चैव सह योगमुपागतः चरमां द्वाषष्टितमाममावास्यां परिणमयति, शेषविषयेऽतिदेशमाह—'पुणव्वसुस्स णं' यथा चन्द्रस्य विषये पुनर्वसोः शेष उक्तः तथा सूर्यस्यापि विषये वक्तव्यः, स चैवम्—'पुणव्वसुस्स बावीसं मुहुत्ता छायालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स सेसा' इति ।

ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएति जंसि देसंसि से णं इमाणि अट्ठ एकूणवीसाणि मुहुत्तसताइं चउवीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बावट्ठिं चुण्णियाभागे उवायिणावेत्ता पुणरवि से चंदे अण्णेणं सरिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति अण्णंसि देसंसि, ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएति जंसि देसंसि से णं इमाइं सोलस अट्ठतीसे मुहुत्तसताइं अउणापण्णं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता पण्णट्ठि चुण्णियाभागे उवायिणावेत्ता पुणरवि से णं चंदे तेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति अण्णंसि देसंसि, ता जेणं अज्जणक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएति जंसि देसंसि से णं इमाइं चउप्पण्णमुहुत्तसहस्साइं णव य मुहुत्तसताइं उवादिणावित्ता पुणरवि से चंदे अण्णेणं तारिसएणं जोयं जोएति तंसि देसंसि, ता जेणं अज्जणक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएति जंसि २ देसंसि (से णं इमाइं एगं लक्खं नव य सहस्से अट्ठ य मुहुत्तसए उवायिणावित्ता पुणरवि से चंदे तेण णक्खत्तेणं जोयं जोएइ तंसि देसंसि)। ता जेणं अज्जणक्खत्तेणं सूरे जोयं जोएति जंसिं देसंसि से णं इमाइं तिण्णि छावट्ठाइं राइंदियसताइं उवादिणावेत्ता पुणरवि से सूरिए अण्णेणं तारिसएणं चेव नक्खत्तेण जोयं जोएति तंसि देसंसि, ता जेणं अज्जनक्खत्तेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूरे जोयं जोएति तंसि देसंसि से णं इमाइं सत्तदुवीसं राइंदियसताइं उवाइणावेत्ता पुणरवि से सूरे तेणं चेव नक्खत्तेणं जोयं जोएति तंसि देसंसि, ता जेणं अज्जणक्खत्तेणं सूरे जोयं जोएति जंसि देसंसि से णं इमाइं अट्ठारस वीसाइं राइंदियसताइं उवादिणावेत्ता पुणरवि सूरे अण्णेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति तंसि देसंसि, ता जेणं अज्जणक्खत्तेणं सूरे जोयं जोएति जंसि देसंसि तेण इमाइं छत्तीसं सट्ठाइं राइंदियसयाइं उवाइणाविता पुणरवि से सूरे तेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति तंसि देसंसि (सूत्रं ६९) ॥

सम्प्रति यन्नक्षत्रं तादृशनामकं तदेव वा तस्मिन्नेव देशेऽन्यस्मिन् वा यावता कालेन भूयश्चन्द्रेण सह योगमुपागच्छति तावन्तं कालं निर्दिदिक्षुराह—'ता जेणं अज्ज नक्खत्तेणं' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, येन नक्षत्रेण सह चन्द्रोऽद्य—विवक्षिते दिने योगं युनक्ति—करोति यस्मिन् देशे स चन्द्रो णमिति वाक्यालङ्कारे इमानि—वक्ष्यमाणसङ्ख्याकानि तान्येवाह—अष्टौ मुहूर्त्तशतानि एकोनविंशानि—एकोनविंशत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिं द्वाषष्टिभागान् एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिं सप्तषष्टिभागानुपादाय—गृहीत्वा अतिक्रम्येत्यर्थः पुनरपि स चन्द्रोऽन्येन द्वितीयेन सदृशनाम्ना नक्षत्रेण योगं युनक्ति अन्यस्मिन् देशे, इयमत्र भावना—इह चन्द्रसूर्यनक्षत्राणां मध्ये नक्षत्राणि सर्वशीघ्राणि तेभ्यो मन्दगतयः सूर्यास्तेभ्योऽपि मन्दगतयश्चन्द्रमसः, एतच्चाग्रे स्वयमेव प्रपञ्चयिष्यति, षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि प्रतिनियतापान्तरालदेशानि चक्रवालमण्डलतया व्यवस्थितानि सदैव एकरूपतया परिभ्रमन्ति, तत्र किल युगस्यादावभिजिता नक्षत्रेण सह योगमधिगच्छति चन्द्रमाः, स च योगमुपागतः सन् शनैः शनैः पश्चादवष्वष्कते तस्य नक्षत्रेभ्योऽतीव मन्द-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गतित्वात्, ततो नवानां मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतेर्द्वाषष्टिभागानामेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टेः सप्तषष्टिभागानामतिक्रमे पुरतः श्रवणेन सह योगमायाति, ततस्ततोऽपि शनैः शनैः पश्चादवष्वष्कमानस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणेन सह योगं समाप्य पुरतो धनिष्ठया सह योगमुपगच्छति, एवं स्वं स्वं कालमाचक्ष्य सर्वैरपि नक्षत्रैः सह योगस्तावद् वक्तव्यो यावदुत्तराषाढानक्षत्रयोगपर्यन्तः, एतावता च कालेनाष्टौ मुहूर्त्तशतानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा अभवन्, तथाहि—षड् नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानीति षट् पञ्चचत्वारिंशता गुण्यंते, जाते द्वे शते सप्तत्यधिके २७०, षट् च नक्षत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तानीति भूयः षण्णां पञ्चदशभिर्गुणने जाता नवतिः ९०, पञ्चदश त्रिंशन्मुहूर्त्तानीति पञ्चदश त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चत्वारि शतानि पञ्चाशदधिकानि ४५०, अभिजितो नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा इति भवति सर्वेषामेकत्र मीलने यथोक्ता मुहूर्त्तसङ्ख्या, एष एतावान् नक्षत्रमासः, ततस्तदनन्तरं यदभिजिन्नक्षत्रं अतिक्रान्तं तदपरेण द्वितीयेनाभिजिता नक्षत्रेण सह नव मुहूर्त्तादिकालं योगमुपागच्छति, ततः परमपरेण द्वितीयाष्टाविंशतिसम्बन्धिना श्रवणेन सह योगमश्नुते, एवं पूर्ववत् तावद्वाच्यं यावदुत्तराषाढा, तदनन्तरं भूयः प्रथमेनैवाभिजिता नक्षत्रेण सह योगं याति, ततः प्रागुक्तक्रमेण श्रवणादिभिः, एवं सकलकालमपि, ततो विवक्षिते दिने यस्मिन् देशे येन नक्षत्रेण सह योगममन्चन्द्रमाः स यथोक्तमुहूर्त्तसङ्घातिक्रमे भूयः तादृशेनैवापरेण नक्षत्रेण सह अन्यस्मिन् देशे योगमादत्ते न तेनैव नापि तस्मिन् देशे इति, तथा 'ता जेण'मित्यादि, अद्य–विवक्षिते दिने येन नक्षत्रेण सह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योगं युनक्ति यस्मिन् यस्मिन् देशे चन्द्रमाः स इमानि वक्ष्यमाणसङ्ख्याकानि, तान्येवाह—षोडश मुहूर्त्तशतानि अष्टात्रिंशदधिकानि एकोनपञ्चाशतं द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कान् पञ्चषष्टिं चूर्णिकाभागानुपादाय–अतिक्रम्य पुनरपि स चन्द्रस्तेनैव नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति, परमन्यस्मिन् देशे, न तु तस्मिन्नेव, कुत इति चेत्, उच्यते, इह भूयस्तस्मिन्नेव देशे तेनैव नक्षत्रेण सह योगो युगद्वयकालातिक्रमे यथा(र्थः)केवलवेदसा ज्योतिश्चक्रगतेरुपलब्धः, जम्बूद्वीपे च षट्पञ्चाशदेव नक्षत्राणि, ततो विवक्षितनक्षत्रयोगे सति तत आरभ्य षट्पञ्चाशन्नक्षत्रातिक्रमे तेन नक्षत्रेण सह योगमादत्ते, षट्पञ्चाशन्नक्षत्रातिक्रमश्च प्रागुक्ताष्टाविंशतिनक्षत्रमुहूर्त्तसङ्ख्याद्विगुणसङ्ख्यया, तत उक्तं—'सोलस अट्ठतीस मुहुत्तसया' इत्यादि । तदेवं तादृशेन तेन वा नक्षत्रेण सह अन्यस्मिन् देशे यावता कालेन भूयोऽपि योग उपजायते तावान् कालविशेष उक्तः, सम्प्रति तस्मिन्नेव देशे तादृशेन तेन वा नक्षत्रेण सह भूयोऽपि योगो यावता कालेन भवति तावन्तं कालविशेषमाह—'ता जेणं अज्ज नक्खत्तेणं' इत्यादि, अद्य–विवक्षिते दिने येन नक्षत्रेण सह योगं चन्द्रो युनक्ति यस्मिन् देशे सः–चन्द्रमा इमानि वक्ष्यमाणसङ्ख्याकानि तान्येवाह–चतुष्पञ्चाशन्मुहूर्त्तसहस्राणि नव मुहूर्त्तशतान्युपादाय–अतिक्रम्य पुनरपि स चन्द्रोऽन्येन तादृशेनैव नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति तस्मिन्नेव देशे, इयमत्र भावना–विवक्षिते युगे विवक्षितानामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये येन नक्षत्रेण सह यस्मिन् देशे यदा चन्द्रमसो योगो जातो भूयस्तस्मिन्नेव देशे तदैव तेनैव नक्षत्रेण सह योगो विवक्षितयुगादारभ्य तृतीये युगे, न तु द्वितीये; कुत इति चेत्, उच्यते, इह युगादित आरभ्य प्रथमे नक्षत्रमासे यान्येकान्यष्टाविंशतिं नक्षत्राणि समतिक्रामंति द्वितीयेन नक्षत्रमासेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेभ्योऽपराणि द्वितीयानि ततो भूयस्तृतीयेन नक्षत्रमासेन तान्येव प्रथमान्यष्टाविंशतिं नक्षत्राणि चतुर्थेन भूयस्तान्येव द्वितीयानि एवं सकलकालं, युगे च नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिः, सा च सप्तषष्टिसङ्ख्या विषमेति विवक्षितयुगपरिसमाप्तावन्यस्य युगस्य प्रारम्भे यानि विवक्षितयुगस्यादौ भुक्तानि नक्षत्राणि तेभ्योऽपराण्येव द्वितीयानि भोगमायान्ति, न तु तान्येव, युगद्वये च चतुस्त्रिंशन्नक्षत्रमासशतं भवति, सा च चतुस्त्रिंशन्नक्षत्रमासशतसङ्ख्या समेति द्वितीययुगपरिसमाप्तौ षट्पञ्चाशदपि नक्षत्राणि समाप्तिमुपयान्ति, ततो विवक्षितयुगादारभ्य तृतीये युगे तेनैव नक्षत्रेण तस्मिन्नेव देशे तदा चन्द्रमसो योगः, युगे चाहोरात्राणामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि एकैकस्मिंश्चाहोरात्रे मुहूर्त्तास्त्रिंशत्ततोऽष्टादशानां शतानां त्रिंशदधिकानां त्रिंशता गुणने भवति यथोक्ता मुहूर्त्तसङ्ख्या, यथोक्तमुहूर्त्तसङ्ख्यातिक्रमे च तादृशेनैव नक्षत्रेण सह योगः चन्द्रमसस्तस्मिन्नेव देशे न तु तेन नक्षत्रेणान्यस्मिन् वा देशे इति, 'ता जेण'मित्यादि, इदं सूत्रमक्षरार्थमधिकृत्य सुगमं, भावना तु प्रागेव कृता, नवरं युगद्वयकालः षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि अहोरात्राणामेकैकस्मिंश्चाहोरात्रे त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति षट्त्रिंशच्छतानां षष्ट्यधिकानां त्रिंशता गुणने यथोक्ता मुहूर्त्तसङ्ख्या भवति । तदेवं तादृशेन तेन वा नक्षत्रेण सहान्यस्मिन् तस्मिन् [अन्यस्मिन्] वा देशे चन्द्रमसो योगकालप्रमाणमुक्तम्, सम्प्रति सूर्यविषये तदाह–'ता जेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् अद्य–विवक्षिते दिने येन नक्षत्रेण सह सूर्यो यस्मिन् देशे योगं युनक्ति स इमानि त्रीणि षट्षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवशतानि उपादाय–अतिक्रम्य पुनरपि स सूर्यस्तस्मिन्नेव देशे तादृशेनैवान्येन नक्षत्रेण योगं युनक्ति न तु तेनैव, कुत इति चेत्, उच्यते, इह चन्द्रो नक्षत्रमासेनैकेनाष्टाविंशतिं नक्षत्राणि भुङ्क्ते, सूर्यस्तु त्रिभिरहोरात्रशतैः षट्षष्ट्यधिकैः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रीणि चाहोरात्रशतानि षट्षष्ट्यधिकानि एकः सूर्यसंवत्सरः, ततोऽन्यैस्त्रिभिरहोरात्रशतैः षट्षष्ट्यधिकैरन्यानि द्वितीयान्यष्टाविंशतिं नक्षत्राणि परिभुङ्क्ते, तदनन्तरं भूयस्तान्येव प्रथमान्यष्टाविंशतिं नक्षत्राणि तावत्याहोरात्रसङ्ख्यया क्रमेण युनक्ति, ततः षट्षष्ट्यधिकरात्रिन्दिवशतत्रयातिक्रमेण सूर्यस्य तस्मिन्नेव देशे तादृशेनैवापरेण नक्षत्रेण सह योगो न तु तेनैव, 'ता जेण'मित्यादि, इदं सूत्रमक्षरार्थं प्रतीत्य सुगमं, भावना तु प्रागेव कृता,'ता जेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, अथ–विवक्षिते दिने येन नक्षत्रेण सह सूर्यो यस्मिन् देशे योगं युनक्ति स इमानि अष्टादश रात्रिन्दिवशतानि त्रिंशतानि–त्रिंशदधिकानि उपादाय–अतिक्रम्य पुनरपि तस्मिन्नेव देशेऽन्येनैव तादृशेन सह योगं युनक्ति, न तु तेनैव, कस्मादिति चेत्, उच्यते, इह रात्रिन्दिवानामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि युगे भवन्ति, तत्र सूर्यो विवक्षितादिनादारभ्य तस्मिन्नेव देशे तदैव दिने तेनैव नक्षत्रेण सह योगमागच्छति तृतीयसंवत्सरे, युगे च सूर्यवर्षाणि पञ्च, ततस्तृतीये पञ्चमे वा सूर्यसंवत्सरे सूर्यस्य तेनैव नक्षत्रेण तस्मिन्नेव काले योगमादत्ते न तु युगातिक्रमे षष्ठे वर्षे इति, 'ता जेण'मित्यादि, सुगमं, नवरं षट्त्रिंशद्रात्रिन्दिवशतानि षष्ट्यधिकानि युगद्वये भवन्ति, युगद्वये च दश सूर्यनक्षत्राणि (ग्रंथाग्रं ६०००), ततो युगद्वयातिक्रमे एकादशे वर्षे सूर्यस्य तेनैव नक्षत्रेण सह तस्मिन्नेव देशे योग उत्पद्यते इति । इह जम्बूद्वीपे द्वौ चन्द्रमसौ द्वौ सूर्यौ, एकैकस्य चन्द्रमसो भिन्नो ग्रहादिकः परिवार इति श्रुत्वा कश्चिदेवमपि मन्येत यथा भिन्नकालं मण्डलेषु चन्द्रादीनां गतिर्भिन्नकालं च तेषां नक्षत्रादिभिः सह योग इति, ततस्तदाशङ्कापनोदार्थमाह—

। ता जया णं इमे चंदे गतिसमावण्णए भवति तता णं इतरेवि चंदे गतिसमावण्णए भवति, जता णं इतरेवि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंदे गतिसमावण्णए भवति तता णं इमेवि चंदे गतिसमावण्णए भवति, ता जया णं इमे सूरिए गइसमावण्णे भवति तया णं इतरे सूरिए गइसमावण्णे भवति जता णं इतरे सूरिए गतिसमावण्णे भवति तया णं इमेवि सूरिए गइसमावण्णे भवति, एवं गहेवि णक्खत्तेवि, ता जया णं इमे चंदे जुत्ते जोगेणं भवति तता णं इतरेवि चंदे जुत्ते जोगेणं भवति, जया णं इयरे चंदे जुत्ते जोगेणं भवइ तता णं इमेवि चंदे जुत्ते जोगेणं भवति, एवं सूरेवि गहेवि णक्खत्तेवि, सताविणं चंदा जुत्ता जोएहिं सताविणं सूरा जुत्ता जोगेहिं सयाविणं गहा जुत्ता जोगेहिं सयाविणं नक्खत्ता जुत्ता जोगेहिं दुहतोविणं चंदा जुत्ता जोगेहिं दुहतोविणं सूरा जुत्ता जोगेहिं दुहतोविणं गहा जुत्ता जोगेहिं दुहतोविणं णक्खत्ता जुत्ता जोगेहिं। मंडलं सतसहस्सेणं अट्ठाणउताए सतेहिं छेत्ता इक्केस णक्खत्ते खेत्तपरिभागे णक्खत्तविजए पाहुडेति आहितेत्तिबेमि (सूत्रं ७०)

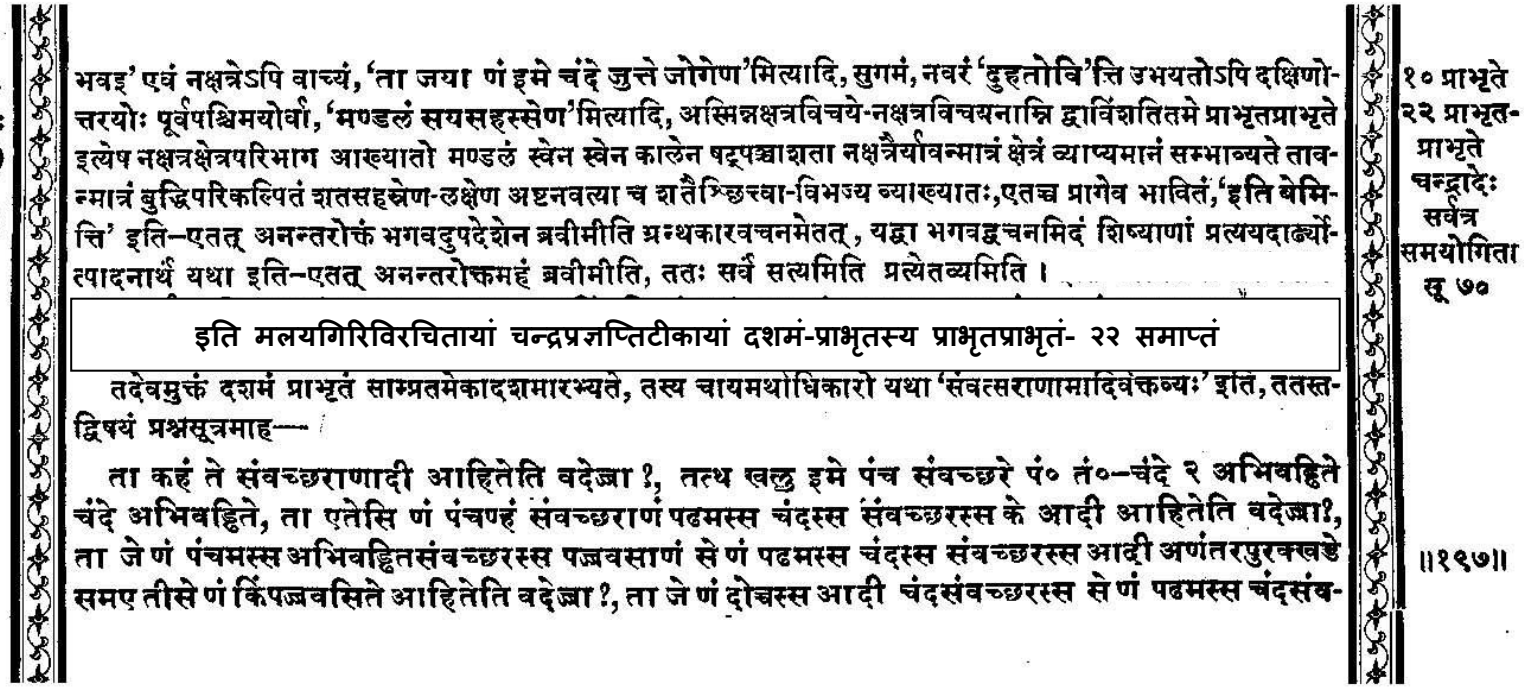
दसमस्स पाहुडस्स बावीसतिमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ दसमं च पाहुडं समत्तं ॥

'ता जया ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यस्मिन् कालेऽयं प्रत्यक्षत उपलभ्यमानो भरतक्षेत्रं प्रकाशयन् विवक्षितश्चन्द्रो विवक्षिते मण्डले इति गम्यते गतिसमापन्नो–गतियुक्तो भवति तदा–तस्मिन् काले इतरोऽपि–ऐरावतक्षेत्रं प्रकाशयन् विवक्षितश्चन्द्रः तस्मिन्नेव विवक्षिते मंडले गतिसमापन्नो भवति, एवं शेषाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, नवरं 'एवं गहेवि एवं नक्खत्तेवि'त्ति एवं–उक्तप्रकारेण ग्रहेऽपि द्वावालापकौ वक्तव्यौ नक्षत्रेऽपि च, तद्यथा–'जया णं इमे गहे गइसमावन्ने हवइ तया णं इतरेवि गहे गइसमावन्ने भवइ, ता जया णं इयरे गहे गइसमावन्ने भवइ तया णं इमेवि गहे गतिसमावण्णे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७०]

दीप अनुक्रम [१०१]



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥१९७॥

भवइ' एवं नक्षत्रेऽपि वाच्यं, 'ता जया णं इमे चंदे जुत्ते जोगेण'मित्यादि, सुगमं, नवरं 'दुहतोवि'त्ति उभयतोऽपि दक्षिणोत्तरयोः पूर्वपश्चिमयोर्वा, 'मण्डलं सयसहस्सेण'मित्यादि, अस्मिन्नक्षत्रविचये-नक्षत्रविचयनाम्नि द्वाविंशतितमे प्राभृतप्राभृते इत्येष नक्षत्रक्षेत्रपरिभाग आख्यातो मण्डलं स्वेन स्वेन कालेन षट्पञ्चाशता नक्षत्रैर्यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यमानं सम्भाव्यते तावन्मात्रं बुद्धिपरिकल्पितं शतसहस्रेण-लक्षेण अष्टनवत्या च शतैश्छित्त्वा-विभज्य व्याख्यातः,एतच्च प्रागेव भावितं,'इति बेमित्ति' इति–एतत् अनन्तरोक्तं भगवदुपदेशेन ब्रवीमीति ग्रन्थकारवचनमेतत्, यद्वा भगवद्वचनमिदं शिष्याणां प्रत्ययदार्ढ्योत्पादनार्थं यथा इति–एतत् अनन्तरोक्तमहं ब्रवीमीति, ततः सर्वं सत्यमिति प्रत्येतव्यमिति ।

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां दशमं-प्राभृतस्य प्राभृतप्राभृतं- २२ समाप्तं

तदेवमुक्तं दशमं प्राभृतं साम्प्रतमेकादशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो यथा 'संवत्सराणामादिवक्तव्यः' इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते संवच्छराणादी आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमे पंच संवच्छरे पं० तं०–चंदे २ अभिवड्ढिते चंदे अभिवड्ढिते, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमस्स चंदस्स संवच्छरस्स के आदी आहितेति वदेज्जा?, ता जे णं पंचमस्स अभिवड्ढितसंवच्छरस्स पज्जवसाणं से णं पढमस्स चंदस्स संवच्छरस्स आदी अणंतरपुरक्खडे समए तीसे णं किंपज्जवसिते आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं दोच्चस्स आदी चंदसंवच्छरस्स से णं पढमस्स चंदसंव-

१० प्राभृते २२ प्राभृतप्राभृते चन्द्रादेः सर्वत्र समयोगिता सू ७०

॥१९७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमे प्राभृते प्राभृतप्राभृतं- २२ परिसमाप्तं तत्समाप्ते दशमं प्राभृतं अपि परिसमाप्तं

० अथ एकादशं प्राभृतं आरभ्यते ०

च्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समये। तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं छदुवीसं मुहुत्ता छदुवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छित्ता चउप्पण्णं चुण्णियाभागा सेसा, तं समयं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स सोलस मुहुत्ता अट्ठ य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता वीसं चुण्णियाभागा सेसा। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स के आदी आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं पढमस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे से णं दोच्चस्स णं चंदसंवच्छरस्स आदी अणंतरपुरक्खडे समये, ता से णं किंपज्जवसिते आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं तच्चस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स आदी से णं दोच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समये। तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुव्वाहिं आसाढाहिं, पुव्वाणं आसाढाणं सत्त मुहुत्ता तेवण्णं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता इगतालीसं चुण्णियाभागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स णं बायालीसं मुहुत्ता पणतीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सत्त चुण्णिया भागा सेसा, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चस्स अभिवड्ढितसंवच्छरस्स के आदी आहितेति वदेज्जा?, ता जे णं दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे से णं तच्चस्स अभिवड्ढितसंवच्छरस्स आदी अणंतरपुरक्खडे समए, ता से णं किंपज्जवसिते आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स आदी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से णं तचस्स अभिवड्ढितसंवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समए । तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं तेरस मुहुत्ता तेरस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सत्तावीसं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स दो मुहुत्ता छप्पण्णं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सट्ठी चुण्णिया भागा सेसा, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स के आदी आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं तचस्स अभिवड्ढितसंवच्छरस्स पज्जवसाणे से णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स आदी अणंतरपुरक्खडे समये, ता से णं किंपज्जवसिते आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं चरिमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स आदी से णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समये, तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चत्तालीसं मुहुत्ता चत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता चउसट्ठी चुण्णियाभागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स अउणतीसं मुहुत्ता एक्कवीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सीतालीसं चुण्णिया भागा सेसा, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमस्स अभिवड्ढितसंवच्छरस्स के आदी आहितेति वदेज्जा ?, ता जे णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे से णं पंचमस्स अभिवड्ढितसंवच्छरस्स आदी अणंतरपुरक्खडे समये, ता से णं किंपज्जवसिते आहितेति वदेज्जा ?, ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे णं पढमस्स चंदसंवच्छरस्स आदी से णं पंचमस्स अभिवड्ढितसंवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समये, तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं चरमसमये, तं समयं च णं सूरे केण णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुस्सेणं, पुस्सस्स णं एक्कवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं सत्तट्ठिधा छेत्ता तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा (सूत्रं ७१) ॥ एक्कारसमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं–केन प्रकारेण भगवन्! त्वया संवत्सराणामादिराख्यात इति वदेत्?, भगवानाह—'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र–संवत्सरविचारविषये खल्विमे पञ्च संवत्सराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चन्द्रश्चन्द्रोऽभिवर्द्धितः चन्द्रोऽभिवर्द्धितः, एतेषां च स्वरूपं प्रागेवोपदर्शितं, भूयः प्रश्नयति—'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमस्य चान्द्रस्य संवत्सरस्य क आदिराख्यात इति वदेत्?, भगवानाह—'ता जे ण'मित्यादि, यत् पाश्चात्ययुगवर्त्तिनः पञ्चमस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य पर्यवसानं–पर्यवसानसमयः तस्मादनन्तरं पुरस्कृतो–भावी यः समयः स प्रथमस्य चन्द्रसंवत्सरस्यादिः, तदेवं प्रथमसंवत्सरस्यादिर्ज्ञातः, सम्प्रति पर्यवसानसमयं पृच्छति—'ता से ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, स प्रथमश्चान्द्रसंवत्सरः किंपर्यवसितः–किंपर्यवसान आख्यात इति वदेत्?, भगवानाह—'ता जे ण'मित्यादि, यो द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्यादिः–आदिसमयस्तस्मादनन्तरो यः पुरस्कृतः–अतीतसमयः स प्रथमचान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानं–पर्यवसानसमयः, 'तं समयं च ण'मित्यादि, तस्मिंश्चान्द्रसंवत्सरपर्यवसानभूते समये चन्द्रः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केन नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति–करोति ?, भगवानाह—'ता उत्तराहिं'इत्यादि, इह द्वादशभिः पौर्णमासीभिश्चान्द्रः संवत्सरो भवति, ततो यदेव प्राक् द्वादश्यां पौर्णमास्यां चन्द्रनक्षत्रयोगपरिमाणं सूर्यनक्षत्रयोगपरिमाणं चोक्तं तदेवान्यूनातिरिक्तमत्रापि द्रष्टव्यं, तथैव गणितभावना कर्त्तव्या, एवं शेषसंवत्सरगतान्यादिपर्यवसानसूत्राणि भावनीयानि यावत्प्राभृतपरिसमाप्तिः, नवरं गणितभावना क्रियते—तत्र द्वितीयसंवत्सरपरिसमाप्तिश्चतुर्विंशतितमपौर्णमासीपरिसमाप्तौ, तत्र ध्रुवराशिः षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभागः ६६ । ५ । १ । इत्येवंप्रमाणश्चतुर्विंशत्या गुण्यते, जातानि पञ्चदश शतानि चतुरशीत्यधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां विंशत्युत्तरं शतमेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः १५८४ । १२० । २४ । तत एतस्माद्दष्टभिः मुहूर्त्तशतैरेकोनविंशत्यधिकैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरेकः परिपूर्णो नक्षत्रपर्यायः शुद्ध्यति, ततः स्थितानि पश्चात्सप्त मुहूर्त्तशतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां पञ्चनवतिरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतिः सप्तषष्टिभागाः ७६५ । ९५ । २५ । ततो 'मूले सत्तेव चोयाला' इत्यादि वचनात् सप्तभिश्चतुश्चत्वारिंशदधिकैर्मुहूर्त्तशतैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि मूलपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, ततः स्थिताः पश्चात् द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टौ द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षड्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः २२ । ८ । २६ । तत आगतं द्वितीयचान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानसमये पूर्वाषाढानक्षत्रस्य सप्त मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशद् द्वाष-

११ प्राभृते २२ प्राभृतप्राभृते युगसंवत्सराणामादिपर्यवसाने सू ७१

॥१९९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७१]

दीप अनुक्रम [१०२]

ष्टिभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्य एकचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः शेषाः, तदानीं च सूर्येण युक्तस्य पुनर्वसोर्द्वाचत्वारिंशत् मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्त सप्तषष्टिभागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः । ६६ । ५ । १ । चतुर्विंशत्या गुणितो जातानि पञ्चदश शतानि चतुरशीत्यधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां विंशत्युत्तरं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः १५८४ । १२० । २४ । तत एतस्मादष्टभिः शतैरेकोनविंशत्यधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैः ८१९ । २४ । ६६ एकः परिपूर्णो नक्षत्रपर्यायः शुद्धः, स्थितानि पश्चात् सप्त मुहूर्त्तशतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकमुहूर्त्तगताश्च द्वाषष्टिभागाः पञ्चनवतिः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतिः सप्तषष्टिभागाः ७६५ । ९५ । २५ । तत एतेभ्य एकोनविंशत्या मुहूर्त्तैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशता सप्तषष्टिभागैः पुष्यः शुद्धः, स्थितानि पश्चान्मुहूर्त्तानां सप्त शतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकपञ्चाशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनषष्टिः सप्तषष्टिभागाः ७४६ । ५१ । ५९ । ततो भूयोऽप्येतस्मात् सप्तभिर्मुहूर्त्तशतैश्चतुश्चत्वारिंशदधिकैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरश्लेषादीनि आर्द्रापर्यन्तानि शुद्धानि, स्थितौ पश्चाद् द्वौ मुहूर्त्तावेकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टिः सप्तषष्टिभागाः २ । २६ । ६० । आगतं द्वितीयचान्द्रसंवत्सरपर्यवसानसमये पुनर्वसुनक्षत्रस्य द्वाचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्त सप्तषष्टिभागाः शेषाः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा तृतीयाभिवर्द्धितसंज्ञसंवत्सरपरिसमाप्तिः सप्तत्रिंशता पौर्णमासीभिस्ततो ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । सप्तत्रिंशता गुण्यते, जातानि मुहूर्त्तानां चतुर्विंशतिः शतानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि द्वाषष्टिभागानां च पञ्चाशीत्यधिकं शतं सप्तषष्टिभागाः सप्तत्रिंशत् २४४२ । १८५ । ३७ । तत एतेभ्योऽष्टौ मुहूर्त्तशतानि एकोनविंशत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा इत्येकनक्षत्रपर्यायपरिमाणं द्वाभ्यां गुणयित्वा शोध्यते, ततः स्थितानि पश्चादष्टौ मुहूर्त्तशतानि चतुरुत्तराणि मुहूर्त्तसत्कानां च द्वाषष्टिभागानां पञ्चत्रिंशदधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः ८०४ । १३५ । ३९ । तत एतेभ्यः सप्तभिर्मुहूर्त्तशतैश्चतुःसप्तत्यधिकैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि पूर्वाषाढापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिताः पश्चादेकत्रिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः ३१ । ४८ । ४० । तत आगतं तृतीयाभिवर्द्धितसंज्ञसंवत्सरपर्यवसानसमये उत्तराषाढानक्षत्रस्य त्रयोदश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोदश द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः शेषाः, तदानीं च सूर्येण सम्प्रयुक्तस्य पुनर्वसुनक्षत्रस्य द्वौ मुहूर्त्तौ एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काः षष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । सप्तत्रिंशता गुण्यते, जातानि मुहूर्त्तानां चतुर्विंशतिः शतानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्तसत्कानां च द्वाषष्टिभागानां पञ्चाशीत्यधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः २४४२ । १८५ । ३७ । तत एतेभ्यः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७१]

दीप अनुक्रम [१०२]

पूर्ववत् सकलनक्षत्रपर्यायपरिमाणं द्विगुणं कृत्वा शोध्यते, स्थितानि पञ्चादष्टौ मुहूर्त्तशतानि चतुरुत्तराणि मुहूर्त्तसत्कानां द्वाषष्टिभागानां पञ्चत्रिंशदधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः ८०४ । १३५ । ३९ । ततो भूय एतेभ्य एकोनविंशत्या मुहूर्त्तैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशता सप्तषष्टिभागैः पुष्यः शुद्धः, स्थितानि पञ्चान्मुहूर्त्तानां सप्त शतानि पञ्चाशीत्यधिकानि मुहूर्त्तसत्कानां च द्वाषष्टिभागानां द्विनवतिरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् सप्तषष्टिभागाः ७८५ । ९२ । ६ । ततो भूयोऽप्येतेभ्यः सप्तभिर्मुहूर्त्तशतैश्चतुश्चत्वारिंशदधिकैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरश्लेषादीनि आर्द्रापर्यन्तानि शुद्धानि, स्थिताः पञ्चान्मुहूर्त्ता द्वाचत्वारिंशत्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्त सप्तषष्टिभागाः ४२ । ५ । ७ । तत आगतं तृतीयाभिवर्द्धितसंज्ञसंवत्सरपर्यवसानसमये सूर्येण सह संयुक्तस्य पुनर्वसोर्द्वौ मुहूर्त्तावेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथा चतुर्थचान्द्रसंवत्सरपर्यवसानमेकोनपञ्चाशत्तमपौर्णमासीपरिसमाप्तौ ततः स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । एकोनपञ्चाशता गुण्यते, जातानि मुहूर्त्तानां द्वात्रिंशच्छतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि मुहूर्त्तसत्कानां च द्वाषष्टिभागानां द्वे शते पञ्चचत्वारिंशदधिके एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः ३२३४ । २४५ । ४९ । तत एतस्मात् प्रागुक्तं सकलनक्षत्रपर्यायपरिमाणं त्रिभिर्गुणयित्वा शोध्यते, ततः स्थितानि सप्त शतानि सप्तसप्तत्यधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तसत्कानां च द्वाषष्टिभागानां सप्तत्यधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः ७७७ । १७० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५२। ततः सप्तभिः शतैः चतुःसप्तत्यधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैर्भूयोऽभिजिदादीनि पूर्वाषाढापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिताः पश्चात्पञ्च मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशत्सप्तषष्टिभागाः ५। २१। ५३। तत आगतं चतुर्थ-चान्द्रसंवत्सरपर्यवसानसमये उत्तराषाढानक्षत्रस्य चन्द्रयुक्तस्य एकोनचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दश सप्तषष्टिभागाः शेषाः, तदानीं च सूर्येण सह युक्तस्य पुनर्वसुनक्षत्रस्य एकोन-त्रिंशन्मुहूर्त्ता एकविंशतिर्द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का सप्तचत्वारिंशच्चूर्णिकाभागाः शेषाः, तथाहि—स एव ध्रुवराशिरेकोनपञ्चाशता गुण्यते, गुणयित्वा च ततः प्रागुक्तं सकलनक्षत्रपर्यायपरिमाणं त्रिभिर्गुण-यित्वा शोध्यते, स्थितानि सप्त मुहूर्त्तशतानि सप्तसप्तत्यधिकानि मुहूर्त्तसत्कानां च द्वाषष्टिभागानां सप्तत्यधिकं शतमेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विपञ्चाशत्सप्तषष्टिभागाः ७७७। १७०। ५२, तत एतेभ्य एकोनविंशत्या मुहूर्त्तैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशता सप्तषष्टिभागैः पुष्यः शुद्धः, स्थितानि पश्चान्मुहूर्त्तानां सप्त शतानि अष्टापञ्चाशदधिकानि मुहूर्त्तसत्कानां च द्वाषष्टिभागानां सप्तविंशत्यधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनविंशतिः सप्तषष्टिभागाः ७५८। १२७। १९। ततः सप्तभिः शतैश्चतुश्चत्वारिंशदधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतु-र्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरश्लेषादीन्यार्द्रापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिताः पश्चात् पञ्चदश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतिः सप्तषष्टिभागाः १५।४०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२०,तत आगतं चतुर्थचान्द्रसंवत्सरपर्यवसानसमये पुनर्वसुनक्षत्रस्य एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः शेषा इति, पञ्चमाभिवर्द्धितसंवत्सरपर्यवसानं च द्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिसमये,ततो यदेव प्राक् द्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिसमये चन्द्रनक्षत्रयोगपरिमाणं सूर्यनक्षत्रयोगपरिमाणं चोक्तं तदेवान्यूनातिरिक्तमत्रापि द्रष्टव्यम् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां एकादशंमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तमेकादशं प्राभृतम्, सम्प्रति द्वादशमुच्यते–तस्य चायमर्थाधिकारः, यथा 'कति संवत्सरा भवन्ति' तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कति णं संवच्छरा आहितातिवदेज्जा ?, तत्थ खलु इमे पंच संवच्छरा पं० तं०–णक्खत्ते चंदे उडू आदिचे अभिवड्ढिते, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमस्स नक्खत्तसंवच्छरस्स णक्खत्तमासे तीसतिमुहुत्तेणं २ अहोरत्तेणं मिज्जमाणे केवतिए राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता सत्तावीसं राइंदिदाइं एक्कवीसं च सत्तट्ठिभागा राइंदियस्स राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता अट्ठसए एकूणवीसे मुहुत्ताणं सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेणं आहितेतिवदेज्जा, ता एएसि णं अद्धा दुवालसक्खुत्तकडा णक्खत्ते संवच्छरे, ता से णं केवतिए राइंदियग्गेणं आहितातिवदेज्जा ?, ता तिण्णि सत्तावीसे राइंदियसते एक्कावन्नं च सत्तट्ठिभागे राइंदियस्स राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता णव मुहुत्तसहस्सा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

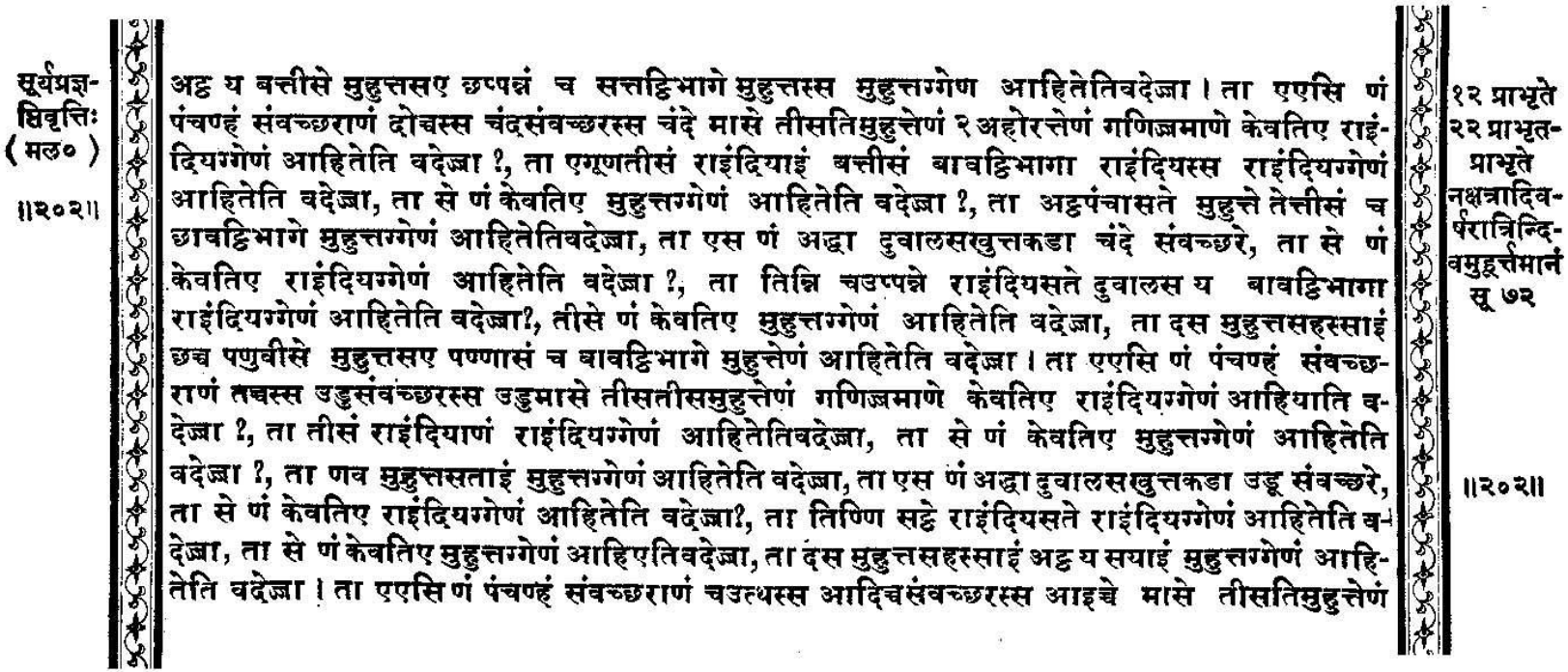
अत्र एकादशं प्राभृतं परिसमाप्तं

अथ द्वादशं प्राभृतं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [७२]

दीप अनुक्रम [१०३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२०२॥

अट्ठ य बत्तीसे मुहुत्तसए छप्पन्नं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेण आहितेतिवदेज्जा। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोचस्स चंदसंवच्छरस्स चंदे मासे तीसतिमुहुत्तेणं २ अहोरत्तेणं गणिज्जमाणे केवतिए राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता एगूणतीसं राइंदियाइं बत्तीसं बावट्ठिभागा राइंदियस्स राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता अट्ठपंचासते मुहुत्ते तेत्तीसं च छावट्ठिभागे मुहुत्तग्गेणं आहितेतिवदेज्जा, ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा चंदे संवच्छरे, ता से णं केवतिए राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता तिन्नि चउप्पन्ने राइंदियसते दुवालस य बावट्ठिभागा राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा?, तीसे णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता दस मुहुत्तसहस्साइं छच्च पणुवीसे मुहुत्तसए पण्णासं च बावट्ठिभागे मुहुत्तेणं आहितेति वदेज्जा। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तचस्स उडुसंवच्छरस्स उडुमासे तीसतीसमुहुत्तेणं गणिज्जमाणे केवतिए राइंदियग्गेणं आहियाति वदेज्जा ?, ता तीसं राइंदियाणं राइंदियग्गेणं आहितेतिवदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता णव मुहुत्तसताइं मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा उडू संवच्छरे, ता से णं केवतिए राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा?, ता तिण्णि सट्ठे राइंदियसते राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहिएतिवदेज्जा, ता दस मुहुत्तसहस्साइं अट्ठ य सयाइं मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थस्स आदिचसंवच्छरस्स आइचे मासे तीसतिमुहुत्तेणं

१२ प्राभृते २२ प्राभृतप्राभृते नक्षत्रादिवर्षरात्रिन्दिवमुहूर्त्तमानं सू ७२

॥२०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७२]

दीप अनुक्रम [१०३]

अहोरत्तेणं गणिज्जमाणे केवइए राइंदियग्गेण आहितेति वदेज्जा ?, ता तीसं राइंदियाइं अवद्धभागं च राइंदियस्स राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता णव पण्णरस मुहुत्तसए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा आदिचे संवच्छरे, ता से णं केवतिए राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता तिन्नि छावट्ठे राइंदियसए राइंदियग्गेणं आहियत्तिवइज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहियत्ति वइज्जा ?, ता दस मुहुत्तस्स सहस्साइं णव असीते मुहुत्तसते मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स अभिवड्ढिते मासे तीसतिमुहुत्तेणं गणिज्जमाणे केवतिए राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता एकतीस राइंदियाइं एगूणतीसं च मुहुत्ता सत्तरस बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता णव एगूणसट्ठे मुहुत्तसते सत्तरस बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा अभिवड्ढितसंवच्छरे, ता से णं केवतिए राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, तिण्णि तेसीते राइंदियसते एक्कवीसं च मुहुत्ता अट्ठारस बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स राइंदियग्गेणं आहितेतिवदेज्जा, तिण्णि तेसीते राइंदियसते एक्कवीसं च मुहुत्ता अट्ठारस बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेण आहितेति वदेज्जा ?, ता एक्कारस मुहुत्तसहस्साइं पंच य एक्कारस मुहुत्तसते अट्ठारस बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेणं आहितेतिवदेज्जा (सूत्रं ७२) ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७२]

दीप अनुक्रम [१०३]

'ता कइ संवच्छरा'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कति संवत्सरा भगवन् ! त्वया आख्याता इति वदेत् ?, भगवानाह—'तत्रे'त्यादि, तत्र–संवत्सरविचारविषये खल्विमे पञ्च संवत्सरा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'नक्खत्ते'त्यादि, पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् नक्षत्रसंवत्सरश्चन्द्रसंवत्सर ऋतुसंवत्सर आदित्यसंवत्सरोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः, एतेषां च पञ्चानामपि संवत्सराणां स्वरूपं प्रागेवोपवर्णितं, 'ता एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं, 'ता' इति पूर्ववत्, एतेषां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमस्य नक्षत्रसंवत्सरस्य सत्को यो नक्षत्रमासः स त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणेनाहोरात्रेण गण्यमानः कियान् रात्रिन्दिवाग्रेण-रात्रिन्दिवपरिमाणेनाख्यात इति वदेत्?, भगवानाह—'ता' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, सप्तविंशतिः रात्रिन्दिवानि एकविंशतिश्च सप्तषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य रात्रिन्दिवाग्रेणाख्यात इति वदेत्, तथाहि—युगे नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिरेतच्च प्रागेव भावितं, युगे चाहोरात्राणामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, ततस्तेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः सप्तविंशतिरहोरात्रा एकस्य चाहोरात्रस्य एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः २७ । $\frac{२१}{६७}$ । 'ता से ण'मित्यादि, स नक्षत्रमासः कियान् मुहूर्त्ताग्रेण–मुहूर्त्तपरिमाणेनाख्यात इति वदेत् ?, भगवानाह—'ता अट्ठसए'इत्यादि, अष्टोत्तरशतान्येकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः ८१९ । $\frac{२७}{६७}$ । मुहूर्त्ताग्रेणाख्यात इति वदेत्, तथाहि—नक्षत्रमासपरिमाणं सप्तविंशतिरहोरात्रा एकस्य चाहोरात्रस्य एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, ततः सवर्णनार्थं सप्तविंशतिरप्यहोरात्राः सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा चोपरितना एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातानि सप्तषष्टिभागानामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, तानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नव शतानि मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागानां ५४९००, तत एतेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धानि अष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागा इति ८१९। $\frac{२७}{६७}$, 'ता एस ण'मित्यादि, एषा-अनन्तरमुक्ता नक्षत्रमासरूपा अद्धा द्वादशकृत्वः कृता, द्वादशभिर्वारैर्गुणिता इत्यर्थः, नक्षत्रसंवत्सरो भवति, सम्प्रति सकलनक्षत्रसंवत्सरगतरात्रिन्दिवपरिमाणमुहूर्त्तपरिमाणविषयप्रश्ननिर्वचनसूत्राण्याह—'ता से ण'मित्यादि, सुगमं, नवरं रात्रिन्दिवचिन्तायां नक्षत्रमासरात्रिन्दिवपरिमाणं मुहूर्त्तचिन्तायां नक्षत्रमासमुहूर्त्तपरिमाणं द्वादशभिर्गुणितव्यं ततो यथोक्ता रात्रिन्दिवसङ्ख्या मुहूर्त्तसङ्ख्या च भवति, 'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता एगूणतीस'-मित्यादि, एकोनत्रिंशत् रात्रिन्दिवानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य एतावत्परिमाणश्चन्द्रमासो रात्रिन्दिवाग्रेणाख्यात इति वदेत्, तथाहि—युगे द्वाषष्टिश्चन्द्रमासाः, एतच्च प्रागपि भावितं, ततो युगसत्कानामष्टादशानामहोरात्रशतानां त्रिंशदधिकानां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनत्रिंशदहोरात्रा एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः २९। $\frac{३२}{६२}$। 'ता से ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता अट्ठे'त्यादि, अष्टौ मुहूर्त्तशतानि पञ्चाशीत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः, एतावत्परिमाणश्चन्द्रमासो मुहूर्त्ताग्रेणाख्यात इति वदेत्, तथाहि—चन्द्रमासपरिमाणमेकोनत्रिंशदहोरात्रा एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः, तत्र सवर्णनार्थमेकोनत्रिंशदप्यहोरात्रा द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा च उपरितना द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि द्वाषष्टिभागानां १८३०, तत एतानि त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि नव शतानि मुहूर्त्तगतद्वाषष्टि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागानां ५४९००, तत एतेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धानि अष्टौ शतानि पञ्चाशीत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः ८८५ । ३०/६२, 'ता एस णं अद्धा'इत्यादि, प्राग्वद् भावनीयं, 'ता एएसि ण'मित्यादि, तृतीयऋतुसंवत्सरविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवान् प्रतिवचनमाह—'ता तीसे ण'मित्यादि ता इति पूर्ववत् त्रिंशता रात्रिन्दिवाग्रेण ऋतुमास आख्यात इति वदेत्, तथाहि—ऋतुमासाः युगे एकषष्टिः, ततो युगसत्कानामष्टादशशतसङ्ख्यानां त्रिंशदधिकानामहोरात्राणामेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धास्त्रिंशदहोरात्राः ३०, 'ता से ण'मित्यादि, मुहूर्त्तविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता नव मुहुत्तसया'इत्यादि, नव मुहूर्त्तशतानि मुहूर्त्ताग्रेणाख्यात इति वदेत्, तथाहि—त्रिंशद्रात्रिन्दिवानि ऋतुमासपरिमाणमेकैकस्मिंश्च रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्तास्तत्त्रिंशतात्त्रिंशता गुणने नव शतानि भवन्तीति, 'ता एएसि ण'मित्यादि, प्राग्वद् भावनीयं, 'ता एएसि ण'मित्यादि चतुर्थसूर्यसंवत्सरविषयं प्रश्नसूत्रं, तच्च सुगमं, भगवानाह—'ता तीस'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, त्रिंशत् रात्रिन्दिवानि एकस्य रात्रिन्दिवस्य एकमपार्द्धभागं, एकमर्द्धमित्यर्थः, एतावत्प्रमाणः सूर्यमासो रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यात इति वदेत्, तथाहि—सूर्यमासा युगे षष्टिस्ततो युगसत्कानामहोरात्राणां त्रिंशदधिकाष्टादशशतसङ्ख्यानां षष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः सार्द्धास्त्रिंशदहोरात्राः, 'ता से ण'मित्यादि, मुहूर्त्तविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमम्, भगवानाह—'नवपण्णरे' इत्यादि नव मुहूर्त्तशतानि पञ्चदशाधिकानि मुहूर्त्तपरिमाणेनाख्यात इति वदेत्, तथाहि—सूर्यमासपरिमाणं त्रिंशत् रात्रिन्दिवानि एकस्य च रात्रिन्दिवस्यार्द्धं, तच्च त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि नव शतानि, रात्रिन्दिवार्द्धे च पञ्चदश मुहूर्त्ता इति, 'ता एएसि ण'मित्यादि, प्राग्वद् भाव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नीयं । 'ता एएसि ण'मित्यादि, पञ्चमाभिवर्द्धितसंवत्सरविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता एक्कतीस'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकत्रिंशत् रात्रिन्दिवानि एकोनत्रिंशच्च मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तदश द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवाग्रेणाख्यात इति वदेत्, तथाहि—त्रयोदशभिश्चन्द्रमासैरभिवर्द्धितसंवत्सरः, चन्द्रमासस्य च परिमाणमेकोनत्रिंशत् रात्रिन्दिवानि एकस्य च रात्रिन्दिवस्य द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः २९ । $\frac{३२}{६२}$, एतत्त्रयोदशभिर्गुण्यते, ततो यथासम्भवं द्वाषष्टिभागै रात्रिन्दिवेषु जातेषु जातमिदं त्रीण्यहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य ३८३ । $\frac{४४}{६२}$, एतदभिवर्द्धितसंवत्सरपरिमाणं, तत एतस्य द्वादशभिर्भागो ह्रियते, तत्र त्रयाणामहोरात्रशतानां त्र्यशीत्यधिकानां द्वादशभिर्भागो ह्रियते लब्धा एकत्रिंशदहोरात्राः, शेषास्तिष्ठन्ति एकादश, ते च मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि ३३०, येऽपि च चतुश्चत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि त्रयोदश शतानि विंशत्यधिकानि १३२०, तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकविंशतिर्मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्त्यष्टादश, तत्रैकविंशतिर्मुहूर्त्ता मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि मुहूर्त्तानां त्रीणि शतान्येकपञ्चाशदधिकानि ३५१, तेषां द्वादशभिर्भागो ह्रियते, लब्धा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्ति त्रयः, ते द्वाषष्टिभागकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातं षडशीत्यधिकं शतं १८६, ततः प्रागुक्ताः शेषीभूता मुहूर्त्तस्याष्टादश द्वाषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जाते द्वे शते चतुरुत्तरे २०४, तयोर्द्वादशभिर्भागो ह्रियते, लब्धा मुहूर्त्तस्य सप्तदश द्वाषष्टिभागाः, 'ता से ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, सोऽभिवर्द्धितमासः कियान् मुहूर्त्ताग्रेणाख्यात इति वदेत्?, भगवानाह—'नवे'त्यादि, नव मुहूर्त्तश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तान्येकोनषष्ट्यधिकानि ९५९ सप्तदश च मुहूर्त्तद्वाषष्टिभागाः, तथाहि—एकत्रिंशदप्यहोरात्राण्येकत्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि नव शतानि त्रिंशदधिकानि मुहूर्त्तानां, तत उपरितना एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्तास्तत्र प्रक्षिप्यन्ते, जातानि मुहूर्त्तानामेकोनषष्ट्यधिकानि नव शतानि । 'ता एस ण'मित्यादि, प्राग्वद् व्याख्येयं, 'ता से ण'मित्यादि, रात्रिन्दिवविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता तिण्णी'त्यादि, त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि त्र्यशीत्यधिकानि एकविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादश द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवाग्रेणाख्यात इति वदेत्, तथाहि—एकत्रिंशदहोरात्रा द्वादशभिर्गुण्यन्ते, जातानि त्रीणि शतानि द्विसप्तत्यधिकानि अहोरात्राणां ३७२, तत एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ता द्वादशभिर्गुण्यन्ते, जातानि त्रीणि शतान्यष्टाचत्वारिंशदधिकानि ३८४, तेषामहोरात्रकरणार्थं त्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धा एकादश अहोरात्राः, अष्टादश तिष्ठन्ति, येऽपि च सप्तदश द्वाषष्टिभागाः मुहूर्त्तस्य तेऽपि द्वादशभिर्गुण्यन्ते, जाते द्वे शते चतुरुत्तरे २०४, तयोर्द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयो मुहूर्त्तास्ते प्राक्तनेष्वष्टादशसु मध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाता एकविंशतिर्मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्त्यष्टादश द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, 'ता से ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'एक्कारसे'त्यादि, एकादश मुहूर्त्तसहस्राणि पञ्च मुहूर्त्तशतान्येकादशाधिकानि अष्टादश च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्येति मुहूर्त्ताग्रेणाभिवर्द्धितसंवत्सर आख्यात इति वदेत्, तथाहि—अभिवर्द्धितसंवत्सरपरिमाणं त्रीण्यहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि एकविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टादश द्वाषष्टिभागाः, तत्रैकस्मिन् रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति त्रीण्यहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि त्रिंशता गुण्यन्ते, गुणयित्वा चोपरितना एकविंशतिर्मुहूर्त्तास्तत्र प्रक्षिप्यन्ते, ततो यथोक्ता मुहूर्त्तसङ्ख्या भवतीति । सम्प्रत्येते पञ्च-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संवत्सरा एकत्र मीलिता यावत्प्रमाणा रात्रिन्दिवपरिमाणेन भवन्ति तावतो निर्दिदिक्षुः प्रथमतः प्रश्नसूत्रमाह—

ता केवतियं ते नोजुगे राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता सत्तरस एकाणउते राइंदियसते एगूणवीसं च मुहुत्तं च सत्तावण्णे बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता पणपण्णं चुण्णियाभागे राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता तेपण्ण मुहुत्तसहस्साइं सत्त य उणापन्ने मुहुत्तसते सत्तावण्णं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता पणपण्णं चुण्णिया भागा मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता केवतिए णं ते जुगप्पत्ते राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा?, ता अट्ठतीसं राइंदियाइं दस य मुहुत्ता चत्तारि य बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता दुवालस चुण्णिया भागे राइंदियग्गेणं आहिताति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता एक्कारस पण्णासे मुहुत्तसए चत्तारि य बावट्ठिभागे बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता दुवालस चुण्णिया भागे मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता केवतियं जुगे राइंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता अट्ठारसतीसे राइंदियसते राइंदियग्गेणं आहियाति वदेज्जा, ता से णं केवतिए मुहुत्तग्गेणं आहियाति वदेज्जा ?, ता चउप्पणं मुहुत्तसहस्साइं णव य मुहुत्तसताइं मुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा, ता से णं केवतिए बावट्ठिभागमुहुत्तग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता चउत्तीसं सतसहस्साइं अट्ठतीसं च बावट्ठिभागमुहुत्तसते बावट्ठिभागमुहुत्तग्गे आहितेति वदेज्जा (सूत्रं ७३) ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥२०६॥

ता इति पूर्ववत्, कियत्—किंप्रमाणं ते–त्वया भगवन्! 'नोयुगं' नोशब्दो देशनिषेधवचनः किञ्चिदूनं युगमित्यर्थः, रात्रिन्दिवाग्रेण–रात्रिन्दिवपरिमाणेनाख्यात इति वदेत्?, भगवानाह—'ता सत्तरसे'त्यादि, नोयुगं हि किञ्चिदूनं युगं, तच्च नक्षत्रादिपञ्चसंवत्सरपरिमाणमतो नक्षत्रादिपञ्चसंवत्सरपरिमाणानामेकत्र मीलने भवति यथोक्ता रात्रिन्दिवसङ्ख्या, तथाहि—नक्षत्रसंवत्सरस्य परिमाणं त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि सप्तविंशत्यधिकानि एकस्य च रात्रिन्दिवस्य एकपञ्चाशत्सप्तषष्टिभागाः, चन्द्रसंवत्सरस्य त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि द्वादश च द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य, ऋतुसंवत्सरस्य त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि षष्ट्यधिकानि, सूर्यसंवत्सरस्य त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवानां, अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि त्र्यशीत्यधिकानि एकविंशतिश्च मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादश द्वाषष्टिभागाः, तत्र सर्वेषां रात्रिन्दिवानामेकत्र मीलने जातानि सप्तदश शतानि नवत्यधिकानि, ये च एकपञ्चाशत्सप्तषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि पञ्चदश शतानि त्रिंशदधिकानि १५३०, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशत्सप्तषष्टिभागाः २२। $\frac{५६}{६७}$, मुहूर्त्ताश्च लब्धा एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु मध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जातास्त्रिचत्वारिंशन्मुहूर्त्तास्तत्र त्रिंशता अहोरात्रो लब्ध इति जातान्यहोरात्राणां सप्तदश शतान्येकनवत्यधिकानि १७९१, शेषास्तिष्ठन्ति मुहूर्त्तास्त्रयोदश १३, येऽपि च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य द्वादश तेऽपि मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि त्रीणि शतानि षष्ट्यधिकानि ३६०, तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च मुहूर्त्तास्ते प्रागुक्तेषु त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु मध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाता अष्टादश, शेषास्तिष्ठन्ति पञ्चाशत् द्वाषष्टिभागा

१२ प्राभृते २२ प्राभृतप्राभृते नोयुगयुगरात्रिन्दिवमुहूर्त्तमानं सू ७३

॥२०६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७३]

दीप अनुक्रम [१०४]

मुहूर्त्तस्य, येऽपि च षट्पञ्चाशत्सप्तषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य ते त्रैराशिकेन द्वाषष्टिभागा एवं क्रियन्ते—यदि सप्तषष्ट्या द्वाषष्टिभागा लभ्यन्ते ततः षट्पञ्चाशता सप्तषष्टिभागैः कियन्तो द्वाषष्टिभागा लभ्यन्ते, राशित्रयस्थापना ६७। ६२। ५६। अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातानि चतुस्त्रिंशच्छतानि द्वासप्तत्यधिकानि ३४७२, तेषामादिराशिना सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः, ते च प्रागुक्तेषु पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वन्तः प्रक्षिप्यन्ते, जातमेकोत्तरं शतं १०१, ततस्तन्मध्येऽभिवर्द्धितसंवत्सरसत्का उपरितना अष्टादश द्वाषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातमेकोनविंशत्यधिकं शतं द्वाषष्टिभागानां ११९, शेषास्तिष्ठन्ति पञ्चपञ्चाशत् द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागाः $\frac{55}{67}$, द्वाषष्ट्या च द्वाषष्टिभागैरेको मुहूर्त्तो लब्धः, स प्रागुक्तेष्वष्टादशसु मुहूर्त्तेषु मध्ये प्रक्षिप्यते, जाता एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः १९, शेषाः सप्तपञ्चाशत् द्वाषष्टिभागा अवतिष्ठन्ते इति, 'ता से णं'मित्यादि, मुहूर्त्तपरिमाणविषयप्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं च सुगमं, रात्रिन्दिवपरिमाणस्य त्रिंशता गुणने तदुपरि शेषमुहूर्त्तप्रक्षेपे च यथोक्तमुहूर्त्तपरिमाणसमागमात्,'ता केवइए णं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कियता रात्रिन्दिवपरिमाणेन तदेव नोयुगं युगप्राप्तमाख्यातमिति वदेत्?, कियत्सु रात्रिन्दिवेषु प्रक्षिप्तेषु तदेव नोयुगं परिपूर्णं युगं भवतीति भावः, भगवानाह—'ता अट्ठत्तीस'मित्यादि, अष्टात्रिंशद् रात्रिन्दिवानि दश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारो द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का द्वादश चूर्णिका भागा इत्येतावता रात्रिन्दिवपरिमाणेन युगप्राप्तमाख्यातमिति वदेत्, एतावत्सु रात्रिन्दिवादिषु प्रक्षिप्तेषु तत् नोयुगं परिपूर्णं युगं भवति इति भावः। सम्प्रति तदेव नोयुगं मुहूर्त्तपरिमाणात्मकं यावता मुहूर्त्तपरिमाणेन प्रक्षिप्तेन परिपूर्णं युगं भवति तद्धि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षयं प्रश्नसूत्रमाह—'ता से ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह—'ता इक्कारसे'त्यादि, इदं चाष्टात्रिंशतो रात्रिन्दिवानां त्रिंशता गुणने शेषमुहूर्त्तादिप्रक्षेपे च यथोक्तं भवति, भावार्थश्चायं–एतावति मुहूर्त्तपरिमाणे प्रक्षिप्ते प्रागुक्तं नोयुगमुहूर्त्तपरिमाणं परिपूर्णयुगमुहूर्त्तपरिमाणं भवतीति। सम्प्रति युगस्यैव रात्रिन्दिवपरिमाणं मुहूर्त्तपरिमाणं च प्रतिपिपादयिषुः प्रश्ननिर्वचनसूत्राण्याह—'ता केवइयं ते'इत्यादि सुगमं, अधुना समस्तयुगविषये एव मुहूर्त्तगतद्वाषष्टिभागपरिज्ञानार्थं प्रश्नसूत्रमाह—'ता से ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह—'ता चोत्तीस'मित्यादि, इदमक्षरार्थमधिकृत्य सुगमं, भावार्थ स्वयम्—चतुष्पञ्चाशन्मुहूर्त्तसहस्राणां नवशताधिकानां द्वाषष्ट्या गुणनं क्रियते ततो यथोक्ता द्वाषष्टिभागसङ्ख्या भवतीति॥सम्प्रति कदाऽसौ चन्द्र(द्रादि)संवत्सरः सूर्य(र्यादि)संवत्सरेण सह समादिः समपर्यवसानो भवतीति जिज्ञासिषुः प्रश्नं करोति—

ता कता णं एते आदिच्चचंदसंवच्छरा समादीया समपज्जवसिया आहितेति वदेज्जा ?, ता सट्ठिं एए आदिच्चमासा बावट्ठिं एतेए चंदमासा, एस णं अद्धा छखुत्तकडा दुवालसभयिता तीसं एते आदिच्चसंवच्छरा एक्कतीसं एते चंदसंवच्छरा, तता णं एते आदिच्चचंदसंवच्छरा समादीया समपज्जवसिया आहितात्ति वदेज्जा। ता कता णं एते आदिच्चउडुचंदणक्खत्ता संवच्छरा समादीया समपज्जवसिया आहितेति वदेज्जा ?, ता सट्ठिं एते आदिच्चा मासा एगट्ठिं एते उडुमासा बावट्ठिं एते चंदमासा सत्तट्ठि एते नक्खत्ता मासा एस णं अद्धा दुवालस खुत्तकडा दुवालसभयिता सट्ठिं एते आदिच्चा संवच्छरा एगट्ठि एते उडुसंवच्छरा बावट्ठिं एते चंदा संवच्छरा सत्तट्ठिं एते नक्खत्ता संवच्छरा तता णं एते आदिच्चउडुचंदणक्खत्ता संवच्छरा समा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [१०५]

दीया समपज्जवसिया आहितेति वदेज्जा। ता कता णं एतें अभिवड्ढिआदिचउडुचंदणक्खत्ता संवच्छरा समादीया समपज्जवसिता आहितेति वदेज्जा ?, ता सत्तावण्णं मासा सत्त य अहोरत्ता एक्कारस य मुहुत्ता तेवीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स एते अभिवड्ढिता मासा सट्ठिं एते आदिचमासा एगट्ठि एते उडूमासा बावट्ठी एते चंदमासा सत्तट्ठी एते नक्खत्तमासा एस णं अद्धा छप्पण्णसत्तखुत्तकडा दुवालसभयिता सत्त सता चोत्ताला एते णं अभिवड्ढिता संवच्छरा, सत्त सता असीता एते णं आदिचा संवच्छरा, सत्त सता तेणउता एते णं उडूसंवच्छरा, अट्ठसत्ता छलुत्तरा एते णं चंदा संवच्छरा, एकसत्तरी अट्ठ सया एए णं नक्खत्ता संवच्छरा, तता णं एते अभिवड्ढितआदिचउडुचंदनक्खत्ता संवच्छरा समादीया समपज्जवसिया आहितेति वदेज्जा, ता णयट्ठताए णं चंदे संवच्छरे तिण्णि चउप्पण्णे राइंदियसते दुवालस य बावट्ठिभागे राइंदियस्स आहितेति वदेज्जा, ता अहातच्चेणं चंदे संवच्छरे तिण्णि चउप्पण्णे राइंदियसते पंच य मुहुत्ते पण्णासं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा (सूत्रं ७४) ॥

'ता कया ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता सट्ठि'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एते–एकयुगवर्त्तिनः षष्टिः सूर्यमासाः एते च एकयुगान्तर्वर्त्तिन एव द्वाषष्टिश्चन्द्रमासाः, एतावती अद्धा षट्कृत्वः क्रियते–षड्भिर्गुण्यते, ततो द्वादशभिर्भज्यते, द्वादशभिश्च भागे हृते त्रिंशदेते सूर्यसंवत्सरा भवन्ति एकत्रिंशदेते चन्द्रसंवत्सराः, तदा एतावति कालेऽतिक्रान्ते एते आदित्यचन्द्रसंवत्सराः समादयः–समप्रारम्भाः समपर्यवसिताः–समपर्यवसाना आख्याता इति वदेत्, समपर्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वसाने किमुक्तं भवति?–एते चन्द्रसूर्यसंवत्सरा विवक्षितस्यादौ समाः–समप्रारम्भप्रारब्धाः सन्तस्तत आरभ्य षष्टियुगपर्यवसाने समपर्यवसाना भवन्ति, तथाहि—एकस्मिन् युगे त्रयश्चन्द्रसंवत्सरा द्वौ चाभिवर्द्धितसंवत्सरौ, तौ च प्रत्येकं त्रयोदश-चन्द्रमासात्मकौ, ततः प्रथमयुगे पञ्च चन्द्रसंवत्सरा द्वौ च चन्द्रमासौ, द्वितीये युगे दश चन्द्रसंवत्सराश्चत्वारश्चन्द्रमासाः, एवं प्रतियुगं मासद्विकवृद्ध्या षष्ठयुगपर्यन्ते परिपूर्णा एकत्रिंशच्चन्द्रसंवत्सरा भवन्ति, 'ता कया ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कदा णमिति वाक्यालङ्कारे आदित्यऋतुचन्द्रनक्षत्रसंवत्सराः समादिकाः समपर्यवसिता आख्याता इति वदेत्?, भगवानाह—'ता सट्ठी'इत्यादि, षष्टिरेते एकयुगान्तवर्त्तिनः आदित्यमासा एकषष्टिरेते ऋतुमासाः द्वाषष्टिरेते चन्द्र-मासाः सप्तषष्टिरेते नक्षत्रमासाः, एतावती प्रत्येकमद्धा द्वादशकृत्वः कृता द्वादशभिर्गुणिता इत्यर्थः तदनन्तरं संवत्सरा-नयनाय द्वादशभिर्भक्ता तत एवमेते षष्टिरादित्यसंवत्सरा एकषष्टिरेते ऋतुसंवत्सराः द्वाषष्टिरेते चन्द्रसंवत्सरा सप्तषष्टि-रेते नक्षत्रसंवत्सरास्तदा–द्वादशयुगातिक्रमे इत्यर्थः, एते आदित्यऋतुचन्द्रनक्षत्रसंवत्सराः समादिकाः समपर्यवसिता आख्याता इति वदेत्, एतदुक्तं भवति—विवक्षितयुगस्यादावेते चत्वारोऽपि समाः–समारब्धप्रारम्भाः सन्तस्तत आरभ्य द्वादशयुगपर्यन्ते समपर्यवसाना भवन्ति, अर्वाक् चतुर्णामन्यतमस्यावश्यंभावेन कतिपयमासानामधिकतया युगपत् सर्वेषां समपर्यवसानत्वासम्भवात्, 'ता कया ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–'ता सत्तावण्ण'मित्यादि, सप्तपञ्चाशन्मासाः सप्त अहोरात्रा एकादश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एतावत्प्रमाणा एते एकयुगान्तर्वर्तिनोऽभि-वर्द्धितमासाः षष्टिरेते सूर्यमासाः एकषष्टिरेते ऋतुमासा द्वाषष्टिरेते चन्द्रमासाः सप्तषष्टिरेते नक्षत्रमासाः, एतावती प्रत्ये-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [१०५]

कमद्धा षट्पञ्चाशदधिकशतकृत्वः क्रियते, कृत्वा च द्वादशभिर्भज्यते, द्वादशभिश्च भागे हृते चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तश-
तसङ्ख्याः ७४४ एतेऽभिवर्द्धितसंवत्सराः, अशीत्यधिकसप्तशतसङ्ख्याः ७८० एते आदित्यसंवत्सराः, त्रिनवत्यधिकसप्तश-
तसङ्ख्याः ७९३ एते ऋतुसंवत्सराः, षडुत्तराष्टशतसङ्ख्या ८०६ एते चन्द्रसंवत्सराः, एकसप्तत्यधिकाष्टशतसङ्ख्या ८७१ नक्ष-
त्रसंवत्सराः, तदा णमिति वाक्यालङ्कारे एतेऽभिवर्द्धितादित्यऋतुचन्द्रनक्षत्रसंवत्सराः समादिकाः समपर्यवसिता आ-
ख्याता इति वदेत्, अर्वाक् कस्यापि कतिपयमासाधिकत्वेन युगपत्सर्वेषां समपर्यवसानत्वासम्भवात् । सम्प्रति यथो-
क्तमेव चन्द्रसंवत्सरपरिमाणं गणितभेदमधिकृत्य प्रकारद्वयेनाह—'ता नयट्ठयाए' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, नयार्थतया-
परतीर्थिकानामपि सम्मतस्य नयस्य चिन्तया चन्द्रसंवत्सरस्त्रीण्यहोरात्रशतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि द्वादश च द्वाषष्टि-
भागा अहोरात्रस्येत्यादिराख्यात इति वदेत्, याथातथ्येन पुनश्चिन्त्यमानश्चन्द्रसंवत्सरस्त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि चतुष्प-
ञ्चाशदधिकानि पञ्च च मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा इत्येवंप्रमाण आख्यात इति वदेत्, तत्राहोरात्र-
परिमाणमुभयत्रापि तावदेकरूपं, ये तूपरितना द्वादश द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते,
जातानि त्रीणि शतानि षष्ट्यधिकानि ३६०, तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्ति पञ्चाशन्मु-
हूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागा इति । तदेवं संवत्सरवक्तव्यता सप्रपञ्चमुक्ता, साम्प्रतं ऋतुवक्तव्यतामाह—

तत्थ खलु इमे छ उडू पं० तं०–पाउसे वरिसारत्ते सरते हेमंते वसंते गिम्हे, ता सव्वेवि णं एते चंदउडू दुवे
२ मासाति चउप्पण्णेणं २ आदाणेणं गणिज्जमाणा सातिरेगाइं एगूणसट्ठि २ राइंदियाइं राइंदियग्गेणं आहि-

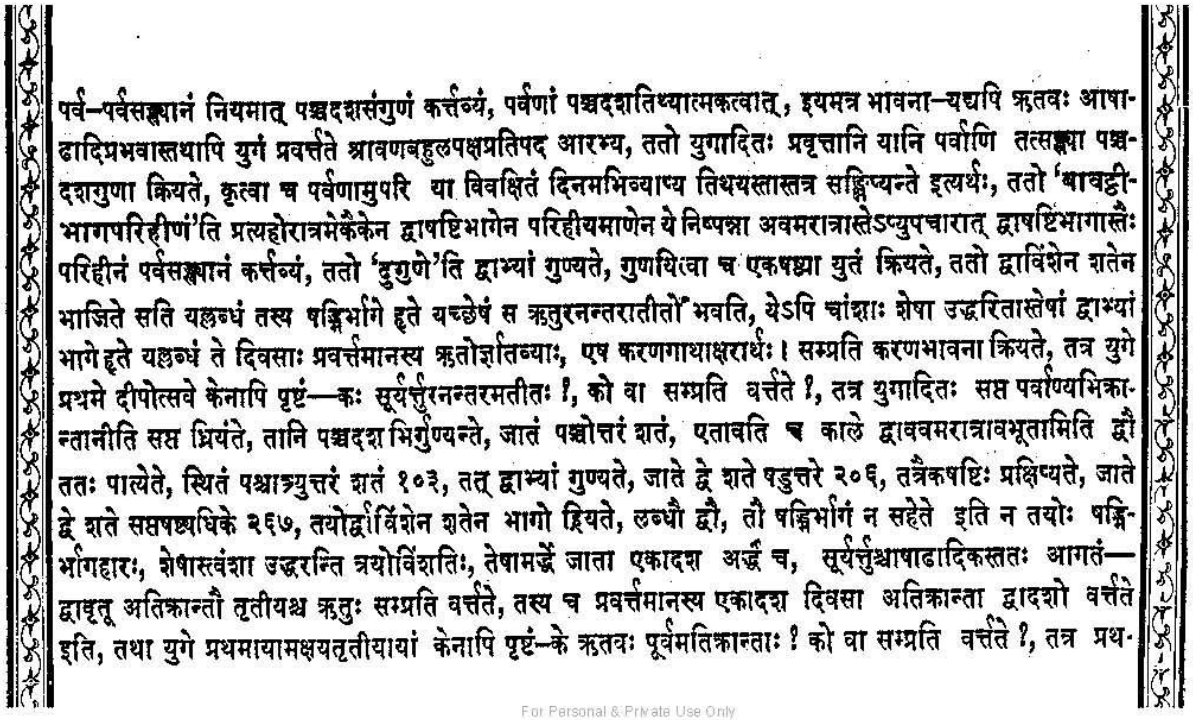
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेति वदेज्जा, तत्थ खलु इमे छ ओमरत्ता पं० तं०–ततिए पवे सत्तमे पवे एक्कारसमे पवे पन्नरसमे पवे एगूणवीसतिमे पवे तेवीसतिमे पवे, तत्थ खलु इमे छ अतिरत्ता पं० तं०–चउत्थे पवे अट्ठमे पवे बारसमे पवे सोलसमे पवे वीसतिमे पवे चउवीसतिमे पवे। छच्चेव य अइरत्ता आइचाओ हवंति माणाइं। छच्चेव ओमरत्ता चंदाहि हवंति माणाहिं ॥ १ ॥ (सूत्रं ७५)

'तत्थ खलु' इत्यादि, तत्रास्मिन् मनुष्यलोके प्रतिसूर्यायनं प्रतिचन्द्रायनं च खल्विमे षट् ऋतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रावृट् वर्षारात्रः शरत् हेमन्तो वसन्तो ग्रीष्मः, इह लोकेऽन्यथाभिधाना ऋतवः प्रसिद्धास्तद्यथा—प्रावृट् शरद् हेमन्तः शिशिरो वसन्तो ग्रीष्मश्चेति, जिनमते तु यथोक्ताभिधाना एव ऋतवः, तथा चोक्तम्—"पाउस वासारत्तो सरओ हेमंत वसंत गिम्हो य। एए खलु छप्पि उऊ जिणवरदिट्ठा मए सिट्ठा ॥ १ ॥" इह ऋतवो द्विधा, तद्यथा—सूर्यर्त्तवश्चन्द्रर्त्तवश्च, तत्र प्रथमतः सूर्यर्तुवक्तव्यता प्रस्तूयते, तत्रैकैकस्य सूर्यर्त्तोः परिमाणं द्वौ सूर्यमासावेकषष्टिरहोरात्रा इत्यर्थः, एकैकस्य सूर्यमासस्य सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणत्वात्, उक्तं चैतदन्यत्रापि–"बे आइच्चा मासा एगट्ठी ते भवंतहोरत्ता। एयं उउपरिमाणं अवगयमाणा जिणा बिंति ॥ १ ॥" इह पूर्वाचार्यैरीप्सितसूर्यर्त्वानयने करणमुक्तं तद्विनेयजनानुग्रहायोपदर्श्यते—सूरउउस्साणयणे पवं पन्नरससंगुणं नियमा। तहिं संखित्तं संतं बावट्ठीभागपरिहीणं ॥ १ ॥ दुगुणेकट्ठीइ जुयं बावीससएण भाइए नियमा। जं लद्धं तस्स पुणो छहि हियसेसं उऊ होइ ॥ २ ॥ सेसाणं अंसाणं बेहि उ भागेहि तेसिं जं लद्धं। ते दिवसा नायव्वा होंति पवत्तस्स अयणस्स" ॥१॥ आसां व्याख्या—सूर्यस्य–सूर्यसम्बन्धिन ऋतोरानयने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:



पर्व–पर्वसङ्ख्यानं नियमात् पञ्चदशसंगुणं कर्त्तव्यं, पर्वणां पञ्चदशतिथ्यात्मकत्वात्, इयमत्र भावना–यद्यपि ऋतवः आषाढादिप्रभवास्तथापि युगं प्रवर्त्तते श्रावणबहुलपक्षप्रतिपद आरभ्य, ततो युगादितः प्रवृत्तानि यानि पर्वाणि तत्सङ्ख्या पञ्चदशगुणा क्रियते, कृत्वा च पर्वणामुपरि या विवक्षितं दिनमभिव्याप्य तिथयस्तास्तत्र सङ्क्षिप्यन्ते इत्यर्थः, ततो 'बावट्ठीभागपरिहीणं'ति प्रत्यहोरात्रमेकैकेन द्वाषष्टिभागेन परिहीयमाणेन ये निष्पन्ना अवमरात्रास्तेऽप्युपचारात् द्वाषष्टिभागास्तैः परिहीनं पर्वसङ्ख्यानं कर्त्तव्यं, ततो 'दुगुणे'ति द्वाभ्यां गुण्यते, गुणयित्वा च एकषष्ट्या युतं क्रियते, ततो द्वात्रिंशेन शतेन भाजिते सति यल्लब्धं तस्य षड्भिर्भागे हृते यच्छेषं स ऋतुरनन्तरातीतो भवति, येऽपि चांशाः शेषा उद्धरितास्तेषां द्वाभ्यां भागे हृते यल्लब्धं ते दिवसाः प्रवर्त्तमानस्य ऋतोर्ज्ञातव्याः, एष करणगाथाक्षरार्थः। सम्प्रति करणभावना क्रियते, तत्र युगे प्रथमे दीपोत्सवे केनापि पृष्टं—कः सूर्यर्त्तुरनन्तरमतीतः ?, को वा सम्प्रति वर्त्तते ?, तत्र युगादितः सप्त पर्वाण्यभिक्रान्तानीति सप्त ध्रियंते, तानि पञ्चदश भिर्गुण्यन्ते, जातं पञ्चोत्तरं शतं, एतावति च काले द्वावयमरात्रावभूतामिति द्वौ ततः पात्येते, स्थितं पञ्चात्र्युत्तरं शतं १०३, तत् द्वाभ्यां गुण्यते, जाते द्वे शते षडुत्तरे २०६, तत्रैकषष्टिः प्रक्षिप्यते, जाते द्वे शते सप्तषष्ट्यधिके २६७, तयोर्द्वात्रिंशेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धौ द्वौ, तौ षड्भिर्भागं न सहेते इति न तयोः षड्भिर्भागहारः, शेषास्त्वंशा उद्धरन्ति त्रयोविंशतिः, तेषामर्द्धे जाता एकादश अर्द्धं च, सूर्यर्त्तुश्चाषाढादिकस्ततः आगतं—द्वावृतू अतिक्रान्तौ तृतीयश्च ऋतुः सम्प्रति वर्त्तते, तस्य च प्रवर्त्तमानस्य एकादश दिवसा अतिक्रान्ता द्वादशो वर्त्तते इति, तथा युगे प्रथमायामक्षयतृतीयायां केनापि पृष्टं–के ऋतवः पूर्वमतिक्रान्ताः ? को वा सम्प्रति वर्त्तते ?, तत्र प्रथ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा

दीप अनुक्रम [१०६--१०७]

॥२१०॥

माया अक्षयतृतीयायाः प्राक् युगस्यादित आरभ्य पर्वाण्यतिक्रान्तानि एकोनविंशतिः, ततः एकोनविंशतिर्धृत्वा पञ्चदशभिर्गुण्यते, जाते द्वे शते पञ्चाशीत्यधिके २८५, अक्षयतृतीयायां किल पृष्टमिति पर्वणामुपरि तिस्रस्तिथयः प्रक्षिप्यन्ते, जाते द्वे शते अष्टाशीत्यधिके २८८, तावति च काले अवमरात्राः पञ्च भवन्ति, ततः पञ्च पात्यन्ते, जाते द्वे शते त्र्यशीत्यधिके २८३, ते द्वाभ्यां गुण्येते, जातानि पञ्च शतानि षट्षष्ट्यधिकानि ५६६, तान्येकषष्टिसहितानि क्रियन्ते, जातानि षट् शतानि सप्तविंशत्यधिकानि ६२७, तेषां द्वाविंशेन शतेन भागहरणं, लब्धाः पञ्च, ते च षड्भिर्भागं न सहन्ते इति न तेषां षड्भिर्भागहारः, शेषास्त्वंशा उद्धरन्ति सप्तदश, तेषामर्द्धे जाताः सार्द्धा अष्टौ, आगतं–पञ्च ऋतवोऽतिक्रान्ताः षष्ठस्य च ऋतोः प्रवर्त्तमानस्याष्टौ दिवसा गता नवमो वर्त्तते, तथा युगे द्वितीये दीपोत्सवे केनापि पृष्टं—कियन्त ऋतवोऽतिक्रान्ताः, को वा सम्प्रति वर्त्तते ?, तत्रैतावति काले पर्वाण्यतिक्रान्तान्येकत्रिंशत्, तानि पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते, जातानि चत्वारि शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि ४६५, अवमरात्राश्चैतावति काले व्यत्यक्रामन्नष्टौ, ततोऽष्टौ पात्यन्ते, स्थितानि शेषाणि चत्वारि शतानि सप्तपञ्चाशदधिकानि ४५७, तानि द्विगुणीक्रियन्ते, जातानि नव शतानि चतुर्दशोत्तराणि ९१४, तेष्वेकषष्टिभागप्रक्षेपे जातानि पञ्चसप्तत्यधिकानि नव शतानि ९७५, तेषां द्वाविंशेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धाः सप्त, उपरिष्टादंशा उद्धरन्ति एकविंशं शतं १२१, तस्य द्वाभ्यां भागे हृते लब्धाः षष्टिः सार्द्धाः, सप्तानां च ऋतूनां षड्भिर्भागे हृते लब्ध एक एकः उपरिष्टात्तिष्ठति, आगतं–एकः संवत्सरोऽतिक्रान्त एकस्य च संवत्सरस्योपरि प्रथम ऋतुः प्रावृड्भामाऽतिगतो, द्वितीयस्य च षष्टिर्दिनान्यतिक्रान्तानि, एकषष्टितमं वर्त्तते इति, एव-

॥२१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

मन्यत्रापि भावना कार्या। अथैतेषां ऋतूनां मध्ये क ऋतुः कस्यां तिथौ समाप्तिमुपयातीति परस्य प्रश्नावकाशमाशङ्क्य तत्परिज्ञानाय पूर्वाचार्यैरिदं करणमभाणि—"इच्छाउऊ बिगुणिओ रूवूणो बिगुणिओ उ पवाणि। तस्सद्धं होइ तिही जत्थ समत्ता उऊ तीसं ॥१॥" अस्या गाथाया व्याख्या—यस्मिन् ऋतौ ज्ञातुमिच्छा (स इच्छर्तुः)स ऋतुर्म्रियते इत्यर्थः, ततः स द्विगुणितः क्रियते, द्वाभ्यां गुण्यते इति भावः, द्विगुणितः सन् रूपोनः क्रियते, ततः पुनरपि स द्वाभ्यां गुण्यते, गुणयित्वा च प्रतिराश्यते, द्विगुणितश्च सन् यावान् भवति तावन्ति पर्वाणि द्रष्टव्यानि, तस्य च द्विगुणीकृतस्य प्रतिराशितस्यार्द्धं क्रियते, तच्चार्द्धं यावद्भवति तावत्यस्तिथयः प्रतिपत्तव्याः, यासु युगभाविनस्त्रिंशदपि ऋतवः समाप्ताः, समाप्तिमैयरुरिति करणगाथाक्षरार्थः। सम्प्रति भावना क्रियते–किल प्रथम ऋतुर्ज्ञातुमिष्टो यथा युगे कस्यां तिथौ प्रथमः प्रावृड्लक्षण ऋतुः समाप्तिमुपयातीति ?, तत्र एको म्रियते, स द्वाभ्यां गुण्यते, जाते द्वे रूपे, ते रूपोने क्रियेते, जात एककः, स एव च भूयोऽपि द्वाभ्यां गुण्यते, जाते द्वे रूपे, ते प्रतिराश्येते, त्रयोरर्द्धे जातमेकं रूपं, आगतं–युगादौ द्वे पर्वणी अतिक्रम्य प्रथमायां तिथौ प्रतिपदि प्रथमऋतुः प्रावृड्नामा समाप्तिमगमत्, तथा द्वितीये ऋतौ ज्ञातुमिच्छति द्वौ स्थाप्येते तयोर्द्वाभ्यां गुणने जाताश्चत्वारस्ते रूपोनाः क्रियन्ते जातास्त्रयस्ते भूयो द्वाभ्यां गुण्यन्ते जाताः षट् ते प्रतिराश्यन्ते प्रतिराशितानां चार्द्धे क्रियते जातास्त्रयः, आगतं–युगादितः षट् पर्वाण्यतिक्रम्य तृतीयायां तिथौ द्वितीय ऋतुः समाप्तिमुपायात्, तथा तृतीये ऋतौ ज्ञातुमिच्छेति त्रयो म्रियन्ते ते द्वाभ्यां गुण्यन्ते जाताः षट् ते रूपोनाः क्रियन्ते जाताः पञ्च ते भूयो द्वाभ्यां गुण्यन्ते जाता दश ते प्रतिराश्यन्ते प्रतिराशितानां चार्द्धे लब्धाः पञ्च, आगतं–युगादित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

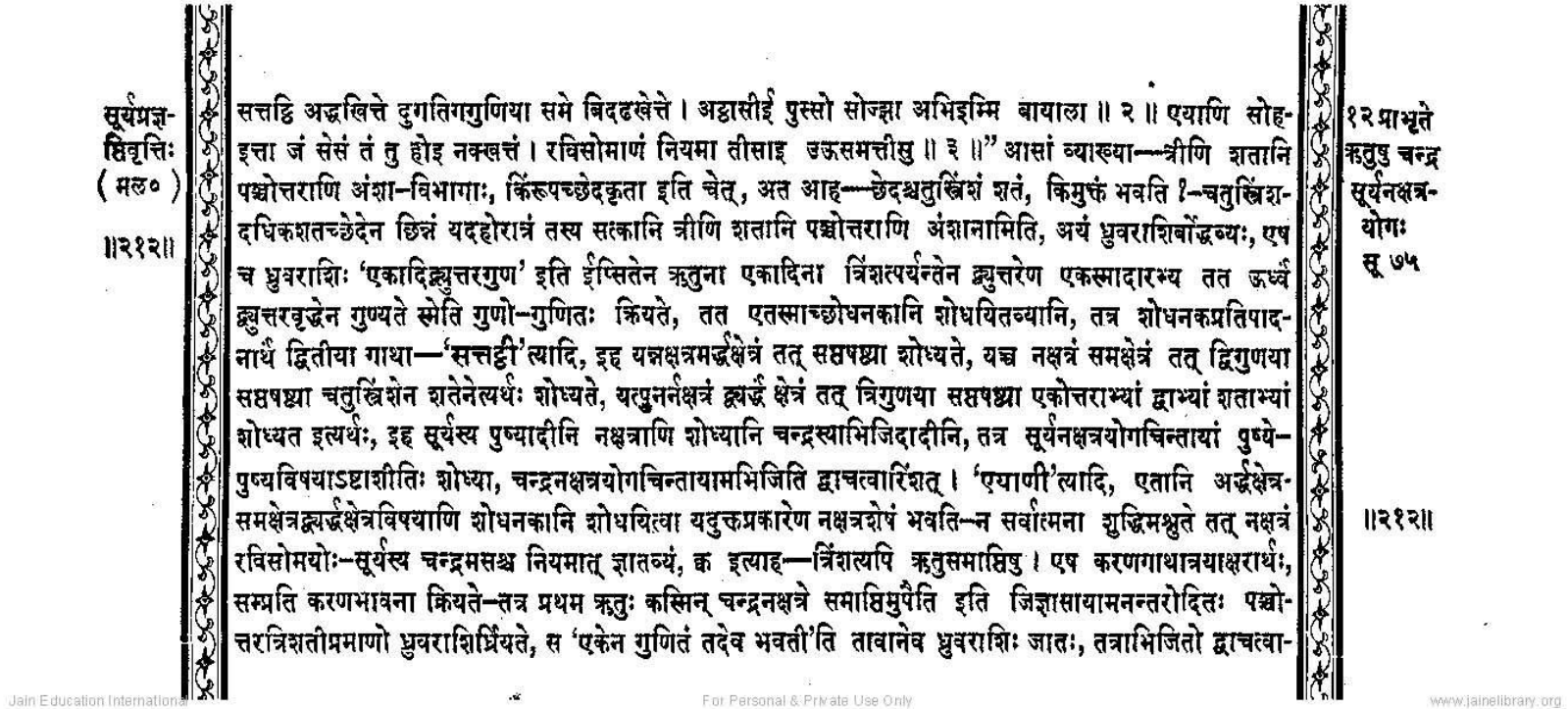
आरभ्य दशानां पर्वणामतिक्रमे पञ्चम्यां तिथौ तृतीय ऋतुः समाप्तिमियाय, तथा षष्ठे ऋतौ ज्ञातुमिष्यमाणे षट् स्थाप्यन्ते ते द्वाभ्यां गुण्यन्ते जाता द्वादश ते रूपोनाः क्रियन्ते जाता एकादश ते द्विगुण्यन्ते जाता द्वाविंशतिः सा प्रतिराश्यते प्रतिराशितायां अर्द्धं क्रियते जाता एकादश, आगतं–युगादित आरभ्य द्वाविंशतिपर्वणामतिक्रमे एकादश्यां तिथौ षष्ठ ऋतुः समाप्तिमियाय, तथा युगे नवमे ऋतौ ज्ञातुमिच्छति ततो नव स्थाप्यन्ते ते द्वाभ्यां गुण्यन्ते जाता अष्टादश ते रूपोनाः क्रियन्ते जाताः सप्तदश ते भूयो द्विगुण्यन्ते जाता चतुस्त्रिंशत् सा प्रतिराश्यते प्रतिराश्य च तस्यार्द्धं क्रियते जाताः सप्तदश, आगतं–युगादितः चतुस्त्रिंशत् पर्वाण्यतिक्रम्य द्वितीये संवत्सरे पौषमासे शुक्लपक्षे द्वितीयस्यां तिथौ नवम ऋतुः परिसमाप्तिं गच्छति, तथा त्रिंशत्तमे ऋतौ जिज्ञासिते त्रिंशद् ध्रियते सा द्विगुणीक्रियते जाता षष्टिः सा रूपोना क्रियते जाता एकोनषष्टिः सा भूयो द्वाभ्यां गुण्यते जातमष्टादशोत्तरं शतं तत् प्रतिराश्यते प्रतिराश्य च तस्यार्द्धं क्रियते जाता एकोनषष्टिः, आगतं–युगादितोऽष्टादशोत्तरं पर्वशतमतिक्रम्य एकोनषष्टितमायां तिथौ, किमुक्तं भवति ?–पञ्चमे संवत्सरे प्रथमे आषाढमासे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां त्रिंशत्तम ऋतुः समाप्तिमुपायासीत्, व्यवहारतः प्रथमाषाढपर्यन्ते इत्यर्थः, एतस्यैवार्थस्य सुखप्रतिपत्त्यर्थमियं पूर्वाचार्योपदर्शिता गाथा—"एक्कंतरिया मासा तिही य जासु ता उऊ समप्पंति । आसाढाई मासा भद्दवयाई तिही नेया ॥ १ ॥" अस्या व्याख्या—इह सूर्यर्तुचिन्तायां मासा आषाढादयो द्रष्टव्याः, आषाढमासादारभ्य ऋतूनां प्रथमतः प्रवर्त्तमानत्वात्, तिथयः सर्वा अपि भाद्रपदाद्याः, भाद्रपदादिषु मासेषु प्रथमादीनामृतूनां परिसमाप्तत्वात्, तत्र येषु मासेषु यासु च तिथिषु ऋतवः प्रावृडादय सूर्यसत्काः परिसमाप्नुवन्ति ते आषा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

ढादयो मासास्ताश्च तिथयो भाद्रपदाद्या–भाद्रपदादिमासानुगताः सर्वा अप्येकान्तरिता वेदितव्याः, तथाहि—प्रथम ऋतुर्भाद्रपदमासे समाप्तिमुपयाति, तत एकं मासमश्वयुग्लक्षणमपान्तराले मुक्त्वा कार्तिके मासे द्वितीय ऋतुः परिसमाप्तिमियर्त्ति, एवं तृतीयः पौषमासे चतुर्थः फाल्गुने मासे पञ्चमो वैशाखे मासे षष्ठ आषाढे, एवं शेषा अपि ऋतव एष्वेव षट्सु मासेषु एकान्तरितेषु व्यवहारतः परिसमाप्तिमाप्नुवन्ति, न शेषेषु मासेषु, तथा प्रथम ऋतुः प्रतिपदि समाप्तिमेति द्वितीयस्तृतीयायां तृतीयः पञ्चम्यां चतुर्थः सप्तम्यां पञ्चमो नवम्यां षष्ठ एकादश्यां सप्तमस्त्रयोदश्यां अष्टमः पञ्चदश्यां, एते सर्वेऽपि ऋतवो बहुलपक्षे, ततो नवम ऋतुः शुक्लपक्षे द्वितीयायां दशमश्चतुर्थ्यामेकादशः षष्ठ्यां द्वादशोऽष्टम्यां त्रयोदशो दशम्यां चतुर्दशो द्वादश्यां पञ्चदशश्चतुर्दश्यां, एते सप्त ऋतवः शुक्लपक्षे, एते कृष्णशुक्लपक्षभाविनः पञ्चदशापि ऋतवो युगस्यार्द्धे भवन्ति, तत उक्तक्रमेणैव शेषा अपि पञ्चदश ऋतवो युगस्यार्द्धे भवन्ति, तद्यथा—षोडश ऋतुर्बहुलपक्षे प्रतिपदि सप्तदशः तृतीयायामष्टादशः पञ्चम्यामेकोनविंशतितमः सप्तम्यां विंशतितमो नवम्यामेकविंशतितमः एकादश्यां द्वाविंशतितमः त्रयोदश्यां त्रयोविंशतितमः पञ्चदश्यां एते षोडशादयस्त्रयोविंशतिपर्यन्ता अष्टौ बहुलपक्षे, ततः शुक्लपक्षे द्वितीयायां चतुर्विंशतितमः पञ्चविंशतितमश्चतुर्थ्यां षड्विंशतितमः षष्ठ्यां सप्तविंशतितमोऽष्टम्यां अष्टाविंशतितमो दशम्यां एकोनत्रिंशत्तमो द्वादश्यां त्रिंशत्तमश्चतुर्दश्यां, तदेवमेते सर्वेऽपि ऋतवो युगे मासेष्वेकान्तरितेषु तिथिष्वपि चैकान्तरितासु भवन्ति, एतेषां च ऋतूनां चन्द्रनक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थं सूर्यनक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थं च पूर्वाचार्यैः करणमुक्तं, ततस्तदपि विनेयजनानुग्रहाय दर्श्यते–"तिन्नि सया पंचहिगा अंसा छेओ सयं च चोत्तीसं । एगाइबिउत्तरगुणो धुवरासी होइ नायवो ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२१२॥

सत्तट्ठि अद्धखित्ते दुगतिगगुणिया समे बिदढखेत्ते । अट्ठासीई पुस्सो सोज्झा अभिइम्मि बायाला ॥ २ ॥ एयाणि सोहइत्ता जं सेसं तं तु होइ नक्खत्तं । रविसोमाणं नियमा तीसाइ उऊसमत्तीसु ॥ ३ ॥" आसां व्याख्या—त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि अंशा–विभागाः, किंरूपच्छेदकृता इति चेत्, अत आह—छेदश्चतुस्त्रिंशं शतं, किमुक्तं भवति ?–चतुस्त्रिंशदधिकशतच्छेदेन छिन्नं यदहोरात्रं तस्य सत्कानि त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि अंशानामिति, अयं ध्रुवराशिर्बोद्धव्यः, एष च ध्रुवराशिः 'एकादिद्व्युत्तरगुण' इति ईप्सितेन ऋतुना एकादिना त्रिंशत्पर्यन्तेन द्व्युत्तरेण एकस्मादारभ्य तत ऊर्ध्वं द्व्युत्तरवृद्धेन गुण्यते स्मेति गुणो–गुणितः क्रियते, तत एतस्माच्छोधनकानि शोधयितव्यानि, तत्र शोधनकप्रतिपादनार्थं द्वितीया गाथा—'सत्तट्ठी'त्यादि, इह यन्नक्षत्रमर्द्धक्षेत्रं तत् सप्तषष्ट्या शोध्यते, यच्च नक्षत्रं समक्षेत्रं तत् द्विगुणया सप्तषष्ट्या चतुस्त्रिंशेन शतेनेत्यर्थः शोध्यते, यत्पुनर्नक्षत्रं द्व्यर्द्धं क्षेत्रं तत् त्रिगुणया सप्तषष्ट्या एकोत्तराभ्यां द्वाभ्यां शताभ्यां शोध्यत इत्यर्थः, इह सूर्यस्य पुष्यादीनि नक्षत्राणि शोध्यानि चन्द्रस्याभिजिदादीनि, तत्र सूर्यनक्षत्रयोगचिन्तायां पुष्ये–पुष्यविषयाऽष्टाशीतिः शोध्या, चन्द्रनक्षत्रयोगचिन्तायामभिजिति द्वाचत्वारिंशत् । 'एयाणी'त्यादि, एतानि अर्द्धक्षेत्रसमक्षेत्रद्व्यर्द्धक्षेत्रविषयाणि शोधनकानि शोधयित्वा यदुक्तप्रकारेण नक्षत्रशेषं भवति–न सर्वात्मना शुद्धिमश्नुते तत् नक्षत्रं रविसोमयोः–सूर्यस्य चन्द्रमसश्च नियमात् ज्ञातव्यं, क्व इत्याह—त्रिंशत्यपि ऋतुसमाप्तिषु । एष करणगाथात्रयाक्षरार्थः, सम्प्रति करणभावना क्रियते–तत्र प्रथम ऋतुः कस्मिन् चन्द्रनक्षत्रे समाप्तिमुपैति इति जिज्ञासायामनन्तरोदितः पञ्चोत्तरत्रिशतीप्रमाणो ध्रुवराशिर्ग्रियते, स 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति तावानेव ध्रुवराशिः जातः, तत्राभिजितो द्वाचत्वा-

१२ प्राभृते ऋतुषु चन्द्र सूर्यनक्षत्र-योगः सू ७५

॥२१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा

दीप अनुक्रम [१०६--१०७]

रिंशत् शुद्धा, स्थिते पश्चाद् द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके २६३, ततश्चतुस्त्रिंशेन शतेन श्रवणः शुद्धः, शेषं जातमेकोनत्रिंशं शतं १२९, तेभ्यश्च धनिष्ठा न शुद्ध्यति, तत आगतं–एकोनत्रिंशं शतं चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानां धनिष्ठासत्कमवगाह्य चन्द्रः प्रथमं सूर्यंचुं परिसमापयति, यदि द्वितीयसूर्यंचुजिज्ञासा तदा स ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणस्त्रिभिर्गुण्यते, जातानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, तत्राभिजितो द्वाचत्वारिंशच्छुद्धा, स्थितानि शेषाण्यष्टौ शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि ८७३, ततश्चतुस्त्रिंशेन शतेन श्रवणः शुद्धिमुपगतः, स्थितानि शेषाणि सप्त शतान्येकोनचत्वारिंशदधिकानि ७३९, ततोऽपि चतुस्त्रिंशेन शतेन धनिष्ठा शुद्धा, जातानि षट् शतानि पञ्चोत्तराणि ६०५, ततोऽपि सप्तषष्ट्या शतभिषक् शुद्धा, स्थितानि पञ्च शतान्यष्टात्रिंशदधिकानि ५३८, तेभ्योऽपि चतुस्त्रिंशेन शतेन पूर्वभद्रपदा शुद्धा, स्थितानि चत्वारि शतानि चतुरधिकानि ४०४, तेभ्योऽपि द्वाभ्यां शताभ्यामेकोत्तराभ्यामुत्तरभद्रपदा शुद्धा, स्थिते शेषे त्र्युत्तरे द्वे शते २०३, ताभ्यामपि चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन रेवती शुद्धा, स्थिता पञ्चादेकोनसप्ततिः ६९, आगतमश्विनीनक्षत्रस्यैकोनसप्ततिं चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानामवगाह्य द्वितीयं सूर्यंचुं चन्द्रः परिसमापयति, एवं शेषेष्वपि ऋतुषु भावनीयं, त्रिंशत्तमसूर्यंचुजिज्ञासायां स एव ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयसङ्ख्य एकोनषष्ट्या गुण्यते, जातानि सप्तदश सहस्राणि नव शतानि पञ्चनवत्यधिकानि १७९९५, तत्र षट्त्रिंशता शतैः षष्ट्यधिकैरेको नक्षत्रपर्यायः शुद्ध्यति, ततः षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि चतुर्भिर्गुणयित्वा ततः शोध्यन्ते, स्थितानि पञ्चाग्रयस्त्रिंशच्छतानि पञ्चपञ्चाशदधिकानि ३३५५ ताभ्यां द्वात्रिंशता शतैः पञ्चविंशत्यधिकैरभिजिदादीनि मूलपर्यन्तानि शुद्धानि स्थितं पञ्चात्रिंशदधिकं शतं १३० तेन च पूर्वा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

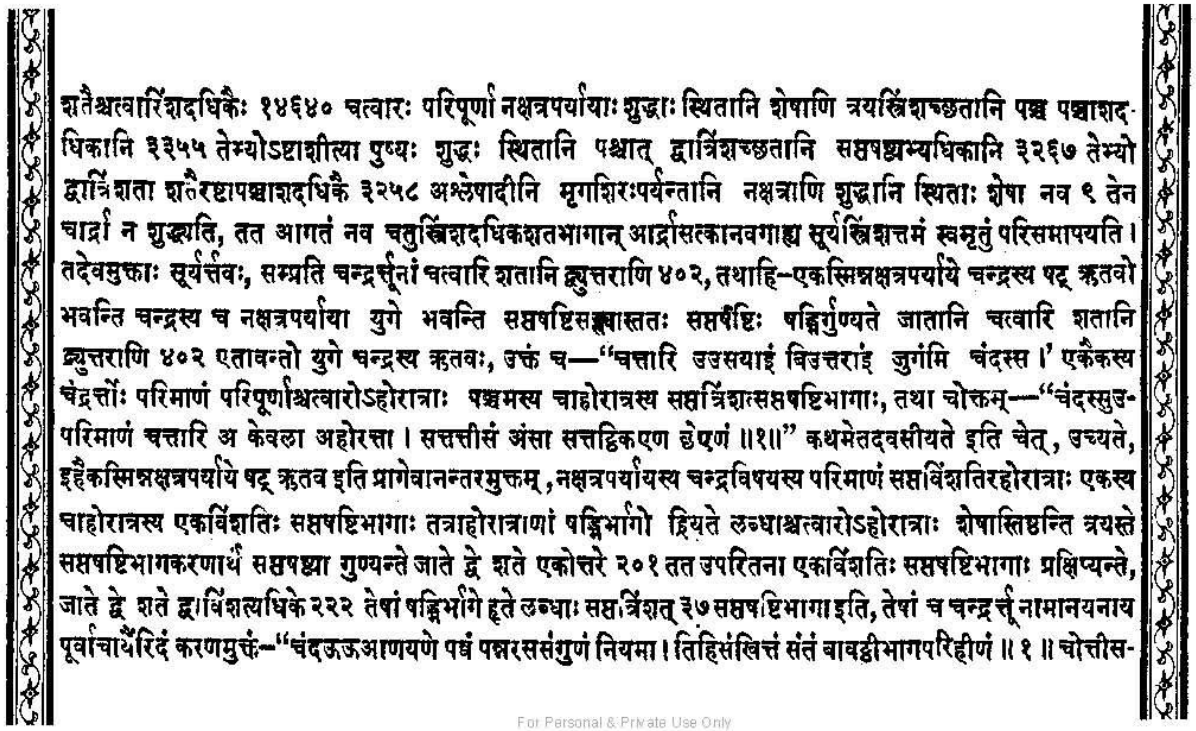
पाढा न शुद्ध्यति, तत आगतं त्रिंशदधिकं शतं चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानां पूर्वाषाढासत्कमवगाह्य चन्द्रस्त्रिंशत्तमं सूर्यस्तु परिसमापयति । सम्प्रति सूर्यनक्षत्रयोगभावना क्रियते, स एव पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणो ध्रुवराशिः प्रथमसूर्यर्त्तुजिज्ञासायामेकेन गुण्यते 'एकेन च गुणितं तदेव भवती'ति जातस्तावानेव ततः पुष्यसत्का अष्टाशीतिः शुद्धा स्थिते शेषे द्वे शते सप्तदशोत्तरे २१७ ततः सप्तषष्ट्या अश्लेषा शुद्धा स्थितं शेषं सार्द्धं शतं १५० ततोऽपि चतुस्त्रिंशच्छतेन मघा शुद्धा स्थिताः पश्चात् षोडश, आगतं पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्य षोडश चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानवगाह्य सूर्यः प्रथमं स्वमृतुं परिसमापयति, तथा द्वितीयसूर्यर्त्तुजिज्ञासायां स ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणस्त्रिभिर्गुण्यते जातानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५ ततोऽष्टाशीत्या पुष्यः शुद्धिमगमत्, स्थितानि पञ्चादष्टौ शतानि सप्तविंशत्यधिकानि ८२७ तेभ्यः सप्तषष्ट्या अश्लेषा शुद्धा स्थितानि शेषाणि सप्त शतानि पञ्चधिकानि ७६० तेभ्यश्चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन मघा शुद्धा स्थितानि शेषाणि षट् शतानि षड्विंशत्यधिकानि ६२६ तेभ्यश्चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन पूर्वफाल्गुनी शुद्धा स्थितानि पश्चाच्चत्वारि शतानि द्विनवत्यधिकानि ४९२ ततोऽपि द्वाभ्यां शताभ्यामेकोत्तराभ्यामुत्तरफाल्गुनी शुद्धा स्थिते द्वे शते एकनवत्यधिके २९१ ततोऽपि चतुस्त्रिंशेन शतेन हस्तः शुद्धः स्थितं पश्चात् सप्तपञ्चाशदधिकं शतं १५७ ततोऽपि चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन चित्रा शुद्धा स्थिता शेषास्त्रयोविंशतिः २३, आगतं स्वातेस्त्रयोविंशतिं सप्तषष्टिभागानवगाह्य सूर्यो द्वितीयं स्वमृतुं परिसमापयति, एवं शेषेष्वपि ऋतुषु भावनीयं, त्रिंशत्तमसूर्यर्त्तुजिज्ञासायां स एव ध्रुवराशिः, पञ्चोत्तरशतत्रयपरिमाण एकोनषष्ट्या गुण्यते जातानि सप्तदश सहस्राणि नव शतानि पञ्चनवत्यधिकानि १७९९५ तत्र चतुर्दशभिः सहस्रैः षड्भिः

॥२१३॥

॥२१३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



शतैश्चत्वारिंशदधिकैः १४६४० चत्वारः परिपूर्णा नक्षत्रपर्यायाः शुद्धाः स्थितानि शेषाणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि पञ्च पञ्चाशदधिकानि ३३५५ तेभ्योऽष्टाशीत्या पुष्यः शुद्धः स्थितानि पश्चात् द्वात्रिंशच्छतानि सप्तषष्ट्यभ्यधिकानि ३२६७ तेभ्यो द्वात्रिंशता शतैरष्टापञ्चाशदधिकैः ३२५८ अश्लेषादीनि मृगशिरःपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि स्थिताः शेषा नव ९ तेन चार्द्रा न शुद्ध्यति, तत आगतं नव चतुस्त्रिंशदधिकशतभागान् आर्द्रासत्कानवगाह्य सूर्यस्त्रिंशत्तमं स्वमृतुं परिसमापयति। तदेवमुक्ताः सूर्यर्त्तवः, सम्प्रति चन्द्रर्त्तूनां चत्वारि शतानि द्व्युत्तराणि ४०२, तथाहि–एकस्मिन्नक्षत्रपर्याये चन्द्रस्य षट् ऋतवो भवन्ति चन्द्रस्य च नक्षत्रपर्याया युगे भवन्ति सप्तषष्टिसङ्ख्यास्ततः सप्तषष्टिः षड्भिर्गुण्यते जातानि चत्वारि शतानि द्व्युत्तराणि ४०२ एतावन्तो युगे चन्द्रस्य ऋतवः, उक्तं च—"चत्तारि उउसयाइं बिउत्तराइं जुगंमि चंदस्स।' एकैकस्य चेन्द्रर्त्तोः परिमाणं परिपूर्णाश्चत्वारोऽहोरात्राः पञ्चमस्य चाहोरात्रस्य सप्तत्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः, तथा चोक्तम्—"चंदस्सुउपरिमाणं चत्तारि अ केवला अहोरत्ता। सत्तत्तीसं अंसा सत्तट्ठिकएण छेएणं ॥१॥" कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, इहैकस्मिन्नक्षत्रपर्याये षट् ऋतव इति प्रागेवानन्तरमुक्तम्, नक्षत्रपर्यायस्य चन्द्रविषयस्य परिमाणं सप्तविंशतिरहोरात्राः एकस्य चाहोरात्रस्य एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः तत्राहोरात्राणां षड्भिर्भागो ह्रियते लब्धाश्चत्वारोऽहोरात्राः शेषास्तिष्ठन्ति त्रयस्ते सप्तषष्टिभागकरणार्थं सप्तपञ्चा गुण्यन्ते जाते द्वे शते एकोत्तरे २०१ तत उपरितना एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जाते द्वे शते द्वाविंशत्यधिके २२२ तेषां षड्भिर्भागे हृते लब्धाः सप्तत्रिंशत् ३७ सप्तषष्टिभागा इति, तेषां च चन्द्रर्त्तूनामानयनाय पूर्वाचार्यैरिदं करणमुक्तं–"चंदऊऊआणयणे पव्वं पन्नरससंगुणं नियमा। तिहिसंखित्तं संतं बावट्ठीभागपरिहीणं ॥ १ ॥ चोत्तीस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

सयाभिहयं पंचुत्तरतिसयसंजुयं विभए। छहिं उ दसुत्तरेहि य सएहिं लद्धा उऊ होइ॥ २॥" अनयोर्व्याख्या—विवक्षितस्य चन्द्रर्त्तोरानयने कर्त्तव्ये युगादितो यत् पर्व–पर्वसङ्ख्यानमतिसङ्क्रान्तं तत्पञ्चदशगुणं नियमात् कर्त्तव्यम्, ततस्तिथिसङ्ख्यमिति–यास्तिथयः पर्वणामुपरि विवक्षितात् दिनात् प्रागतिक्रान्तास्तास्तत्र सङ्क्षिप्यन्ते, ततो द्वाषष्टिभागैः–द्वाषष्टिभागनिष्पन्नैरवमरात्रैः परिहीनं विधेयम्, तत एवंभूतं सच्चतुस्त्रिंशेन शतेनाभिहतं–गुणितं कर्त्तव्यम्, तदनन्तरं च पञ्चोत्तरैस्त्रिभिः शतैः संयुक्तं सत् षड्भिर्दशोत्तरैः शतैर्विभजेत्, विभक्ते सति ये लब्धा अङ्कास्ते ऋतवो विज्ञातव्याः। एष करणगाथाद्वयाक्षरार्थः, सम्प्रति करणभावना क्रियते, कोऽपि पृच्छति–युगादितः प्रथमे पर्वणि पञ्चम्यां कश्चन्द्रर्तुर्वर्त्तते इति, तत्रैकमपि पर्व परिपूर्णमत्र नाद्याप्यभूदिति युगादितो दिवसा रूपोना ध्रियन्ते, ते च चत्वारस्ततस्ते चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन गुण्यन्ते जातानि पञ्च शतानि षट्त्रिंशदधिकानि ५३६ ततः भूयस्त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि ३०५ प्रक्षिप्यन्ते जातान्यष्टौ शतान्येकचत्वारिंशदधिकानि ८४१ तेषां षड्भिः शतैर्दशोत्तरैर्भागो ह्रियते लब्धः प्रथम ऋतुः अंशा उद्धरन्ति द्वे शते एकत्रिंशदधिके २३१ तेषां चतुस्त्रिंशेन शतेन भागहरणं लब्ध एकः, अंशानां चतुस्त्रिंशेन शतेन भागो ह्रियते यल्लभ्यते ते दिवसा ज्ञातव्याः, शेषास्त्वंशा उद्धरन्ति सप्तनवतिः तेषां द्विकेनापवर्त्तनायां लब्धाः सार्द्धा अष्टाचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः, आगतं युगादितः पञ्चम्यां प्रथमः प्रावृट्लक्षणः ऋतुरतिक्रान्तो द्वितीयस्य ऋतोः एको दिवसो गतो द्वितीयस्य च दिवसस्य सार्द्धा अष्टाचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः, तथा कोऽपि पृच्छति युगादितो द्वितीये पर्वणि एकादश्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

कश्चन्द्रर्तुरिति, तत्रैकं पर्व अतिक्रान्तमित्येको ध्रियते, स पञ्चदशभिर्गुण्यते जाताः पञ्चदश एकादश्यां किल पृष्टमिति तस्याः पाश्चात्या दश ये दिवसास्ते प्रक्षिप्यन्ते जाताः पञ्चविंशतिः २५ सा चतुस्त्रिंशेन शतेन गुण्यते जातानि त्रयस्त्रिंशच्छतानि पञ्चाशदधिकानि ३३५० तेषु त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि प्रक्षिप्यन्ते जातानि षट्त्रिंशच्छतानि पञ्चपञ्चाशदधिकानि ३६५५ तेषां षड्भिः शतैर्दशोत्तरैर्भागो ह्रियते लब्धाः पञ्च अंशा अवतिष्ठन्ते षट् शतानि पञ्चोत्तराणि ६०५ तेषां चतुस्त्रिंशेन शतेन भागे हृते लब्धाश्चत्वारो दिवसाः ४ शेषास्त्वंशा उद्धरन्ति एकोनसप्ततिः ६९ तस्या द्विकेनापवर्त्तनायां लब्धाः सार्द्धाश्चितुस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः, आगतं पञ्च ऋतवोऽतिक्रान्ताः षष्ठस्य च ऋतोश्चत्वारो दिवसाः पञ्चमस्य दिवसस्य सार्द्धाश्चतुस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः, एवमन्यस्मिन्नपि दिवसे चन्द्रर्तुरवगन्तव्यः। सम्प्रति चन्द्रर्तुपरिसमाप्तिदिवसानयनाय यत्पूर्वाचार्यैः करणमुक्तं तदभिधीयते–"पुव्वंपिव धुवरासी गुणिए भइए सगेण छेएणं। जं लद्धं सो दिवसो सोमस्स उऊ समत्तीए ॥ १ ॥" अस्या व्याख्या—इह यः पूर्वं सूर्यर्तुप्रतिपादने ध्रुवराशिरभिहितः पञ्चोत्तराणि त्रीणि शतानि चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानां तस्मिन् पूर्वमिव गुणिते, किमुक्तं भवति?–ईप्सितेन एकादिना द्व्युत्तरचतुःशततमपर्यन्तेन–द्व्युत्तरवृद्धेन एकस्मादारभ्य तत ऊर्ध्वं द्व्युत्तरवृद्ध्या प्रवर्द्धमानेन गुणिते स्वकेन–आत्मीयेन छेदेन चतुस्त्रिंशदधिकशतरूपेण भक्ते सति यल्लब्धं स सोमस्य–चन्द्रस्य ऋतोः समाप्तौ वेदितव्यः, यथा केनापि पृष्टं चन्द्रस्य ऋतुः प्रथमः कस्यां तिथौ परिसमाप्तिं गत इति, तत्र ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशततत्रयप्रमाणो ध्रियते ३०५ स एकेन गुण्यते जातस्तावानेव ध्रुवराशिः तस्य स्वकीयेन चतुस्त्रिंशदधिकशतप्रमाणेन छेदेन भागो ह्रियते, लब्धौ द्वौ शेषास्तिष्ठति सप्तत्रिंशत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा

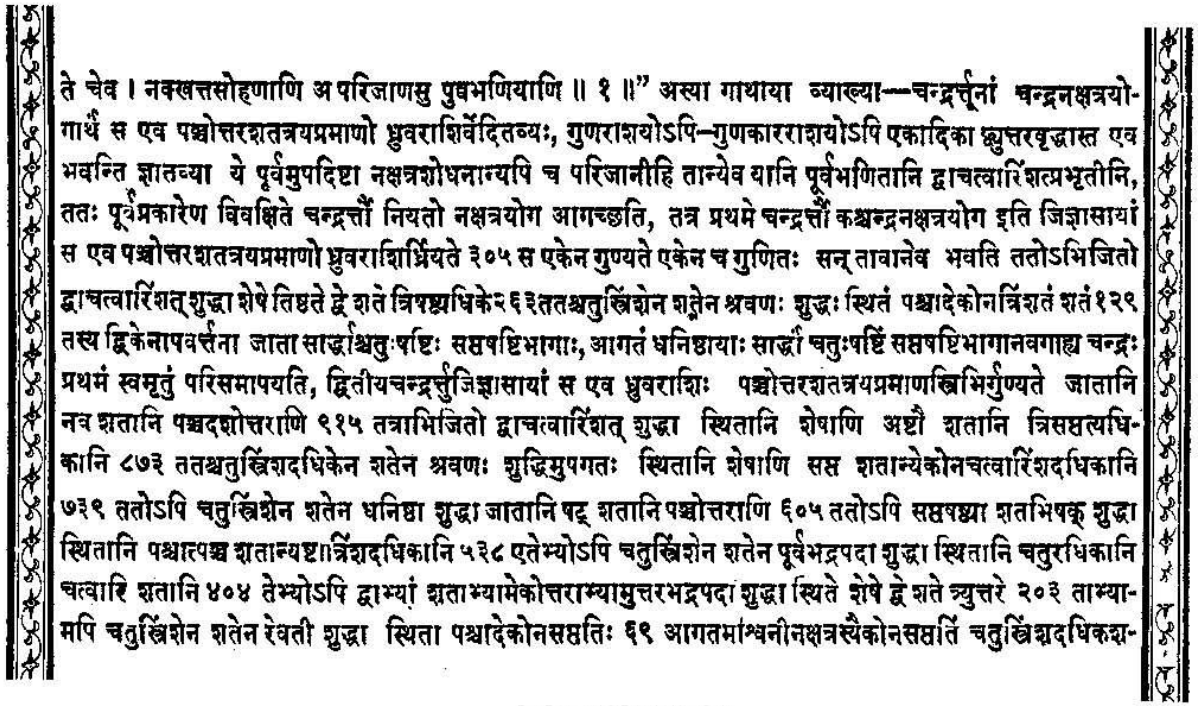
दीप अनुक्रम [१०६--१०७]

तस्या द्विकेनापवर्त्तना जाताः सार्द्धाष्टादश सप्तषष्टिभागाः, आगतं युगादितो द्वौ दिवसौ तृतीयस्य च दिवसस्य सार्द्धान् अष्टादश सप्तषष्टिभागानतिक्रम्य प्रथमश्चन्द्रर्क्षः परिसमाप्तिमुपयाति, द्वितीयश्चन्द्रर्क्षजिज्ञासायां स ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणस्त्रिभिर्गुण्यते, जातानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५ तेषां चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन भागो ह्रियते लब्धाः षट् शेषमुद्धरति एकादशोत्तरकं शतं १११ तस्य द्विकेनापवर्त्तनायां लब्धाः सार्द्धाः पञ्चपञ्चाशत् ५५ सप्तषष्टिभागाः, आगतं युगादितः षट्सु दिवसेष्वतिक्रान्तेषु सप्तमस्य च दिवसस्य सार्द्धेषु पञ्चपञ्चाशत्सप्तषष्टिभागेषु गतेषु द्वितीयश्चन्द्रर्क्षः परिसमाप्तिं गच्छति, त्र्युत्तरचतुःशततमर्क्षजिज्ञासायां स एव ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणोऽष्टभिः शतैरुत्तरैर्गुण्यते-त्र्युत्तरवृद्ध्या त्र्युत्तरवृद्ध्या हि त्र्युत्तरचतुःशततमस्य त्र्युत्तराष्टशतप्रमाण एव राशिर्भवति, तथाहि—यस्य एकस्मादूर्ध्वं त्र्युत्तरवृद्ध्या राशिश्चिन्त्यते तस्य द्विगुणो रूपोनो भवति यथा द्विकस्य त्रीणि त्रिकस्य पञ्च चतुष्कस्य सप्त, अत्रापि त्र्युत्तरचतुःशतप्रमाणस्य राशेर्त्र्युत्तरवृद्ध्या राशिश्चिन्त्यते ततोऽष्टौ शतानि त्र्युत्तराणि भवन्ति, एवंभूतेन च राशिना गुणने जाते द्वे लक्षे चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि २४४९१५ तेषां चतुस्त्रिंशेन शतेन भागो ह्रियते लब्धान्यष्टादश शतानि सप्तविंशत्यधिकानि १८२७ अंशाश्चोद्धरन्ति सप्तनवतिः तस्या द्विकेनापवर्त्तना लब्धाः सार्द्धा अष्टाचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः $\frac{४८}{६७}$, आगतं युगादितोऽष्टादशसु दिवसशतेषु सप्तविंशत्यधिकेष्वतिक्रान्तेषु ततः परस्य च दिवसस्य सार्द्धेष्वष्टाचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागेषु सप्तषष्टिभागेषु गतेषु त्र्युत्तरचतुःशततमस्य चन्द्रर्क्षस्य परिसमाप्तिरिति । एतेषु च चन्द्रर्क्षेषु चन्द्रनक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थं एष पूर्वाचार्योपदेशः,"सो चेव धुवो रासी गुणरासीवि अ हवंति

॥२१५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

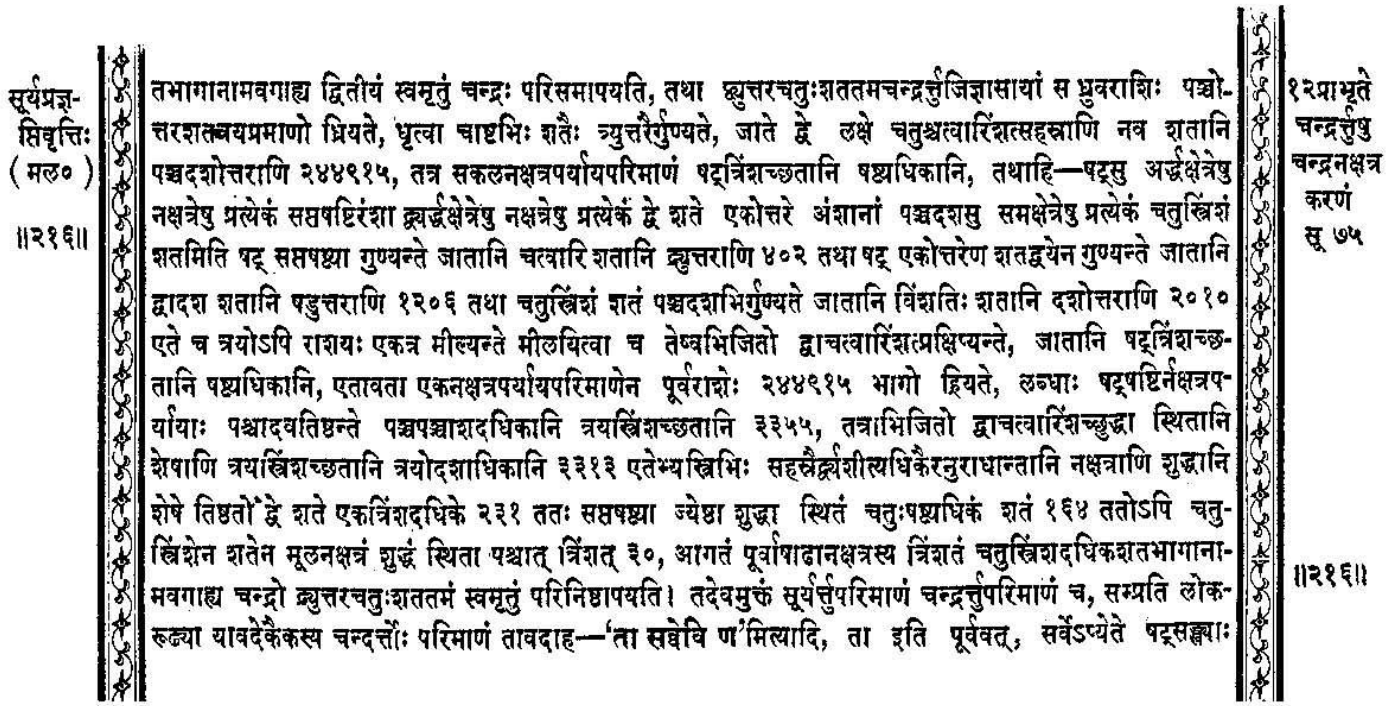
प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



ते चेव । नक्खत्तसोहणाणि अ परिजाणसु पुव्वभणियाणि ॥ १ ॥" अस्या गाथाया व्याख्या—चन्द्रर्क्षाणां चन्द्रनक्षत्रयोगार्थं स एव पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणो ध्रुवराशिर्वेदितव्यः, गुणराशयोऽपि—गुणकारराशयोऽपि एकादिका द्व्युत्तरवृद्धास्त एव भवन्ति ज्ञातव्या ये पूर्वमुपदिष्टा नक्षत्रशोधनान्यपि च परिजानीहि तान्येव यानि पूर्वभणितानि द्वाचत्वारिंशत्प्रभृतीनि, ततः पूर्वप्रकारेण विवक्षिते चन्द्रर्क्षौ नियतो नक्षत्रयोग आगच्छति, तत्र प्रथमे चन्द्रर्क्षौ कश्चन्द्रनक्षत्रयोग इति जिज्ञासायां स एव पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणो ध्रुवराशिर्धियते ३०५ स एकेन गुण्यते एकेन च गुणितः सन् तावानेव भवति ततोऽभिजितो द्वाचत्वारिंशत् शुद्धा शेषे तिष्ठते द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके २६३ ततश्चतुस्त्रिंशेन शतेन श्रवणः शुद्धः स्थितं पश्चादेकोनत्रिंशतं शतं १२९ तस्य द्विकेनापवर्त्तना जाता सार्द्धाश्चतुःषष्टिः सप्तषष्टिभागाः, आगतं धनिष्ठायाः सार्द्धा चतुःषष्टिं सप्तषष्टिभागानवगाह्य चन्द्रः प्रथमं स्वमृतुं परिसमापयति, द्वितीयचन्द्रर्क्षजिज्ञासायां स एव ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणस्त्रिभिर्गुण्यते जातानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५ तत्राभिजितो द्वाचत्वारिंशत् शुद्धा स्थितानि शेषाणि अष्टौ शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि ८७३ ततश्चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन श्रवणः शुद्धिमुपगतः स्थितानि शेषाणि सप्त शतान्येकोनचत्वारिंशदधिकानि ७३९ ततोऽपि चतुस्त्रिंशेन शतेन धनिष्ठा शुद्धा जातानि षट् शतानि पञ्चोत्तराणि ६०५ ततोऽपि सप्तषष्ट्या शतभिषक् शुद्धा स्थितानि पञ्चात्पञ्च शतान्यष्टात्रिंशदधिकानि ५३८ एतेभ्योऽपि चतुस्त्रिंशेन शतेन पूर्वभद्रपदा शुद्धा स्थितानि चतुरधिकानि चत्वारि शतानि ४०४ तेभ्योऽपि द्वाभ्यां शताभ्यामेकोत्तराभ्यामुत्तरभद्रपदा शुद्धा स्थिते शेषे द्वे शते व्युत्तरे २०२ ताभ्यामपि चतुस्त्रिंशेन शतेन रेवती शुद्धा स्थिता पश्चादेकोनसप्ततिः ६९ आगतमाश्वनीनक्षत्रस्यैकोनसप्ततिं चतुस्त्रिंशदधिकश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२१६॥

तभागानामवगाह्य द्वितीयं स्वमृतुं चन्द्रः परिसमापयति, तथा द्व्युत्तरचतुःशततमचन्द्रर्त्तुजिज्ञासायां स ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणो ध्रियते, धृत्वा चाष्टभिः शतैः व्युत्तरैर्गुण्यते, जाते द्वे लक्षे चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि २४४९१५, तत्र सकलनक्षत्रपर्यायपरिमाणं षट्त्रिंशच्छतानि षष्ठ्यधिकानि, तथाहि—षट्सु अर्द्धक्षेत्रेषु नक्षत्रेषु प्रत्येकं सप्तषष्टिरंशा द्व्यर्द्धक्षेत्रेषु नक्षत्रेषु प्रत्येकं द्वे शते एकोत्तरे अंशानां पञ्चदशसु समक्षेत्रेषु प्रत्येकं चतुस्त्रिंशं शतमिति षट् सप्तषष्ठ्या गुण्यन्ते जातानि चत्वारि शतानि द्व्युत्तराणि ४०२ तथा षट् एकोत्तरेण शतद्वयेन गुण्यन्ते जातानि द्वादश शतानि षडुत्तराणि १२०६ तथा चतुस्त्रिंशं शतं पञ्चदशभिर्गुण्यते जातानि विंशतिः शतानि दशोत्तराणि २०१० एते च त्रयोऽपि राशयः एकत्र मील्यन्ते मीलयित्वा च तेष्वभिजितो द्वाचत्वारिंशत्प्रक्षिप्यन्ते, जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ठ्यधिकानि, एतावता एकनक्षत्रपर्यायपरिमाणेन पूर्वराशेः २४४९१५ भागो ह्रियते, लब्धाः षट्षष्टिर्नक्षत्रपर्यायाः पश्चादवतिष्ठन्ते पञ्चपञ्चाशदधिकानि त्रयस्त्रिंशच्छतानि ३३५५, तत्राभिजितो द्वाचत्वारिंशच्छुद्धा स्थितानि शेषाणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि त्रयोदशाधिकानि ३३१३ एतेभ्यस्त्रिभिः सहस्रैर्द्व्यशीत्यधिकैरनुराधान्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि शेषे तिष्ठतो द्वे शते एकत्रिंशदधिके २३१ ततः सप्तषष्ठ्या ज्येष्ठा शुद्धा स्थितं चतुःषष्ठ्यधिकं शतं १६४ ततोऽपि चतुस्त्रिंशेन शतेन मूलनक्षत्रं शुद्धं स्थिता पश्चात् त्रिंशत् ३०, आगतं पूर्वाषाढानक्षत्रस्य त्रिंशतं चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानामवगाह्य चन्द्रो द्व्युत्तरचतुःशततमं स्वमृतुं परिनिष्ठापयति। तदेवमुक्तं सूर्यर्त्तुपरिमाणं चन्द्रर्त्तुपरिमाणं च, सम्प्रति लोकरूढ्या यावदेकैकस्य चन्दर्त्तोः परिमाणं तावदाह—'ता सवेवि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, सर्वेऽप्येते षट्सङ्ख्याः

१२प्राभृते चन्द्रर्त्तुषु चन्द्रनक्षत्र करणं सू ७५

॥२१६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

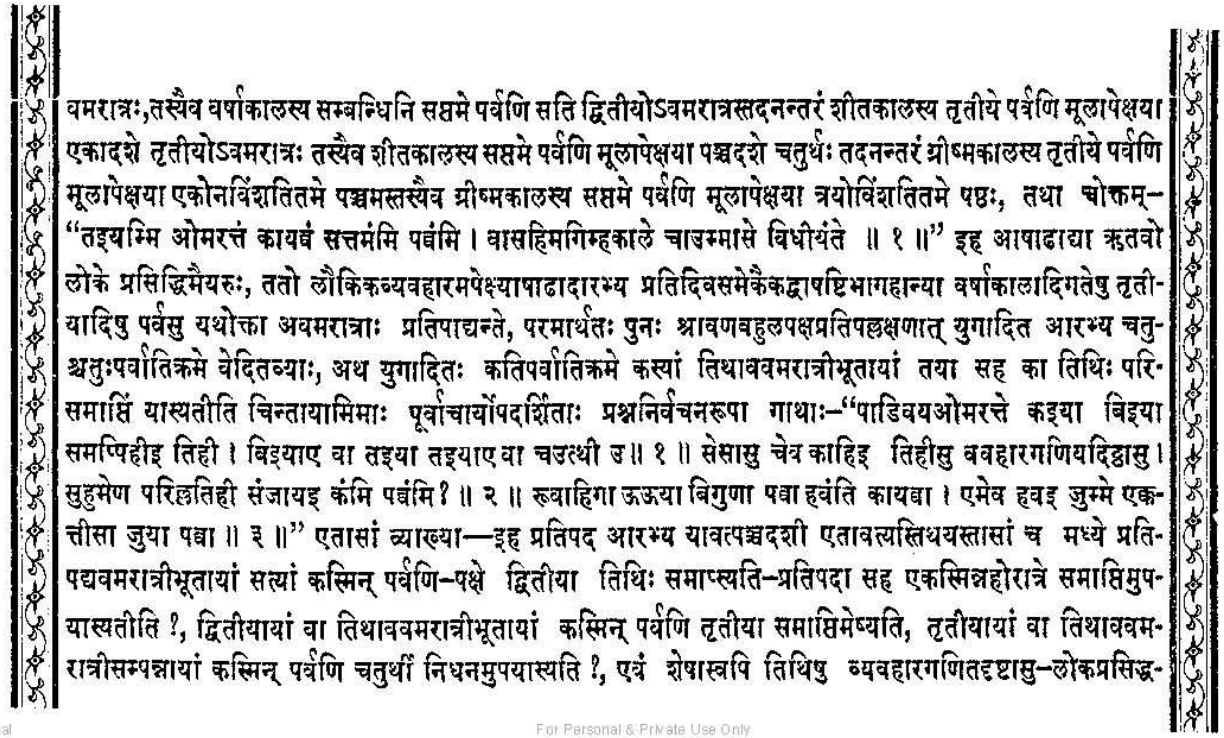
प्रावृडादय ऋतवः प्रत्येकं चन्द्रर्त्तवः सन्तो द्वौ द्वौ मासौ वेदितव्यौ, तौ च किंप्रमाणावित्याह–'तिचउप्पण्ण'मित्यादि, त्रीणि शतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि रात्रिंदिवानां द्वादशं च द्वाषष्टिभागा रात्रिंदिवस्येति शेषः, इत्येवंरूपेणादानेन इत्येवंरूपं संवत्सरप्रमाणमादायेत्यर्थः गण्यमानौ द्वौ मासौ सातिरेकाणि–मनागधिकानि द्वाभ्यां रात्रिंदिवस्य द्वाषष्टिभागाभ्यामधिकानीति भावः एकोनषष्टिरेकोनषष्टिः रात्रिंदिवानि रात्रिंदिवाग्रेण–रात्रिदिवपरिमाणेनाख्याताविति वदेत्, तथाहि–द्विद्विमासप्रमाणाः षट् ऋतव इति त्रयाणां चतुःपञ्चाशदधिकानां रात्रिंदिवशतानां षड्भिर्भागे हृते लब्धा एकोनषष्टिरहोरात्रा द्वादशानां च द्वाषष्टिभागानां षड्भिर्भागहारे द्वौ द्वाषष्टिभागौ इति, एवं च सति कर्म्ममासापेक्षया एकैकस्मिन् ऋतौ लौकिकमेकैकं चन्द्रर्त्तुमधिकृत्य व्यवहारत एकैकोऽवमरात्रो भवति, सकले तु कर्म्मसंवत्सरे षट् अवमरात्राः, तथा चाह–'तत्थे"त्यादि, तत्र–कर्म्मसंवत्सरे चन्द्रसंवत्सरमधिकृत्य व्यवहारतः खल्विमे–वक्ष्यमाणक्रमाः षट् अवमरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–'तहए पव्वे'इत्यादि सुगमम्, इयमत्र भावना–इह कालस्य सूर्यादिक्रियोपलक्षितस्यानादिप्रवाहपतितप्रतिनियतस्वभावस्य न स्वरूपतः कापि हानिर्नापि कश्चिदपि स्वरूपोपचयो यच्चिदमवमरात्रातिरात्रप्रतिपादनं तत्परस्परं मासचिन्तापेक्षया, तथाहि–कर्म्ममासमपेक्ष्य चन्द्रमासस्य चिन्तायामवमरात्रसम्भवः कर्म्ममासमपेक्ष्य सूर्यमासचिन्तायामतिरात्रकल्पना, तथा चोक्तम्–"कालस्स नेव हाणी नविवुड्ढी वा अवट्ठिओ कालो। जायइ वुड्ढोवड्ढी मासाणं एक्कमेक्काओ ॥ १ ॥" तत्रावमरात्रभावनाकरणार्थमिदं पूर्वाचार्योपदर्शितं गाथाद्वयं–"चंदऊमासाणं अंसा जे दिस्सए विसेसंमि। ते ओमरत्तभागा भवंति मासस्स नायव्वा ॥ १ ॥ बावट्ठिभागमेगं दिवसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजाइ ओमरत्तस्स । बावट्ठीए दिवसेहिं ओमरत्तं तओ हवइ ॥ २ ॥" अनयोर्व्याख्या–कर्म्ममासः परिपूर्णत्रिंशदहोरात्रप्रमाणश्चन्द्रमास एकोनत्रिंशदहोरात्रा द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य, ततश्चन्द्रमासस्य–चन्द्रमासपरिमाणस्य ऋतुमासस्य च–कर्म्ममासपरिमाणस्य च इत्यर्थः, परस्परविश्लेषः क्रियते, विश्लेषे च कृते सति ये अंशा उद्धरिता दृश्यन्ते त्रिंशत् द्वाषष्टिभागरूपाः ते अवमरात्रस्य भागाः तद्भवमरात्रस्य परिपूर्णं मासद्वयपर्यन्ते भवति, ततस्तस्य सत्कास्ते भागा मासस्यावसाने द्रष्टव्याः, यदि त्रिंशति दिवसेषु त्रिंशद् द्वाषष्टिभागा अवमरात्रस्य प्राप्यन्ते तत एकस्मिन् दिवसे कतिभागाः प्राप्यन्ते, राशित्रयस्थापना—३० । ३० । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यमस्य राशेस्त्रिंशद्रूपस्य गुणनं, एकेन च गुणितं तदेव भवतीति जातास्त्रिंशदेव, तस्या आदिराशिना त्रिंशता भागे हृते लब्ध एकः, आगतं प्रतिदिवसमेकैको द्वाषष्टिभागो लभ्यते, तथा चाह–'बावट्ठि'त्यादि, द्वाषष्टिभाग एकैको दिवसे दिवसे संजायते अवमरात्रस्य, गाथायामेकशब्दो दिवसशब्दश्चागृहीतवीप्सोऽपि सामर्थ्याद्वीप्सां गमयति नपुंसकनिर्देशश्च प्राकृतलक्षणवशात् , तदेवं यत एकैकस्मिन् दिवसे एकैको द्वाषष्टिभागोऽवमरात्रस्य सम्बन्धी प्राप्यते ततो द्वाषष्ट्या दिवसैरेकोऽवमरात्रो भवति, किमुक्तं भवति ?–दिवसे दिवसे अवमरात्रसत्कैकैकद्वाषष्टिभागवृद्ध्या द्वाषष्टितमो भागः सञ्जायमानो द्वाषष्टितमदिवसे मूलत एव त्रिषष्टितमा तिथिः प्रवर्त्तते इति, एवं च सति य एकषष्टितमोऽहोरात्रस्तस्मिन्नेकषष्टितमा द्वाषष्टितमा च तिथिर्निधनमुपगतेति द्वाषष्टितमा तिथिर्लोके पतितेति व्यवह्रियते, उक्तं च–"एक्कंसि अहोरत्ते दोवि तिही जत्थ निहणमेज्जासु । सोत्थ तिही परिहायइ" इति वर्षाकालस्य–चतुर्मासप्रमाणस्य श्रावणादेः तृतीये पर्वणि सति प्रथमोऽ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

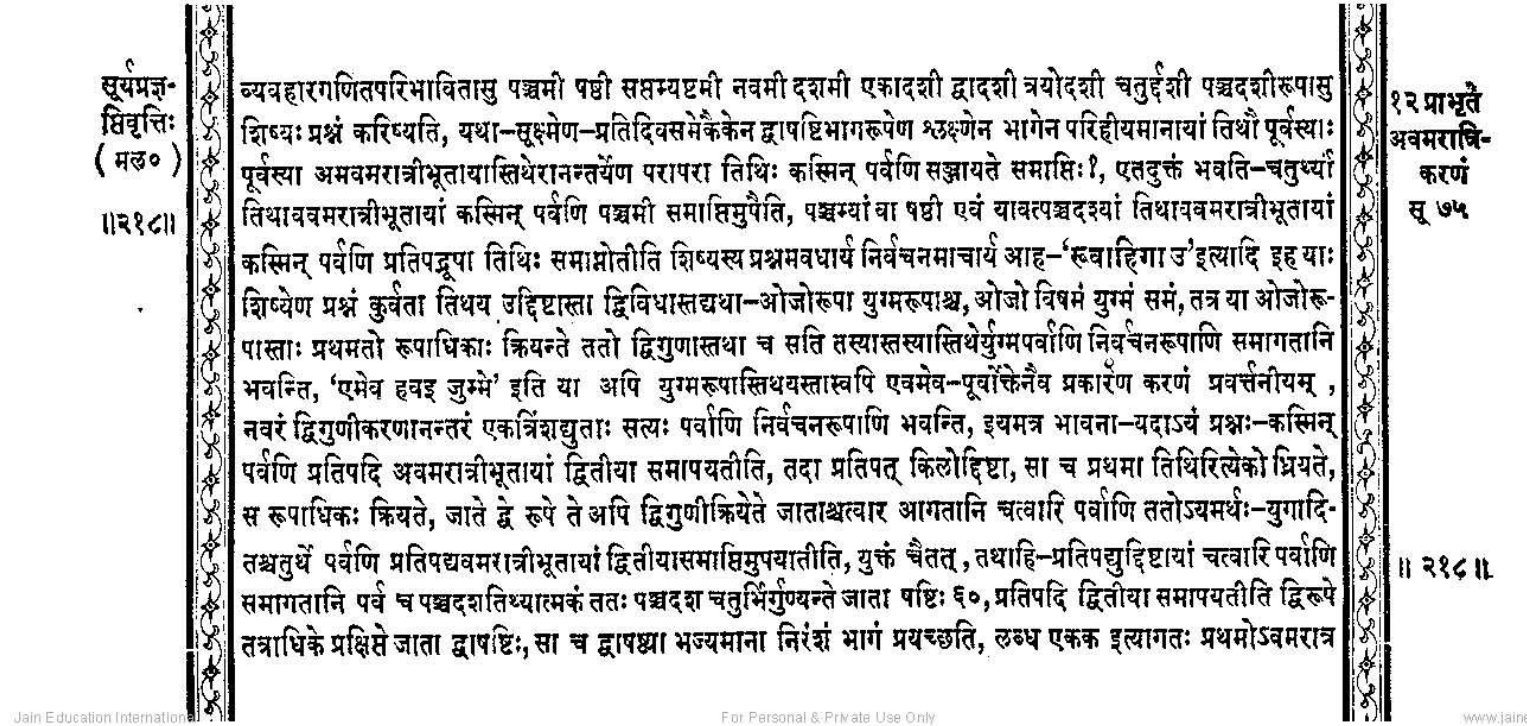
प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



वमरात्रः,तस्यैव वर्षाकालस्य सम्बन्धिनि सप्तमे पर्वणि सति द्वितीयोऽवमरात्रस्तदनन्तरं शीतकालस्य तृतीये पर्वणि मूलापेक्षया एकादशे तृतीयोऽवमरात्रः तस्यैव शीतकालस्य सप्तमे पर्वणि मूलापेक्षया पञ्चदशे चतुर्थः तदनन्तरं ग्रीष्मकालस्य तृतीये पर्वणि मूलापेक्षया एकोनविंशतितमे पञ्चमस्तस्यैव ग्रीष्मकालस्य सप्तमे पर्वणि मूलापेक्षया त्रयोविंशतितमे षष्ठः, तथा चोक्तम्– "तइयम्मि ओमरत्तं कायव्वं सत्तमंमि पव्वंमि । वासहिमगिम्हकाले चाउम्मासे विधीयते ॥ १ ॥" इह आषाढाद्या ऋतवो लोके प्रसिद्धिमैयरुः, ततो लौकिकव्यवहारमपेक्ष्यापाढादारभ्य प्रतिदिवसमेकैकद्वापष्टिभागहान्या वर्षाकालादिगतेषु तृतीयादिषु पर्वसु यथोक्ता अवमरात्राः प्रतिपद्यन्ते, परमार्थतः पुनः श्रावणबहुलपक्षप्रतिपल्लक्षणात् युगादित आरभ्य चतुश्चतुःपर्वातिक्रमे वेदितव्याः, अथ युगादितः कतिपर्वातिक्रमे कस्यां तिथाववमरात्रीभूतायां तया सह का तिथिः परिसमाप्तिं यास्यतीति चिन्तायामिमाः पूर्वाचार्योपदर्शिताः प्रश्ननिर्वचनरूपा गाथाः–"पाडिवयओमरत्ते कइया बिइया समप्पिहीइ तिही । बिइयाए वा तइया तइयाए वा चउत्थी उ ॥ १ ॥ सेसासु चेव काहिइ तिहीसु ववहारगणियदिट्ठासु । सुहुमेण परिलतिही संजायइ कंमि पव्वंमि ? ॥ २ ॥ रूवाहिगा ऊऊया बिगुणा पव्वा हवंति कायव्वा । एमेव हवइ जुम्मे एक्कत्तीसा जुया पव्वा ॥ ३ ॥" एतासां व्याख्या—इह प्रतिपद आरभ्य यावत्पञ्चदशी एतावत्सङ्ख्यतिथयस्तासां च मध्ये प्रतिपद्यवमरात्रीभूतायां सत्यां कस्मिन् पर्वणि–पक्षे द्वितीया तिथिः समाप्स्यति–प्रतिपदा सह एकस्मिन्नहोरात्रे समाप्तिमुपयास्यतीति ?, द्वितीयायां वा तिथाववमरात्रीभूतायां कस्मिन् पर्वणि तृतीया समाप्तिमेष्यति, तृतीयायां वा तिथाववमरात्रीसम्पन्नायां कस्मिन् पर्वणि चतुर्थी निधनमुपयास्यति ?, एवं शेषास्वपि तिथिषु व्यवहारगणितदृष्टासु–लोकप्रसिद्ध-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा दीप अनुक्रम [१०६--१०७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२१८॥

व्यवहारगणितपरिभावितासु पञ्चमी षष्ठी सप्तम्यष्टमी नवमी दशमी एकादशी द्वादशी त्रयोदशी चतुर्दशी पञ्चदशीरूपासु शिष्यः प्रश्नं करिष्यति, यथा–सूक्ष्मेण–प्रतिदिवसमेकैकेन द्वाषष्टिभागरूपेण श्लक्ष्णेन भागेन परिहीयमानायां तिथौ पूर्वस्याः पूर्वस्या अमवमरात्रीभूतायास्तिथेरानन्तर्येण परापरा तिथिः कस्मिन् पर्वणि सञ्जायते समाप्तिः?, एतदुक्तं भवति–चतुर्थ्यां तिथावमरात्रीभूतायां कस्मिन् पर्वणि पञ्चमी समाप्तिमुपैति, पञ्चम्यां वा षष्ठी एवं यावत्पञ्चदश्यां तिथावमरात्रीभूतायां कस्मिन् पर्वणि प्रतिपद्रूपा तिथिः समाप्नोतीति शिष्यस्य प्रश्नमवधार्य निर्वचनमाचार्य आह–'रूवाहिगा उ'इत्यादि इह याः शिष्येण प्रश्नं कुर्वता तिथय उद्दिष्टास्ता द्विविधास्तद्यथा–ओजोरूपा युग्मरूपाश्च, ओजो विषमं युग्मं समं, तत्र या ओजोरूपास्ताः प्रथमतो रूपाधिकाः क्रियन्ते ततो द्विगुणास्तथा च सति तस्यास्तस्यास्तिथेर्युग्मपर्वाणि निर्वचनरूपाणि समागतानि भवन्ति, 'एमेव हवइ जुम्मे' इति या अपि युग्मरूपास्तिथयस्तास्वपि एवमेव–पूर्वोक्तेनैव प्रकारेण करणं प्रवर्त्तनीयम्, नवरं द्विगुणीकरणानन्तरं एकत्रिंशद्युताः सत्यः पर्वाणि निर्वचनरूपाणि भवन्ति, इयमत्र भावना–यदाऽयं प्रश्नः–कस्मिन् पर्वणि प्रतिपदि अवमरात्रीभूतायां द्वितीया समापयतीति, तदा प्रतिपत् किलोद्दिष्टा, सा च प्रथमा तिथिरित्येको ध्रियते, स रूपाधिकः क्रियते, जाते द्वे रूपे ते अपि द्विगुणीक्रियेते जाताश्चत्वार आगतानि चत्वारि पर्वाणि ततोऽयमर्थः–युगादितश्चतुर्थे पर्वणि प्रतिपद्यवमरात्रीभूतायां द्वितीयासमाप्तिमुपयातीति, युक्तं चैतत्, तथाहि–प्रतिपद्युद्दिष्टायां चत्वारि पर्वाणि समागतानि पर्व च पञ्चदशतिथ्यात्मकं ततः पञ्चदश चतुर्भिर्गुण्यन्ते जाता षष्टिः ६०, प्रतिपदि द्वितीया समापयतीति द्विरूपे तत्राधिके प्रक्षिप्ते जाता द्वाषष्टिः, सा च द्वाषष्ट्या भज्यमाना निरंशं भागं प्रयच्छति, लब्ध एकक इत्यागतः प्रथमोऽवमरात्र

१२ प्राभृते अवमरात्रि-करणं सू ७५

॥ २१८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५] + गाथा

दीप अनुक्रम [१०६--१०७]

इत्यविसंवादिकरणं, यदा तु कस्मिन् पर्वणि द्वितीयायामवमरात्रीभूतायां तृतीया समाप्नोतीति प्रश्नस्तदा द्वितीया किल परेणोद्दिष्टेति द्विको म्रियते, स रूपाधिकः कृतो जातानि त्रीणि रूपाणि तानि द्विगुणीक्रियन्ते जाताः षट् द्वितीया च तिथिः समेति षट् एकत्रिंशद्युताः क्रियन्ते जाताः सप्तत्रिंशत् आगतानि निर्वचनरूपाणि सप्तत्रिंशत् पर्वाणि, किमुक्तं भवति?–युगादितः सप्तत्रिंशत्तमे पर्वणि गते द्वितीयायामवमरात्रीभूतायां तृतीया समाप्नोति, इदमपि करणं समीचीनं, तथाहि–द्वितीयायामुद्दिष्टायां सप्तत्रिंशत्पर्वाणि समागतानि, ततः पञ्चदश सप्तत्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि पञ्च शतानि पञ्चपञ्चाशदधिकानि ५५५ द्वितीया नष्टा तृतीया जातेति त्रीणि रूपाणि तत्र प्रक्षिप्यन्ते जातानि पञ्च शतानि अष्टापञ्चाशदधिकानि ५५८, एषोऽपि राशिर्द्वाषष्ट्या भज्यमानो निरंशं भागं प्रयच्छति, लब्धाश्च नवेत्यागतो नवमोऽवमरात्र इति समीचीनं करणं, एवं सर्वास्वपि तिथिषु करणभावना करणसमीचीनत्वभावना अवमरात्रसङ्ख्या च स्वयं भावनीया, पर्वनिर्देशमात्रं तु क्रियते, तत्र तृतीयायां चतुर्थी समापयतत्यष्टमे पर्वणि गते चतुर्थ्यां पञ्चमी एकचत्वारिंशत्तमे पर्वणि पञ्चम्यां षष्ठी द्वादशे पर्वणि षष्ठ्यां सप्तमी पञ्चचत्वारिंशत्तमे सप्तम्यामष्टमी षोडशे अष्टम्यां नवमी एकोनपञ्चाशत्तमे नवम्यां दशमी विंशतितमे दशम्यामेकादशी त्रिपञ्चाशत्तमे एकादश्यां द्वादशी चतुर्विंशतितमे द्वादश्यां त्रयोदशी सप्तपञ्चाशत्तमे त्रयोदश्यां चतुर्दशी अष्टाविंशतितमे चतुर्दश्यां पञ्चदशी एकषष्टितमे पञ्चदश्यां प्रतिपत् द्वात्रिंशत्तमे इति, एवमेता युगपूर्वार्द्धे, एवं युगोत्तरार्द्धेऽपि द्रष्टव्याः। तदेवमुक्ता अवमरात्राः, सम्प्रत्यतिरात्रप्रतिपादनार्थमाह–'तत्थे'त्यादि, तत्रैकस्मिन् संवत्सरे खल्विमे षट् अतिरात्राः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–'चउत्थे पव्वे'इत्यादि, इह कर्म्ममासमपेक्ष्य सूर्यमासचिन्ता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२१९॥

यामेकैकसूर्यर्त्तुपरिसमाप्तावेकैकोऽधिकोऽहोरात्रः प्राप्यते, तथाहि-त्रिंशताऽहोरात्रैरेकः कर्म्ममासः सार्द्धत्रिंशताऽहोरात्रैरेकः सूर्यमासो मासद्वयात्मकश्च ऋतुस्तत एकसूर्यर्त्तुपरिसमाप्तौ कर्ममासद्वयमपेक्ष्यैकोऽधिकोऽहोरात्रः प्राप्यते, सूर्यर्त्तुश्चाषाढादिकस्तत आषाढादारभ्य चतुर्थे पर्वणि गते एकोऽधिकोऽहोरात्रो भवत्यष्टमे पर्वणि गते द्वितीयस्तृतीयो द्वादशे पर्वणि चतुर्थः षोडशे पञ्चमो विंशतितमे षष्ठश्चतुर्विंशतितमे इति, अवमरात्रश्च कर्म्ममासद्वयमपेक्ष्य चन्द्रमासचिन्तायां, चन्द्रमासाश्च श्रावणाद्यास्ततो वर्षाकालस्य श्रावणादेरित्युक्तं प्राग्, सम्प्रति यमपेक्ष्यातिरात्रो यं चापेक्ष्यावमरात्रा भवन्ति तदेतत्प्रतिपादयति-"छच्चेव य अइरत्ता आइच्चाउ हवंति माणाहि । छच्चेव ओमरत्ता चंदाउ हवंति माणाहि ॥ १ ॥" अतिरात्रा भवन्त्यादित्यात्-आदित्यमपेक्ष्य, किमुक्तं भवति?-आदित्यमपेक्ष्यं कर्म्ममासचिन्तायां प्रतिवर्षं षट् अतिरात्रा भवंति इति माणाहि-जानीहि, तथा षट् अवमरात्रा भवन्ति चन्द्रात्-चन्द्रमपेक्ष्य चन्द्रमासानधिकृत्य कर्म्ममासचिन्तायां प्रतिसंवत्सरं षट् अवमरात्रा भवन्तीत्यर्थः,इति माणाहि-जानीहि। तदेवमुक्ता अवमरात्रा अतिरात्राश्च, संप्रत्यावृत्तीर्विवक्षुरिदमाह-

तत्थ खलु इमाओ पंच वासिकीओ पंच हेमंताओ आउट्ठिओ पण्णत्ताओ, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं वासिक्कीं आउट्टिं चंदे केणं नक्खत्तेणं जोएति ?, ता अभीयिणा, अभीयिस्स पढमसमएणं, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पूसेणं, पूसस्स एगूणवीसं मुहुत्ता तेत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं वासिक्किं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ? ता

१२ प्राभृते-अतिरात्राः सू ७५ आवृत्तयः सू ७६

॥२१९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

संठाणाहिं संठाणाणं एक्कारस मुहुत्ते ऊतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेपण्णं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ? ता पूसेणं, पूसस्स णं तं चेव जं पढमया, एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं वासिकिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?, ता विसाहाहिं विसाहाणं तेरस मुहुत्ता चउप्पण्णं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता चत्तालीसं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पूसेणं, पूसस्स तं चेव, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थं वासिकं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता रेवतीहिं, रेवतीणं पणवीसं मुहुत्ता बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठि भागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता बत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केण णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पूसेणं पूसस्स तं चेव, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमं वासिकिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पुव्वाहिं फग्गुणीहिं पुव्वाफग्गुणीणं बारस मुहुत्ता सत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेरस चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पूसेणं, पूसस्स तं चेव (सूत्रं ७६)

तत्र–युगे खल्विमाः–वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्च वार्षिक्यः–वर्षाकालभाविन्यः पञ्च हेमन्त्यः–शीतकालभाविन्यः सर्वसङ्ख्यया दश आवृत्तयः सूर्यस्य प्रज्ञप्ताः,इयमत्र भावना–आवृत्तयो नाम भूयो भूयो दक्षिणोत्तरगमनरूपास्ताश्च द्विविधाः, तद्यथा–एकाः सूर्यस्यावृत्तयोऽपराश्चन्द्रमसः, तत्र युगे सूर्यस्यावृत्तयो दश भवन्ति, चतुस्त्रिंशं च शतमावृत्तीनां चन्द्रमसः, उक्तं च–"सूर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२२०॥

स्स य अयणसमा आउट्टीओ जुगंमि दस होंति। चंदस्स य आउट्टी सयं च चोत्तीसयं चेव ॥१॥" अथ कथमवसीयते सूर्यस्यावृत्तयो युगे दश भवन्ति चन्द्रमसश्चावृत्तीनां चतुस्त्रिंशं शतमिति, उच्यते, उक्तं नाम आवृत्तयो भूयो भूयो दक्षिणोत्तरगमनरूपास्ततः सूर्यस्य चन्द्रमसो वा यावन्त्ययनानि तावत्य आवृत्तयः, सूर्यस्य चायनानि दश, एतच्चावसीयते त्रैराशिकबलात् , तथाहि–यदि त्र्यशीत्यधिकेन शतेन दिवसानामेकमयनं भवति ततोऽष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः कति अयनानि लभ्यन्ते, राशित्रयस्थापना १८३ । १ । १८३० । अत्रान्त्येन राशिना मध्यमस्य राशेर्गुणनं एकस्य च गुणने तदेव भवतीति जातान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३० तेषामाद्येन राशिना त्र्यशीत्यधिकशतप्रमाणेन भागहरणं लब्धा दश, आगतं युगमध्ये सूर्यस्य दश अयनानि भवन्तीत्यावृत्तयोऽपि दश, तथा यदि त्रयोदशभिर्दिवसैश्चतुश्चत्वारिंशता च सप्तषष्टिभागैरेकं चन्द्रस्यायनं भवति ततोऽष्टादशभिर्दिवसशतैस्त्रिंशदधिकैः कति चन्द्रायणानि भवन्ति, । १३/६७ । १ । १८३० । तत्राद्ये राशौ सवर्णनाकरणार्थं त्रयोदशापि दिनानि सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा चोपरितनाश्चतुश्चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, यानि चाष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि तान्यपि सवर्णनार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि द्वादश लक्षाणि द्वे सहस्रे षट् शतानि दशोत्तराणि १२०२६१० तच्चैवंरूपेणान्त्येन राशिना मध्यमस्य राशेरेकरूपस्य गुणनं, एकस्य च गुणने तदेव भवतीत्येतावानेव राशिर्जातस्तस्य नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैर्भागो ह्रियते लब्धं चतुस्त्रिंशं शतं १३४ एतावन्ति चन्द्रायणानि युगमध्ये भवन्तीत्येतावत्यश्चन्द्रमस आवृत्तयः । सम्प्रति का सूर्यस्यावृत्तिः कस्यां तिथौ भवतीति चिन्तायां यत्पूर्वाचार्यैरुपदर्शितं

१२ प्राभृते-आवृत्तयः सू ७६

॥२२०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करणं तदुपदर्श्यते–"आउट्ठीहिं एगूणियाहिं गुणियं सयं तु तेसीयं । जेण गुणं तं तिगुणं रूवहियं पक्खिवे तत्थ ॥ १ ॥ पण्णरस भाइयंमि उ जं लद्धं तं तइसु होइ पव्वेसु । जे अंसा ते दिवसा आउट्ठी तत्थ बोद्धव्वा ॥ २ ॥" अनयोर्व्याख्या–आवृत्तिभिरेकोनकाभिर्गुणितं शतं त्र्यशीत्यधिकं, किमुक्तं भवति ?–या आवृत्तिर्विंशिष्टतिथियुक्ता ज्ञातुमिष्यते तत्सङ्ख्या एकोना क्रियते, ततस्तया त्र्यशीत्यधिकं शतं गुण्यते, गुणयित्वा च येनाङ्केन गुणितं त्र्यशीत्यधिकं शतं तदङ्कस्थानं त्रिगुणं कृत्वा रूपाधिकं सत् तत्र पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, ततः पञ्चदशभिर्भागो ह्रियते, हृते च भागे यल्लब्धं तत्तिथि–तावत्सङ्ख्याकेषु पर्वस्वतिक्रान्तेषु सा विवक्षिता आवृत्तिर्भवति, ये त्वंशाः पश्चादुद्धरितास्ते दिवसा ज्ञातव्याः, तत्रतेषु दिवसेषु मध्ये चरमदिवसे आवृत्तिर्भवतीति भावः, इहावृत्तीनामेवं क्रमो–युगे प्रथमा आवृत्तिः श्रावणे मासे द्वितीया माघमासे तृतीया भूयः श्रावणे मासे चतुर्थी माघमासे पुनरपि पञ्चमी श्रावणे षष्ठी माघमासे भूयः सप्तमी श्रावणे अष्टमी माघे नवमी श्रावणे दशमी माघमासे इति, तत्र प्रथमा किल आवृत्तिः कस्यां तिथौ भवतीति यदि जिज्ञासा तदा प्रथमावृत्तिस्थाने एकको ध्रियते स रूपोनः क्रियते इति न किमपि पश्चाद्रूपं प्राप्यते, ततः पाश्चात्ययुगभाविनी या दशमी आवृत्तिस्तत्सङ्ख्या दशकरूपा ध्रियते तया त्र्यशीत्यधिकं शतं गुण्यते जातान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, दशकेन किल गुणितं त्र्यशीत्यधिकं शतमिति ते दश त्रिगुणाः क्रियन्ते जाता त्रिंशत् सा रूपाधिका विधेया जाता एकत्रिंशत् सा पूर्वराशौ प्रक्षिप्यते जातान्यष्टादश शतान्येकषष्ट्यधिकानि १८६१ तेषां पञ्चदशभिर्भागो ह्रियते लब्धं चतुर्विंशत्यधिकं शतं शेषं तिष्ठति एकं रूपं, आगतं चतुर्विंशत्यधिकपर्वशतात्मके पाश्चात्ये युगेऽतिक्रान्ते अभिनवे युगे प्रवर्त्तमाने प्रथमा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवृत्तिः प्रथमायां तिथौ प्रतिपदि भवतीति, तथा कस्यां तिथौ द्वितीया माघमासभाविन्यावृत्तिर्भवतीति यदि जिज्ञासा ततो द्विको ध्रियते, स रूपोनः कृत इति जात एककस्तेन त्र्यशीत्यधिकं शतं गुण्यते, एकेन च गुणितं तदेव भवतीति जातं त्र्यशीत्यधिकमेव शतं, एकेन गुणितं किल त्र्यशीत्यधिकं शतमिति एकस्त्रिगुणीक्रियते, जातस्त्रिकः स रूपाधिको विधीयते, जाताश्चत्वारः ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातं सप्ताशीत्यधिकं शतं १८७, तस्य पञ्चदशभिर्भागो ह्रियते, लब्धा द्वादश शेषास्तिष्ठन्ति सप्त, आगतं युगे द्वादशसु पर्वस्वतिक्रान्तेषु माघमासे बहुलपक्षे सप्तम्यां तिथौ द्वितीया माघमासभाविनीनां तु मध्ये प्रथमा आवृत्तिरिति, तथा तृतीया आवृत्तिः कस्यां तिथौ भवतीति जिज्ञासायां त्रिको ध्रियते, स रूपोनः कर्त्तव्य इति जातो द्विकः तेन त्र्यशीत्यधिकं शतं गुण्यते, जातानि त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि ३६६, द्विकेन किल गुणितं त्र्यशीत्यधिकं शतं ततो द्विकस्त्रिगुणीक्रियते जाताः षट् ते रूपाधिकाः क्रियन्ते जाताः सप्त ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातानि त्रीणि शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि ३७३ तेषां पञ्चदशभिर्भागो ह्रियते लब्धा चतुर्विंशतिः २४ शेषास्तिष्ठन्ति त्रयोदशांशाः, आगतं युगे तृतीया आवृत्तिः श्रावणमासभाविनीनां तु मध्ये द्वितीया चतुर्विंशतिपर्वात्मके प्रथमे संवत्सरेऽतिक्रान्ते श्रावणमासे बहुलपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ भवतीति, एवमन्यास्वप्यावृत्तिषु करणवशाद्विवक्षितास्तिथयः आनेतव्याः, ताश्चेमा युगे चतुर्थां माघमासभाविनीनां तु मध्ये द्वितीया शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां पञ्चमी श्रावणमासभाविनीनां तु मध्ये तृतीया शुक्लपक्षे दशम्यां षष्ठी माघमासभाविनीनां तु मध्ये तृतीया माघमासे बहुलपक्षे प्रतिपदि सप्तमी श्रावणमासभाविनीनां तु मध्ये चतुर्थी श्रावणमासे बहुलपक्षे सप्तम्यां अष्टमी माघमासभाविनीनां तु मध्ये चतुर्थी माघमासे बहु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लपक्षे त्रयोदश्यां नवमी श्रावणमासभाविनीनां तु मध्ये पञ्चमी श्रावणमासे शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां दशमी माघमासभावनीनां तु मध्ये पञ्चमी माघमासे शुक्लपक्षे दशम्यां, तथा चैता एव पञ्चानां श्रावणमासभाविनीनां पञ्चानां तु माघमासभाविनीनां तिथयोऽन्यत्राप्युक्ताः–"पढमा बहुलपडिवए बिइया बहुलस्स तेरसीदिवसे। सुद्धस्स य दसमीए बहुलस्स य सत्तमीए उ ॥ १ ॥ सुद्धस्स चउत्थीए पवत्तए पंचमी उ आउट्टी । एया आउट्टीओ सबाओ सावणे मासे ॥ २ ॥ बहुलस्स सत्तमीए पढमा सुद्धस्स तो चउत्थीए। बहुलस्स य पाडिवए बहुलस्स य तेरसीदिवसे ॥ ३ ॥ सुद्धस्स य दसमीए पवत्तए पंचमी उ आउट्टी। एया आउट्टीओ सबाओ माहमासंमि ॥ ४ ॥" एतासु सूर्यावृत्तिषु च चन्द्रनक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थमिदं करणं–"पंच सया पडिपुण्णा तिसत्तरा नियमसो मुहुत्ताणं । छत्तीस बिसट्ठिभागा छच्चेव य चुण्णिया भागा ॥ १ ॥ आउट्टीहिं एगूणियाहि गुणिओ हविज्ज धुवरासी । एयं मुहुत्तगणियं एत्तो वोच्छामि सोहणगं ॥ २ ॥ अभिइस्स नव मुहुत्ता बिसट्ठि भागा य होंति चउवीसं। छावट्ठी य समग्गा भागा सत्तट्ठिछेयकया ॥ ३ ॥ उगुणट्ठं पोट्ठवया तिसु चेव न-वोत्तरेसु रोहिणिया। तिसु नवनउइएसु भवे पुणबसू उत्तरा फग्गू ॥ ४ ॥ पंचेव अउणपन्ना समाइं उगुणत्तराइं छच्चेव । सोज्झाहि बिसाहासुं मूले सत्तेव बायाला ॥ ५ ॥ अट्ठसयमुगुणवीसा सोहणगं उत्तरा असाढाणं। चउवीसं खलु भागा छावट्ठी चुण्णिया भागा ॥ ६ ॥ एयाइं सोहइत्ता जं सेसं तं हवेज्ज नक्खत्तं। चंदेण समाउत्तं आउट्टीए उ बोद्धबं ॥७॥" एतासां व्याख्या—पञ्च शतानि त्रिसप्ततानि–त्रिसप्तत्यधिकानि परिपूर्णानि मुहूर्त्तानां भवन्ति षट्त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागाः षट् चैव चूर्णिका भागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्काः षट् सप्तषष्टिभागाः एतावान् विवक्षितकरणे ध्रुवराशिः, कथम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

स्योत्पत्तिरिति चेत्, उच्यते, इह यदि दशभिः सूर्यायनैः सप्तषष्टिश्चन्द्रनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तत एकेन सूर्यायनेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१० । ६७ । १ । अन्त्येन राशिना एककेन मध्यस्य राशेः सप्तषष्टिलक्षणस्य गुणना 'एकेन च गुणितं तदेव भवती'ति जाता सप्तषष्टिः ६७ तस्य दशभिर्भागहारे लब्धाः षट् पर्यायाः एकस्य च पर्यायस्य सप्त दशभागास्तद्गतमुहूर्त्तपरिमाणमधिकृतगाथायामुपन्यस्तं, कथमेतदवसीयते अथैतावन्तस्तत्र मुहूर्त्ता इति चेत्, उच्यते, त्रैराशिककर्म्मावतारबलात्, तथाहि—यदि दशभिर्भागैः सप्तविंशतिर्दिनानि एकस्य च दिनस्य एकविंशतिः सप्तषष्टिभागा लभ्यन्ते ततः सप्तभिर्भागैः किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१० । २७—$\frac{21}{67}$—७ । अन्त्येन राशिना सप्तकलक्षणेन मध्यस्य राशेः सप्तविंशतिर्दिनानि गुण्यन्ते, जातं नवाशीत्यधिकं शतं १८९, तस्याद्येन राशिना दशकलक्षणेन भागे हृते लब्धाः अष्टादश दिवसाः, ते च मुहूर्त्तानयनाय त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चत्वारिंशदधिकानि पञ्च शतानि मुहूर्त्तानां ५४०, शेषा उपरि तिष्ठन्ति नव, ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जाते द्वे शते सप्तत्यधिके २७०, ततो दशभिर्भागे लब्धाः सप्तविंशतिर्मुहूर्त्ताः २७, ते पूर्वस्मिन् मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि पञ्च शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि ५६७, येऽपि च एकविंशतिः सप्तषष्टिभागा दिनस्य तेऽपि मुहूर्त्तभागकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि त्रिंशदधिकानि षट् शतानि ६३०, तानि सप्तभिर्गुण्यन्ते, जातानि दशोत्तराणि चतुश्चत्वारिंशच्छतानि ४४१०, तेषां दशभिर्भागे हृते लब्धानि चत्वारि शतान्येकचत्वारिंशदधिकानि ४४१, तेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः षट् मुहूर्त्तास्ते पूर्वमुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातानि सर्वसङ्ख्यया मुहूर्त्तानां पञ्च शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि ५७३, शेषा चोद्धरति एकोनचत्वारिंशत् सा

॥२२२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वाषष्ट्या गुण्यते जातानि चतुर्विंशतिः शतानि अष्टादशाधिकानि २४१८ तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धाः षट्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः शेषास्तिष्ठन्ति षट् ते च एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्काः सप्तषष्टिभागाः एते चातिश्लक्ष्णरूपा भागा इति चूर्णिका भागा व्यपदिश्यन्ते, तदेवमुक्तो ध्रुवराशिः, सम्प्रति करणमाह–'आउट्टीहि'इत्यादि, यस्यां यस्यामावृत्तौ नक्षत्रयोगो ज्ञातुमिष्यते तया तया आवृत्त्या एकोनिकया–एकरूपहीनया गुणितोऽनन्तरोक्तस्वरूपो भवेत् यावान् एतन्मुहूर्त्तगुणितं–मुहूर्त्तपरिमाणं, अत ऊर्ध्वं वक्ष्यामि शोधनकं, अत्र प्रथमतोऽभिजितो नक्षत्रस्य शोधनकमाह–'अभिइस्से'त्यादि, अभिजितः–अभिजिन्नक्षत्रस्य शोधनकं नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्काः सप्तषष्टिच्छेदकृताः समग्राः–परिपूर्णाः षट्षष्टिभागाः, कथमेतस्योत्पत्तिरिति चेत्, उच्यते, इहाभिजितोऽहोरात्रसत्का एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः चन्द्रेण योगः, ततोऽहोरात्रे त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति मुहूर्त्तभागकरणार्थं सा एक विंशतिः त्रिंशता गुण्यते, जातानि षट् शतानि त्रिंशदधिकानि ६३०, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा नव मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्ति सप्तविंशतिः, ते द्वाषष्टिभागकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि षोडश शतानि चतुःसप्तत्यधिकानि १६७४, तेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाश्चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, शेषास्तिष्ठन्ति षट्षष्टिः, ते च एकस्य द्वाषष्टिभागस्य सत्काः सप्तषष्टिभागाः, सम्प्रति शेषनक्षत्राणां शोधनकान्युच्यन्ते—'उगुणट्ठ'मित्यादि गाथात्रयं, एकोनषष्ट्यधिकं शतं प्रोष्ठपदा–उत्तरभद्रपदा, किमुक्तं भवति ?–एकोनषष्ट्यधिकेन शतेनाभिजिदादीन्युत्तरभद्रपदान्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, तथाहि–नव मुहूर्त्ता अभिजितो नक्षत्रस्य त्रिंशत् श्रवणस्य त्रिंशत् धनिष्ठायाः पञ्चदश शतभिषजः त्रिंशत् पूर्वभद्रपदायाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चचत्वारिंशत् उत्तरभद्रपदाया इति शुध्यन्त्येकोनषष्ट्यधिकेन शतेनोत्तरभद्रपदान्तानि नक्षत्राणि, तथा त्रिषु नवोत्तरेषु शतेषु रोहिणिका–रोहिणिकान्तानि शुद्ध्यन्ति, तथाहि–एकोनषष्ट्यधिकेन शतेनोत्तरभद्रपदान्तानि शुद्ध्यन्ति, ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः रेवती त्रिंशताऽश्विनी पञ्चदशभिर्भरणी त्रिंशता कृत्तिका पञ्चचत्वारिंशता रोहिणिकेति, तथा त्रिषु नवनवत्यधिकेषु शतेषु पुनर्वसुः–पुनर्वस्वन्तानि शुद्ध्यन्ति,तत्र त्रिभिः शतैर्नवोत्तरै रोहिणिका–रोहिणिकांतानि शुद्ध्यन्ति, ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः मृगशिरः पञ्चदशभिरार्द्रा पंचचत्वारिंशता पुनर्वसुरिति, तथा पञ्च शतान्येकोनपञ्चाशानि–एकोनपञ्चाशदधिकानि उत्तरफाल्गुनीपर्यन्तानि, किमुक्तं भवति?–पञ्चभिः शतैरेकोनपञ्चाशदधिकैरुत्तरफाल्गुन्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, तथाहि–त्रिभिः शतैर्नवनवत्यधिकैः पुनर्वस्वन्तानि शुद्ध्यन्ति, ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः पुष्यः पञ्चदशभिरश्लेषा त्रिंशता मघा त्रिंशता पूर्वफाल्गुनी पञ्चचत्वारिंशता उत्तरफाल्गुनीति, तथा षट् शतान्येकोनसप्तानि–एकोनसप्तत्यधिकानि विशाखानां–विशाखापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यानि, तथाहि–उत्तरफाल्गुन्यन्तानां पञ्च शतान्येकोनपञ्चाशदधिकानि शोध्यानि, ततस्त्रिंशन्मुहूर्त्ता हस्तस्य त्रिंशत् चित्रायाः पञ्चदश स्वातेः पञ्चचत्वारिंशद्विशाखाया इति, तथा मूले–मूलनक्षत्रे शोध्यानि सप्त शतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ७४४, तत्र षट् शतान्येकोनसप्तत्यधिकानि ६६९ विशाखान्तानां नक्षत्राणां शोध्यानि, ततः त्रिंशन्मुहूर्त्ता अनुराधायाः पञ्चदश ज्येष्ठायास्त्रिंशन्मूलस्येति, तथा अष्टौ शतानि समाहृतानि अष्टशतमेकोनविंशत्यधिकं, किमुक्तं भवति–अष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि उत्तराषाढानां–उत्तराषाढान्तानां नक्षत्राणां शोधनकं, तथाहि–मूलान्तानां नक्षत्राणां शोध्यानि सप्त शतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ७४४, तत्र त्रिंशन्मुहूर्त्ताः पूर्वाषाढानक्षत्रस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

पञ्चचत्वारिंशदुत्तरापाढानामिति, तथा सर्वेषामपि चामूनां शोधनकानामुपरि अभिजितः सम्बन्धिनश्चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टि-भागाः शोध्याः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्काः षट्षष्टिश्चूर्णिका भागाः। 'एयाइं' इत्यादि, एतानि–अनन्तरोदितानि शोधनकानि यथासम्भवं शोधयित्वा यत् शेषमुद्धरति तत्र यथायोगमपान्तरालवर्त्तिषु नक्षत्रेषु शोधितेषु यन्नक्षत्रं न शुद्ध्यति तन्नक्षत्रं चन्द्रेण समायुक्तं विवक्षितायामावृत्तौ वेदितव्यं, तत्र प्रथमायामावृत्तौ प्रथमतः प्रवर्त्त-मानायां केन नक्षत्रेण युक्तश्चन्द्र इति यदि जिज्ञासा ततः प्रथमावृत्तिस्थाने एकको ध्रियते, स रूपोनः क्रियत इति न किमपि पश्चाद्रूपमवतिष्ठते, ततः पाश्चात्ययुगभाविनीनामावृत्तीनां मध्ये या दशमी आवृत्तिस्तत्सङ्ख्या दशकरूपा ध्रियते, तया प्राचीनः समस्तोऽपि ध्रुवराशिः पञ्च शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य च षट्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् सप्तषष्टिभागाः । ५७३ । ३६ । $\frac{६}{६७}$ इत्येवंप्रमाणे दशभिर्गुण्यते, तत्र मुहूर्त्तराशौ दशभिर्गुणिते जातानि सप्तपञ्चाशच्छतानि त्रिंशदधिकानि ५७३०, येऽपि च षट्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः तेऽपि दशभिर्गुणिता जातानि त्रीणि शतानि षष्ट्यधिकानि ३६० तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धाः पञ्च मुहूर्त्तास्ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातः पूर्वराशिः सप्तपञ्चाशच्छतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि ५७३५, शेषाणि तिष्ठन्ति द्वाषष्टि-भागाः पञ्चाशत् ५०, येऽपि षट् चूर्णिका भागास्तेऽपि दशभिर्गुणिता जाता षष्टिस्तत एतस्माच्छोधनकानि शोध्यन्ते, तत्रोत्तरापाढान्तानां नक्षत्राणां शोधनकमष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि ८१९, तानि किल यथोदितराशौ सप्तकृत्वः शुद्धिमाप्नुवन्तीति सप्तभिर्गुण्यन्ते, जातानि सप्तपञ्चाशच्छतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि ५७३३, तानि सप्तपञ्चाशच्छतेभ्यः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

पञ्चत्रिंशदधिकेभ्यः पात्यन्ते, स्थितौ पश्चात् द्वौ मुहूर्त्तौ, तौ द्वाषष्टिभागीकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्येते, जातं चतुर्विंशं शतं द्वाषष्टिभागानां १२४ तत्प्राक्तने पञ्चाशल्लक्षणे द्वाषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यते जातं चतुःसप्तत्यधिकं शतं द्वाषष्टिभागानां १७४, तथा येऽभिजितः सम्बन्धिनः चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः शोध्याः ते सप्तभिर्गुण्यन्ते जातमष्टषष्ट्यधिकं शतं १६८, तत् चतुःसप्तत्यधिकात् शतात् शोध्यते, स्थिताः शेषाः षट् द्वाषष्टिभागाः, ते चूर्णिकाभागकरणार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते गुणयित्वा च ये प्राक्तनाः षष्टिः सप्तषष्टिभागास्ते तत्र प्रक्षिप्यन्ते, जातानि चत्वारि शतानि द्वाषष्ट्यधिकानि ४६२, ततो येऽभिजितः सम्बन्धिनः षट्षष्टिश्चूर्णिका भागाः शोध्याः ते सप्तभिर्गुण्यन्ते, जातानि चत्वारि शतानि द्वाषष्ट्यधिकानि ४६२ तान्यनन्तरोदितराशेः शोध्यन्ते, स्थितं पश्चात् शून्यं, तत आगतं साकल्येनोत्तराषाढानक्षत्रे चन्द्रेण भुक्ते सति तदनन्तरस्याभिजितो नक्षत्रस्य प्रथमसमये युगे प्रथमा आवृत्तिः प्रवर्त्तते, एतदेव प्रश्ननिर्वचनरीत्या प्रतिपादयति–'एएसि ण'मित्यादि, एतेषां अनन्तरोदितानां चन्द्रादीनां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमां वार्षिकीं–वर्षाकालसम्बन्धिनीं श्रावणमासभाविनीमित्यर्थः आवृत्तिं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ?–केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् प्रवर्त्तयति ?, एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह–'ता अभिइणा'इत्यादि, अभिजिता नक्षत्रेण युनक्ति, एतदेव विशेषतः आचष्टे–अभिजितो नक्षत्रस्य प्रथमसमये युनक्ति, तदेवं चन्द्रनक्षत्रमवबुध्य सूर्यनक्षत्रविषयं प्रश्नमाह–'तं समयं च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च समये णमिति वाक्यालङ्कारे सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति–केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् तां प्रथमामावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति ?, भगवानाह–'ता पूसेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, पुष्येण युक्तस्तां प्रथमामावृत्तिं युनक्ति,

॥ २२४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एतदेव सविशेषमाचष्टे–तदानीं पुष्यस्य एकोनविंशतिर्मुहूर्त्तास्त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कास्त्रयस्त्रिंशच्चूर्णिका भागाः शेषाः, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, त्रैराशिकबलात्, तथाहि–यदि दशभिरयनैः पञ्च सूर्यकृतान्नक्षत्रपर्यायान् लभामहे तत एकेनायनेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना १० । ५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यस्य राशेः पञ्चकरूपस्य गुणनं जाताः पञ्चैव तेषां दशभिर्भागे हृते लब्धमर्द्धं पर्यायस्य, तत्र नक्षत्रपर्यायः सप्तषष्टिभागरूपोऽष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, तथाहि—षट् नक्षत्राणि शतभिषक्प्रभृतीनि अर्द्धनक्षत्राणि ततस्तेषां प्रत्येकं सार्द्धास्त्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः, ते सार्द्धास्त्रयस्त्रिंशत् षड्भिर्गुण्यन्ते, जाते द्वे शते एकोत्तरे २०१, षट् नक्षत्राणि उत्तरभद्रपदादीनि द्व्यर्द्धक्षेत्राणि, ततस्तेषां प्रत्येकमेकं शतं सप्तषष्टिभागानामेकस्य च सप्तषष्टिभागस्यार्द्धं, एतत् षड्भिर्गुण्यते, जातानि षट् शतानि त्र्युत्तराणि ६०३, शेषाणि पञ्चदश नक्षत्राणि समक्षेत्राणि तेषां प्रत्येकं सप्तषष्टिभागाः ततः सप्तषष्टिः पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातं पञ्चोत्तरं सहस्रं १००५, एकविंशतिश्चाभिजितः सप्तषष्टिभागाः, सर्वसङ्ख्यया सप्तषष्टिभागानामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, एष परिपूर्णः सप्तषष्टिभागात्मको नक्षत्रपर्यायः, एतस्यार्धं नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, तेभ्य एकविंशतिरभिजितः सम्बन्धिनी शुद्धा शेषाणि तिष्ठन्ति अष्टौ शतानि चतुर्नवत्यधिकानि ८९४, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयोदश १३, शेषास्तिष्ठन्ति त्रयोविंशतिः, त्रयोदशभिश्च पुनर्वस्वन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, ये च शेषास्तिष्ठन्ति त्रयोविंशतिर्भागास्ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि षट् शतानि नवत्यधिकानि ६९०, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते (ग्रं० ७०००)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२२५॥

लब्धा दश मुहूर्त्ताः १०, शेषास्तिष्ठन्ति विंशतिः, सा द्वाषष्टिभागकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यते, जातानि द्वादश शतानि चत्वारिंशदधिकानि १२४०, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा अष्टादश द्वाषष्टिभागाः, शेषास्तिष्ठन्ति चतुस्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागाः, तत आगतं पुष्यस्य दशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादशसु द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु गतेषु एकोनविंशतौ च मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु प्रथमा श्रावणमासभाविन्याऽऽवृत्तिः प्रवर्त्तते इति । (अथ द्वितीयश्रावणमासभाव्यावृत्तिविषयं प्रश्नसूत्रमाह)'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषां–अनन्तरोदितानां चन्द्रादीनां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये द्वितीयां वार्षिकीं श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति–केन नक्षत्रेण युक्तः सन् चन्द्रो द्वितीयामावृत्तिं प्रारभयति?, एवं प्रश्ने कृते सति भगवानाह–'ता संठाणाहिं' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, संस्थानाभिः–संस्थानाशब्देन मृगशिरोनक्षत्रमभिधीयते, तथा प्रवचने प्रसिद्धेः, ततो मृगशिरोनक्षत्रेण युक्तश्चन्द्रमा द्वितीयां श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, तदानीं च मृगशिरोनक्षत्रस्य एकादश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनचत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः शेषाः, तथाहि—इह या द्वितीया श्रावणमासभाविन्यावृत्तिः सा प्राक्प्रदर्शितक्रमापेक्षया तृतीया ततस्तत्स्थाने त्रिको ह्रियते, स रूपोनः कार्य इति जातो द्विकस्तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः पञ्च शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् सप्तषष्टिभागाः ५७३ । $\frac{३६}{६२}$ । $\frac{६}{६७}$ । इत्येवंप्रमाणो गुण्यते, जातान्येकादश शतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्तानां ११४६ द्वासप्तति-

१२ प्राभृते-आवृत्तयः सू ७६

॥२२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

रेकस्य मुहूर्त्तस्य सत्का द्वाषष्टिभागाः ७२ एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादश सप्तषष्टिभागाः । $\frac{12}{67}$ । तत एतेभ्यो मुहूर्त्तानामष्टभिः शतैरेकोनविंशत्यधिकैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरेकः परिपूर्णो नक्षत्रपर्यायः शुद्धः, स्थितानि पञ्चान्मुहूर्त्तानां शतानि त्रीणि सप्तविंशत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः ३२७ । $\frac{47}{62}$ । $\frac{13}{67}$ । तत एतेभ्यस्त्रिभिर्मुहूर्त्तशतैर्नवोत्तरैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि रोहिणिकापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, 'तेसु चेव नवोत्तरेसु रोहिणिया' इत्यादिप्रागुक्तवचनात्, ततः स्थिताः पञ्चादष्टादश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दश सप्तषष्टिभागाः १८ । $\frac{22}{62}$ । $\frac{14}{67}$ । एतावता मृगशिरो न शुद्ध्यति, तत आगतं मृगशिरो नक्षत्रं एकादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु द्वितीयां श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति (संप्रति सूर्यनक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं चाह-) 'तं समयं च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च समये सूर्यः केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः तां द्वितीयां वार्षिकीमावृत्तिं युनक्ति ?, भगवानाह-'ता पूसेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, पुष्येण युक्तः, 'तं चेव'त्ति वचनसामर्थ्यादिदं द्रष्टव्यं- 'पुस्सस्स एगूणवीसं मुहुत्ता तेयालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा' इति, इह सूर्यस्य दशभिरयनैः पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते, द्वाभ्यां चायनाभ्यामेकः, तत्रोत्तरायणं कुर्वन् सर्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

दैवाभिजिता नक्षत्रेण सह योगमुपागच्छति, दक्षिणायनं कुर्वन् पुष्येण, तस्य च पुष्यस्य एकोनविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु, तथा चोक्तम्—"अभिंतराहिं नियंतो आइच्चो पुस्सजोगमुवगयस्स । सत्ता आउट्टीओ करेइ से सावणे मासे ॥ १ ॥" इत्यादि, ततः 'पुस्सेण' मित्यादि उक्तं, सम्प्रति तृतीयश्रावणमासभाव्यावृत्तिविषयं प्रश्नसूत्रमाह–'ता एएसि णं'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह–'ता विसाहाहिं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, विशाखाभिः–विशाखानक्षत्रेण युक्तः सन् चन्द्रमास्तृतीयां श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, तदानीं च–तृतीयावृत्तिप्रवर्त्तनसमये विशाखानां–विशाखानक्षत्रस्य त्रयोदश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुःपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काश्चत्वारिंशच्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि–तृतीया श्रावणमासभाविन्यावृत्तिः पूर्वप्रदर्शितक्रमापेक्षया पञ्चमी, ततस्तत्स्थाने पञ्चको ध्रियते, स रूपोनः कार्य इति जातश्चतुष्कस्तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः ५७३ । $\frac{३६}{६२}$ । $\frac{६}{६७}$ । गुण्यते, जातानि द्वाविंशतिः शतानि द्विनवत्यधिकानि मुहूर्त्तानां चतुश्चत्वारिंशं शतं मुहूर्त्तगतानां द्वाषष्टिभागानामेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः २२९२ । १४४ । $\frac{२४}{६७}$ । तत एतेभ्यः षोडशभिर्मुहूर्त्तशतैरष्टात्रिंशदधिकैरष्टाचत्वारिंशता च द्वाषष्टिभागैर्मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागगतानां च सप्तषष्टिभागानां द्वात्रिंशेन शतेन द्वौ परिपूर्णौ नक्षत्रपर्यायौ शुद्धौ, स्थितानि पश्चात् षट् शतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां चतुर्नवतिरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षड्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः ६५४।९४।२६, तत एतेभ्यः पञ्चभिः शतैरेकोनपञ्चाशदधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१०८]

विंशत्या द्वापष्टिभागैरेकस्य च द्वापष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीन्युत्तरफाल्गुनीपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थितं पश्चात्पञ्चोत्तरं मुहूर्त्तशतं मुहूर्त्तगतानां च द्वापष्टिभागानामेकोनसप्ततिरेकस्य च द्वापष्टिभागस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, तत्र द्वापष्ट्या द्वापष्टिभागैरेको मुहूर्त्तो लब्धः, स्थिताः पश्चात् सप्त द्वापष्टिभागाः, लब्धश्च मुहूर्त्तो मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यते, जातं षडुत्तरं मुहूर्त्तशतं १०६ $\frac{७}{६२}$ $\frac{३७}{६२}$, ततः पञ्चसप्तत्या मुहूर्त्तैर्हस्तादीनि स्वातिपर्यन्तानि त्रीणि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिताः शेषा एकत्रिंशत् मुहूर्त्ताः, आगतं विशाखानक्षत्रस्य त्रयोदशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुःपञ्चाशति द्वापष्टिभागेष्वेकस्य च द्वापष्टिभागस्य चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु चन्द्रस्तृतीयां श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति। सम्प्रति सूर्यनक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं चाह—'तं समयं च ण'मित्यादि, सुगमं। अधुना चतुर्थ्यावृत्तिविषये प्रश्नसूत्रमाह—'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता रेवईहिं'इत्यादि, रेवत्या युक्तश्चन्द्रश्चतुर्थीं श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, तदानीं च रेवतीनक्षत्रस्य पञ्चविंशतिर्मुहूर्त्ता द्वात्रिंशत् द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य एकं च द्वापष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का षड्विंशतिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि—प्रागुपदर्शितक्रमापेक्षया श्रावणमासभाविनी चतुर्थ्यावृत्तिः सप्तमी ततः सप्तको ध्रियते, स रूपोनः कार्य इति जातः षट्कः, तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः ५७३। ३६। ६। गुण्यते, जातानि चतुस्त्रिंशच्छतानि अष्टात्रिंशदधिकानि ३४३८ मुहूर्त्तानां, मुहूर्त्तगतानां च द्वापष्टिभागानां द्वे शते षोडशोत्तरे २१६, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य षट्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः ३६, तत एतेभ्यो द्वात्रिंशता शतैः षट्सप्तत्यधिकैर्मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वापष्टिभागानां पण्णवत्या द्वापष्टिभागसत्कानां च सप्तषष्टिभा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२२७॥

गानां द्वाभ्यां शताभ्यां चतुःषष्टिसहिताभ्यां चत्वारो नक्षत्रपर्यायाः शुद्धाः, स्थितं पञ्चादेकं द्वापष्ट्यधिकं मुहूर्त्तशतं मुहूर्त्तगतानां च द्वापष्टिभागानां षोडशोत्तरं शतं एकस्य च द्वापष्टिभागस्य चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः १६२ । ११६ । ४० । तत एकोनषष्ट्यधिकेन मुहूर्त्तशतेन एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वापष्टिभागैरेकस्य च द्वापष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैः १५९ । २४ । ६६ । अभिजिदादीनि उत्तरभद्रपदापर्यन्तानि नक्षत्राणि भूयः शुद्धानि, स्थिताः पञ्चाऽत्रयो मुहूर्त्ताः मुहूर्त्तगतानां च द्वापष्टिभागानामेकनवतिरेकस्य च द्वापष्टिभागस्यैकचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः, द्वाषष्ट्या च द्वापष्टिभागैरेको मुहूर्त्तो लब्धः, स मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यते, जाताश्चत्वारो मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनत्रिंशद् द्वापष्टिभागाः (एकस्य च द्वापष्टिभागस्यैकचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः) ४ । २९ । ४१ । तत आगतं–रेवतीनक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वात्रिंशति द्वापष्टिभागेष्वेकस्य च द्वापष्टिभागस्य षड्विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु चतुर्थीं श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, 'तं समयं च ण'मित्यादि सूर्यनक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं च प्राग्वद् भावनीयं, साम्प्रतं पञ्चमं श्रावणमासभाव्यावृत्तिविषयं प्रश्नसूत्रमाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह–'ता पुव्वाहिं फग्गुणीहिं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, पूर्वाभ्यां फाल्गुनीभ्यां युक्तश्चन्द्रः पञ्चमीं श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, तदानीं च तस्य पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्य द्वादश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशत् द्वापष्टिभागाः एकं च द्वापष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कास्त्रयोदश चूर्णिका भागाः शेषास्तथाहि–पञ्चमी श्रावणमासभाविन्यावृत्तिः प्रागुपदर्शितक्रमापेक्षया नवमी ततस्तत्स्थाने नवको प्रियते

१२ प्राभृते आवृत्तयः सू ७६

॥२२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स रूपोनः कार्य इति जाता अष्टौ, तैः प्रागुक्तो ध्रुवराशिः ५७३। $\frac{३६}{६२}$। $\frac{६}{६७}$। गुण्यते, जातानि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि चतुरशीत्यधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां द्वे शते अष्टाशीत्यधिके एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टाचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः ४५८४ । २८८ । ४८। तत एतेभ्यश्चत्वारिंशता मुहूर्त्तशतैः पञ्चनवत्यधिकैर्मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां विंशत्यधिकेन शतेन एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्कानां सप्तषष्टिभागानां त्रिंशदधिकैस्त्रिभिः शतैः पञ्च नक्षत्रपर्यायाः शुद्धाः, स्थितानि पश्चान्मुहूर्त्तानां चत्वारि शतानि एकोननवत्यधिकानि मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां शतं त्रिषष्ट्यधिकं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः ४८९ । १६३ । ५३ । तत एतेभ्यो भूयस्त्रिभिः शतैर्नवत्यधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि पुनर्वसुपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिता पश्चान्मुहूर्त्तानां नवतिः मुहूर्त्तगतानां द्वाषष्टिभागानामष्टात्रिंशदधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुःपञ्चाशत्सप्तषष्टिभागाः ९० । १३८ । ५४ । तत्र चतुर्विंशत्यधिकेन द्वाषष्टिभागशतेन द्वौ मुहूर्त्तौ लब्धौ पश्चात् स्थिता द्वाषष्टिभागाः चतुर्दश, लब्धौ च मुहूर्त्तौ मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्येते, जाता मुहूर्त्तानां द्विनवतिः ९२ । १४ । ५४ । तत्र पञ्चसप्तत्या मुहूर्त्तैः पुष्यादीनि मघापर्यन्तानि त्रीणि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिताः पश्चात् सप्तदश मुहूर्त्ताः १७ । १४ । ५४ । न चैतावता पूर्वफाल्गुनी शुद्ध्यति, तत आगतं-पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्य द्वादशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोदशसु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु पञ्चमी श्रावणमासभाविन्यावृत्तिः प्रवर्त्तते, सूर्यनक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं च प्राग्वद् भावनीयं, तदेवं चन्द्रनक्षत्रयोग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२२८॥

विषये सूर्यनक्षत्रयोगविषये च पञ्चापि वार्षिकीरावृत्तीः प्रतिपाद्य सम्प्रति हेमन्तीः प्रतिपिपादयिषुस्तद्गतप्रथमावृत्तिविषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता हत्थेणं, हत्थस्स णं पंच मुहुत्ता पण्णासं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता सट्ठि चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए, ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता सतभिसयाहिं, सतभिसयाणं दुन्नि मुहुत्ता अट्ठावीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता छत्तालीसं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए, तेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता पूसेणं, पूसस्स एकूणवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थिं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता मूलेणं, मूलस्स छ मुहुत्ता अट्ठावन्नं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता वीसं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्त-

१२प्राभृते हेमन्त्य आवृत्तयः सू ७७

॥२२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए, ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, कत्तियाहिं, कत्तियाणं अट्ठारस मुहुत्ता छत्तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता छ चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए । (सूत्रं ७७)

'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषां–अनन्तरोदितानां चन्द्रादीनां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये प्रथमां हेमन्तीमावृत्तिं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ?, केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् प्रवर्त्तयतीति भावः, भगवानाह–'ता हत्थेणं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, हस्तेन–हस्तनक्षत्रेण युक्तश्चन्द्रः प्रवर्त्तयति, तदानीं च हस्तनक्षत्रस्य पञ्च मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशत् द्वाषष्टिभागाः एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काः षष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि–हेमन्ती प्रथमा आवृत्तिः प्रागुक्तक्रमापेक्षया द्वितीया ततस्तत्स्थाने द्विको ध्रियते, स रूपोनः कार्य इति जात एककस्तेन प्रागुक्तो ध्रुवराशिः ५७३ । $\frac{३६}{६२}$ । $\frac{१}{६७}$ । गुण्यते, 'एकेन च गुणितं तदेव भवती'ति जातस्तावानेव ध्रुवराशिः, तत एतस्मात् पञ्चभिः शतैरेकोनपञ्चाशदधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीन्युत्तरफाल्गुनीपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिताः पञ्चाच्चतुर्विंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकादश द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्त सप्तषष्टिभागाः २४ । ११ । ७ । तत आगतं-हस्तनक्षत्रस्य पञ्चसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेषेषु प्रथमां हेमन्तीमावृत्तिं चन्द्रः प्रवर्त्तयतीति। सूर्यनक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रमाह–'तं समयं च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च समये सूर्यः केन नक्षत्रेण युक्तस्तां प्रथमां हेमन्तीमावृत्तिं युनक्ति–प्रवर्त्तयति ?, भगवानाह–'ता उत्तराहिं'इत्यादि, उत्तराभ्यामाषाढाभ्यां, तदानीं चोत्तराषाढायाश्चरमसमयः, समकालमुत्तराषाढानक्षत्रमुपभुज्याभिजितो नक्षत्रस्य प्रथमसमये प्रथमां हेमन्तीमावृत्तिं सूर्यः प्रवर्त्तयतीति भावः, तथाहि–यदि दशभिरयनैः पञ्च सूर्यकृतान्नक्षत्रपर्यायान् लभामहे तत एकेनायनेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना १० । ५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यमस्य पञ्चकरूपस्य राशेर्गुणनं जाताः पञ्चैव तेषां दशभिर्भागे हृते लब्धमेकमर्द्धं पर्यायस्य, अर्द्धं च पर्यायस्य सप्तषष्टिभागरूपं नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, तत्र ये विंशतिः सप्तषष्टिभागाः पाश्चात्ये अयने पुष्यस्य गताः शेषाश्चतुश्चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः स्थिताः ते साम्प्रतमितो राशेः शोध्यन्ते स्थितानि शेषाण्यष्टौ शतान्येकसप्तत्यधिकानि ८७१ तेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धास्त्रयोदश पश्चात्र किमपि तिष्ठति, त्रयोदशभिश्चाश्लेषादीन्युत्तराषाढापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, तत आगतं–अभिजितो नक्षत्रस्य प्रथमसमये माघमासभाविनी प्रथमा आवृत्तिः प्रवर्त्तते, एवं सर्वा अपि माघमासभाविन्य आवृत्तयः सूर्यनक्षत्रयोगमधिकृत्य वेदितव्याः, उक्तं च–"बाहिरओ पविसंतो आइच्चो अभिइजोगमुवगम्म । सव्वा आउट्टीओ करेइ सो माघमासंमि ॥१॥" द्वितीयहेमन्तावृत्तिविषयं प्रश्नसूत्रमाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह–'ता सयभिसयाहिं' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, शतभिषजा युक्तश्चन्द्रो द्वितीयां हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, तदानीं च शतभिषजो नक्षत्रस्य द्वौ मुहूर्त्तावेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्काः षट्चत्वारिंश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि–प्रागुपदर्शितक्रमापेक्षया द्वितीया माघमासभाविन्यावृत्तिश्चतुर्थी ततस्तस्याः स्थाने चतुष्को ध्रियते स रूपोनः कार्य इति जातस्त्रिकः तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः ५७३ । ३६ । ६ । गुण्यते जातानि सप्तदश शतान्येकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानामष्टोत्तरं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टादश सप्तषष्टिभागाः १७१९ । १०८ । १८ । तत एतेभ्यः षोडशभिः शतैरष्टात्रिंशदधिकैर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाचत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैरेकद्वाषष्टिभागसत्कानां च सप्तषष्टिभागानां द्वात्रिंशदधिकेन शतेन द्वौ नक्षत्रपर्यायौ शुद्धौ, स्थिताः पश्चादेकाशीतिर्मुहूर्त्तानामेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टापञ्चाशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतिः सप्तषष्टिभागाः ८१ । ५८ । २० । ततो भूयो नवभिर्मुहूर्त्तैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिन्नक्षत्रं शुद्धं, स्थिताः पश्चाद् द्वासप्ततिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः ७२ । ३३ । २१ । ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणः शुद्धस्त्रिंशता धनिष्ठा पश्चादवतिष्ठन्ते द्वादश मुहूर्त्ताः, शतभिषक्नक्षत्रं चार्द्धनक्षत्रं, तत आगतं शतभिषजो नक्षत्रस्य द्वयोर्मुहूर्त्तयोरेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु द्वितीया हैमन्ती आवृत्तिः प्रवर्त्तते । सूर्यनक्षत्रयोगविषयं प्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं च सुगमं, प्रागेव भावितत्वात् । अधुना तृतीयमाघमासभाव्यावृत्तिविषयं प्रश्नसूत्रमाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह–'ता पूसेण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत् पुष्येण युक्तश्चन्द्रस्तृतीयां माघमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, तदानीं च पुष्यस्य एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कास्त्रयस्त्रिंशच्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि–प्रागुपदर्शित-क्रमापेक्षया तृतीया माघमासभाविन्यावृत्तिः षष्ठी ततस्तस्याः स्थाने षट्को प्रियते स रूपोनः कार्य इति जातः पञ्चकस्तेन स प्राक्तनो ध्रुवराशिः ५७३ । ३६ । ६ । गुण्यते जातान्यष्टाविंशतिः शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानामशीत्यधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः २८६५ । १८० । ३० । तत एतेभ्यः सप्तपञ्चाशदधिकैः चतुर्विंशतिशतैर्मुहूर्त्तानामेकमुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां द्विसप्तत्या एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सत्कानां सप्तषष्टिभागानामष्टानवत्यधिकेन शतेन २४५७ । ७२ । १९८ । त्रयो नक्षत्रपर्यायाः शुद्धाः, स्थितानि पश्चात् चत्वारि मुहूर्त्तशतान्यष्टोत्तराणि मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां पञ्चोत्तरं शतमेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः ४०८ । १०५ । ३४ । तत एतेभ्यस्त्रिभिः शतैर्नवनवत्यधिकैर्मुहूर्तानामेकस्य च मुहूर्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्पष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि पुनर्वसुपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिताः पश्चान्नव मुहूर्त्ता मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानामशीतिः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः द्वाषष्ट्या च द्वाषष्टिभागैरेको मुहूर्त्तो लब्धः स मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यते जाता दश मुहूर्त्ताः शेषास्तिष्ठन्ति द्वाषष्टिभागा अष्टादश १० । १८ । ३४ । तत आगतं–पुष्यस्य एकोनविंशतौ मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु तृतीया माघमासभाविन्यावृत्तिः प्रवर्त्तते । सूर्यनक्षत्रयोगविषयं प्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं च सुगमं। चतुर्थमाघमासभाव्यावृत्तिविषयं प्रश्नसूत्रमाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह–'ता मूलेण'मित्यादि, ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७७]

दीप अनुक्रम [१०९]

इति प्राग्वत् मूलेन युक्तश्चन्द्रः चतुर्थीं हेमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, तदानीं च मूलस्य–मूलनक्षत्रस्य षट् मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टापञ्चाशत् द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का विंशतिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तथाहि–चतुर्थीं माघमासभाविन्यावृत्तिः पूर्वप्रदर्शितक्रमापेक्षया अष्टमी तस्याः स्थानेऽष्टको म्रियते स रूपोनः कार्य इति जातः सप्तकस्तेन स प्राक्तनो ध्रुवराशिः ५७३ । $\frac{३६}{६२}$ । $\frac{६}{६७}$ । गुण्यते जातान्येकादशोत्तराणि चत्वारिंशन्मुहूर्त्तशतानि मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां द्वे शते द्विपञ्चाशदधिके एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः ४०११।२५२।४२। तत एतेभ्यः षट्सप्तत्यधिकैर्द्वात्रिंशच्छतैर्मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां षण्णवत्या द्वाषष्टिभागसत्कानां च सप्तषष्टिभागानां द्वाभ्यां शताभ्यामष्टषष्ट्यधिकाभ्यां चत्वारो नक्षत्रपर्यायाः शुद्धाः, स्थितानि पञ्चान्मुहूर्त्तानां सप्त शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां द्विपञ्चाशदधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः ७३५। १५२। ४६। तत एतेभ्यो भूयः षड्भिः शतैः मुहूर्त्तानामेकोनसप्तत्यधिकैरेकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीनि विशाखापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थिताः पश्चात् षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां सप्तविंशत्यधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः, चतुर्विंशत्यधिकेन च द्वाषष्टिभागशतेन द्वौ मुहूर्त्तौ लब्धौ तौ मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्येते जाताः अष्टषष्टिर्मुहूर्त्ताः शेषास्तिष्ठन्ति द्वाषष्टिभागास्त्रयः ६८ । ३ । ४७ । ततः पञ्चचत्वारिंशता मुहूर्त्तैरनुराधाज्येष्ठे शुद्धे शेषाः स्थितास्त्रयोविंशतिर्मुहूर्त्ताः २३ । ३ । ४७ । इत आगतं मूलस्य षट्सु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टापञ्चाशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७७]

दीप अनुक्रम [१०९]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२३१॥

च द्वाषष्टिभागस्य विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु चतुर्थीं माघमासभाविन्यावृत्तिः प्रवर्त्तते सूर्यनक्षत्रयोगविषयं प्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं च सुगमं, पञ्चममाघमासभाव्यावृत्तिविषयं प्रश्नसूत्रमाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह–'ता कत्तियाहिं'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कृत्तिकाभिर्युक्तश्चन्द्रः पञ्चमीं हेमन्तीं (माघ) मासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति, तदानीं च कृत्तिकानक्षत्रस्य अष्टादश मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशद् द्वाषष्टिभागा एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्का षट् चूर्णिकाभागाः शेषाः, तथाहि–पञ्चमी माघमासभाविन्यावृत्तिः प्रागुपदर्शितक्रमापेक्षया दशमी ततस्तस्याः स्थाने दशको ध्रियते, स ऊनोनः कार्य इति जातो नवकः, तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः ५७३ । ३६ । ६ । गुण्यते, जातान्येकपञ्चाशच्छतानि सप्तपञ्चाशदधिकानि मुहूर्त्तानां मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां त्रीणि शतानि चतुर्विंशत्यधिकानि एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुःपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः । ५१५७ । ३२४ । ५४ । तत एतेभ्य एकोनपञ्चाशच्छतैर्मुहूर्त्तैः चतुर्दशाधिकैर्मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां चतुश्चत्वारिंशदधिकेन शतेन द्वाषष्टिभागगतानां च सप्तषष्टिभागानां त्रिभिः शतैः षण्णवत्यधिकैः षट् नक्षत्रपर्यायाः शुद्धाः, स्थिते पश्चान्मुहूर्त्तानां द्वे शते त्रिचत्वारिंशदधिके मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां चतुःसप्तत्यधिकं शतं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टिः सप्तषष्टिभागाः २४३ । १७४ । ६० । तत एकोनषष्ट्यधिकेन मुहूर्त्तशतेन एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैरेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैरभिजिदादीन्युत्तरभद्रपदापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, स्थितानि पश्चान्मुहूर्त्तानां चतुरशीतिर्मुहूर्त्तगतानां च द्वाषष्टिभागानां शतमेकोनपञ्चाशदधिकं एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकषष्टिः सप्तषष्टिभागाः । ८४ । १४९ । ६१ । ततो द्वाषष्टिभागानां

१२ प्राभृते-हेमन्त्य आवृत्तयः सू ७७

॥२३१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन द्वौ मुहूर्त्तौ लब्धौ पश्चात् स्थिताः पञ्चविंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, लब्धौ च मुहूर्त्तौ मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्येते, जाता षडशीतिर्मुहूर्त्तानां, ततः पञ्चसप्तत्या मुहूर्त्तानां रेवत्यश्विनीभरण्यः शुद्धाः, स्थिताः पश्चादेकादश मुहूर्त्ताः, शेषं तथैव ११ । २५ । ६१ तत आगतं–कृत्तिकानक्षत्रस्याष्टादशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेष्वेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्सु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु पञ्चमी हैमन्ती आवृत्तिः प्रवर्त्तते, सूर्यनक्षत्रयोगविषये च प्रश्ननिर्वचनसूत्रे सुगमे । तदेवमुक्ता दशापि नक्षत्रयोगमधिकृत्य सूर्यस्यावृत्तयः, सम्प्रति चन्द्रस्य वक्तव्यास्तत्र यस्मिन्नेव नक्षत्रे वर्त्तमानः सूर्यो दक्षिणा उत्तरा वा आवृत्तीः करोति तस्मिन्नेव नक्षत्रे वर्त्तमानश्चन्द्रोऽपि दक्षिणा उत्तराश्चावृत्तीः कुरुते, ततो या उत्तराभिमुखा आवृत्तयो युगे चन्द्रस्य दृष्टास्ताः सर्वा अपि नियतमभिजिता नक्षत्रेण सह योगे द्रष्टव्याः यास्तु दक्षिणाभिर्मुखास्ताः पुष्येण योगे, उक्तं च–"चंदस्सवि नायव्वा आउट्टीओ जुगंमि जा दिट्ठा । अभिएणं पुस्सेण य नियमं नक्खत्तसेसेणं ॥ १ ॥" अत्र 'नक्खत्तसेसेणं'ति नक्षत्रार्द्धमासेन, शेषं सुगमं, तत्राभिजित्युत्तराभिमुखा आवृत्तयो भाव्यन्ते, यदि चतुस्त्रिंशदधिकेनायनशतेन चन्द्रस्य सप्तषष्टिर्नक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते ततः प्रथमेऽयने किं लभ्यते ?, राशित्रयस्थापना–१३४ । ६७ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यस्य राशेः सप्तषष्टिरूपस्य गुणनं जाता सप्तषष्टिरेव,'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति वचनात्, तस्याश्च सप्तषष्टेश्चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन भागे हृते लब्धमेकमर्द्धं पर्यायस्य, तस्मिंश्चार्द्धे नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि सप्तषष्टिभागानां भवन्ति, तत्र त्रयोविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु पुष्यनक्षत्रस्य भुक्तेषु दक्षिणायनं चन्द्रः कृतवान्, ततः शेषाश्चतुश्चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागा अनन्तरोदितराशेः शोध्यन्ते, स्थितानि शेषाणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२३२॥

अष्टौ शतान्येकसप्तत्यधिकानि ८७१, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, इह कानिचिन्नक्षत्राणि अर्द्धक्षेत्राणि तानि च सार्द्धत्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागप्रमाणानि कानिचित्समक्षेत्राणि तानि परिपूर्णसप्तषष्टिभागप्रमाणानि कानिचिच्च द्व्यर्द्धक्षेत्राणि तान्यर्द्धभागाधिकशतसङ्ख्यसप्तषष्टिभागप्रमाणानि, गात्रं त्वधिकृत्य सप्तषष्ट्या शुद्ध्यन्तीति सप्तषष्ट्या भागहरणं, लब्धास्त्रयोदश, राशिश्चोपरितनो निर्लेपतः शुद्धः, तैश्च त्रयोदशभिरश्लेषादीनि उत्तराषाढापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, तत आगतमभिजितो नक्षत्रस्य प्रथमसमये चन्द्र उत्तरायणं करोति, एवं सर्वाण्यपि चन्द्रस्योत्तरायणानि वेदितव्यानि, उक्तं च–"पन्नरसे उ मुहुत्ते जोइत्ता उत्तरा असाढाओ। एक्कं च अहोरत्तं पविसइ अभिंतरे चंदो ॥ १ ॥" अधुना पुष्ये दक्षिणा आवृत्तयो भाव्यन्ते, यदि चतुस्त्रिंशदधिकेनायनशतेन सप्तषष्टिश्चन्द्रस्य पर्याया लभ्यन्ते तत एकेनायनेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना–१३४। ६७। १। अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यस्य राशेः सप्तषष्टिरूपस्य गुणनं जाताः सप्तषष्टिरेव तस्याश्चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन भागहरणं लब्धमेकमर्द्धं पर्यायस्य, तच्च सप्तषष्टिभागरूपाणि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५, तत एकविंशतिरभिजितः सम्बन्धिनः सप्तषष्टिभागाः शोध्यन्ते, स्थितानि पञ्चादष्टौ शतानि चतुर्नवत्यधिकानि ८९४, तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयोदश, तैश्च त्रयोदशभिः पुनर्वस्वन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, शेषा तिष्ठति त्रयोविंशतिः, एते च किल सप्तषष्टिभागा अहोरात्रस्य ततो मुहूर्त्तभागकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि षट् शतानि नवत्यधिकानि ६९०, तेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धा दश मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्ति विंशतिः सप्तषष्टिभागाः, तत इदमागतं–पुनर्वसुनक्षत्रे सर्वात्मना भुक्ते पुष्यस्य च दशसु मुहूर्त्तेष्वेकस्य च मुहूर्त्तस्य विंशतौ सप्तषष्टि-

१२ प्राभृते हेमन्त्य आवृत्तयः सू ७७

॥२३२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागेषु भुक्तेषु सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्बहिर्निष्क्रामति चन्द्रः, एवं सर्वाण्यपि दक्षिणायनानि भावनीयानि, उक्तं च–"दस य मुहुत्ते सगले मुहुत्तभागे य वीसई चेव। पुस्सविसयमभिगओ बहिया अभिनिक्खमइ चंदो ॥ १ ॥" तदेवमुक्ता नक्षत्र-योगमधिकृत्य चन्द्रस्याप्यावृत्तयः, सम्प्रति योगमेव सामान्यतः प्ररूपयति—

तत्थ खलु इमे दसविधे जोए पं०, तं०–वसभाणुजोए वेणुयाणुजोते मंचे मंचाइमंचे छत्ते छत्तातिच्छत्ते जुअणद्धे घणसंमद्दे पीणिते मंडकप्पुते णामं दसमे, एतासि णं पंचण्हं संवच्छराणं छत्तातिच्छत्तं जोयं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?, ता जंबुद्दीवस्स २ पाईणपडिणीआयताए उदीणदाहिणायताए जीवाए मंडलं चउव्वी-सेणं सतेणं छित्ता दाहिणपुरच्छिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि सत्तावीसं भागे उवादिणावेत्ता अट्ठावीसति-भागं वीसधा छेत्ता अट्ठारसभागे उवादिणावेत्ता तिहिं भागेहिं दोहिं कलाहिं दाहिणपुरच्छिमिल्लं चउब्भाग मंडलं असंपत्ते एत्थ णं से चंदे छत्तातिच्छत्तं जोयं जोएति, उप्पिं चंदो मज्झे णक्खत्ते हेट्ठा आदिचे, तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?, ता चित्ताहिं चरमसमए ॥ (सूत्रं ७८) बारसमं पाहुडं समत्तं ॥

'तत्थ खलु' इत्यादि, तत्र युगे खल्वयं वक्ष्यमाणो दशविधो योगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–वृषभानुजातः, अत्र अनुजात-शब्दः सदृशवचनो, वृषभस्यानुजातः–सदृशो वृषभानुजातः, वृषभाकारेण चन्द्रसूर्यनक्षत्राणि यस्मिन् योगेऽवतिष्ठन्ते स वृषभानुजात इति भावना, एवं सर्वत्रापि भावयितव्यं, वेणुः–वंशस्तदनुजातः–तत्सदृशो वेणुकानुजातो मञ्चो–मञ्चसदृशः मञ्चात्–व्यवहारप्रसिद्धात् द्वित्रादिभूमिकाभावतोऽतिशायी मञ्चो मञ्चातिमञ्चस्तत्सदृशो योगोऽपि मञ्चातिमञ्चः, छत्रं–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रसिद्धं तदाकारो योगोऽपि छत्रं, छत्रात्–सामान्यरूपात् उपर्यन्यान्यच्छत्रभावतोऽतिशायि छत्रं छत्रातिच्छत्रं तदाकारो योगोऽपि छत्रातिच्छत्रं, युगमिव नद्धो युगनद्धः, यथा युगं वृषभस्कन्धयोरारोपितं वर्त्तते तद्वत् योगोऽपि यः प्रतिभाति स युगनद्ध इत्युच्यते, घनसम्मर्दरूपः यत्र चन्द्रः सूर्यो वा ग्रहस्य नक्षत्रस्य वा मध्ये गच्छति, प्रीणितः–उपचयं नीतः यः प्रथमतश्चन्द्रमसः सूर्यस्य वा एकतरस्य ग्रहेण नक्षत्रेण वा एकतरेण जातस्तदनन्तरं द्वितीयेन सूर्यादिना सहोपचयं गतः स प्रीणित इति भावः, माण्डूकप्लुतो नाम दशमः, तत्र माण्डूकप्लुत्या यो जातो योगः स माण्डूकप्लुतः, स च ग्रहेण सह वेदितव्यः, अन्यस्य माण्डूकप्लुतिगमनासम्भवात्, उक्तं च–"चन्द्रसूर्यनक्षत्राणि प्रतिनियतगतानि ग्रहास्त्वनियतगतय"इति, तदित्थं यथावबोधं दशानामपि योगानां स्वरूपमात्रभावना कृता यथासम्प्रदायमन्यथा वा वाच्या, तत्र युगे छत्रातिच्छत्रवर्जाः शेषा नवापि योगाः प्रायो बहुशो बहुषु च देशेषु भवन्ति, छत्रातिच्छत्रयोगस्तु कदाचित् कस्मिंश्चिदेव देशे ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एतेषामनन्तरोदितानां चन्द्रादीनां पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये छत्रातिच्छत्रं योगं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति–करोति ?, भगवानाह–'ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्योपरि प्राचीनापाचीनायतया उदग्दक्षिणायतया अत्र चशब्दोऽनुक्तो द्रष्टव्यः यदिवा चित्रविभक्तिनिर्देशादेव समुच्चयो लब्ध इति चशब्दो नोक्तः, यथा 'अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं पशुं-वैवश्वतो न तृप्यति सुराया इव दुर्मदी' इत्यत्र, चादयो हि पदान्तराभिहितमेवार्थं स्पष्टयति न पुनः स्वातन्त्र्येण कमप्यर्थमभिदधति इति निर्णीतमेतत् स्वशब्दानुशासने, जीवया–प्रत्यञ्चया दवरिकया इत्यर्थः, मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन छित्त्वा–विभज्य,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इयमत्र भावना–एकया द्वरिकया बुद्ध्या कल्पितया पूर्वापरायतया एकया च दक्षिणोत्तरायतया मंडलं समकालं विभज्यते, विभक्तं च सच्चतुर्भागतया जातं, तद्यथा–एको भाग उत्तरपूर्वस्यामेको दक्षिणपूर्वस्यामेको दक्षिणापरस्यामेकोऽपरोत्तरस्यामिति, तत्र दक्षिणपौरस्त्ये–दक्षिणपूर्वे चतुर्भागमण्डले–चतुर्भागमात्रे मण्डले मण्डलचतुर्भाग इत्यर्थः, एकत्रिंशद्भागप्रमाणे सप्तविंशतिं भागानुपादाय–गृहीत्वा आक्रम्येत्यर्थः, अष्टाविंशतितमं च भागं विंशतिधा छित्त्वा तस्य सत्कानष्टादश भागानुपादाय–आक्रम्य शेषैस्त्रिभिरेकत्रिंशत्सत्कैर्भागैर्द्वाभ्यां च कलाभ्यामेकस्य एकत्रिंशत्सत्कस्य भागस्य सत्काभ्यां द्वाभ्यां विंशतितमाभ्यां भागाभ्यां दक्षिणपश्चिमं चतुर्भागमण्डलं मण्डलचतुर्भागमसम्प्राप्तोऽस्मिन् प्रदेशे स चन्द्रश्छत्रातिच्छत्ररूपं योगं युनक्ति–करोति, एनमेव 'तद्यथे'त्यादिना भावयति, उपरि चन्द्रो मध्ये नक्षत्रमधस्तात्सूर्य इति, इह मध्ये नक्षत्रमित्युक्तं ततो नक्षत्रविशेषप्रतिपत्त्यर्थं प्रश्नं करोति–'तं समयं च ण'मित्यादि, तस्मिन् समये चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति–योगं करोति ?, भगवानाह–'ता' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, तस्मिन् समये चित्रया सह योगं करोति, तदानीं च चित्रायाश्चरमसमयः ।

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां द्वादशमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तं द्वादशं प्राभृतं, सम्प्रति त्रयोदशमारभ्यते–तस्य चायमर्थाधिकारो यथा–'चन्द्रमसो वृद्ध्यपवृद्धी वक्तव्ये' इति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते चंदमसो वड्ढोवड्ढी आहितेति वदेज्जा ?, ता अट्ठ पंचासीते मुहुत्तसते तीसं च बावट्ठिभागे मुहु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र द्वादशं प्राभृतं परिसमाप्तं	अथ त्रयोदशं प्राभृतं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [७९]

दीप अनुक्रम [१११]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२३४॥

त्तस्स, ता दोसिणापक्खाओ अन्धगारपक्खमयमाणे चंदे चत्तारि बायालसते छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चंदे रज्जति तं०–पढमाए पढमं भागं बितियाए बितियं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसमं भागं, चरिमसमए चंदे रत्ते भवति, अवसेसे समए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवति, इयण्णं अमावासा, एत्थ णं पढमे पव्वे अमावासे, ता अंधारपक्खो, तो णं दोसिणापक्खं अयमाणे चंदे चत्तारे बातालं मुहुत्तसते छातालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स जाइं चंदे विरज्जति, तं०–पढमाए पढमं भागं बितियाए बितियं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसमं भागं चरिमे समये चंदे विरत्ते भवति, अवसेससमए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवति, इयण्णं पुण्णिमासिणी, एत्थ णं दोच्चे पव्वे पुण्णिमासिणी (सूत्रं ७९)

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं–केन प्रकारेण त्वया भगवन् ! चन्द्रमसो वृद्ध्यपवृद्धी आख्याते इति वदेत् ?, किमुक्तं भवति ?–कियन्तं कालं यावत् चन्द्रमसो वृद्धिः कियन्तं च कालं यावदपवृद्धिस्त्वया भगवन्नाख्याता इति वदेत्, एवमुक्ते भगवानाह–'ता अट्ठे'त्यादि, ता इति पूर्ववत् अष्टौ मुहूर्त्तशतानि पञ्चाशीतानि–पञ्चाशीत्यधिकानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशतं द्वाषष्टिभागान् यावत् वृद्ध्यपवृद्धी समुदायेनाख्याते इति वदेत्, यथा एकस्य चन्द्रमासस्य मध्ये एकस्मिन् पक्षे चन्द्रमासो वृद्धिरेकस्मिन् पक्षे चापवृद्धिः, चन्द्रमासस्य च परिमाणमेकोनत्रिंशत् रात्रिन्दिवानि एकस्य च रात्रिन्दिवस्य द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः, रात्रिन्दिवं च त्रिंशन्मुहूर्त्तकरणार्थमेकोनत्रिंशत्(त्रिंश)ता गुण्यते जातान्यष्टौ शतानि सप्तत्यधिकानि ८७० मुहूर्त्तानां येऽपि च द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागा रात्रिंदिवस्य ते मुहूर्त्तसत्कभागकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते,

१३प्राभृते चन्द्रमसो वृद्ध्यपवृद्धी सू ७९

॥२३४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जातानि नव शतानि पष्ट्यधिकानि ९६०, तेषां द्वापष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ताः १५, ते मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि मुहूर्त्तानामष्टौ शतानि पञ्चाशीत्यधिकानि ८८५, शेषाश्चोद्धरन्ति त्रिंशत् द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, एतदेव प्रतिविशेषावबोधार्थं वैविक्त्येन स्पष्टयति–'ता दोसिणाओ'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, ज्योत्स्नाप्रधानः पक्षो ज्योत्स्नापक्षः शुक्लपक्ष इत्यर्थः तस्मात् अन्धकारपक्षमयमानो–गच्छन् चन्द्रः चत्वारि मुहूर्त्तशतानि द्विचत्वारिंशानि–द्विचत्वारिंशदधिकानि षट्चत्वारिंशतं च द्वापष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य यावदपवृद्धिं गच्छतीति वाक्यशेषः, यानि यथोक्तसङ्ख्याकानि मुहूर्त्तशतानि यावच्चन्द्रो राहुविमानप्रभया रज्यते, कथं रज्यते ? इति तमेव रागप्रकारं तद्यथेत्यादिना प्रकटयति, प्रथमायां–प्रतिपल्लक्षणायां तिथौ परिसमाप्तुवत्यां प्रथमं–परिपूर्णं पञ्चदशं भागं यावद्रज्यते, द्वितीयायां परिसमाप्तुवत्यां तिथौ परिपूर्णं द्वितीयं पञ्चदशं भागं यावत्, एवं यावत्पञ्चदश्यां तिथौ परिसमाप्तुवत्यां परिपूर्णं पञ्चदशं भागं यावद्रज्यते, तस्याश्च पञ्चदश्यास्तिथेश्चरमसमये चन्द्रः सर्वात्मना राहुविमानप्रभया रक्तो भवति, तिरोहितो भवतीति तात्पर्यार्थः, यस्तु षोडशो भागो द्वापष्टिभागद्वयात्मकोऽनावृतस्तिष्ठति स स्तोकत्वाददृश्यत्वाच्च न गण्यते, 'अवसेसे'इत्यादि, तं च पञ्चदश्यास्तिथेश्चरमसमयं मुक्त्वा अन्धकारपक्षप्रथमसमयादारभ्य शेषेषु सर्वेष्वपि समयेषु चन्द्रो रक्तो भवति विरक्तश्च, कियानंशस्तस्य राहुणा आवृतो भवति कियांश्चानावृत इति भावः, अन्धकारपक्षवक्तव्यतोपसंहारमाह–'इयण्ण'मित्यादि, इयमन्धकारपक्षे पञ्चदशी तिथिः णमिति वाक्यालङ्कारे अमावास्या–अमावास्या नाम्नी अत्र युगे प्रथमं पर्व अमावास्या, इह मुख्यवृत्त्या पर्वशब्दस्याभिधेयममावास्या पौर्णमासी च, उपचारात् पक्षे पर्वशब्दस्य प्रवृत्तिस्तत उक्तम्–"एत्थ णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥२३५॥

पदमे पक्षे अमावासे" इति। अथ कथं चत्वारि मुहूर्त्तशतानि द्विचत्वारिंशदधिकानि षट्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य ?, उच्यते, इह शुक्लपक्षः कृष्णपक्षो वा चन्द्रमासस्यार्द्धं, ततः पक्षस्य प्रमाणं चतुर्दश रात्रिन्दिवं सप्तचत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागाः, रात्रिन्दिवस्य परिमाणं त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति चतुर्दश त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि मुहूर्त्तानां चत्वारि शतानि विंशत्यधिकानि ४२०, येऽपि च सप्तचत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य तेऽपि मुहूर्त्तभागकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चतुर्दश शतानि दशोत्तराणि १४१० तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः ते मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातानि चत्वारि मुहूर्त्तानां शतानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि ४४२, शेषास्तिष्ठन्ति षट्चत्वारिंशत् द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, तदेवं यावन्तं कालं चन्द्रमसोऽपवृद्धिस्तावत्कालप्रतिपादनं कृतं अथ यावन्तं कालं वृद्धिस्तावन्तमभिधित्सुराह–'ता अंधकारपक्खातो ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् अन्धकारपक्षात् णमिति वाक्यालङ्कारे ज्योत्स्नापक्षं–शुक्लपक्षमयमानश्चन्द्रश्चत्वारि द्वाचत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्तशतानि षट्चत्वारिंशतं च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य यावद्वृद्धिमुपगच्छतीति वाक्यशेषः, यानि–यथोक्तसङ्ख्याकानि मुहूर्त्तशतानि यावच्चन्द्रः शनैः शनैर्विरक्तो–राहुविमानेनानावृतो भवतीति, विरागप्रकारमेवाह–'तंजहे'त्यादि, तद्यथेति विरागप्रकारोपदर्शने प्रथमायां प्रतिपल्लक्षणायां तिथौ प्रथमं पञ्चदशभागं यावत् चन्द्रो विरज्यते, द्वितीयायां द्वितीयं पञ्चदशं भागं यावत् एवं पञ्चदश्यां पञ्चदशं भागं यावत्, तस्याश्च पञ्चदश्याः पौर्णमासीरूपायास्तिथेश्चरमसमये चन्द्रो विरक्तो भवति, सर्वात्मना राहुविमानेनानावृतो भवतीति भावः, तं च पञ्चदश्याश्चरमसमयं मुक्त्वा शुक्लपक्षप्रथमसमयादारभ्य शेषेषु समयेषु चन्द्रो रक्तश्च भवति विरक्तश्च, देशतो रक्तो

१३ प्राभृते चन्द्रमसो वृद्ध्यपवृद्धी सू ७९

॥२३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवति देशतो विरक्तश्चेति भावः, मुहूर्त्तसङ्ख्याभावना च प्राग्वत्कर्त्तव्या, शुक्लपक्षवक्तव्यतोपसंहारमाह-'इयण्ण'मित्यादि इयमनन्तरोदिता पञ्चदशी तिथिः पौर्णमासीनामा अत्र च युगे णमिति पूर्ववत् द्वितीयं पर्व पौर्णमासी ॥ अथैवंरूपा युगे कियत्यो अमावास्याः कियन्त्यश्च पौर्णमास्य इति तद्गतां सर्वसङ्ख्यामाह—

तत्थ खलु इमाओ बावट्ठिं पुण्णिमासिणीओ बावट्ठिं अमावासाओ पण्णत्ताओ, बावट्ठिं एते कसिणा रागा बावट्ठिं एते कसिणा विरागा, एते चउवीसे पव्वसते एते चउवीसे कसिणरागविरागसते, जावतियाणं पंचण्हं संवच्छराणं समया एगेणं चउवीसेणं समयसतेणूणका एवतिया परित्ता असंखेज्जा देसरागविरागसता भवंतीतिमक्खाता, अमावासातो णं पुण्णिमासिणी चत्तारि बाताले मुहुत्तसते छत्तालीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा, ता पुण्णिमासिणीतो णं अमावासा चत्तारि बायाले मुहुत्तसते छत्तालीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा, ता अमावासातो णं अमावासा अट्ठपंचासीते मुहुत्तसते तीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा, ता पुण्णिमासिणीतो णं पुण्णिमासिणी अट्ठपंचासीते मुहुत्तसेत तीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा, एस णं एवतिए चंदे मासे एस णं एवतिए सगले जुगे ॥ (सूत्रं ८०)

'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र युगे खल्विमाः-एवंस्वरूपा द्वाषष्टिः पौर्णमास्यो द्वाषष्टिश्चामावास्याः प्रज्ञप्ताः, तथा युगे चन्द्रमस एते-अनन्तरोदितस्वरूपाः कृत्स्नाः-परिपूर्णा रागा द्वाषष्टिरमावास्यानां युगे द्वाषष्टिसङ्ख्याप्रमाणत्वात् तास्वेव च चन्द्रमसः परिपूर्णरागसम्भवात्, एते-अनन्तरोदितस्वरूपा युगे चन्द्रमसः कृत्स्ना विरागाः-सर्वात्मना रागाभावा द्वाषष्टिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२३६॥

युगे पौर्णमासीनां द्वापष्टिसङ्ख्याकत्वात् तास्वेव च चन्द्रमसः परिपूर्णविरागभावात्, तथा युगे सर्वसङ्ख्यया एकं चतुर्विंशत्यधिकं पर्वशतं अमावास्यापौर्णमासीनामेव पर्वशब्दवाच्यत्वात् तासां च पृथक् पृथक् द्वापष्टिसङ्ख्यानामेकत्र मीलने चतुर्विंशत्यधिकशतभावात्, एवमेव च युगमध्ये सर्वसङ्कलनया चतुर्विंशत्यधिकं कृत्स्नरागविरागशतं, 'जावइयाण'मित्यादि, यावन्तः पञ्चानां चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभिवर्धितरूपाणां समया एकेन चतुर्विंशत्यधिकेन समयशतेनोना एतावन्तः परीत्ताः–परिमिताः असङ्ख्याता देशरागविरागसमया भवन्ति, एतेषु सर्वेष्वपि चन्द्रमसो देशतो रागविरागभावात्, यत्तु चतुर्विंशत्यधिकं समयशतं तत्र द्वापष्टिसमयेषु कृत्स्नो रागो द्वापष्टौ च समयेषु कृत्स्नो विरागस्तेन तद्वर्जनं इत्याख्यातं, मयेति गम्यते, एतच्च भगवद्वचनमतः सम्यक् श्रद्धेयमिति, सम्प्रति कियत्सु मुहूर्त्तेषु गतेष्वमावास्यातोऽनन्तरं पौर्णमासी कियत्सु वा मुहूर्त्तेषु गतेषु पौर्णमास्या अनन्तरममावास्या इत्यादि निरूपयति–'ता अमावासातो ण'मित्यादि, सुगमं, नवरं अमावास्याया अनन्तरं चन्द्रमासस्यार्द्धेन पौर्णमासी पौर्णमास्या अनन्तरमर्द्धमासेन चन्द्रमासस्यामावास्या अमावास्यायाश्चामावास्या परिपूर्णेन चन्द्रमासेन पौर्णमास्या अपि पौर्णमासी परिपूर्णेन चन्द्रमासेनेति भवति यथोक्ता मुहूर्त्तसङ्ख्या, उपसंहारमाह–'एस ण'मित्यादि, एषः–अष्टौ मुहूर्त्तशतानि पञ्चाशीत्यधिकानि द्वात्रिंशच्च द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्येत्येतावान्–एतावत्प्रमाणश्चन्द्रमासः, एतत्–एतावत्प्रमाणं शकलं–खण्डरूपं युगं चन्द्रमासप्रमितं युगशकलमेतदित्यर्थः ॥ सम्प्रति चन्द्रो यावन्ति मण्डलानि चन्द्रार्द्धमासेन चरति तन्निरूपणार्थं प्रश्नसूत्रमाह—

ता चंदेणं अद्धमासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?, ता चोद्दस चउब्भागमंडलाइं चरति एगं च चउवीस-

१३ प्राभृते पूर्णिमावास्यान्तरं सू ८०

॥२३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सतभागं मंडलस्स, (ता) आइचेणं अद्धमासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति?, (ता) सोलस मंडलाइं चरति सोलस-मंडलचारी तदा अवराइं खलु दुवे अट्ठकाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णकाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति, कतराइं खलु दुवे अट्ठकाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णकाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति?, इमाइं खलु ते बे अट्ठगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति, तंजहा–निक्खममाणे चेव अमावासंतेणं पविसमाणे चेव पुण्णिमासिंतेणं, एताइं खलु दुवे अट्ठगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरइ, ता पढमायणगते चंदे दाहिणाते भागाते पविसमाणे सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाते भागाए पविसमाणे चारं चरति, कतराइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाते भागाते पविसमाणे चारं चरति?, इमाइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाते भागाते पवि-समाणे चारं चरति, तं०–बिदिए अद्धमंडले चउत्थे अद्धमंडले छट्ठे अद्धमंडले अट्ठमे अद्धमंडले दसमे अद्धमं-डले बारसमे अद्धमंडले चउद्दसमे अद्धमंडले एताइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाते भागाते पविसमाणे चारं चरति, ता पढमायणगते चंदे उत्तराते भागाते पविसमाणे छ अद्धमंडलाइं तेरस य सत्तट्ठि-भागाइं अद्धमंडलस्स जाइं चंदे उत्तराते भागाए पविसमाणे चारं चरति, कतराइं खलु ताइं छ अद्धमंड-लाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स जाइं चंदे उत्तराते भागाते पविसमाणे चारं चरति?, इमाइं खलु ताइं छ अद्धमंडलाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स जाइं चंदे उत्तराए भागाते पविसमाणे चारं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरति, तंजहा–तईए अद्धमंडले पंचमे अद्धमंडले सत्तमे अद्धमंडले नवमे अद्धमंडले एक्कारसमे अद्धमंडले तेरसमे अद्धमंडले पन्नरसमंडलस्स तेरस सत्तट्ठिभागाइं, एताइं खलु ताइं छ अद्धमंडलाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स जाइं चंदे उत्तराते भागाते पविसमाणे चारं चरति, एतावया च पढमे चंदायणे समत्ते भवति, ता णक्खत्ते अद्धमासे नो चंदे अद्धमासे नो चन्दे अद्धमासे णक्खत्ते अद्धमासे, ता नक्खत्ताओ अद्धमासातो ते चंदे चंदेणं अद्धमासेणं किमधियं चरति ?, एगं अद्धमंडलं चरति चत्तारि य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स सत्तट्ठिभागं एकतीसाए छेत्ता णव भागाइं, ता दोचायणगते चंदे पुरच्छिमाते भागाते णिक्खममाणे सचउप्पण्णाइं जाइं चंदे परस्स चिन्नं पडिचरति सत्त तेरसकाइं जाइं चंदे अप्पणा चिण्णं चरति, ता दोचायणगते चंदे पचत्थिमाए भागाए निक्खममाणे चउप्पण्णाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति छ तेरसगाइं चंदे अप्पणो चिण्णं पडिचरति अवरगाइं खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असमन्नगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति, कतराइं खलु ताइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति ?, इमाइं खलु ताइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदो केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति सव्वब्भंतरे चेव मंडले सव्वबाहिरे चेव मंडले, एयाणि खलु ताणि दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ जाव चारं चरइ, एतावता दोच्चे चंदायणे समत्ते भवति, ता णक्खत्ते मासे नो चंदे मासे चंदे मासे णो णक्खत्ते मासे, ता णक्खत्ताते मासाए चंदेणं मासेणं किमधियं चरति ?, ता दो अद्धमंडलाइं चरति अट्ठ य सत्तट्ठिभागाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अद्धमंडलस्स सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता अट्ठारस भागाइं, ता तच्चायणगते चंदे पच्चत्थिमाते भागाए पविसमाणे बाहिराणंतरस्स पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स इंतालीसं सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरति, तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति, तेरस सत्तट्ठिभागाइं चंदे अप्पणो परस्स चिण्णं पडिचरति, एतावयाव बाहिराणंतरे पच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले सम्मत्ते भवति, तच्चायणगते चंदे पुरच्छिमाए भागाए पविसमाणे बाहिरतच्चस्स पुरच्छिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स इंतालीसं सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स चिण्णं पडियरति, तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति, तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडियरति, एतावताव बाहिरतच्चे पुरच्छिमिल्ले अद्धमंडले सम्मत्ते भवति, ता तच्चायणगते चंदे पच्चत्थिमाते भागाते पविसमाणे बाहिरचउत्थस्स पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स अद्धसत्तट्ठिभागाइं सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता अट्ठारस भागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडियरति, एतावताव बाहिरचउत्थपच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले सम्मत्ते भवइ। एवं खलु चंदेणं मासेणं चंदे तेरस चउप्पण्णगाइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति, तेरस २ गाइं जाइं चंदे अप्पणो चिण्णं पडियरति, दुवे इंतालीसगाइं अट्ठ सत्तट्ठिभागाइं सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता अट्ठारसभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरति, अवराइं खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ अस्सामन्नगाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति, इच्चेसो चंदमासोऽभिगमणणिक्खमणवुड्ढिणिवुड्ढिअणवट्ठितसंठाणसंठितीविउवणगिद्धिपत्ते स्वी चंदे देवे २ आहितेति वदेज्जा (सूत्रं ८१) ॥ ॥ तेरसमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता चंदेण अद्धमासेण'मित्यादि 'ता इति' पूर्ववत् चान्द्रेण अर्द्धमासेन प्रागुक्तस्वरूपेण चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ?, भगवानाह–'ता चोद्दसे'त्यादि चतुर्दश सचतुर्भागमण्डलानि–पञ्चदशस्य मण्डलस्य चतुर्भागसहितानि मण्डलानि चरति, एकं च चतुर्विंशशतभागं मण्डलस्य, किमुक्तं भवति ?–परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्भागं–चतुर्विंशत्यधिकशतसत्कैकत्रिंशद्भागप्रमाणमेकं च चतुर्विंशशतभागं मण्डलस्य, सर्वसङ्ख्यया द्वात्रिंशतं पञ्चदशस्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् चरतीति, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, त्रैराशिकबलात्, तथाहि–यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन सप्तदश शतान्यष्टषष्ट्यधिकानि मण्डलानां लभ्यन्ते तत एकेन पर्वणा किं लभ्यते ?, राशित्रयस्थापना १२४ । १७६८ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुण्यते स च तावानेव जातः, तत्राद्येन राशिना भागहरणं लब्धाश्चतुर्दश शेषास्तिष्ठन्ति द्वात्रिंशत् १४ $\frac{३२}{१२४}$ तत्र छेद्यच्छेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना क्रियते, तत इदमागच्छति–चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य मण्डलस्य षोडश द्वाषष्टिभागाः १४ । $\frac{१६}{६२}$ उक्तं चैतदन्यत्रापि–"चोद्दस य मंडलाइं विसट्ठिभागा य सोलस हविज्जा । मासद्धेण उडुवई एत्तियमित्तं चरइ खित्तं ॥१॥" 'ता आइच्चेण'मित्यादि, आदित्येनार्द्धमासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ?, भगवानाह–'ता सोलसे'त्यादि, षोडश मण्डलानि चरति, षोडशमण्डलचारी च तदा अपरे खलु द्वे अष्टके–चतुर्विंशत्यधिकशतसत्कभागाष्टकप्रमाणे ये केनाप्यसामान्ये–केनाप्यनाचीर्णपूर्वे चन्द्रः स्वयमेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रविश्य चारं चरति, 'कयराइं खलु'दुवे इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–इमाइं खलु'एते खलु द्वे अष्टके ये केनाप्यनाचीर्णपूर्वे चन्द्रः स्वयमेव प्रविश्य चारं चरति, तद्यथा–सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्वहिर्निष्क्रामन्नेवामावास्यान्ते एकमष्टकं केनाप्यनाचीर्णं चन्द्रः प्रविश्य चारं चरति, सर्ववाह्यात् मण्डलादभ्यन्तरं प्रविशन्नेव पौर्णमास्यन्ते द्वितीयमष्टकं केनाप्यनाचीर्णं चन्द्रः प्रविश्य चारं चरति, 'एयाइं खलु दुवे अट्ठगाइं'इत्यादि उपसंहारवाक्यं सुगमं, इह परमार्थतो द्वौ चन्द्रौ एकेन चान्द्रेणार्द्धमासेन चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य द्वात्रिंशतं चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् भ्रमणेन पूरयतः परं लोकरूढ्या व्यक्तिभेदमनपेक्ष्य जातिभेदमेव केवलमाश्रित्य चन्द्रश्चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य द्वात्रिंशतं चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् चरतीत्युक्तं। अधुना एकश्चन्द्रमा एकस्मिन्नयने कति अर्द्धमण्डलानि दक्षिणभागे कत्युत्तरभागे भ्रम्या पूरयतीति प्रतिपिपादयिषुर्भगवानाह–'ता पढमायणगए चंदे'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, प्रथमायनगते–प्रथममयनं प्रविष्टे चन्द्रे दक्षिणस्माद्भागादभ्यन्तरं प्रविशति सप्त अर्द्धमण्डलानि भवन्ति यानि चन्द्रो दक्षिणस्माद् भागादभ्यन्तरं प्रविशन्नाक्रम्य चारं चरति, 'कयराइं खलु'इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–'इमाइं खलु'इत्यादि, इमानि खलु सप्तार्द्धमण्डलानि यानि चन्द्रो दक्षिणस्माद्भागादभ्यन्तरं प्रविशन्नाक्रम्य चारं चरति, तद्यथा–द्वितीयमर्द्धमण्डलमित्यादि, सुगमं, नवरमियमत्र भावना–सर्ववाह्ये पञ्चदशे मण्डले परिभ्रमणेन पूरणमधिकृत्य परिपूर्णे पाश्चात्ययुगपरिसमाप्तिर्भवति, ततोऽपरयुगप्रथमायनप्रवृत्तौ प्रथमेऽहोरात्रे एकश्चन्द्रमा दक्षिणभागादभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयमण्डलमाक्रम्य चारं चरति, स च पाश्चात्ययुगपरिसमाप्तिदिवसे उत्तरस्यां दिशि चारं चरति–चारं चरितवान् स वेदितव्यः, ततः स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८१]

दीप अनुक्रम [११३]

तस्मात् द्वितीयात् मण्डलात् शनैः शनैरभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं तृतीयमर्द्धमण्डलमाक्रम्य चारं चरति, तृतीये अहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि चतुर्थमर्द्धमण्डलं चतुर्थे अहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि पञ्चममर्द्धमण्डलं पञ्चमे अहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि षष्ठमर्द्धमण्डलं षष्ठे अहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि सप्तममर्द्धमण्डलं सप्तमे अहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि अष्टममर्द्धमण्डलमष्टमेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि नवममर्द्धमण्डलं नवमे अहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि दशममर्द्धमण्डलं दशमे अहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि एकादशममर्द्धमण्डलमेकादशे अहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि द्वादशमर्द्धमण्डलं द्वादशे अहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि त्रयोदशमर्द्धमण्डलं त्रयोदशेऽहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि चतुर्दशमर्द्धमण्डलं चतुर्दशे अहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि पञ्चदशस्यार्द्धमण्डलस्य त्रयोदशसप्तषष्टिभागानाक्रम्य चारं चरति, एतावता च कालेन चन्द्रस्यायनं परिसमाप्तं । चन्द्रायनं हि नक्षत्रार्द्धमासप्रमाणं, तेन च नक्षत्रार्द्धमासेन चन्द्रचारे सामान्यतस्त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य च मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागा लभ्यन्ते, तथाहि–यदि चतुस्त्रिंशदधिकेनायनशतेन सप्तदश शतान्यष्टषष्टिसहितानि मण्डलानां लभ्यन्ते तत एकेनायनेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना १३४।१७६८।१ अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशिर्गुण्यते जातः स तावानेव ततस्तस्याद्येन राशिना चतुस्त्रिंशदधिकशतरूपेण भागहरणं लब्धास्त्रयोदश शेषास्तिष्ठन्ति षड्विंशतिः तत्र छेद्यच्छेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना लब्धास्त्रयोदश सप्तषष्टिभागा इति, उक्तं च–"तेरस य मंडलाणि य तेरस सत्तट्ठि चेव भागा य । अयणेण चरइ सोमो नक्खत्तेणद्धमासेणं ॥ १ ॥" एतच्च सामान्यत उक्तं, विशेषचिन्तायां त्वेकस्य चन्द्रमसो युगस्य प्रथमे अयने यथोक्तेन प्रकारेण दक्षिणभागादभ्यन्तरं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रवेशे द्वितीयादीन्येकान्तरितानि चतुर्दशपर्यन्तानि सप्तार्द्धमण्डलानि लभ्यन्ते, उत्तरभागादभ्यन्तरप्रवेशे तृतीयादीन्येकान्तरितानि त्रयोदशपर्यन्तानि षट् परिपूर्णान्यर्द्धमण्डलानि सप्तमस्य तु पञ्चदशमण्डलगतस्यार्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः, एतावता च यद्वक्ष्यति उत्तरभागादभ्यन्तरप्रवेशचिन्तायां 'तईए अद्धमंडले'इत्यादि सूत्रं तदपि भावितमेव, सम्प्रति दक्षिणभागादभ्यन्तरप्रवेशे यानि सप्तार्धमण्डलान्युक्तानि तदुपसंहारमाह–'एयाइं'इत्यादि सुगमं। अधुना तस्यैव चन्द्रमसस्तस्मिन्नेव प्रथमेऽयने उत्तरभागादभ्यन्तरप्रवेशे यावन्त्यर्द्धमण्डलानि भवन्ति तावन्ति विवक्षुराह–'ता पढमायणगए'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, प्रथमायनगते–युगस्यादौ प्रथममयनं प्रविष्टे चन्द्रे उत्तरभागादभ्यन्तरं प्रविशति षट् अर्द्धमण्डलानि भवन्ति सप्तमस्य चार्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागा यानि चन्द्र उत्तरभागादभ्यन्तरं प्रविशन् आक्रम्य चारं चरति, 'कयराइं खलु'इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं 'इमाइं खलु' इत्यादि निर्वचनसूत्रं एतच्च प्रागेव भावितं, 'एयाइं खलु'इत्यादि, निगमनवाक्यं निगदसिद्धं, 'एतावता'इत्यादि एतावता कालेन प्रथमं चन्द्रस्यायनं समाप्तं भवति, एतदपि प्राग्भावितं, तदेवं पाश्चात्ययुगपरिसमाप्तिचरमदिवसे य उत्तरस्यां दिशि चारं चरितवान् तस्याभिनवयुगपक्षे प्रथमेऽयने यावन्ति दक्षिणभागादभ्यन्तरप्रवेशेऽर्द्धमण्डलानि यावन्ति चोत्तरभागादभ्यन्तरप्रवेशेऽर्धमण्डलानि तावन्ति साक्षादुक्तानि, एतदनुसारेण द्वितीयस्यापि चन्द्रमसस्तस्मिन्नेव प्रथमे चन्द्रायणेऽर्द्धमण्डलानि वक्तव्यानि, तानि चैवम्–स पाश्चात्ययुगपरिसमाप्तिचरमदिवसे दक्षिणदिग्भागे सर्वबाह्यमण्डले चारं चरित्वा अभिनवस्य युगस्य प्रथमेऽयने प्रथमेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि द्वितीयमर्द्धमण्डलं प्रविश्य चारं चरति, द्वितीयेऽहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि सर्वबाह्यात् तृतीयमर्द्धमण्डलं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रविश्य चारं चरति तृतीयेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि चतुर्थमर्द्धमण्डलमित्यादि प्रागुक्तानुसारेण सकलमपि वक्तव्यं, तदेवमस्य चन्द्रमसः प्रथमेऽयने उत्तरभागादभ्यन्तरप्रवेशचिन्तायां द्वितीयादीन्येकान्तरितानि चतुर्दशपर्यन्तानि सप्तार्द्धमण्डलानि भवन्ति, दक्षिणभागादभ्यन्तरप्रवेशचिन्तायां तृतीयादीन्येकान्तरितानि त्रयोदशपर्यन्तानि षट् अर्द्धमण्डलानि भवन्ति, पञ्चदशस्य चार्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः, एवं च सति यावान् चन्द्रस्यार्द्धमासस्तावान् नक्षत्रस्यार्द्धमासो न भवन्ति, किन्तु ततो न्यून इति सामर्थ्यात् द्रष्टव्यं, तथा चाह–'ता नक्खत्ते'इत्यादि, यद्येवमेकस्मिन्नयने नक्षत्रार्द्धमासरूपे सामान्यतश्चन्द्रमसस्त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य च मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः 'ता'इति ततो नाक्षत्रोऽर्द्धमासश्चान्द्रोऽर्धमासो न भवति, चान्द्रेऽर्द्धमासे चतुर्दशानां मण्डलानां पञ्चदशस्य च मण्डलस्य द्वात्रिंशतश्चतुर्विंशत्यधिकशतभागानां प्राप्यमाणत्वात्, इह नाक्षत्रोऽर्धमासश्चान्द्रोऽर्धमासो न भवतीत्युक्तौ नाक्षत्रोऽर्धमासश्चान्द्रोऽर्धमासो न भवति, यस्तु चान्द्रोऽर्धमासः स कदाचित् नाक्षत्रोऽप्यर्द्धमासः स्यात्, यथा 'परमाणुरप्रदेश' इत्युक्तौ परमाणुरप्रदेश एव यस्तु अप्रदेशः स परमाणुरपि भवत्यपरमाणुश्च क्षेत्रप्रदेशादिरिति शङ्का स्यात् ततस्तदपनोदार्थमाह–चान्द्रोऽर्द्धमासो नाक्षत्रोऽर्धमासो न भवति, एवमुक्ते भगवान् गौतमो नाक्षत्रार्द्धमासचान्द्रार्द्धमासयोर्विशेषपरिज्ञानार्थमाह–'ता नक्खत्ताओ अद्धमासाओ'इत्यादि, 'ता' इति पूर्ववत्, नाक्षत्रात् अर्द्धमासात् ते–तव मतेन भगवन् ! चन्द्रश्चान्द्रेणार्द्धमासेन किमधिकं चरति ?, भगवानाह–'ता एग'मित्यादि, एकमर्द्धमण्डलं द्वितीयस्य चार्द्धमण्डलस्य चतुरः सप्तषष्टिभागानेकस्य च सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशद्धा विभक्तस्य सत्कान् नव भागानधिकं चरति, कथमेतदवसीयते इति चेत्?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८१]

दीप अनुक्रम [११३]

उच्यते, त्रैराशिकबलात्, तथाहि–यदि चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन सप्तदश शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि मण्डलानां लभ्यन्ते तत एकेन पर्वणा किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना १२४ । १७६८ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुण्यते जातः स तावानेव तत आद्येन चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण राशिना भागहरणं छेद्यच्छेदकराश्योश्चतुष्केनापवर्त्तना लब्धानि चतुर्दश मण्डलानि अष्टौ च एकत्रिंशद् भागाः, एतस्मान्नक्षत्रार्द्धमासगम्यं क्षेत्रं त्रयोदश मण्डलानि एकस्य च मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागा इत्येवंप्रमाणं शोध्यते, तत्र चतुर्दशभ्यस्त्रयोदश मण्डलानि शुद्धानि एकमवशिष्टं सम्प्रत्यष्टभ्य एकत्रिंशद्भागेभ्यस्त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः शोध्याः, तत्र सप्तषष्टिरष्टभिर्गुणिता जातानि पञ्च शतानि षट्त्रिंशदधिकानि ५३६ एकत्रिंशता त्रयोदश गुणिता जातानि चत्वारि शतानि त्र्युत्तराणि ४०३ एतानि पञ्चभ्यः शतेभ्यः षट्त्रिंशदधिकेभ्यः शोध्यन्ते स्थितं शेषं त्रयस्त्रिंशदधिकं शतं १३३ तत एतत् सप्तषष्टिभागानयनार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यते जातानि नवाशीतिः शतान्येकादशाधिकानि ८९११ छेदराशिर्भौल एकत्रिंशत् सा सप्तषष्ट्या गुण्यते जाते द्वे सहस्रे सप्तसप्तत्यधिके २०७७ ताभ्यां भागो ह्रियते लब्धाश्चत्वारः सप्तषष्टिभागाः शेषाणि तिष्ठन्ति षट् शतानि त्र्युत्तराणि ६०३ ततश्छेद्यच्छेदकराश्योः सप्तषष्ट्याऽपवर्त्तना जाता उपरि नव अधस्तादेकत्रिंशत् लब्धा एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य नव एकत्रिंशच्छेदकृता भागाः, उक्तं च–"एगं च मंडलं मंडलस्स सत्तट्ठिभाग चत्तारि । नव चेव चुण्णियातो इगतीसकएण छेएण ॥ १ ॥" इह भावनां कुर्वता मण्डलं मण्डलमिति यदुक्तं तत्सामान्यतो ग्रन्थान्तरे या प्रसिद्धा भावना तदुपरोधादवसेयं, परमार्थतः पुनरर्द्धमण्डलमवसातव्यं, ततो न कश्चित् सूत्रभावनिकयोर्विरोधः, तदेवमेकचन्द्रायणवक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति द्वितीयचन्द्रायण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवक्तव्यताभिधीयते, तत्र यः प्रथमे चन्द्रायणे दक्षिणभागादभ्यन्तरं प्रविशन् सप्तार्द्धमण्डलानि उत्तरभागादभ्यन्तरं प्रविशन् षट् अर्द्धमण्डलानि सप्तमस्य चार्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागान् चरितवान् तमधिकृत्य द्वितीयायनभावना क्रियते, तत्रायनस्य मण्डलक्षेत्रपरिमाणं त्रयोदश अर्द्धमण्डलानि चतुर्दशस्य चार्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः, तत्र प्राक्तनमयनमुत्तरस्यां दिशि सर्वाभ्यन्तरे मण्डले त्रयोदश सप्तषष्टिभागपर्यन्ते परिसमाप्तं, तदनन्तरं द्वितीयायनप्रवेशे चतुःपञ्चाशता सप्तषष्टिभागैः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं परिसमाप्य ततो द्वितीये मण्डले चारं चरति, तत्र त्रयोदशभागपर्यन्ते एकमर्द्धमण्डलं द्वितीयस्यायनस्य परिसमाप्तं, द्वितीयमर्द्धमण्डलमुत्तरस्यां सर्वाभ्यन्तरात्तृतीये अर्द्धमण्डले त्रयोदशभाग-पर्यन्ते तृतीयमर्द्धमण्डलं दक्षिणस्यां दिशि चतुर्थेऽर्द्धमण्डले चतुर्थमर्द्धमण्डलमुत्तरस्यां दिशि पञ्चमेऽर्द्धमण्डले पञ्चममर्द्ध-मण्डलं दक्षिणस्यां दिशि षष्ठे अर्द्धमण्डले षष्ठमर्द्धमण्डलं उत्तरस्यां दिशि सप्तमेऽर्द्धमण्डले सप्तममर्द्धमण्डलं दक्षिणस्यां दिशि अष्टमेऽर्द्धमण्डलेऽष्टममर्द्धमण्डलं उत्तरस्यां दिशि नवमे अर्द्धमण्डले नवममर्द्धमण्डलं दक्षिणस्यां दिशि दशमे अर्द्ध-मण्डले दशममर्द्धमण्डलं उत्तरस्यां दिशि एकादशेऽर्द्धमण्डले एकादशमर्द्धमण्डलं दक्षिणस्यां दिशि द्वादशे अर्द्धमण्डले द्वादशमर्द्धमण्डलं उत्तरस्यां दिशि त्रयोदशे अर्द्धमण्डले त्रयोदशमर्द्धमण्डलं दक्षिणस्यां दिशि चतुर्दशेऽर्द्धमण्डले चतुर्दश-मर्द्धमण्डलं तच्च त्रयोदशभागपर्यन्ते परिसमाप्तं, तदनन्तरं त्रयोदश सप्तषष्टिभागान् अन्यान् चरति, एतावता द्वितीय-मयनं परिसमाप्तं, चतुर्दशे च मण्डले सङ्क्रान्तः सन् प्रथमक्षणादूर्ध्वं सर्वबाह्यमण्डलाभिमुखं चारं चरति, ततः परमार्थतः कतिपयभागातिक्रमे पञ्चदश एव सर्वबाह्यमण्डले वेदितव्यः, तदेवमस्मिन्नयने पूर्वभागेन द्वितीयादीन्येकान्तरितानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दशपर्यन्तानि सप्तार्द्धमण्डलानि चीर्णानि, पश्चिमभागे च तृतीयादीन्येकान्तरितानि त्रयोदशपर्यन्तानि षडर्द्धमण्डलानि, तत्र पूर्वभागे पश्चिमभागे वा यत् प्रतिमण्डलं स्वयं चीर्णमन्यचीर्णं वा चरति तन्निरूपयति–'ता दोच्चायणगए' इत्यादि, ता इति पूर्ववत् द्वितीयायनगते चन्द्रे पौरस्त्यात् भागान्निष्क्रामति, किमुक्तं भवति ?–पौरस्त्ये भागे चारं चरति, सप्त चतुःपञ्चाशत्कानि भवन्ति यानि चन्द्रः परस्येति तृतीयार्थे षष्ठी परेण सूर्यादिना चीर्णानि प्रतिचरति, सप्त च त्रयोदशकानि भवन्ति यानि चन्द्र आत्मनैव चीर्णानि प्रतिचरति, इयमत्र भावना–मेरोः पूर्वस्यां दिशि यो भागः स पूर्वभागो यश्चापरस्यां दिशि स पश्चिमभागः, तत्र पूर्वभागे सप्तस्वपि द्वितीयादिष्वेकान्तरितेषु चतुर्दशपर्यन्तेषु सप्तषष्टिभागप्रविभक्तेषु प्रत्येकं चतुःपञ्चाशतं सप्तषष्टिभागान् चन्द्रः परेण सूर्यादिना चीर्णान् प्रतिचरति, त्रयोदश त्रयोदश सप्तषष्टिभागान् स्वयंचीर्णानिति, 'ता दोच्चायणगए'इत्यादि, तस्मिन्नेव चन्द्रमसि द्वितीयायनगते पश्चिमभागान्निष्क्रामति–पश्चिमभागे चारं चरति, षट् चतुःपञ्चाशत्कानि भवन्ति यानि चन्द्रः 'परस्मे'ति परेण सूर्यादिना चीर्णानि प्रतिचरति, षट् त्रयोदशकानि यानि चन्द्रः स्वयंचीर्णानि प्रतिचरति, अत्रापीयं भावना–पश्चिमे भागे षट्स्वपि तृतीयादिष्वेकान्तरितेषु त्रयोदशपर्यन्तेषु अर्द्धमण्डलेषु सप्तषष्टिभागप्रविभक्तेषु प्रत्येकं चतुःपञ्चाशतं चतुःपञ्चाशतं सप्तषष्टिभागान् परचीर्णान् चरति, त्रयोदश सप्तषष्टिभागान् स्वयंचीर्णानिति, 'अवराइं खलु दुवे'इत्यादि, अपरे खलु द्वे त्रयोदशके तस्मिन्नयने स्तो ये चन्द्रः केनाप्यसामान्ये–केनाप्यनाचीर्णपूर्वे स्वयमेव प्रविश्य चारं चरति, 'कयराइं खलु'इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं,'इमाइं खलु'इत्यादि निर्वचनवाक्यमेतद्, एतच्च प्रायो निगदसिद्धम्, नवरमेकं यत् त्रयोदशकं सर्वाभ्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्तरे मण्डले तत् पाश्चात्यायनगतत्रयोदशकादूर्ध्वं वेदितव्यं, तस्यैव सम्भवास्पदत्वात्, द्वितीयं सर्वबाह्ये मण्डले तच्च पर्यन्तवर्त्ति प्रतिपत्तव्यं, 'एयाइं खलु ताणि'इत्यादि निगमनवाक्यं सुगमं, तदेवमेकं चन्द्रमसमधिकृत्य द्वितीयायनवक्तव्यतोक्ता, एतदनुसारेण च द्वितीयमपि चन्द्रमसमधिकृत्य द्वितीयायनवक्तव्यता भावनीया, एवं तस्य पश्चिमभागे सप्त चतुःपञ्चाशत्कानि परचीर्णाचरणीयानि सप्त त्रयोदशकानि स्वयंचीर्णाचरणीयानि वक्तव्यानि, पूर्वभागे षट् चतुःपञ्चाशत्कानि परचीर्णाचरणीयानि षट् त्रयोदशकानि स्वयंचीर्णप्रतिचरणीयानि, 'एतावता'इत्यादि, एतावता कालेन द्वितीयं चन्द्रायणं समाप्तं भवति, 'ता नक्खत्ते'त्यादि, यद्येवं द्वितीयमप्ययनमेतावत्प्रमाणं ता इति–ततो नाक्षत्रो मासो न चान्द्रो मासो भवति नापि चान्द्रो मासो नाक्षत्रो मासः, सम्प्रति नक्षत्रमासात् कियता चन्द्रमासोऽधिक इति जिज्ञासुः प्रश्नं करोति–'ता नक्खत्ताओ मासाओ'इत्यादि, ता इति–तत्र नाक्षात्रात् मासात् चन्द्रः चन्द्रेण मासेन किमधिकं चरति ?, एवं प्रश्ने कृते भगवानाह–'ता दो अद्धमंडलाइं'इत्यादि, द्वे अर्द्धमण्डले तृतीयस्यार्द्धमण्डलस्याष्टौ सप्तषष्टिभागान् एकं च सप्तषष्टिभागमेकत्रिंशद्धा छित्त्वा तस्य सत्कानष्टादश भागान् अधिकं चरति, एतच्च प्रागुक्तमेकायनेऽधिकमेकमण्डलमित्यादि द्विगुणं कृत्वा परिभावनीयं, सम्प्रति यावता चन्द्रमासः परिपूर्णो भवति तावन्मात्रतृतीयायनवक्तव्यतामाह–'ता तच्चायणमए चंदे'इत्यादि, इह द्वितीयायनपर्यन्ते चतुर्दशेऽर्द्धमण्डले षड्विंशतिसङ्ख्यसप्तषष्टिभागमात्रमाक्रान्तं, तच्च परमार्थतः पञ्चदशमर्द्धमण्डलं वेदितव्यं, बहु तदभिमुखं गतत्वात्, तदनन्तरं नीलवत्पर्वतप्रदेशे साक्षात् पञ्चदशमर्द्धमण्डलं प्रविष्टस्तत्प्रविष्टश्च प्रथमक्षणादूर्ध्वं सर्वबाह्यानन्तरार्वाक्तनद्वितीयमण्डलाभिमुखं चरति, ततस्तस्मिन्नेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८१]

दीप अनुक्रम [११३]

सर्वबाह्यानन्तरेऽर्वाक्तने द्वितीयमण्डले चारं चरन् विवक्षितः, ततोऽधिकृतसूत्रोपनिपातः, तृतीयायनगते चन्द्रे पश्चिमे भागे प्रविशति बाह्यानन्तरस्यार्वाग्भागवर्त्तिनः पाश्चात्यस्यार्द्धमण्डलस्य एकचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागास्ते वर्त्तन्ते यान् चन्द्रः आत्मना परेण च चीर्णान् प्रतिचरति त्रयोदश च सप्तषष्टिभागास्ते यान् चन्द्रः परेणैव चीर्णान् प्रतिचरति अन्ये च त्रयोदश सप्तषष्टिभागास्ते यान् चन्द्रः स्वयं परेण च चीर्णान् प्रतिचरति, एतावता परिभ्रमणेन बाह्यानन्तरमर्वाक्तनं पाश्चात्यमर्द्धमण्डलं परिसमाप्तं भवति, तदनन्तरं च तस्मिन्नेव तृतीयायनगते चन्द्रे पौरस्त्यभागे प्रविशति सर्वबाह्यादर्वाक्तनस्य तृतीयस्य पौरस्त्यार्द्धमण्डलस्य एकचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागा यान् चन्द्र आत्मना परेण च चीर्णान् प्रतिचरति, ततः परमन्ये ते त्रयोदश भागा यान् चन्द्रः परेणैव चीर्णान् प्रतिचरति, अन्ये च ते त्रयोदश भागा यान् चन्द्र आत्मना परेण च चीर्णान् प्रतिचरति, एतावता सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं तृतीयं पौरस्त्यमर्द्धमण्डलं परिसमाप्तं भवति, सप्तषष्टेरपि भागानां परिपूर्णतया जातत्वात्, 'ता'इत्यादि, ततस्तस्मिन्नेव तृतीयायनगते चन्द्रे पश्चिमे भागे प्रविशति सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनस्य चतुर्थस्य पाश्चात्यस्यार्द्धमण्डलस्याष्टौ सप्तषष्टिभागा एकं च सप्तषष्टिभागमेकत्रिंशद्धा छित्त्वा तस्य सत्का अष्टादश भागास्ते वर्त्तन्ते यान् चन्द्र आत्मना परेण च चीर्णान् प्रतिचरति, एतावता च परिभ्रमणेन चान्द्रो मासः परिपूर्णो जातः। सम्प्रति पूर्वोक्तमेव स्मरयन् चन्द्रमासगतमुपसंहारमाह–'एवं खलु चंदेणं मासेण'मित्यादि, एवं–उक्तेन प्रकारेण खलु–निश्चितं चान्द्रेण मासेन चन्द्रे त्रयोदश चतुष्पञ्चाशत्कानि जातानि द्वे च त्रयोदशके यानि चन्द्रः परेणैव चीर्णानि प्रतिचरति, वर्त्तमानकालनिर्देशः सकलकालयुगस्य प्रथमे चान्द्रे मासे एवमेव द्रष्टव्यमिति ज्ञापनार्थः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८१]

दीप अनुक्रम [११३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

तत्र त्रयोदशापि चतुःपञ्चाशत्कानि द्वितीयेऽयने, तत्रापि सप्त चतुःपञ्चाशत्कानि पूर्वभागे षट् पाश्चात्ये भागे, ये च द्वे त्रयोदशके ते द्वितीयस्यायनस्योपरि चन्द्रमासावधेरर्वाक् द्रष्टव्ये, तत्रैकं त्रयोदशकं सर्वबाह्यादवाक्तने द्वितीये पाश्चात्येऽर्द्धमण्डले द्वितीयं पौरस्त्ये तृतीयेऽर्द्धमण्डले, तथा 'तेरसे'त्यादि, त्रयोदश त्रयोदशकानि यानि चन्द्र आत्मनैव चीर्णानि प्रतिचरति, एतानि च सर्वाण्यपि द्वितीयेऽयने वेदितव्यानि, तत्रापि सप्त पूर्वभागे षट् पश्चिमभागे, तथा 'दुवे'इत्यादि, द्वे एकचत्वारिंशत्के द्वे च त्रयोदशके अष्टौ सप्तषष्टिभागा एकं च सप्तषष्टिभागमेकत्रिंशद्धा छित्त्वा तस्य सत्का अष्टादश भागा यान्येतानि चन्द्र आत्मना परेण च चीर्णानि प्रतिचरति, तत्र एकमेकचत्वारिंशत्कमेकं च त्रयोदशकं द्वितीयायनोपरि सर्वबाह्यात् मण्डलादर्वाक्तने द्वितीये पाश्चात्येऽर्द्धमण्डले द्वितीयमेकचत्वारिंशत्कं द्वितीयं च त्रयोदशकं सर्वबाह्यात् मण्डलादर्वाक्तने तृतीये पौरस्त्ये शेषं पाश्चात्ये सर्वबाह्यादर्वाक्तने चतुर्थेऽर्द्धमण्डले, अधुनोपसंहारमाह–'इच्चेसा'इत्यादि, इत्येषा चन्द्रमसः संस्थितिरिति योगः, किंविशिष्टेत्याह–'अभिगमननिष्क्रमणवृद्धिनिर्वृद्ध्यनवस्थितसंस्थाना' अभिगमनं–सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं प्रवेशनं, निष्क्रमणं–सर्वाभ्यन्तरात् मण्डलाद्बहिर्गमनं वृद्धिः–चन्द्रमसः प्रकटताया उपचयो निर्वृद्धिः–यथोक्तस्वरूपवृद्ध्यभावः, एताभिरनवस्थितं–संस्थानं, अभिगमननिष्क्रमणे अधिकृत्यानवस्थानं वृद्धिनिर्वृद्धी अपेक्ष्य संस्थानं–आकारो यस्याः सा तथारूपा संस्थितिः, तथा परिदृश्यमानचन्द्रविमानस्याधिष्ठाता विकुर्वणर्द्धिप्राप्तो रूपी–रूपवान् अत्रातिशयने मत्वर्थीयोऽतिशयरूपवान् चन्द्रो देव आख्यातो नतु परिदृश्यमानविमानमात्रश्चन्द्रो देव इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः ॥ ॥

॥२४३॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां त्रयोदशमं-प्राभृतं समाप्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र त्रयोदशं प्राभृतं परिसमाप्तं

प्रत सूत्रांक [८२]

दीप अनुक्रम [११४]

तदेवमुक्तं त्रयोदशं प्राभृतं, सम्प्रति चतुर्दशं वक्तव्यं, तस्य चायमर्थाधिकारो यथा–'कदा ज्योत्स्ना प्रभूता भवती'ति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कता ते दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?, ता दोसिणापक्खे णं दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा, ता कहं ते दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?, ता अंधकारपक्खओ णं दोसिणा बहू आहियाति वदेज्जा, ता कहं ते अंधकारपक्खातो दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?, ता अंधकारपक्खातो णं दोसिणापक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बायाले मुहुत्तसते छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चंदे विरज्जति, तं०–पढमाए पढमं भागं विदियाए विदियं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसं भागं, एवं खलु अंधकारपक्खतो दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहितातिवदेज्जा, ता केवतिया णं दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?, ता परित्ता असंखेज्जा भागा। ता कता ते अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा ?, ता अंधयारपक्खे णं बहू अंधकारे आहितेति वदेज्जा, ता कहं ते अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा ?, ता दोसिणापक्खातो अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा, ता कहं ते दोसिणापक्खातो अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा ?, ता दोसिणापक्खातो णं अंधकारपक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बातालं मुहुत्तसते बायालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चंदे रज्जति, तं०–पढमाए पढमं भागं विदियाए विदियं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसमं भागं, एवं खलु दोसिणापक्खातो अंधकारपक्खे अंधकारे बहू

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्दशं प्राभृतं आरभ्यते

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२४४॥

आहितेति वदेज्जा, ता केवतिएणं अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहियेति वदेज्जा ? परित्ता असंखेज्जा भागा ॥ (सूत्रं ८२) ॥ चोद्दसमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता कया ते दोसिणा'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् 'कदा'कस्मिन् काले भगवन् ! त्वया ज्योत्स्ना प्रभूता आख्याता इति वदेत् ?, भगवानाह–'ता दोसिणे'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, ज्योत्स्नापक्षे ज्योत्स्ना बहुराख्याता इति वदेत्, 'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, कथं ?–केन प्रकारेण भगवन् ! त्वया ज्योत्स्ना बहुराख्याता इति वदेत् ?, भगवानाह–'ता अंधकारे'त्यादि, सुगमं, पुनरपि 'ता कहं ते'इत्यादि प्रश्नसूत्रं निगदसिद्धं, निर्वचनमाह–'ता अंधकारपक्खातो'इत्यादि, सुगमं, पुनरपि 'ता कहं ते'इत्यादि प्रश्नसूत्रं, निर्वचनमाह–'ता अंधकारपक्खाओ'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, अन्धकारपक्षात् ज्योत्स्नापक्षमयमानश्चन्द्रश्चत्वारि मुहूर्त्तशतानि द्वाचत्वारिंशानि–द्विचत्वारिंशदधिकानि षट्चत्वारिंशतं च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य यावत् ज्योत्स्ना निरन्तरं प्रवर्द्धते, तथा चाह–यानि यावत् चन्द्रो विरज्यते–शनैः शनैः राहुविमानेनानावृतस्वरूपो भवति, मुहूर्त्तसङ्ख्यागणितभावना प्राग्वत्कर्त्तव्या, कथमनावृतो भवतीत्यत आह–तद्यथा–प्रथमायां–प्रतिपल्लक्षणायां तिथौ प्रथमं पञ्चदशं द्वाषष्टिभागसत्कभागचतुष्टयप्रमाणं यावदनावृतो भवति, द्वितीयस्यां तिथौ द्वितीयं भागं यावत् एवं तावद् द्रष्टव्यं यावत्पञ्चदश्यां पञ्चदशमपि भागं यावदनावृतो भवति, सर्वात्मना राहुविमानेनानावृतो भवतीति भावः, उपसंहारमाह–'एवं खलु'इत्यादि, तत एवं–उक्तेन प्रकारेण खलु–निश्चितमन्धकारपक्षात् ज्योत्स्नापक्षे ज्योत्स्ना बहुराख्याता इति वदेत्, इयमत्र भावना–इह शुक्लपक्षे यथा प्रतिपत्प्रथमक्षणादारभ्य

१४ प्राभृते ज्योत्स्नान्धकारबहुत्वं सू ८२

॥२४४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८२]

दीप अनुक्रम [११४]

प्रतिमुहूर्त्तं यावन्मात्रं यावन्मात्रं शनैः शनैश्चन्द्रः प्रकटो भवति तथा अन्धकारपक्षे प्रतिपत्प्रथमक्षणादारभ्य प्रतिमुहूर्त्तं तावन्मात्रं तावन्मात्रं शनैः शनैश्चन्द्र आवृत उपजायते, तत एवं सति यावत्येवान्धकारपक्षे ज्योत्स्ना तावत्येव शुक्लपक्षेऽपि प्राप्ता, परं शुक्लपक्षे या पञ्चदश्यां ज्योत्स्ना साऽन्धकारपक्षादधिकेति अंधकारपक्षात् शुक्लपक्षे ज्योत्स्ना प्रभूता आख्यातेति, 'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कियती ज्योत्स्नापक्षे ज्योत्स्ना आख्याता इति वदेत् ?, भगवानाह–परीत्ताः–परिमिताश्च असङ्ख्येया भागा निर्विभागाः। एवमन्धकारसूत्राण्यप्युक्तानुसारेण भावनीयानि, नवरमन्धकारपक्षेऽमावास्यायां योऽन्धकारः स ज्योत्स्नापक्षादधिक इति ज्योत्स्नापक्षादन्धकारपक्षेऽन्धकारः प्रभूत आख्यात इति वदेत् ॥ इति

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां चतुर्दशमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तं चतुर्दशं प्राभृतं, सम्प्रति पञ्चदशमारभ्यते–तस्य चायमर्थाधिकारो यथा–'कः शीघ्रगतिर्भगवन् ! आख्यात' इति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते सिग्घगती वत्थू आहितेति वदेज्जा ?, ता एतेसि णं चंदिमसूरियगहगणनक्खत्ततारारूवाणं चंदेहिंतो सूरे सिग्घगती सूरेहिंतो गहा सिग्घगती गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगती णक्खत्तेहिंतो तारा सिग्घगती, सव्वप्पगती चंदा सव्वसिग्घगती तारा, ता एगमेगेणं मुहुत्तेणं चंदे केवतियाइं भागसताइं गच्छति ?, ता जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स सत्तरस अडसट्ठि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र चतुर्दशं प्राभृतं परिसमाप्तं	अथ पञ्चदशं प्राभृतं आरभ्यते

भागसते गच्छति, मंडलं सतसहस्सेणं अट्ठाणउतीसतेहिं छेत्ता, ता एगमेगेणं मुहुत्तेणं सूरिए केवतियाइं भागसयाइं गच्छति, ता जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारस तीसे भागसते गच्छति, मंडलं सतसहस्सेणं अट्ठाणउतीसतेहिं छेत्ता, ता एगमेगेणं मुहुत्तेणं णक्खत्ते केवतियाइं भागसताइं गच्छति ?, ता जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तस्स २ मंडलस्स परिक्खेवस्स अट्ठारस पणतीसे भागसते गच्छति, मंडलं सतसहस्सेणं अट्ठाणउतीसतेहिं छेत्ता ॥ (सूत्रं ८३)

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं भगवन् ! त्वया चन्द्रसूर्यादिकं वस्तु शीघ्रगति आख्यातं इति वदेत् ?: भगवानाह–'ता एएसि ण'मित्यादि, एतेषां–चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारकाणां पञ्चानां मध्ये चन्द्रेभ्यः सूर्याः शीघ्रगतयः, सूर्येभ्योऽपि ग्रहाः शीघ्रगतयो ग्रहेभ्योऽपि नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि नक्षत्रेभ्योऽपि ताराः शीघ्रगतयः, अत एवैतेषां पञ्चानां मध्ये सर्वाल्पगतयश्चन्द्राः सर्वशीघ्रगतयस्ताराः । एतस्यैवार्थस्य सविशेषपरिज्ञानाय प्रश्नं करोति–'ता एगमेगेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकेन मुहूर्त्तेन चन्द्रः कियन्ति मण्डलस्य भागशतानि गच्छति ?, भगवानाह–'ता जं ज'मित्यादि, यत् यत् मण्डलमुपसङ्क्रम्य चन्द्रश्चारं चरति तस्य तस्य मण्डलस्य सम्बन्धिनः परिक्षेपस्य–परिधेः सप्तदश शतान्यष्टषष्ट्यधिकानि भागानां गच्छति, मण्डलं–मण्डलपरिक्षेपमेकेन शतसहस्रेणाष्टानवत्या च शतैश्छित्त्वा–विभज्य, इयमत्र भावना-इह प्रथमतश्चन्द्रमसो मण्डलकालो निरूपणीयः तदनन्तरं तदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं परिभावनीयं, तत्र मण्डलकाल-निरूपणार्थमिदं त्रैराशिकं–यदि सप्तदशभिः शतैरष्टषष्ट्यधिकैः सकलयुगवर्त्तिभिरर्द्धमण्डलैरष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

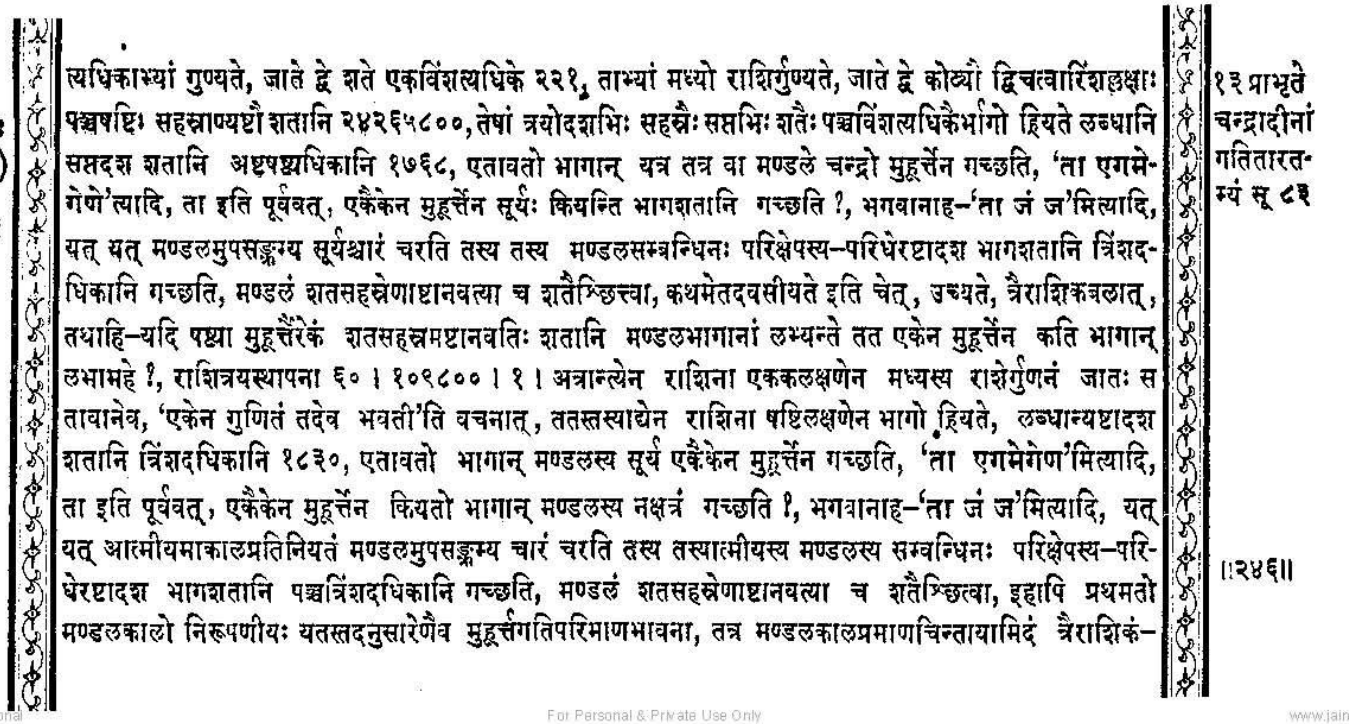
रात्रिन्दिवानां लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यां–एकेन मण्डलेनेति भावः कति रात्रिन्दिवानि लभ्यन्ते ?, राशित्रय-स्थापना–१७६८ । १८३० । २ । अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यस्य राशेर्गुणनं, जातानि षट्त्रिंशत्सहस्राणि षष्ट्य-धिकानि ३६०६०, तेषामाद्येन राशिना भागहरणं, लब्धे द्वे रात्रिन्दिवे, शेषं तिष्ठति चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४, तत्रैक-कस्मिन् रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति तस्य त्रिंशता गुणने जातानि सप्तत्रिंशच्छतानि विंशत्यधिकानि ३७२०, तेषां सप्तदशभिः शतैरष्टषष्ट्यधिकैः भागे हृते लब्धौ द्वौ मुहूर्त्तौ, ततः शेषच्छेद्यराशिच्छेदकराश्योरष्टकेनापवर्त्तना जात-च्छेद्यो राशिस्त्रयोविंशतिः छेदकराशिर्द्वे शते एकविंशत्यधिके, आगतं मुहूर्त्तस्यैकविंशत्यधिकशतद्वयभागास्त्रयोविंशतिः, एतावता कालेन द्वे अर्द्धमण्डले परिपूर्णे चरति, किमुक्तं भवति ?–तावता कालेन परिपूर्णमेकं मण्डलं चन्द्रश्चरति, तदेवं मण्डल-कालपरिज्ञानं कृतं, साम्प्रतमेतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं चिन्त्यते–तत्र ये द्वे रात्रिन्दिवे ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्येते, जाताः षष्टिर्मुहूर्त्ताः ६०, तत उपरितनौ द्वौ मुहूर्त्तौ प्रक्षिप्तौ जाता द्वाषष्टिः ६२, एषा सवर्णनार्थं द्वाभ्यां शता-भ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां गुण्यते गुणयित्वा चोपरितना त्रयोविंशतिः क्षिप्यते जातानि त्रयोदश सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि १३७२५, एतत् एकमण्डलकालगतमुहूर्त्तसत्कैकविंशत्यधिकशतद्वयभागानां परिमाणं, ततस्त्रैराशि-ककर्म्मावसरो–यदि त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैरेकविंशत्यधिकशतद्वयभागानां मण्डलभागा एकं शतसहस्रमष्टानवतिः शतानि लभ्यन्ते तत एकेन मुहूर्त्तेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना । १३७२५ । १०९८०० । १ । इहाद्यो राशिर्मुहूर्त्तगतैकविंशत्यधिकशतद्वयभागरूपस्ततः सवर्णनार्थमन्त्यो राशिरेककलक्षणो द्वाभ्यां शताभ्यामेकविंश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८३]

दीप अनुक्रम [११५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२४६॥

त्यधिकाभ्यां गुण्यते, जाते द्वे शते एकविंशत्यधिके २२१, ताभ्यां मध्यो राशिर्गुण्यते, जाते द्वे कोट्यौ द्विचत्वारिंशल्लक्षाः पञ्चषष्टिः सहस्राण्यष्टौ शतानि २४२६५८००, तेषां त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागो ह्रियते लब्धानि सप्तदश शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि १७६८, एतावतो भागान् यत्र तत्र वा मण्डले चन्द्रो मुहूर्त्तेन गच्छति, 'ता एगमेगेणे'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकेन मुहूर्त्तेन सूर्यः कियन्ति भागशतानि गच्छति ?, भगवानाह–'ता जं ज'मित्यादि, यत् यत् मण्डलमुपसङ्क्रम्य सूर्यश्चारं चरति तस्य तस्य मण्डलसम्बन्धिनः परिक्षेपस्य–परिधेरष्टादश भागशतानि त्रिंशदधिकानि गच्छति, मण्डलं शतसहस्रेणाष्टानवत्या च शतैश्छित्त्वा, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, त्रैराशिकबलात्, तथाहि–यदि षष्ट्या मुहूर्त्तैरेकं शतसहस्रमष्टानवतिः शतानि मण्डलभागानां लभ्यन्ते तत एकेन मुहूर्त्तेन कति भागान् लभामहे ?, राशित्रयस्थापना ६० । १०९८०० । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यस्य राशेर्गुणनं जातः स तावानेव, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति वचनात्, ततस्तस्याद्येन राशिना षष्टिलक्षणेन भागो ह्रियते, लब्धान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, एतावतो भागान् मण्डलस्य सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, 'ता एगमेगेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकेन मुहूर्त्तेन कियतो भागान् मण्डलस्य नक्षत्रं गच्छति ?, भगवानाह–'ता जं ज'मित्यादि, यत् यत् आत्मीयमाकालप्रतिनियतं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तस्य तस्यात्मीयस्य मण्डलस्य सम्बन्धिनः परिक्षेपस्य–परिधेरष्टादश भागशतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि गच्छति, मण्डलं शतसहस्रेणाष्टानवत्या च शतैश्छित्त्वा, इहापि प्रथमतो मण्डलकालो निरूपणीयः यतस्तदनुसारेणैव मुहूर्त्तगतिपरिमाणभावना, तत्र मण्डलकालप्रमाणचिन्तायामिदं त्रैराशिकं–

१३ प्राभृते चन्द्रादीनां गतितारतम्यं सू ८३

॥२४६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यद्यष्टादशभिः शतैः पञ्चत्रिंशदधिकैः सकलयुगभाविभिरर्द्धमण्डलैरष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि रात्रिन्दिवानां लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यां एकैकेन परिपूर्णेन मण्डलेनेति भावः किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना १८३५। १८३०। २। अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६० तत आद्येन राशिना १८३५ भागहरणं लब्धमेकं रात्रिन्दिवं १ शेषाणि तिष्ठन्त्यष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशत्यधिकानि १८२५, ततो मुहूर्त्तानयनार्थमेतानि त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चतुःपञ्चाशत्सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चाशदधिकानि ५४७५०, तेषामष्टादशभिः शतैः पञ्चत्रिंशदधिकैर्भागे हृते लब्धा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः २९, ततः शेषच्छेद्यच्छेदकराश्योः पञ्चकेनापवर्त्तना जात उपरितनो राशिः त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि ३०७ छेदकराशिस्त्रीणि शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि ३६७, तत आगतमेकं रात्रिन्दिवमेकस्य च रात्रिन्दिवस्य एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तषष्ट्यधिकत्रिशतभागानां त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि १। २९। ३०७/३६७। इदानीमेतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं चिन्त्यते, तत्र रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ताः ३० तेषु उपरितना एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः प्रक्षिप्यन्ते जाता एकोनषष्टिर्मुहूर्त्तानां, ततः सा सवर्णनार्थं त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्यधिकैर्गुण्यते, गुणयित्वा चोपरितनानि त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि प्रक्षिप्यन्ते, जातान्येकविंशतिः सहस्राणि नव शतानि षष्ट्यधिकानि २१९६०, ततस्त्रैराशिकं–यदि मुहूर्त्तगतसप्तषष्ट्यधिकत्रिशतभागानामेकविंशत्या सहस्रैर्नवभिः शतैः षष्ट्यधिकैरेकं शतसहस्रमष्टानवतिः शतानि मण्डलभागानां लभ्यंते तत एकेन मुहूर्त्तेन किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना। २१९६०। १०९८००। १। अत्राद्यो राशिर्मुहूर्त्तगतसप्तषष्ट्यधिकत्रिशतभागरूपस्ततोऽन्त्योऽपि राशिस्त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्यधिकैर्गुण्यते जातानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८३]

दीप अनुक्रम [११५]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२४७॥

त्रीण्येव शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि ३६७, तैर्मध्यो राशिर्गुण्यते जाताश्चतस्रः कोट्यो द्वे लक्षे षण्णवतिः सहस्राणि षट् शतानि ४०२९६६०० तेषामाद्येन राशिना एकविंशतिः सहस्राणि नव शतानि षष्ट्यधिकानीत्येवंरूपेण भागो ह्रियते लब्धान्यष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि १८३५ एतावतो भागान्नक्षत्रं प्रतिमुहूर्त्तं गच्छति । तदेवं यतश्चन्द्रो यत्र तत्र वा मण्डले एकैकेन मुहूर्त्तेन मण्डलपरिक्षेपस्य सप्तदश शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि भागानां गच्छति सूर्योऽष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि नक्षत्रमष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि ततश्चन्द्रेभ्यः शीघ्रगतयः सूर्याः सूर्येभ्यः शीघ्रगतीनि नक्षत्राणि, ग्रहास्तु वक्रानुवक्रादिगतिभावतोऽनियतगतिप्रस्थानास्ततो न तेषामुक्तप्रकारेण गतिप्रमाणप्ररूपणा कृता, उक्तं च–"चंदेहिं सिग्घयरा सूरा सूरेहिं होंति नक्खत्ता । अणिययगइपत्थाणा हवंति सेसा गहा सव्वे ॥ १ ॥ अट्ठारस पणतीसे भागसए गच्छई मुहुत्तेणं । नक्खत्तं चंदो पुण सत्तरस सए उ अडसट्ठे ॥ २ ॥ अट्ठारस भागसए तीसे गच्छइ रवी मुहुत्तेण । नक्खत्तसीमछेदो सो चेव इहंपि नायवो ॥ ३ ॥" इदं गाथात्रयमपि सुगमं, नवरं नक्षत्रसीमाछेदः स एव अत्रापि ज्ञातव्य इति किमुक्तं भवति ?–अत्रापि मण्डलमेकेन शतसहस्रेणाष्टानवत्या च शतैः प्रविभक्तव्यमिति ॥ सम्प्रत्युक्तस्वरूपमेव चन्द्रसूर्यनक्षत्राणां परस्परं मण्डलभागविषयं विशेषं निर्द्धारयति—

ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं सूरे गतिसमावण्णे भवति, से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेति ?, बावट्ठिभागे विसेसेति, ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं णक्खत्ते गतिसमावण्णे भवइ से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेइ ?, ता सत्तट्ठिं भागे विसेसेति, ता जता णं सूरं गतिसमावण्णं णक्खत्ते गतिसमावण्णे भवति

१५ प्राभृते चन्द्रादीनां गतितारतम्यं सू ८४

॥२४७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेति ?, ता पंच भागे विसेसेति, ता जता णं चंदं गतिसमावण्णं अभीयी-णक्खत्ते णं गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुरच्छिमाते भागाते समासादित्ता णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोएति, जोअं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टति, जोअं २ त्ता विप्पजहाति विगतजोई यावि भवति, ता जता णं चंदं गतिसमावण्णं सवणे णक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरच्छिमाति भागादे समासादेति, पुरच्छिमाते भागाते समासादेत्ता तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोअं जोएति २ जोयं अणुपरियट्टति जो० २ त्ता विप्पजहति विगतजोई यावि भवइ, एवं एएणं अभिलावेणं णेतवं, पण्ण-रसमुहुत्ताइं तीसतिमुहुत्ताइं पणयालीसमुहुत्ताइं भाणितव्वाइं जाव उत्तरासाढा। ता जता णं चंदं गतिसमावण्णं गहे गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति पुर० २ त्ता चंदेणं सद्धिं जोगं जुंजति २ त्ता जोगं अणुपरियट्टति २ त्ता विप्पजहति विगतजोई यावि भवति । ता जया णं सूरं गतिसमावण्णं अभीयीणक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुर० २ त्ता चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेणं सद्धिं जोयं जोएति २ जोयं अणुपरियट्टति २ त्ता विजेति विगतजोगी यावि भवति, एवं अहोरत्ता छ एक्कवीसं मुहुत्ता य तेरस अहोरत्ता बारस मुहुत्ता य वीसं अहोरत्ता तिण्णि मुहुत्ता य सव्वे भणितव्वा जाव जता णं सूरं गतिसमावण्णं उत्तरासाढाणक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पु० २ त्ता वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएति जो० २ त्ता जोयं अणुपरियट्टति जो० २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्ता विजेति विजहति विप्पजहति विगतजोगी यावि भवति, ता जता णं सूरं गतिसमावण्णं णक्खत्ते (गहे) गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पु० २ त्ता सूरेण सद्धिं जोयं जुंजति २ त्ता जोयं अणुपरियट्टति २ त्ता जाव विजेति विगतजोगी यावि भवति । (सूत्रं० ८४)

'ता जया ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यदा णमिति वाक्यालङ्कारे चन्द्रं गतिसमापन्नमपेक्ष्य सूर्यो गतिसमापन्नो विवक्षितो भवति, किमुक्तं भवति ?–प्रतिमुहूर्त्तं चन्द्रगतिमपेक्ष्य सूर्यगतिश्चिन्त्यते तदा सूर्यो गतिमात्रया–एकमुहूर्त्तगतपरिमाणेन कियतो भागान् विशेषयति ?, एकेन मुहूर्त्तेन चन्द्राक्रमितेभ्यो भागेभ्यः कियतोऽधिकतरान् भागान् सूर्य आक्रामतीति भावः, भगवानाह–द्वापष्टिभागान् विशेषयति, तथाहि–चन्द्र एकेन मुहूर्त्तेन सप्तदश भागशतान्यष्टषष्ट्यधिकानि गच्छति १७६८ सूर्योऽष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३० ततो भवति द्वापष्टिभागकृतः परस्परं विशेषः, 'ता जया ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, यदा चन्द्रं गतिसमापन्नमपेक्ष्य नक्षत्रं गतिसमापन्नं विवक्षितं भवति तदा नक्षत्रं गतिमात्रया–एकमुहूर्त्तगतपरिमाणेन कियन्तं विशेषयति ?, चन्द्राक्रमितेभ्यो भागेभ्यः कियतो भागानधिकान् आक्रामतीति भावः, भगवानाह–सप्तषष्टिभागान्, नक्षत्रं ह्येकेन मुहूर्त्तेनाष्टादश भागशतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि गच्छति चन्द्रस्तु सप्तदश भागशतानि अष्टषष्ट्यधिकानि तत उपपद्यते सप्तषष्टिभागकृतो विशेषः, 'ता जया ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वद् भावनीयं, भगवानाह–'ता पंचे'त्यादि, पञ्च भागान् विशेषयति–सूर्याक्रान्तभागेभ्यो नक्षत्राक्रान्तभागानां पञ्चभिरधिकत्वात्, तथाहि–सूर्यः एकेन मुहूर्त्तेनाष्टादश भागशतानि त्रिंशदधिकानि गच्छति नक्षत्रमष्टादश भागशतानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८४]

दीप अनुक्रम [११६]

पञ्चत्रिंशदधिकानि ततो भवति परस्परं पञ्चभागकृतो विशेषः, 'ता जया ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यदा णमिति वाक्यालङ्कारे चन्द्रं गतिसमापन्नमपेक्ष्याभिजिन्नक्षत्रं गतिसमापन्नं भवति तदा पौरस्त्याद् भागात् प्रथमतोऽभिजिन्नक्षत्रं चन्द्रमसं समासादयति एतच्च प्रागेव भावितं समासाद्य च नव मुहूर्त्तान् दशमस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिं सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति-करोति, एतदपि प्रागेव भावितं, एवंप्रमाणं कालं योगं युक्त्वा पर्यन्तसमये योगमनुपरिवर्त्तयति, श्रवणनक्षत्रस्य योगं समर्पयतीति भावः, योगं च परावर्त्य स्वेन सह योगं विजहाति, किं बहुना ?, विगतयोगी चापि भवति, 'ता जया ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, यदा चन्द्रं गतिसमापन्नमपेक्ष्य श्रवणनक्षत्रं गतिसमापन्नं भवति तदा तत् श्रवणनक्षत्रं प्रथमतः पौरस्त्याद् भागात्-पूर्वेण भागेन चन्द्रमसं समासादयति, समासाद्य चन्द्रेण सार्द्धं त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावत् योगं युनक्ति, एवंप्रमाणं च कालं यावत् योगं युक्त्वा पर्यन्तसमये योगमनुपरिवर्त्तयति, धनिष्ठानक्षत्रस्य योगं समर्पयितुमारभते इत्यर्थः, योगमनुपरिवर्त्य च स्वेन सह योगं विप्रजहाति, किं बहुना ?, विगतयोगी चापि भवति, 'एव'मित्यादि एवमुक्तेन प्रकारेण एतेनानन्तरोपदर्शितेनाभिलापेन यानि पञ्चदश मुहूर्त्तानि शतभिषग्प्रभृतीनि नक्षत्राणि यानि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि धनिष्ठाप्रभृतीनि यानि च पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि उत्तरभद्रपदादीनि तानि सर्वाण्यपि क्रमेण तावद् भणितव्यानि यावदुत्तराषाढा, तत्राभिलापः सुगमत्वात् स्वयं भावनीयो ग्रन्थगौरवभयात् नाख्यायते इति । सम्प्रति ग्रहमधिकृत्य योगचिन्तां करोति-'ता जया ण'मित्यादि ता इति पूर्ववत् यदा णमिति वाक्यालङ्कारे चन्द्रं गतिसमापन्नमपेक्ष्य ग्रहो गति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समापन्नो भवति तदा स ग्रहः पौरस्त्याद् भागात्–पूर्वेण भागेन प्रथमतश्चन्द्रमसं समासादयति समासाद्य च यथासम्भवं योगं युनक्ति, यथासम्भवं योगं युक्त्वा पर्यन्तसमये यथासम्भवं योगमनुपरिवर्त्तयति, यथासम्भवमन्यस्य ग्रहस्य योगं समर्प्पयितुमारभते इति भावः, योगमनुवर्त्त्य च स्वेन सह योगं विप्रजहाति, किं बहुना ?, विगतयोगी चापि भवति। अधुना सूर्येण सह नक्षत्रस्य योगचिन्तां करोति–'ता जया ण'मित्यादि, ता इति प्राग्वत्, यदा सूर्यं गतिसमापन्नमपेक्ष्याभिजिन्नक्षत्रं गतिसमापन्नं भवति तदा तदभिजिन्नक्षत्रं प्रथमतः पौरस्त्याद् भागात् सूर्यं समासादयति समासाद्य चतुरः परिपूर्णान् अहोरात्रान् पञ्चमस्य चाहोरात्रस्य षड् मुहूर्त्तान् यावत् सूर्येण सह योगं युनक्ति, एवंप्रमाणं च कालं यावत् योगं युक्त्वा पर्यन्तसमये योगमनुपरिवर्त्तयति, श्रवणनक्षत्रस्य योगं समर्प्पयितुमारभते इति भावः, अनुपरिवर्त्त्य च स्वेन सह योगं विजहाति विप्रजहाति, किं बहुना ?, विगतयोगी चापि भवति, 'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण पञ्चदशमुहूर्त्तानां शतभिषक्प्रभृतीनां षट् अहोरात्राः सप्तमस्य अहोरात्रस्य एकविंशतिर्मुहूर्त्ताः त्रिंशन्मुहूर्त्तानां श्रवणादीनां त्रयोदश अहोरात्राश्चतुर्दशस्य अहोरात्रस्य द्वादश मुहूर्त्ताः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानामुत्तरभद्रपदादीनां विंशतिरहोरात्रा एकविंशतितमस्य चाहोरात्रस्य त्रयो मुहूर्त्ताः क्रमेण सर्वे तावद् भणितव्याः यावदुत्तराषाढानक्षत्रं, तत्रोत्तराषाढानक्षत्रगतमभिलापं साक्षाद्दर्शयति–'ता जया ण'मित्यादि, सुगमं, एतदनुसारेण शेषा अप्यालापाः स्वयं वक्तव्याः, सुगमत्वात्तु नोपदर्श्यन्ते। सम्प्रति सूर्येण सह ग्रहस्य योगचिन्तां करोति–'ता जया ण'मित्यादि सुगमं ॥ अधुना चन्द्रादयो नक्षत्रेण मासेन कति मण्डलानि चरन्तीत्येतन्निरूपयितुकाम आह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ता णक्खत्तेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?, ता तेरस मंडलाइं चरति, तेरस य सत्तट्ठिभागे मंडलस्स, ता णक्खत्तेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?, तेरस मंडलाइं चरति, चोत्तालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स, ता णक्खत्तेणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?, ता तेरस मंडलाइं चरति अट्ठसीतालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स । ता चंदेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति, चोद्दस चउभागाइं मंडलाइं चरति एगं च चउवीससतं भागं मंडलस्स, ता चंदेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?, ता पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं चरति, एगं च चउवीससयभागं मंडलस्स, ता चंदेणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?, ता पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं चरति छच्च चउवीससतभागे मंडलस्स, ता उडुणा मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?, ता चोद्दस मंडलाइं चरति तीसं च एगट्ठिभागे मंडलस्स, ता उडुणा मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?, ता पण्णरस मंडलाइं चरति, ता उडुणा मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?, ता पण्णरस मंडलाइं चरति पंच य बावीससतभागे मंडलस्स, ता आदिच्चेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?, ता चोद्दस मंडलाइं चरति, एक्कारस भागे मंडलस्स, ता आदिच्चेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?, ता पण्णरस चउभागाहिगाइं मंडलाइं चरति, ता आदिच्चेणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?, ता पण्णरस चउभागाहिगाइं मंडलाइं चरति पंचतीसं च चउवीससतभागमंडलाइं चरति, ता अभिवड्ढिएण मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?, ता पणरस मंडलाइं तेसीतिं छलसीयसतभागे मंडलस्स, ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिवड्ढितेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?, ता सोलस मंडलाइं चरति तिहिं भागेहिं ऊणगाइं दोहिं अडयालेहिं सएहिं मंडलं छित्ता, अभिवड्ढितेणं मासेणं नक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?, ता सोलस मंडलाइं चरति सीतालीसएहिं भागेहिं अहियाइं चोद्दसहिं अट्ठासीएहिं मंडलं छेत्ता (सूत्रं ८५)

'ता नक्खत्ते ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, नक्षत्रेण मासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति, एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'तेरसे'त्यादि, त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागान्, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, त्रैराशिकबलात्, तथाहि—यदि सप्तषष्ट्या नक्षत्रमासैरष्टौ शतानि चतुरशीत्यधिकानि मण्डलानां लभ्यन्ते तत एकेन नक्षत्रमासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—६७।८८४।१। अत्रान्त्येन राशिना गुणनं जातः स तावानेव तस्य सप्तषष्ट्या भागहरणं लब्धानि त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य च मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः १३। $\frac{13}{67}$। 'ता नक्खत्तेण'मित्यादि सूर्यविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता तेरसे'त्यादि, त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य च मण्डलस्य चतुश्चत्वारिंशतं सप्तषष्टिभागान्, तथाहि—यदि सप्तषष्ट्या नाक्षत्रैर्मासैर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि मण्डलानां सूर्यस्य लभ्यन्ते तत एकेन नाक्षत्रेण मासेन कति मण्डलानि लभामहे ?, राशित्रयस्थापना ६७।९१५।१। अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं तत आद्येन राशिना भागहारो लब्धानि त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य च मण्डलस्य चतुश्चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः १३। $\frac{44}{67}$। 'ता नक्खत्ते'त्यादि नक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता तेरसे'त्यादि, त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य च मण्डलस्य अर्द्धसप्तचत्वारिंशतं-सार्द्धषट्चत्वारिंशतं सप्तषष्टिभागान् चरति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथाहि—यदि सप्तषष्ट्या नक्षत्रैर्मासैरष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि अर्द्धमण्डलानि नक्षत्रस्य लभ्यन्ते तत एकेन नाक्षत्रेण मासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—६७ । १८३५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं, तत आद्येन राशिना भागहारो लब्धानि सप्तविंशतिरर्द्धमण्डलानि अष्टाविंशतितमस्य चार्द्धमण्डलस्य षड्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः २७ । $\frac{२६}{६७}$ । ततो द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यामेकं मण्डलमित्यस्य राशेरर्द्धकरणे लब्धानि त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य मण्डलस्य सार्द्धाः षट्चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाः । १३ $\frac{४६}{६७}$ । सम्प्रति चन्द्रमासमधिकृत्य चन्द्रादीनां मण्डलनिरूपणां करोति–'ता चंदेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, चान्द्रेण मासेन प्रागुक्तस्वरूपेण चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ?, भगवानाह—'ता चोद्दसे'त्यादि, चतुर्दश सचतुर्भागमण्डलानि–चतुर्भागसहितानि मण्डलानि चरति एकं च चतुर्विंशशतभागं मण्डलस्य, किमुक्तं भवति ?–परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्भागं–चतुर्विंशत्यधिकशतसत्कमेकत्रिंशद्भागप्रमाणमेकं च चतुर्विंशत्यधिकशतस्य भागं–द्वात्रिंशतं पञ्चदशस्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् चरति, तथाहि—यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेनाष्टौ शतानि चतुरशीत्यधिकानि मण्डलानां लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यां पर्वभ्यां किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१२४ । ८८४ । २ । अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यराशेर्गुणनं जातानि सप्तदश शतान्यष्टषष्ट्यधिकानि १७६८, तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागहरणं, लब्धानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य द्वात्रिंशत् चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः १४ । $\frac{३२}{१२४}$ । 'ता चंदेण'मित्यादि सूर्यविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, 'ता पन्नरसे'त्यादि, पञ्चदश चतुर्भागन्यूनानि मण्डलानि चरति एकं च चतुर्विंशत्यधिकशतभागं मण्डलस्य,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किमुक्तं भवति ?–चतुर्दश परिपूर्णानि मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्नवतिं चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् चरति, तथाहि—यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि मण्डलानां लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यां किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना–१२४ । ९१५ । २ । अन्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, एतेषामाद्येन राशिना चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागहरणं, लब्धानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्नवतिश्चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः १४ । $\frac{९४}{१२४}$ । इति, 'ता चन्देण'मित्यादि नक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता पण्णरसे'त्यादि, पञ्चदश मण्डलानि चतुर्भागन्यूनानि चरति षट् च चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् मण्डलस्य, किमुक्तं भवति ?–परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलानि चरति पञ्चदशस्य च मण्डलस्य नवनवतिं चतुर्विंशत्यधिकशतभागान्, तथाहि–यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेनाष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि अर्द्धमण्डलानां लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यां पर्वभ्यां किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—१२४ । १८३५ । २ । अन्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यराशेर्गुणनं जातानि षट्त्रिंशच्छतानि सप्तत्यधिकानि ३६७०, एतेषामाद्येन राशिना चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण भागहरणं, लब्धा एकोनत्रिंशत् शेषा तिष्ठति चतुःसप्ततिः, इदं चार्द्धमण्डलगतं परिमाणं, द्वाभ्यां चार्द्धमण्डलाभ्यामेकं परिपूर्णं मण्डलं ततोऽस्य राशेर्द्विकेन भागहारो लब्धानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य नवनवतिश्चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः १४ । $\frac{९९}{१२४}$ । साम्प्रतं ऋतुमासमधिकृत्य चन्द्रादीनां मण्डलनिरूपणां करोति–'ता उउमासेण चंदे'इत्यादि, ऋतुमासेन–कर्ममासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ?, भगवानाह—'ता चोद्दसे'त्यादि चतुर्दश मण्डलानि चरति पञ्चदशस्य मण्ड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८५]

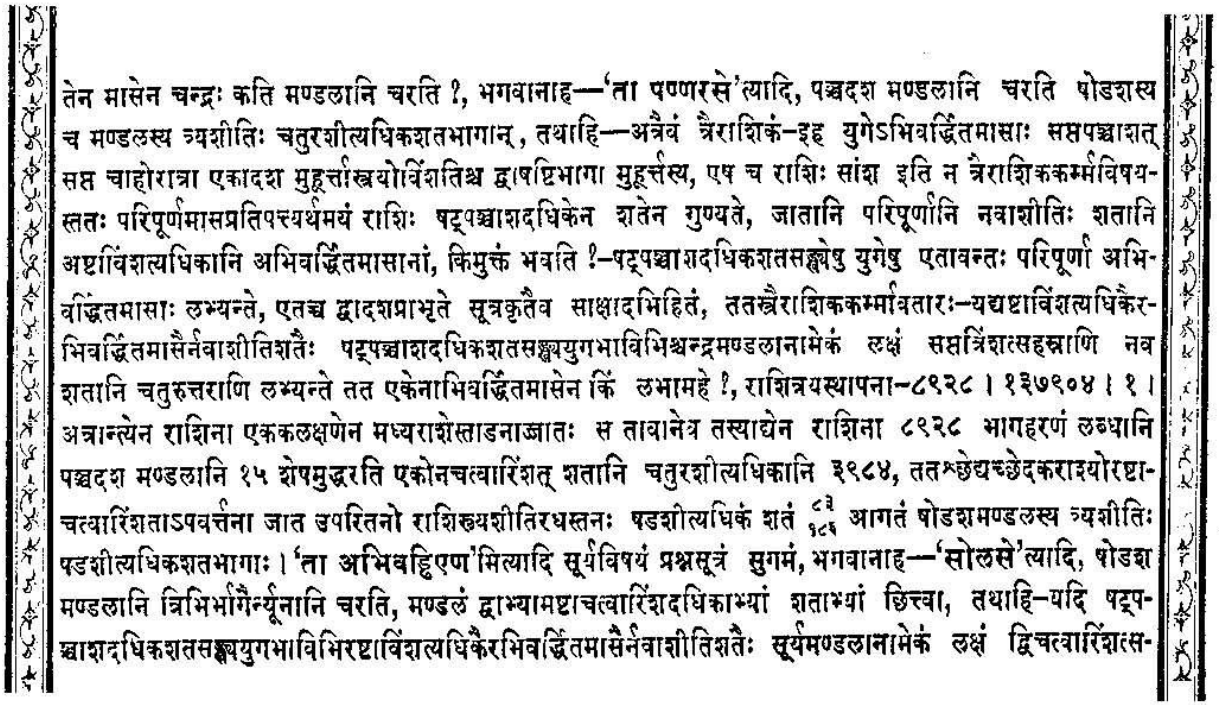
दीप अनुक्रम [११७]

लस्य त्रिंशतमेकषष्टिभागान्, तथाहि—यदि एकषष्ट्या कर्म्ममासैरष्टौ शतानि चतुरशीत्यधिकानि मण्डलानां लभ्यन्ते तत एकेन कर्म्ममासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना । ६१ । ८८४ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशेर्गुणनं जातः स तावानेव तस्य एकषष्ट्या भागहरणं लब्धानि परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य त्रिंशदेकषष्टिभागाः । १४ । $\frac{३०}{६१}$ । 'ता उउमासेण'मित्यादि सूर्यविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता पन्नरसे'त्यादि, पञ्चदश परिपूर्णानि मण्डलानि चरति, तथाहि—यद्येकषष्ट्या कर्म्ममासैर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि सूर्यमण्डलानां लभ्यन्ते तत एकेन कर्म्ममासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना । ६१ । ९१५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुण्यते जातः स तावानेव तस्य एकषष्ट्या भागहरणं लब्धानि परिपूर्णानि पञ्चदश मण्डलानि १५, 'ता उउमासेण'मित्यादि नक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता पन्नरसे'त्यादि, पञ्चदश मण्डलानि चरति, षोडशस्य च मण्डलस्य पञ्च द्वाविंशशतभागान्, तथाहि—यदि द्वाविंशेन कर्म्ममासशतेनाष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि मण्डलानां नक्षत्रस्य लभ्यन्ते तत एकेन कर्ममासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना १२२ । १८३५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना द्वाविंशत्यधिकशतरूपेण भागहरणं लब्धानि पञ्चदश मण्डलानि षोडशस्य च पञ्च द्वाविंशशतभागाः १५ । $\frac{५}{१२२}$ । सम्प्रति सूर्यमासमधिकृत्य चन्द्रादीनां मण्डलानि निरूपयति—'ता आइच्चेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, आदित्येन मासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ?, भगवानाह—चतुर्दश मण्डलानि चरति पञ्चदशस्य च मण्डलस्य एकादश पञ्चभागान्, तथाहि—यदि षष्ट्या सूर्यमासैरष्टौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतानि चतुरशीत्यधिकानि मण्डलानां चन्द्रस्य लभ्यन्ते तत एकेन सूर्यमासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—६० । ८८४ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातः स तावानेव तस्य षष्ट्या भागहरणं लब्धानि चतुर्दश मण्डलानि शेषास्तिष्ठन्ति चतुश्चत्वारिंशत् ४४ ततश्छेद्यच्छेदकराश्योश्चतुष्केणापवर्त्तना जात उपरितनो राशिरेकादशरूपोऽधस्तनः पञ्चदशरूपः लब्धाः पञ्चदशमण्डलस्य एकादशभागाः १४ । $\frac{11}{15}$ । 'ता आइच्चेण'मित्यादि सूर्यविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–पञ्चदश चतुर्भागाधिकानि मण्डलानि चरति, तथाहि—यदि षष्ट्या सूर्यमासैर्नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि मण्डलानां सूर्यस्य लभ्यन्ते तत एकेन मासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना ६० । ९१५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशेर्गुणनं जातः स तावानेव तस्य षष्ट्या भागहरणं लब्धानि पञ्चदश मण्डलानि षोडशस्य च षष्टिभागविभक्तस्य पञ्चदशभागात्मकश्चतुर्भागः । १५ । $\frac{15}{60}$ । 'ता आइच्चेण'मित्यादि नक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमम्, भगवानाह—'ता पण्णरसे'त्यादि, पञ्चदश मण्डलानि चतुर्भागाधिकानि पञ्चत्रिंशतं विंशत्यधिकशतभागान् मण्डलस्य चरति, किमुक्तं भवति ?–षोडशस्य च मण्डलस्य पञ्चत्रिंशतं विंशत्यधिकशतभागान् चरति, तथाहि—यदि विंशेन सूर्यमासशतेनाष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि मण्डलानां नक्षत्रस्य लभ्यन्ते तत एकेन सूर्यमासेन किं लभ्यते ?, राशित्रयस्थापना—। १२० । १८३५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुणितो जातस्तावानेव तस्य विंशत्यधिकेन शतेन भागहरणं लब्धानि पञ्चदश मण्डलानि पञ्चत्रिंशच्च विंशत्यधिकशतभागाः षोडशस्य १५ । $\frac{35}{120}$ अधुना अभिवर्द्धितमासमधिकृत्य चन्द्रादीनां मण्डलानि निरूपयन्नाह—'ता अभिवड्ढिएण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, अभिवर्द्धि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तेन मासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ?, भगवानाह—'ता पण्णरसे'त्यादि, पञ्चदश मण्डलानि चरति षोडशस्य च मण्डलस्य त्र्यशीतिः चतुरशीत्यधिकशतभागान्, तथाहि—अत्रैवं त्रैराशिकं–इह युगेऽभिवर्द्धितमासाः सप्तपञ्चाशत् सप्त चाहोरात्रा एकादश मुहूर्त्ताश्चयोविंशतिश्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, एष च राशिः सांश इति न त्रैराशिककर्म्मविषयस्ततः परिपूर्णमासप्रतिपत्त्यर्थमयं राशिः षट्पञ्चाशदधिकेन शतेन गुण्यते, जातानि परिपूर्णानि नवाशीतिः शतानि अष्टाविंशत्यधिकानि अभिवर्द्धितमासानां, किमुक्तं भवति ?–षट्पञ्चाशदधिकशतसङ्ख्येषु युगेषु एतावन्तः परिपूर्णा अभिवर्द्धितमासाः लभ्यन्ते, एतच्च द्वादशप्राभृते सूत्रकृतैव साक्षादभिहितं, ततस्त्रैराशिककर्म्मावतारः–यद्यष्टाविंशत्यधिकैरभिवर्द्धितमासैर्नवाशीतिशतैः षट्पञ्चाशदधिकशतसङ्ख्ययुगभाविभिश्चन्द्रमण्डलानामेकं लक्षं सप्तत्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि चतुरुत्तराणि लभ्यन्ते तत एकेनाभिवर्द्धितमासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना–८९२८ । १३७९०४ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशेस्ताडनाज्जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना ८९२८ भागहरणं लब्धानि पञ्चदश मण्डलानि १५ शेषमुद्धरति एकोनचत्वारिंशत् शतानि चतुरशीत्यधिकानि ३९८४, ततश्छेद्यच्छेदकराश्योरष्टाचत्वारिंशताऽपवर्त्तना जात उपरितनो राशिरुयशीतिरधस्तनः षडशीत्यधिकं शतं $\frac{८३}{१८६}$ आगतं षोडशमण्डलस्य त्र्यशीतिः षडशीत्यधिकशतभागाः । 'ता अभिवड्ढिएण'मित्यादि सूर्यविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'सोलसे'त्यादि, षोडश मण्डलानि त्रिभिर्भागैर्न्यूनानि चरति, मण्डलं द्वाभ्यामष्टाचत्वारिंशदधिकाभ्यां शताभ्यां छित्त्वा, तथाहि–यदि षट्पञ्चाशदधिकशतसङ्ख्ययुगभाविभिरष्टाविंशत्यधिकैरभिवर्द्धितमासैर्नवाशीतिशतैः सूर्यमण्डलानामेकं लक्षं द्विचत्वारिंशत्स-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥२५३॥

हस्राणि सप्त शतानि चत्वारिंशदधिकानि लभ्यन्ते तत एकेनाभिवर्द्धितमासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना ८९२८ । १४२७४० । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशिर्गुण्यते जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना ८९२८ भागो ह्रियते लब्धानि पञ्चदश मण्डलानि १५ शेषमुद्धरन्ति अष्टाशीतिः शतानि विंशत्यधिकानि ८८२० ततश्छेद्यच्छेदकराश्योः षट्त्रिंशताऽपवर्त्तना जात उपरितनो राशिः द्वे शते पञ्चचत्वारिंशदधिके २४५ अधस्तनो द्वे शते अष्टाचत्वारिंशदधिके २४८ आगतं षोडशं मण्डलं त्रिभिर्भागैर्न्यूनं द्वाभ्यामष्टाचत्वारिंशदधिकाभ्यां शताभ्यां प्रविभक्तं २४८ । 'ता अभिवड्ढिएण'मित्यादि नक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–'ता सोलसे'त्यादि, षोडश मण्डलानि सप्तचत्वारिंशता भागैरधिकानि चतुर्दशभिः शतैरष्टाशीत्यधिकैर्मण्डलं छित्त्वा, तथाहि–यदि षट्पञ्चाशदधिकशतसङ्ख्ययुगभाविभिरभिवर्द्धितमासैर्नवाशीतिशतैरष्टाविंशत्यधिकैर्नक्षत्रमण्डलानामेकं लक्षं त्रिचत्वारिंशत् सहस्राणि शतमेकं त्रिंशदधिकं लभ्यते ततः एकेनाभिवर्द्धितमासेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना । ८९२८ । १४३१३० । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशेर्गुणनं जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना ८९२८ भागो ह्रियते लब्धानि षोडश मण्डलानि शेषमुद्धरति द्वे शते द्व्यशीत्यधिके २८२ ततश्छेद्यच्छेदकराश्योः षट्केनापवर्त्तना जाता उपरि सप्तचत्वारिंशत् ४७ अधस्तु चतुर्दश शतान्यष्टाशीत्यधिकानि १४८८ आगताः सप्तचत्वारिंशत् अष्टाशीत्यधिकचतुर्दशशतभागाः । सम्प्रत्येकैकेनाहोरात्रेण चन्द्रादयः प्रत्येकं कति मण्डलानि चरन्तीत्येतन्निरूपणार्थमाह—

ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?, ता एगं अद्धमंडलं चरति एक्कतीसाए भागेहिं ऊणं

१५ प्राभृते नक्षत्रादिमासैश्चन्द्रादीनां चारः सू ८५

॥२५३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवहिं पण्णरसेहिं अद्धमंडलं छेत्ता, ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं सूरिए कति मंडलाइं चरति ?, ता एगं अद्धमंडलं चरति, ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?, ता एगं अद्धमंडलं चरति दोहिं भागेहिं अधियं सत्तहिं बत्तीसेहिं सएहिं अद्धमंडलं छेत्ता । ता एगमेगं मंडलं चंदे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?, ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति एक्कणीसाए भागेहिं अधिएहिं चउहिं चोतालेहिं सतेहिं राईदिएहिं छेत्ता, ता एगमेगं मंडलं सूरे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?, ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति, ता एगमेगं मंडलं णक्खत्ते कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?, ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति दोहिं ऊणेहिं तिहिं सत्तसट्ठेहिं सतेहिं राईदिएहिं छेत्ता । ता जुगेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?, ता अट्ठ चुल्लसीते मंडलसते चरति, ता जुगेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?, ता णवपण्णरमंडलसते चरति, ता जुगेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?, ता अट्ठारस पणतीसे दुभागमंडलसते चरति । इचेसा मुहुत्तगती रिक्खातिमासराईदियजुगमंडलपविभत्ता सिग्घगती वत्थु आहितेत्ति बेमि ॥ (सूत्रं० ८६) पन्नरसमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता एगमेगेण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकेनाहोरात्रेण चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ?, भगवानाह—'ता एग'मित्यादि, एकमर्द्धमण्डलं चरति एकत्रिंशता भागैर्न्यूनं नवभिः पञ्चदशोत्तरैः शतैरर्द्धमण्डलं छित्त्वा, तथाहि—रात्रिन्दिवानामष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः सप्तदश शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि अर्द्धमण्डलानां चन्द्रस्य लभ्यन्ते तत एकेन रात्रिन्दिवेन किं लभ्यते ?, राशित्रयस्थापना १८३० । १७६८ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६]

दीप अनुक्रम [११८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

राशिर्गुण्यते जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना १८३० भागहरणं, स चोपरितनस्य राशेः स्तोकत्वाद् भागं न लभते ततश्छेद्यच्छेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना जातः उपरितनो राशिरष्टौ शतानि चतुरशीत्यधिकानि अधस्तनो नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ८८४/९१५। तत आगतमेकत्रिंशता भागैर्न्यूनमेकमर्द्धमण्डलं नवभिः पञ्चदशोत्तरैः प्रविभक्तमिति। 'ता एग मेगेण'मित्यादि सूर्यविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता एग'मित्यादि, एकमर्द्धमण्डलं चरति, एतच्च सुप्रतीतमेव, 'ता एगमेगेण'मित्यादि नक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता एगमेगेण'मित्यादि, एकमर्द्धमण्डलं द्वाभ्यां भागाभ्यामधिकं चरति द्वात्रिंशदधिकैः सप्तभिः शतैरर्द्धमण्डलं छित्त्वा, तथाहि—यद्यहोरात्राणामष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैरष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि नक्षत्राणामर्द्धमण्डलानि लभ्यन्ते तत एकेनाहोरात्रेण किं लभ्यते ?, राशित्रयस्थापना १८३० । १८३५ । १ । अत्रान्त्येन राशिना एककरूपेण मध्यराशेर्गुणना जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना १८३० भागहरणं लब्धमेकमर्द्धमण्डलं शेषास्तिष्ठन्ति पञ्च ततश्छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धतृतीयैरपवर्त्तना जातावुपरि द्वौ अधस्तात् सप्तशतानि द्वात्रिंशदधिकानि, लब्धौ द्वौ द्वात्रिंशदधिकसप्तशतभागौ ७३२/७३२। अधुना एकैकं परिपूर्णं मण्डलं चन्द्रादयः प्रत्येकं कतिभिरहोरात्रैश्चरन्तीत्येतन्निरूपणार्थमाह—'ता एग'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकं मण्डलं चन्द्रः कतिभिरहोरात्रैश्चरति ?, भगवानाह—'ता दोहिं'इत्यादि द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां चरति एकत्रिंशता भागैरधिकाभ्यां चतुर्भिश्चत्वारिंशदधिकैः शतैः रात्रिन्दिवं छित्त्वा, तथाहि—यदि चन्द्रस्य मण्डलानामष्टभिः शतैश्चतुरशीत्यधिकैरहोरात्राणामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि लभ्यन्ते तत एकेन मण्डलेन कति रात्रिन्दिवानि लभामहे ?, राशित्रय-

॥२५४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थापना ८८४ । १८३० । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना चतुरशीत्यधिकाष्टशतप्रमाणेन भागहरणं लब्धौ द्वावहोरात्रौ शेषास्तिष्ठति द्वाषष्टिः ६२ ततश्छेद्यच्छेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना जात उपरितनो राशिरेकत्रिंशद्रूपोऽधस्तनश्चत्वारि शतानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि $\frac{३१}{४४२}$ आगतं एकत्रिंशत् द्विचत्वारिंशदधिकचतुःशतभागाः । 'ता एगमेग'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, एकैकं मण्डलं सूर्यः कतिभिरहोरात्रैश्चरति ?, भगवानाह—'ता दोहिं'इत्यादि, द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां चरति, तथाहि—यदि सूर्यस्य मण्डलानां नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैरष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि अहोरात्राणां लभ्यन्ते तत एकेन मण्डलेन कति अहोरात्रान् लभामहे ?, राशित्रयस्थापना—९१५ । १८३० । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना ९१५ भागहरणं लब्धौ द्वावहोरात्राविति । 'ता एगमेग'मित्यादि ता इति पूर्ववत् एकैकमात्मीयं मण्डलं नक्षत्रं कतिभिरहोरात्रैश्चरति?, भगवानाह–'ता दोहिं'इत्यादि, द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां द्वाभ्यां भागाभ्यां हीनाभ्यां त्रिभिः सप्तषष्टैः–सप्तषष्ट्यधिकैः शतै रात्रिन्दिवं छित्त्वा, तथाहि–यदि नक्षत्रस्य मण्डलानामष्टादशभिः शतैः पञ्चत्रिंशदधिकैः षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवानां लभामहे तत एकेन मण्डलेन किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना १८३५। ३६६० । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेस्ताडनं जातः स तावानेव तस्याद्येन राशिना १८३५ भागहरणं लब्धमेकं रात्रिन्दिवं शेषाणि तिष्ठन्त्यष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशत्यधिकानि १८२५ ततश्छेद्यच्छेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना जात उपरितनो राशिः त्रीणि शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि छेदराशिस्त्रीणि शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि $\frac{३६५}{३६७}$ । तत आगतं द्वाभ्यां सप्तषष्ट्यधिकत्रिंशतभागाभ्यां हीनं द्वितीयं रात्रिन्दि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वमिति। सम्प्रति चन्द्रादयः प्रत्येकं कति मण्डलानि युगे चरन्तीत्येतन्निरूपणार्थमाह—'ता जुगे ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, युगेन कति मण्डलानि चरति ?, भगवानाह—'ता अट्ठे'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, अष्टौ मण्डलशतानि चतुरशीत्यधिकानि चरति, चन्द्रः एकेन शतसहस्रेणाष्टानवत्या शतैः प्रविभक्तस्य मण्डलस्याष्टषष्ट्यधिकसप्तदशशतसङ्ख्यान् भागान् एकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, युगे च मुहूर्त्ताः सर्वसङ्ख्या चतुःपञ्चाशत्सहस्राणि नव शतानि, ततः सप्तदश शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि चतुःपञ्चाशता सहस्रैर्नवभिश्च शतैर्गुण्यन्ते जाता नव कोटयः सप्ततिर्लक्षाण्यषष्टिः सहस्राणि द्वे शते ९७०६३२०० ततोऽस्य राशेरेकेन शतसहस्रेणाष्टानवत्या च शतैः १०९८०० मण्डलानयनाय भागो ह्रियते, लब्धानि अष्टौ शतानि चतुरशीत्यधिकानि मण्डलानामिति, 'ता जुगेण'मित्यादि सूर्यविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता नवपण्णरसे'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, नव मण्डलशतानि पञ्चदशाधिकानि चरति, तथाहि—यदि द्वाभ्यामहोरात्राभ्यामेकं सूर्यमण्डलं लभ्यते ततः सकलयुगभाविभिरष्टादशभिरहोरात्रशतैस्त्रिंशदधिकैः कति मण्डलानि लभ्यन्ते ?, राशित्रयस्थापना २।१।१८३०। अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३० तेषामाद्येन राशिना द्विकरूपेण भागहरणं लब्धानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५। 'ता जुगेण'मित्यादि नक्षत्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता अट्ठारसे'त्यादि, अष्टादश द्विभागमण्डलशतानि—अर्द्धमण्डलशतानि पञ्चत्रिंशानि—पञ्चत्रिंशदधिकानि चरति, तथाहि—नक्षत्रमेकेन शतसहस्रेणाष्टानवत्या च शतैः प्रविभक्तस्य मण्डलस्य सत्कान् पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादशशतसङ्ख्यान् भागान् एकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, युगे च मुहूर्त्ताः सर्वसङ्ख्यया चतुःपञ्चाशत्सहस्राणि नव शतानि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६]

दीप अनुक्रम [११८]

ततस्त्रैश्चतुःपञ्चाशता सहस्रैर्नवभिः शतैरष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि गुण्यन्ते, जाता दश कोटयः सप्त लक्षा एकचत्वारिंशत्सहस्राणि पञ्च शतानि १००७४१५००, अर्द्धमण्डलानि चेह ज्ञातुमिष्टानि तत एकस्य शतसहस्रस्याष्टानवतेश्च शतानामर्द्धे यानि चतुःपञ्चाशत्सहस्राणि नव शतानि तैर्भागो ह्रियते, लब्धानि अष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि अर्द्धमण्डलानामिति । सम्प्रति सकलप्राभृतगतमुपसंहारमाह—'इचेसा मुहुत्तगई' इत्यादि, इति—एवमुक्तेन प्रकारेण एषा—अनन्तरोदिता मुहूर्त्तगतिः—प्रतिमुहूर्त्तं चन्द्रसूर्यनक्षत्राणां गतिपरिमाणं तथा ऋक्षादिमासान्—नक्षत्रमासं चन्द्रमासं सूर्यमासमभिवर्द्धितमासं तथा रात्रिन्दिवं तथा युगं चाधिकृत्य मण्डलप्रविभक्तिः—मण्डलप्रविभागो वैविक्त्येन मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणा इत्यर्थः तथा शीघ्रगतिरूपं वस्तु आख्यातमित्येतद् ब्रवीमि अहं, इदं च भगवद्वचनमतः सम्यक्त्वेन पूर्वोक्तं श्रद्धेयं ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां पञ्चदशमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तं पञ्चदशं प्राभृतं, सम्प्रति षोडशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारो यथा 'कथं ज्योत्स्नालक्षणमाख्यात'मिति तत एवंरूपमेव प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते दोसिणालक्खणे आहितेति वदेज्जा ? ता चंदलेसादी य दोसिणादी य दोसिणाई य चंदलेसादी य के अट्ठे किंलक्खणे ?, ता एकट्ठे एगलक्खणे, ता सूरलेस्सादी य आयवेइ य आतवेतिय सूरलेस्सादी य के अट्ठे किंलक्खणे ?, ता एगट्ठे एगलक्खणे, ता अंधकारेति य छायाइ य छायाति य अंधकारेति य के अट्ठे किंलक्खणे ?, ता एगट्ठे एगलक्खणे ॥ (सूत्रं० ८७) सोलसमं पाहुडं समत्तं ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र पञ्चदशं प्राभृतं परिसमाप्तं	अथ षोडशं प्राभृतं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [८७]

दीप अनुक्रम [११९]

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् कथं ?–केन प्रकारेण भगवन् ! ते–त्वया ज्योत्स्नालक्षणमाख्यातं इति वदेत् ?, एवं सामान्यतः पृष्ट्वा विवक्षितप्रष्टव्यार्थप्रकटनाय विशेषप्रश्नं करोति,'ता चंदलेसाइ'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, चन्द्र- (ग्रंथ ८०००) लेश्या इति ज्योत्स्ना इति अनयोः पदयोरथवा ज्योत्स्ना इति चन्द्रलेश्या इत्यनयोः पदयोः, इहाक्षरा-णामानुपूर्वीभेदेनार्थभेदो दृष्टः, यथा वेदो देव इति, पदानामपि चानुपूर्वीभेददर्शनादर्थभेददर्शनं यथा—पुत्रस्य गुरुः गुरोः पुत्र इति, तत इहापि कदाचिदानुपूर्वीभेदादर्थभेदो भविष्यतीत्याशङ्कावशाच्चन्द्रलेश्या इति ज्योत्स्ना इत्युक्त्वा ज्योत्स्ना इति चन्द्रलेश्या इत्युक्तं, अनयोः पदयोरानुपूर्व्या अनानुपूर्व्या वा व्यवस्थितयोः कोऽर्थः?, किं परस्परं भिन्न उता-भिन्न इति ?, स च किंलक्षणः–किंस्वरूपो लक्ष्यते–तदन्यव्यवच्छेदेन ज्ञायते येन तल्लक्षणं–असाधारणं स्वरूपं किं लक्षणं–असाधारणं स्वरूपं यस्य स तथा, एवं प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता एगट्ठे एगलक्खणे' इति, ता इति पूर्ववत्, चन्द्र-लेश्या इति ज्योत्स्ना इत्यनयोः पदयोरानुपूर्व्या अनानुपूर्व्या वा व्यवस्थितयोरेक एव–अभिन्न एवार्थः, य एव एकस्य पदस्य वाच्योऽर्थः स एव द्वितीयस्यापि पदस्येति भावः, 'एगलक्खणे' इति एकं–अभिन्नमसाधारणस्वरूपं लक्षणं यस्य स तथा, किमुक्तं भवति ?–यदेव चन्द्रलेश्या इत्यनेन पदेन वाच्यस्यासाधारणं स्वरूपं प्रतीयते तदेव ज्योत्स्ना इत्यनेनापि पदेन, यदेव च ज्योत्स्ना इत्यनेन पदेन तदेव चन्द्रलेश्या इत्यनेनापि पदेनेति, एवं आतप इति सूर्यलेश्या इति यदिवा सूर्यलेश्या इति आतप इति, तथा अन्धकार इति छाया इति अथवा छाया इति अन्धकार इति, तेषु पदेषु विषये प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि भावनीयानि ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां षोडशमं-प्राभृतं समाप्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८]

दीप अनुक्रम [१२०]

तदेवमुक्तं षोडशं प्राभृतं सम्प्रति सप्तदशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः—'च्यवनोपपातौ वक्तव्या'विति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते चयणोववाता आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थ एगे एवमाहंसु ता अणुसमयमेव चंदिमसूरिया अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु ता अणुमुहुत्तमेव चंदिमसूरिया अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति २ एवं जहेव हेट्ठा तहेव जाव ता एगे पुण एवमाहंसु ता अणुओसप्पिणी उस्सप्पिणीमेव चंदिमसूरिया अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति एगे एवमाहंसु, वयं पुण एवं वदामो–ता चंदिमसूरियाणं देवा महिड्ढीआ महाजुतीया महाबला महाजसा महासोक्खा महाणुभावा वरवत्थधरा वरमल्लधरा वरगन्धधरा वराभरणधरा अव्वोच्छित्तिणयट्ठताए काले अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति ॥ सूत्रं ८८) सत्तरसमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति प्राग्वत्, कथं ?–केन प्रकारेण भगवन् ! त्वया चन्द्रादीनां च्यवनोपपातौ व्याख्यातावि ति वदेत् ?, सूत्रे च द्वित्वेऽपि बहुवचनं प्राकृतत्वात्, उक्तं च—"बहुवयणेण दुवयण"मिति प्रश्ने कृते भगवानेतद्विषये यावत्यः प्रतिपत्तयः सन्ति तावतीरुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–च्यवनोपपातविषये खल्विमा–वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'तत्थेगे'इत्यादि, तत्र–तेषां पञ्चविंशतेः परतीर्थिकानां मध्ये एके–परतीर्थिका एवमाहुः, ता इति तेषां प्रथमं स्वशिष्यं प्रत्यनेकवक्तव्यतोपक्रमे क्रमोपदर्शनार्थः, अनुसम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षोडशं प्राभृतं परिसमाप्तं

अथ सप्तदशं प्राभृतं आरभ्यते

मेव चन्द्रसूर्या अन्ये पूर्वोत्पन्नाश्चयवन्ते–च्यवमानाः अन्येऽपूर्वा उत्पद्यन्ते–उत्पद्यमाना आख्याता इति वदेत्, अत्रोपसंहारः—एके एवमाहुः, एके पुनरेवमाहुः अनुमुहूर्त्तमेव चन्द्रसूर्या अन्ये पूर्वोत्पन्नाश्चयवन्ते–च्यवमानाः अन्येऽपूर्वा उत्पद्यन्ते उत्पद्यमाना आख्याता इति वदेत्, उपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु एवं जहा हिट्ठा तहेव जावे'त्यादि, एवं उक्तेन प्रकारेण यथा अधस्तात् षष्ठे प्राभृते ओजःसंस्थितौ चिन्त्यमानायां पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तय उक्तास्तथैवात्रापि वक्तव्याः, यावद् 'अणुओसप्पिणिउस्सप्पिणिमेवे'त्यादि चरमसूत्रं, ताश्चैवं भणितव्याः–'एगे पुण एवमाहंसु ता अणुराइंदियमेव चंदिमसूरिया अन्ने चयंति अन्ने उववज्जंति आहियाति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ३, एगे पुण एवमाहंसु ता एव अणुपक्खमेव चंदिमसूरिया अन्ने चयंति अन्ने उववज्जंति आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु ४ एगे पुण एवमाहंसु ता अणुमासमेव चंदिमसूरिया अन्ने चयंति अन्ने उववज्जंति आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु ५ एगे पुण एवमाहंसु ता अणुउउमेव चंदिमसूरिया अन्ने चयंति अन्ने उववज्जंति आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु ६ एवं ता अणुअयणमेव ७ ता अणुसंवच्छरमेव ८ ता अणुजुगमेव ९ ता अणुवाससयमेव १० ता अणुवाससहस्समेव ११ ता अणुवाससयसहस्समेव १२ ता अणुपुव्वमेव १३ ता अणुपुव्वसयमेव १४ ता अणुपुव्वसहस्समेव १५ ता अणुपुव्वसयसहस्समेव १६ ता अणुपलिओवममेव १७ ता अणुपलिओवमसयमेव १८ ता अणुपलिओवमसहस्समेव १९ ता अणुपलिओवमसयसहस्समेव २० ता अणुसागरोवममेव २१ ता अणुसागरोवमसयमेव २२ ता अणुसागरोवमसहस्समेव २३ ता अणुसागरोवमसयसहस्समेव २४" पञ्चविंशतितमप्रतिपत्तिसूत्रं तु साक्षादेव सूत्रकृता दर्शितं, तदेवमुक्ताः परतीर्थिकप्रतिपत्तयः, एताश्च सर्वा अपि मिथ्यारूपास्तत एताभ्यः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथग्भूतं स्वमतं भगवानुपदर्शयति–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलज्ञाना एवं–वक्ष्यमाणेन प्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह—'ता चंदिमे'त्यादि, ता इति पूर्ववत् चन्द्रसूर्या णमिति वाक्यालङ्कारे देवा 'महर्द्धिका' महती ऋद्धिर्विमानपरिवारादिका येषां ते तथा, तथा महती द्युतिः–शरीराभरणाश्रिता येषां ते महाद्युतयः, तथा महत् बलं–शारीरः प्राणो येषां ते महाबलाः, तथा महत्—विस्तीर्णं सर्वस्मिन्नपि जगति विस्तृतत्वात् यशः–श्लाघा येषां ते महायशसः, तथा महान् अनुभावो–वैक्रियकरणादिविषयोऽचिन्त्यः शक्तिविशेषो येषां ते महानुभावाः, तथा महत्–भवनपतिव्यन्तरेभ्योऽतिप्रभूतं तदपेक्षया तेषां प्रशान्तत्वात् सौख्यं येषां ते महासौख्याः, वरवस्त्रधरा माल्यधरा वरगन्धधरा वराभरणधरा अव्यवच्छिन्ननयार्थतया–द्रव्यास्तिकनयमतेन काले–वक्ष्यमाणप्रमाणस्वस्वायुर्व्यवच्छेदे अन्ये पूर्वोत्पन्नाश्च्यवन्ते–च्यवमानाः अन्ये तथाजगत्स्वाभाव्यात्षण्मासादारतो नियमतः उत्पद्यन्तेउत्पद्यमाना आख्याता इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां सप्तदशमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तं सप्तदशं प्राभृतं, साम्प्रतमष्टादशमारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः यथा—'चन्द्रसूर्यादीना भूमरूध्वमुच्चत्वप्रमाणं वक्तव्य'मिति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते उच्चत्ते आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ, तत्थेगे एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं दिवड्ढं चंदे एगे एवमाहंसु १ एगे पुण एवमाहंसु ता दो जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढातिज्जाइं चंदे एगे एवमाहंसु २ एगे पुण एवमाहंसु ता तिन्नि जोयणसहस्साइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सप्तदशं प्राभृतं परिसमाप्तं

अथ अष्टादशं प्राभृतं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [८९-९३] + गाथा दीप अनुक्रम [१२१--१२६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२५८॥

सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धट्ठाइं चंदे एगे एवमाहंसु ३ एगे पुण एवमाहंसु ता चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धपंचमाइं चंदे एगे एवमाहंसु४एगे पुण एवमाहंसु ता पंच जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धछट्ठाइं चंदे एगे एवमाहंसु ५ एगे पुण एवमाहंसु ता छ जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धसत्तमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ६ एगे पुण एवमाहंसु ता सत्त जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धट्ठमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ७ एगे पुण एवमाहंसु ता अट्ठ जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धनवमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ८ एगे पुण एवमाहंसु ता नव जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धदसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ९ एगे पुण एवमाहंसु ता दस जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धएक्कारस चंदे एगे एवमाहंसु १० एगे पुण एवमाहंसु एक्कारस जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धबारस चंदे ११ एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं बारस सूरे अद्धतेरस चंदे १२ तेरस सूरे अद्धचोद्दस चंदे १३ चोद्दस सूरे अद्धपण्णरस चंदे १४ पण्णरस सूरे अद्धसोलस चंदे १५ सोलस सूरे अद्धसत्तरस चंदे १६ सत्तरस सूरे अद्धअट्ठारस चंदे १७ अट्ठारस सूरे अद्धएकूणवीसं चंदे १८ एकोणवीसं सूरे अद्धवीसं चंदे १९ वीसं सूरे अद्धएक्कवीसं चंदे २० एक्कवीसं सूरे अद्धबावीसं चंदे २१ बावीसं सूरे अद्धतेवीसं चंदे २२ तेवीसं सूरे अद्धचउवीसं चंदे २३ चउवीसं सूरे अद्धपणवीसं चंदे २४ एगे एवमाहंसु एगे पुण एवमाहंसु पणवीसं जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धछव्वीसं चंदे एगे एवमाहंसु २५ । वयं पुण एवं वदामो—ता इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्त-

१८ प्राभृते चन्द्रसूर्योद्युच्चत्वं सू ८९

॥२५८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णउइजोयणसए उड्ढं उप्पतित्ता हेट्ठिल्ले ताराविमाणे चारं चरति अट्ठजोयणसते उड्ढं उप्पतित्ता सूरविमाणे चारं चरति अट्ठअसीए जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणे चारं चरति णव जोयणसताइं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिं ताराविमाणे चारं चरति, हेट्ठिल्लातो ताराविमाणातो दसजोयणाइं उड्ढं उप्पतित्ता सूरविमाणा चारं चरंति नउतिं जोयणाइं उड्ढं उप्पतित्ता चंदविमाणा चारं चरंति दसोत्तरं जोयणसतं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति, सूरविमाणातो असीतिं जोयणाइं उड्ढं उप्पतित्ता चंदविमाणे चारं चरति जोयणसतं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति, ता चंदविमाणातो णं वीसं जोयणाइं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिल्लते तारारूवे चारं चरति, एवामेव सपुव्वावरेणं दसुत्तरजोयणसतं बाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोतिसविसए जोतिसं चारं चरति आहितेति वदेज्जा। (सूत्रं ८९) ता अत्थि णं चंदिमसूरियाणं देवाणं हिट्ठंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि समंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि?, ता अत्थि, ता कहं ते चंदिमसूरियाणं देवाणं हिट्ठंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि समंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि ?, ता जहा जहा णं तेसिं णं देवाणं तवणियमबंभचेराइं उस्सितताइं भवंति तहा तहा णं तेसिं देवाणं एवं भवति, तं०-अणुते वा तुल्लत्ते वा, ता एवं खलु चंदिमसूरियाणं देवाणं हिट्ठंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि तहेव जाव उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि (सूत्रं ९०) ता एगमेगस्स णं चंदस्स देवस्स केवतिया गहा परिवारो पं० केवतिया णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो केवतिया तारा परिवारो पण्णत्तो?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८९-९३] + गाथा

दीप अनुक्रम [१२१--१२६]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०)

॥२५९॥

ता एगमेगस्स णं चंदस्स देवस्स अट्ठासीतिगहा परिवारो पण्णत्तो, अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो, 'छावट्ठिसहस्साइं णव चेव सताइं पंचुत्तराइं (पंचसयराइं)। एगससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं ॥ १ ॥ परिवारो पं० (सूत्रं९१) ता मंदरस्स णं पव्वतस्स केवतियं अबाधाए (जोइसे)चारं चरति?, ता एक्कारस एक्कवीसे जोयणसते अबाधाए जोइसे चारं चरति, ता लोअंतातो णं केवतियं अबाधाए जोतिसे पं०?, ता एक्कारस एक्कारे जोयणसते अबाधाए जोइसे पं० (सूत्रं९२) ता जंबुदीवे णं दीवे कतरे णक्खत्ते सव्वब्भंतरिल्लं चारं चरति कतरे णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरति कयरे णक्खत्ते सव्वुवरिल्लं चारं चरति कयरे णक्खत्ते सव्वहिट्ठिलं चारं चरइ ?, अभीयी णक्खत्ते सव्वब्भिंतरिल्लं चारं चरति, मूले णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरति, साती णक्खत्ते सव्वुवरिल्लं चारं चरति, भरणी णक्खत्ते सव्वहेट्ठिल्लं चारं चरति (सूत्रं ९३)

'ता कहं ते' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?—केन प्रकारेण भगवन्! त्वया भूमेरूर्द्धं चन्द्रादीनामुच्चत्वमाख्यातमिति वदेत् ?, एवं प्रश्ने कृते भगवानेतद्विषये यावत्यः प्रतिपत्तयः तावतीरुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–उच्चत्वविषये खल्विमाः–वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपाः प्रज्ञप्ताः, ता एव 'तत्थेगे' इत्यादिना दर्शयति, तत्र–तेषां पञ्चविंशतेः परतीर्थिकानां मध्ये एके परतीर्थिका एवमाहुः, ता इति पूर्ववत् एकं योजनसहस्रं सूर्यो भूमेरुर्ध्वमुच्चत्वेन व्यवस्थितो व्यर्द्ध–सार्द्धं योजनसहस्रं भूमेरूर्ध्वं चन्द्रः, किमुक्तं भवति ?–भूमेरूर्ध्वं योजनसहस्रे गते अत्रान्तरे सूर्यो व्यवस्थितः, सार्द्धे च योजनसहस्रे गते चन्द्रः, सूत्रे च योजनसङ्ख्यापदस्य सूर्यादिपदस्य च तुल्याधिकर-

१८ प्राभृते चन्द्रादेरुच्चत्वं तारकस्याणुतादि परिवारः अबाधा अभ्यन्तरचाराः सू ८९-९३

॥२५९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णत्वनिर्देशोऽभेदोपचारात्, यथा पाटलिपुत्रात् राजगृहं नव योजनानीत्यादौ, एवमुत्तरेष्वपि सूत्रेषु भावनीयं, अत्रोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः ता इति पूर्ववत्, द्वे योजनसहस्रे भूमेरूर्ध्वं सूर्यो व्यवस्थितः अर्द्धतृतीयानि योजनसहस्राणि चन्द्रः अत्रोपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' २,एवं शेषाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि,'एएण'मित्यादि, एतेन–अन्तरोदितेनाभिलापेन शेषप्रतिपत्तिगतमपि सूत्रजातं नेतव्यं, तच्चैवम्–'तिण्णी'त्यादि, एगे पुण एवमाहंसु तिण्णि जोअणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धुट्ठाइं चंदे एगे एवमाहंसु ३, 'ता चत्तारी'त्यादि एगे पुण एवमाहंसु ता चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धपंचमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ४, 'ता पंचे'त्यादि, एगे पुण एवमाहंसु ता पंच जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धछट्ठाइं चंदे एगे एवमाहंसु ५ 'एवं छ सूरे अद्धसत्तमाइं चंदे' एगे पुण एवमाहंसु ता छ जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धसत्तमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ६ 'सत्त सूरे अद्धट्ठमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता सत्त जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धट्ठमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ७ 'अट्ठ सूरे अद्धनवमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता अट्ठ जोयणाइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धनवमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ८ 'नव सूरे अद्धदसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता नव जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धदसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु ९ 'दस सूरे अद्धएक्कारसाइं चंदे' इति, एगे पुण एवमाहंसु ता दस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धएक्कारसाइं चंदे एगे एवमाहंसु १० 'एक्कारस सूरे अद्धबारस चंदे' इति, एगे पुण एवमाहंसु ता इक्कारस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धबारस चंदे एगे एवमाहंसु ११ 'बारस सूरे अद्धतेरसमाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता बारस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धतेरसमाइं चंदे एगे पुण एवमाहंसु १२, 'तेरस सूरे अद्धचउद्दसमाइं चंदे' इति, एगे पुण एवमाहंसु ता तेरस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धचोद्दसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु १३, 'चोद्दस सूरे अद्धपंचदसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता चोद्दस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धपंचदसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु १४, 'पन्नरस सूरे अद्धसोलसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता पण्णरस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धसोलसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु १५, 'सोलस सूरे अद्धसत्तरसाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता सोलस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धसत्तरसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु १६, 'सत्तरस सूरे अद्धट्ठारसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता सत्तरस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धट्ठारसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु १७, 'अट्ठारस सूरे अद्धएगूणवीसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता अट्ठारस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धएगूणवीसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु १८ 'एगूणवीसं सूरे अद्धवीसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता एगूणवीसं जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धवीसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु १९, 'वीसं सूरे अद्धएकवीसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता वीसं जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धएकवीसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु २०, 'एक्कवीसं सूरे अद्धबावीसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता इक्कवीसं जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धबावीसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु २१, 'बावीसं सूरे अद्धतेवीसाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता बावीसं जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धतेवीसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु २२ 'तेवीसं सूरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अद्धचउवीसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु ता तेवीसं जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धचउवीसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु २३ 'चउवीसं सूरे अद्धपंचवीसमाइं चंदे' इति एगे पुण एवमाहंसु चउवीसं जोयणसहस्साइं सूरे उद्धं उच्चत्तेणं अद्धपंचवीसमाइं चंदे एगे एवमाहंसु २४, पञ्चविंशतितमप्रतिपत्तिसूत्रं तु साक्षाद्दर्शयति–'एगे पुण एवमाहंसु–ता पणवीसं'मित्यादि, एतानि च सूत्राणि सुगमत्वात् स्वयं भावनीयानि, तदेवमुक्ताः परप्रतिपत्तयः सम्प्रति स्वमतं भगवानुपदर्शयति—'वयं पुण एवं वदामो' इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलवेदसः एवं–वक्ष्यमाणेन प्रकारेण वदामस्तमेव प्रकारमाह—'ता इमीसे' इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयात् भूमिभागादूर्ध्वं सप्त योजनशतानि नवतानि–नवत्यधिकानि उत्प्लुत्य–गत्वा अत्रान्तरे अधस्तनं ताराविमानं चारं चरति–मण्डलगत्या परिभ्रमणं प्रतिपद्यते, तथा अस्या एव रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयात् भूमिभागादूर्ध्वमष्टौ योजनशतान्युत्प्लुत्यात्रान्तरे सूर्यविमानं चारं चरति, तथा अस्या एव रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयात् भूमिभागादूर्ध्वं परिपूर्णानि नव योजनशतान्युत्प्लुत्यात्रान्तरे सर्वोपरितनं ताराविमानं चारं चरति। अधस्तनात्ताराविमानादूर्ध्वं दश योजनान्युत्प्लुत्यात्रान्तरे सूर्यविमानं चारं चरति, तत एवाधस्तनात् ताराविमानान्नवतिं योजनान्यूर्ध्वमुत्प्लुत्यात्रान्तरे चन्द्रविमानं चारं चरति, तत एव सर्वाधस्तनात् ताराविमानादशोत्तरं योजनशतमूर्ध्वमुत्प्लुत्यात्रान्तरे सर्वोपरितनं ताराविमानं चारं चरति, 'ता सूरविमाणाओ' इत्यादि, ता इति पूर्ववत् सूर्यविमानादूर्ध्वमशीतिं योजनान्युत्प्लुत्यात्रान्तरे चन्द्रविमानं चारं चरति, तस्मादेव सूर्यविमानादूर्ध्वं योजनशतमुत्प्लुत्यात्रान्तरे सर्वोपरितनं तारारूपं ज्योतिश्चक्रं चारं चरति, 'ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८९-९३] + गाथा

दीप अनुक्रम [१२१--१२६]

चंदविमाणाओ' इत्यादि ता इति पूर्ववत् चन्द्रविमानादूर्ध्वं विंशतिं योजनानि उत्प्लुत्यात्रान्तरे सर्वोपरितनं तारारूपं ज्योतिश्चक्रं चारं चरति,'एवमेवे'त्यादि एवमेव-उक्तेनैव प्रकारेण 'सपुव्वावरेणं'ति सह पूर्वेण वर्त्तन्ते इति सपूर्वं सपूर्वं च तत् अपरं च सपूर्वापरं तेन पूर्वापरमीलनेनेत्यर्थः, दशोत्तरयोजनशतबाहल्येन, तथाहि—सर्वाधस्तनात्तारारूपात् ज्योतिश्चक्रादूर्ध्वं दशभिर्योजनैः सूर्यविमानं ततोऽप्यशीत्या योजनैश्चन्द्रविमानं ततो विंशत्या सर्वोपरितनं तारारूपं ज्योतिश्चक्रमिति भवति ज्योतिश्चक्रचारविषयस्य दशोत्तरं योजनशतं बाहल्यं, तस्मिन् दशोत्तरयोजनशतबाहल्ये, पुनः कथंभूते इत्याह-तिर्यगसङ्ख्येये-असङ्ख्ययोजनकोटीकोटीप्रमाणे ज्योतिर्विषये मनुष्यक्षेत्रविषयं ज्योतिश्चक्रं चारं चरति-चारं चरत् मनुष्यक्षेत्राद्बहिः पुनरवस्थितमाख्यातं इति वदेत् ॥ 'ता अत्थि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, अस्त्येतत् भगवन्! यदुत चन्द्रसूर्याणां देवानां 'हिट्ठिंपि'त्ति क्षेत्रापेक्षया अधस्तना अपि तारारूपविमानाधिष्ठातारो देवा द्युतिविभवलेश्यादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि-लघवोऽपि भवन्ति, हीना अपि भवन्तीत्यर्थः, केचित्तुल्या अपि भवन्ति, तथा सममपि-चन्द्रविमानैः सूर्यविमानैश्च क्षेत्रापेक्षया समश्रेण्यापि व्यवस्थितास्तारारूपाः-ताराविमानाधिष्ठातारो देवास्तेऽपि चन्द्रसूर्याणां देवानां द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि भवन्ति केचित्तुल्या अपि, तथा चन्द्रविमानानां सूर्यविमानानां चोपर्यपि ये व्यवस्थितास्तारारूपाः-तारारूपविमानाधिष्ठातारो देवास्तेऽपि चन्द्रसूर्याणां देवानां द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि भवन्ति केचित्तुल्या अपि ?, एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह-'ता अत्थि'त्ति यदेतत्त्वया पृष्टं तत्सर्वं तथैवास्ति, एवमुक्ते पुनः प्रश्नयति-'ता कहं ते' इत्यादि, सुगमं, भगवानाह—'ता जह जहे'त्यादि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ता इति पूर्ववत् यथा यथा णमिति वाक्यालङ्कारे तेषां देवानां–तारारूपविमानाधिष्ठातॄणां प्राग्भवे तपोनियमब्रह्मचर्याणि उच्छ्रितानि–उत्कटानि भवन्ति तथा तथा तेषां देवानां तस्मिन्–तारारूपविमानाधिष्ठातृभवे एवं भवति यथा अणुत्वं वा तुल्यत्वं वा, किमुक्तं भवति ?–यैः प्राग्भवे तपोनियमब्रह्मचर्याणि मन्दानि कृतानि ते तारारूपविमानाधिष्ठातृदेवभवमनुप्राप्ताश्चन्द्रसूर्येभ्यो देवेभ्यो द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य हीना भवन्ति, यैस्तु भवान्तरे तपोनियमब्रह्मचर्याणि अत्युत्कटान्यासेवितानि ते तारारूपविमानाधिष्ठातृरूपदेवत्वमनुप्राप्ता द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य चन्द्रसूर्यैर्देवैः सह समाना भवन्ति, न चैतदनुपपन्नं, दृश्यन्ते हि मनुष्यलोकेऽपि केचिज्जन्मान्तरोपचिततथाविधपुण्यप्राग्भारा राजत्वमप्राप्ता अपि राज्ञा सह तुल्यद्युतिविभवा इति, 'ता एवं खलु' इत्यादि निगमनवाक्यं सुगमं । 'ता एगमेगस्स ण'मित्यादि, ग्रहादिपरिवारविषयाणि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि सुगमानि, 'ता मंदरस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, मन्दरस्य पर्वतस्य जम्बूद्वीपगतस्य सकलतिर्यग्लोकमध्यवर्त्तिनः कियत्क्षेत्रमबाधया सर्वतः कृत्वा चारं चरति ?, भगवानाह–'ता एक्कारसे'त्यादि, ता इति पूर्ववत् एकादश योजनशतानि एकविंशानि–एकविंशत्यधिकानि अबाधया कृत्वा चारं चरति, किमुक्तं भवति ?–मेरोः सर्वत एकादश योजनशतान्येकविंशत्यधिकानि मुक्त्वा तदनन्तरं चक्रवालतया ज्योतिश्चक्रं चारं चरति, 'ता लोयंताओ ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् लोकान्तादर्वाक् णमिति वाक्यालङ्कारे कियत् क्षेत्रमबाधया कृत्वा–अपान्तरालं कृत्वा ज्योतिषं प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—'एक्कारसे'त्यादि, एकादश योजनशतान्येकादशानि–एका-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२६२॥

दशाधिकानि अबाधया कृत्वा–अपान्तरालं विधाय ज्योतिषं प्रज्ञप्तं, 'ता जंबुद्दीवे णं दीवे कयरे नक्खत्ते' इत्यादि सुगमं नवरमभिजिन्नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरं नक्षत्रमण्डलिकामपेक्ष्य एवं मूलादीनि सर्वबाह्यादीनि वेदितव्यानि ।

ता चंदविमाणेणं किंसंठिते पं०?, ता अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिते सव्वफालियामए अब्भुग्गयमूसितपहसिते विविधमणि रयणभत्तिचित्ते जाव पडिरूवे एवं सूरविमाणे गहविमाणे णक्खत्तविमाणे ताराविमाणे। ता चंदविमाणे णं केवतियं आयामविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं केवतियं बाहल्लेणं पं०?, ता छप्पण्णं एगट्ठिभागे जोयणस्स आयाममिक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिरयेणं अट्ठावीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते, ता सूरविमाणे णं केवतियं आयामविक्खंभेणं पुच्छा, ता अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं चउवीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पं०, ता णक्खत्तविमाणे णं केवतियं पुच्छा, ता कोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं अद्धकोसं बाहल्लेणं पं०, ता ताराविमाणे णं केवतियं पुच्छा, ता अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं पंचधणुसयाइं बाहल्लेणं पं० ॥ ता चंदविमाणं णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति?, सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति, तं०–पुरच्छिमेणं सीहरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, दाहिणे णं गयरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, पच्चत्थिमेणं वसभरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, एवं सूरविमाणंपि, ता गहविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिव-

१८ प्राभृते चन्द्रादेःसंस्थानमायामादिवाहिनश्च सू ९४ अल्पेतरगतिऋद्धी सू ९५

॥२६२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हंति ?, ता अट्ठ देवसाहस्सीओ परिवहंति, तं०–पुरच्छिमेणं सिंहरूवधारीणं देवाणं दो देवसाहस्सीओ परिवहंति, एवं जाव उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं, ता नक्खत्तविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति?, ता चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, तं०–पुरच्छिमेणं सीहरूवधारीणं देवाणं एक्का देवसाहस्सी परिवहति एवं जाव उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं देवाणं, ता ताराविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?, ता दो देवसाहस्सीओ परिवहंति तं०–पुरच्छिमेणं सीहरूवधारीणं देवाणं पंच देवसता परिवहंति, एवं जावुत्तरेणं तुरगरूवधारीणं (सूत्रं ९४) एतेसि णं चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं कयरे२हिंतो सिग्घगती वा मंदगती वा ?, ता चंदेहिंतो सूरा सिग्घगती सूरेहिंतो गहा सिग्घगती गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगती णक्खत्तेहिंतो तारा सिग्घगती, सव्वप्पगती चंदा सव्वसिग्घगती तारा। ता एएसि णं चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवाणं कयरे२हिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?, ताराहिंतो महिड्ढिया णक्खत्ता णक्खत्तेहिंतो गहा महिड्ढिया गहेहिंतो सूरा महिड्ढिया सूरेहिंतो चंदा महिड्ढिया सव्वप्पड्ढिया तारा सव्वमहिड्ढिया चंदा (सूत्रं ९५)

'ता चंदविमाणे ण'मित्यादि संस्थानविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'ता अद्धकविट्ठगे'त्यादि, उत्तानीकृतमर्द्धमात्रं कपित्थं तस्येव यत् संस्थानं तेन संस्थितमर्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितं, आह—यदि चन्द्रविमानमुत्तानीकृतार्द्धमात्रकपित्थफलसंस्थानसंस्थितं तत उदयकाले अस्तमयकाले वा यदिवा तिर्यक् परिभ्रमत् पौर्णमास्यां कस्मात्तदर्धकपित्थफलाकारं नोपलभ्यन्ते, कामं शिरस उपरि वर्त्तमानं वर्त्तुलमुपलभ्यते, अर्द्धकपित्थस्य उपरि दूरमवस्थापितस्य परभागाद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शनतो वर्त्तुलतया दृश्यमानत्वात्, उच्यते, इहार्द्धकपित्थफलाकारं चन्द्रविमानं न सामस्त्येन प्रतिपत्तव्यं किन्तु तस्य चन्द्रविमानस्य पीठं, तस्य च पीठस्योपरि चन्द्रदेवस्य ज्योतिश्चक्रराजस्य प्रासादः, स च प्रासादस्तथा कथंचनापि व्यवस्थितो यथा पीठेन सह भूयान् वर्त्तुलाकारो भवति, स च दूरभावादेकान्ततः समवृत्ततया जनानां प्रतिभासते, ततो न कश्चिद्दोषः, न चैतत्स्वमनीषिकाया विजृम्भितं, यत एतदेव जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणेन विशेषणवत्यामाक्षेपपुरस्सरं उक्तम्—"अद्धकविट्ठागारा उदयत्थमणंमि कह न दीसंति । ससिसूराण विमाणा तिरियक्खेत्तट्ठियाणं च ? ॥ १ ॥ आ० उत्ताणद्धकविट्ठागारं पीढं तदुवरिं च पासाओ । वट्टालेखेण तओ समवट्टं दूरभावाओ ॥ २ ॥" तथा सर्व–निरवशेषं स्फटिकमयं–स्फटिकविशेषमणिमयं तथा अभ्युद्गता–आभिमुख्येन सर्वतो विनिर्गता उत्सृता–प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता या प्रभा–दीप्तिस्तया सितं–शुक्लं अभ्युद्गतोत्सृतप्रभासितं तथा विविधा–अनेकप्रकारा मणयः–चन्द्रकान्तादयो रत्नानि–कर्केतनादीनि तेषां भक्तयो–विच्छित्तिविशेषास्ताभिश्चित्रं–अनेकरूपवत् आश्चर्यवद्वा विविधमणिरत्नचित्रं यावत्-शब्दात् 'वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागाछत्ताइच्छत्तकलिए तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जालंतररयण पंजरुम्मीलियव्व मणिकणगथूभियागे वियसियसयवत्तपुंडरीयतिलयरयणड्ढचंदचित्ते अंतो बहिं च सण्हे तवणिज्जवालुगापत्थडे सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए दरिसणिज्जे" इति, तत्र वातोद्धुता–वायुकम्पिता विजयः–अभ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्त्यभिधाना या पताका अथवा विजया इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यो विजयवैजयन्त्यः पताकाः–ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः छत्रातिच्छत्राणि च–उपर्युपरिस्थितातपत्राणि तैः कलितं वातोद्धुतविजयवैजयन्तीपता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९४-९५]

दीप अनुक्रम [१२७-१२८]

काछत्रातिच्छत्रकलितं तुङ्गं–उच्चमत एव 'गगणतलमणुलिहंतसिहरे'त्ति गगनतलं–अम्बरतलमनुलिखत्–अभिलङ्घयत् शिखरं यस्य तत् गगनतलानुलिखत्शिखरं, तथा जालानि–जालकानि तानि च भवनभित्तिषु लोके प्रतीतानि तदन्तरेषु विशिष्टशोभानिमित्तं रत्नानि यत्र तत् जालान्तररत्नं, सूत्रे चात्र प्रथमैकवचनलोपो द्रष्टव्यः, तथा पञ्जरात् उन्मीलितमिव–बहिष्कृतमिव पञ्जरोन्मीलितं, यथा हि किल किमपि वस्तु पञ्जरात्–वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद् बहिष्कृतमत्यन्तमविनष्टच्छायत्वात् शोभते एवं तदपि विमानमिति भावः, तथा मणिकनकानां सम्बन्धिनी स्तूपिकाशिखरं यस्य तत् मणिकनकस्तूपिकाकं, तथा विकसितानि यानि शतपत्राणि पुण्डरीकाणि च द्वारादौ प्रतिकृतित्वेन स्थितानि तिलकाश्च भित्त्यादिषु पुण्ड्राणि रत्नमयाश्चार्द्धचन्द्रा द्वाराग्रादिषु तैश्चित्रं विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकार्द्धचन्द्रचित्रं, तथा अन्तर्बहिश्च श्लक्ष्णं मसृणमित्यर्थः, तथा तपनीयं–सुवर्णविशेषस्तन्मय्याः वालुकायाः–सिकतायाः प्रस्तटः–प्रतरो यत्र तत्तथा, तथा सुखस्पर्शं शुभस्पर्शं वा तथा सश्रीकाणि–सशोभानि रूपाणि–नरयुग्मादीनि यत्र तत् सश्रीकरूपं तथा प्रसादीयं–मनःप्रसादहेतुः अत एव दर्शनीयं–द्रष्टुं योग्यं, तद्दर्शनेन तृप्तेरसम्भवात्, तथा प्रतिविशिष्टं–असाधारणं रूपं यस्य तत्तथा, 'एवं सूरविमाणेवी'त्यादि, यथा चन्द्रविमानस्वरूपमुक्तमेवं सूर्यविमानं ताराविमानं च वक्तव्यं, प्रायः सर्वेषामपि ज्योतिर्विमानानामेकरूपत्वात्, तथा चोक्तं समवायाङ्गे—"केवइया णं भंते ! जोइसियावासा पण्णत्ता ?, गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तनउयाइं जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरजोयणसयबाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोइसविसए जोइसियाणं देवाणं असंखेज्जा जोइसियविमाणावासा पन्नत्ता, ते णं जोइसिय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विमाणावासा अब्भुग्गयसमूसियपहसिया विविहमणिरयणभित्तिचित्ता तं चेव जाव पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा' इति, 'ता चंदविमाणे णं'मित्यादीनि आयामविष्कम्भादिविषयाणि सर्वाण्यपि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि सुगमानि, नवरं सर्वत्रापि परिधिपरिमाणं 'विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ" [विष्कम्भवर्गदशगुणकरणिर्वृत्तस्य परिरयो भवति] इति करणवशात् स्वयमेव नेतव्यं, तथा यत्तारविमानस्यायामविष्कम्भपरिमाणमुक्तमर्द्धगव्यूतमुच्चत्वपरिमाणं क्रोशचतुर्भागः तदुत्कृष्टस्थितिकस्य तारादेवस्य सम्बन्धिनो विमानस्यावसेयं, यत्पुनर्जघन्यस्थितिकस्य तारादेवस्य सम्बन्धि विमानं तस्याऽऽयामविष्कम्भपरिमाणं पञ्चधनुःशतानि उच्चत्वपरिमाणमर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, तथा चोक्तं तत्त्वार्थभाष्ये—'अष्टाचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाः सूर्यमण्डलविष्कम्भः चन्द्रमसः षट्पञ्चाशद् ग्रहाणामर्द्धयोजनं गव्यूतं नक्षत्राणां सर्वोत्कृष्टायास्तारायाः अर्द्धक्रोशो जघन्यायाः पञ्च धनुःशतानि, विष्कम्भार्द्धबाहल्याश्च भवन्ति सर्वे सूर्यादयोऽत्र लोके" इति, 'ता चंदविमाणं कइ देवसाहस्सीओ परिवहंति' इत्यादीन्यपि वाहनविषयाणि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि सुगमानि, नवरमियमत्र भावना—इह चन्द्रादीनां विमानानि तथाजगत्स्वाभाव्यान्निरालम्बानि वहन्त्यवतिष्ठन्ते, केवलं ये आभियोगिका देवास्ते तथाविधनामकर्मोदयवशात् समानजातीयानां हीनजातीयानां वा देवानां निजस्फातिविशेषदर्शनार्थमात्मानं बहु मन्यमानाः प्रसादभृतः सततवहनशीलेषु विमानेषु अधः स्थित्वा २ केचित् सिंहरूपाणि केचिद् गजरूपाणि केचित् वृषभरूपाणि केचित्तुरगरूपाणि कृत्वा तानि विमानानि वहन्ति, न चैतदनुपपन्नं, तथाहि—यथेह कोऽपि तथाविधाभियोग्यनामकर्मोपभोगभागी दासोऽन्येषां समानजातीयानां हीनजातीयानां वा पूर्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिचितानामेवमहं नायकस्यास्य सुप्रसिद्धस्य सम्मत इति निजस्फातिविशेषप्रदर्शनार्थं सर्वमपि स्वोचितं कर्म्म नायकसमक्षं प्रमुदितः करोति, तथाऽऽभियोगिका अपि देवास्तथाविधाभियोग्यनामकर्मोपभोगभाजः समानजातीयानां हीनजातीयानां वा देवानामन्येषामेवं वयं समृद्धा यत्सकललोकप्रसिद्धानां चन्द्रादीनां विमानानि वहाम इत्येवं निजस्फातिविशेषप्रदर्शनार्थमात्मानं बहु मन्यमाना उक्तप्रकारेण चन्द्रादिविमानानि वहन्तीति, तेषां च चन्द्रादिविमानवहनशीलानामाभियोगिकदेवानामिमे सङ्ग्रहसङ्ग्राहिके जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसत्के गाथे–"सोलस देवसहस्सा वहंति चंदेसु चेव सूरेसु। अट्ठेव सहस्साइं एक्केकमी गहविमाणे ॥ १ ॥ चत्तारि सहस्साइं नक्खत्तंमि य हवंति एक्केके। दो चेव सहस्साइं तारारूवेक्कमेक्कंमि ॥ २ ॥" 'ता एएसि ण'मित्यादि, शीघ्रगतिविषयं प्रश्नसूत्रं निर्वचनसूत्रं च सुगमं, एतच्च पश्चादप्युक्तं परं भूयो विमानवहनप्रस्तावादुक्तमित्यदोषः, अन्यद्वा कारणं बहुश्रुतेभ्योऽवगन्तव्यं।

ता जंबुद्दीवे णं दीवे तारारूवस्स य २ एस णं केवतिए अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, दुविहे अंतरे पं०, तं०–वाघातिमे य णिव्वाघातिमे य, तत्थ णं जे से वाघातिमे से णं जहण्णेणं दोण्णि बावट्ठे जोयणसते उक्कोसेणं बारस जोयणसहस्साइं दोण्णि बातालं जोयणसते तारारूवस्स २ य अबाधाए अंतरे पण्णत्ते, तत्थ जे से निव्वाघातिमे से जहण्णेणं पंच धणुसताइं उक्कोसेणं अद्धजोयणं तारारूवस्स य २ अबाधाए अंतरे पं० (सूत्रं ९६) ता चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?, ता चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं०–चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा, तत्थ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२६५॥

देवीसाहस्सी परियारो पण्णत्तो, पभू णं तातो एगमेगा देवी अण्णाइं चत्तारि २ देवीसहस्साइं परिवारं विउव्वित्तए ?, एवामेव सपुव्वावरेणं सोलस देवीसहस्सा, सेत्तं तुडिए, ता पभू णं चंदे जोतिसिंदे जोतिसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुधम्माए तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?, णो इणट्ठे समट्ठे, ता कहं ते णो पभू जोतिसिंदे जोतिसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुधम्माए तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?, ता चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुधम्माए माणवएसु चेतियखंभेसु वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहा संणिक्खित्ता चिट्ठंति, ताओ णं चंदस्स जोतिसिंदस्स जोइसरण्णो अण्णेसिं च बहूणं जोतिसियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेतियं पज्जुवासणिज्जाओ एवं खलु णो पभू चंदे जोतिसिंदे जोतिसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए। पभू णं चंदे जोतिसिंदे जोतिसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुधम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवतीहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं जोतिसिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महताहतणट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परियारणिड्ढीए णो चेव णं मेहुणवत्तियाए।

१८ प्राभृते तारान्तरं चन्द्रादिदेवी सू ९६-९७

॥२६५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ता सूरस्स णं जोइसिंदस्स जोतिसरण्णो कति अग्गमहिसीओ पं० ?, ता चत्तारि अग्गमहिसीओ पं०, तं०–सूरप्पभा आतवा अचिमाला पभंकरा, सेसं जहा चंदस्स, णवरं सूरवडेंसए विमाणे जाव णो चेव णं मेहुणवत्तियताए (सूत्रं ९७) जोतिसियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?, जहण्णेणं अड्ढभागपलितोवमं उक्कोसेणं पलितोवमं वाससतसहस्समब्भहियं, ता जोतिसिणीणं देवीणं केवतियं कालं ठिती पं० ?, ता जहन्नेणं अड्ढभागपलितोवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पन्नासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, चंदविमाणे णं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, जहन्नेणं चउब्भागपलितोवमं उक्कोसेणं पलितोवमं वाससयसहस्समब्भहियं, ता चंदविमाणे णं देवीणं केवतियं कालं ठिती पं० ?, जहण्णेणं चउब्भागपलितोवमं उक्कोसेणं अड्ढपलितोवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, सूरविमाणे णं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, जहण्णेणं चउब्भागपलितोवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं, ता सूरविमाणे णं देवाणं केवतियं कालं ठिती पं० ?, जहण्णेणं चउब्भागपलितोवमं उक्कोसेणं अद्धपलितोवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं, ता गहविमाणे णं देवाणं केवतियं कालं ठिती पं० ?, जहण्णेणं चउब्भागपलितोवमं उक्कोसेणं पलितोवमं, ता गहविमाणे णं देवीणं केवतियं कालं ठिती पं० ?, जहण्णेणं चउब्भागपलितोवमं उक्कोसेणं अड्ढपलितोवमं, ता णक्खत्तविमाणे णं देवाणं केवतियं कालं ठिती पं० ?, जहण्णेणं चउब्भागपलितोवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं, ता णक्खत्तविमाणे णं देवाणं केवइयं कालं ठिती पं० ?, जहण्णेणं अड्ढभागपलि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तोवमं उक्कोसेणं चउब्भागपलितोवमं, ता तारविमाणे णं देवाणं पुच्छा, जहण्णेणं अट्ठभागपलितोवमं उक्कोसेणं चउब्भागपलियोवमं, ता तारविमाणे णं देवीणं पुच्छा, ता जहण्णेणं अट्ठभागपलितोवमं उक्कोसेणं साइरेगअट्ठभागपलिओवमं (सूत्रं ९८) ता एएसि णं चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं कतरे २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, ता चंदा य सूरा य एते णं दोवि तुल्ला सव्वत्थोवा णक्खत्ता संखिज्जगुणा गहा संखिज्जगुणा तारा संखिज्जगुणा ॥ (सूत्रं ९९) अट्ठारसं पाहुडं समत्तं ॥

'ता जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे' इत्यादि ताराविमानान्तरविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–'ता दुविहे'इत्यादि, द्विविधमन्तरं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–व्याघातिमं निर्व्याघातिमं च, तत्र व्याहननं व्याघातः–पर्वतादिस्खलनं तेन निर्वृत्तं व्याघातिमं 'भावादिम' इति इमप्रत्ययः, निर्व्याघातिमं–व्याघातिमान्निर्गतं स्वाभाविकमित्यर्थः, तत्र यत् व्याघातिमं तत् जघन्यतो द्वे योजनशते षट्षष्ट्यधिके, एतच्च निषधकूटादिकमपेक्ष्य वेदितव्यं, तथाहि–निषधपर्वतः स्वभावतोऽप्युच्चैश्चत्वारि योजनशतानि तस्य चोपरि पञ्च योजनशतोच्चानि कूटानि, तानि च मूले पञ्चयोजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां मध्ये त्रीणि योजनशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि उपरि अर्द्धतृतीये द्वे योजनशते, तेषां चोपरितनभागसमश्रेणिप्रदेशे तथाजगत्स्वाभाव्यादष्टावष्टौ योजनान्युभयतोऽबाधया कृत्वा ताराविमानानि परिभ्रमन्ति, ततो जघन्यतो व्याघातिममन्तरं द्वे योजनशते षट्षष्ट्यधिके भवतः, उत्कर्षतो द्वादश योजनसहस्राणि द्वे योजनशते द्विचत्वारिंशदधिके, एतच्च मेरुमपेक्ष्य द्रष्टव्यं, तथाहि–मेरौ दश योजनसहस्राणि मेरोश्चोभयतोऽबाधया एकादश योजनशतान्येकविंशत्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धिकानि, ततः सर्वसङ्ख्यामीलने भवन्ति द्वादश योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते द्विचत्वारिंशदधिके। निर्व्याघातिमान्तरविषयं सूत्रं सुगमं। 'ता चंदस्स ण'मित्यादि अग्रमहिषीविषयं सूत्रं सुगमं, नवरमेकैकस्या देव्याश्चत्वारि देवीसहस्राणि परिवार इति किमुक्तं भवति ?-एकैका अग्रमहिषी चतुर्णां चतुर्णां चन्द्रसत्कदेवीसहस्राणां पट्टराज्ञी, एकैका च सा इत्थंभूता अग्रमहिषी परिचारणावसरे तथाविधां ज्योतिष्कराजचन्द्रदेवेच्छामुपलभ्य प्रभुरन्यानि आत्मसमानरूपाणि चत्वारि चत्वारि देवीसहस्राणि विकुर्वितुं, इह सिद्धान्तप्रसिद्धो विकुर्व इति धातुरस्ति, यस्य विकुर्वणा इति प्रयोगः, ततो विकुर्वितुमित्युक्तं,'एवमेवे'ति एवमेव-उक्तप्रकारेणैव 'सपुव्वावरेणं'ति सह पूर्वेणेति सपूर्वं सपूर्वं च अपरं च सपूर्वापरं तेन सपूर्वापरेण-पूर्वापरमीलनेन स्वाभाविकानि षोडश देवीसहस्राणि चन्द्रदेवस्य भवन्ति, तथाहि-चतसृणोऽग्रमहिष्यः एकैका चात्मना सह चतुश्चतुर्देवीसहस्रपरिवारा ततः सर्वसङ्कलनेन भवंति षोडश देवीसहस्राणि 'सेत्तं तुडिए' इति तदेतावत् चन्द्रदेवस्य तुटिकं-अन्तःपुरं, उक्तं च जीवाभिगमचूर्णौ-"तुटिकमन्तःपुरमिति" 'पभू णं चंदे'इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह-'नो इणट्ठे समट्ठे'नायमर्थः समर्थः-उपपन्नो, न युक्तोऽयमर्थ इति भावः, यथा चन्द्रावतंसके विमाने या सुधर्मा सभा तस्यामन्तःपुरेण सार्द्धं दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहरतीति, 'ता कहं ते नो पभू' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह-'ता चंदस्स ण'मित्यादि, चन्द्रावतंसके विमाने सुधर्मायां सभायां माणवको नाम चैत्यस्तम्भोऽस्ति, तस्मिंश्च माणवके स्तम्भे ये वज्रमयेषु सिक्कयेषु वज्रमया गोलाकारा वृत्ताः समुद्गकास्तेषु बहूनि जिनसक्थीनि निक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, 'ताओ ण'मित्यादि, तानि जिनसक्थीनि, इह सूत्रे स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, चन्द्रस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्यान्येषां च बहूनां ज्योतिष्काणां देवानां देवीनां च अर्चनीयानि पुष्पादिभिर्वन्दनीयानि-स्तोतव्यानि विशिष्टैः स्तोत्रैः पूजनीयानि वस्त्रादिभिः सत्कारणीयानि आदरप्रतिपत्त्या सन्माननीयानि जिनोचितप्रति. पत्त्या कल्याणं–कल्याणहेतुर्मङ्गलं–दुरितोपशमहेतुर्दैवतं–परमदेवता चैत्यं–इष्टदेवताप्रतिमा इत्येवं पर्युपासनीयानि तत एवं–अनेन कारणेन खलु–निश्चितं न प्रभुरित्यादि सुगमं, 'ता पभू णं चंदे'इत्यादि, केवलं परिचारणर्द्ध्या–परिचा रणसमृद्ध्या, एते सर्वेऽपि मम परिचारका अहं त्वेतेषां स्वामीत्येवं निजस्फातिविशेषदर्शनाभिप्रायेणेति भावः, प्रभुश्चन्द्रो ज्योतिषेन्द्रो ज्योतिषराजश्चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां चन्द्राभिधानसिंहासने चतुर्भिः सामानिकसहस्रैश्चतसृ-भिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिस्तिसृभिरभ्यन्तरमध्यमबाह्यरूपाभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोड-शभिरात्मरक्षकदेवसहस्रैरन्यैश्च बहुभिर्ज्योतिष्कैर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं सम्परिवृतो महता रवेणेति योगः, 'आहय'त्ति आख्यानकप्रतिबद्धानीति वृद्धाः अथवा अहतानि–अव्याहतानि नाट्यगीतवादित्राणि तथा तन्त्री–वीणा तलताला–हस्ततालाः त्रुटितानि–शेषतूर्याणि तथा घनो–घनाकारो ध्वनिसाधर्म्यात् यो मृदङ्गो–मर्दलः पटुना–दक्षपुरुषेण प्रवा-दितस्तत एतेषां पदानां द्वन्द्वस्तेषां यो रवस्तेन दिव्यान्–दिवि भवान् अतिप्रधानानित्यर्थः भोगार्हा ये भोगाः–शब्दा-दयस्तान् भुञ्जानो विहर्त्तुं प्रभुरिति योगः, न पुनर्मैथुनप्रत्ययं–मैथुननिमित्तं स्पर्शादिभोगं भुञ्जानो विहर्त्तुं प्रभुरिति, 'एवं ता सूरस्स ण'मित्यादीन्यपि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि भावनीयानि, 'ता जोइसियाणं देवाण'मित्यादि, सर्वं सुगमं यावत् प्राभृतपरिसमाप्तिः, नवरं चन्द्रविमाने चन्द्रदेव उत्पद्यते तत्सामानिकात्मरक्षकादयश्च, तत्रात्मरक्षकादीनां यथोक्ता जघ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९६-९९]

दीप अनुक्रम [१२९--१३२]

न्या स्थितिरुत्कृष्टा तु चन्द्रदेवस्य तत्सामानिकादीनां च, एवं सूर्यविमानादिष्वपि भावनीयम् ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां अष्टादशमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तमष्टादशं प्राभृतं, सम्प्रति एकोनविंशतितममारभ्यते, तस्य चायमर्थाधिकारः, यथा 'कति चन्द्रसूर्याः सर्वलोके आख्याता' इति, ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कति णं चंदिमसूरिया सव्वलोयं ओभासंति उज्जोएंति तवेंति पभासेंति आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ दुवालस पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता एगे चंदे एगे सूरे सव्वलोयं ओभासति उज्जोएति तवेति पभासति, एगे एवमाहंसु १, एगे पुण एवमाहंसु ता तिण्णि चंदा तिण्णि सूरा सव्वलोयं ओभासेंति ४ एगे एवमाहंसु २, एगे पुण एवमाहंसु ता आउट्ठिं चंदा आउट्ठिं सूरा सव्वलोयं ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पगासिंति एगे एवमाहंसु ३ एगे पुण एवमाहंसु एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं सत्त चंदा सत्त सूरा दस चंदा दस सूरा बारस चंदा २ बातालीसं चंदा २ बावत्तरिं चंदा २ बातालीसं चंदसतं २ बावत्तरं चंदसयं बावत्तरि सूरसयं बायालीसं चंदसहस्सं बातालीसं सूरसहस्सं बावत्तरं चन्दसहस्सं बावत्तरं सूरसहस्सं सव्वलोयं ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पगासंति, एगे एवमाहंसु, वयं पुण एवं वदामो–ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव परिक्खेवेणं, ता जंबुद्दीवे २ केवतिया चंदा पभासिंसु वा पभासिंति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र अष्टादशं प्राभृतं परिसमाप्तं	अथ एकोनविंशति प्राभृतं आरभ्यते

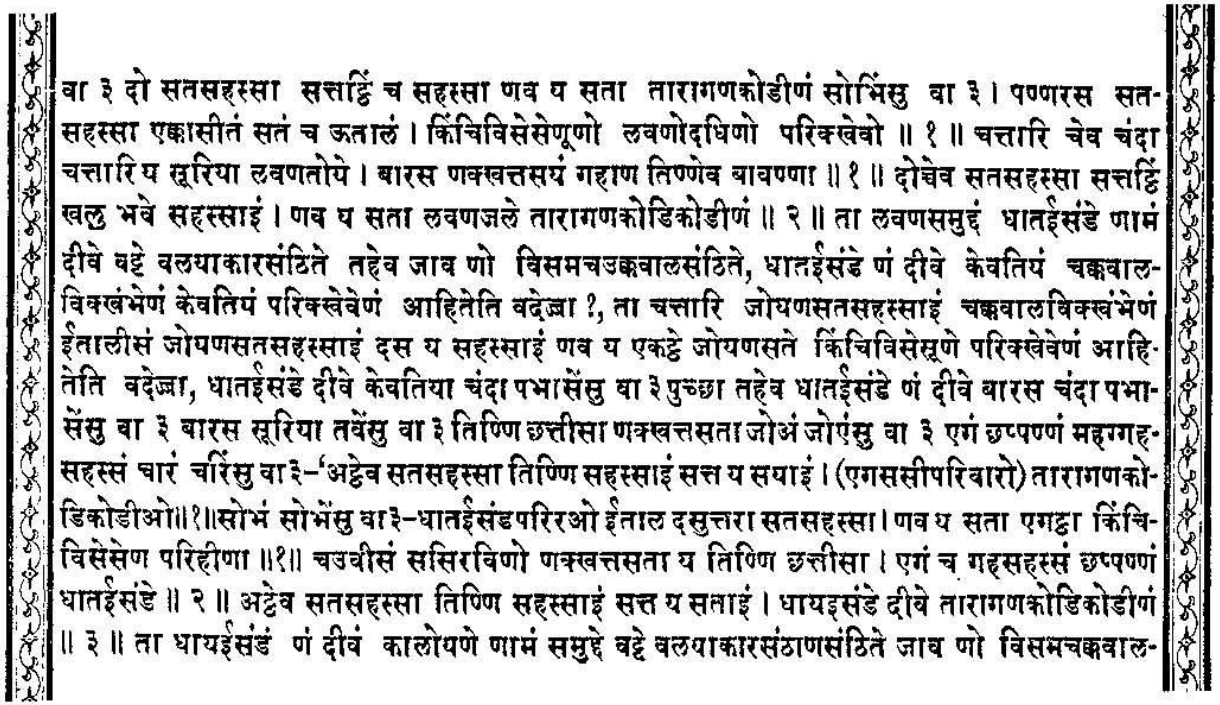
सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२६८॥

वा पभासिस्संति वा?, केवतिया सूरा तविंसु वा तवेंति वा तविस्संति वा?, केवतिया णक्खत्ता जोअं जोइंसु वा जोएंति वा जोइस्संति वा? केवतिया गहा चारं चरिंसु वा चरंति वा चरिस्संति वा? केवतिया तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा?, ता जंबुद्दीवे २ दो चंदा पभासेंसु वा ४ दो सूरिया तवइंसु वा ३, छप्पण्णं णक्खत्ता जोयं जोएंसु वा ३ बावत्तरि गहसतं चारं चरिंसु वा ३ एगं सयसहस्सं तेत्तीसं च सहस्सा णव सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीणं सोभं सोभेंसु वा ३। "दो चंदा दो सूरा णक्खत्ता खलु हवंति छप्पण्णा। बावत्तरं गहसतं जंबुद्दीवे विचारीणं ॥ १ ॥ एगं च सयसहस्सं तित्तीसं खलु भवे सहस्साइं। णव य सता पण्णासा तारागण कोडिकोडीणं ॥ २ ॥" ता जंबुद्दीवं णं दीवं लवणे नामं समुद्दे वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति, ता लवणे णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिते?, ता लवणसमुद्दे समचक्कवालसंठिते नो विसमचक्कवालसंठिते, ता लवणसमुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा?, ता दो जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसतसहस्साइं एक्कासीयं च सहस्साइं सतं च ऊणालं किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता लवणसमुद्दे केवतियं चंदा पभासेंसु वा ३?, एवं पुच्छा जाव केवतियाउ तारागणकोडिकोडीओ सोभिंसु वा ३?, ता लवणे णं समुद्दे चत्तारि चंदा पभासेंसु वा ३ चत्तारि सूरिया तवइंसु वा ३ बारस णक्खत्तसतं जोयं जोएंसु वा ३ तिण्णि बावण्णा महग्गहसता चारं चरिंसु

१९ प्राभृते चन्द्रसूर्यादिपरिमाणं सू १००

॥२६८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



वा ३ दो सतसहस्सा सत्तट्ठिं च सहस्सा णव य सता तारागणकोडीणं सोभिंसु वा ३। पण्णरस सतसहस्सा एक्कासीतं सतं च ऊतालं। किंचिविसेसेणूणो लवणोदधिणो परिक्खेवो ॥ १ ॥ चत्तारि चेव चंदा चत्तारि य सूरिया लवणतोये। बारस णक्खत्तसयं गहाण तिण्णेव बावण्णा ॥ १ ॥ दोचेव सतसहस्सा सत्तट्ठिं खलु भवे सहस्साइं। णव य सता लवणजले तारागणकोडिकोडीणं ॥ २ ॥ ता लवणसमुद्दं धातईसंडे णामं दीवे वट्टे वलयाकारसंठिते तहेव जाव णो विसमचउक्कवालसंठिते, धातईसंडे णं दीवे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता चत्तारि जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं ईतालीसं जोयणसतसहस्साइं दस य सहस्साइं णव य एकट्ठे जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, धातईसंडे दीवे केवतिया चंदा पभासेंसु वा ३ पुच्छा तहेव धातईसंडे णं दीवे बारस चंदा पभासेंसु वा ३ बारस सूरिया तवेंसु वा ३ तिण्णि छत्तीसा णक्खत्तसता जोअं जोएंसु वा ३ एगं छप्पण्णं महग्गहसहस्सं चारं चरिंसु वा ३-'अट्ठेव सतसहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं। (एगससीपरिवारो) तारागणकोडिकोडीओ॥१॥सोभं सोभेंसु वा ३-धातईसंडपरिरओ ईताल दसुत्तरा सतसहस्सा। णव य सता एगट्ठा किंचिविसेसेण परिहीणा ॥१॥ चउवीसं ससिरविणो णक्खत्तसता य तिण्णि छत्तीसा। एगं च गहसहस्सं छप्पण्णं धातईसंडे ॥ २ ॥ अट्ठेव सतसहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सताइं। धायइसंडे दीवे तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥ ता धायईसंडं णं दीवं कालोयणे णामं समुद्दे वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिते जाव णो विसमचक्कवाल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा: दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२६९॥

संठाणसंठिते, ता कालोयणे णं समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता कालोयणे णं समुद्दे अट्ठ जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पन्नत्ते एक्काणउतिं जोयणसयसहस्साइं सत्तरिं च सहस्साइं छच्च पंचुत्तरे जोयणसते किंचिविसेसाधिए परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता कालोयणे णं समुद्दे केवतिया चंदा पभासेंसु वा ३ पुच्छा, ता कालोयणे समुद्दे बातालीसं चंदा पभासेंसु वा ३ बायालीसं सूरिया तवेंसु वा ३ एक्कारस बावत्तरा णक्खत्तसता जोयं जोइंसु वा ३, तिन्नि सहस्सा छच्च छन्नउया महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३ अट्ठावीसं च सहस्साइं बारस सयसहस्साइं नव य सयाइं पण्णासा तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा सोहंति वा सोभिस्संति वा "एक्काणउई सतराइं सहस्साइं परिरतो तस्स। अहियाइं छच्च पंचुत्तराइं कालोदधिवरस्स ॥ १ ॥ बातालीसं चंदा बातालीसं च दिणकरा दित्ता। कालोदधिमि एते चरंति संबद्धलेसागा ॥ २ ॥ णक्खत्तसहस्सं एगमेव छावत्तरं च सतमण्णं। छच्च सया छण्णउया महग्गहा तिण्णि य सहस्सा ॥ ३ ॥ अट्ठावीसं कालोदहिमि बारस य सहस्साइं। णव य सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीणं ॥ ४ ॥" ता कालोयं णं समुद्दं पुक्खरवरे णामं दीवे वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति, ता पुक्खरवरे णं दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ?, ता समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए, ता पुक्खरवरे णं दीवे केवइयं समचक्कवालविक्खंभेणं ?, केवइअं परिक्खेवेणं ?, ता सोलस जोयणसयसहस्साइं

१९ प्राभृते चन्द्रसूर्यादिपरिमाणं सू १००

॥२६९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्कवालविक्खंभेणं एगा जोयणकोडी बाणउतिं च सतसहस्साइं अउणावन्नं च सहस्साइं अट्ठ-
चउणउते जोअणसते परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता पुक्खरवरे णं दीवे केवतिया चंदा पभासेंसु वा ३
पुच्छा तधेव ता चोत्तालचंदसदं पभासेंसु वा ३ चोत्तालं सूरियाणं सतं तवइंसु वा ३ चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं
च नक्खत्ता जोअं जोएंसु वा३बारस सहस्साइं छच्च बावत्तरा महग्गहसता चारं चरिंसु वा ३ छण्णउतिसय-
सहस्साइं चोयालीसं सहस्साइं चत्तारि य सयाइं तारागणकोडिकोडीणं सोभं सोभेंसु वा ३ 'कोडी बाण-
उती खलु अउणाणउतिं भवे सहस्साइं। अट्ठसता चउणउता य परिरओ पोक्खरवरस्स ॥ १ ॥ चोत्तालं
चंदसतं चत्तालं चेव सूरियाण सतं। पोक्खरवरदीवम्मि च चरंति एते पभासंता ॥२॥ चत्तारि सहस्साइं छत्तीसं
चेव हुंति णक्खत्ता। छच्च सता बावत्तर महग्गहा बारह सहस्सा ॥ ३ ॥ छण्णउति सयसहस्सा चोत्तालीसं
खलु भवे सहस्साइं। चत्तारि य सता खलु तारागणकोडिकोडीणं ॥ ४ ॥ ता पुक्खरवरस्स णं दीवस्स बहु-
मज्झदेसभाए माणुसुत्तरे णामं पवए वलयाकारसंठाणसंठिते जे णं पुक्खरवरं दीवं दुधा विभयमाणे २
चिट्ठति, तंजहा–अब्भिंतरपुक्खरद्धं च बाहिरपुक्खरद्धं च, ता अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं किं समचक्कवालसंठिए
विसमचक्कवालसंठिए ?, ता समचक्कवालसंठिए णो विसमचक्कवालसंठिते, ता अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं
केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता अट्ठ जोयणसतसहस्साइं चक्क-
वालविक्खंभेणं एक्का जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दो अउणापण्णे जोयणसते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा: दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं केवतिया चंदा पभासेंसु वा ३ केवतिया सूरा तविंसु वा ३ पुच्छा, बावत्तरिं चंदा पभासिंसु वा ३ बावत्तरिं सूरिया तवइंसु वा ३ दोण्णि सोला णक्खत्त-सहस्सा जोअं जोएंसु वा३छ महग्गहसहस्सा तिन्नि य बत्तीसा चारं चरेंसु वा३अडतालीससतसहस्सा बावीसं च सहस्सा दोण्णि य सता तारागण कोडिकोडीणं सोभं सोभिंसु वा ३। ता समयक्खेत्ते णं केवतियं आयाम-विक्खंभेण केवइयं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा?, ता पणतालीसं जोयणसतसहस्साइं आयामविक्खंभेणं एका जोयणकोडी बायालीसं च सतसहस्साइं। दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता समयक्खेत्ते णं केवतिया चंदा पभासेंसु वा३पुच्छा तधेव, ता बत्तीसं चंदसतं पभासेंसु वा३बत्तीसं सूरियाण सतं तवइंसु वा ३ तिण्णि सहस्सा छच्च छण्णउता णक्खत्तसता जोयं जोएंसु वा ३ एक्कारस सहस्सा छच्च सोलस महग्गहसता चारं चरिंसु वा ३ अट्ठासीतिं सतसहस्साइं चत्तालीसं च सहस्सा सत्त य सया तारागणकोडीकोडीणं सोभं सोभिंसु वा ३। अट्ठेव सतसहस्सा अब्भिंतरपुक्खरस्स विक्खंभो। पणतालसय-सहस्सा माणुसखेत्तस्स विक्खंभो ॥ १ ॥ कोडी बातालीसं सहस्स दुसया य अउणपण्णासा। माणुसखे-त्तपरिरओ एमेव य पुक्खरद्धस्स ॥ २ ॥ बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिण्णकरा दित्ता। पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एते पभासेंता ॥ ३ ॥ तिण्णि सता छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु। णक्खत्ताणं तु भवे सोलाइं दुवे सहस्साइं ॥ ४ ॥ अडयालसयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं। दो त सय पुक्खरद्धे तारागणकोडि-

॥२७०॥

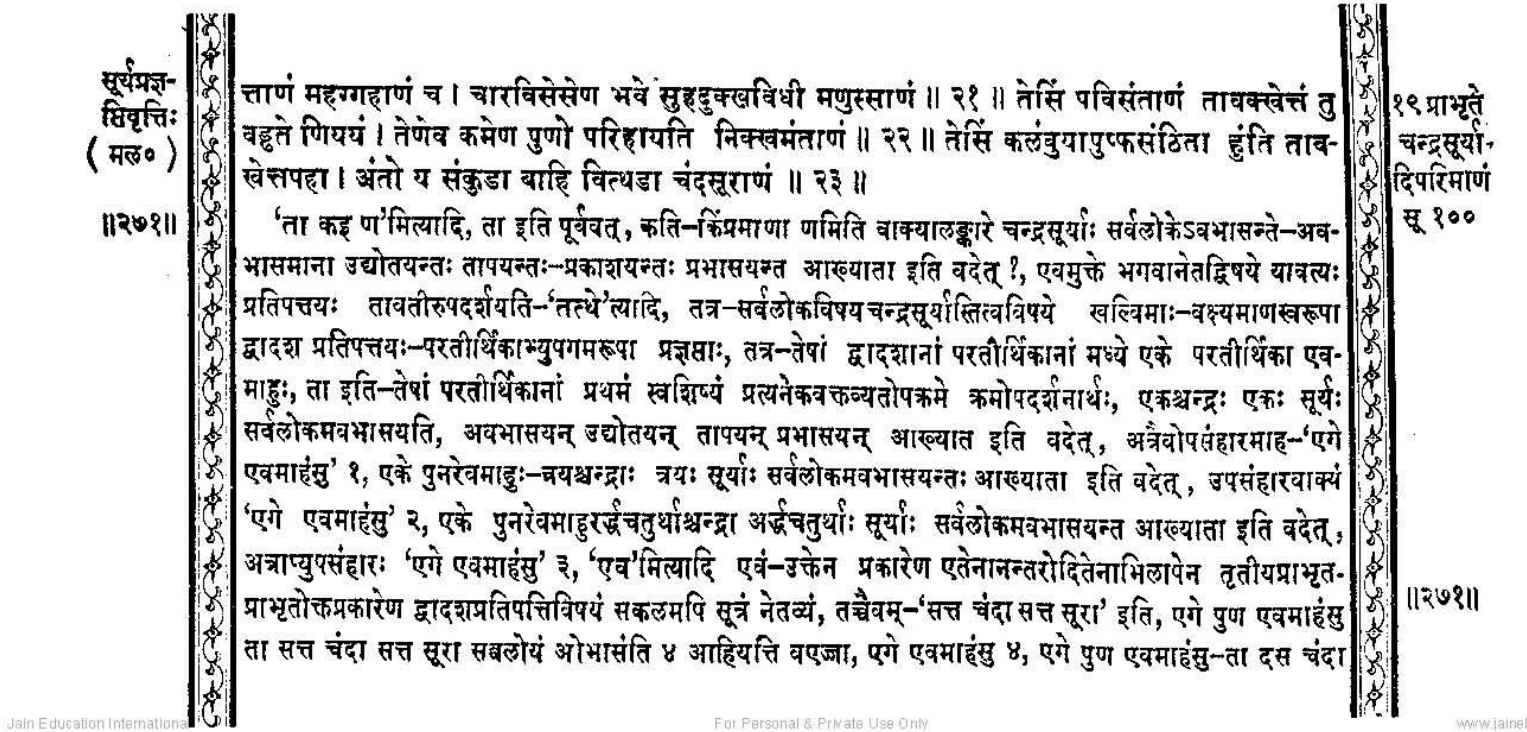
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा:

दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

कोडीणं ॥ ५ ॥ बत्तीसं चंदसतं बत्तीसं चेव सूरियाण सतं । सयलं माणुसलोअं चरंति एते पभासेंता ॥ ६ ॥ एक्कारस य सहस्सा छप्पिय सोला महग्गहाणं तु । छच्च सता छण्णउया णक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा ॥ ७ ॥ अट्ठासीइ चत्ताइं सतसहस्साइं मणुयलोगंमि । सत्त य सता अणूणा तारागणकोडिकोडीणं ॥ ८ ॥ एसो तारापिंडो सव्वसमासेण मणुयलोयंमि । बहिता पुण ताराओ जिणेहिं भणिया असंखेज्जाओ ॥ ९ ॥ एवतियं तारग्गं जं भणियं माणुसंमि लोगंमि । चारं कलंबुयापुप्फसंठितं जोतिसं चरति ॥ १० ॥ रविससि-गहणक्खत्ता एवतिया आहिता मणुयलोए । जेसिं णामागोत्तं न पागता पण्णवेहंति ॥ ११ ॥ छावट्ठिं पिडगाइं चंदादिच्चाण मणुलोयंमि । दो चंदा दो सूरा य हुंति एक्केक्कए पिडए ॥ १२ ॥ छावट्ठिं पिडगाइं णक्खत्ताणं तु मणुयलोयंमि । छप्पण्णं णक्खत्ता हुंति एक्केक्कए पिडए ॥ १३ ॥ छावट्ठिं पिडगाइं महागहाणं तु मणुयलोयंमि । छावत्तरं गहसतं होइ एक्केक्कए पिडए ॥ १४ ॥ चत्तारि य पंतीओ चंदाइच्चाण मणुयलोयम्मि । छावट्ठिं २ च होइ एक्किक्किया पन्ती ॥ १५ ॥ छप्पन्नं पंतीओ णक्खत्ताणं तु मणुयलोयंमि । छावट्ठिं २ हवंति एक्केक्किया पंती ॥ १६ ॥ छावत्तरं गहाणं पंतिसयं हवति मणुयलोयंमि । छावट्ठिं २ हवइ य एक्केक्किया पंती ॥ १७ ॥ ते मेरुयणुचरंता पदाहिणावत्तमंडला सव्वे । अणवट्ठियजोगेहिं चंदा सूरा गहगणा य ॥ १८ ॥ णक्खत्ततार-गाणं अवट्ठिता मंडला मुणेयव्वा । तेऽविय पदाहिणावत्तमेव मेरुं अणुचरंति ॥ १९ ॥ रयणिकरदिणकराणं उड्ढं च अहे व संकमो नत्थि । मंडलसंकमणं पुण सब्भंतरबाहिरं तिरिए ॥ २० ॥ रयणिकरदिणकराणं णक्ख-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२७१॥

त्ताणं महग्गहाणं च । चारविसेसेण भवे सुहदुक्खविधी मणुस्साणं ॥ २१ ॥ तेसिं पविसंताणं तावक्खेत्तं तु वड्ढते णियगं । तेणेव कमेण पुणो परिहायति निक्खमंताणं ॥ २२ ॥ तेसिं कलंबुयापुप्फसंठिता हुंति तावखेत्तपहा । अंतो य संकुडा बाहि वित्थडा चंदसूराणं ॥ २३ ॥

'ता कइ ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, कति–किंप्रमाणा णमिति वाक्यालङ्कारे चन्द्रसूर्याः सर्वलोकेऽवभासन्ते–अवभासमाना उद्योतयन्तः तापयन्तः–प्रकाशयन्तः प्रभासयन्त आख्याता इति वदेत् ?, एवमुक्ते भगवानेतद्विषये यावत्यः प्रतिपत्तयः तावतीरुपदर्शयति–'तत्थे'त्यादि, तत्र–सर्वलोकविषयचन्द्रसूर्यास्तित्वविषये खल्विमाः–वक्ष्यमाणस्वरूपा द्वादश प्रतिपत्तयः–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपा प्रज्ञप्ताः, तत्र–तेषां द्वादशानां परतीर्थिकानां मध्ये एके परतीर्थिका एवमाहुः, ता इति–तेषां परतीर्थिकानां प्रथमं स्वशिष्यं प्रत्यनेकवक्तव्यतोपक्रमे क्रमोपदर्शनार्थः, एकश्चन्द्रः एकः सूर्यः सर्वलोकमवभासयति, अवभासयन् उद्योतयन् तापयन् प्रभासयन् आख्यात इति वदेत्, अत्रैवोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः–त्रयश्चन्द्राः त्रयः सूर्याः सर्वलोकमवभासयन्तः आख्याता इति वदेत्, उपसंहारवाक्यं 'एगे एवमाहंसु' २, एके पुनरेवमाहुरर्द्धचतुर्थाश्चन्द्रा अर्द्धचतुर्थाः सूर्याः सर्वलोकमवभासयन्त आख्याता इति वदेत्, अत्राप्युपसंहारः 'एगे एवमाहंसु' ३, 'एव'मित्यादि एवं–उक्तेन प्रकारेण एतेनानन्तरोदितेनाभिलापेन तृतीयप्राभृतप्राभृतोक्तप्रकारेण द्वादशप्रतिपत्तिविषयं सकलमपि सूत्रं नेतव्यं, तच्चैवम्–'सत्त चंदा सत्त सूरा' इति, एगे पुण एवमाहंसु ता सत्त चंदा सत्त सूरा सबलोयं ओभासंति ४ आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ४, एगे पुण एवमाहंसु–ता दस चंदा

१९ प्राभृते चन्द्रसूर्यादिपरिमाणं सू १०० ॥२७१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा:

दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

दस सूरा सबलोयं ओभासंति ४ आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ५, एगे पुण एवमाहंसु ता बारस चंदा बारस सूरा सबलोयं ओभासंति ४ आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ६, एगे पुण एवमाहंसु ता बायालीसं चंदा बायालीसं सूरा सबलोयं ओभासंति ४ आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु ७, एगे पुण एवमाहंसु–बावत्तरिं चंदा बावत्तरिं सूरा सबलोयं ओभासंति ४ आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु ८, एगे पुण एवमाहंसु–बायालीसं चंदसयं बायालीसं सूरसयं सबलोयं ओभासेंति ४ आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु ९, एगे पुण एवमाहंसु ता बावत्तरं चंदसयं बावत्तरं सूरसयं सबलोयं ओभासेंति ४ आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु १०, एगे पुण एवमाहंसु ता बायालीसं चंदसहस्सं बायालीसं सूरसहस्सं सबलोयं ओभासेन्ति ४ आहियत्ति वएज्जा एगे एवमाहंसु ११, एगे पुण एवमाहंसु ता बावत्तरं चंदसहस्सं बावत्तरं सूरसहस्सं सबलोयं ओभासेंति ४ आहियत्ति वएज्जा, एगे एवमाहंसु १२, एताश्च सर्वा अपि प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपाः तथा च भगवान् स्वमतमेताभ्यः पृथग्भूतमाह–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलज्ञाना एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः, तमेव प्रकारमाह–'ता अयण्ण'मित्यादि, इदं जम्बूद्वीपवाक्यं पूर्ववत् परिपूर्णं पठनीयं व्याख्यानीयं च, 'ता जंबुद्दीवे णं दीवे दो चंदा इत्यादि, जम्बूद्वीपे द्वौ चन्द्रौ प्रभासितवन्तौ प्रभासेते प्रभासिष्येते द्रव्यास्तिकनयमतेन सकलकालमेवंविधाया एव जगत्स्थितेः सद्भावात्, तथा द्वौ सूर्यौ तापितवन्तौ तापयतस्तापयिष्यतः, तथा एकैकस्य शशिनोऽष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि परिवारो जम्बूद्वीपे च द्वौ शशिनौ ततः षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि जम्बूद्वीपे चन्द्रसूर्याभ्यां सह योगं युक्तवन्ति युञ्जन्ति योक्ष्यन्ति वा, तथा एकैकस्य शशिनोऽष्टाशीतिर्ग्रहाः परिवारः ततः शशिद्वयसत्कग्रहमीलने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा:

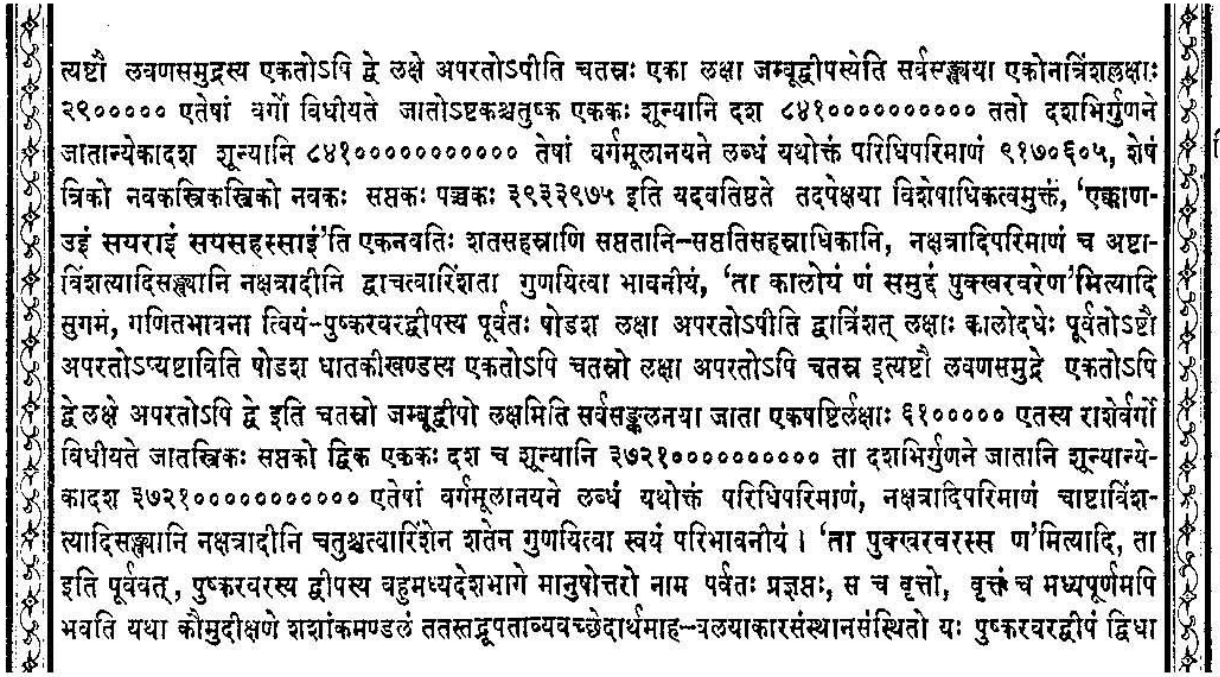
दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

सर्वसङ्ख्यया षट्सप्तत्यधिकं ग्रहशतं भवति, तत् जम्बूद्वीपे चारं चरितवत् चरति चरिष्यति च, तथा एकैकस्य शशिनस्तारापरिवारः कोटीकोटीनां षट्षष्टिः सहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि जम्बूद्वीपे च द्वौ शशिनौ तत एतत्ताराप्रमाणं द्वाभ्यां गुण्यते, तत एकं शतसहस्रं त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि पञ्चाशदधिकानि तारागणकोटिकोटीनां भवन्ति, एतावत्प्रमाणास्तारा जम्बूद्वीपे शोभितवत्यः शोभन्ते शोभिष्यन्ते । सम्प्रति विनेयजनानुग्रहाय यथोक्तजम्बूद्वीपगतचन्द्रादिसङ्ख्यासङ्ग्राहिके द्वे गाथे आह—'दो चंदा'इत्यादि, एते च द्वे अपि सुगमे, नवरं 'जंबुद्दीवे वियारी णं' तत्र णमिति वाक्यालङ्कारे, ततो वियारीति विभक्तिपरिणामेन चन्द्रादिभिः सह सामानाधिकरण्येन योजनीयमिति । 'ता जंबुद्दीवे ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, जम्बूद्वीपं द्वीपं णमितिवाक्यालङ्कारे लवणो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्–सर्वासु दिक्षु विदिक्षु चेत्यर्थः संपरिक्षिप्य–वेष्टयित्वा तिष्ठति, एवं उक्ते भगवान् गौतमः प्रश्नयति–'ता लवणे णं समुद्दे'इत्यादि सुगमं, भगवानाह–'ता समचक्कवाले'त्यादि सुगमं, पुनः प्रश्नयति–'ता लवणे ण'मित्यादि सुगमं, भगवानाह–'ता दो जोयणे'त्यादि, द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेन पञ्चदश योजनशतसहस्राणि एकाशीतिः सहस्राणि शतमेकोनचत्वारिंशदधिकं किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण, तथाहि–लवणसमुद्रे एकतोऽपि द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भोऽपरतोऽपि द्वे योजनशतसहस्रे मध्ये च जम्बूद्वीपो योजनशतसहस्रमिति सर्वसम्मीलने पञ्च लक्षा भवन्ति ५००००० एतेषां वर्गे जाताः पञ्चविंशतिर्दश च शून्यानि २५०००००००००० दशभिर्गुणने जातान्येकादश शून्यानि २५००००००००००० एतस्य राशेर्वर्गमूलानयने लब्धानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चदश लक्षाणि एकाशीतिः सहस्राणि शतमेकमष्टात्रिंशदधिकं १५८११३८, शेषमुद्धरति षड्विंशतिर्लक्षाश्चतुर्विंशतिः सहस्राणि नव शतानि षट्पञ्चाशदधिकानि छेदराशिरेकत्रिंशल्लक्षा द्वाषष्टिः सहस्राणि द्वे शते षट्सप्तत्यधिके $\frac{२६२४९५६}{३१६२२७६}$ एतदपेक्षया योजनमेकं किञ्चिदूनं लभ्यते, तत उक्तं–"सयं च ऊयालं किंचिविसेसूणं'मिति, 'ता लवणे णं समुद्दे' इत्यादि सुगमं, लवणसमुद्रे चत्वारः शशिन इत्यष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि चतुर्भिर्गुण्यन्ते, ततो द्वादशोत्तरं नक्षत्राणां शतं तत्र भवति, अष्टाशीतिश्च ग्रहाश्चतुर्भिर्गुण्यन्ते ततस्त्रीणि शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि तेषां भवन्ति, ताराकोटीकोटीनां षट्षष्टिः सहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि चतुर्भिर्गुण्यन्ते ततो यथोक्तं ताराप्रमाणं भवति, 'ता लवणं णं समुद्दे'मित्यादि सकलमपि सुगमं, नवरं परिधिगणितपरिभावना एवं कर्त्तव्या–जम्बूद्वीपस्य विष्कम्भे योजनलक्षं लवणस्योभयतो द्वे द्वे योजनलक्षे मिलिते इति ताश्चतस्रो लक्षाः धातकीखण्डस्योभयतश्चतस्रो २ लक्षा मिलिता अष्टौ सर्वसङ्ख्यया जातास्त्रयोदश लक्षाणि १३००००० ततोऽस्य राशेर्वर्गो जात एकः षट्को नवकः शून्यानि च दश १६९००००००००० भूयो दशभिर्गुणने जातान्येकादश शून्यानि १६९०००००००००० एतेषां वर्गमूलानयने लब्धानि एकचत्वारिंशच्छतसहस्राणि दश सहस्राणि नव शतानि एकषष्ट्यधिकानि ४११०९६१ नक्षत्रादिपरिमाणमष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यानि नक्षत्रादीनि द्वादशभिर्गुणयित्वा स्वयमानेतव्यं। 'ता धायइखंडण्ण'मित्यादि, एतदपि सकलं सुगमं, 'ता कालोए णं समुद्दे'इत्यादि, एतदपि सुगमं, नवरं परिक्षेपगणितभावना इयं–कालोदसमुद्रस्य एकतोऽपि चक्रवालतया विष्कम्भोऽष्टौ योजनलक्षा अपरतोऽपीति षोडश धातकीखण्डस्य एकतोऽपि चतस्रो लक्षा अपरतोऽपी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२७३॥

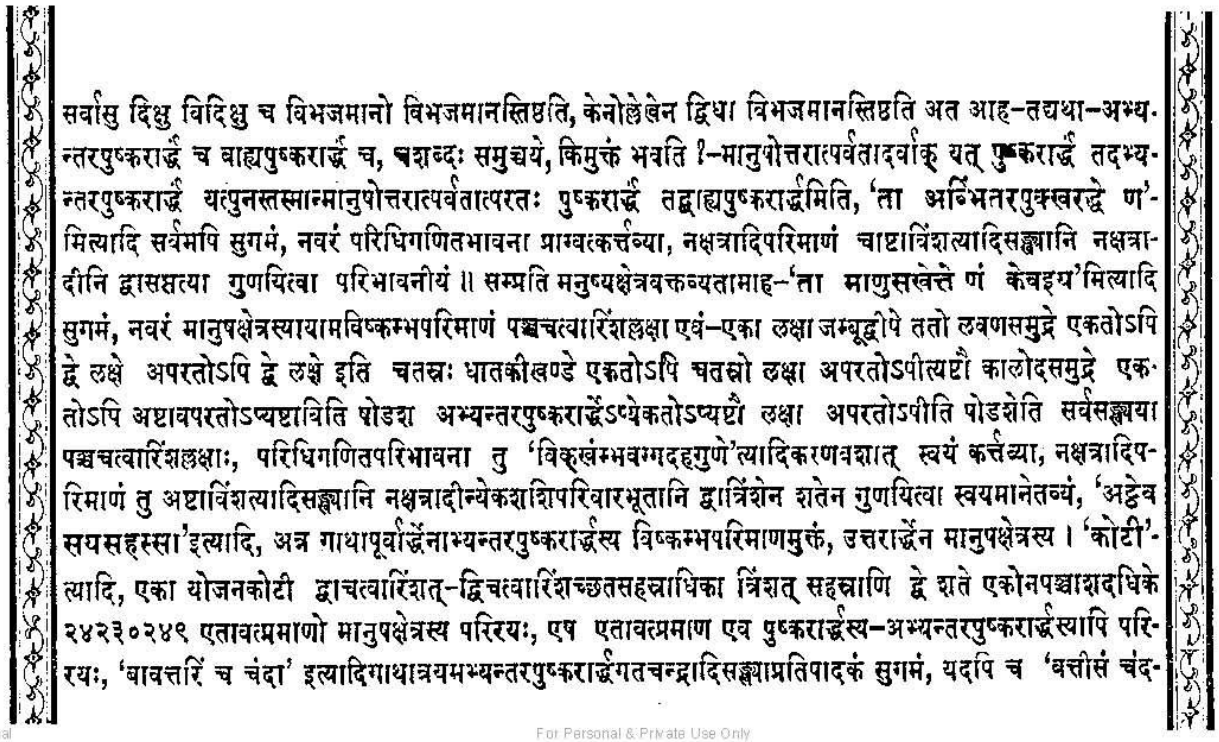
त्यष्टौ लवणसमुद्रस्य एकतोऽपि द्वे लक्षे अपरतोऽपीति चतस्रः एका लक्षा जम्बूद्वीपस्येति सर्वसङ्ख्यया एकोनत्रिंशल्लक्षाः २९००००० एतेषां वर्गो विधीयते जातोऽष्टकश्चतुष्क एककः शून्यानि दश ८४१०००००००००० ततो दशभिर्गुणने जातान्येकादश शून्यानि ८४१०००००००००० तेषां वर्गमूलानयने लब्धं यथोक्तं परिधिपरिमाणं ९१७०६०५, शेषं त्रिको नवकस्त्रिकस्त्रिको नवकः सप्तकः पञ्चकः ३९२३९७५ इति यदवतिष्ठते तदपेक्षया विशेषाधिकत्वमुक्तं, 'एक्काणउइं सयराइं सयसहस्साइं'ति एकनवतिः शतसहस्राणि सप्ततानि–सप्ततिसहस्राधिकानि, नक्षत्रादिपरिमाणं च अष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यानि नक्षत्रादीनि द्वाचत्वारिंशता गुणयित्वा भावनीयं, 'ता कालोयं णं समुद्दं पुक्खरवरेण'मित्यादि सुगमं, गणितभावना त्वियं–पुष्करवरद्वीपस्य पूर्वतः षोडश लक्षा अपरतोऽपीति द्वात्रिंशत् लक्षाः कालोदधेः पूर्वतोऽष्टौ अपरतोऽप्यष्टाविति षोडश धातकीखण्डस्य एकतोऽपि चतस्रो लक्षा अपरतोऽपि चतस्र इत्यष्टौ लवणसमुद्रे एकतोऽपि द्वे लक्षे अपरतोऽपि द्वे इति चतस्रो जम्बूद्वीपो लक्षमिति सर्वसङ्कलनया जाता एकषष्टिर्लक्षाः ६१००००० एतस्य राशेर्वर्गो विधीयते जातस्त्रिकः सप्तको द्विक एककः दश च शून्यानि ३७२१०००००००००० ता दशभिर्गुणने जातानि शून्यान्येकादश ३७२१००००००००००० एतेषां वर्गमूलानयने लब्धं यथोक्तं परिधिपरिमाणं, नक्षत्रादिपरिमाणं चाष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यानि नक्षत्रादीनि चतुश्चत्वारिंशेन शतेन गुणयित्वा स्वयं परिभावनीयं। 'ता पुक्खरवरस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, पुष्करवरस्य द्वीपस्य बहुमध्यदेशभागे मानुषोत्तरो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः, स च वृत्तो, वृत्तं च मध्यपूर्णमपि भवति यथा कौमुदीक्षणे शशांकमण्डलं ततस्तद्रूपताव्यवच्छेदार्थमाह–वलयाकारसंस्थानसंस्थितो यः पुष्करवरद्वीपं द्विधा

१९ प्राभृते चन्द्रसूर्यादिपरिमाणं सू १००

॥२७३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा: दीप अनुक्रम [१३३--१९६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च विभजमानो विभजमानस्तिष्ठति, केनोल्लेखेन द्विधा विभजमानस्तिष्ठति अत आह–तद्यथा–अभ्यन्तरपुष्करार्द्धं च बाह्यपुष्करार्द्धं च, चशब्दः समुच्चये, किमुक्तं भवति ?–मानुषोत्तरात्पर्वतादर्वाक् यत् पुष्करार्द्धं तदभ्यन्तरपुष्करार्द्धं यत्पुनस्तस्मान्मानुषोत्तरात्पर्वतात्परतः पुष्करार्द्धं तद्बाह्यपुष्करार्द्धमिति, 'ता अब्भिंतरपुक्खरद्धे ण'मित्यादि सर्वमपि सुगमं, नवरं परिधिगणितभावना प्राग्वत्कर्त्तव्या, नक्षत्रादिपरिमाणं चाष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यानि नक्षत्रादीनि द्वासप्तत्या गुणयित्वा परिभावनीयं ॥ सम्प्रति मनुष्यक्षेत्रवक्तव्यतामाह–'ता माणुसखेत्ते णं केवइयं'मित्यादि सुगमं, नवरं मानुषक्षेत्रस्यायामविष्कम्भपरिमाणं पञ्चचत्वारिंशल्लक्षा एवं–एका लक्षा जम्बूद्वीपे ततो लवणसमुद्रे एकतोऽपि द्वे लक्षे अपरतोऽपि द्वे लक्षे इति चतस्रः धातकीखण्डे एकतोऽपि चतस्रो लक्षा अपरतोऽपीत्यष्टौ कालोदसमुद्रे एकतोऽपि अष्टावपरतोऽप्यष्टाविति षोडश अभ्यन्तरपुष्करार्द्धेऽप्येकतोऽप्यष्टौ लक्षा अपरतोऽपीति षोडशेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चचत्वारिंशल्लक्षाः, परिधिगणितपरिभावना तु 'विक्खंभवग्गदहगुणे'त्यादिकरणवशात् स्वयं कर्त्तव्या, नक्षत्रादिपरिमाणं तु अष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यानि नक्षत्रादीन्येकशशिपरिवारभूतानि द्वात्रिंशेन शतेन गुणयित्वा स्वयमानेतव्यं, 'अट्ठेव सयसहस्सा'इत्यादि, अत्र गाथापूर्वार्द्धेनाभ्यन्तरपुष्करार्द्धस्य विष्कम्भपरिमाणमुक्तं, उत्तरार्द्धेन मानुषक्षेत्रस्य । 'कोटी'त्यादि, एका योजनकोटी द्वाचत्वारिंशत्–द्विचत्वारिंशच्छतसहस्राधिका त्रिंशत् सहस्राणि द्वे शते एकोनपञ्चाशदधिके २४२३०२४९ एतावत्प्रमाणो मानुषक्षेत्रस्य परिरयः, एष एतावत्प्रमाण एव पुष्करार्द्धस्य–अभ्यन्तरपुष्करार्द्धस्यापि परिरयः, 'बावत्तरिं च चंदा' इत्यादिगाथात्रयमभ्यन्तरपुष्करार्द्धगतचन्द्रादिसङ्ख्याप्रतिपादकं सुगमं, यदपि च 'बत्तीसं चंद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

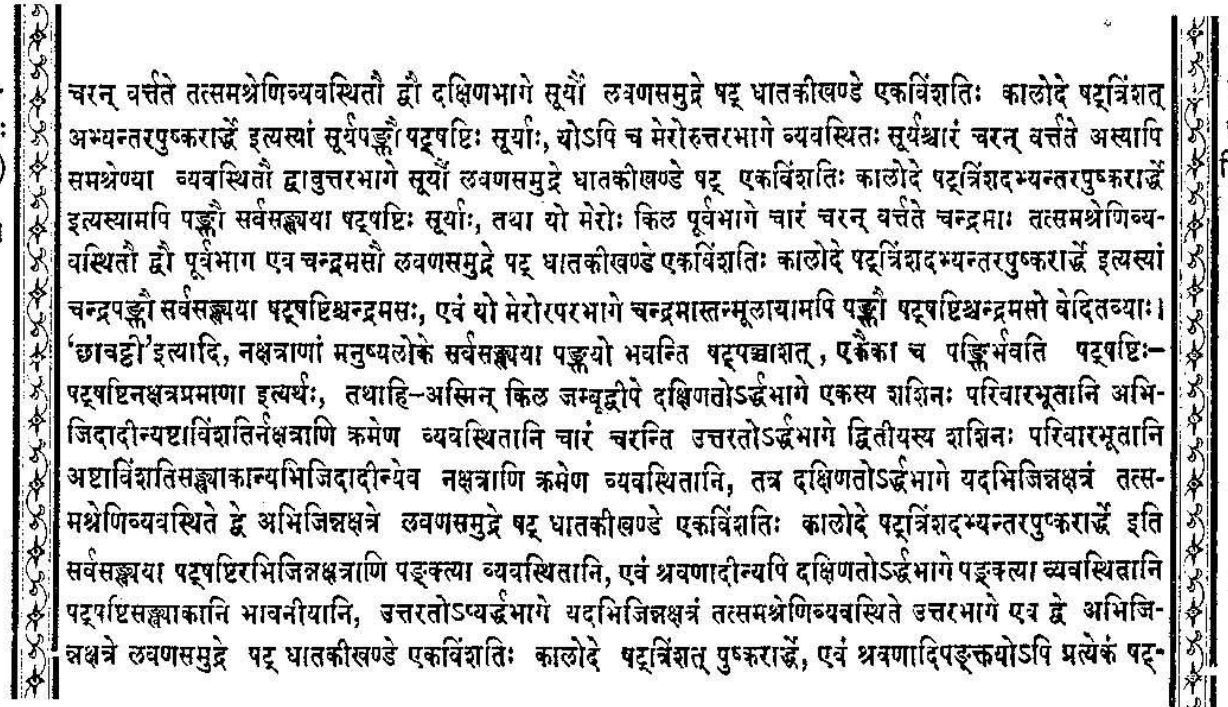
प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा: दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

सय'मित्यादि गाथात्रयं सकलमनुष्यलोकगतचन्द्रादिसङ्ख्याप्रतिपादकं तदपि सुगमं, 'अट्ठासीई चत्ता'इति अष्टाशीतिः शतसहस्राणि चत्वारिंशानि–चत्वारिंशत्सहस्राधिकानि शेषं गतार्थं, सम्प्रति सकलमनुष्यलोकगततारागणस्यैवोपसंहारमाह–'एसो'इत्यादि, एषः–अनन्तरगाथोक्तसङ्ख्याकस्तारापिण्डः सर्वसङ्ख्यया मनुष्यलोके आख्यात इति गम्यते, बहिः पुनर्मनुष्यलोकात् यास्तारास्ता जिनैः–सर्वज्ञैस्तीर्थकृद्भिर्भणिता असङ्ख्याताः, द्वीपसमुद्राणामसङ्ख्यातत्वात्, प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं च यथायोगं सङ्ख्येयानामसङ्ख्येयानां च तारागां सद्भावात्, 'एवइय'मित्यादि, एतावत्सङ्ख्याकं तारापरिमाणं यदनन्तरं भणितं मानुषे लोके तत् ज्योतिष्कं–ज्योतिष्कदेवविमानरूपं 'कदम्बपुष्पसंस्थितं'कदम्बपुष्पवत् अधः सङ्कुचितं उपरि विस्तीर्णमुत्तानीकृतार्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितमित्यर्थः चारं चरति चारं प्रतिपद्यते, तथाजगत्स्वाभाव्यात्, ताराग्रहणं चोपलक्षणं तेन सूर्यादयोऽपि यथोक्तसङ्ख्याका मनुष्यलोके तथाजगत्स्वाभाव्याच्चारं प्रतिपद्यन्ते इति द्रष्टव्यं। सम्प्रत्येतद्गतमेवोपसंहारमाह–'रवी'त्यादि, रविशशिग्रहनक्षत्राणि उपलक्षणमेतत् तारकाणि च एतावन्ति–एतावत्सङ्ख्यानि आख्यातानि सर्वज्ञैर्मनुष्यलोके, येषां किमित्याह–येषां सूर्यादीनां यथोक्तसङ्ख्याकानां सकलमनुष्यलोकभाविनां प्रत्येकं 'नामगोत्राणि'इहान्वर्थयुक्तं नाम सिद्धान्तपरिभाषया नामगोत्रमित्युच्यते, ततोऽयमर्थः–नामगोत्राणि–अन्वर्थयुक्तानि नामानि यदिवा नामानि च गोत्राणि च नामगोत्राणि प्राकृता–अनतिशयिनः पुरुषा न कदाचनापि प्रज्ञापयिष्यन्ति, केवलं यदा तदा वा सर्वज्ञा एव, तत इदमपि सूर्यादिसङ्ख्यानं प्राकृतपुरुषाप्रमेयं सर्वज्ञोपदिष्टमिति सम्यक् श्रद्धेयमिति। 'छावट्ठी पिडगाइं'इत्यादि, इह द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ चैकं पिटकमुच्यते, इत्थम्भूतानि च चन्द्रादित्यानां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिटकानि सर्वसङ्ख्यया मनुष्यलोके भवन्ति षट्षष्टिः–षट्षष्टिसङ्ख्याकानि। अथ किंप्रमाणं पिटकमिति पिटकप्रमाणमाह–एकैकस्मिन्नपि पिटके द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ भवतः, किमुक्तं भवति ?–द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यावित्येतावत्प्रमाणमेकैकं चन्द्रादित्यानां पिटकमिति, एवंप्रमाणं च पिटकं जम्बूद्वीपे, एकं जम्बूद्वीपे द्वयोरेव चन्द्रमसोर्द्वयोरेव च सूर्ययोर्भावात्, द्वे पिटके लवणसमुद्रे तत्र चतुर्णां चन्द्रमसां चतुर्णां च सूर्याणां भावात्, एवं षट् पिटकानि धातकीखण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इति भवन्ति सर्वमीलने चन्द्रादित्यानां षट्षष्टिः पिटकानि। 'छावट्ठी'त्यादि, सर्वस्मिन्नपि मनुष्यलोके सर्वसङ्ख्यया नक्षत्राणां पिटकानि भवन्ति षट्षष्टिः, नक्षत्रपिटकप्रमाणं च शशिद्वयसम्बन्धिनक्षत्रसङ्ख्यापरिमाणं, तथा चाह–एकैकस्मिन् पिटके नक्षत्राणि भवन्ति षट्पञ्चाशत्सङ्ख्यानि, किमुक्तं भवति ?–षट्पञ्चाशन्नक्षत्रसङ्ख्याकमेकैकं नक्षत्रपिटकं, अत्रापि षट्षष्टिसङ्ख्याभावना एवं–एकं नक्षत्रपिटकं जम्बूद्वीपे द्वे लवणसमुद्रे षट् धातकीखण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इति। 'छावट्ठी'त्यादि, महाग्रहाणामपि सर्वस्मिन् मनुष्यलोके सर्वसङ्ख्यया पिटकानि भवन्ति षट्षष्टिः, ग्रहपिटकप्रमाणं च शशिद्वयसम्बन्धिग्रहसङ्ख्यापरिमाणं, तथा चाह–एकैकस्मिन् ग्रहपिटके भवति षट्सप्तत्यधिकं ग्रहशतं, सप्तत्यधिकग्रहशतपरिमाणमेकैकं ग्रहपिटकमिति भावः, षट्षष्टिसङ्ख्याभावना च प्राग्वत्कर्त्तव्या। 'चत्तारि य' इत्यादि, इह मनुष्यलोके चन्द्रादित्यानां पङ्क्तयश्चतस्रो भवन्ति, तद्यथा–द्वे पङ्क्ती चन्द्राणां द्वे सूर्याणां, एकैका च पङ्क्तिर्भवति षट्षष्टिः–षट्षष्टिसूर्यादिसङ्ख्या, तद्भावना चैवं–एकः किल सूर्यो जम्बूद्वीपे मेरौ दक्षिणभागे चारं चरन् वर्त्तते एक उत्तरभागे एकश्चन्द्रमा मेरोः पूर्वभागे एकोऽपरभागे, तत्र यो मेरोर्दक्षिणभागे सूर्यश्चारं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२७५॥

चरन् वर्त्तते तत्समश्रेणिव्यवस्थितौ द्वौ दक्षिणभागे सूर्यौ लवणसमुद्रे षट् धातकीखण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशत् अभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इत्यस्यां सूर्यपङ्क्तौ षट्षष्टिः सूर्याः, योऽपि च मेरोरुत्तरभागे व्यवस्थितः सूर्यश्चारं चरन् वर्त्तते अस्यापि समश्रेण्या व्यवस्थितौ द्वावुत्तरभागे सूर्यौ लवणसमुद्रे धातकीखण्डे षट् एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इत्यस्यामपि पङ्क्तौ सर्वसङ्ख्यया षट्षष्टिः सूर्याः, तथा यो मेरोः किल पूर्वभागे चारं चरन् वर्त्तते चन्द्रमाः तत्समश्रेणिव्यवस्थितौ द्वौ पूर्वभाग एव चन्द्रमसौ लवणसमुद्रे षट् धातकीखण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इत्यस्यां चन्द्रपङ्क्तौ सर्वसङ्ख्यया षट्षष्टिश्चन्द्रमसः, एवं यो मेरोरपरभागे चन्द्रमास्तन्मूलायामपि पङ्क्तौ षट्षष्टिश्चन्द्रमसो वेदितव्याः। 'छावट्ठी' इत्यादि, नक्षत्राणां मनुष्यलोके सर्वसङ्ख्यया पङ्क्तयो भवन्ति षट्पञ्चाशत्, एकैका च पङ्क्तिर्भवति षट्षष्टिः-षट्षष्टिनक्षत्रप्रमाणा इत्यर्थः, तथाहि-अस्मिन् किल जम्बूद्वीपे दक्षिणतोऽर्द्धभागे एकस्य शशिनः परिवारभूतानि अभिजिदादीन्यष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि क्रमेण व्यवस्थितानि चारं चरन्ति उत्तरतोऽर्द्धभागे द्वितीयस्य शशिनः परिवारभूतानि अष्टाविंशतिसङ्ख्याकान्यभिजिदादीन्येव नक्षत्राणि क्रमेण व्यवस्थितानि, तत्र दक्षिणतोऽर्द्धभागे यदभिजिन्नक्षत्रं तत्समश्रेणिव्यवस्थिते द्वे अभिजिन्नक्षत्रे लवणसमुद्रे षट् धातकीखण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इति सर्वसङ्ख्यया षट्षष्टिरभिजिन्नक्षत्राणि पङ्क्त्या व्यवस्थितानि, एवं श्रवणादीन्यपि दक्षिणतोऽर्द्धभागे पङ्क्त्या व्यवस्थितानि षट्षष्टिसङ्ख्याकानि भावनीयानि, उत्तरतोऽप्यर्द्धभागे यदभिजिन्नक्षत्रं तत्समश्रेणिव्यवस्थिते उत्तरभागे एव द्वे अभिजिन्नक्षत्रे लवणसमुद्रे षट् धातकीखण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशत् पुष्करार्द्धे, एवं श्रवणादिपङ्क्तयोऽपि प्रत्येकं षट्-

१९ प्राभृते चन्द्रसूर्यादिपरिमाणं सू १००

॥२७५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षष्टिसङ्ख्याका वेदितव्या इति भवन्ति सर्वसङ्ख्यया षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणां पङ्क्तयः, एकैका च पङ्क्तिः षट्षष्टिसङ्ख्येति। 'छावट्ठी'त्यादि, ग्रहाणामङ्गारकप्रभृतीनां सर्वसङ्ख्यया मनुष्यलोके षट्सप्तत्यधिकं पङ्क्तिशतं एकैका च पङ्क्तिर्भवति षट्-षष्टिः–षट्षष्टिग्रहसङ्ख्या, अत्रापीयं भावना–इह जम्बूद्वीपे दक्षिणतोऽर्द्धभागे एकस्य शशिनः परिवारभूता अङ्गारकप्रभृ-तयोऽष्टाशीतिर्ग्रहाः, उत्तरतोऽर्द्धभागे द्वितीयस्य शशिनः परिवारभूता अङ्गारकप्रभृतय एवाष्टाशीतिः, तत्र दक्षिण-तोऽर्द्धभागे योऽङ्गारकनामा ग्रहस्तत्समश्रेणिव्यवस्थितौ दक्षिणभागे एव द्वावङ्गारकौ लवणसमुद्रे षट् धातकीखण्डे एक-विंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इति षट्षष्टिः एवं शेषा अपि सप्ताशीतिर्ग्रहाः षड्कृत्वा व्यवस्थिताः प्रत्येकं षट्षष्टिर्वेदितव्याः, एवमुत्तरतोऽप्यर्द्धभागे अङ्गारकप्रभृतीनामष्टाशीतेर्ग्रहाणां पङ्क्तयः प्रत्येकं षट्षष्टिसङ्ख्याका भावनीया इति भवति सर्वसङ्ख्यया ग्रहाणां षट्सप्तं पङ्क्तिशतमेकैका च पङ्क्तिः षट्षष्टिसङ्ख्याकेति। 'ते मेरुमणुचरंती'त्यादि, ते–मनुष्यलोकवर्त्तिनः सर्वे चन्द्राः सर्वे सूर्याः सर्वे च ग्रहगणा अनवस्थितैः–यथायोगमन्यैरन्यैर्नक्षत्रेण सह योगैरुपलक्षिताः 'पयाहिणावत्तमंडला' इति प्रकर्षेण–सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमतां चन्द्रादीनां दक्षिण एव मेरुर्भवति यस्मिन्नाव-र्त्तने–मण्डलपरिभ्रमणरूपे स प्रदक्षिणः प्रदक्षिण आवर्त्तो येषां मण्डलानां तानि तथा प्रदक्षिणावर्त्तानि मण्डलानि येषां ते तथा, मेरुमनुलक्षीकृत्य चरन्ति, एतेनैतदुक्तं भवति–सूर्योदयः समस्ता अपि मनुष्यलोकवर्त्तिनः प्रदक्षिणावर्त्तमण्डल-गत्या परिभ्रमन्तीति, इह चन्द्रादित्यग्रहाणां मण्डलानि अनवस्थितानि, यथायोगमन्यस्मिन् अन्यस्मिन् मण्डले तेषां सञ्चारित्वात्, नक्षत्रतारकाणां तु मण्डलान्यवस्थितान्येव, तथा चाह–'नक्खत्ते'त्यादि, नक्षत्राणां तारकाणां च मण्डला-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्यवस्थितानि ज्ञातव्यानि, किमुक्तं भवति ?–आकालं प्रतिनियतमेकैकं नक्षत्राणां तारकाणां च प्रत्येकं मण्डलमिति, न चैत्थमवस्थितमण्डलत्वोक्तावेवमाशङ्कनीयं यथैतेषां गतिरेव न भवतीति, यत आह–'तेऽविय'इत्यादि, तान्यपि–नक्षत्राणि तारकाणि च, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, प्रदक्षिणावर्त्तमेव, इदं क्रियाविशेषणं, मेरुमनुलक्षीकृत्य चरन्ति, एतच्च मेरुं लक्षीकृत्य प्रदक्षिणावर्त्तं तेषां चरणं प्रत्यक्षत एवोपलक्ष्यत इति संवादि। 'रयणियरे'त्यादि, रजनिकरदिनकराणां–चन्द्रादित्यानामूर्ध्वमधश्च सङ्क्रमो न भवति, तथाजगत्स्वाभाव्यात्, तिर्यक् पुनर्मण्डलेषु सङ्क्रमणं भवति, किंविशिष्टमित्याह–साभ्यन्तरबाह्यं–अभ्यन्तरं च बाह्यं च अभ्यन्तरबाह्यं सहाभ्यन्तरबाह्येन वर्त्तते इति साभ्यन्तरबाह्यं, एतदुक्तं भवति-सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतः तावन्मण्डलेषु सङ्क्रमणं यावत् सर्ववाह्यं मण्डलं सर्ववाह्याच्च मण्डलादर्वाक् तावन्मण्डलेषु सङ्क्रमणं यावत् सर्वाभ्यन्तरमिति। 'रयणियरे'त्यादि, रजनिकरदिनकराणां–चन्द्रादित्यानां नक्षत्राणां च महाग्रहाणां च चारविशेषेण–तेन तेन चारेण सुखदुःखविधयो मनुष्याणां भवन्ति, तथाहि–द्विविधानि सन्ति सदा मनुष्याणां कर्म्माणि, तद्यथा–शुभवेद्यानि अशुभवेद्यानि च, कर्म्मणां च सामान्यतो विपाकहेतवः पञ्च, तद्यथा–द्रव्यं क्षेत्रं कालो भावो भवश्च, उक्तं च–"उदयक्खयकुखओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया। दव्वं च खेत्तं कालं भवं च भावं च संपप्प ॥ १ ॥" शुभकर्म्मणां प्रायः शुभवेद्यानां च कर्म्मणां शुभद्रव्यक्षेत्रादिसामग्री विपाकहेतुरशुभवेद्यानामशुभद्रव्यक्षेत्रादिसामग्री, ततो यदा येषां जन्मनक्षत्रादिविरोधी चन्द्रसूर्यादीनां चारो भवति तदा तेषां प्रायो यान्यशुभवेद्यानि कर्म्माणि तानि तां तथाविधां विपाकसामग्रीमवाप्य विपाकमायान्ति, विपाकमागतानि च शरीररोगोत्पादनेन धनहानिकरणतो वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रियविप्रयोगजननेन वा कलहसंपादनतो वा दुःखमुत्पादयन्ति, यदा च येषां जन्मनक्षत्राद्यनुकूलः चन्द्रादीनां चारस्तदा तेषां प्रायो यानि शुभवेद्यानि कर्माणि तानि तां तथाविधां विपाकसामग्रीमधिगम्य विपाकं प्रतिपद्यन्ते, प्रपन्नविपाकानि च तानि शरीरनीरोगतासम्पादनतो धनवृद्धिकरणेन वा वैरोपशमनतः प्रियसम्प्रयोगसम्पादनतो वा यदिवा प्रारब्धाभीष्टप्रयोजननिष्पत्तिकरणतः सुखमुपजनयन्ति, अत एव महीयांसः परमविवेकिनोऽल्पमपि प्रयोजनं शुभतिथिनक्षत्रादावारभन्ते न तु यथाकथंचन, अत एव जिनानामप्याज्ञा प्रव्राजनादिकमधिकृत्येत्थमवर्त्तिष्ट यथा शुभक्षेत्रे शुभां दिशमभिमुखीकृत्य शुभे तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादौ प्रव्राजनव्रतारोपणादि कर्त्तव्यं, नान्यथा, तथा चोक्तं पञ्चवस्तुके—"एसा जिणाणमाणा खित्ताईया य कम्मुणो भणिया। उदयाइकारणं जं तम्हा सवत्थ जइयवं ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—एषा जिनानामाज्ञा शुभे क्षेत्रे शुभां दिशमभिमुखीकृत्य शुभे तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादौ प्रव्राजनव्रतारोपणादि कर्त्तव्यं, नान्यथा, अपिच–क्षेत्रादयोऽपि कर्मणामुदयादिकारणं भगवद्भिरुक्ताः, ततोऽशुभद्रव्यक्षेत्रादिसामग्रीं प्राप्य कदाचिदशुभवेद्यानि कर्म्माणि विपाकं गत्वोदयमासादयेयुः, तदुदये च गृहीतव्रतभङ्गादिदोषप्रसङ्गः, शुभद्रव्यक्षेत्रादिसामग्र्यां तु प्रायो नाशुभकर्म्मविपाकसम्भव इति निर्विघ्नं सामायिकपरिपालनादि, तस्मादवश्यं छद्मस्थेन सर्वत्र शुभक्षेत्रादौ यतितव्यं। ये तु भगवन्तोऽतिशयिनस्ते अतिशयबलादेव सविघ्नं निर्विघ्नं वा सम्यगधिगच्छन्ति ते न शुभतिथिमुहूर्त्तादिकमपेक्षन्ते इति न तन्मार्गानुसरणं छद्मस्थानां न्याय्यं, तेन ये परममुनिपर्युपासितप्रवचनविडम्बका अपरिमलितजिनशासनोपनिषद्भूतशास्त्रा गुरुपरम्परायातनिरवद्यविशदकालोचितसामाचारीप्रतिपन्थिनः स्वमतिकल्पितसामाचारीका अभिदधति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथा—न प्रव्राजनादिषु शुभतिथिनक्षत्रादिनिरीक्षणं कर्त्तव्यं, न खलु भगवान् जगत्स्वामी प्रव्राजनायोपस्थितेषु शुभतिथ्यादिनिरीक्षणं कृतवानिति ते अपास्ता द्रष्टव्याः । 'तेसि'मित्यादि, तेषां—सूर्यचन्द्रमसां सर्ववाह्यात् मण्डलादभ्यन्तरं प्रविशतां तापक्षेत्रं प्रतिदिवसं क्रमेण नियमादायामतो वर्द्धते, येन च क्रमेण परिवर्द्धते तेनैव क्रमेण सर्वाभ्यतरान्मण्डलाद् बहिः निष्क्रमतां परिहीयते, तथाहि—सर्ववाह्ये मण्डले चारं चरतां सूर्याचन्द्रमसां प्रत्येकं जम्बूद्वीपचक्रवालस्य दशधाप्रविभक्तस्य द्वौ द्वौ भागौ तापक्षेत्रं, ततः सूर्यस्याभ्यन्तरं प्रविशतः प्रतिमण्डलं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतप्रविभक्तस्य द्वौ द्वौ भागौ तापक्षेत्रस्य वर्द्धेते, चन्द्रमसस्तु मण्डलेषु प्रत्येकं पौर्णमासीसम्भवे क्रमेण प्रतिमण्डलं षड्विंशतिः षड्विंशतिर्भागाः सप्तविंशतितमस्य च एकः सप्तभाग इति वर्द्धते, एवं च क्रमेण प्रतिमण्डलमभिवृद्धौ यदा सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरतः तदा प्रत्येकं जम्बूद्वीपचक्रवालस्य त्रयः परिपूर्णा दशभागास्तापक्षेत्रं, ततः पुनरपि सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्बहिर्निष्क्रमणे सूर्यस्य प्रतिमण्डलं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतप्रविभक्तस्य जम्बूद्वीपचक्रवालस्य द्वौ द्वौ भागौ परिहीयेते, चन्द्रमसस्तु मण्डलेषु प्रत्येकं पौर्णमासीसम्भवे क्रमेण प्रतिमण्डलं षड्विंशतिर्भागाः सप्तविंशतितमस्य च भागस्य एकः सप्तभाग इति । 'तेसि'मित्यादि, तेषां चन्द्रसूर्यादीनां तापक्षेत्रपथाः कलम्बुकापुष्पसंस्थिता—नालिकापुष्पाकारा भवन्ति, एतदेव व्याचष्टे—अन्तः—मेरुदिशि सङ्कुचिता, बहिः—लवणदिशि विस्तृता, एतच्च प्रागेव चतुर्थे प्राभृते भावितमिति न भूयो भाव्यते ॥ सम्प्रति चन्द्रमसमधिकृत्य गौतमः प्रश्नयति—

केणं वड्ढति चंदो ? परिहाणी केण हुंति चंदस्स ? । कालो वा जोण्हो वा केणऽणुभावेण चंदस्स ? ॥ २४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किण्हं राहुविमाणं णिचं चंदेण होइ अविरहितं। चतुरंगुलमसंपत्तं हिचा चंदस्स तं चरति ॥ २५ ॥ बावट्ठिं २ दिवसे २ तु सुक्कपक्खस्स। जं परिवहति चंदो खवेइ तं चेव कालेणं ॥ २६ ॥ पण्णरसइभागेण य चंदं पण्णरसमेव तं वरति। पण्णरसतिभागेण य पुणोवि तं चेव वक्कमति ॥ २७ ॥ एवं वहति चंदो परिहाणी एव होइ चंदस्स। कालो वा जुण्हो वा एवऽणुभावेण चंदस्स ॥ २८ ॥ अंतो मणुस्सखेत्ते हवंति चारोवगा तु उववण्णा। पंचविहा जोतिसिया चंदा सूरा गहगणा य ॥ २९ ॥ तेण परं जे सेसा चंदादिचगहतारणक्खत्ता। णत्थि गती णवि चारो अवट्ठिता ते मुणेयव्वा ॥ ३० ॥ एवं जंबुद्दीवे दुगुणा लवणे चउग्गुणा हुंति। लावणगा य तिगुणिता ससिसूरा धायइसंडे ॥ ३१ ॥ दो चंदा इह दीवे चत्तारि य सायरे लवणतोए। धायइसंडे दीवे बारस चंदा य सूरा य ॥ ३२ ॥ धातइसंडप्पभितिसु उद्दिट्ठा तिगुणिता भवे चंदा। आदिल्लचंदसहिता अणंतराणंतरे खेत्ते ॥ ३३ ॥ रिक्खग्गहतारग्गं दीवसमुद्दे जहिच्छसी णाउं। तस्ससीहिं तग्गुणितं रिक्खग्गहतारगग्गं तु ॥ ३४ ॥ बहिता तु माणुसनगस्स चंदसूराणऽवट्ठिता जोण्हा। चंदा अभीयीजुत्ता सूरा पुण हुंति पुस्सेहिं ॥ ३५ ॥ चंदातो सूरस्स य सूरा चंदस्स अंतरं होइ। पण्णाससहस्साइं तु जोयणाणं अणूणाइं ॥ ३६ ॥ सूरस्स य २ ससिणो २ य अंतरं होइ। बाहिं तु माणुसनगस्स जोयणाणं सतसहस्सं ॥ ३७ ॥ सूरंतरिया चंदा चंदंतरिया य दिणयरा दित्ता। चित्तंतरलेसागा सुहलेसा मंदलेसा य ॥ ३८ ॥ अट्ठासीतिं च गहा अट्ठावीसं च हुंति नक्खत्ता। एगससीपरिवारो एत्तो ताराण वोच्छामि ॥ ३९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२७८॥

छावट्ठिसहस्साइं णव चेव सताइं पंचसतराइं । एगससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं ॥ ४० ॥ अंतो मणुस्सखेत्ते जे चंदिमसूरिया गहगणणक्खत्ततारारूवा ते णं देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितीया गतिरतिया गतिसमावण्णगा ?, ता ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा नो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा नो चारट्ठितीया गइरइया गतिसमावण्णगा उड्ढामुहकलंबुअपुप्फसंठाणसंठितेहिं जोअणसाहस्सिएहिं तावक्खेत्तेहिं साहस्सिएहिं बाहिराहि य वेउव्वियाहिं परिसाहिं महताहतणट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं महता उक्कट्ठिसीहणादकलकलरवेणं अच्छं पव्वतरायं पदाहिणावत्तमंडलचारं मेरुं अणुपरियट्टंति, ता तेसि णं देवाणं जाधे इंदे चयति से कथमिदाणिं पकरेंति ?, ता चत्तारि पंच सामाणियदेवा तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव अण्णे इत्थ इंदे उववण्णे भवति, ता इंदठाणे णं केवइएणं कालेणं विरहियं पन्नत्तं ?, ता जहण्णेण इक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासे, ता बहिता णं माणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगह जाव तारारूवा ते णं देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारट्ठितीया गतिरतीया गतिसमावण्णगा ?, ता ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा नो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा णो चारोववण्णगा चारठितीया नो गइरइया णो गतिसमावण्णगा पक्किट्ठगसंठाणसंठितेहिं जोयणसयसाहस्सिएहिं तावक्खेत्तेहिं सयसाहस्सियाहिं बाहिराहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महताहतनट्टगीयवाइयजावरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरति, ॥२७८॥

१९ प्राभृते चन्द्रवृद्ध्यादि चन्द्रादीनामूर्ध्वोत्पत्त्वादि सू १००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा:

दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

सुहलेसा मंदलेसा मंदायवलेसा चित्तंतरलेसा अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं कूडा इव ठाणठिता ते पदेसे सव्वतो समंता ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति, ता तेसि णं देवाणं जाहे इंदे चयति से कहमिदाणिं पकरेंति ?, ता जाव चत्तारि पंच सामाणियदेवा तं ठाणं तहेव जाव छम्मासे (सूत्रं १००) ॥

'केण'मित्यादि, केन कारणेन शुक्लपक्षे चन्द्रो वर्द्धते ?, केन वा कारणेन चन्द्रस्य कृष्णपक्षे परिहानिर्भवति, केन वा अनुभावेन—प्रभावेन चन्द्रस्य एकः पक्षः कृष्णो भवति एको ज्योत्स्नः–शुक्ल इति ?, एवमुक्ते भगवानाह—'किण्ह'मित्यादि, इह द्विविधो राहुस्तद्यथा–पर्वराहुः नित्यराहुश्च, तत्र पर्वराहुः स उच्यते यः कदाचिदकस्मात्समागत्य निजविमानेन चन्द्रविमानं सूर्यविमानं च अन्तरितं करोति, अन्तरिते च कृते लोके ग्रहणमिति प्रसिद्धिः, स इह न गृह्यते, यस्तु नित्यराहुस्तस्य विमानं कृष्णं, तच्च तथाजगत्स्वाभाव्यात् चन्द्रेण सह नित्यं–सर्वकालमविरहितं तथा चतुरङ्गुलेन–चतुर्भिरङ्गुलैरप्राप्तं सत् चन्द्रविमानस्याधस्ताच्चरति, तच्चैवं चरत् शुक्लपक्षे शनैः शनैः प्रकटीकरोति चन्द्रमसं कृष्णपक्षे च शनैः शनैरावृणोति, तथा चाह—'बावट्ठि'मित्यादि, इह द्वाषष्टिभागीकृतस्य चन्द्रविमानस्य द्वौ भागावुपरितनावपाकृत्य शेषस्य पञ्चदशभिर्भागे हृते ये चत्वारो भागा लभ्यन्ते ते द्वाषष्टिशब्देनोच्यन्ते, 'अवयवे समुदायोपचारात्', एतच्च व्याख्यानं जीवाभिगमचूर्ण्यादिदर्शनतः कृतं, न पुनः स्वमनीषिकया, तथा चास्या एव गाथाया व्याख्याने जीवाभिगमचूर्णिः—"चन्द्रविमानं द्वाषष्टिभागीक्रियते, ततः पञ्चदशभिर्भागो ह्रियते, तत्र चत्वारो भागा द्वाषष्टिभागानां पञ्चदशभागेन लभ्यन्ते, शेषौ द्वौ भागौ, एतावद् दिने दिने शुक्लपक्षस्य राहुणा मुच्यते"इत्यादि, एवं च सति यत् समवा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२७९॥

याङ्गसूत्रं—'सुक्कपक्खस्स दिवसे २ चंदो बावट्ठिं भागे परिवड्ढइ'त्ति तदप्येवमेव व्याख्येयं, सम्प्रदायवशाद्धि सूत्रं व्याख्येयं, न स्वमनीषिकया, सम्प्रदायश्च यथोक्तस्वरूप इति, तत्र शुक्लपक्षस्य दिवसे यत्–यस्मात्कारणात् चन्द्रो द्वाषष्टिं २ भागान्–द्वाषष्टिभागसत्कान् चतुरश्चतुरो भागान् यावत्परिवर्द्धते, 'कालेन' कृष्णपक्षेन पुनर्दिवसे दिवसे तानेव द्वाषष्टिभागसत्कान् चतुरश्चतुरो भागान् क्षपयति–परिहापयति। एतदेव व्याचष्टे–'पन्नरस'इत्यादि, कृष्णपक्षे प्रतिदिवसं राहुविमानं स्वकीयेन पञ्चदशेन भागेन चन्द्रविमानं पञ्चदशमेव भागं वृणोति–आच्छादयति, शुक्लपक्षे तु पुनस्तमेव प्रतिदिवसं पञ्चदशभागं आत्मीयेन पञ्चदशभागेन व्यतिक्रामति–मुञ्चति, किमुक्तं भवति ?–कृष्णपक्षे प्रतिपद आरभ्यात्मीयेन पञ्चदशेन भागेन प्रतिदिवसमेकैकं पञ्चदशभागमुपरितनभागादारभ्यावृणोति, शुक्लपक्षे तु प्रतिपद आरभ्य तेनैव क्रमेण प्रतिदिवसमेकैकं पञ्चदशभागं प्रकटीकरोति, तेन जगति चन्द्रमण्डलवृद्धिहानी प्रतिभासेते, स्वरूपतः पुनश्चन्द्रमण्डलमवस्थितमेव। तथा चाह—'एवं वड्ढइ'इत्यादि, एवं–राहुविमानेन प्रतिदिवसं क्रमेणानावरणकरणतो वर्द्धते–वर्द्धमानः प्रतिभासते चन्द्रः, एवं–राहुविमानेन प्रतिदिवसं क्रमेणावरणकरणतः प्रतिहानिः–प्रतिहानिप्रतिभासो भवति चन्द्रस्य विषये, एतेनैवानुभावेन–कारणेन एकः पक्षः कालः–कृष्णो भवति, यत्र चन्द्रस्य परिहानिः प्रतिभासते, एकस्तु ज्योत्स्नः—शुक्लो यत्र चन्द्रविषयो वृद्धिप्रतिभासः। 'अंतो'इत्यादि, अन्तः–मध्ये मनुष्यक्षेत्रे—मनुष्यस्य क्षेत्रस्य पञ्चविधा ज्योतिष्काः, तद्यथा—चन्द्राः सूर्या ग्रहगणाश्चशब्दान्नक्षत्राणि तारकाश्च भवन्ति, चारोपगाः–चारयुक्ताः, 'तेण पर'मित्यादि, तेनेति प्राकृतत्वात् पञ्चम्यर्थे तृतीया, ततो–मनुष्यक्षेत्रात् परं यानि शेषाणि चन्द्रादित्यग्र-

१९ प्राभृते चन्द्रवृद्ध्यादि चन्द्रादीनामूर्ध्वोत्पन्नत्वादि सू १००

॥२७९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हतारानक्षत्राणि–चन्द्रादित्यग्रहतारानक्षत्रविमानानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, तेषां नास्ति गतिः–न स्वस्मात् स्थानाच्चलनं नापि चारो–मण्डलगत्या परिभ्रमणं किन्त्ववस्थितान्येव तानि ज्ञातव्यानि। 'एवं जंबुद्दीवे'इत्यादि, एवं सति एकैकौ चन्द्रसूर्यौ जम्बूद्वीपे द्विगुणौ भवतः, किमुक्तं भवति ?–द्वौ चन्द्रमसौ द्वौ सूर्यौ जम्बूद्वीपे, लवणसमुद्रे तावेकौ सूर्याचन्द्रमसौ चतुर्गुणौ भवतः, चत्वारश्चन्द्राश्चत्वारश्च सूर्या लवणसमुद्रे भवन्तीति भावः, लावणिका–लवणसमुद्रभवा शशिसूराख्त्रिगुणिता धातकीखण्डे भवन्ति, द्वादश चन्द्रा द्वादश सूर्या धातकीखण्डे भवन्तीत्यर्थः। 'दो चंदा'इत्यादि सुगमं,। 'धायइसंडे'इत्यादि, धातकीखण्डः प्रभृतिः–आदिर्येषां ते धातकीखण्डप्रभृतयस्तेषु धातकीखण्डप्रभृतिषु द्वीपेषु समुद्रेषु च य उद्दिष्टाश्चन्द्रा द्वादशादय उपलक्षणमेतत् सूर्या वा ते त्रिगुणिताः–त्रिगुणीकृताः सन्तः 'आइल्लचंदसहिय'त्ति उद्दिष्टचन्द्रयुक्तात् द्वीपात् समुद्राद्वा प्राक् जम्बूद्वीपमादिं कृत्वा ये प्राक्तनाश्चन्द्रास्ते आदिमचन्द्रास्तैरादिमचन्द्रैरुपलक्षणमेतदादिमसूर्यैश्च सहिता यावन्तो भवन्ति एतावत्प्रमाणा अनन्तरे–कालोदादौ भवन्ति, तत्र धातकीखण्डे द्वीपे उद्दिष्टाश्चन्द्रा द्वादश ते त्रिगुणाः क्रियन्ते जाताः षट्त्रिंशत्, आदिमचन्द्राः षट्, तद्यथा—द्वौ चन्द्रौ जम्बूद्वीपे चत्वारो लवणसमुद्रे, एतैरादिमैश्चन्द्रैः सहिता द्वाचत्वारिंशद् भवन्ति, एतावन्तः कालोदे समुद्रे चन्द्राः, एष एव करणविधिः सूर्याणामपि, तेन सूर्या अपि तत्रैतावन्तो वेदितव्याः, तथा कालोदसमुद्रे द्विचत्वारिंशच्चन्द्रमस उद्दिष्टास्ते त्रिगुणाः क्रियन्ते, जातं षट्विंशं शतं, आदिमचन्द्रा अष्टादश, तद्यथा—द्वौ जम्बूद्वीपे चत्वारो लवणसमुद्रे द्वादश धातकीखण्डे एतैरादिमचन्द्रैः सहितं षट्विंशं शतं जातं चतुश्चत्वारिंशं शतं, एतावन्तः पुष्करवरद्वीपे चन्द्रा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा: दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

एतावन्त एव सूर्याः, एवं सर्वेष्वपि द्वीपसमुद्रेषु एतत्करणवशाच्चन्द्रसङ्ख्या प्रतिपत्तव्या। सम्प्रति प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं च ग्रहनक्षत्रतारापरिमाणपरिज्ञानोपायमाह—'रिक्खग्गहतारग्ग'मित्यादि, अत्राग्रशब्दः परिणामवाची यत्र द्वीपे समुद्रे वा नक्षत्रपरिमाणं ग्रहपरिमाणं तारापरिमाणं वा ज्ञातुमिच्छसि तस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा सम्बन्धिभिः शशिभिरेकस्य शशिनः परिवारभूतं नक्षत्रपरिमाणं ग्रहपरिमाणं तारापरिमाणं च गुणितं सत् यावद् भवति तावत्प्रमाणं तत्र द्वीपे समुद्रे वा नक्षत्रपरिमाणं ग्रहपरिमाणं तारापरिमाणमिति, यथा—लवणसमुद्रे किल नक्षत्रादिपरिमाणं ज्ञातुमिष्टं लवणसमुद्रे च शशिनश्चत्वारस्तत एकस्य शशिनः परिवारभूतानि यान्यष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि तानि चतुर्भिर्गुण्यन्ते जातं द्वादशोत्तरं शतं एतावन्ति लवणसमुद्रे नक्षत्राणि, तथा अष्टाशीतिर्ग्रहा एकस्य शशिनः परिवारभूतास्ते चतुर्भिर्गुण्यन्ते जातानि त्रीणि शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ३५२ एतावन्तो लवणसमुद्रे ग्रहाः, तथा एकस्य शशिनः परिवारभूतानि तारागणकोटीकोटीनां षट्षष्टिः सहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि तानि चतुर्भिर्गुण्यन्ते जातानि कोटिकोटीनां द्वे लक्षे सप्तषष्टिः सहस्राणि नव शतानि २६७९०००००००००००००००० एतावत्यो लवणसमुद्रे तारागणकोटीकोटयः, एवंरूपा च नक्षत्रादीनां सङ्ख्या प्रागेवोक्ता, एवं सर्वेष्वपि द्वीपसमुद्रेषु नक्षत्रादिसङ्ख्यापरिमाणं परिभावनीयं। 'बहिया'इत्यादि, मानुषनगस्य—मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य बहिश्चन्द्रसूर्याणां तेजांसि अवस्थितानि भवन्ति, किमुक्तं भवति ?—सूर्याः सदैवानत्युष्णतेजसो नतु जातुचिदपि मनुष्यलोके ग्रीष्मकाल इवात्युष्णतेजसः, चन्द्रमसोऽपि सर्वदैवानतिशीतलेश्याका नतु कदाचनाप्यन्तर्मनुष्यक्षेत्रस्य शिशिरकाल इवातिशीततेजसः, तथा मनुष्यक्षेत्राद्बहिः सर्वेऽपि चन्द्राः सर्वदैवाभिजिता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नक्षत्रेण युक्ताः सूर्याः पुनर्भवन्ति पुष्यैर्युक्ता इति। 'चंदाओ'इत्यादि, मनुष्यक्षेत्राद्बहिश्चन्द्रात् सूर्यस्य सूर्याच्च चन्द्रस्यान्तरं भवति अन्यूनानि-परिपूर्णानि योजनानां पञ्चाशत्सहस्राणि। तदेवं सूर्यस्य चन्द्रस्य च परस्परमन्तरमुक्तं, सम्प्रति चन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्य सूर्यस्य च परस्परमन्तरमाह—'सूरस्स य सूरस्स य'इत्यादि, मानुषनगस्य-मानुषोत्तरपर्वतस्य बहिः सूर्यस्य२ परस्परं चन्द्रस्य २ च परस्परमन्तरं भवति योजनानां शतसहस्रं-लक्षं, तथाहि—चन्द्रान्तरिताः सूर्याः सूर्यान्तरिताश्चन्द्राः व्यवस्थिताः चन्द्रसूर्याणां च परस्परमन्तरं पञ्चाशत् योजनसहस्राणि ५००००, ततश्चन्द्रस्य सूर्यस्य च परस्परमन्तरं योजनानां लक्षं भवतीति। सम्प्रति बहिश्चन्द्रसूर्याणां पङ्क्ताववस्थानमाह—'सूरंतरिया'इत्यादि, नृलोकाद्बहिः पङ्क्त्या स्थिताः सूर्यान्तरिताश्चन्द्राश्चन्द्रान्तरिता दिनकरा दीप्ता-दीप्यन्ते स्म दीप्ता भास्क(स्व)रा इत्यर्थः, कथंभूतास्ते चन्द्रसूर्या इत्याह—'चित्रान्तरलेश्याकाः' चित्रमन्तरं लेश्या च-प्रकाशरूपा येषां ते तथा, तत्र चित्रमन्तरं चन्द्राणां सूर्यान्तरितत्वात् सूर्याणां च चन्द्रान्तरितत्वात्, चित्रलेश्या चन्द्रमसां शीतरश्मित्वात् सूर्याणामुष्णरश्मित्वात्। लेश्याविशेषप्रदर्शनार्थमेवाह—'सुहलेसा मंदलेसा य' सुखलेश्याश्चन्द्रमसो न शीतकाले मनुष्यलोक इवात्यन्तशीतरश्मय इत्यर्थः, मन्दलेश्याः सूर्याः न तु मनुष्यलोके निदाघसमये इव एकान्तोष्णरश्मय इत्यर्थः, आह च तत्त्वार्थटीकाकारो हरिभद्रसूरिः—"नात्यन्तशीताश्चन्द्रमसो नाप्यत्यन्तोष्णाः सूर्याः, किन्तु साधारणा द्वयोरपी"ति। इहेदमुक्तं-यत्र द्वीपे समुद्रे वा नक्षत्रादिपरिमाणं ज्ञातुमिष्यते तत्र एकशशिपरिवारभूतं नक्षत्रादिपरिमाणं तावद्भिः शशिभिर्गुणयितव्यमिति, तत एकशशिपरिवारभूतानां ग्रहादीनां सङ्ख्यामाह—'अट्ठासीई गहा'इत्यादि, गाथाद्वयं निगदसिद्धं। 'अंतो माणुसखेत्ते'इ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

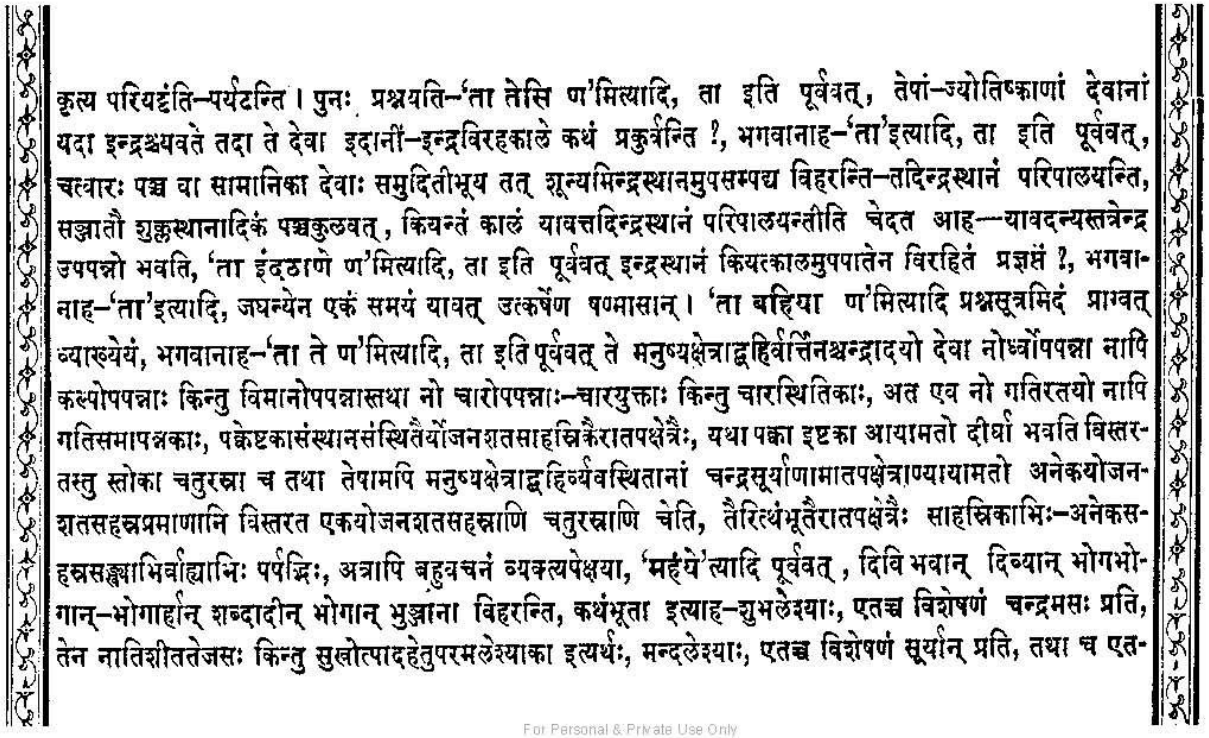
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा: दीप अनुक्रम [१३३--१९६]

त्यादि, अन्तर्मनुष्यक्षेत्रस्य ये चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपा देवास्ते किं ऊर्ध्वोपपन्नाः–सौधर्मादिभ्यो द्वादशभ्यः कल्पेभ्य ऊर्ध्वमुपपन्ना ऊर्ध्वोपपन्नाः कल्पेषु–सौधर्मादिषु उपपन्नाः कल्पोपपन्नाः विमानेषु–सामान्येषूपपन्ना विमानोपपन्नाः चारो–मण्डलगत्या परिभ्रमणं तमुपपन्ना–आश्रिताश्चारोपपन्नाः चारस्य–यथोक्तरूपस्य स्थितिः–अभावो येषां ते चारस्थितिका अपगतचारा इत्यर्थः, गतौ रतिः–आसक्तिः प्रीतिर्येषां ते गतिरतिकाः, एतेन गतौ रतिमात्रमुक्तं, सम्प्रति साक्षाद् गतिं प्रश्नयति–'गतिसमापन्ना' गतियुक्ताः, एवं प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता ते णं देवा'इत्यादि, ता इति पूर्ववत् ते चन्द्रादयो देवा नोर्ध्वोपपन्नाः नापि कल्पोपपन्नाः किन्तु विमानोपपन्नाः चारोपपन्नाः–चारसहिता नो चारस्थितिकाः, तथा स्वभावतोऽपि गतिरतिकाः साक्षाद् गतियुक्ताश्च, ऊर्ध्वमुखीकृतकलम्बुकापुष्पसंस्थानसंस्थितैर्योजनसाहस्रिकैः–अनेकयोजनसहस्रप्रमाणैस्तापक्षेत्रैः साहस्रिकाभिः–अनेकसहस्रसङ्ख्याभिर्बाह्याभिः पर्षद्भिः, अत्र बहुवचनं व्यक्त्यपेक्षया, वैकुर्विकाभिः–विकुर्वितनानारूपधारिणीभिः, महता रवेणेति योगः अहतानि–अक्षतानि अनघानीत्यर्थः यानि नाट्यानि गीतानि वादित्राणि च याश्च तन्त्र्यो–वीणा ये च तलताला–हस्ततालाः यानि च त्रुटितानि–शेषाणि तूर्याणि ये च घना–घनाकाराध्वनिसाधर्म्यात् पटुप्रवादिता–निपुणपुरुषप्रवादिता मृदङ्गास्तेषां रवेण तथा स्वभावतो गतिरतिकैर्वाह्यपर्षदन्तर्गतैर्देवैर्वेगेन गच्छत्सु विमानेषु उत्कृष्टितः–उत्कर्षवशेन ये मुच्यन्ते सिंहनादा यश्च क्रियते बोलो, बोलो नाम मुखे हस्तं दत्त्वा महता शब्देन पूत्करणं, यश्च कलकलो–व्याकुलः शब्दसमूहस्तद्रवेण, मेरुमिति योगः, किंविशिष्टमित्याह–अच्छं–अतीव स्वच्छमतिनिर्मलजाम्बूनदरत्नबहुलत्वात् पर्वतराजं–पर्वतेन्द्रं प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलचारं यथा भवति तथा मेरुमनुलक्षी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

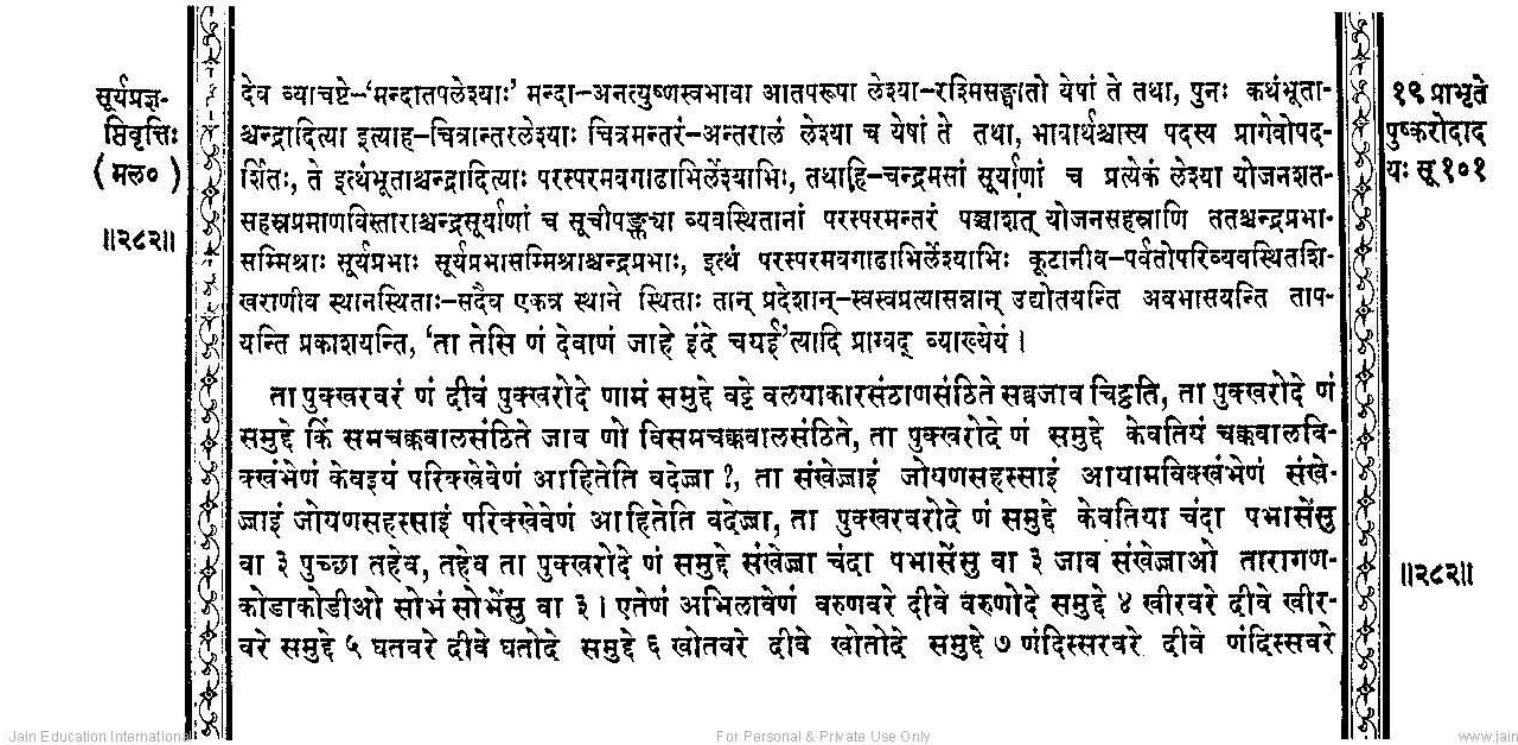
प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा: दीप अनुक्रम [१३३--१९६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



कृत्य परियट्टंति–पर्यटन्ति । पुनः प्रश्नयति–'ता तेसि ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, तेषां–ज्योतिष्काणां देवानां यदा इन्द्रश्च्यवते तदा ते देवा इदानीं–इन्द्रविरहकाले कथं प्रकुर्वन्ति ?, भगवानाह–'ता'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, चत्वारः पञ्च वा सामानिका देवाः समुदितीभूय तत् शून्यमिन्द्रस्थानमुपसम्पद्य विहरन्ति–तदिन्द्रस्थानं परिपालयन्ति, सञ्जातौ शुक्रस्थानादिकं पञ्चकुलवत्, कियन्तं कालं यावत्तदिन्द्रस्थानं परिपालयन्तीति चेदत आह—यावदन्यस्तत्रेन्द्र उपपन्नो भवति, 'ता इंदट्ठाणे ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् इन्द्रस्थानं कियत्कालमुपपातेन विरहितं प्रज्ञप्तं ?, भगवानाह–'ता'इत्यादि, जघन्येन एकं समयं यावत् उत्कर्षेण षण्मासान् । 'ता बहिया ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रमिदं प्राग्वत् व्याख्येयं, भगवानाह–'ता ते ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् ते मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्वर्त्तिनश्चन्द्रादयो देवा नोर्ध्वोपपन्ना नापि कल्पोपपन्नाः किन्तु विमानोपपन्नास्तथा नो चारोपपन्नाः–चारयुक्ताः किन्तु चारस्थितिकाः, अत एव नो गतिरतयो नापि गतिसमापन्नकाः, पक्वेष्टकासंस्थानसंस्थितैर्योजनशतसाहस्रिकैरातपक्षेत्रैः, यथा पक्वा इष्टका आयामतो दीर्घा भवति विस्तरतस्तु स्तोका चतुरस्रा च तथा तेषामपि मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्व्यवस्थितानां चन्द्रसूर्याणामातपक्षेत्राण्यायामतो अनेकयोजनशतसहस्रप्रमाणानि विस्तरत एकयोजनशतसहस्राणि चतुरस्राणि चेति, तैरित्थंभूतैरातपक्षेत्रैः साहस्रिकाभिः–अनेकसहस्रसङ्ख्याभिर्वाह्याभिः पर्षद्भिः, अत्रापि बहुवचनं व्यक्त्यपेक्षया, 'महयेत्यादि पूर्ववत् , दिवि भवान् दिव्यान् भोगभोगान्–भोगार्हान् शब्दादीन् भोगान् भुञ्जाना विहरन्ति, कथंभूता इत्याह–शुभलेश्याः, एतच्च विशेषणं चन्द्रमसः प्रति, तेन नातिशीततेजसः किन्तु सुखोत्पादहेतुपरमलेश्याका इत्यर्थः, मन्दलेश्याः, एतच्च विशेषणं सूर्यान् प्रति, तथा च एत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००] + गाथा: दीप अनुक्रम [१३३--१९६]



सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२८२॥

देव व्याचष्टे–'मन्दातपलेश्याः' मन्दा–अनत्युष्णस्वभावा आतपरूपा लेश्या–रश्मिसङ्घातो येषां ते तथा, पुनः कथंभूताश्चन्द्रादित्या इत्याह–चित्रान्तरलेश्याः चित्रमन्तरं–अन्तरालं लेश्या च येषां ते तथा, भावार्थश्चास्य पदस्य प्रागेवोपदर्शितः, ते इत्थंभूताश्चन्द्रादित्याः परस्परमवगाढाभिर्लेश्याभिः, तथाहि–चन्द्रमसां सूर्याणां च प्रत्येकं लेश्या योजनशतसहस्रप्रमाणविस्ताराश्चन्द्रसूर्याणां च सूचीपङ्क्त्या व्यवस्थितानां परस्परमन्तरं पञ्चाशत् योजनसहस्राणि ततश्चन्द्रप्रभासम्मिश्राः सूर्यप्रभाः सूर्यप्रभासम्मिश्राश्चन्द्रप्रभाः, इत्थं परस्परमवगाढाभिर्लेश्याभिः कूटानीव–पर्वतोपरिव्यवस्थितशिखराणीव स्थानस्थिताः–सदैव एकत्र स्थाने स्थिताः तान् प्रदेशान्–स्वस्वप्रत्यासन्नान् उद्योतयन्ति अवभासयन्ति तापयन्ति प्रकाशयन्ति, 'ता तेसि णं देवाणं जाहे इंदे चयई'त्यादि प्राग्वद् व्याख्येयं ।

ता पुक्खरवरं णं दीवं पुक्खरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिते सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति, ता पुक्खरोदे णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठिते जाव णो विसमचक्कवालसंठिते, ता पुक्खरोदे णं समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता पुक्खरवरोदे णं समुद्दे केवतिया चंदा पभासेंसु वा ३ पुच्छा तहेव, तहेव ता पुक्खरोदे णं समुद्दे संखेज्जा चंदा पभासेंसु वा ३ जाव संखेज्जाओ तारागणकोडाकोडीओ सोभं सोभेंसु वा ३ । एतेणं अभिलावेणं वरुणवरे दीवे वरुणोदे समुद्दे ४ खीरवरे दीवे खीरवरे समुद्दे ५ घतवरे दीवे घतोदे समुद्दे ६ खोतवरे दीवे खोतोदे समुद्दे ७ णंदिस्सरवरे दीवे णंदिस्सवरे

१९ प्राभृते पुष्करोदादयः सू १०१

॥२८२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सूत्र १०१ एव वर्तते परन्तु मूल-संपादकस्य किञ्चित् स्खलनत्वात् अस्य सूत्रक्रमस्य नोन्ध-करणे सूत्रान्ते सूत्रक्रम १०३ लिखितं

समुद्दे ८ अरुणोदे दीवे अरुणोदे समुद्दे ९ अरुणवरे दीवे अरुणवरे समुद्दे १० अरुणवरोभासे दीवे अरुणवरोभासे समुद्दे ११ कुंडले दीवे कुंडलोदे समुद्दे १२ कुंडलवरे दीवे कुंडलवरोदे समुद्दे १३ कुंडलवरोभासे दीवे कुंडलवरोभासे समुद्दे १४ सव्वेसिं विक्खंभपरिक्खेवो जोतिसाइं पुक्खरोदसागरसरिसाइं। ता कुंडलवरोभासण्णं समुद्दं रुयए दीवे वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए २ सव्वतो जाव चिट्ठति, ता रुयए णं दीवे किं समचक्कवालजाव णो विसमचक्कवालसंठिते, ता रुयए णं दीवे केवइयं समचक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ?, ता असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेण असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता रुयगे णं दीवे केवतिया चंदा पभासेंसु वा ३ पुच्छा, ता रुयगे णं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासेंसु वा ३ जाव असंखेज्जाओ तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभेंसु वा ३, एवं रुयगे समुद्दे रुयगवरे दीवे रुयगवरोदे समुद्दे रुयगवरोभासे दीवे रुयगवरोभासे समुद्दे, एवं तिपडोयारा णतव्वा जाव सूरे दीवे सूरोदे समुद्दे सूरवरे दीवे सूरवरे समुद्दे सूरवरोभासे दीवे सूरवरोभासे समुद्दे, सव्वेसिं विक्खंभपरिक्खेवजोतिसाइं रुयगवरदीवसरिसाइं, ता सूरवरोभासोदण्णं समुद्दं देवे णामं दीवे वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति जाव णो विसमचक्कवालसंठिते, ता देवे णं दीवे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ?, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा, ता देवे णं दीवे केवतिया चंदा पभासेंसु वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०३]

दीप अनुक्रम [१९७]

॥२८३॥

३ पुच्छा तधेव, ता देवे णं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासेंसु वा ३ जाव असंखेज्जाओ तारागणकोडिकोडीओ सोभेंसु वा ३ एवं देवोदे समुद्दे णागे दीवे णागोदे समुद्दे जक्खे दीवे जक्खोदे समुद्दे भूते दीवे भूतोदे समुद्दे सयंभुरमणे दीवे सयंभुरमणे समुद्दे सव्वे देवदीवसरिसा (सू१०३) ॥ एकूणवीसतिमं पाहुडं समत्तं ॥

'ता पुक्खरवरण्ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् पुष्करवरं णमिति वाक्यालङ्कारे द्वीपं पुष्करोदो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य तिष्ठति, पुष्करोदे च समुद्रे जलमतिस्वच्छं पथ्यं जात्यं तथ्यपरिणामं स्फटिकवर्णाभं प्रकृत्या उदकरसं, द्वौ च तत्र देवावाधिपत्यं परिपालयतस्तद्यथा—श्रीधरः श्रीप्रभश्च, तत्र श्रीधरः पूर्वार्द्धाधिपतिः श्रीप्रभोऽपरार्द्धाधिपतिः, विष्कम्भादिपरिमाणं च सुगमं । 'एएण'मित्यादि, एतेनानन्तरोदितेनाभिलापेन वरुणवरो द्वीपो वक्तव्यः, तदनन्तरं वरुणोदः समुद्रः ततः क्षीरवरो द्वीपः क्षीरोदः समुद्र इत्यादि, सूत्रपाठश्चैवम्—ता पुक्खरोदण्णं समुद्दं वरुणवरे दीवे वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ'इत्यादि, वरुणद्वीपे च वरुणवरुणप्रभौ द्वौ देवौ स्वामिनौ नवरमाद्यः पूर्वार्द्धाधिपतिरपरोऽपरार्द्धाधिपतिरेवं सर्वत्र भावनीयं, वरुणोदे समुद्रे परमसुजातमृद्वीकारसनिष्पन्नरसादपीष्टतरास्वादं तोयं वारुणिरप्रभौ च द्वौ तत्र देवौ, क्षीरवरे द्वीपे पण्डरसुप्रदन्तौ देवौ, क्षीरोदे समुद्रे जात्यपुण्ड्रेक्षुचारिणीनां गवां यत् क्षीरं तदन्याभ्यो गोभ्यो दीयते तासामपि क्षीरमन्याभ्यस्तासामप्यन्याभ्यः एवं चतुर्थस्थानपर्यवसितस्य क्षीरस्य प्रयत्नतो मन्दाग्निना क्वथितस्य जात्येन खण्डेन मत्स्यण्डिकया सम्मिश्रस्य यादृशो रसस्ततोऽपीष्टतरास्वादं [तत्कालविकसितकर्णिकारपुष्पवर्णाभं] तोयं विमलविमलप्रभौ च तत्र देवौ, घृतवरे द्वीपे

॥२८३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सूत्र १०१ एव वर्तते परन्तु मूल-संपादकस्य किञ्चित् स्खलनत्वात् अस्य सूत्रक्रमस्य नोन्ध-करणे सूत्रान्ते सूत्रक्रम १०३ लिखितं

प्रत सूत्रांक [१०३]

दीप अनुक्रम [१९७]

कनककनकप्रभौ देवौ, घृतोदे समुद्रे सद्यो विस्यन्दितगोघृतास्वादं तत्कालप्रविकसितकर्णिकारपुष्पवर्णाभं तोयं कान्त-सुकान्तौ तत्र देवौ, इक्षुवरे द्वीपे सुप्रभमहाप्रभौ देवौ, इक्षुवरे समुद्रे जात्यवरपुण्ड्राणामिक्षूणामपनीतमूलोपरित्रिभागानां विशिष्टगन्धद्रव्यपरिवासितानां यो रसः श्लक्ष्णवस्त्रपरिपूतस्तस्मादपीष्टतरास्वादं तोयं पूर्णपूर्णप्रभौ च तत्र देवौ, नन्दी-श्वरे द्वीपे कैलाशहस्तिवाहनौ देवौ, नन्दीश्वरे समुद्रे इक्षुरसास्वादं तोयं सुमनःसौमनसौ देवौ, एते अष्टावपि च द्वीपा अष्टावपि समुद्रा एकप्रत्यवताराः, एकैकरूपा इत्यर्थः, अत ऊर्ध्वं तु द्वीपाः समुद्राश्च त्रिप्रत्यवतारास्तद्यथा—अरुणः अरुणवरोऽरुणवरावभासः कुण्डलः कुण्डलवरः कुण्डलवरावभास इत्यादि, तत्रारुणे द्वीपे अशोकवीतशोकौ देवौ, अरु-णोदे समुद्रे सुभद्रमनोभद्रौ, अरुणवरे द्वीपे अरुणवरभद्रअरुणवरमहाभद्रौ, अरुणवरे समुद्रे अरुणवरभद्रारुणवरमहाभद्रौ अरुणवरावभासे द्वीपे अरुणवरावभासभद्रअरुणवरावभासमहाभद्रौ अरुणवरावभासे समुद्रे अरुणवरावभासवरारुणवरा-वभासमहावरौ, कुण्डले द्वीपे कुण्डलकुण्डभद्रौ देवौ कुण्डलसमुद्रे चक्षुःशुभचक्षुःकान्तौ कुण्डलवरे द्वीपे कुण्डलवरभद्र-कुण्डलवरमहाभद्रौ कुण्डवरे समुद्रे कुण्डलवरकुण्डलमहावरौ कुण्डलवरावभासे द्वीपे कुण्डलवरावभासभद्रकुण्डलवरावभा-समहाभद्रौ कुण्डलवरावभासे समुद्रे कुण्डलवरावभासवरकुण्डलवरावभासमहावरौ, एते सूत्रोपात्ता द्वीपसमुद्राः, अत ऊर्ध्वं तु सूत्रानुपात्ता दर्श्यन्ते, कुण्डलवरावभाससमुद्रानन्तरं रुचको द्वीपः रुचकः समुद्रः, ततो रुचकवरो द्वीपो रुचकवरः समुद्रः तदनन्तरं रुचकवरावभासो द्वीपो रुचकवरावभासः समुद्रः, तत्र रुचके द्वीपे सर्वार्थमनोरमौ देवौ रुचकसमुद्रे सुमनःसौमनसौ रुचकवरे द्वीपे रुचकवरभद्ररुचकवरमहाभद्रौ रुचकवरे समुद्रे रुचकवररुचकमहावरौ रुचकवराव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०३]

दीप अनुक्रम [१९७]

भासे द्वीपे रुचकवरावभासभद्ररुचकवरावभासमहाभद्रौ रुचकवरावभासे समुद्रे रुचकवरावभासवररुचकवरावभासमहावरौ, कियन्तो नाम नामग्रहं द्वीपसमुद्रा वक्तुं शक्यन्ते ? ततो यानि कानिचिदाभरणनामानि–हारार्द्धहारकनकावलिरत्नावलिप्रभृतीनि यानि च वस्त्रनामानि यानि च गन्धनामानि कोष्ठपुटादीनि यानि चोत्पलनामानि–जलरुहचन्द्रोद्योतप्रमुखाणि यानि च तिलकप्रभृतीनि वृक्षनामानि यानि च पद्मनामानि शतपत्रसहस्रपत्रप्रभृतीनि यानि च पृथिवीनामानि–पृथिवीशर्करावालुकेत्यादीनि यानि च नवानां निधीनां चतुर्दशानां चक्रवर्तिरत्नानां क्षुल्लहिमवदादीनां वर्षधरपर्वतानां पद्मादीनां ह्रदानां गङ्गासिन्धुप्रभृतीनां नदीनां कच्छादीनां विजयानां माल्यवदादीनां वक्षस्कारपर्वतानां सौधर्मादीनां कल्पानां शक्रादीनामिन्द्राणां देवकुरूत्तरमन्दराणामावासानां शक्रादिसम्बन्धिनां मेरुप्रत्यासन्नानां गजदन्तानां कूटादीनां क्षुल्लहिमवदादिसम्बन्धिनां नक्षत्राणां–कृत्तिकादीनां चन्द्राणां सूर्याणां च नामानि तानि सर्वाण्यपि द्वीपसमुद्राणां त्रिप्रत्यवताराणि वक्तव्यानि, तद्यथा–हारो द्वीपो हारः समुद्रो हारवरो द्वीपो हारवरः समुद्रो हारवरावभासो द्वीपो हारवरावभासः समुद्र इत्यादि, एतेषु समस्तद्वीपसमुद्रेषु सङ्ख्येययोजनशतसहस्रप्रमाणो विष्कम्भः सङ्ख्येययोजनशतसहस्रप्रमाणः परिक्षेपः सङ्ख्येयाश्च चन्द्रादयस्तावद् वक्तव्याः यावदन्यः कुण्डलवरावभासः समुद्रः, तथा चाह–'सव्वेसि'मित्यादि, सर्वेषामुक्तस्वरूपाणां द्वीपसमुद्राणामन्यकुण्डलवरावभाससमुद्रपर्यन्तानां विष्कम्भपरिक्षेपज्योतिषाणि पुष्करोदसागरसदृशानि वक्तव्यानि–सङ्ख्येययोजनप्रमाणो विष्कम्भः सङ्ख्येययोजनप्रमाणः परिक्षेपः सङ्ख्येयाश्चन्द्रादयो वक्तव्या इत्यर्थः, ततस्तदनन्तरं योऽन्यो रुचकनामा द्वीपस्तत्प्रभृतिषु रुचकसमुद्ररुचकवरद्वीपरुचकवरसमुद्ररुचकवरावभासद्वीपरुचक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सूत्र १०१ एव वर्तते परन्तु मूल-संपादकस्य किञ्चित् स्खलनत्वात् अस्य सूत्रक्रमस्य नोन्ध-करणे सूत्रान्ते सूत्रक्रम १०३ लिखितं

वरावभाससमुद्रादिष्वपि असङ्ख्येययोजनप्रमाणो विष्कम्भोऽसङ्ख्येययोजनप्रमाणः परिक्षेपोऽसङ्ख्येयाश्चन्द्रादयो वक्तव्याः, तथा चाह—'ता कुंडलवरावभासण्णं'इत्यादि, 'एवं रुयगे समुद्दे'इत्यादि, 'एवं तिपडोयारा'इत्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण रुचकवरावभासात्समुद्रात्परतो द्वीपसमुद्राश्च त्रिप्रत्यवतारास्तावत् ज्ञातव्या यावत् सूर्यो द्वीपः सूर्यः समुद्रः सूर्यवरो द्वीपः सूर्यवरः समुद्रः सूर्यवरावभासो द्वीपः सूर्यवरावभासः समुद्रः, उक्तं च जीवाभिगमचूर्णौ—"अरुणाई दीवसमुद्दा तिपडोयारा यावत्सूर्यवरावभासः समुद्रः"इति, 'सव्वेसि'मित्यादि, सर्वेषां रुचकसमुद्रादीनां सूर्यवरावभास-समुद्रपर्यन्तानां विष्कम्भपरिक्षेपज्योतिषाणि रुचकद्वीपसदृशानि वक्तव्यानि असङ्ख्येययोजनप्रमाणो विष्कम्भोऽसङ्ख्येय-योजनप्रमाणः परिक्षेपोऽसङ्ख्येयाः प्रत्येकं चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारका वक्तव्या इति भावः, 'सूरवरावभासोदण्णं समुद्दं' इत्यादि सुगमं, नवरमेते पञ्च देवादयो द्वीपाः पञ्च देवादयः समुद्राः प्रत्येकमेकरूपा न पुनरेषां त्रिप्रत्यवतारः, उक्तं च जीवाभिगमचूर्णौ—"अंते पंच द्वीपा पंच समुद्दा एकप्रकारा" इति, जीवाभिगमसूत्रेऽप्युक्तम्—"देवे नागे जक्खे भूये य सयंभुरमणे य । एक्केके चेव भाणियवे, तिपडोयारं नत्थि"त्ति, तत्र देवे द्वीपे द्वौ देवौ देवभद्रदेवमहाभद्रौ देवे समुद्रे देववरदेवमहावरौ नागे द्वीपे नागभद्रनागमहाभद्रौ नागे समुद्रे नागवरनागमहावरौ यक्षे द्वीपे यक्षभद्रयक्षमहाभद्रौ यक्षे समुद्रे यक्षवरयक्षमहावरौ भूते द्वीपे भूतभद्रभूतमहाभद्रौ भूते समुद्रे भूतवरभूतमहावरौ स्वयंभूरमणे द्वीपे स्वयम्भूभद्र-स्वयम्भूमहाभद्रौ स्वम्भूरमणे समुद्रे स्वम्भूवरस्वयम्भूमहावरौ, इह नन्दीश्वरादयः सर्वे समुद्रा भूतसमुद्रपर्यवसाना इक्षुर-सोदसमुद्रसदृशोदकाः प्रतिपत्तव्याः, स्वयम्भूरमणसमुद्रस्य तूदकं पुष्करोदसमुद्रोदकसदृशं, तथा जम्बूद्वीप इति नाम्ना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०३]

दीप अनुक्रम [१९७]

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२८५॥

असङ्ख्येया द्वीपा लवण इति नाम्ना असङ्ख्येयाः समुद्राः एवं तावत् वाच्यं यावत्सूर्यवरावभास इति नाम्ना असङ्ख्येयाः समुद्राः, ये तु पञ्च देवादयो द्वीपाः पञ्च देवादयः समुद्रास्ते एकैका एव प्रतिपत्तव्याः, नैतेषां नामभिरन्ये द्वीपसमुद्राः, उक्तं च जीवाभिगमे–'केवइया णं भंते ! जंबुद्दीवा दीवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! असंखेज्जा पन्नत्ता, केवइया णं भंते ! देवदीवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! एगे देवदीवे पण्णत्ते, दसवि एगागारा" इति ॥ ॥

इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां एकोनविंशतितमं-प्राभृतं समाप्तं

तदेवमुक्तमेकोनविंशतितमं प्राभृतं, सम्प्रति विंशतितममारभ्यते–तस्य चायमर्थाधिकारो यथा 'कीदृशश्चन्द्रादीनामनुभाव' इति ततस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—

ता कहं ते अणुभावे आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता चंदिमसूरिया णं णो जीवा अजीवा णो घणा झुसिरा णो बादरबोंदिधरा कलेवरा नत्थि णं तेसिं उट्ठाणेति वा कम्मेति वा बलेति वा विरिएति वा पुरिसकारपरक्कमेति वा ते णो विज्जु लवंति णो असणिं लवंति णो थणितं लवंति, अहे य णं बादरे वाउकाए संमुच्छति अहे य णं बादरे वाउकाए संमुच्छित्ता विज्जुंपि लवंति असणिंपि लवंति थणितंपि लवंति एगे एवमाहंसु, एगे पुण एवमाहंसु, ता चंदिमसूरियाणं जीवा णो अजीवा घणा णो झुसिरा बादरबुंदिधरा नो कलेवरा अत्थि णं तेसिं उट्ठाणेति वा० ते विज्जुंपि लवंति ३ ।

२० प्राभृते चन्द्रादीनामनुभावः सू १०४

॥२८५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र एकोनविंशति प्राभृतं परिसमाप्तं

अथ विंशति प्राभृतं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१०४]

दीप अनुक्रम [१९८]

एगे एवमाहंसु, वयं पुण एवं वदामो–ता चंदिमसूरिया णं देवा णं महिड्ढिया जाव महाणुभागा वरवत्थधरा वरमल्लधरा वराभरणधारी अवोच्छित्तिणयट्ठताए अन्ने चयंति अण्णे उववज्जंति (सूत्रं १०४) ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं ?–केन प्रकारेण चन्द्रादीनामनुभावः–स्वरूपविशेष आख्यात इति वदेत् ?, एवमुक्ते भगवानेतद्विषये ये द्वे प्रतिपत्ती ते उपदर्शयति—'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र–चन्द्रादीनामनुभावविषये खल्विमे द्वे प्रतिपत्ती–परतीर्थिकाभ्युपगमरूपे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—'तत्थेगे'इत्यादि, तत्र–तेषां द्वयानां परतीर्थिकानां मध्ये एके परतीर्थिका एवमाहुः, 'ता'इति तेषां परतीर्थिकानां प्रथमं स्वशिष्यं प्रत्यनेकवक्तव्यतोपक्रमे क्रमोपदर्शनार्थः, चन्द्र-सूर्या णमिति वाक्यालङ्कारे नो जीवा–जीवरूपाः किन्त्वजीवाः, तथा नो घना–निविडप्रदेशोपचयाः किन्तु शुषिराः, तथा न वरबोन्दिधराः–प्रधानसजीवसुव्यक्तावयवशरीरोपेताः किन्तु कलेवराः–कलेवरमात्राः तथा नास्ति णमिति वाक्या-लङ्कारे तेषां चन्द्रादीनामुत्थानं–ऊर्ध्वीभवनमितिरुपदर्शने वाशब्दो विकल्पे समुच्चये वा कर्म्म–उत्क्षेपणावक्षेपणादि बलं–शारीरः प्राणो वीर्यं–आन्तरोत्साहः 'पुरिसकारपरक्कमे'इति पुरुषकारः–पौरुषाभिमानः पराक्रमः–स एव साधिताभि-मतप्रयोजनः पुरुषकारश्च पराक्रमश्च पुरुषकारपराक्रममिति वाशब्दः सर्वत्रापि पूर्ववत्, तथा ते चन्द्रादित्याः 'नो विज्जुयं लवंति'त्ति नो विद्युतं प्रवर्त्तयन्ति नाप्यशनिं–विद्युद्विशेषरूपं नापि गर्जितं–मेघध्वनिं किन्तु 'अहो ण'मित्यादि चन्द्रादित्यानामधो णमिति पूर्ववत् बादरो वायुकायिकः सम्मूर्छति अधश्च बादरो वायुकायिकः सम्मूर्च्छय 'विज्जुंपि लवइ'इति विद्युतमपि प्रवर्त्तयति, अशनिमपि प्रवर्त्तयति, विद्युदादिरूपेण परिणमते इति भावः, अत्रोपसंहारमाह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'एगे एवमाहंसु' १, एके पुनरेवमाहुः, ता इति प्राग्वत्, चन्द्रसूर्या णमिति वाक्यालङ्कारे जीवा–जीवरूपा न पुनरजीवाः यथाऽऽहुः पूर्वापरतीर्थिकाः तथा घना–न शुषिरा तथा वरबोन्दिधरा न कलेवरमात्रा तथा अस्ति तेषां उट्ठाणे इति वा इत्यादि पूर्ववत् व्याख्येयं, 'ते विज्जुंपि लवंति'त्ति विद्युतमपि प्रवर्त्तयन्ति अशनिमपि प्रवर्त्तयन्ति गर्जितमपि, किमुक्तं भवति ?– विद्युदादिकं सर्वं चन्द्रादित्यप्रवर्त्तितमिति, अत्रोपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' २, एवं परतीर्थिकप्रतिपत्तिद्वयमुपदर्श्य सम्प्रति भगवान् स्वमतं कथयति–'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरेवं वदामः, कथं वदथ इत्याह–ता इति पूर्ववत् चन्द्रसूर्याः णमिति वाक्यालङ्कारे देवा–देवस्वरूपा न सामान्यतो जीवमात्राः, कथंभूताः ते देवा इत्याह–'महड्ढिकाः' महती ऋद्धिर्विमानपरिवारादिका येषां ते तथा 'जाव महाणुभावा' इति यावत्करणात् 'महज्जुइया महबला महाजसा महेसक्खा' इति द्रष्टव्यं, तत्र महती द्युतिः शरीराभरणविषया येषां ते महाद्युतयः, तथा महत् बलं–शारीरः प्राणो येषां ते महाबलाः, तथा महद् यशः–ख्यातिर्येषां ते महायशसः, तथा महेश इति महान् ईशः–ईश्वर इत्याख्या येषां ते महेशाख्याः, क्वचित् महासोक्खा इति पाठः, तत्र महत् सौख्यं येषां ते महासौख्याः, तथा महानुभावो–विशिष्टवैक्रियकरणादिविषया अचिन्त्या शक्तिर्येषां ते महानुभावाः वरवस्त्रधरा वरमाल्यधरा वराभरणधारिणः, अव्युच्छित्तिनयार्थतया–द्रव्यास्तिकनयमतेन अन्ये पूर्वोत्पन्नाः स्वायुःक्षये च्यवन्ते अन्ये उत्पद्यन्ते ॥

ता कहं ते राहुकम्मे आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमाओ दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु, अत्थि णं से राहू देवे जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हति, एगे एवमाहंसु, एगे पुण एवमाहंसु नत्थि णं

॥२८६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से राहू देवे जेणं चंदं वा सूरं वा गिण्हइ, तत्थ जे ते एवमाहंसु ता अत्थि णं से राहू देवे जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हति से एवमाहंसु–ता राहू णं देवे चंदं वा सूरं वा गेण्हमाणे बुद्धंतेणं गिण्हित्ता बुद्धंतेणं मुयति बुद्धंतेणं गिण्हित्ता मुद्धंतेणं मुयइ मुद्धंतेणं गिण्हित्ता मुद्धंतेणं मुयति, वामभुयन्तेणं गिण्हित्ता वामभुयंतेणं मुयति वामभुयंतेणं गिण्हित्ता दाहिणभुयंतेणं मुयति दाहिणभुयंतेणं गिण्हित्ता वामभुयंतेणं मुयति दाहिणभुयंतेणं गिण्हित्ता दाहिणभुयंतेणं मुयति, तत्थ जे ते एवमाहंसु ता नत्थि णं से राहू देवे जे णं चंदं वा सूरं वा गेण्हति ते एवमाहंसु–तत्थ णं इमे पण्णरसकसिणपोग्गला पं० तं०–सिंघाणए जडिलए खरए खतए अंजणे खंजणे सीतले हिमसीयले केलासे अरुणाभे परिज्झए णभसूरए कविलिए पिंगलए राहू, ता जया णं एते पण्णरस कसिणा २ पोग्गला सदा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसाणुवद्धचारिणो भवंति तता णं माणुसलोयंसि माणुसा एवं वदंति–एवं खलु राहू चंदं वा सूरं वा गेण्हति, एवं० २, ता जता णं एते पण्णरस कसिणा २ पोग्गला णो सदा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसाणुवद्धचारिणो खलु तदा माणुसलोयम्मि मणुस्सा एवं वदंति–एवं खलु राहू चंदं सूरं वा गेण्हति, एते एवमाहंसु, वयं पुण एवं वदामो–ता राहू णं देवे महिड्ढीए महाणुभावे वरवत्थधरे वराभरणधारी, राहुस्स णं देवस्स णव णामधेज्जा पं०, तं०–सिंघाडए जडिलए खरए खेत्तए दद्दुरे मगरे मच्छे कच्छभे कण्णसप्पे, ता राहुस्स णं देवस्स विमाणा पंचवण्णा पं० तं०–किण्हा नीला लोहिता हालिद्दा सुक्किल्ला, अत्थि कालए राहुविमाणे खंजणवण्णाभे अत्थि नीलए राहुविमाणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लाउयवण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि लोहिए राहुविमाणे मंजिट्ठावण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि हालिद्दए राहुविमाणे हलिद्दावण्णाभे पं०, अत्थि सुक्किल्लए राहुविमाणे भासरासिवण्णाभे पं०, ता जया णं राहुदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं पुरच्छिमेणं आवरित्ता पच्चत्थिमेणं वीतीवतति, तया णं पुरच्छिमेणं चंदे सूरे वा उवदंसेति पच्चत्थिमेणं राहू, जदा णं राहुदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं दाहिणेणं आवरित्ता उत्तरेणं वीतीवतति, तदा णं दाहिणेणं चंदे वा सूरे वा उवदंसेति उत्तरेणं राहू, एतेणं अभिलावेणं पच्चत्थिमेणं आवरित्ता पुरच्छिमेणं वीतीवतति उत्तरेणं आवरित्ता दाहिणेणं वीतिवतति, जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं दाहिणपुरच्छिमेणं आवरित्ता उत्तरपच्चत्थिमेणं वीईवयइ तया णं दाहिणपुरच्छिमेणं चंदे वा सूरे वा उवदंसेइ उत्तरपच्चत्थिमेणं राहू, जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं दाहिणपच्चत्थिमेणं आवरित्ता उत्तर पुरच्छिमेणं वीतीवतति तदा णं दाहिणपच्चत्थिमेणं चंदे वा सूरे वा उवदंसेति उत्तरपुरच्छिमेणं राहू, एतेणं अभिलावेणं उत्तरपच्चत्थिमेणं आवरेत्ता दाहिणपुरच्छिमेणं वीतीवतति, उत्तरपुरच्छिमेणं आवरेत्ता दाहिणपच्चत्थिमेणं वीतीवयइ, ता जता णं राहू देवे आगच्छमाणे वा० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता वीतीव० तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदंति–राहुणा चंदे सूरे वा गहिते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता पासेणं वीतीवतति तता णं मणुस्सलोअंमि मणुस्सा वदंति–चंदेण वा सूरेण वा राहुस्स कुच्छी भिण्णा, ता जता णं राहू देवे आगच्छमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता पच्चोसक्कति तता णं मणुस्सलोए मणुस्सा एवं वदंति—राहुणा चंदे वा सूरे वा वंते राहुणा० २, ता जता णं राहू देवे आगच्छमाणे वा० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता मज्झं मज्झेणं वीतिवतति तता णं मणुस्सलोयंसि मणुस्सा वदंति–राहुणा चंदे वा सूरे वा विइयरिए राहुणा० २, ता जता णं राहू देवे आगच्छमाणे० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता णं अधे सपक्खिं सपडिदिसिं चिट्ठति तता णं मणुस्सलोअंसि मणुस्सा वंदंति–राहुणा चंदे वा० घत्थे राहुणा० २ ॥ कतिविधे णं राहू पं०?, दुविहे पं० तं०–ता धुवराहू य पव्वराहू य, तत्थ णं जे से धुवराहू से णं बहुलपक्खस्स पाडिवए पण्णरसइ-भागेणं भागं चंदस्स लेसं आवरेमाणे० चिट्ठति, तं०–पढमाए पढमं भागं जाव पन्नरसमं भागं, चरमे समए चंदे रत्ते भवति अवसेसे समए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवइ, तमेव सुक्कपक्खे उवदंसेमाणे २ चिट्ठति, तं०–पढ-माए पढमं भागं जाव चंदे विरत्ते य भवइ, अवसेसे समए चंदे रत्ते विरत्ते य भवति, तत्थ णं जे ते पव्व-राहू से जहण्णेणं छण्हं मासाणं, उक्कोसेणं बायालीसाए मासाणं चंदस्स अडतालीसाए संवच्छराणं सूरस्स (सूत्रं १०५) ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं–केन प्रकारेण भगवान्! त्वया राहुकर्म्म–राहुक्रिया आख्यातमिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वदेत्?, एवमुक्ते भगवानेतद्विषये ये द्वे परतीर्थिकप्रतिपत्ती ते उपदर्शयति—'तत्थे'त्यादि, तत्र–राहुकर्म्मविषये खल्विमे द्वे प्रतिपत्ती प्रज्ञप्ते, 'तत्थेगे'इत्यादि, तत्र–तेषां द्वयानां परतीर्थिकानां मध्ये एके परतीर्थिका एवमाहुः—ता इति पूर्ववत् अस्ति णमिति वाक्यालङ्कारे स राहुनामा देवो यश्चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णाति, अत्रोपसंहारमाह–एगे एवमाहंसु, 'एके पुण एवमाहंसु' एके पुनरेवमाहुः, ता इति पूर्ववत्, नास्ति स राहुनामा देवो यश्चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णाति, तदेवं प्रतिपत्तिद्वयमुपदर्श्य सम्प्रत्येतद्भावनार्थमाह—'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते वादिनः एवमाहुः–अस्ति स राहुनामा देवो यश्चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णातीति त एवमाहुः–त एवं स्वमतभावनिकां कुर्वन्ति, 'ता राहू ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत् राहुर्देवश्चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णन् कदाचित् बुध्नान्तेनैव गृहीत्वा बुध्नान्तेनैव मुञ्चति, अधोभागे गृहीत्वा अधोभागेनैव मुञ्चतीति भावः, कदाचित् बुध्नान्तेन गृहीत्वा मूर्द्धान्तेन मुञ्चति, अधोभागेन गृहीत्वा उपरितनेन भागेन मुञ्चतीत्यर्थः, अथवा कदाचित् मूर्द्धान्तेन गृहीत्वा बुध्नान्तेन मुञ्चति, यदिवा मूर्द्धान्तेन गृहीत्वा मूर्द्धान्तेनैव मुञ्चति, भावार्थः प्राग्वद् भावनीयः, अथवा कदाचित् वामभुजान्तेन गृहीत्वा वामभुजान्तेन मुञ्चति, किमुक्तं भवति?–वामपार्श्वेन गृहीत्वा वामपार्श्वेनैव मुञ्चति, यदिवा वामभुजान्तेन गृहीत्वा दक्षिणभुजान्तेन मुञ्चति, अथवा कदाचित् दक्षिणभुजान्तेन गृहीत्वा वामभुजान्तेन मुञ्चति, यद्वा दक्षिणभुजान्तेन गृहीत्वा दक्षिणभुजान्तेनैव मुञ्चति, भावार्थः सुगमः, 'तत्थ जे ते'इत्यादि, तत्र–तेषां द्वयानां परतीर्थिकानां मध्ये ये ते एवमाहुः यथा नास्ति स राहुर्देवो यश्चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णातीति ते एवमाहुः, 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र जगति णमिति वाक्यालङ्कारे इमे वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्चदशभेदाः कृष्णाः पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०५]

दीप अनुक्रम [१९९]

'तद्यथे'त्यादिना तानेव दर्शयति,—एते यथासम्प्रदायं वैविक्त्येन प्रतिपत्तव्याः, 'ता जया ण'मित्यादि, ततो यदा णमिति वाक्यालङ्कारे एते अनन्तरोदिताः पञ्चदशभेदाः कृष्णाः पुद्गलाः कृत्स्नाः–समस्ताः 'सता'इति सदा सातत्येनेत्यर्थः चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यानुबन्धचारिणः–चन्द्रसूर्यबिम्बगतप्रभानुचारिणो भवन्ति तदा मनुष्यलोके मनुष्या एवं वदन्ति, यथा एवं खलु राहुश्चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णातीति, 'ता जया ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, यदा णमिति पुनरर्थे निपातस्यानेकार्थत्वात् यदा पुनरेते पञ्चदश कृष्णाः पुद्गलाः समस्ताः नो सदा–न सातत्येन चन्द्रस्य सूर्यस्य वा लेश्यानुबन्धचारिणो भवन्ति, न खलु तदा मनुष्यलोके मनुष्या एवं वदन्ति–यथा एवं खलु राहुश्चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णातीति, तेषामेवोपसंहारवाक्यमाह—'एवं खलु'इत्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण राहुश्चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णातीति लौकिकं वाक्यं प्रतिपत्तव्यं, न पुनः प्रागुक्तपरतीर्थिकाभिप्रायेण, भगवानाह—'एते'इत्यादि, एते परतीर्थिका एवमाहुः, 'वयं पुण'इत्यादि, वयं पुनरुत्पन्नकेवलाः केवलविदोपलभ्य एवं वदामो, यथा—'राहू ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, राहुः णमिति वाक्यालङ्कारे, न देवो न परपरिकल्पितपुद्गलमात्रं स च देवो महर्द्धिको महाद्युतिः महाबलो महायशा महासौख्यो महानुभावः, एतेषां पदानामर्थः प्राग्वद् भावनीयः, वरवस्त्रधरो वरमाल्यधरो वराभरणधारी,'राहुस्स ण'मित्यादि, तस्य च राहोर्देवस्य नव नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—'सिंघाडए'इत्यादि सुगमं, 'ता राहुस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, राहोर्देवस्य विमानानि पञ्चवर्णानि प्रज्ञप्तानि, किमुक्तं भवति ?–पञ्च विमानानि पृथगेकैकवर्णयुक्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—'किण्हे नीले'इत्यादि, सुगमं, नवरं खञ्जनं–दीपमल्लिकामलः 'लाउयवण्णाभे'इति आर्द्रतुम्बवर्णाभं, 'ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२८९॥

जया ण'मित्यादि, ता इति–तत्र यदा राहुर्देव आगच्छन् कुतश्चित्स्थानात् गच्छन् वा क्वापि स्थाने विकुर्वन् वा–स्वेच्छया तां तां विक्रियां कुर्वन् वा परिचरणबुद्ध्या इतस्ततो गच्छन् वा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यां–विमानगतधवलिमानं 'पुरच्छिमेणं'ति पौरस्त्येनावृत्त्याग्रभागेनावृत्त्येत्यर्थः, पाश्चात्यभागेन व्यतिव्रजति–व्यतिक्रामति तदा णमिति प्राग्वत् पौरस्त्येन चन्द्रः सूर्यो वाऽऽत्मानं दर्शयति पश्चिमभागेन राहुः, किमुक्तं भवति ?–तदा मोक्षकाले चन्द्रः सूर्यो वा पूर्वदिग्भागे प्रकटं उपलभ्यते अधस्ताच्च पश्चिमभागे राहुरिति, 'एवं जया णं राहू' इत्याद्यपि दक्षिणोत्तरविषयं सूत्रं भावनीयं, 'एएण'मित्यादि, एतेनानन्तरोदितेनाभिलापेन 'पच्चत्थिमेणं आवरेत्ता पुरच्छिमेणं वीइवयइ उत्तरेणं आवरित्ता दाहिणेणं वीईवयइ'इत्येतद्विषये अपि द्वे सूत्रे वक्तव्ये, ते चैवम्—'ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे० विउव्वमाणे वा० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं पच्चत्थिमेणं आवरित्ता पुरच्छिमेणं वीइवयइ तया णं पच्चत्थिमेणं चंदे सूरे वा उवदंसेइ पुरच्छिमे णं राहू, एवं द्वितीयसूत्रेऽपि वक्तव्यं, 'एवं जया ण'मित्यादीनि दक्षिणपूर्वोत्तरपश्चिमदक्षिणपश्चिमोत्तरपूर्वोत्तरपश्चिमदक्षिणपूर्वोत्तरपूर्वदक्षिणपश्चिमविषयाण्यपि चत्वारि सूत्राणि भावनीयानि, 'ता जया ण'मित्यादि, सुगमं, नवरमयं भावार्थः–यदा चन्द्रस्य सूर्यस्य वा लेश्यामावृत्य स्थितो भवति राहुस्तदा लोके एवमुक्तिर्यथा राहुणा चन्द्रः सूर्यो वा गृहीत इति, यदा तु राहुर्लेश्यामावृत्य पार्श्वेन व्यतिक्रामति तदैवं मनुष्याणामुक्तिः यथा चन्द्रेण सूर्येण वा राहोः कुक्षिर्भिन्ना, राहोः कुक्षिं भित्त्वा चन्द्रः सूर्यो वा निर्गत इति भावः, यदा च राहुश्चन्द्रस्य सूर्यस्य वा लेश्यामावृत्य प्रत्यवष्वष्कते—पश्चादवसर्पति तदैवं मनुष्यलोके मनुष्याः प्रवदन्ति, यथा–राहुणा चन्द्रः सूर्यो वा वान्त इति,

२० प्राभृते राहुक्रियाधिकारः सू १०४

॥२८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०५]

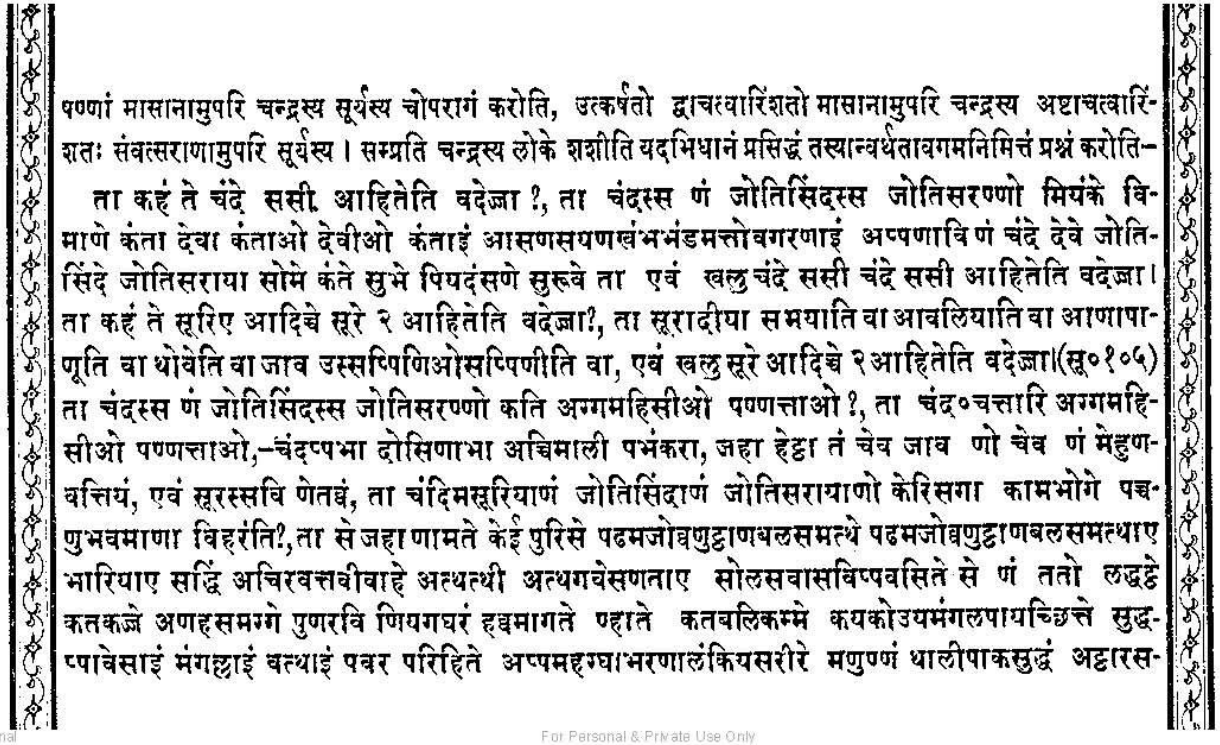
दीप अनुक्रम [१९९]

यदा च राहुश्चन्द्रस्य सूर्यस्य वा मध्यभागेन लेश्यामावृण्वन् व्यतिव्रजति–गच्छति तदैवं मनुष्यलोके प्रवादो, यथा–चन्द्रः सूर्यो वा राहुणा व्यतिचरित इति, किमुक्तं भवति ?–मध्यभागेन विभिन्न इति, यदा च राहुश्चन्द्रस्य सूर्यस्य वा 'सपक्खिं'मिति सह पक्षैरिति सपक्षं सर्वेषु पार्श्वेषु पूर्वापरदक्षिणोत्तररूपेष्वित्यर्थः, सह प्रतिदिग्भिः सप्रतिदिक्, सर्वास्वपि विदिक्षु इत्यर्थः, लेश्यामावृत्याधस्तिष्ठति तदैवं मनुष्यलोकोक्तिर्यथा राहुणा चन्द्रः सूर्यो वा सर्वात्मना गृहीत इति । आह–चन्द्रविमानस्य पञ्चैकषष्टिभागन्यूनयोजनप्रमाणत्वात् राहुविमानस्य च ग्रहविमानत्वेनार्द्धयोजनप्रमाणत्वात् कथं राहुविमानस्य सर्वात्मना चन्द्रविमानावरणसम्भवः ?, उच्यते, यदिदं ग्रहविमानानामर्द्धयोजनमिति प्रमाणं तत्प्रायिकमवसेयं, ततो राहोर्ग्रहस्योक्ताधिकप्रमाणमपि विमानं सम्भाव्यते इति न कदा(का)चिदनुपपत्तिः, अन्ये पुनरेवमाहुः–राहुविमानस्य महान् बहलस्तिमिश्ररश्मिसमूहस्ततो लघीयसाऽपि राहुविमानेन महता बहलेन तमिश्ररश्मिजालेन प्रसरमधिरोहता सकलमपि चन्द्रमण्डलमाव्रियते ततो न कश्चिद्दोषः । अथ राहोर्भेदं जिज्ञासिषुः प्रश्नयति—'ता कइविहे ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह—'दुविहे'इत्यादि, द्विविधो राहुः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ध्रुवराहुः पर्वराहुश्च, तत्र यः सदैव चन्द्रविमानस्याधस्तात् सञ्चरति स ध्रुवराहुः, यस्तु पर्वणि–पौर्णमास्यां अमावास्यायां वा यथाक्रमं चन्द्रस्य सूर्यस्य वा उपरागं करोति स पर्वराहुः, तत्र योऽसौ ध्रुवराहुः स बहुलपक्षस्य कृष्णपक्षस्य–सम्बन्धिन्याः प्रतिपद आरभ्य प्रतितिथि आत्मीयेन पञ्चदशेन भागेन पञ्चदशभागं २ चन्द्रस्य लेश्यामावृण्वन् तिष्ठति, तद्यथा—प्रथमायां–प्रतिपल्लक्षणायां तिथौ प्रथमं पञ्चदशभागं द्वितीयस्यां द्वितीयं तृतीयस्यां तृतीयं यावत्पञ्चदश्यां पञ्चदशं, ततः पञ्चदश्यां तिथौ चरम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समये रक्तो भवति–राहुविमानेनोपरक्तो भवति, सर्वात्मना राहुविमानेनाच्छादितो भवतीत्यर्थः, अवशेषे समये प्रतिपद्द्वितीयातृतीयादिकाले चन्द्रो रक्तश्च भवति विरक्तश्च भवति, देशेन राहुविमानेनाच्छादितो भवति देशतश्चानाच्छादित इत्यर्थः, शुक्लपक्षस्य प्रतिपद आरभ्य पुनस्तमेव पञ्चदशं २ भागं प्रतितिथि उपदर्शयन्–प्रकटीकुर्वन् तिष्ठति, तद्यथा—प्रथमायां प्रतिपल्लक्षणायां तिथौ प्रथमं पञ्चदशभागं प्रकटीकरोति द्वितीयायां द्वितीयं एवं यावत् पञ्चदश्यां पौर्णमास्यां पञ्चदशं पञ्चदशभागं, चरमसमये–पौर्णमासीचरमसमये चन्द्रः सर्वात्मना विरक्तो भवति, सर्वात्मना प्रकटीभवतीत्यर्थः, लेशतोऽपि राहुविमानेनानाच्छादितत्वात्, आह—शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे वा कतिपयान् दिवसान् यावत् राहुविमानं वृत्तमुपलभ्यते, यथा ग्रहणकाले पर्वराहुः, कतिपयांश्च दिवसान् यावन्न तथा, ततः किमत्र कारणमिति ?, उच्यते, इह येषु दिवसेष्वतिशयेन तमसाऽभिभूयते शशी तेषु तद्विमानं वृत्तमाभाति, चन्द्रप्रभाया बाहुल्येन प्रसराभावतो राहुविमानस्य यथावस्थिततयोपलम्भात्, येषु पुनश्चन्द्रो भूयान् प्रकटो भवति तेषु न चन्द्रप्रभा राहुविमानेनाभिभूयते, किन्त्वतिबहुलतया चन्द्रप्रभयैव स्तोकं २ राहुविमानप्रभाया अभिभवस्ततो न वृत्ततोपलम्भः, पर्वराहुविमानं च ध्रुवराहुविमानादतीव तमोबहुलं ततस्तस्य स्तोकस्यापि न चन्द्रस्य प्रभयाऽभिभवसम्भव इति तस्य स्तोकरूपस्यापि वृत्तत्वेनोपलब्धिः, तथा चाह विशेषणवत्यां जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः–"वट्टच्छेओ कइयदिवसे धुवराहुणो विमाणस्स । दीसइ परं न दीसइ जह गहणे पवराहुस्स ॥ १ ॥" आचार्य आह–अज्ञत्थं नहि तमसाऽभिभूयते जं ससी विमुच्चंतो । तेणं वट्टच्छेओ गहणे उ तमो तमोबहुलो ॥२॥" 'तत्थ णं जे से'इत्यादि, तत्र योऽसौ पर्वराहुः स जघन्येन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



पण्णां मासानामुपरि चन्द्रस्य सूर्यस्य चोपरागं करोति, उत्कर्षतो द्वाचत्वारिंशतो मासानामुपरि चन्द्रस्य अष्टाचत्वारिंशतः संवत्सराणामुपरि सूर्यस्य । सम्प्रति चन्द्रस्य लोके शशीति यदभिधानं प्रसिद्धं तस्यान्वर्थतावगमनिमित्तं प्रश्नं करोति–

ता कहं ते चंदे ससी आहितेति वदेज्जा ?, ता चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो मियंके विमाणे कंता देवा कंताओ देवीओ कंताइं आसणसयणखंभभंडमत्तोवगरणाइं अप्पणावि णं चंदे देवे जोतिसिंदे जोतिसराया सोमे कंते सुभे पियदंसणे सुरूवे ता एवं खलु चंदे ससी चंदे ससी आहितेति वदेज्जा। ता कहं ते सूरिए आदिचे सूरे २ आहितेति वदेज्जा?, ता सूरादीया समयाति वा आवलियाति वा आणापाणूति वा थोवेति वा जाव उस्सप्पिणिओसप्पिणीति वा, एवं खलु सूरे आदिचे २ आहितेति वदेज्जा।(सू०१०५)

ता चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?, ता चंद०चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ,–चंदप्पभा दोसिणाभा अचिमाली पभंकरा, जहा हेट्ठा तं चेव जाव णो चेव णं मेहुणवत्तियं, एवं सूरस्सवि णेतव्वं, ता चंदिमसूरियाणं जोतिसिंदाणं जोतिसरायाणो केरिसगा कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरंति?, ता से जहा णामते केई पुरिसे पढमजोव्वणुट्ठाणबलसमत्थे पढमजोव्वणुट्ठाणबलसमत्थाए भारियाए सद्धिं अचिरवत्तीवाहे अत्थत्थी अत्थगवेसणताए सोलसवासविप्पवसिते से णं ततो लद्धट्ठे कतकज्जे अणहसमग्गे पुणरवि णियगघरं हव्वमागते ण्हाते कतबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिते अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे मणुण्णं थालीपाकसुद्धं अट्ठारस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादकस्य मुद्रण-दोषस्य स्खलनाजन्य एका स्खलना वर्तते—सूत्र क्रमांक १०५ द्वि-वारान् लिखितं

प्रत सूत्रांक [१०५R--१०६] दीप अनुक्रम [२००--२०१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः (मल०) ॥२९१॥

वंजणाउलं भोयणं भुत्ते समाणे तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अंतो सचित्तकम्मे बाहिरतो दूमितघट्ठमट्ठे विचित्तउल्लोअचिल्लियतले बहुसमसुविभत्तभूमिभाए मणिरयणपणासितंधयारे कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्क-धूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवरगंधिए गंधवट्टिभूते तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि दुहतो उण्णते मज्झे-णतगंभीरे सालिंगणवट्टिए पण्णत्तगंडविब्बोयणे सुरम्मे गंगापुलिणवालुयाउद्दालसालिसए सुविरइयरयत्ताणे ओयवियखोमिय खोमदुगूलपट्टपडिच्छायणे रत्तंसुयसंवुडे सुरम्मे आईणगरूतबूरणवणीततूलफासे सुगंधवर-कुसुमचुण्णसयणोवयारकलिते ताए तारिसाए भारियाए सद्धिं सिंगाराकारचारुवेसाए संगतहसितभणि-तचिट्ठितसंलावविलासणिउणजुत्तोवयारकुसलाए अणुरत्ताविरत्ताए मणाणुकूलाए एगंतरतिपसत्ते अण्ण-त्थ कच्छइ मणं अकुव्वमाणे इट्ठे सद्दफरिसरसरूवगंधे पंचविधे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणे विह-रिज्जा, ता से णं पुरिसे विउसमणकालसमयंसि केरिसए सातासोक्खं पच्चणुब्भवमाणे विहरति ?, उरालं समणाउसो !, ता तस्स णं पुरिसस्स कामभोगेहिंतो एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव वाणमंतराणं देवाणं कामभोगा, वाणमंतराणं देवाणं कामभोगेहिंतो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं कामभोगा, असुरिंदवज्जियाणं देवाणं कामभोगेहिंतो एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतरा चेव असुरकुमाराणं इंदभूयाणं देवाणं कामभोगा, असुरकुमाराणं देवाणं कामभोगेहिंतो० गहणक्खत्ततारारूवाणं कामभोगा, गहगणक्खत्ततारारूवाणं कामभोगेहिंतो अणंतगुणविसिट्ठतरा चेव चंदिमसूरियाणं देवाणं कामभोगा,

२० प्राभृते चन्द्रादित्यान्वर्थः सू १०५ कामभोगाः सू १०६

॥२९१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ता एरसिए णं चंदिमसूरिया जोइसिंदा जोइसरायाणो कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरंति (सूत्रं १०६) ॥

'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं–केन प्रकारेण केनान्वर्थेनेति भावः चन्द्रः शशीत्याख्यात इति वदेत्? भगवानाह–'ता चंदस्स ण'मित्यादि, ता इति पूर्ववत्, चन्द्रस्य ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य मृगाङ्के–मृगचिह्ने विमाने अधिकरणभूते कान्ताः–कमनीयरूपा देवाः कान्ता देव्यः कान्तानि च आसनशयनस्तम्भभाण्डमात्रोपकरणानि आत्मनाऽपि चन्द्रो देवो ज्योतिषेन्द्रो ज्योतिषराजः सौम्यः–अरौद्राकारः कान्तः–कान्तिमान् सुभगः सौभाग्ययुक्तत्वात् वल्लभो जनस्य प्रियं–प्रेमकारि दर्शनं यस्य स प्रियदर्शनः शोभनमतिशायि रूपं–अङ्गप्रत्यङ्गावयवसन्निवेशविशेषो यस्य स सुरूपः,ता–ततः एवं खलु अनेन कारणेन चन्द्रः शशी चन्द्रः शशीत्याख्यात इति वदेत्, किमुक्तं भवति?–सर्वात्मना कमनीयत्वलक्षणमन्वर्थमाश्रित्य चन्द्रः शशीति व्यपदिश्यते, कथा व्युत्पत्त्येति, उच्यते, इह 'शश कान्ता'विति धातुरदन्तश्चौरादिकोऽस्ति, चुरादयो हि धातवोऽपरिमिता न तेषामियत्ताऽस्ति, केवलं यथालक्ष्यमनुसर्त्तव्याः, अत एव चन्द्रगोमी चुरादिगणस्यापरिमिततया परमार्थतो यथालक्ष्यमनुसरणमवगम्य द्वित्रानेव चुरादिधातून् पठितवान् न भूयसः, ततो णिगन्तस्य शशनं शश इति घञ्प्रत्यये शश इति भवति, शशोऽस्यास्तीति शशी, स्वविमानवास्तव्यदेवदेवीशयनासनादिभिः सह कमनीयकान्तिकलित इति भावः, अन्ये तु व्याचक्षते–शशीति सह श्रिया वर्त्तते इति सश्रीः प्राकृतत्वाच्च शशीतिरूपं, 'ता कहं ते'इत्यादि, ता इति पूर्ववत्, कथं?–केन प्रकारेण केनान्वर्थेनेति भावः सूर आदित्यः २ इत्याख्यायते इति वदेत् ?, भगवानाह–'ता सूराइया'इत्यादि, सूर आदिः–प्रथमो येषां ते सूरादिकाः, के इत्याहं–'समयाइति वा' समया–अहोरात्रादिकालस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्विभागा भागाः, ते सूरादिकाः–सूरकारणाः, तथाहि–सूर्योदयमवधिं कृत्वा अहोरात्रारम्भकः समयो गण्यते, नान्यथा, एवमावलिकादयोऽपि सूरादिका भावनीयाः, नवरमसङ्ख्येयसमयसमुदायात्मिका आवलिका असङ्ख्येया आवलिका एक आनप्राणः, द्विपञ्चाशदधिकत्रिचत्वारिंशच्छतसङ्ख्यावलिकाप्रमाण एक आनप्राण इति वृद्धसम्प्रदायः, तथा चोक्तम्–"एगो आणापाणू तेयालीसं सया उ बावन्ना । आवलियपमाणेणं अणंतनाणीहिं निद्दिट्ठो ॥ १ ॥" सप्तानप्राणप्रमाणः स्तोकः, यावच्छब्दान्मुहूर्त्तादयो द्रष्टव्याः, ते च सुगमत्वात् स्वयं भावनीयाः,'एवं खलु'इत्यादि,एवमनेन कारणेन खलु–निश्चितः सूर आदित्यःरइत्याख्यात इति वदेत्, आदौ भव आदित्यो बहुलवचनात् त्यप्रत्यय इति व्युत्पत्तेः॥'ता चंदस्स ण'मित्यादि सूत्रमग्रमहिषीविषयं पूर्ववद्वेदितव्यं, प्रस्तावानुरोधाच्च भूय उक्तमित्यदोषः । 'ता चंदिमे'त्यादि, ता इति पूर्ववत्, चंद्रसूर्या णमिति वाक्यालङ्कारे ज्योतिषेन्द्रा ज्योतिषराजाः कीदृशान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति–अवतिष्ठन्ते?, भगवानाह– 'ता से जहे'त्यादि, ता इति पूर्ववत् से इत्यनिर्दिष्टस्वरूपो नाम यथा कोऽपि पुरुषः प्रथमयौवनोद्गमे यद्बलं–शारीरः प्राणस्तेन समर्थः, प्रथमयौवनोत्थानबलसमर्थया भार्यया सह अचिरवृत्तवीवाहः सन् अथ अर्थार्थी अर्थगवेषणया–अर्थ-गवेषणनिमित्तं षोडश वर्षाणि यावत् विप्रोषितो–देशान्तरे प्रवासं कृतवान्, ततः षोडशवर्षानन्तरं स पुरुषो लब्धार्थः– प्रभूतविढपितार्थः (कृतकार्यः–निष्ठिताखिलप्रयोजनः) 'अणहसमग्ग'त्ति अनघं–अक्षतं न पुनरपान्तराले केनापि चौरादिना विलुप्तं समग्रं–द्रव्यभाण्डोपकरणादि यस्य स तथा, स च पुनरपि निजकं गृहं शीघ्रमागतः, ततः स्नातः कृत-बलिकर्म्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः शुद्धात्मा वेष्याणि–वेषोचितानि प्रवराणि वस्त्राणि परिहितो–निवसितः, 'अप्प-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महग्घाभरणालंकियसरीरे'इति अल्पैः-स्तोकैर्महार्घैः-महामूल्यैराभरणैरलङ्कृतशरीरो मनोज्ञं कलमौदनादि स्थाली-पिठरी तस्यां पाको यस्य तत्तथा, अन्यत्र हि पक्वं न सुपक्वं भवति तत इदं विशेषणं, शुद्धं-भक्तदोषविवर्जितं, स्थालीपाकं च तत् शुद्धं च स्थालीपाकशुद्धं, 'अट्ठारसवंजणाउल'मिति अष्टादशभिर्लोकप्रतीतैर्व्यञ्जनैः-शालनकतक्रादिभिराकुलं अष्टादशव्यञ्जनाकुलं,अथवा अष्टादशभेदं च तत् व्यञ्जनाकुलं च अष्टादशव्यञ्जनाकुलं, शाकपार्थिवादिदर्शनाद् भेदशब्दलोपः, अष्टादश भेदा इमे-"सूओ १ यणो २ जवण्णं ३ तिण्णि य मंसाइ ६ गोरसो ७ जूसो ८। भक्खा ९ गुललावणिया १० मूलफला हरियगं १२ डागो १३ ॥ १ ॥ होइ रसालू य तहा १४ पाणं १५ पाणीय १६ पाणगं चेव १७। अट्ठारसमो सागो १८ निरुवहओ लोइओ पिंडो ॥ २ ॥" इदं गाथाद्वयमपि सुगमं, नवरं मांसत्रयं जलजादिसत्कं यूषो-मुद्गतण्डुलजीरककडुभाण्डादिरसः भक्ष्याणि-खण्डखाद्यानि गुडलावणिका लोकप्रसिद्धा गुडपर्पटिका गुडधाना वा मूलफलानीत्येकमेव पदं द्वन्द्वसमासरूपं हरितकं-जीरकादि शाको-वस्तुलादिभर्जिका रसालू-मर्जिका तल्लक्षणमिदम्-"दो घयपला महुपलं दहिस्स अद्धाढयं मिरिय वीसा। दस खंडगुल पलाइं एस रसालू निवइजोग्गो ॥१॥ " इति, पानं-सुरादि पानीयं-जलं पानकं-द्राक्षापानकादि शाकः-तक्रसिद्धः, एवंभूतं भोजनं भुक्तः सन् तस्मिन् तादृशे वासगृहे, किंविशिष्टे इत्याह-अन्तः सचित्रकर्म्मणि 'बहीदूमियघट्टमट्ठे'त्ति दूमिए-सुधापङ्कधवलिते घृष्टे पाषाणादिना उपरि घर्षिते ततो मृष्टे-मसृणीकृते, तथा विचित्रेण-विविधचित्रयुक्तेनोल्लोचेन-चन्द्रोदयेन 'चिल्लियं'ति दीप्यमानं गृहमध्यभागे उपरितनं तलं यस्य तत्तथा तस्मिन्, तथा बहुसमः-प्रभूतसमः सुविभक्तः-सुविच्छित्तिको भूमिभागो यत्र तस्मिन्, तथा मणिरत्नप्रणाशिता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०५R--१०६]

दीप अनुक्रम [२००--२०१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

॥२९३॥

न्धकारे तथा कालागुरुप्रवरकुन्दुरुक्कतुरुष्कधूपस्य यो गन्धो मघमघायमानः उद्भूतः–इतस्ततो विप्रसृतस्तेनाभिरामं–रमणीयं तस्मिन्, तत्र कुंदुरुक्कं–सिल्हकं, तथा शोभनो गन्धः तेन कृतश्च (ग्रं० ९०००) वरगन्धिकं–वरो गन्धो वरगन्धः सोऽस्यास्तीति वरगन्धिकं, 'अतोऽनेकस्वरा'दितीकप्रत्ययः, तस्मिन्, अत एव गन्धवर्त्तिभूते तस्मिन्, तादृशे शयनीये 'उभयतः' उभयोः पार्श्वयोरुन्नते मध्येन च–मध्यभागेन गम्भीरे 'सालिंगणवट्टिए'त्ति सहालिङ्गनवर्त्त्या–शरीरप्रमाणेनोपधानेन वर्त्तते यत्तत्तथा, तथा 'उभयो विब्बोयणे'इति उभयोः प्रदेशयोः–शिरोऽन्तपादान्तलक्षणयोर्विब्बोयणे–उपधानके यत्र तत्तथा, तत्र क्वचित् 'पण्णत्तगंडविब्बोयणे'त्ति पाठः तत्रैवं व्युत्पत्तिः–प्रज्ञया–विशिष्टकर्म्मविषयबुद्ध्या आप्ते–प्राप्ते अतीव सुष्ठु परिकर्म्मिते इति भावः गण्डोपधानके यत्र तत्तथा तत्र,'ओयवियखोमियदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे' ओयवियं–सुपरिकर्म्मितं क्षौमिकं दुकूलं–कार्प्पासिकमतसीमयं वा वस्त्रं तस्य युगलरूपो यः पट्टशाटकः स प्रतिच्छादनं–आच्छादनं यस्य तत्तथा तत्र, 'रत्तंसुयसंवुडे' रक्तांशुकेन–मशकगृहाभिधानेन वस्त्रविशेषेण संवृते–समन्तत आवृते 'आईणगरूयबूरनवणीयतूलफासे' आजिनकं–चर्म्ममयो वस्त्रविशेषः स च स्वभावादतिकोमलो भवति रूतं च–कार्प्पासपक्ष्म बूरो–वनस्पतिविशेषः नवनीतं च–म्रक्षणं तूलश्च–अर्कतूल इति द्वन्द्वः अत एतेषामिव स्पर्शो यस्य तत्तथा तस्मिन्,'सुगन्धवरकुसुमचुण्णसयणोवयारकलिए' सुगन्धीनि यानि वरकुसुमानि ये च सुगन्धयश्चूर्णाः–पटवासादयो ये च एतद्व्यतिरिक्तास्तथाविधाः शयनोपचारास्तैः कलिते, तथा तादृशया वक्तुमशक्यस्वरूपतया पुण्यवतां योग्यया 'सिंगारागारचारुवेसाए'त्ति शृङ्गारः–शृङ्गाररसपोषकः आकारः–सन्निवेशविशेषो यस्य स शृङ्गाराकारः इत्थं-

॥२९३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूतश्चारुः–शोभनो वेषो यस्याः सा तथाभूता तया 'संगतहसियभणियचिट्ठियसंलावविलासनिउणजुत्तोवयारकुसलाए' संगतं–मैत्रीगतं गमनं सविलासं चङ्क्रमणमित्यर्थः हसितं–सप्रमोदं कपोलसूचितं हसनं भणितं–मन्मथोद्दीपिका विचित्रा भणितिश्चेष्टितं–सकाममङ्गप्रत्यङ्गावयवप्रदर्शनपुरस्सरं प्रियस्य पुरतोऽवस्थानं संलापः–प्रियेण सह सप्रमोदं सकामं परस्परं सङ्कथा एतेषु विलासेन–शुभलीलया यो निपुणः–सूक्ष्मबुद्धिगम्योऽत्यन्तकामविषयपरमनैपुण्योपेत इत्यर्थः युक्तो–देशकालोपपन्न उपचारस्तत्कुशलया अनुरक्तया कदाचिदप्यविरक्तया मनोऽनुकूलया भार्यया सार्द्धमेकान्तेन रतिप्रसक्तो–रमणप्रसक्तोऽन्यत्र कुत्रापि मनोऽकुर्वन्, अन्यत्र मनःकरणे हि न यथावस्थितमिष्टभार्यागतं कामसुखमनुभवति, इष्टान् शब्दस्पर्शरसरूपगन्धरूपान् पञ्चविधान् मानुषान्–मनुष्यभवसम्बन्धिनः कामभोगान् प्रत्यनुभवन्–प्रतिशब्द आभिमुख्ये संवेदयमानो विहरेद्–अवतिष्ठेत्, 'ता से ण'मित्यादि, तावच्छब्दः क्रमार्थः, आस्तामन्यदग्रेतनं वक्तव्यमिदं तावत्कथ्यतां, स पुरुषः तस्मिन् 'कालसमये' कालेन तथाविधेनोपलक्षितः समयः–अवसरः कालसमयस्तस्मिन्, कीदृशं सातरूपं–आल्हादरूपं सौख्यं प्रत्यनुभवन् विहरति ?, एवमुक्ते गौतम आह—'ओरालं समणाउसो!' हे भगवन् ! श्रमण! आयुष्मन् ! उदारं–अत्यद्भुतं सातसौख्यं प्रत्यनुभवन् विहरति, भगवानाह—'तस्स ण'मित्यादि, 'एत्तो' एतेभ्यस्तस्य पुरुषस्य सम्बन्धिभ्यः कामभोगेभ्य 'अणंतगुणविसिट्ठतरा चेव'त्ति अनन्तगुणा–अनन्तगुणतया विशिष्टतरा एव व्यन्तरदेवानां कामभोगाः, व्यन्तरदेवकामभोगेभ्योऽप्यसुरेन्द्रवर्जानां देवानां कामभोगा अनन्तगुणविशिष्टतराः, तेभ्योऽनन्तगुणविशिष्टतरा इन्द्रभूतानां असुरकुमाराणां देवानां कामभोगाः, तेभ्योऽप्यनन्तगुणविशिष्टतरा ग्रहनक्षत्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तारारूपाणां देवानां कामभोगाः, तेभ्योऽप्यनन्तगुणविशिष्टतराः कामभोगाः चन्द्रसूर्याणां, एतादृशान् चन्द्रसूर्या ज्योतिषेन्द्रा ज्योतिषराजाः कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति । सम्प्रति पूर्वमष्टाशीतिसङ्ख्याग्रहा उक्तास्तान् नामग्राहमुपदिदर्शयिषुराह—

तत्थ खलु इमे अट्ठासीती महग्गहा पं०, तं०–इंगालए वियालए लोहितंके सणिच्छरे आहुणिए पाहुणिए कणो कणए कणकणए कणवितापए १०कणगसंताणे सोमे सहिते अस्सासणो कज्जोवए कवरए अयकरए दुंदुभए संखे संखणाभे २० संखवण्णाभे कंसे कंसणाभे कंसवण्णाभे णीले णीलोभासे रुप्पे रुप्पोभासे भासे भासरासी ३० तिले तिलपुप्फवण्णे दगे दगवण्णे काये वंधे इंदग्गी धूमकेतू हरी पिंगलए ४० बुधे सुक्के बहस्सती राहू अगत्थी माणवए कामफासे धुरे पमुहे वियडे५०विसंधिकप्पेल्लए पइल्ले जडियालए अरुणे अग्गिल्लए काले महाकाले सोत्थिए सोवत्थिए वद्धमाणगे ६० पलंबे णिच्चालोए णिच्चुज्जोते सयंपभे ओभासे सेयंकरे खेमंकरे आभंकरे पभंकरे अरए ७० विरए असोगे वीतसोगे य विमले विवत्ते विवत्थे विसाल साले सुव्वते अणियट्टी एगजडी८०दुजडी कर करिए राघऽग्गले पुप्फकेतू भाव केतू, संगहणी–इंगालए वियालए लोहितंके सणिच्छरे चेव । आहुणिए पाहुणिए कणकसणामावि पंचेव ॥ १ ॥ सोमे सहिते अस्सासणे य कज्जोवए य कवरए । अयकरए दुंदुभए संखसणामावि तिण्णेव ॥ २ ॥ तिन्नेव कंसणामा णीले रुप्पी य हुंति चत्तारि। भास तिल पुप्फवण्णे दगवण्णे काल वंधे य ॥ ३ ॥ इंदग्गी धूमकेतू हरि पिंगलए बुधे य सुक्के य । वहसति राहु अगत्थी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०७--१०८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२०२--२१८]

माणवए कामफासे य ॥ ४ ॥ धुरए पमुहे विवडे विसंधिकप्पे तहा पयछे य । जडियालए य अरुणे अगिल काले महाकाले ॥ ५ ॥ सोत्थिय सोवत्थिय वद्धमाणगे तधा पलंबे य । णिच्चालोए णिच्चुज्जोए सयंपभे चेव ओभासे ॥ ६ ॥ सेयंकर खेमंकर आभंकर पभंकरे य बोद्धवे । अरए विरए य तहा असोग तह वीतसोगे य ॥ ७ ॥ विमले वितत विवत्थे विसाल तह साल सुव्वते चेव । अणियट्टी एगजडी य होइ विजडी य बोद्धवो ॥ ८ ॥ कर करिए रायऽग्गल बोद्धवे पुप्फ भाव केतू य । अट्ठासीति गहा खलु णेयव्वा आणुपुवीए ॥१॥(सूत्रं १०७)

इति एस पाहुडत्था अभव्वजणहियय दुल्लहा इणमो । उक्कित्तिता भगवता जोतिसरायस्स पण्णत्ती ॥ १ ॥ एस गहितावि संता थद्धे गारविघमाणिपडिणीए । अबहुस्सुए ण देया तविवरीते भवे देया ॥ २ ॥ सद्धाधितिउट्ठाणुच्छाहकम्मबलविरियपुरिसकारेहिं । जो सिक्खिओवि संतो अभायणे परिकहेज्जाहि ॥ ३ ॥ सो पवयणकुलगणसंघबाहिरो णाणविणयपरिहीणो । अरहंतथेरगणहरसेरं किर होति वोलीणो ॥ ४ ॥ तम्हा धितिउट्ठाणुच्छाहकम्मबलविरियसिक्खितं णाणं । धारेयव्वं णियमा ण य अविणएसु दायव्वं ॥ ५ ॥ वीरवरस्स भगवतो जरमरणकिलेसदोसरहियस्स । वंदामि विणयपणतो सोक्खुप्पाए सया पाए ॥६॥ (सूत्रं १०८)

** इइ संगहणि गाहा |१०८|

चन्द्रप्रज्ञप्ति संपूर्ण || ग्रन्थाग्रं २२००

Jain Education International
www.jainelibrary.org

	♦ अत्र विंशति प्राभृतं परिसमाप्तं

'तत्थ खलु'इत्यादि, तत्र–तेषु चन्द्रसूर्यनक्षत्रतारारूपेषु मध्ये ये पूर्वमष्टाशीतिसङ्ख्या ग्रहाः प्रज्ञप्ताः ते इमे, तद्यथा— 'इंगालए'इत्यादि सुगमं, एतेषामेव नाम्नां सुखप्रतिपत्त्यर्थं सङ्ग्रहणिगाथामाह—"इंगालए विथालए लोहियंके सणिच्छरे चेव । आहुणिए पाहुणिए कणगसनामावि पंचेव ॥ १ ॥ सोमे सहिए अस्सासणे य कज्जोवए य कवरए । अयकर दुंदुभए वि य संखसनामावि तिन्नेव ॥ २ ॥ तिन्नेव कंसनामा नीले रुप्पी य हुंति चत्तारि । भासतिलपुप्फवन्ने दगवन्ने काय वंधे य ॥ ३ ॥ इंदग्गि धूमकेऊ हरि पिंगलए बुधे य सुक्के य । वहसइ राहु अगच्छी माणवगे कामफासे य ॥ ४ ॥ धुरए पमुहे वियडे विसंधिकप्पे तहा पइले य । जडियालए य अरुणे अग्गिल काले महाकाले ॥ ५ ॥ सोत्थिय सोवत्थियए वद्धमाणग तहा पलंबे य । निच्चालोए निच्चुज्जोए सयंपभे चेव ओभासे ॥ ६ ॥ सेयंकर खेमंकर आभंकर पभंकरे य वोद्धवे । अरए विरए य तहा असोग तह वीयसोगे य ॥ ७ ॥ विमले वितत विवत्थे विसाल तह साल सुव्वए चेव । अनियट्टी एगजडी य होइ वियडी य वोद्धवे ॥ ८ ॥ कर करिए रायऽग्गल वोद्धवे पुप्फ भाव केऊ य । अट्ठासीइ गहा खलु नायवा आणुपुवीए ॥ ९ ॥ " आसां व्याख्या—अङ्गारकः १ विकालकः २ लोहित्यकः ३ शनैश्चरः ४ आधुनिकः ५ प्राधुनिकः ६ 'कणगसनामावि पंचेव'त्ति कनकेन सह एकदेशेन समानं नाम येषां ते कनकसमाननामानस्ते पञ्चैव प्रागुक्तक्रमेण द्रष्टव्याः, तद्यथा—कणः ७ कणकः ८ कणकणकः ९ कणवितानकः १० कणसन्तानकः ११ 'सोमे'त्यादि सोमः १२ सहितः १३ आश्वासनः १४ कार्योपगः १५ कर्वटकः १६ अजकरकः १७ दुन्दुभकः १८ शंखसमाननामत्रयस्तद्यथा—शङ्खः १९ शङ्खनाभः २० शङ्खवर्णाभः २१ । 'तिन्नेवे'त्यादि त्रयः कंसनामानः, तद्यथा—कंसः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ति आधारेण मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१७],उपांगसूत्र-[६] "चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१०७--१०८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२०२--२१८]

२२ कंसनाभः २३ कंसवर्णाभः २४ 'नीले रुप्पी य हवंति चत्तारि'त्ति नीले रुप्पे च शब्दे विषयभूते द्विद्विनामसम्भवात् सर्वसङ्ख्यया चत्वारः, तद्यथा—नीलः २५ नीलावभासः २६ रूप्पी २७ रूप्यवभासः २८ भासेति नामद्वयोपलक्षणं तद्यथा—भस्म २९ भस्मराशिः ३० तिलः ३१ तिलपुष्पवर्णकः ३२ दकः ३३ दकवर्णः ३४ कायः ३५ वन्ध्य ३६ इन्द्राग्निः ३७ धूमकेतुः ३८ हरिः ३९ पिङ्गलः ४० बुधः ४१ शुक्रः ४२ बृहस्पतिः ४३ राहुः ४४ अगस्तिः ४५ माणवकः ४६ कामस्पर्शः ४७ धुरः ४८ प्रमुखः ४९ विकटः ५० विसंधिकल्पः ५१ प्रकल्पः ५२ जटालः ५३ अरुणः ५४ अग्निः ५५ कालः ५६ महाकालः ५७ स्वस्तिकः ५८ सौवस्तिकः ५९ वर्द्धमानकः ६० प्रलम्बः ६१ नित्यालोकः ६२ नित्योद्योतः ६३ स्वयंप्रभः ६४ अवभासः ६५ श्रेयस्करः ६६ क्षेमंकरः ६७ आभंकरः ६८ प्रभङ्करः ६९ अरजा ७० विरजा ७१ अशोकः ७२ वीतशोकः ७३ विवर्त्तः ७४ विवस्त्रः ७५ विशालः ७६ शालः ७७ सुव्रतः ७८ अनिवृत्तिः ७९ एकजटी ८० द्विजटी ८१ करः ८२ करिकः ८३ राजः ८४ अर्गलः ८५ पुष्पः ८६ भावः ८७ केतुः ८८ ★ सम्प्रति सकलशास्त्रोपसंहारमाह—"इय एस पागडत्था अभव्वजणहिययदुल्लभा इणमो। उक्कित्तिया भगवई जोइसरायस्स पन्नत्ती ॥ १ ॥" इति, एवं–उक्तेन प्रकारेण अनन्तरमुद्दिष्टस्वरूपा प्रकटार्था–जिनवचनतत्त्ववेदिनामुत्तानार्था, इयं चेत्थं प्रकटार्थापि सती अभव्यजनानां हृदयेन–पारमार्थिकाभिप्रायेण दुर्लभा, भावार्थमधिकृत्याभव्यजनानां दुर्लभेत्यर्थः, अभव्यत्वादेव तेषां सम्यग्जिनवचनपरिणतेरभावात्, उत्कीर्त्तिता–कथिता भगवती–ज्ञानैश्वर्या देवता ज्योतिषराजस्य–सूर्यस्य प्रज्ञप्तिः। एषा च स्वयंगृहीता सती यस्मै न दातव्या तत्प्रतिपादनार्थमाह—'एसा गहिया वि'इत्यादि गाथाद्वयं, एषा–सूर्यप्रज्ञप्तिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

★ अत्र विंशति प्राभृतं परिसमाप्तं. तत् पश्चात् उपसंहार-गाथा: आरम्भा:

स्वयं सम्यक्करणेन गृहीतापि सती "व्यत्ययोऽप्यासा"मिति वचनाच्चतुर्थ्यर्थे सप्तमी, ततोऽयमर्थः–धद्धे इति स्तब्धाय स्वभावत एव मानप्रकृत्या विनयभ्रंशकारिणे, 'गारविय'त्ति, ऋद्ध्यादि गौरवं सञ्जातमस्येति गौरवितस्तस्मै ऋद्धिरसशातानामन्यतमेन गौरवेण गुरुतरायेति भावः, ऋद्ध्यादिमदोपेतो ह्यचिन्त्यचिन्तामणिकल्पमपीदं सूर्यप्रज्ञप्तिप्रकीर्णकमाचार्यादिकं च तद्वेत्तारमवज्ञया पश्यति, सा चावज्ञा दुरन्तनरकादिप्रपातहेतुरतस्तदुपकारायैव तस्मै दानप्रतिषेधः, इयं च भावना स्तब्धमान्यादिष्वपि भावनीया, तथा मानिने–जात्यादिमदोपेताय प्रत्यनीकाय–दूरभव्यतया अभव्य, तया वा सिद्धान्तवचननिकुट्टनपराय, तथा अल्पश्रुताय–अवगाढस्तोकशास्त्राय, स हि जिनवचनेषु (अ)सम्यग्भावितत्वात् शब्दार्थपर्यालोचनायामक्षुण्णत्वाच्च यथावत्कथ्यमानमपि न सम्यगभिरोचयते इति न देया, किन्तु तद्विपरीताय दातव्या भवेत्, भवेदिति क्रियापदस्य सामर्थ्यलब्धावप्युपादानं दातव्यत्वावधारणार्थं, तद्विपरीताय दातव्यैव नादातव्या, अदाने शास्त्रव्यवच्छेदप्रसक्त्या तीर्थव्यवच्छेदप्रसक्तेः, एतदेव व्यक्तीकुर्वन्नाह—'सद्धे'त्यादि, श्रद्धा–श्रवणं प्रति वाञ्छा धृतिः–विवक्षितं जिनवचनं सत्यमेव नान्यथेति मनसोऽवष्टम्भः उत्थानं–श्रवणाय गुरुं प्रत्यभिमुखगमनं उत्साहः–श्रवणविषये मनसः उत्कलिकाविशेषः यद्वशादिदानीमेव यदि मे पुण्यवशात् सामग्री सम्पद्यते शृणोमि च ततः शोभनं भवतीति परिणाम उपजायते कर्म्म–वन्दनादिलक्षणं बलं—शारीरो वाचनादिविषयः प्राणः वीर्यं—अनुप्रेक्षायां सूक्ष्मसूक्ष्मार्थोहनशक्तिः पुरुषकारः—तदेव वीर्यं साधिताभिमतप्रयोजनं, एतैः कारणैः यः स्वयं शिक्षितोऽपि—गृहीतसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रार्थोभयोऽपि सन् यो दाक्षिण्यादिना अन्तेवासिनि अभाजने—अयोग्ये प्रतिक्षिपेत्—सूत्रतो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०७--१०८] + गाथा:

दीप अनुक्रम [२०२--२१८]

ऽर्धत उभयतो वा न्यसेत् 'सो पयवणे'त्यादि स प्रवचनकुलगणसङ्घबाह्यो ज्ञानविनयपरिहीणो–ज्ञानाचारपरिहीणो भगवदर्हत्स्थविरगणधरमर्यादां–भगवदर्हदादिकृतां व्यवस्थां भवति किल व्यतिक्रान्तः, किलेत्याप्तवादसूचकं, इत्थमाप्तवचनं व्यवस्थितं यथा स नूनं भगवदर्हदादिव्यवस्थामतिक्रान्त इति, तदतिक्रमे च दीर्घसंसारिता । 'तम्हे'त्यादि, तस्माद् धृत्युत्थानोत्साहकर्म्मबलवीर्यैर्यत् ज्ञानं–सूर्यप्रज्ञप्त्यादि स्वयं मुमुक्षुणा सता शिक्षितं तन्नियमादात्मन्येव धर्त्तव्यं, न तु जातुचिदप्यविनीतेषु दातव्यं, उक्तप्रकारेण तद्दाने आत्मपरदीर्घसंसारित्वप्रसक्तेः, तदेवमुक्तः प्रदानविधिः ।

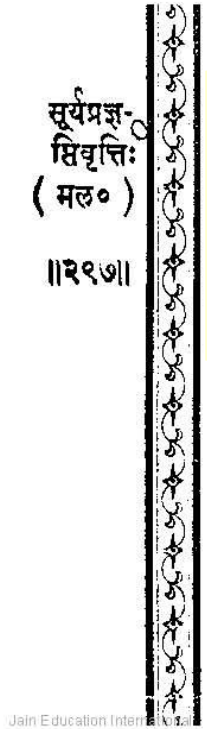
इति मलयगिरिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां विंशतितमं-प्राभृतं समाप्तं

चन्द्रप्रज्ञप्ते: हस्तप्रत एवं पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्ते: आधारेण

मुनिश्री दीपरत्नसागरेण संकलित:

(आगमसूत्र १७) "चन्द्रप्रज्ञप्ति"- (उवंगसूत्र-६) परिसमाप्त:

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



वृत्तिकारेण कृता अन्तिम मंगल-आदि गाथा:

वन्दे यथास्थिताशेषपदार्थप्रतिभासकम् । नित्योदितं तमोऽस्पृश्यं, जैनसिद्धान्तभास्करम् ॥ १ ॥
विजयन्तां गुणगुरवो गुरवो जिनतीर्थभासनैकपराः । यद्वचनगुणादहमपि जातो लेशेन पटुबुद्धिः ॥ २ ॥
चंद्र ाप्रज्ञप्तिमिमामतिगम्भीरां विवृण्वता कुशलम् । यदवापि मलयगिरिणा साधुजनस्तेन भवतु कृती ॥ ३ ॥

इति श्रीमलयगिरिविरचिता टीकायुक्ता चन्द्रप्रज्ञप्तिः समाप्ता ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाग 22	चन्द्रप्रज्ञप्ति-उवंगसूत्र [६] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता: चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य हस्तप्रत एवं पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी म.सा. संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रस्य साहाय्येन किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

आगम [17]

"चन्द्रप्रज्ञप्ति (उपांगसूत्र-६)" [मूलं एवं मलयगिरि-प्रणित वृत्ति:]

हस्तप्रत एवं पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रस्य मुद्रित प्रत आधारेण

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्ति:" नामेण परिसमाप्त:

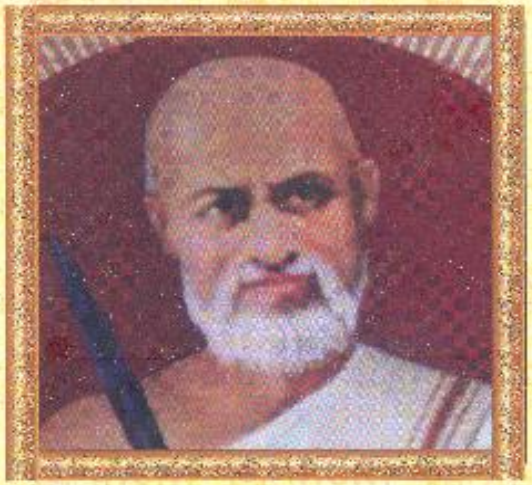
"सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" श्रेणि, भाग- 22


आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

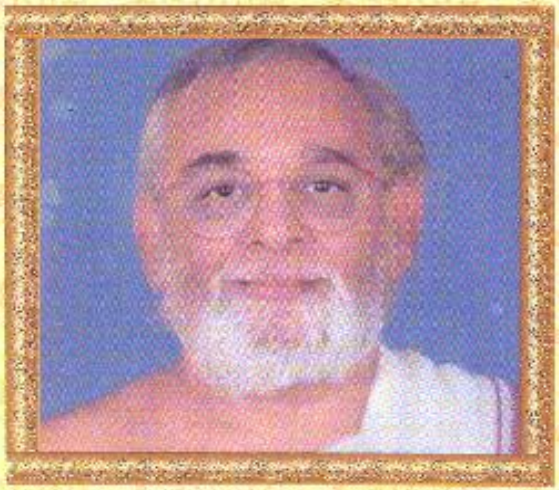
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

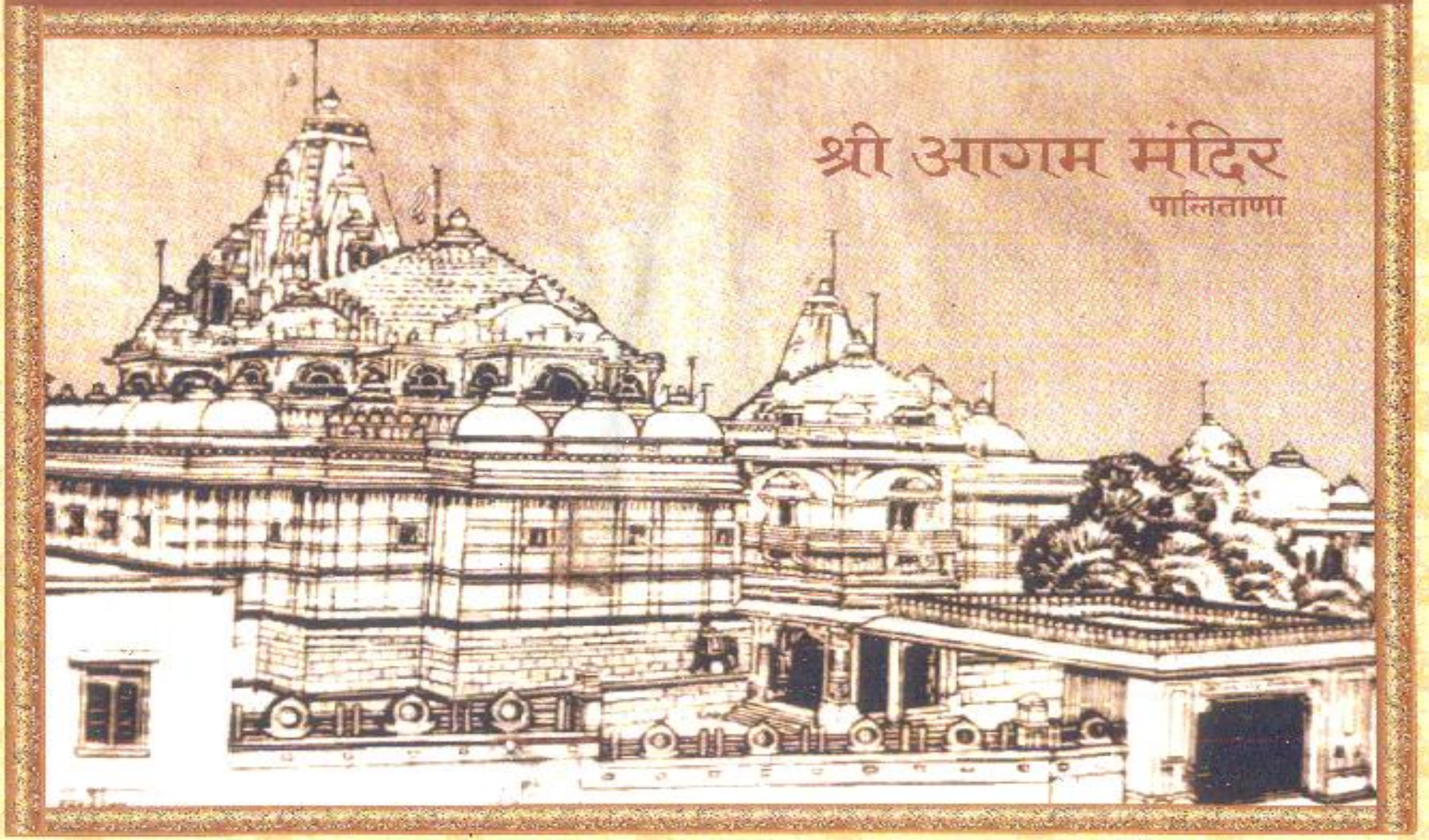
अभिनव-संकलनकर्ता

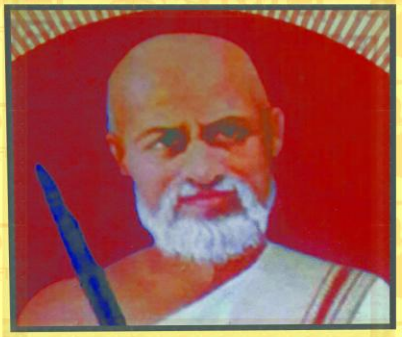


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदावाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम १७

"चन्द्रप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

